A CRITICAL STUDY OF THE INFLUENCE

OF

GANDHIJI AND HIS TEACHING

ON

MODERN HINDI POETRY

THESIS IN HINDI

Submitted To The University Of Cochin

FOR THE DEGREE OF

DOCTOR OF PHILOSOPHY

By

CHANDRIKA. R.

DEPARTMENT OF HINDI

UNIVERSITY OF COCHIN

COCHIN 22.

1974

आधुनिक हिन्दी काव्य में

गांधी जी और उनके विचार

कु० आर० चन्द्रिका

निर्देशक

डा० एन० ई० विश्वनाथ अय्यर,
प्रोफेसर - हिन्दी विभाग
कोच्चीन - २२

हिन्दी विभाग
कोचीन विश्वविद्यालय,
कोच्चिन - २२

१९७४

This is to certify that this thesis is a bonafide record of work carried out by Smt. CHANDRIKA R. under my supervision for Ph.D. of the University of Cochin and no part of this has hitherto been submitted for a degree in any University.

DEPARTMENT OF HINDI,
UNIVERSITY OF COCHIN
COCHIN-22.

DR. N.E. VISWANATHA IYER,
(M.A. PH.D)
SUPERVISING TEACHER.

DR. N. E. VISWANATHA AIYAR, M. A. Ph. D.
PROF. & HEAD OF THE DEPT. OF HINDI
UNIVERSITY OF COCHIN
COCHIN-22.

ACKNOWLEDGEMENT

The work was carried out in the University of Cochin, Cochin-22, during the tenure of scholarships awarded to me by the University of Cochin. I sincerely express my gratitude to the University of Cochin for this kind help and encouragements.

Chandrika. R

CHANDRIKA R.

भूमिका

केरल में हिन्दी का प्रचार साहित्यिक भाषा के रूप में ही नहीं, भारत की राष्ट्रभाषा के रूप में भी होता आया है। वस्तुत: राष्ट्रभाषा का पहलू ही अधिक महत्व का है। इसलिए हिन्दी साहित्य के अध्ययन में मेरी दृष्टि देशप्रेम या राष्ट्रीयता की तरफ विशेष आकृष्ट हुई थी। काव्य के प्रति सहज आकर्षण और राष्ट्रीय भावना के प्रभाव ने मेरे मन में महात्मा गांधी जी और उनके विचारों की श्रद्धालु भक्ति जगा दी। यही मेरे विषय - चयन का मुख्य प्रेरणा-स्रोत है।

आधुनिक हिन्दी काव्य का प्रारंभ बीसवीं सदी के आरंभ से माना गया है। इतिहासकारों ने इस सदी के प्रमुख कवियों एवं प्रवृत्तियों के आधार पर युग- विभाजन एवं युग- नामकरण किया है। किंतु इस सदी के पिछले पूर्वार्द्ध में एक महान व्यक्ति का अनुपम प्रभाव संपूर्ण हिन्दी साहित्य के नभ पर छाया था। क्या कवि, क्या नाटककार, क्या कहानीकार- सभी राष्ट्रपिता के अद्भुत व्यक्तित्व के जादू पर मोहित थे। फलत: हिन्दी में गांधी जी और उनके विचारों को कवियों ने काव्य का विषय बनाया। जिस महान पुरुष ने हिंदी को राष्ट्रभाषा का गरिमामय पद दिया और उसमें उच्च श्रेणी की रचनाएं करने की प्रेरणा दी, उनके विषय में लिखे गये काव्य का अध्ययन निश्चित ही उपादेय और रोचक हो सकता है। यही तर्क मुझे बराबर प्रेरणा देता रहा कि अनुसन्धान के लिए यह विषय के लिए स्वीकार किया जाय। यह सच है कि गत चार- पांच वर्षों में भारत की विचार-धारा की दिशा गांधीवाद से कुछ कुछ विमुख होती जा रही है। फिर भी भारत की आत्मा और भारतीय स्वाधीनता का मर्म समझने के लिए गांधी वाङ्मय का अध्ययन अनिवार्य है। अब भी उस महान पुरुष की देन को हम भुला नहीं सकते।

इतनी नमक-हरामी और स्वार्थ - लोभ भारत में फैल नहीं सकता ।

मेरे अध्ययन - विषय की सीमाएं स्पष्ट हैं । बापू जिन दिनों भारत के स्वतन्त्रता संग्राम के क्षेत्र में आए, उन दिनों से कुछ कुछ प्रसिद्ध हुए थे ; तो भी भारतीय जनता उन्हें उसके बाद ही नजदीक से देखने और पहचानने लगी । इसी समय की रचनाओं से मेरा अध्ययन- विषय शुरू होता है । अब तक इस विषय के जितने काव्य मुद्रित और सुलभ रहे, उन सबका मनन- मंथन करके ही मैं ने निष्कर्ष निकाले हैं ।

इस विषय पर गहराई से अनुसंधान का प्रथम प्रयास मेरे विनम्र मत में यही ग्रन्थ है । वैसे आधुनिक हिन्दी साहित्य के सामान्य धरातल पर गांधीवाद के प्रभाव पर कुछ शोध- ग्रंथ अन्यत्र लिखे गये हैं । उनमें व्यापकता भले ही हो, पर गहराई की गुंजाइश कम हो जाती है । मैं ने सिर्फ काव्य का क्षेत्र लिया है । इसमें महात्मा गांधी जी के अद्भुत व्यक्तित्व, देशसेवा, साहित्य चिंतन आदि अनेकों पहलुओं का सांगोपांग विवेचन करना इस प्रबन्ध का अध्ययन रहा है । इस दृष्टि के अलावा केरलीय विद्यार्थियों की दृष्टि से मेरे मन में उक्त विषय पर जो प्रक्रिया हुई है, उसे भी यथासंभव मैं ने प्रस्तुत किया है । । मेरा मतलब इतना ही है कि इस प्रबंध में पिष्ट- पेषण की बात नहीं उठती ।

इस प्रबन्ध के प्रथम अध्याय में आलोच्य काल की राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और अन्य परिस्थितियों पर संक्षिप्त रूप से प्रकाश डाला गया है जिनने आधुनिक काव्य का विकास तथा उसमें गांधीवादी प्रवृत्तियों की अभिव्यक्ति आदि के लिए भूमिका अदा की । साथ ही खड़ीबोली की साहित्यिक भाषा के रूप में स्वीकृति, उसका विकास और काव्य- रचना आदि पर विचार किया गया है । अंत में आधुनिक युग की नवीन राष्ट्रीय चेतना, गांधीयुग का सूत्रपात , गांधी जी कृत राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक सुधार आदि का विवेचन भी हुआ है ।

द्वितीय अध्याय में आधुनिक भारत के महान नेताओं का उल्लेख किया गया है । इनमें से महात्मा गांधी पर अलग प्रकाश डाला गया है । उनके जीवन और व्यक्तित्व का विस्तृत विश्लेषण हुआ है । आखिर दार्शनिकों, सामाजिक

व्यक्तियों, राष्ट्रीय व्यक्तियों और सामान्य व्यक्तियों पर गांधी जी के व्यक्तित्व प्रभाव का विवेचन किया गया है।

तृतीय अध्याय में गांधी जी का साहित्यिक चिन्तन, और ज्ञान, हिन्दी साहित्य में गांधी जी और गांधीवाद का स्थान आदि का समर्थन किया गया है।

चतुर्थ अध्याय में गांधीवाद के विविध सिद्धान्तों की चर्चा की गयी है। उनके द्वारा मानव- जीवन के धरातल पर व्यवहृत अहिंसा, सत्य, अस्तेय, अपरिग्रह, हृदय- परिवर्तन आदि तत्वों और अन्य तत्वों का विस्तृत विश्लेषण इस अध्याय में हुआ है। इन तत्वों की उत्पत्ति, विकास, परंपरागत प्रयोग, गांधी जी द्वारा इनका व्यवहार आदि बातों का विशेष अध्ययन किया गया है। इस अध्याय के आरंभ में वाद की परिभाषा, गांधीवाद की, विभिन्न विद्वानों द्वारा की गयी परिभाषाएं आदि का उल्लेख भी हुआ है।

पंचम अध्याय में गांधीवाद से प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से प्रभावित महाकाव्यों का विस्तृत अध्ययन हुआ है। महाकाव्य की परिभाषा, सामग्री- स्रोत, लक्षण, परंपरा, विकास आदि बातों पर भी विशेष रूप से प्रकाश डाला गया है। निष्कर्ष में गांधीवादी महाकाव्यों की विशेषताओं का उद्घाटन भी हुआ है।

षष्ठ अध्याय में गांधीवाद से प्रत्यक्ष तथा परोक्ष रूप से प्रभावित खण्ड काव्यों का विशेष एवं विस्तृत अध्ययन हुआ है। खण्डकाव्य की परिभाषा, सामग्री- स्रोत , लक्षण, परंपरा , विकास आदि बातों का समर्थन किया गया है। अन्त में गांधीवादी खण्डकाव्यों की विशेषताओं का मूल्यांकन किया गया है।

सप्तम अध्याय में गांधी जी और गांधीवाद को लेकर लिखी गई मुक्तक कविताओं का विस्तृत अध्ययन है। मुक्तक की परिभाषा, स्वरूप, वर्गीकरण विकास आदि का विवेचन है। सोहनलाल द्विवेदी, सियारामशरण गुप्त, माखनलाल चतुर्वेदी , बालकृष्ण शर्मा `नवीन` आदि अनेक श्रेष्ठ गांधीवादी कवियों की कविताओं का अत्यन्त विस्तृत अध्ययन हुआ है। निष्कर्ष में इन मुक्तकों की

नवीनताओं और विशेषताओं पर भी दृष्टि डाली गयी है।

अष्टम अध्याय में गीतिकाव्य और विविध काव्यरूपों का अध्ययन किया गया है जो गांधीजी और गांधीवाद पर रचित हैं। विविध काव्यरूपों के अंतर्गत लोकगीति, गद्यकाव्य, निबंध काव्य, गीतिनाट्य, भक्तिकाव्य आदि का समावेश किया गया है। गीतिकाव्य की परिभाषा, लक्षण, विकास आदि का उल्लेख भी हुआ है।

नवम अध्याय में गांधीजी पर रचित महाकाव्य, खण्डकाव्य, मुक्तक काव्य और अन्य काव्यरूपों की कलापक्षीय आलोचना की गयी है। इस अध्याय के अध्ययन का उद्देश्य यह है कि गांधीवादी कविताओं की रचना के वक्त गांधीवादी कवियों ने इनके कलापक्ष के प्रति कितनी रुचि तथा श्रद्धा से काम किया है। इस अध्याय के अध्ययन से यह स्पष्ट होगा कि गांधीवादी रचनाओं का कलापक्ष बहुत कुछ सराहनीय निकल पड़ा है। गांधीय कविताओं में प्रयुक्त अलंकारों, छन्दों, प्रतीकों, विविध विषयों, शीर्षकों, रसों पर विशाल दृष्टि से प्रकाश डाला गया है।

दशम अर्थात् अन्तिम अध्याय में उपसंहार का कार्य हुआ है। गांधीवादी कविताओं एवं काव्यों की मुख्य प्रवृत्तियों का मूल्यांकन किया हुआ है। अन्त में मृत्युंजयी नामक काव्य - संकलन- पुस्तिका की कविताओं का अध्ययन प्रस्तुत है, जो विभिन्न देशीय भाषाओं के कवियों से प्रणीत हुई हैं।

प्रतिपादन की शैली की दृष्टि से इस प्रबंध में काव्यों में गांधीवादी तत्वों की विवेचना की प्रवृत्तियों पर अधिक ध्यान दिया गया है। काव्यों में गांधीवादी तत्वों की अभिव्यक्ति प्रत्यक्ष और परोक्ष दोनों रूपों से यथेष्ट हुई है। अत: दोनों प्रकार की प्रवृत्तियों का अध्ययन अनिवार्य था। इसलिए काव्यों में उल्लेखनीय विषयों, कथाओं तथा घटनाओं पर उतना ध्यान देने या वर्णन करने की आवश्यकता नहीं सूझी है। मगर गांधीजी से संबंधित काव्यों के विषयों पर चर्चा अवश्य की गयी है। अपने तत्व संबंधी गांधीजी की मान्यताओं को प्रामाणिक बनाने के लिए मूल उद्धरणों को प्रस्तुत किया गया है। बड़े बड़े महान साहित्यिक के लेखकों के विचारों को उदाहरणों के रूप में प्रामाणिकता के समर्थन के लिए उद्धृत

किया गया है। कहीं कहीं भावों का अनुवाद देकर टिप्पणियों में उनका मूल रूप दिया गया है।

परिशिष्ट के अन्तर्गत सहायक ग्रंथों की विचारपूर्ण एवं लंबी सूची दी गयी है। हिन्दी, अंग्रेजी, संस्कृत के ग्रंथों, पत्र- पत्रिकाओं और कोशों को अलग रूप से अकारादि क्रम में रखा गया है।

मेरा यह कार्य पूज्य गुरुदेव डा० एन० ई० विश्वनाथ अय्यर जी (प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, कोचिन विश्वविद्यालय) के सुयोग्य निर्देशन एवं प्रोत्साहन की आभा में संपन्न हुआ। उनके निर्देश तथा उपदेश मुझे हर क्षण प्राप्त होते थे। समय समय पर वे अपेक्षित सुझाव देते रहे। प्रबंध लेखन में उचित होने वाली शंकाओं के निवारण में उनकी बड़ी मदद मिली थी। मैं यहां मेरे निर्देशक के प्रति आभार व्यक्त करती हूं। मेरे लिए सौभाग्य की बात है कि जब एक बार आदरणीय डा० सत्येन्द्र जी हमारे यहां पधारे थे, तब उनसे मेरे प्रबंध के विषय की सुदीर्घ चर्चा हुई थी। उन्होंने मुझे आवश्यक जो निर्देश दिये थे वे मुझे बड़े सहायक सिद्ध हुए। इस दृष्टि से मैं उन्हें कदापि भूल नहीं सकती और उनके प्रति हमेशा कृतज्ञता प्रकट करना चाहती हूं।

सामग्री - संकलन के लिए आवश्यक अधिकांश पुस्तकें इसी विभाग के पुस्तकालय से प्राप्त हुई हैं। यहां शोधार्थी के लिए आवश्यक पुस्तकें बड़ी संख्या में मिल सकती हैं। अतः सामग्री- संकलन में सहायक ग्रंथों की उपलब्धि में कठिनाई का कोई तिक्तानुभव मुझे न हुआ है। सामग्री- संकलन से लेकर प्रबंध की पूरी तैयारी तक आवश्यक पुस्तकों को प्रदान करते हुए हमारे पुस्तकालय की अध्यक्षा ने बड़ी मदद की जिससे यह प्रयत्न साकार हो उठा। मैं उनके प्रति सदा कृतज्ञ हूं।

अन्त में इस प्रबंध की पूर्ति तक की कालावधि के बीच उपस्थित अनुभवों को याद करते समय मुझे यह महद्वाक्य बड़ा ही सार्थक प्रतीत होता है जिसका उद्धरण यहां करना उचित समझती हूं - " ऐक्यमत्यं महाबल "।

- आर० चन्द्रिका

शोध-छात्रा
हिन्दी विभाग, कोचिन विश्वविद्यालय,
कोचिन - २२

विषय - सूची

-----00-----

१- प्रथम अध्याय

--0--

(अ) खड़ीबोली काव्य का विकास - भूमिका - प्रथम स्वतंत्रता-संग्राम - उसकी असफलता के कारण - अंग्रेजों का शासन - विक्टोरिया शासन और आगे - सामान्य परिस्थितियाँ - सामाजिक राजनीतिक, आर्थिक आदि ।

(आ) राष्ट्रीयता का पुनर्विकास - गांधीजी और उनका युग - राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक सुधार - आधुनिक हिन्दी (खड़ीबोली) काव्य का विकास- खड़ीबोली की प्रतिष्ठा - आधुनिक हिंदी काव्य में गांधीवाद की अभिव्यक्ति - (स्वतंत्रता के पूर्व और पश्चात्)

२- द्वितीय अध्याय

--00--

(अ) आधुनिक भारत के नव-निर्माता और उनकी विभिन्न प्रवृत्तियों का सामान्य परिचय ।

(आ) महात्मा गांधी - जीवन और व्यक्तित्व, जीवन- जन्म, बचपन, शिक्षा, दिनचर्या, खान- पान, वेश भूषा, विवाह, विनोद, जीवन दर्शन एवं संदेश

(इ) व्यक्तित्व - राजनीतिक व्यक्तित्व - (१) आंदोलन संचालक - (२) समर्थ सत्याग्रही, (३) कठिन उपवासी,(४) कांग्रेस नेता, (५) युद्ध के समर्थक (पहले) बाद में विरोधी (६) अहिंसक क्रांतिकारी ।

सामाजिक व्यक्तित्व - (१) शिक्षा के समर्थक,(२) अस्पृश्यता निवारक (३) एकता के समर्थक , (४) नारी उद्धारक, (५) ग्राम सुधारक, (६) रामराज्य कामी (७) जनता के नेता (८) प्रचण्ड मानवतावादी ।

आर्थिक व्यक्तित्व - (१) आर्थिक सुधारक, (२) आर्थिक रक्षा के समर्थक

धार्मिक व्यक्तित्व - (१) कट्टर वैष्णव, (२) सत्य के पुजारी, (३) अहिंसा के पुजारी (४) ईश्वरोपासक (५) आध्यात्मिक नेता , (६) कुलवरके आत्मिक नेता (७) ब्रह्मचारी , (८) कर्मठ व्यक्ति

भारतीय महान व्यक्तियों पर गांधीजी का प्रभाव - विनोबा भावे, जवाहर लाल नेहरू, लाल बहादुर शास्त्री , नरेन्द्र देव, डा० फिशर, डा० नर्मन, श्री रोबर्ट, श्री टेलर आदि ।

३- तृतीय अध्याय

--00--

हिन्दी साहित्य का सामान्य परिचय - गांधी जी और उनका साहित्यिक परिज्ञान हिन्दी साहित्य में गांधी जी तथा गांधीवाद का स्थान ।

४- चतुर्थ अध्याय

-----0------

गांधीवादी सिद्धान्तों का विस्तृत विवेचन ।

(अ) वाद का अर्थ , गांधीवाद, उसकी परिभाषाएं ।

(आ) दर्शन शब्द का अर्थ , जीवन और दर्शन ,

भारतीय दर्शन का सामान्य परिचय, गांधी - दर्शन , उसका स्रोत, उसकी विशेषताएं ।

(इ) गांधीवाद के विभिन्न सिद्धान्त और उनका तत्त्वगत विस्तृत विश्लेषण - अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, अस्वाद आदि तत्त्वों के शब्दार्थ, उत्पत्ति परंपरा, परिभाषा - इन तत्त्वों और अन्य तत्त्वों संबंधी गांधीजी की मान्यताएं . आदि का विस्तृत विवेचन ।

५- पंचम अध्याय

-----0----

(अ) गांधीवादी महाकाव्यों का विस्तृत अध्ययन -

महाकाव्य - परिभाषा, सामग्री, स्रोत, लक्षण, परंपरा और विकास ।

(आ) आधुनिक हिंदी महाकाव्य - स्रोत और विकास

गांधीवादी महाकाव्य (प्रत्यक्ष प्रतिपादन) - जननायक - कथासार, गांधीवादी विचारों का प्रतिपादन - जगदालोक - कथासार, गांधीवाद का उल्लेख, राजनीतिक तथा सुधारवादी प्रवृत्तियों का निरूपण, निष्कर्ष

(इ) परोक्ष प्रतिपादन - साकेत, साकेत - सन्त, वैदेही वनवास, उर्मिला, रामराज्य, दमयंती , प्रियप्रवास, एकलव्य, कुरुक्षेत्र, तारकवध, जयभारत, विक्रमादित्य, नूरजहां, कैकेयी, निष्कर्ष
गांधीवादी महाकाव्य की विशेषताएं ।

६- षष्ठ अध्याय
----00---

गांधीवादी खण्डकाव्यों का विस्तृत अध्ययन ।
(अ) खण्डकाव्य शब्द की उत्पत्ति - परिभाषा - लक्षण - स्वरूप - विकास - वर्गीकरण - (१) महाकाव्यात्मक और (२) लघु प्रबन्धात्मक - इसके दो भेद : सर्गबद्ध और सर्ग विहीन । गांधीवादी खण्डकाव्य - प्रत्यक्ष रूप और परोक्ष रूप ।
(आ) - प्रत्यक्ष रूप - गांधी गौरव - सर्गात्मक कथा - वर्णन- गांधीजी का चरित्र चित्रण - गांधीवाद का सैद्धान्तिक विवेचन - खण्डकाव्यत्व । पथिक - गांधीजी का चरित्र चित्रण - गांधीवाद का निरूपण ।
(इ) परोक्ष रूप - किसान, अजित, अनाथ, पंचवटी, शक्ति, कर्ण, नकुल, वनवास, सिद्धराज, अर्जुन - विसर्जन, काबा और कर्बला, हिन्दू, गुरुकुल, आत्मोत्सर्ग, स्वतन्त्रता की बलिवेदी , मुक्ति यज्ञ, पुरुषोत्तम राम आदि खण्डकाव्यों का विश्लेषण
(ई) निष्कर्ष - खण्डकाव्यों का मूल्यांकन ।

७- सप्तम अध्याय
----0-----

गांधीवादी मुक्तकों का अध्ययन
(अ) मुक्तक की परिभाषा, स्वरूप, वर्गीकरण और विकास ।
(आ) प्रमुख कवियों की मुक्तक- कविताओं का अध्ययन - `युगाधार`, `भैरवी` `चेतना` (सोहनलाल द्विवेदी) , `आर्द्रा`, `पाथेय `, `नोआखाली में `, `मृण्मयी` (सियारामशरण गुप्त),`समर्पण` , `युगचरण,` `माता`, `मरणज्वार`, `हिम किरीटिनी` (माखनलाल चतुर्वेदी),`नीम के पत्ते `,`हुंकार `,`रेणुका` `भूमि तिलक `,`कोमलता और कवित्व`,`सामधेनी` (रामधारी सिंह दिनकर)

'हंसमाला', 'अग्निशस्य', 'रक्त चंदन', 'बहुत रात गए', (नरेन्द्र शर्मा), 'वन्दना के बोल' (हरिकृष्ण प्रेमी), 'युगवाणी', 'युगान्त', 'युगपथ', 'ग्राम्या', 'स्वर्ण किरण', 'खादी के फूल' (सुमित्रानन्दन पंत), 'मुकुल' (सुभद्रा कुमारी चौहान), 'विराम चिन्ह' (अंचल), 'रंगों में मोह' (भगवतीचरण वर्मा), 'हिमालय ने पुकारा' (नेपाली), 'धरती पर उतरो' (कमलेश), 'मुक्तामणि' (कुमुदेश), 'पारिजात' (हरिऔध), 'आवाजों के घेरे' (दुष्यन्त कुमार), 'सूत की माला', 'खादी के फूल' (बच्चन), 'पर आँखें नहीं भरीं', (सुमन) ।

(इ) निष्कर्ष

८- अष्टम अध्याय

----००-----

(अ) गीतिकाव्य और विविध

गीतिकाव्य - परिभाषा, लक्षण, विकास, 'द्वापर' की चर्चा ।

(आ) शोकगीति - 'अंजलि और अर्घ्य', 'बापू' (दिनकर)

गद्यकाव्य - श्रद्धाकण

निबन्ध काव्य - 'राजा - प्रजा'

गीतिनाट्य - 'उन्मुक्त', 'अनघ'

भक्तिकाव्य - 'बापू' (सियारामशरण गुप्त)

आदि का विस्तृत अध्ययन

(इ) निष्कर्ष

९- नवम अध्याय

(अ) कलापक्ष - गांधीजी से संबंधित महाकाव्य, खण्डकाव्य, मुक्तक काव्य तथा अन्य काव्यों का विस्तृत अध्ययन । जननायक, जगदालोक, पथिक गांधी गौरव, बापू (दिनकर), अंजलि और अर्घ्य, श्रद्धाकण, बापू (सियारामशरण गुप्त) 'खादी के फूल' - आदि का प्रतिपादन ।

(आ) काव्यों का आकार, सर्ग निर्णय, शीर्षक, विषय निर्वचन, मंगलाचरण, रस परिकल्पना, प्रकृति संबंधी विवेचना ।

(इ) अलंकार योजना -

उत्प्रेक्षा, उपमा, रूपक, श्लेष, मानवीकरण, विरोधाभास, अत्युक्ति आदि अलंकारों की योजना ।

छंद विधान -

सवैया, मिलिन्द पाद, शिखरिणी, सुन्दरी, आल्हा, मत्तगयंद, उपेन्द्र वज्रा, दोहा, शार्दूल विक्रीड़ित, वसंततिलका, कवित्त, सार, गीतिका, रोला, सरसी, हरिगीतिका, विधाता, ताटंक आदि विविध छंदों का प्रयोग ।

प्रतीक विधान -

राष्ट्रीय प्रतीकों की विशेष योजना - अवतार वाद, गांधीवादी काव्यों पर महाभारतीय तथा रामायणीय प्रभाव ।

१०- दशम अध्याय

उपसंहार - गांधीवादी कविताओं का मूल्यांकन, 'मृत्युंजयी' काव्य संकलन का सम्यक अध्ययन, गांधीवाद का भविष्य आदि ।

परिशिष्ट

सहायक ग्रंथों (हिन्दी, अंग्रेजी तथा संस्कृत), पत्र-पत्रिकाओं एवं कोशों की लंबी सूची ।

अध्याय : १

खड़ीबोली काव्य का विकास

--00--

अध्याय : १

खड़ीबोली काव्य का विकास

आधुनिक हिन्दी काव्य की वैचारिक और सामाजिक भूमिका का परिचय इस शोध- प्रबन्ध की भूमिका के रूप में देना आवश्यक जांचता है क्योंकि पूर्वाभास के बिना विषय के विकास की समुचित व्याख्या कठिन है। ` आधुनिक हिन्दी काव्य ` का ` आधुनिक ` शब्द प्रस्तुत काव्य की अधिकांश विशेषताओं की ओर इशारा करता है। `आधुनिक ` का मानी है ` आजकल की ` अर्थात् प्राचीन से भिन्न और कुछ युग- जनित विशेषताओं से युक्त। अतएव युग संबंधी विशेषताओं की भूमिका का परिचय पाने के बाद ही प्रस्तुत युग के काव्य का महत्व तथा मर्म स्पष्ट हो सकता है। इसी दृष्टि से मैं इस विचारणीय युग की पृष्ठभूमि के अवलोकन का प्रयत्न यहां कर रही हूं।

साहित्य चाहे किसी भी भाषा का हो, उसके पीछे उस युग और उसके जीवन की एक बृहत् पृष्ठभूमि अवश्य रहती है जिस युग और जीवन से प्रेरणा पाकर वह लिखा जाता है। ` जीवन की पृष्ठभूमि ही साहित्य और कविता में प्राण और प्रेरणा का रंग देती है। `[१] साहित्य - निर्माण के लिए पृष्ठभूमि अत्यंत आवश्यक लगती है। आधुनिक हिन्दी काव्य ठोस रूप से सन् १६०० के बाद में ही सशक्त होने लगता है।

- -

१: हिन्दी कविता में युगान्तर - पृ० ५

उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में भारत के स्वतंत्रता- संग्राम का सूत्रपात हुआ था। इसके प्रधान ध्येय स्वधर्म रक्षा और परतंत्रता- समाप्ति था। अपने निसर्ग प्रदत्त स्वातन्त्र्य को कपटपूर्ण ढंगों से छीने जाने के प्रयासों और राजकीय दासता की लोह- शृंखलाओं को प्रिय मातृभूमि के कंठ में डाले जाने के विघातक प्रयत्नों को असफल कर स्वराज्य की प्राप्ति की पावन इच्छा की पूर्ति हेतु ही इस दास्य- शृंखला पर किये गये प्रचण्ड प्रहार ही इस क्रांति का मूल थे।[१] इस स्वतंत्रता की कांक्षा केवल एक ही पहलू की न होकर सभी पहलुओं की थी। अंग्रेजों द्वारा भारत पर किये गये अत्याचारों को देखकर भारतीय जनता दुःखित तथा स्वराज्य के लिए आतुर हो उठी थी। विदेशी शासकों के भीषण तथा पाशविक आक्रमण ने जनता को विह्वल करने के बदले उनमें स्वतंत्रता की चेतना जगा दी। देश के चारों ओर यह पुकार गूंजने लगी कि अपने देश को स्वराज्य तथा मुक्ति दिलाना चाहिए। धर्म भेद इसमें बाधक नहीं। देश के सारे हिन्दुओं और मुसलमानों से उसके लिए सजीव और सक्षम होने का अनुरोध किया गया।

प्रथम स्वतंत्रता संग्राम ::

इस युग के संग्राम को साहित्यकारों ने भारत की स्वतंत्रता के लिए किया हुआ प्रथम संग्राम माना है।[२] इस ऐतिहासिक व स्वतंत्रता संघर्ष के कारणों पर इतिहासकार और राजनीतिज्ञ भिन्न भिन्न मत देते हैं। अंग्रेज इतिहासकारों ने इसे कुछ सिपाहियों की बगावत कहा है तो कुछ लोगों ने इसे स्वतंत्रता की चेतना का भीषण स्फोट कहा है। वस्तुतः दमित और पराजित भारत की क्रुद्ध चेतना यहां वर्षों से सुलग रही थी। स्वतंत्र भारत पर ताकत और छल- कपट से विदेशी - सत्ता की

१: १८५७ का भारतीय स्वातन्त्र्य समर - पृ० ८

2- This episode, highly important in itself , has acquired an added importence, as many Indians look upon it as the first war of national independence in India .

- History of freedom movement in India - P. 144

भाक देश- वासियों के लिए प्रिय बात नहीं हो सकती थी। यह नया शासन हर भारतीय को कांटे की तरह चुभ रहा था। अंग्रेजों ने सन् १७५७ के प्लासी युद्ध में मराठों पर विजय पायी और भारत के शासक बने। जब से यह घटना हुई तब से स्वतंत्रता प्रेमी देशवासी विदेशियों को उखाड़ देने का प्रयत्न करने लगे। मन ही मन सब यही चाहते थे। ताकत और किस्मत सत्ताधारियों के पास थीं। उन्होंने कमजोर राजाओं को ताकत से जीता। समान लोगों से समझौता किया और शक्तिशाली नरेशों को भेंट - पुरस्कार से प्रसन्न किया। जहां अपनी सत्ता के जरा भी विचलित होने की शंका उठती थी वहां शत्रु को निष्ठुरता से कुचल देने में अंग्रेज बिलकुल नहीं झिझकते थे। इसका एक स्पष्ट उदाहरण अठारह सौ सत्तावन के स्वतंत्रता संग्राम की गाथा में भी मिलता है। एक तरह से अंग्रेज शासन को बहुत से लोगों ने चुपचाप स्वीकार भी किया था। महारानी विक्टोरिया का घोषणा- पत्र भारतवासियों के लिए एक बड़ा प्रलोभन था और संसार की नजर में अंग्रेजों की नैतिकता की घोषणा भी था। इस घोषणा में कहा गया था कि भारतीय प्रजा के धर्म- विश्वास में कोई हस्तक्षेप नहीं किया जाएगा। हिन्दू और मुसलमान धर्म के भेद- भाव से एवं हिन्दू धर्म की विभिन्न शाखा- उपशाखाओं की रीति- रिवाज के कारण हिन्दुस्तान में थोड़ा बहुत द्वन्द्व तो था। इसलिए इस नई घोषणा ने लोगों के मन में विदेशियों के प्रति एक नई ममता जगा दी। फिर भी सजग भारतवासी मन ही मन जानते थे कि इन विदेशियों पर शत- प्रतिशत भरोसा रखना ठीक नहीं।

चूंकि अंग्रेज मन ही मन चाहते थे कि किसी न किसी तरह भारत पर पूर्णत: दासता का जाल बिछा देना चाहिए। इसलिए वे मौका मिलते ही अपनी सत्ता अवश्य प्रकट करते थे। भारतवासियों को नीचा देखने और दिखाने में वे हमेशा खुशी का अनुभव करते थे। इस कलुषित और कुटिल नीति के कारण देश में विद्रोही भावना प्रबल हो उठी।

सन् सत्तावन् में जन- साधारण के मन में यह विश्वास दृढ़ता- सहित जम गया कि जब तक विदेशियों की दासता में हम आबद्ध हैं तब तक वे सभी संस्थान जो आज मृतवत् हैं, चेतनाहीन व कलेवरों के तुल्य ही बने रहेंगे। -- -- पराधीनता की

अपावन श्रृंखलाओं को तोड़कर स्वदेश को स्वतंत्र करना ही इसका एकमात्र ध्येय था।"[१] अत: भारत की जनता ने इस वर्ष (१८५७) में स्वतंत्रता संग्राम की नींव डाली और यही सर्वप्रथम स्वाधीनता- संग्राम था।

भारत में ही नहीं, उसके बाहर और अंदर के सारे देशों में स्वतंत्रता की आग जल उठी। महाराष्ट्र में नाना साहब लक्ष्मीबाई स्वराज्य के लिए तलवारों से खेले थे। दिल्ली और बिठूर के राज्यों में यह संग्राम सुदृढ़ हो रहा था। मेरठ और बैरकपुर दोनों इस समर के प्रधान केंद्र रहे थे। लखनऊ में भारत की स्वराज्य- भावना जाग उठी और अनेक भित्ति पत्रक लगाये गये जिनमें भारत की स्वतंत्रता के लिए लड़ने का आह्वान किया गया था। पंजाबऔर कश्मीर में भी स्वतंत्रता- युद्ध हुआ था। अलीगढ़, बुलन्दशहर, मैनपुरी, इटावा, रुहेलखण्ड, कानपुर, अयोध्या आदि देशों में भी स्वातंत्र्य - युद्ध की घोषणा की गयी। लेकिन १८५७ का यह प्रथम संग्राम असफल हो गया।

पहला दौरा बड़ा सफल रहा और अंग्रेज कंपनी के सेवक चौंक उठे। कई गोरे सिपाही एवं कमांडर मारे गये। लगता था कि विजय जरूर नये भारतीय युद्धकर्ता युवकों पर प्रसन्न होगी। किंतु यह जोश बिलकुल अस्थायी रहा। यही नहीं, सम्मिलित नेतृत्व के अधीन बड़ी कूटनीति एवं चतुराई से शत्रुओं का सामना करना था। दुश्मन के पास गोला- बारूद की गजब की ताकत थी। देश-प्रेमी सिपाहियों के कदम उसके सामने बहुत दिनों तक मुश्किल से ही डटे रह सकते थे। सबसे मुख्य बात यह थी कि अब तक देश के अनेकों देशी नरेश अंग्रेज शासन के भक्त हो चुके थे। वे कंपनी की पूरी मदद करते थे। उनकी सहायता से कंपनी की सत्ता देश- प्रेम के जागरण को कुचलने में सफल हो गयी। यद्यपि महारानी लक्ष्मीबाई, तांत्या टोपे और अन्य कुछ वीर अपना सब कुछ स्वाहा कर गये तो भी ऐसे वीर मुट्ठी भर थे उनकी शक्ति पूर्वोक्त कारणों से शीघ्र ही तितर बितर हो गयी। कंपनी की ताकत के सामने वह टिक नहीं सकी।

- -

१: १८५७ का भारतीय स्वातंत्र्य समर - पृ० २४२

यों प्रथम- भारतीय - स्वतंत्रता संग्राम का अंत दु:खपूर्ण रहा , किंतु इसमें देश के देशप्रेमी वीरों को आगे के लिए प्रबल प्रेरणा मिली । अंग्रेजों का अत्याचार जब बढ़ता, तब देशवासियों को उन स्वर्गीय वीरात्माओं की बातें याद आतीं । लोगों के दिल में अंग्रेज सत्ता के प्रति भक्ति व प्रेम के बदले नफरत व द्वेष की भावना बढ़ती गयी । बीसवी सदी में जो देश व्यापी स्वाधीनता आंदोलन चला, वह कुचले गये स्वतंत्रता- संग्राम का पुनरुत्थान था । वही चिनगारियां अब ईंधन पाकर फिर से भड़क उठीं ।

सन् १८५७ के स्वतंत्रता- संग्राम को असफल बना देने के पश्चात् अंग्रेज कंपनी की सत्ता बहुत बढ़ी । उसने अपनी सत्ता संपूर्ण भारत पर स्थापित कर दी । ऐन मौके पर इंग्लैंड के सम्राट ने ईस्ट इंडिया कंपनी के हाथों से भारत को अपने हाथों में ले लिया । अर्थात् भारत का इंग्लैंड द्वारा शासित अधीनस्थ देश हो गया । ऐसी मजबूत हथकड़ी - बेड़ी पड़ी कि कभी न टूट सके । इस दु:खदायी नये मोड़ का स्मृति- चिह्न महारानी विक्टोरिया का घोषणा- पत्र है । इसमें यह घोषित किया गया - " प्रजा की उन्नति में शासकों की शक्ति है । प्रजा के संतोष में उनकी सुरक्षा है तथा प्रजा की कृतज्ञता में उनका पुरस्कार है । - - - शासकों की इच्छा भारत में राज्य का विस्तार करने की नहीं है । और देशी नरेशों के सम्मान तथा अधिकारियों की रक्षा की जाएगी । ईस्ट इंडिया कंपनी ने जो संधियां आदि की थीं वह ब्रिटेन के राजा को भी मान्य होंगी ।"[१]

अंग्रेजों को मालूम था कि भारत में जाति- पांति , वर्णाश्रम आदि का बड़ा महत्व है और भारतवासियों की कमजोरी भी यही है । धार्मिक स्वतंत्रता को वे सबसे बड़ी चीज मानते हैं । इसलिए विक्टोरिया महारानी की घोषणा ने बड़े मधुर शब्दों में भारतीय जनता को आश्वासन दिया । भारतीय जनता को इस पत्र पर बड़ा विश्वास था । साथ ही वह अपनी स्वतंत्रता भी खो बैठी थी ।

- -

१: भारतीय स्वातंत्र्य आन्दोलन और हिन्दी साहित्य - पृ० ८

विक्टोरिया शासन और आगे :

विक्टोरिया महारानी की घोषणा के बाद प्रथम विश्वयुद्ध तक की अर्द्ध-शती भारतीय ब्रिटिश राज के विकास का युग रही थी। इसे ब्रिटेन के पक्षपाती पूर्णत: विकास का युग मानते हैं तो दूसरे उस विकास में निहित स्वार्थ और शोषण की वृत्ति का पर्दाफाश करके बतलाते हैं कि यह तो हिंस्र साम्राज्यवाद का बढ़ता प्रभाव था। संक्षेप में उस युग के विकास और ह्रास का उल्लेख अगले प्रकरण की पृष्ठभूमि के तौर पर उपयोगी है। हम उक्त प्रकरण की चर्चा चार-पांच शीर्षकों के अंतर्गत कर सकते हैं। - आर्थिक उद्योग, शिक्षा, राजनीति, धर्म, जन-जीवन।

सामान्य स्थिति :

ब्रिटिश शासन के दिनों में यूरोप में बड़ा ही क्रान्तिकारी औद्योगिक विकास हो रहा था। रेल, जहाज, वायुयान, मोटर आदि परिवहन साधनों के विकास में लोगों के जीवन-संस्कृति, सभ्यता आदि के मानक बदल दिये। इन वस्तुओं का उत्पादन बड़े पैमाने पर यंत्रों और कारखानों में होता था। अत: भारत में भी इनका प्रयोग - उपयोग बढ़ता गया। भारतवासियों का जीवन-क्रम इन परिवहन साधनों से लाभ उठाकर विकसित होता चला। पहाड़ों - नदियों के जरिये अनेक खण्डों में बिखरे भारत के विभिन्न प्रान्त, रियासतें व राज्य अब इन परिवहन-साधनों की मदद से एकता-सूत्र में बंध सके। डाक, तार आदि वार्ता-संप्रेषण साधनों ने इस दिशा में ठोस योग दिया है। इनका विकास अवश्य उल्लेखनीय है। ये साधन औद्योगिक सभ्यता के अंग थे। अर्थात् यांत्रिक उद्योगों के सहायक और अंग के रूप में ही इनका विशेष महत्व रहा। अंग्रेज सरकार का मूल-स्वरूप और मनोवृत्ति व्यापारी ही थी। यहां से धन लूटकर मालामाल होना ही उनका मकसद था। अत: विदेशों में यंत्रों पर बनी चीजें भारत में बड़े दाम पर बेचना और वे चीजें बनाने के लिए आवश्यक कच्चा माल भारत से इंग्लैंड ले जाना - यह उनकी घोषित नीति हो गयी। उपनिवेशवाद का यह दाग कभी छूट नहीं सका है। इस नयी नीति के फलस्वरूप कई बातें भारत में अनुभव हुईं। १- भा के पुराने दस्तकार गरीब हो गये, उनकी चीजों का भाव गिर गया। २- यंत्र- निर्मित वस्तुएं विदेशों से मंगाने का लोभ

बढ़ा और सारा धन विदेश जाने लगा । ३- भारतीय वस्तुओं को घटिया मानने की गलत हीनताग्रंथि बढ़ी । ४- ब्रिटिश सरकार ने देश में कोई उद्योग प्रारंभ करने नहीं दिया ताकि एकाधिकार विदेशियों के हाथ में ही रहे । ५- आगे चलकर अपनी ही जरूरत के लिए - खासकर युद्ध के दिनों में - ब्रिटिश सरकार को देश में छोटे - मोटे कारखानों को खोलने की अनुमति देनी पड़ी ।

शिक्षा का क्रम पश्चिमी ढांचे में आधुनिकीकरण उक्त युग की ओर एक उल्लेखनीय प्रवृत्ति है । यहां पहले शिक्षा का सामान्य क्रम संस्कृत या फारसी आदि देशी भाषाओं के साहित्य, शास्त्र आदि के अध्ययन को ही प्रमुख ध्येय मानकर चलता था । नयी शिक्षा प्रणाली ने भाषा व साहित्य से भिन्न अनेक विषयों के अध्ययन का क्रम चालू किया । भाषा की दृष्टि से अंग्रेजी को विशेष महत्व दिया गया । व इसी के फल-स्वरूप हाईस्कूल, कालेज, विश्वविद्यालय आदि शैक्षणिक संस्थाओं का श्रीगणेश भारत में हुआ । इस नयी शिक्षा ने प्राचीन साहित्य शास्त्र आदि की शिक्षा को थोड़ा बहुत अपदस्थ किया , ऐसी शिक्षा के पाये हुए विद्वानों को बिलकुल मामूली बना दिया यद्यपि उनका अध्ययन और ज्ञान- राशि गहरी थी । देश की प्राचीन सांस्कृतिक गरिमा के प्रति उदासीनता भी इस नयी शिक्षा का प्रकट फल रही । किंतु समसामयिक एवं भौतिक प्रगति की दृष्टि से नयी शिक्षा प्रणाली ने भारतवासियों को मदद की । वे संसार के प्रगतिशील राष्ट्रों के जीवन-क्रम और ग्रंथ- राशि से परिचित हो सके । वे उन्नत शिक्षा के लिए विदेश जा सके । डाक्टरी , इंजीनियरी, वकालत आदि पेशों में ऊंची उपाधि और गहरी विद्वत्ता पाकर वे अपने देश की सेवा कर सकें । इसके जरिये देश की उन्नति हो सकी । साथ ही , ये शिक्षित सज्जन विदेश की स्थिति का प्रत्यक्ष अवलोकन करने से समझ सके कि भारत पराधीनता के शिकंजे में कितनी बुरी तरह जकड़ा हुआ है । हिन्दुस्तान को आजादी दिलाने की ~~अपेक्षा~~ आवश्यकता देशवासी शिक्षित लोगों के मन में अधिकाधिक महसूस होने लगी । विज्ञान के सिद्धान्तों के ज्ञान ने पुरानी दंतकथाओं को झुठला दिया और कुरीतियों - अंधविश्वासों पर से लोगों की श्रद्धा को उठा दिया । पश्चिमी शिक्षा व पश्चिमी सभ्यता के मोह के कारण यहां नवजवान - पीढ़ी में अंग्रेजियत का मोह और भारतीयता के प्रति अनादर भी जम गया । किंतु शिक्षा के

कारण सजग युवक अंग्रेजों की स्वार्थी और शोषक वृत्ति को देखकर उनसे विद्रोह करने भी तैयार हुए। नई शिक्षा का सूत्रपात करते समय उसके उन्नायक पार्श्चमीत्य शासकों ने इसकी कल्पना तक नहीं की होगी कि भारतवासी शीघ्र ही हमारे शासन से छुटकारा पाने के लिए प्रयत्नशील होंगे।

राजनीति के क्षेत्र में उक्त युग ने अंग्रेजों को प्रभुता की प्रतिष्ठा ही देखी। ईस्ट इण्डिया कंपनी यहाँ के शासकों से भिन्नता एवं समझौता करते करते अपना अधिकार फैलाती गई। जब इंग्लैंड के शासन - चक्र ने भारत को अपने अधीन बना लिया तब से एक नई शासन प्रणाली जारी हुई जो सत्ताशाही का प्रमाण थी। वाइसराय, गवर्नर, कलक्टर, और ऐसे ही शासनाधिकारियों के माध्यम से बड़े ही नियमित ढंग से शासन चला। रेसिडेंटों की कड़ी निगरानी में रियासतें भी आज़ाद नहीं रही थीं। सर्वशक्तिमान इंग्लैंड राजा भारत के सम्राट भी हो गये। यूरप में भी इंग्लैंड की प्रभुता का दबाव था। अत: १९१४ तक अर्थात् प्रथम विश्व युद्ध तक राजनीतिक क्षेत्र में केवल अंग्रेजों की ही सत्ता बढ़ी रही। इस राजनीतिक सत्ता के कारण भारतवासियों की जो अवनति हो रही थी, उन्हें जिन परेशानियों का सामना करना पड़ रहा था, उनसे भी लोग आगाह होने जा रहे थे। जहाँ तहाँ स्वतन्त्रता की पुकार उठती थी। कुछ व्यक्ति इसके कारण अंग्रेजों के क्रोध का पात्र भी बनते थे। वे शासक कठोर दण्ड से ऐसे लोगों को कुचल डालते थे जिसे देखकर सामान्य जनता भयभीत होती थी। तथापि शिक्षित समाज सम्मिलित स्वर से शासकीय सुधारों के लिए आवाज उठाता रहा। देशवासियों को अधिकाधिक पद व सेवाकार्य देने की अपील सरकार से की जाने लगी। ह्यूम के नेतृत्व में कांग्रेस की सार्वजनिक सभाओं में ऐसे प्रस्ताव आवेदन पारित करके और अनेक प्रार्थना- पत्रों, समाचार पत्रों के लेखों के द्वारा देशप्रेमी नेता अंग्रेज सरकार को नयी सुविधाएं व सुधार करने के लिए प्रेरणा देते थे। हम देश के थोड़े से आतंक-वादी वीर देशप्रेमी युवकों के बलिदान की कथा भी पढ़ चुके हैं। मगर वे तो अधिक न हो सकते थे, अंग्रेजों को विकराल दैत्याकार शासनचक्र से टक्कर लेकर वे विजयी भी नहीं हो सकते थे। तथापि इन वीरों के बलिदान पर भारतवासियों को नाज़ है।

धर्म के क्षेत्र में भारत ने प्रस्तुत युग में एक नई परिस्थिति पाई। अर्थात् जहां पहले हिन्दू - मुसलिम द्वन्द्व रहा वहां अब एक नया धर्म - ईसाई धर्म देश में पनपने लगा। इसे अंग्रेज शासकों का पूरा प्रश्रय प्राप्त था। इसके जरिये ईसाई धर्म में दीक्षित होने वालों को अनेक नई सुविधाएं व रियासतें मिलने लगीं। हिन्दू धर्म में अस्पृश्यता आदि के कारण उपजातियों के लोगों की दुर्दशा थी। वे ईसाई धर्म की स्वीकृति करने पर गौरव पाते थे। अंग्रेजों के धर्म के लोगों को स्वीकार करने की हिम्मत इन लोगों में रहती थी। अनेक नये साधन व माध्यम इस धर्म प्रचार को सुलभ थे। यूरोप, अमरीका आदि देशों ने दिल खोलकर मदद की। इस धर्म का प्रचार व प्रभाव बंगाल और केरल में सबसे अधिक जम सका। उत्तर भारत में हिन्दू धर्म व इस्लाम धर्म का ही जोर रहा। यहां आर्य समाज ने इस नये प्रवाह को रोकने का जबरदस्त प्रयत्न किया। वैसे भारत में सिक्ख धर्म, जैन धर्म, बौद्ध धर्म आदि अनेकों धर्मों का आचरण होता आया है। किंतु विवेच्य युग में हिन्दू, इस्लाम, ईसाई, सिक्ख और जैन ही यहां के मुख्य धर्म रहे। अंग्रेज शासकों ने धर्म के विषय में तटस्थता का पालन किया। तथापि वे राजनैतिक चतुर चाल के तौर पर मुसलमान लोगों को हिन्दू लोगों से अलग करने का पूरा प्रयत्न किया। यहां पहले से हिन्दू - मुसलिम वैमनस्य भी था। इससे सत्ता ने बेजोड़ फायदा उठाया। फिर भी बढ़ती हुई शिक्षा के प्रभाव से अनेकों लोग धार्मिक कट्टरता को भुलाकर मध्यवृत्ति से ही काम लेने लगे। इसीलिए अंग्रेज सत्ता के विरुद्ध स्वतंत्रता के लिए आन्दोलन करते वक्त नेताओं एवं सामान्य कोटि के लोगों ने कंधे से कंधा मिलाकर कदम बढ़ाया। अन्य धर्मों के आचार-व्यवहार का दर्शन, शिक्षा की प्रगति, सुधारवादी मनःस्थिति - इन तीनों के फल-स्वरूप प्रत्येक धर्म के अनेकों अनाचार - सरकारी कानूनों के जरिये समाप्त किये गये। लोग स्वयं भी उन्हें छोड़ने लगे। इस दृष्टि से भारत का समाज निःसन्देह उन्नति करता गया।

भारत की आर्थिक स्थिति :

सन् १८५७ की महान क्रांति के बाद भारत बड़े अरसे तक अकाल से ग्रस्त था। अनावृष्टि एवं अतिवृष्टि से खेती का नाश होता था, अन्न कम ही उत्पन्न

होता था । आर्थिक दृष्टि से भारत की अवनति इतनी कठिन और असह्य थी जो अब तक नहीं हुई थी । ' इन शासकों की पूर्ण सहानुभूति इंग्लैंड के साथ थी, न कि भारत के साथ । इंग्लैंड से बना हुआ जो माल आता था, वह मशीनों से बना होने के कारण देशी बनी हुई वस्तुओं से जल्दी बिक जाता था । '[१] इससे भारत निर्धन बनता जाता था । ईस्ट इंडिया कंपनी के समाप्ति की जगह भारत के सचिव की नियुक्ति का एक प्रबंध रखा था जो इंग्लैंड के मंत्रि- मंडल का एक सदस्य भी होता था । इसके लिए कंपनी और मंडल के बीच में आर्थिक समझौता रखा जिसका भार भारत के सिर पर था । भारत स्वतंत्रता की प्राप्ति तक इस कर्ज को चुकता रहा । यह आर्थिक अवनति बहुत बड़ा कारण हुई ।[२] फलत: सन् १८५८ के ब्रिटन के एक्ट फौर दि बेटर गवर्नमेंट आफ इंडिया ' नामक एक्ट में यह बताया गया था कि भारत का धन उसकी सीमा के बाहर व्यय नहीं किया जायगा । लेकिन उसकी अवहेलना ही की गयी थी ।

मेयो के शासनकाल में भारत में भारी दुर्भिक्ष पड़ा । कर्ज की वृद्धि, रेलों पर किये गये अपव्यय और विकेन्द्रीकरण की आयोजना आदि ने भारत की आर्थिक स्थिति को अधिक शिथिल बना दिया । सन् १८७४ में बंगाल में दुर्भिक्ष पड़ा । सन् १८७७ - ७८ में भारत में पुन: दुर्भिक्ष पड़ा । इससे देश की जनता अत्यंत रोषाकुल बनी । सन् १८७८ में लिटन ने ' वर्नाक्युलर प्रेस एक्ट ' बनाया और समाचार पत्रों की स्वाधीनता छीन ली गयी । भारत की जनता ने इस एक्ट का घोर विरोध किया । लेकिन लिटन ने नहीं माना ।

अंग्रेजों की आर्थिक नीति से समाज के उच्च वर्ग के लोगों को ही कुछ फायदा होता था । ईस्ट इंडिया कंपनी की वाणिज्य नीति से भारत की ग्राम- व्यवस्था अस्तव्यस्त हो गयी । विभिन्न प्रान्तों में कर लगाये जाने पर उसका सारा भार किसानों पर पड़ा । भारत के उद्योग - धंधों का नाश होने के

१: भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन और हिन्दी साहित्य - पृ० २५
२: आधुनिक हिन्दी साहित्य - पृ० ५७

कारण राष्ट्रीय संपत्ति की दशा भयावह हो गयी । इसके अलावा नमक - कर भी लगाया गया । वर्तमान मिलों और कारखानों में ब्रिटिश पूंजीपतियों की कूटनीति का व्यवहार हो रहा था । अपने माल की बिक्री तो यहां होती थी, साथ ही अपने देश में माल के उत्पादन को बढ़ाने की चिंता भी इनमें रहती थी । उपर्युक्त कारणों ने भारत में अनेक आर्थिक समस्याओं को जन्म दिया जिनका सुधार आसानी से न हो सकता था ।

जन- जीवन के विकास की विभिन्न दिशाओं का विवेचन ऊपर हो चुका है तथापि इस युग में हम प्राचीन युग की अपेक्षा बड़ी भारी जन- जागृति का अवलोकन कर सकते हैं । पहले भारत में खेती ही सबसे मुख्य थी । व्यापार भी था । राजा, मंत्री और उनके सिपाही - प्रत्येक छोटे- बड़े देशी राज्य के शासक थे । सामंत-वाद का जोर था । सामाजिक जीवन के मानक उसी के अनुकूल थे । परंतु विदेशी शासकों के प्रति देश की जागृति से जन मात्र जाग उठे । प्राचीन वर्णाश्रम की जगह धन, शिक्षा व पद - प्रतिष्ठा के मानक बनते गये । सामान्य कोटि के नर- नारियों को भी अपने व्यक्तित्व की महत्ता अनुभव होने लगी थी । जहां पहले ` अधम चाकरी ` का भाव थी वहां अब `सर्विस ` का महत्व बढ़ा । `सरकारी सेवा ` एक नया और सम्मानित धन्धा बन गयी । इससे अफसरशाही की नई बीमारी भी जनमी । ` बाबू ` लोग और मामूली लोग का अंतर बढ़ता चला । यह अफसरशाही अभी तक जारी रही है ।

जन - जीवन की प्रगति की दूसरी दिशा स्त्रियों की सामाजिक उन्नति में परिलक्षित होती है । पर्दा, सती, कन्यादान आदि पुराने कट्टर व्यवहार बड़ी शीघ्रता समाप्त होते चले और स्त्रियां समाज में पुरुषों की बराबरी करने लगीं । इसका विकास अब स्वतंत्र भारत में और भी होता गया है । इन मंगलाचारों के बावजूद एक बुरी बात भी यहां जमती गयी । वह है ` भारतीय और भारतीयता के प्रति उपेक्षा और एक पश्चिमी के प्रति अधिक श्रद्धा ।

राष्ट्रीय चेतना का पुनर्विकास ::-

अंग्रेजी शासन से घटित विभिन्न परिस्थितियों और घटनाओं ने देश की जनता में अंग्रेजों के प्रति असंतोष की भावना पैदा की और उनसे अपनापन की

भावना को जागृत करने में वे असमर्थ हुईं। यह भावना राष्ट्रीय चेतना की जागृति की भूमिका बन गई।[1] राष्ट्रीयता के साथ देशभक्ति का भाव भी उत्पन्न हुआ और दोनों ने पश्चिम के अनुकरण का विरोध किया। सन् १८५७ की क्रांति की असफलता ने भी जनता में राष्ट्रीयता की भावना को जागृत किया। अंग्रेजों ने अपने शासन को सुदृढ़ बनाने के लिए सामन्ती वर्ग से अपनी मित्रता स्थापित की। लेकिन भारत की जनता ने इस वर्ग से अपना विरोध प्रकट किया और इसी विरोध ने राष्ट्रीय चेतना के विकास में उपयोगी सिद्ध हुआ। स्वामी विवेकानन्द ने भारतीय राष्ट्रीय चेतना के विकास में के लिए कुछ प्रयत्न किया था। इस राष्ट्रीय भावना ने देश के स्वतंत्रता संग्राम के लिए भूमिका अदा की। डा० चौहान जी के शब्दों में - इस प्रकार विदेशी दासता से मुक्ति के साथ साथ गतानुगत रूढ़ियों, संस्कारों, अंध विश्वासों, पाखण्डों, सामाजिक कुरीतियों तथा सामाजिक प्रगति की समस्त बाधक रीति- रिवाजों से मुक्ति की चेतना ने मिलकर राष्ट्रीय मुक्ति - संघर्ष का रूप ग्रहण किया।"[2]

सन् १८५७ की क्रांति को ही भारत का प्रथम स्वतंत्रता - संग्राम माना जाता है। लेकिन वह सभी दृष्टियों से असफल निकला। इसके बाद सन् १९०५ में बंगला देश के विभाजन के विरोध में स्वदेशी आन्दोलन जो चला, वह असल में भारत- भर की स्वाधीनता का आंदोलन था। गांधी जी ने भी बताया है कि स्वाधीनता का वास्तविक जागरण भारत की जनता में बंगाला- देश के विभाजन से ही हुआ।[3] भारतीय - स्वतंत्रता- संग्राम के मुख्यत: तीन पहलू थे। -

---

१: देश की जनता उन्हें (अंग्रेजों को) विदेशी समझती रही और कभी अंग्रेजों से अपनत्व का नाता न जोड़ सकी। इस भावना ने आगे चलकर राष्ट्रीय - चेतना के उभार में बड़ी महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। - स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी काव्य पृ० ५

२: वही० पृ० ७

३: **The real awakening (of India) took place after the partition of Bengal . - History of the feedom movement in India - Vol : II - P. 131**

१- विदेशी दासता से मुक्ति, २- आर्थिक शोषण से मुक्ति और ३- प्राचीन संस्कृति और रीति-रिवाजों से मुक्ति। फलत: इस संग्राम के तीन उद्देश्य भी निकले और वे थे आजादी, समता और प्रगति। भारत के स्वतन्त्रता - आन्दोलन का विकास चार चरणों अथवा उत्थानों से होकर हुआ था। प्रथम चरण का काल सन् १६०५ से लेकर १६१० तक रहा था। सन् १६०५ के बंग - विच्छेद ने भारत की जनता की रोषाग्नि को जला डाला। सन् १६०६ में कांग्रेस ने यह घोषणा की कि उसका परम लक्ष्य स्वराज्य पाना है। इस समय कांग्रेस के दो दल थे, एक गोखले के नेतृत्व में था और दूसरा तिलक के नेतृत्व में था। सन् १८८५ में ही कांग्रेस की स्थापना हुई थी जो बाद में एक महत्वपूर्ण घटना के रूप में देशीय इतिहासों में प्रतिपादित की गयी। कांग्रेस की प्रतिष्ठा से देश की राष्ट्रीय भावना अत्यधिक तीव्र हुई। तिलक, गोखले, गांधीजी आदि महान नेताओं ने कांग्रेस के नेता- पद को अलंकृत किया था। इसके तत्वावधान में भारत के गण्यमान्य नेता - गण देश की विविध समस्याओं पर विचार करते थे।

सन् १६११ से लेकर १६२१ तक इसका दूसरा चरण माना गया है। सन् १६१४ के महायुद्ध में गांधीजी और अन्य भारतीय नेताओं ने अंग्रेजों की खूब मदद की। इसी समय रौलट एक्ट की घोषणा की गयी। इससे भारत की जनता के मन में अंग्रेजी सरकार के प्रति असंतोष और क्रोध पैदा हुआ। सन् १६१६ में रौलट एक्ट के विरुद्ध बंबई में हड़ताल हुई। लखनऊ कांग्रेस के अधिवेशन में नरम दल और गरम दल दोनों एक हुए। यह स्वाधीनता संग्राम की गति बढ़ाने में अत्यंत उपयोगी सिद्ध हुआ। इसी समय बलिदान का गीत सुनाते हुए क्रांतिकारी युवकों का आगमन राजनीति के मंच पर हुआ। तीसरे चरण में देश में मार्क्सवादी - समाजवादी दलों का आविर्भाव हुआ। कम्युनिस्ट संगठन का उद्भव भी हो चुका था। किसानों ने अपने लिए एक सभा की स्थापना करने का निश्चय किया।

चौथे चरण (सन् १६४२ - १६४५) में भारत छोड़ो ' की घोषणा देश भर में गूंजती थी। राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय दबावों ने अब तक अंग्रेजों को भारत छोड़ने के लिए विवश किया था। इस समय पाकिस्तान- हिन्दुस्तान के रूप में देश का विभाजन हो चुका। लार्ड मौंट बेटन और कांग्रेस के बीच में समझौता

हुआ और कांग्रेस के हाथ में भारत की शासन - सत्ता आयी । सन् १९४२ में पूर्ण स्वराज्य की मांग के लिए जनता सक्रिय हो उठी । फलत: सन् १९४७ पन्द्रह अगस्त को भारत स्वतन्त्र हुआ ।

गांधीजी और उनका युग :

गांधी युग का सूत्रपात सन् १९१४ के पश्चात् हुआ है ।[१] सन् १९१५ तक वे दक्षिण अफ्रीका में सत्याग्रह का पहला प्रयोग कर रहे थे । उसके बाद वे सन् १९१५ में विजयी बनकर भारत लौट आये । गांधीजी के आगमन के बारे में श्री जैनेन्द्रकुमार ने यों कहा है - " गांधी जी से एक काल का अवसान और दूसरे कल्प का आरंभ और उदय होता है ।"[२] गांधी युग के श्रीगणेश पर डा० सुधीन्द्र ने यों प्रकाश डाला है - " हंटर कमिटी की रिपोर्ट प्रकाशित होते ही गांधी जी ने राष्ट्र की भावी राजनीति का निश्चय कर लिया और वे भारत को नि:शस्त्र क्रांति की दीक्षा देने के लिए युग के नेता लोक मान्य के पास दीक्षित होने पहुंचे । लोकमान्य कहा- "यदि जनता आप की रणनीति को ग्रहण कर ले, तो मैं आप के साथ ही हूं । " और गांधी जी ने तुरंत नि:शस्त्र क्रांति (असहयोग आंदोलन) की रणनीति चलाने का संकल्प कर लिया । इस प्रकार गांधी का युग आरंभ हुआ ।"[३]

दक्षिण अफ्रीका से जब गांधीजी भारत लौटे, तब यहां की स्थिति अत्यंत दयनीय एवं अस्तव्यस्त थी । अत: उन्होंने देश का सुधार करने के लिए सन् १९२१ को अपने असहयोग आंदोलन का श्रीगणेश किया । सन् १९४७ च तक,यानी भारत के स्वतंत्र बनने तक वे देश के विविध क्षेत्रीय सुधार- संबंधी कार्य में सक्रिय रहे थे । जालियांवाला बाग के हत्याकांड के बाद गांधीजी ने राष्ट्र की बागडोर संभाल ली और ५ नवंबर १९२१ को प्रथम अहिंसात्मक राष्ट्रीय संघर्ष शुरु हुआ । असहयोग,

- -

१: आधुनिक हिन्दी कविता की भूमिका, डा० शम्भुनाथ पाण्डेय, पृ० ६६
२: अकाल पुरुष - गांधी , पृ० ३५
३: हिन्दी कविता में युगांतर - पृ० २३

विदेशी माल का बहिष्कार, सविनय अवज्ञा आन्दोलन आदि इस संघ के मुख्य कार्य थे। आगे उन्होंने देश के सुधार के लिए निम्न कार्यक्रम अपनाया। भारत के राजनीति, समाज, अर्थ, धर्म आदि सभी क्षेत्रों में उनके द्वारा सुधार- कार्य संपन्न हुआ।

राजनीतिक सुधार :-

रामायण में प्रतिपादित भगवान रामचन्द्र जी के रामराज्य के समान संपूर्ण भारत का सुधार करके उसे एक दूसरा रामराज्य के रूप में प्रस्तुत करना गांधीजी का मुख्य उद्देश्य था। अंग्रेजों के शासन से घटित विविध समस्याओं को सुलझानेके लिए भारत की राजनीति में बड़ा परिवर्तन लायें जो भारत की आजादी की सुरक्षा एवं शाश्वतता के लिए अत्यन्त आवश्यक जान पड़ा। राजनीतिक समस्याओं को सुलझाने में गांधीजी कृत सत्याग्रह अत्यन्त महत्वपूर्ण था। खेड़ा जिले में फसल खराब होने पर भी वहां की सरकार ने किसानों से लगान की मांग की थी। इससे गांधी जी क्रुद्ध हुए और इसके विरुद्ध उन्होंने सत्याग्रह किया जो बाद में सफल निकला। यह सत्याग्रह वहां के किसानों के लिए दैविक वरदान ही था। बाद में यह ' खेड़ा सत्याग्रह ' नाम से प्रसिद्ध हुआ। किसानों की भांति मजदूरों की दशा का सुधार उन्होंने किया। अहमदाबाद में मज़दूरों और मिल मालिकों के वेतन संबंधी असंतोष का समाधान, गांधी जी ने वेतन की ३५ फीसदी वृद्धि कराते हुए किया। मिल- मालिकों ने २० फीसदी देने का ही निश्चय किया था, लेकिन इसके विरुद्ध मज़दूरों ने सत्याग्रह किया। मिल- मालिक फिर भी चुप रहे। फलत: गांधी जी ने अनशन किया और मज़दूरों की कामना की पूर्ति हुई। नागपुर की पुलिस ने झण्डे सहित जुलूस को सिविल लाइन्स से जाने से रोकने के कारण गांधीजी ने झण्डा सत्याग्रह किया जो बाद में नागपुर झण्डा सत्याग्रह नाम से विदित हुआ।

देश में वर्तमान नमक- कानून के कारण जनता को आवश्यक और पर्याप्त नमक मिलने में बड़ी कठिनाई हो रही थी। इसलिए उस कानून को तोड़ने और जनता को आवश्यक नमक प्राप्त कराने के लिए १२ मार्च १९३० को गांधीजी अपने ७९ साथियों को लेकर दण्डी की कूच पर निकले और समुद्र से नमक बनाकर उस कानून को

मिटा दिया। इसे साहित्यकारों ने नमक- सत्याग्रह की संज्ञा दी। भारत की स्वतन्त्रता की घोषणा की बेला में वर्धा की कार्य- समिति में गांधी जी ने भारत - छोड़ो का एक प्रस्ताव पास किया, जिसके कारण सरकार ने उन्हें बंद किया। इसके विरुद्ध गांधीजी ने १० फरवरी १९४३ ई० से इक्कीस दिन का उपवास प्रारंभ किया। सरकार तो उन्हें तब तक छोड़ने की मनःस्थिति में न थी, जब तक प्रस्तुत प्रस्ताव वापस न लिया जाय। लेकिन गांधीजी का उपवास ही सफल हुआ। सन् १९४६ को नोआखाली में भयानक दंगे हुए और वहां के लोग भाग गये जिन पर बड़ा अत्याचार हुआ था। गांधीजी ने वहां जाकर शान्ति की स्थापना की थी।

अपने राजनीतिक सुधार में उन्होंने बलिदान को बड़ा महत्व प्रदान किया था। अब तक देशभर में रक्त लेने की ही रीति चलती थी जिससे आतंकवादी अपनी प्यास बुझाते थे। परन्तु गांधीजी ने जनता को रक्त दान की रीति का महत्व सुनाया और हमेशा बलिदान का संदेश दिया। उन्होंने यों बताया कि अगर उनके कार्यक्रम को स्वीकार किया जाएगा तो एक वर्ष के अंतर्गत भारत स्वतंत्र बनेगा। सारी जनता ने इस आह्वान को स्वीकार किया। सुमित्रानन्दन पन्त जैसे सौम्य युवकों ने भी गांधीजी के इस आह्वान को अपनाकर उनके स्वतंत्रता - संग्राम में कूद पड़ने का निश्चय किया था।

सामाजिक सुधार के क्षेत्र की नई प्रवृत्तियां :-

गांधीजी की सामाजिक सुधारवादी प्रवृत्तियों के पहले देश में कुछ ऐसी संस्थाएं मौजूद थीं जिन्होंने समाज के सुधार में बड़ा महत्वपूर्ण कार्य किया था। उन्हीं दिनों देश में राजा राममोहन राय, स्वामी दयानंद, रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द आदि ने सांस्कृतिक जागरण का नव संदेश देकर जनता को अकर्मण्यता की नींद से जगाया। फलतः ब्रह्म समाज, आर्य समाज आदि संस्थाओं की प्रतिष्ठा हुई।

ब्रह्म समाज :-

ब्रह्मसमाज की स्थापना १८२८ ई० में राजा राममोहन राय ने की है। वे १९ वीं शताब्दी में नवभारत के अग्रगण्य प्रतिनिधि थे। वे देश की प्राचीन रूढ़ियों

और अंध- विश्वासों का विरोध करते थे । भारत के सामाजिक तथा सांस्कृतिक सुधार करना उन्हें अत्यन्त आवश्यक प्रतीत हुआ । उन्नीसवीं शताब्दी के सारे आन्दोलनों ने उनके विचारों को अपनाया था । ईसाई धर्म से प्रेरित एवं मोहित होकर उन्होंने हिन्दू धर्म को भी एक नवीन भूमिका पर उतारने का प्रयास किया । ब्रह्म समाज का उद्देश्य था हिन्दुत्व का नवसंस्कार और सच्चे ईश्वर की आराधना की प्रतिष्ठा ।[१] वेदोपनिषद आदि से प्रेरणा पाकर उन्होंने जाति- भेद , अस्पृश्यता, बहुविवाह , पशुबलि , नरहत्या, सतीप्रथा आदि प्राचीन संप्रदायों का निर्मूलन करने का प्रयत्न किया । राजा राममोहनराय का आन्दोलन एक सामाजिक- धार्मिक विद्रोह ही था ।[२] अस्पृश्यता - निवारण के कार्य में ब्रह्म- समाज ने खूब प्रयत्न किया था ।

आर्य समाज :-

इसकी स्थापना स्वामी दयानन्द सरस्वती के द्वारा सन् १८७५ में हुई । इसने भी हिन्दू पुराणों और स्मृतियों इत्यादि से प्रेरणा पाकर देश का सामाजिक एवं धार्मिक सुधार करना चाहा । जाति- भेद, छुआ- छूत, बाल- विवाह, पशुहत्या, परदा आदि प्राचीन सामाजिक रूढ़ियों का नाश करना इसका मुख्य कार्य रहा था । उन्होंने अपनी सभा के अंगों को वेदों का अध्ययन करने का अनुरोध किया क्योंकि वे ही वास्तविक ज्ञान का भण्डार हैं ।[3] दयानन्द ने समझा कि ईसाई और मुसलमानों का आक्रमण हिन्दुओं पर निरंतर हो रहा था जिससे हिन्दू धर्म का पतन भी संभव था । अत: उन्होंने वैदिक प्रथाओं के आधार पर हिन्दू समाज की प्रतिष्ठा करने का निश्चय किया । दयानन्द द्वारा आयोजित सामाजिक एवं धार्मिक आन्दोलन स्वभावत: शुद्धि आन्दोलन था । इसका उद्देश्य यह था कि ऐसे हिन्दुओं का पुन: धर्मपरिवर्तन करना जिन्हें बलपूर्वक या स्वेच्छा से अन्य धर्मों में परिवर्तित कराया गया है । यह शुद्धि कार्य बाद में राजनीतिक, धार्मिक और सामाजिक एकता के लिए अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुआ ।

१: हिन्दी कविता में युगान्तर - पृ०

2. The movement of Raja Rammohan Roy " could hardly be called a movement of religious and social revolt. " - History of Freedom movement in India - Vol 1., P. 294

3. The Vedas are the books of true knowledge which the members should study . - The History of Freedom movement in India - Vol I- P. 296

उपर्युक्त इन दोनों शक्तियों के द्वारा देश में सुधारवादी प्रवृत्तियां जिस प्रकार हो रही थीं, उसी प्रकार बीसवीं शताब्दी में एक नयी शक्ति का जन्म हुआ और वह थी अहिंसावाद ।[1] इस नवीन शक्ति के जन्मदाता महात्मा गांधी जी थे । जिन सुधारकों ने देश की सुधारवादी प्रवृत्तियों को प्रारंभ किया था, उन्हें गांधी जी ने पूर्ण किया । गांधी जी के द्वारा देश में जो सामाजिक सुधार हुए वे अत्यन्त विचारणीय हैं । हिन्दू समाज में प्रचलित जाति- पांति और छुआ-छूत को इन्होंने मिटाया था, जो समाज की बड़ी कमजोरी मानी जाती थी । इस प्रथा के रहने से यह कठिनाई होती थी कि समाज में एक वर्ग की अवहेलना होती थी उन्हें किसी भी कार्य में भाग लेने या उसे संभालने का अधिकार नहीं दिया जाता था । उनका स्तर समाज के भीतर अत्यन्त नीचता तथा निम्नता का रहा था । अत: समाज में द्विवर्ग के लोगों का अस्तित्व रहता था । इसके कारण समाज में आत्मीय एकता की स्थापना असंभव थी । गांधी जी ने इस प्रथा का अन्त करना चाहा जिससे एकता हो सकती थी । उन्होंने इन अछूत लोगों को हरिजन कहकर पुकारा था और अन्य लोगों की भांति इनको सर्वाधिकार दिया था । स्वतंत्रता के बाद उन्होंने इस अछूतापन को हमेशा के लिए मिटा दिया । इन हरिजनों के सम्यक् उद्धार के लिए उन्होंने उपवास किया था । इसके फलस्वरूप हरिजनों को मन्दिर में जाने का अधिकार दिया गया । सन् १९३३ ई० में हरिजनोद्धार के लिए दौरा प्रारंभ किया गया । समाज में वर्तमान हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच के वैमनस्य तथा असंतोष को मिटाकर उनमें एकता लाने का प्रयास गांधीजी ने जो किया था, वह सफल हुआ । मद्य और मादक द्रव्यों का निषेध गांधीजी का मुख्य कार्य था । बाल-विवाहों का विरोध और विधवा - विवाहों को प्रोत्साहन गांधीजी ने किया था । हिन्दू विधवा को त्याग और पवित्रता की मूर्ति माना जाता है । लेकिन गांधीजी का मत यह था कि विधवा त्याग की मूर्ति होने के कारण उसे विधवा ही रहने देना उचित नहीं । ऐसा करने से उसकी दिव्यता का नाश हो जाता है । अत: उसे समाज में अन्य स्त्रियों की भांति समानाधिकार के साथ रहने और उसके

- -

१: हिन्दी कविता में युगान्तर - पृ० १०

सम्मान, प्रतिष्ठा आदि की रक्षा करनी चाहिए। इसी प्रकार उन्होंने सती- प्रथा, परदा आदि के विरुद्ध भी आवाज उठायी थी। स्त्रियों को भी पुरुषों के समान समाज में काम करने का अधिकार देने पर बड़ा बल दिया गया।

गांधी जी का सामाजिक दृष्टिकोण सर्वोदयपरक था। उनके समाज- सुधार का मूलमन्त्र था ' वसुधैव कुटुम्बकम् '। सबकी उन्नति वे चाहते थे, एक की नहीं। अत: उच्च- नीच, अमीर- गरीब, छूत- अछूत आदि भावनाओं को दूर करने का स्तुत्य कार्य उन्होंने किया था।

आर्थिक सुधार :-

अंग्रेजी - शासन के कारण देश में आर्थिक दशा जितनी पतित हुई थी, उसका सुधार गांधीजी ने विविध तरीकों से किया था। इनमें मुख्य विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार था। उन्होंने स्वदेशी कपड़ों को अपनाने का आह्वान जनता से किया। उनका मत यह था विदेशी कपड़ों के खरीदने और पहनने से सारा धन विदेश जाता है और उनकी आर्थिक स्थिति अवश्य सुधर जाती है। लेकिन अपने देश की स्थिति अत्यंत शोचनीय बनती है क्योंकि यहां के कपड़ों की बिक्री न होने के कारण कपड़े नष्ट हो जाते हैं, जिससे अर्थ का अर्जन संभव नहीं होता। अत: गांधी जी ने देश की नारियों से चर्खा चलाने तथा उससे बुनी हुई खादी का वस्त्र पहनने का अनुरोध किया था जिसका उद्देश्य यह भी था कि देश की सभी स्त्रियों को नौकरी मिल जाय। देश की जनता खादी का वस्त्र मात्र पहनें, यहां उत्पन्न होने वाले कपड़ों को यहीं बेचें, और इस प्रकार आर्थिक दशा को सुधारें - यही गांधीजी की राय थी। विदेशी- वस्त्र- बहिष्कार - समिति तथा स्वयं-सेवकों की उपसमितियां बनायी गयीं। प्रस्तुत समिति के अध्यक्ष गांधीजी थे। सन् १९३० को समिति की बैठक हुई जिसमें विदेशी- वस्त्र- बहिष्कार के लिए सविनय -अवज्ञा आन्दोलन किया गया। गांधी जी के आह्वान से देश की नारियों ने परदा डालना छोड़ दिया। मद्य निषेध में भी उनकी बड़ी रुचि थी।

वैज्ञानिक आविष्कारों के फल- स्वरूप निर्मित बड़े- बड़े यंत्रों

एवं मशीनों का तिरस्कार गांधीजी ने किया था। उनका मत यह था कि जनता को कदापि मशीनों व यंत्रों का गुलाम न रहना चाहिए। उन्हें अपने शरीर से कुछ परिश्रम करना चाहिए। प्रत्येक व्यक्ति को खुद प्रयत्न करना चाहिए और कुछ कमाना भी चाहिए। उन्होंने इस बात पर जोर दिया था कि हर व्यक्ति के कर्मठ होने से देश में बेकारी की समस्या भी कुछ हद तक सुधर सकती है। देश के आर्थिक सुधार में गांधी जी द्वारा प्रचलित अस्तेय और अपरिग्रह का भी महत्वपूर्ण स्थान है। दोनों देश की आर्थिक स्थिति की उन्नति में बहुत सहायक बने हैं। इसके अलावा गांधी जी ने ' ट्रस्टीशिप ' की स्थापना की थी जिससे देश की संपत्ति की सुरक्षा होती थी। विभिन्न स्रोतों से आने वाली या प्राप्त होने वाली संपत्ति इसमें सुरक्षा के साथ रखी जाती है और आवश्यकता पड़ने पर उससे ली जाती है। फलतः देश में आवश्यक धन की कमी न होने पाती।

इस प्रकार गांधी जी के द्वारा किये गये सुधारवादी कार्यों को भारत की जनता ही नहीं, समस्त विद्वानों ने भी स्वीकार किया। उनके सुधारवादी दृष्टिकोण का प्रभाव देश के जन जन पर पड़ा। उसने साहित्यकारों को भी प्रभावित किया। अतः गांधी जी के आगमन के बाद के साहित्य में उनके विवरण ने स्थान पाया। आगे उससे उनके स्वतंत्रता- आन्दोलन, स्वाधीनता- प्राप्ति, उनकी सुधारवादी प्रवृत्तियां आदि का वर्णन क्रमशः होने लगा। सच तो यह है कि कोई भी उनसे या उनकी प्रवृत्तियों से अप्रभावित नहीं रह सका। इससे ही उन्हें साहित्य में महत्वपूर्ण एवं श्रेष्ठ पद दिया गया है। उन्होंने जो किया था, सब को उन्नति, विकास, प्रगति एवं भलाई के लिए ही किया था। ~~(अतः)~~

साहित्यिक सुधार :-

आधुनिक हिन्दी काव्य (खड़ीबोली) का विकास :-

आधुनिक युग वस्तुतः परिवर्तन का युग है। इस युग में हिन्दी साहित्य के विभिन्न अंगों में कोई न कोई परिवर्तन हम देख सकते हैं। साहित्य की दृष्टि से आधुनिक युग मानवतावाद और नव- चेतना वाद का युग है। इसी युग में

नवोत्थान की लहरें साहित्य के सारे क्षेत्रों में उमड़ती रहती हैं। हिन्दी साहित्य ने अपने विषय, भाषा, शैली, आकार आदि में भारी परिवर्तन डाल दिया। विषय की दृष्टि से देखने पर पता चलता है कि संपूर्ण साहित्य का मुख्य विषय जनता और जीवन रहा है। जन- जीवन की विविध विचारधाराओं की अभिव्यक्ति का माध्यम खड़ीबोली भाषा ही रही है।

हिन्दी साहित्य में खड़ीबोली भाषा की असंख्य रचनाएं उपलब्ध हैं और अब बहुत हो रही हैं। आधुनिक युग तक यह बात अज्ञात थी कि खड़ीबोली एक ऐसी भाषा है जिसके द्वारा विचारों की सरल तथा शुद्ध अभिव्यक्ति हो सकती है। लेकिन जब इसमें साहित्यिक रचना का प्रयास हुआ, तब यह प्रमाणित हुआ कि खड़ीबोली अत्यन्त अभिव्यक्ति- कुशल भाषा है। हिन्दी साहित्य का अध्ययन करने से यह स्पष्ट होता है कि आधुनिक युग के पूर्वी युगों में खड़ीबोली का व्यवहार मात्र गद्य रचनाओं के क्षेत्र में होता था, जो शुद्ध भाषा नहीं थी। एक प्रकार की मिश्रित खड़ीबोली ही प्रयुक्त हो रही थी। ऐसी मिश्रित भाषा के उदाहरण उन युगों की रचनाओं में मिलती हैं। कुछ कवियों ने इस मिश्रित बोली के माध्यम से किंचित पद्य- पंक्तियों की रचना करने का प्रयास भी किया है। फिर भी उन्हें खड़ीबोली की रचना कह नहीं सकते। जो भी हो, खड़ीबोली का विकास प्रारंभिक युग से होकर कुछ कुछ होता आया है जो आधुनिक युग में आकर साहित्यिक भाषा के पद की अधिकारी बन गयी।

हिन्दी के खड़ीबोली काव्य के विकास - क्रम को जानने के लिए हिन्दी साहित्य के विविध कालों की चर्चा करना आवश्यक है। आदिकाल के प्रारंभ से लेकर आधुनिक काल के भारतेन्दु युग तक काव्य के क्षेत्र में ब्रजभाषा ही चलती थी। मगर इस काल- खण्ड के भीतर गद्य के क्षेत्र में खड़ीबोली का व्यवहार होता था और उस में अनेक गद्य पुस्तकों की रचना भी हुई थी। इस प्रकार एक ही काल में दो भाषाओं में साहित्यिक रचनाएं होने की बात सब को खटकने लगी। आदिकाल में खड़ीबोली कविताओं का प्रणयन होता था, किंतु वह शुद्ध खड़ीबोली न होकर मिश्रित थी। उसमें प्रांतीय भाषाओं के शब्दों का प्रयोग बहुत मात्रा में होता था। ऐसी मिश्रित भाषा की विवेचना सधुक्कड़ी भाषा के अंतर्गत होती थी। जैसे नामदेव, कबीर आदि कवियों ने इस भाषा का प्रयोग किया। इंशा अल्लाखां ने

'रानी केतकी की कहानी' में ठेठ खड़ीबोली के कुछ पद्यों का उर्दू छन्दों में प्रणयन किया है। नजीर अकबराबादी, शाह कुंदनलाल, फुन्दलाल की रचनाएं ऐसी खड़ीबोली में थीं। ये कवि कृष्णभक्त थे और उन्होंने कृष्णलीला से संबंधित बहुत से पद्य रचे। इन पद्यों की भाषा खड़ीबोली थी जो फूलना छंद में रचित थे। रीतिकाल के पिछले कुछ कवियों ने भी खड़ीबोली में दो-चार कवित्त- सवैये रचे। इस प्रकार इस युग में कवित्त- सवैये, उर्दू छंद, लावनी - ढंग का छंद आदि तीन प्रणालियां चलती थीं।

खड़ीबोली आंदोलन बहुत पहले से उठ खड़ा हुआ था। संवत् १९४५ में श्रीधर पाठक ने 'खड़ीबोली आन्दोलन' नामक एक किताब छपायी। उन्होंने इस किताब में इस बात पर अपना दुःख प्रकट किया है - "अब तक जो कविता हुई, वह तो ब्रजभाषा की थी, हिन्दी की नहीं।"[१] उनके अनुसार आधुनिक काल में मिश्र जी ने संस्कृत वृत्तों में खड़ीबोली पद्य लिखे हैं। श्रीधर पाठक ने खड़ीबोली में 'एकांतवास योगी' की रचना की। इसके अतिरिक्त उन्होंने और एक पुस्तक लिखी जो खड़ीबोली में थी, जिसका नाम 'श्रान्त पथिक' था। उन्होंने खड़ीबोली में कुछ फुटकल रचनाएं भी लिखी हैं।

कवि महन्त सीतलदास ने ही खड़ीबोली में सर्वप्रथम काव्य - रचना की। स्फुट रूप में खड़ीबोली का प्रयोग करने वाले इनके पूर्व अनेक हैं। उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध तक भाषा की दृष्टि से हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में ब्रजभाषा का एकाधिपत्य था और साथ ही साथ पंजाबी, खड़ीबोली, राजस्थानी, बुन्देलखण्डी आदि भाषाएं भी प्रयुक्त होती थीं। इस युग के वीर काव्यों का बयन संयुक्त वर्ण की शैली में होता था, राम काव्यों का प्रणयन ब्रजभाषा और खड़ीबोली के मिश्रण से होता था। फिर भी प्रधान भाषा की तौर पर ब्रज ही चलता था।

खड़ीबोली की प्रतिष्ठा :-

परंतु ब्रजभाषा की पद्य - परंपरा केवल एक परंपरा मात्र रही है। इस युग के गद्य में क्रम- बद्धता न होने के कारण यह भाषा सुगठित और

१: हिन्दी साहित्य का इतिहास- पृ० ५७२

मंजित न थी। मन के भावों और विचारों को प्रकट करने की सामर्थ्य एवं क्षमता इसमें नहीं थी। विचाराभिव्यक्ति में शब्दवाक्यादि की पुनरावृत्ति अक्सर आती थी। ब्रजभाषा गद्य की सीमाएं होती थीं। इस भाषा की अनेक गद्य- रचनाएं ऐसी थीं जिनके रचयिता अज्ञात थे ; रचनाकाल भी अनुपलब्ध था। राजस्थानी भाषा की भी यही स्थिति रही थी। ब्रजभाषा की भांति यह भी विषय- प्रतिपादन और भावाभिव्यक्ति के लिए उपयुक्त जान न पड़ी। ब्रज और राजस्थानी भाषाओं की परंपरा अधिक काल तक चल न सकी क्योंकि मध्य- प्रदेश और राजस्थान के धार्मिक और राजनीतिक पतन ने उनके विकास में बाधा उपस्थित की। इन कारणों से देश के नव- शासकों ने उन्नीसवीं शताब्दी में खड़ीबोली को मुख्यभाषा मान ली और उसे साहित्य के क्षेत्र में - पहले गद्य में, बाद में पद्य में - प्रमुखता देकर साहित्य का माध्यम बनाया। अंत में यही भाषा अपनी सरलता, अभिव्यक्ति - कुशलता, गतिशीलता, आदि के कारण राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकृत की गयी।

<u>आधुनिक काव्य में गांधीवाद की अभिव्यक्ति :-</u>

हिन्दी काव्य में आधुनिक राष्ट्रीय कविता के जन्मदाता भारतेंदु हरिश्चन्द्र हैं। हिन्दी काव्य में राष्ट्रीय भावना का प्रतिपादन आदिकाल से ही होता आ रहा था। लेकिन आधुनिक युग की राष्ट्रीय भावना और आदिकाल की राष्ट्रीय भावना में बिलकुल भिन्नता दृष्टव्य है। राजाओं और सम्राटों की वीर- गाथाओं का वर्णन ही आदिकालीन राष्ट्रीय कविता में मिलता है। बड़े बड़े युद्धों और आपसी द्वन्द्वों का वीररसात्मक चित्रण ही उस युग की राष्ट्रीयता में प्रधान था। राजाओं और वीर- युवकों की वीरता का अतिशयपूर्ण वर्णन करना दरबारी कवियों का कर्तव्य था। लेकिन आधुनिक राष्ट्रीयता गांधीजी के अहिंसावाद की राष्ट्रीयता है। इसमें युद्ध और द्वन्द्व की कोई स्थान नहीं है। यह भावना जनवादी या मानवतावादी भावना है। साधारण जनता का जीवन ही इसका मुख्य प्रतिपाद्य विषय है। अतः हिन्दी में चार प्रकार की राष्ट्रीय कविताओं का सृजन हुआ है। प्रथम प्रकार की कविताओं में मातृभूमि का देवीकरण की प्रवृत्ति विशेष रूप से दिखाई पड़ती है। दूसरे प्रकार की कविताएं भारत के अतीत का गौरवगान और वर्तमान अवनति का

विषाद- गीत दोनों से ओतप्रोत हैं। तीसरे प्रकार की कविताओं में मातृभूमि के प्रति प्रेम- व्यंजना को महत्व दिया गया है। अंतिम में या चौथे प्रकार की कविताएं सत्याग्रही के गौरगान, उत्साह और आशा का संदेश, त्याग, बलिदान और अहिंसा का उपदेश आदि से भरी पड़ी हैं।

आधुनिक हिन्दी काव्य (स्वतन्त्रता के बाद)

आधुनिक युग का प्रारंभ भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के साथ हुआ है। स्वतंत्रता- प्राप्ति के पूर्व काव्य में एक व्यापक युग- चेतना - राष्ट्रीय मुक्ति चेतना- का अस्तित्व था। इस समय काव्य में छायावाद का उन्मेष और उत्कृष्टता सब कहीं दिखाई पड़ती थीं। इस युग की कविताओं में दुःख से पीड़ित मानव के साथ आहें भरने और उनके प्रति अपनी संवेदना प्रकट करते हुए उसका मीमों करने तक की अभिव्यक्ति ही होती थी। कवियों ने राष्ट्रीय आंदोलनों में महत्वपूर्ण योगदान देते हुए, देश के भविष्य- निर्माण के भव्य चित्र उपस्थित किये थे। छायावाद के उत्तरार्द्ध में प्रगतिवादी काव्यधारा का जन्म हुआ जो जीवन को प्रगति की चेतना लेकर आयी है। लेकिन स्वतंत्रता के बाद ही प्रगतिवादी काव्य में गति आयी है। डा० रामगोपाल सिंह चौहान इसके बारे में यों बताया है - " वर्गहीन शोषणमुक्त समाज- व्यवस्था में परस्पर मानव- सहयोग के द्वारा शांति, प्रेम और सद्भाव पर आधारित मानव के सुखी- संपन्न जीवन की स्थापना का निर्माण - जिसकी प्राप्ति के लक्ष्य को लेकर हिंदी की प्रगतिवादी धारा जन्मी थी, आज वह कुछ सीमित व्यक्तियों की वस्तु नहीं रह गयी है, वरन् सारा देश वर्ग- भेद रहित शोषणमुक्त समाजवादी समाज- व्यवस्था की निर्माण- प्रक्रिया से गुजर रहा है। उस प्रक्रिया को अपने लक्ष्य तक पहुंचाना प्रगतिवाद का दायित्व है।"[१]

प्रगतिवादी युग में हिन्दी काव्य के विकास की कुछ मंजिलें प्रस्तुत थीं। कवियों का सौंदर्यमय और आनन्दवादी दृष्टिकोण जो पहले था, वह आज सामाजिक उपयोगिता के धरातल पर उतरा है। वीर, भक्ति, शृंगार आदि

१: स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी काव्य - पृ० २१

रसों से प्रणीत होने वाली कविताओं की धारा आगे बढ़कर जनता के जीवन के विस्तृत क्षेत्र में बह निकला। देश में वीरता की कसौटी बलिदान मानी गयी है। व्यष्टि-प्रधान भोग की जगह समष्टि प्रधान भोग को प्रमुखता मिली। विषय की दृष्टि से भी आधुनिक युग का काव्य प्रगतिशील है। इस युग में उद्भूत नवीन राष्ट्रीय जागरण की प्रेरणा से समाज- सुधार और सामाजिक क्रांति के यथार्थ रूपों का चित्रण होने लगा। युगीन राष्ट्रीय चेतना ने 'स्वतंत्रता का उपभोग करना मेरा अधिकार है' वाली व्यक्तिवादी चेतना उत्पन्न करती है। इस चेतना ने साहित्यकारों को भी प्रभावित किया था। "आज का साहित्यकार व्यक्ति के रूप में समाज का अंग होने के नाते आज के परिवर्तन में स्वयं जीकर और उसके स्वस्थ- अस्वस्थ प्रभावों तथा वर्तमान काल के दुर्निवार संघर्षों का स्वयं भोक्ता बनकर साहित्य में उन्हें अभिव्यक्ति दे रहा है।"[१] जनवादी विचारधारा आधुनिक युग की बड़ी देन है। साहित्य जनता के निकट आया और उनका जीवन उसकी विषय- वस्तु बनी। पूंजीवादी विचारधारा के स्थान पर समाजवाद की व्यवस्था को अपनाया गया।

स्वतंत्रता के बाद के काव्यों को व्यक्तिपरक और समाजपरक दो विभागों में अभिव्यक्त किया गया। व्यक्तिपरक काव्यों में व्यक्ति की प्रतिष्ठा का वर्णन किया जाता है। कभी यह व्यक्तिपरक होने पर भी समष्टिमूलक होता है। समाजपरक काव्यों में समाज का अस्तित्व उसका गठन, उसकी उन्नति, विकास आदि का चित्रण किया जाता है। आधुनिक काव्य का विकास भारतेंदु युग से होकर प्रगतिवाद के युग तक विभिन्न उत्थानों के क्रम में हुआ। भारतेंदु युग से द्विवेदी युग तक का काल काव्य का प्रथम उत्थान माना जाता है। इस युग में देशभक्ति की भावना को अत्यन्त विकास प्राप्त हुआ। द्विवेदी युग से छायावाद युग तक काव्य का द्वितीय उत्थान रहा है। इस समय साहित्य की भाषा खड़ीबोली रही और विषय में परिवर्तन हुआ। इस युग से लेकर आधुनिक युग तक काव्य का तृतीय उत्थान रहा है जिसमें मुक्तक गीतों की रचना की गयी है।

- -

१: स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी काव्य - पृ० ३०

हिन्दी काव्य के प्रगतिवादी युग में द्विवेदी युग से काव्य में गांधीवाद की अभिव्यक्ति प्रारंभ हुई। मुख्यत: आधुनिक युग में गांधीवाद की अभिव्यक्ति सन् १९१६ से लेकर हुई है। आधुनिक काव्यों में दृश्यमान नवीनताओं में गांधीवाद की अभिव्यक्ति अत्यंत महत्वपूर्ण एवं नवीन प्रवृत्ति रही है। गांधीजी के आगमन के बाद हिंदी कविता में उत्साह और स्फूर्ति आयी। गांधीजी के राष्ट्रीय आन्दोलनों, विविध राष्ट्रीय प्रवृत्तियों तथा उनके उत्कृष्ट सिद्धान्तों ने हिन्दी कविता को खूब प्रभावित किया। उनके सत्य, अहिंसा, सत्याग्रह, असहयोग आंदोलन आदि ने कविता में उच्च स्थान प्राप्त किया। आधुनिक काव्य में गांधीवाद की अभिव्यक्ति का विस्तृत अध्ययन आगे प्रस्तुत है। गांधीवाद के प्रतिपादन की दृष्टि से आधुनिक युग के काव्य का अपना अलग महत्व अवश्य रहता है, इसमें शंका की कोई बात नहीं।

अध्याय : २

गांधीजी का जीवन और व्यक्तित्व

अध्याय : २

गांधीजी का जीवन और व्यक्तित्व

---oo----

सन् १९४७, अगस्त पंद्रह को भारत देश अंग्रेजों की अधीनता से पूर्णतः मुक्त हुआ और उसके बाद भारत का रूप ही बदल गया। इस रूप- निर्माण के पीछे अनेकों महान एवं विशिष्ट नेताओं के हाथ क्रियाशील रहे थे। इन्हीं से आधुनिक भारत का निर्माण हुआ है। परतंत्र भारत में ऐसे अनेक नेता रहते थे जिन्होंने भारत की स्वतंत्रता के लिए प्रयत्न किया था और समरार्थ अपने को बलिदान भी किया था। स्वतन्त्रता के बाद भी इस धरती पर अनेकों नेता अवतीर्ण हुए जो भारत के भविष्य- निर्माण में लगे रहे। इस प्रकार के वीर एवं कर्मठ नेताओं के प्रयत्नों के फलस्वरूप ही आधुनिक भारत की रूप- रेखा हमें करगत हुई है।

आधुनिक भारत के विधान- मंडल में जितने ही प्रमुख व्यक्तियों ने अपने योगदान दिये हैं वे सब अविस्मरणीय हैं। अतः उनकी एक संक्षिप्त झांकी प्रस्तुत करना यहां उचित मानती हूं। भारत के नव्य- भवन में राजनीतिक नेताओं का अवतार इतना हुआ है कि उनकी गणना करना असंभव है। पराधीन भारत में राजनीति के क्षेत्र में जो अत्याचार और अनीति होती थी उनका अंत करने के लिए इन नेताओं ने अनवरत अथक प्रयत्न किया।

दादा भाई नौरोजी :-

वे ही सबसे प्रथम राजनीतिक नेता थे जिन्होंने भारत को आजादी दिलाने के लिए सेवा के पथ पर अपना पदार्पण किया था। " देश में स्वाधीनता का बीज बोने वालों में दादा भाई नौरोजी का सबसे प्रमुख है।"[१]

१: हमारे राष्ट्र- निर्माता - पृ० ६

राष्ट्रीय विचारधारा एवं महासभा के वे सर्वप्रथम निर्माता रहे । 'स्वराज्य' शब्द का आविष्कार और प्रयोग पहले पहल इन्हीं के द्वारा हुआ । बचपन में ही इनकी माता ने इन्हें स्वावलंबन, देशप्रेम आदि के पाठ पढ़ाया जिनको और प्रयोग पहले पहल इन्हीं के द्वारा हुआ । 'मार्कई' नामक एक अंग्रेजी व्यक्ति की जीवनी के अध्ययन ने उनके मन को परसेवा और परसहायता की ओर उन्मुख बनवाया ।[१] आप कालेज के अध्यापक थे और साथ ही समाज और देश- सेवा में सहर्ष भाग लेते थे । गरीब बालकों के लिए स्कूल खुलवाये और निःशुल्क शिक्षा उन्हें दी । समाज की कुटनीतियों एवं कुरीतियों को दूर करने के लिए इन्होंने अनेक संस्थाओं की स्थापना की । बाल- विवाहों की समाप्ति तथा विधवा- विवाहों की प्राप्ति के लिए उन्होंने प्रयत्न किया था । इनको अमल में लाने के उद्देश्य से उन्होंने पत्रिकाओं का प्रकाशन भी किया । इंग्लैंड जाकर आपने वहां रहने वाले भारतीयों की मदद की थी ।

नौरोजी ने सन् १८८५ में अपने सार्वजनिक कार्यों में सक्रियता से भाग लिया । वे लाहौर के कांग्रेस अधिवेशन के सभापति रहे थे । जब कांग्रेस नेता गरम और नरम दलों में विभक्त हुए तब नौरोजी ने उनसे कहा - 'आपस के झगड़े भूलकर हमें देश को समृद्ध बनाने का यत्न करना है । हम सब जाति- बिरादरी के भेदों को भूलकर देश के लिए सम्मिलित बलिदान करें, तभी हमें स्वराज्य मिल सकता है ।'[२] अपनी वृद्धावस्था में भी आप राष्ट्रीय बातों में अपने अनुयायियों का मार्ग- निर्देशन करते रहे । अतएव इनको राष्ट्रपितामह कहते हैं ।

१: उनकी जीवनी से दादा भाई ने यह भी सीखा कि मनुष्य दूसरों की सेवा करके ही जीवन को सार्थक बना सकता है, और अपने प्रति उदार व्यक्तियों का ऋण चुकाने का भी यही उपाय है कि वह अपने से कम भाग्यशाली व्यक्तियों की सहायता करें ।
- हमारे राष्ट्र- निर्माता - पृ० ७

२: हमारे राष्ट्र- निर्माता - पृ० १६

लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक :-

हमारे राष्ट्र-निर्माताओं में तिलक का स्थान अग्रणी है। क्योंकि तिलक ने ही स्वतंत्रता को 'जन्मसिद्ध अधिकार' कहकर देश के जन-मात्र में स्वाराज्य की चेतना जागृत की थी। '[1] उन्होंने ही कांग्रेस को भारत के स्वाधीनता- संग्राम के लिए राष्ट्रीय संस्था के रूप में उपकारी सिद्ध किया। बचपन में ही उनमें शांति और सुरक्षा की भावना जाग उठी थी। अत: उन्होंने देश-सेवा का पथ चुन लिया। 'तिलक के मन में शांति और सुरक्षा के स्थान पर साहस और सेवा की भावनाएं भरी थीं, अत: उन्होंने अपने लिए धन का मार्ग नहीं, सेवा का मार्ग चुना।'[2] आप राजनीतिक कृत्यों में अतीव तत्परता के साथ क्रियाशील रहे। आप कई बार कांग्रेस के मंत्रिपद पर विभूषित किये गये। प्लेग के विनाशकारी स्वरूप के प्रति अंग्रेजों की उदासीनता के विरुद्ध आप ने आवाज उठायी। सन् १९०५ के बंग- भंग के आंदोलन में भाग लेकर बंगाल का साथ दिया। उन्होंने कांग्रेस के नरम- गरम दल वाले नेताओं को मिलाने में अपनी सम्मति दी। उन्होंने इस प्रकार कहा - 'स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है।'[3] आपने भारत को आजादी दिलाने के हित कठिन परिश्रम किया था और कई बार जेल की यातनाएं फेली थीं। आप भगवद्गीता के परम भक्त हैं। आप ही पहले राष्ट्रीय नेता थे जिन्होंने देश में राष्ट्रीय नव- जागरण की नव- चेतना को जागृत किया है। देश के कल्याण के लिए आप ने त्याग और कर्तव्य की अनिवार्यता पर बल दिया।

मोतीलाल नेहरू :-

इलाहाबाद के प्रियपुत्र मोतीलाल जी १८७३ ई० में इन्ट्रेंस की परीक्षा प्रथम श्रेणी में पास करने के बाद वकालत कर रहे थे। सन् १८८८ की राष्ट्रीय सभा के चौथे अधिवेशन में वे शामिल हुए और सक्रिय भाग लेने लगे। आगे राष्ट्रीय-सभा के कई अधिवेशनों में सभापति के रूप में चुने गये थे। मोतीलाल जी बड़े समाज-

---

१: हमारे राष्ट्र- निर्माता - पृ० ३३

२: हमारे राष्ट्र निर्माता - पृ० ३५

३: वही० पृ० ४३

सुधारक रहे । अतः उन्हें सामाजिक- सम्मेलन का अध्यक्ष रहने का अवसर प्राप्त हुआ । कभी वे ' होमरूल लीग ' के सभापति भी रहे थे । गांधीजी के संपर्क से उनमें त्याग, सादगी, पवित्रता आदि गुण विशेष रूप से आ गये । गांधीजी के असहयोग आंदोलन में वे अपने राजकीय सुख- भोग को त्यागकर शामिल हुए । उनका सभापतित्व आगे कांग्रेस के अस्तित्व को बनाये रखने में सहायक सिद्ध हुआ ।

मदनमोहन मालवीय :-

सन् १८९१ में मालवीय जी ने वकालत की परीक्षा पास की और इलाहाबाद के हाई कोर्ट में वकालत करना शुरू किया । लेकिन कुछ दिनों के बाद वे वकालत का काम छोड़कर लोकसेवा में लग गये । अंग्रेजों का ' रौलट एक्ट ' भारत के सिर पर पड़ा एक बड़ा आघात था । मालवीय जी के लिए यह असाध्य असह्य लगा और उन्होंने इसका बलवत् विरोध विरोध किया । वे भी कांग्रेस के सक्रिय सदस्य थे और कांग्रेस के २३ वें अधिवेशन के वे अध्यक्ष रहे राजनीतिक सेवा के साथ हिन्दी धर्म की सेवा में मालवीय जी तन- मन से लगे रहते थे । मालवीय जी शुद्ध एवं सात्विक व्यक्ति थे । धर्म और खान- पान का ऐसा कठोर व्रत रखते थे कि विलायत में वे खाली दूध और गंगाजल पीकर ही गुजारा करते रहे । बड़ी देशभक्ति के साथ सच्ची धार्मिकता उनमें भरी थी । दीनक - जनों के प्रति उनकी ऐसी सहानुभूति थी कि वे स्वयं भूखे रहकर भूखों के लिए घर घर के द्वार पर जाकर अन्न मांगते और उनको देते थे । मालवीय जी पंडित थे, वकील थे, पत्रकार थे, नेता थे और सुधारक भी । जनता के साथ हिल- मिलकर रहने और उनके दुःखों को समझने- विचारने की वे क्षमता रखते थे । देश के अन्य प्रमुख नेताओं के बीच में विशेष महान माने जाते हैं ।

लाला लाजपति राय :-

भारत की आजादी के बारे में उन्होंने यह राय बतायी है - आजादी मांगने से नहीं मिलेगी, प्रार्थनाओं और प्रस्तावों से नहीं मिलेगी, आजादी के लिए लड़ना होगा, कुर्बानी करनी होगी और खून देना होगा । "[१] केवल वकालत का

१: हमारे राष्ट्र- निर्माता - पृ० ४३

काम आराम से रहकर धन कमाने की इच्छा उनमें नहीं थी । उन्होंने देश की सेवा करना चाहा । उन्होंने जनता को त्याग का पाठ सिखाया । वकालत करते समय उन्होंने समाज- सुधार संबंधी कार्यों में सजीवता से प्रयत्न किया था । लेकिन बाद में उनका कार्य - क्षेत्र राजनीति हो गया । सन् १८८८ के इलाहाबाद के कांग्रेस- अधिवेशन में उनका कांग्रेस से संपर्क हुआ । उन्होंने जनता के कष्टों को समझकर उन्हें आर्थिक सहायता पहुंचायी थी । वे भारत की स्वतंत्रता- प्राप्ति के जोस प्रवर्तक थे । गांधीजी के असहयोग-आंदोलन में सम्मिलित होकर उन्होंने स्वतंत्रता- प्राप्ति के लिए प्रयत्न किया । स्वतंत्र राष्ट्रीय दल , `लोक- सेवक संघ` ~~आदि के~~ आदि के वे संस्थापक थे । उनके द्वारा कई पत्रिकाएं भी प्रकाशित होती थीं जो राष्ट्रीय भावना की वजह से महत्वपूर्ण थीं । वे अपने जीवन में अहिंसा- व्रत का पालन करते थे । उनकी हत्या पंजाब- अंग्रेज सरकार की दमन- नीति के द्वारा हुई । यह बलिदान आगे श्रद्धापूर्वक स्मरण किया गया है ।

<u>गोपालकृष्ण गोखले :-</u>

नवीन भारत के नव- निर्माताओं में इनका बड़ा महत्वपूर्ण स्थान है । बचपन से ही आपने भारत के इतिहास का अध्ययन किया और भारतीय जनता के जीवन की विभिन्न दिशाओं का दिग्दर्शन किया । अठारह वर्ष के वय में उन्होंने बी० ए० पास किया और चाहते तो आप आगे पढ़ सकते । लेकिन उन्होंने एक नया मार्ग - सेवा का मार्ग - अपनाया । वे बाद में बड़े त्यागी बन गये । उन्हें इस बात का पूरा ध्यान था कि लोक- सेवा के कार्यों में सफलता पाने के लिए तप और त्यागमय जीवन ही बिताना पड़ेगा ।"[१] वे बड़े देश- प्रेमी थे । इसलिए उन्होंने देश- प्रेम की शिक्षा देने और उसे क्रियात्मक बनाने पर बल दिया । आपने कई राष्ट्रीय पत्र प्रकाशित किये थे जिनमें राजनीतिक , सामाजिक और अन्य प्रश्नों पर विचार किया गया था । अछूतोद्धार के लिए आप ने स्तुत्य कार्य किया है । भारत के स्वतन्त्रता - संग्राम में उन्होंने गांधीजी के साथ कार्य किया था । दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह में भी उन्होंने भाग लिया । वहां की भारतीय जनता की

- -

१: हमारे राष्ट्र- निर्माता , पृ० २२

दुर्दशा का निरीक्षण करते हुए उन्होंने जनता को इसके बारे में समझा दिया ।

महात्मा गांधी :-

अब अन्य भारतीय नेताओं की अपेक्षा भारत महात्मा गांधीजी का विशेष स्मरण करता आया है जिन्होंने भारत की स्वतंत्रता- प्राप्ति के लिए समस्त राष्ट्रीय क्षेत्रों में बड़ा भारी परिवर्तन करते हुए, एक क्रांति सी ही मचा दी । इसकी ओर संकेत करते हुए, सत्यकाम विद्यालंकार ने इस प्रकार कहा है - " इस चमत्कार के रहस्य को तब तक कोई समझ सकता, जब तक हम उस महान पुरुष के चमत्कारी जीवन पर दृष्टि नहीं डालते, जिसने अपने हाथों इस युग को बनाया था । यही महान पुरुष महात्मा गांधी थे । "[१]

जब वे भारत में अवतरित हुए उन्होंने जनता से यही प्रार्थना की थी - स्वावलंबी बनो, अपने उपयोगी वस्तुओं का उपार्जन अपने हाथों से करो, क्योंकि पराश्रित रहना पाप है ।"[२] गांधीजी ने देश - सुधार के लिए एक अपूर्व एवं अनोखा दृष्टिकोण लेकर यहां पदार्पण किया । वे राजनीतिज्ञ और समाज- सुधारक एक साथ थे । देश में प्रचलित विभिन्न प्रथाओं और रूढ़ियों के वे विरोधी थे । अत: इनको समाप्त करना उनका लक्ष्य बन गया । वे प्रगतिवादी और उन्मूलनवादी थे । अत: भारत की स्वाधीनता के मूल में उनका सुधारवादी दृष्टिकोण हमेशा रहा था । इस दृष्टि से उन्होंने अपने विचारों तथा मान्यताओं के सहारे भारत के राष्ट्रीय क्षेत्रों में व्यापक परिवर्तन कर दिया । डा० रघुवीर शरण के शब्दों में - संपूर्ण- प्रभुत्व संपन्न लोक- तंत्रात्मक गणराज्य आज गांधीजी के चरणों का ही प्रसाद है ।"[३]

देशबन्धु चित्तरंजन दास :-

बंगाल के प्रिय पुत्र देशबन्धु दासजी प्रारंभ में वकालत का काम ही कर रहे थे । कई वर्षों तक इसी काम में लगे रहे थे । सन् १९०५ ई० में उन्होंने

१: हमारे राष्ट्र- निर्माता - पृ० ६०-६१

२: इतिहास के देवता - पृ० २०४

३: वही० पृ० १०५

भारत की सक्रिय राजनीति में प्रवेश किया । उनका बड़ा सम्मान रहा और सन् १९१७ में कलकत्ता के बंगाल कान्फ्रेंस के अधिवेशन के सभापति चुने गये । धीरे- धीरे उन्होंने राजनैतिक कमेटियों में बराबर भाग लिया । अपनी भाषण- शक्ति और उसके प्रभाव से उन्होंने जनता में आत्म- विश्वास उत्पन्न किया । पहले वे गांधी जी के असहयोग आंदोलन के विरोधी थे । लेकिन गांधीजी से समझौता होने पर उनका मन बदल गया । बाद में वे असहयोग के पक्के समर्थकों में माने गये । उन्होंने बंगाल देश में घूम घूम कर चरखे का प्रचार किया था । अपने भाषणों, घोषणाओं तथा कार्यक्रमों से उन्होंने जनता के मन में सार्वजनिक कार्यों के प्रति मोह पैदा किया । वे स्वराज्य दल के अध्यक्ष रहे थे । उन्होंने देश में०प्रपाशविक एवं अत्यन्त क्रूर कृत्यों में काम आने वाले हिंसाओं को त्यागने का उपदेश दिया था । उनका कहना है- "---- यदि हमारे देश के राजनीतिक जीवन में हिंसा घुस गयी तो यह सदा के लिए हमारे स्वराज्य के स्वप्न का अंत कर देगी । इसलिए मैं उत्सुक हूं कि यह बुराई ज्यादा न बढ़े और हमारे देश में राजनीतिक अस्त्र के रूप में इसका सर्वथा परित्याग कर दिया जाय । "[१] चितरंजन दास जन्म के ब्राह्मण, दिल के वैष्णव थे और शरीर के क्षत्रिय । जाति- भेद का तो उन्होंने विरोध किया । भारत की स्वतंत्रता के बड़े प्रेमी थे और इसी पर उन्होंने अपना जीवन- समर्पण किया । उनकी मृत्यु पर महात्मा गांधीजी के उद्गार ये थे - " मनुष्यों में एक देव गिर गया । आज बंगाल एक विधवा के समान है । "[२]

सरदार वल्लभ भाई पटेल :

पटेल के संबंध में श्री सत्यकाम विद्यालंकार ने यों कहा है - हमारे देश को यदि सरदार पटेल जैसे वज्र पुरुष मिलते न तो हम न तो स्वाधीनता- युद्ध में विजयी होते और न ही स्वाधीनता की रक्षा में सफल होते । भारत को अराजकता और प्रांतीय विप्लवों से बचाने में सरदार ने विलक्षण प्रतिभा का परिचय

१: हमारे राष्ट्र निर्माता - पृ० ३०४

२: हमारे राष्ट्र निर्माता - पृ० ३३६

दिया था । "[1] वल्लभभाई भी वकालत की परीक्षा पास करके वकालत कर रहे थे । इसी बीच उन्हें गांधीजी का ब्रह्मचर्य पर लिखित एक लेख पढ़ने का मौका मिला । उन्होंने इसकी हंसी उड़ायी । लेकिन धीरे धीरे वे गांधीजी के विचारों पर मोहित होकर अपना सब कुछ छोड़कर उनके अनुयायी बने । वे देश की सेवा में अति तत्परता दिखाने लगे । उन्होंने इस प्रकार बताया - " देश को स्वतंत्रता तभी मिलेगी जब सैकड़ों युवक स्वार्थ त्यागकर सन्यासियों की तरह जीवन व्यतीत करने का व्रत लेकर देशसेवा के क्षेत्र में बढ़ेंगे । "[2] आगे वे कांग्रेस में शामिल हुए । उन्होंने गांधीजी के आदेशों एवं उपदेशों को ठीक पर चलने का निश्चय किया । गांधीजी के सत्याग्रह-आन्दोलन, दण्डी- यात्रा आदि में बड़ी लगन के साथ उन्होंने भाग लिया । हर काम को वे राष्ट्र के हितार्थ करना चाहते थे । गांधीजी के अनुकरण से वे बड़े अहिंसक हो गये । उनका कहना यह था - " आत्मरक्षा के हथियार उठाना हिंसा नहीं है । अहिंसा कमज़ोर का नहीं, बहादुरों का हथियार है । "[3]

गांधीजी के साथ वे बत्तीस वर्ष तक काम किया । उनकी सेवा करने में ही वे आनंद पाते थे । उनकी सेवा से संतुष्ठ होकर गांधीजी ने इस प्रकार कहा - " जेल में वल्लभ भाई ने मेरे प्रति जो स्नेह दिखाया है, उससे मुझे अपनी माता के स्नेह की याद आ जाती है । मैं नहीं जानता था कि उनके पास एक मां का दिल भी है । "[4] इस प्रकार आज के भारत का स्वरूप वल्लभभाई के द्वारा निर्मित है और राष्ट्र - निर्मातावों में उनको ऊंचा पद प्रदान किया गया है ।

सरोजिनी नायडु :-

जब वे मेट्रिकुलेशन की परीक्षा के लिए पढ़ती थीं, तब वे सिर्फ बारह वर्ष की थीं । इतनी छोटी आयु में ही उनके हृदय में आजादी प्राप्त करने की ज्वलन्त आग भभक उठी थी । वे तुरंत ही देश की स्वतंत्रता के लिए सैनिका के रूप में राजनीति में कूद पड़ीं । सन् १९१४ में वे भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की प्रतिनिधि बनकर दक्षिण अफ्रीका चली गयीं । कांग्रेस के सदस्यों में उन्हें शीघ्र ही विशेष

१: हमारे राष्ट्र- निर्माता - पृ० ७५ २: वही० पृ० ७८

३: वही० पृ० ८३ ४: वही० पृ० ८६

प्रतिष्ठा प्राप्त हुई जिससे सन् १९२६ में वे कानपुर कांग्रेस की अध्यक्षा चुनी गयीं। उन्होंने गोलमेज़ परिषद की चर्चा में सक्रियता से भाग लिया था। गांधीजी के सत्याग्रहों में भी भाग लिया और कारावास का अनुष्ठान भी किया। सन् १९४२ की स्वराज्य- क्रांति में तो वे सूरज की प्रचण्ड किरणों की तरह चमकती हुई कूद पड़ी थीं। उनका जीवन इस प्रकार की आजादी की आंधी तूफान से भरा था। वे अपनी अद्भुत प्रतिभा और साहस से राजनीति के क्षेत्र में सशक्त वीरांगना का स्वरूप प्रस्तुत कर सकीं। वास्तव में वे शक्ति, साहस एवं क्रान्ति की जीवित प्रतिमा थीं।

डा० राजेन्द्रप्रसाद :-

डा० राजेन्द्रप्रसाद भारतीय गणतंत्र के प्रथम राष्ट्रपति थे। आप भी क वकील के रूप में फूले- फले थे। चंपारन के आंदोलन के समय ही आपकी गांधीजी से प्रथम भेंट हुई। जब सन् १९१४ में बंगाल- बिहार में बाढ़ आयी, तब उन्होंने बाढ़ से पीड़ित निस्सहाय लोगों की मदद की। वे पहले से ही स्वदेशी वस्त्र पहनते थे। चंपारन में गांधीजी ने जो सर्वप्रथम सत्याग्रह रखा, उसका प्रभाव राजेन्द्र जी पर पड़ा और वे गांधीजी के भक्त बने। आगे उन्होंने उनके पद- चिह्नों पर ही चलने का निश्चय किया। खेड़ा सत्याग्रह और अन्य आंदोलनों में उन्होंने सहर्ष भाग लिया। खादी और चरखा के प्रचार में भी वे बड़े उत्सुक थे। उन्होंने गांवों में घूमकर जनता को अत्याचार और अनीति के विरुद्ध जूझने का संदेश दिया। कांग्रेस का प्रधान- मंत्री, चर्खा संघ का सभापति, केन्द्रीय सरकारी मंत्रि-मंडल के खाद्य- विभाग का मंत्री, स्वतंत्र- भारत की विधान- परिषद का अध्यक्ष आदि विभिन्न पदों को विभूषित करते हुए उन्होंने अपने कर्मठ व्यक्तित्व का परिचय दिया है। उन्होंने किसी से वैर नहीं रखा था और न उनका कोई भी वैरी रहता था। वे अत्यंत प्रतिभावान व्यक्ति थे। वे अंत तक देश के राजनीति क कार्यों में व्यस्त रहे। भारत के प्रथम राष्ट्रपति होने का गौरव उन्हें प्राप्त है।

मौलाना अबुल कलाम आज़ाद :-

जब वे विद्यार्थी थे तभी उनमें भारत की आजादी की चिंता

फूट निकली थी । धीरे धीरे यह विचार उग्र हुआ और वह आग में बदल गयी । वे आजादी के मैदान में कूद पड़े । वे कांग्रेस के कार्य से परिचित हुए तो उसमें भाग लेने लगे । देश की मुक्ति के लिए वे जूझ लड़े । जब उनका परिचय गांधीजी से हुआ, तभी से उनके साथ विविध कार्यों में लगे रहे । जेल का कष्ट भी उन्हें झेलना पड़ा । कांग्रेस के गांधीवादी आदर्श आदर्श और उद्देश्य दोनों उन्हें स्वीकार्य थे । वे सन् १९४० कांग्रेस के अध्यक्ष बने । आजाद जी हिन्दू - मुस्लिम एकता के मुसलमान समर्थक तथा प्रतीक हैं । उन्होंने हिन्दू और मुसलमानों से यों कहा - 'ए हिन्दू मुसलमानों ! अगर आपस में मेल - जोल से रहना न सीखोगे तो नष्ट हो जाओगे ।'[१] स्वतन्त्र भारत की सरकार में उन्होंने शिक्षा- मन्त्री का पद विभूषित किया था । देश के राजनीतिक ही नहीं सामाजिक, धार्मिक और साहित्यिक क्षेत्रों में भी सार्वजनिक तौर पर उन्होंने स्तुत्य कार्य किया है ।

डा० राधाकृष्णन :-

सर्वपल्लि राधाकृष्णन उन्नीसवीं शताब्दी के एक सुप्रसिद्ध भारतीय दार्शनिक हैं । भारतीय बौद्धिक जीवन के मंडल में उनका स्थान बहुत ऊंचा है । वे मानवतावादी विचारधारा के पोषक एवं पालक हैं । उनका दर्शन भारतीय वेदान्त पर आधारित है । उनके दार्शनिक विचारों पर शंकर के अद्वैतवाद और यूरोपीय विज्ञानवाद का प्रभाव पड़ा है । उनके विचारों और गांधीजी के विचारों में समता दिखाई पड़ती है । उनका कथन है - " मानव का कल्याण उस विकास - प्रक्रिया में है जिस के द्वारा मानव की आत्म- चेतना एक ज्योतिर्मयी विशाल चेतना में रूपांतरित होगी ।"[२] अत: उन्होंने हिन्दुत्व के सामाजिक पक्ष को अधिक प्रबल बनाने का प्रयास किया । आधुनिक भारतीय समाज की नव- जागृति के प्रणेताओं में प्रमुख रहे हैं । उन्होंने सामाजिक नव- जागरण में सर्व-धर्म- समन्वयवाद पर बल दिया है । यद्यपि राजनैतिक संग्राम से राधाकृष्णन का प्रत्यक्ष संबंध नहीं रहा तो भी स्वतंत्र भारत के सामाजिक एवं दार्शनिक विचारों के गठन में उन्होंने बड़ा ही महत्वपूर्ण कार्य किया ।

१: इतिहास के देवता - पृ० २३७ २: भारतीय नव-जागरण : प्रणेता तथा आंदोलन- पृ० २९५

सुभाष चन्द्र बोस :-

वे भी देशसेवा को अपनाकर भारत को आजादी प्रदान करने के लिए राजनीति में कूद पड़े। जलियांवाला बाग के नृशंस हत्याकाण्ड ने सुभाष जी के रक्त को ज्वलित किया। आपसर्वप्रथम १६ जुलाई १९२१ को बंबई में जाकर गांधीजी से मिले। उस समय राजनीति के संबंध में दोनों के बीच जो चर्चा हुई उसका प्रभाव सुभाष जी पर पड़ा। उनका मन तुरन्त बदल गया, उन्होंने कहा - 'युवकों में संयम और साधना होनी चाहिए। यह साधना सद्विचारों, प्रेम और परमार्थ द्वारा सिद्ध होती है।'[१] गांधी जी के साथ आप आन्दोलनों में भाग लिया करते थे। 'स्वराज्य दल' के आप मंत्री रहे थे। आपको जो वेतन मिलता था, उसे दरिद्रों एवं दलितों में बांटकर देते थे। वे संभवत: विद्रोही और प्रगतिवादी थे; पूर्ण स्वतन्त्रता के के पोषक थे। विदेशों में भी आपने भारतीय स्वतन्त्रता के लिए कार्य किया। उनके साथ हजारों व्यक्तियों ने भारत के मुक्तिदान की एकस्वर में घोषणा की थी। स्वाधीनता- संघर्ष की दिशा में आपके द्वारा किये हुए महान कार्यों पर भारत को गर्व है।

जयप्रकाश नारायण :-

इनका भारत के नव- निर्माताओं में ऊंचा स्थान है। वे सन् १९४२ के संग्राम के अग्रदूत रहे और इस कारण से इनका यश बड़ा ही व्यापक रहा है। उन्होंने प्रारंभ में महात्मा गांधी की अहिंसात्मक नीति पर अविश्वासी मत प्रकट किया था। लेकिन इनके असहयोग आंदोलन में उन्होंने भाग लिया था। इसके लिए उन्होंने अपनी कालेजी- पढ़ाई भी छोड़ दी थी।

भारत की आजादी के लिए जयप्रकाश जी ने अपना सर्वस्व समर्पित किया। वे मूलत: सामाजिक व्यक्ति थे, राजनीतिक नहीं। समाजवाद के विचारों के ज्ञानी थे। अत: उन्हें मजदूरों और किसानों की वास्तविक दशा का गहरा अध्ययन करने तथा उनमें राष्ट्रीय भावना जागृत करने का दायित्व दिया था। गांधी-दर्शन

१: हमारे राष्ट्र निर्माता - पृ० ६५

पैक्ट के भंग होने पर जो सत्याग्रह हुआ, उसमें वे सम्मिलित हुए। उन्होंने कई बार जेल- यात्रा की। वे समाजवाद के समर्थक हैं। कांग्रेस के विरोधी होने पर भी उन्होंने गांधीजी को सहयोग देने में कोई नीरसता प्रकट नहीं की है। अपने अध्ययन से उन्हें यह मालूम हुआ कि भारत की प्रमुख समस्या आर्थिक है। इसलिए आर्थिक सुधार से ही मजदूरों और किसानों की उन्नति हो सकती है और उससे ही भारत की स्वाधीनता बरगत होगी। " उनका विश्वास था कि स्वाधीनता तभी मिलेगी, जब किसानों और मजदूरों में क्रांति होगी।"[1] अपने इस विचार के पीछे उनको कई बार कारावास का दण्ड भोगना पड़ा। कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के वे प्रमुख बने। कई वर्ष तक वे राजनीति में कार्य करते रहे। आगे चलकर सक्रिय राजनीति से उन्होंने सन्यास स्वीकार किया। पर देशसेवा की पक्की धुन लगने के बाद जयप्रकाश जी चुप कैसे रह सकते थे ? उन्होंने संत विनोबा जी के सर्वोदय कार्यक्रम में भाग लेना प्रारंभ किया। उनकी वैयक्तिक महत्ता और सेवा की श्रेष्ठता का सबसे नया प्रमाण चंबल की घाटियों के डाकुओं के समर्पण में प्राप्त है।

गांधीजी और उनके विचारों में मतभेद होने पर भी गांधीजी उनके व्यक्तित्व से अत्यधिक प्रभावित थे। जयप्रकाश नारायण के बारे में उन्होंने यों कहा है - " जयप्रकाश समाजवाद का प्रामाणिक व्यक्ति है। समाजवाद की स्थापना पर वह अधिकार पूर्वक अपनी सम्मति दे सकता है। पश्चिमी समाजवाद के संबंध में जो जयप्रकाश नहीं जानता वह भारत का कोई भी अन्य व्यक्ति नहीं जानता। अपनी मातृभूमि को स्वतंत्र करने के लिए उसने अपना सर्वस्व भेंट कर दिया है। कार्य करने में वह कभी थकता नहीं। त्याग करने में उससे आगे कोई बढ़ नहीं सकेगा।"[2]

मौलाना मुहम्मद अली :-

अबुल कलाम आजाद की तरह कई मुसलमान भारतपुत्र भी हुए थे। उन्होंने आरंभ में स्वजाति के उद्धार के लिए कार्य किया था। मुस्लिम विश्वविद्यालय की स्थापना में उनका बड़ा योग था। राजनीतिक जीवन के प्रारंभिक दिनों में

- -

१: हमारे राष्ट्र- निर्माता - पृ० २३७ २: वही० पृ० २३५

मुहम्मद अली अंग्रेजों के प्रति बड़ी श्रद्धा और विश्वास रखते थे । लेकिन अमृतसर कांग्रेस में जनता की मनोवृत्ति में जो परिवर्तन दिखाई पड़ा उससे उनका भी मन-परिवर्तन हो गया । वे तुरंत कांग्रेस के प्रतिनिधि बने । नागपुर कांग्रेस में वे गांधीजी के सहायक के रूप में सार्वजनिक रंगमंच पर उतरे । उन्होंने हिन्दू - मुसलिम एकता की कोशिश में कई बार कारावास भोगा । भारत की स्वाधीनता के प्रति वे इतने जागरूक थे कि उन्होंने एक बार कहा - " यदि आप हमें स्वतन्त्रता न देंगे तो संभव है कि यहाँ हमारी कब्र का प्रबंध आपको करना पड़े ।"[१] मरने के कुछ क्षण पहले तक उनका हिन्दू और मुसलमानों से अनुरोध रहा था कि राष्ट्र की आजादी के लिए अपना मत-भेद भूलकर मिलकर काम करना चाहिए । अत: उनमें भारतीय आजादी की चिंता की गहराई और धार्मिक कट्टरता का गांभीर्य एक साथ मिलते हैं ।

ह्यूम साहब :-

ये तन से अंग्रेज होने पर भी मन से भारतीय थे । इनमें भारत के कल्याण की तीव्र कामना थी । सरकारी और गैर-सरकारी तौर पर इन्होंने भारत की भलाई के लिए प्रशंसनीय कार्य किये । भारत की सिविल सर्विस में इन्होंने अनेकों पदों को सुशोभित किया था । इन्होंने यह घोषणा की - " सरकार तलवार की जोर से अपनी सत्ता भले ही कायम कर ले, किंतु स्वतंत्र और सभ्य सरकार की पायदारी और स्थायित्व तो इसी में है कि प्रजा के ज्ञान की वृद्धि की जाय और उसमें सरकार की अच्छाइयों की कदर करने की नैतिक और बौद्धिक योग्यता पैदा की जाय ।"[२] कांग्रेस के स्थापक के रूप में सर अलन ह्यूम विख्यात हैं ।

फिरोजशाह मेहता :-

जब कांग्रेस की स्थापना की गई तब से इनका कांग्रेस से संपर्क रहा था । कांग्रेस के कार्यक्रमों में वे अतीव तत्परता के साथ भाग लेते थे । कलकत्ता के कांग्रेस अधिवेशन में वे सभापति रहे । उनका अस्तित्व कांग्रेस को बहुत शक्ति एवं

१: हमारे राष्ट्र के निर्माता - पृ० ३५६
२: संक्षिप्त कांग्रेस का इतिहास - पृ० १६

ओज प्रदान करता था। कुछ दिन तक लाहौर कांग्रेस के सभापति रहे थे। बड़े स्वतन्त्रता प्रेमी तथा कर्मठ मेहता भी स्वाधीनता- आंदोलन के प्रमुख सेनानी थे।

स्वाधीनता संग्राम के क्षेत्र पर गांधीजी के पांव रखने के बाद उसकी दशा - दिशा उग्र निकली। किंतु प्रारंभ में देशप्रेमी भारतीयों ने जहां तहां कुछ एसोसियन ही शुरू किये थे। इनका काम था भारतवासियों के लिए विदेशी सरकार से अधिकाधिक सुविधाएं और रियायतें मांगना। अंग्रेजों की न्यायप्रियता और सुधारवाद पर उन्हें भरोसा था। अत: उन्नीसवीं सदी के अंत और बीसवीं सदी के प्रारंभ में कई सुधारक देशसेवा के क्षेत्र में नजर आये।

आनन्दमोहन बसु :-

वे एक सामाजिक और धार्मिक सुधारक थे। कुल- समाज की प्रगति के लिए उन्होंने सब कुछ किया था। वे इंडियन एसोसिएशन के मंत्री थे। सन् १८९८ में वे मद्रास कांग्रेस- अधिवेशन के सभापति चुने गये। इसमें उन्होंने जनता से देश-सेवा करने का अनुरोध किया। कांग्रेस की उन्नति के लिए उनका अस्तित्व अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुआ था। उनके भाषणों ने जनता में देश- प्रेम उत्पन्न किया और उन्हें देश- सेवा की प्रेरणा प्रदान की।

सुरेन्द्रनाथ बनर्जी :-

भारत के सुप्रसिद्ध राजनीतिज्ञों में इनका महत्वपूर्ण स्थान रहा था। लगभग ४० साल तक इन्होंने कांग्रेस में काम किया था। वे प्रथमत: सन् १८९५ में कांग्रेस के सभापति के रूप में भूषित किये गये। दूसरी बार सन् १९०२ में वे पुन: कांग्रेस के सभापति चुने गये। उन्होंने इस बात की ललकार की थी कि अंग्रेजों की गति के अनुसार भारत की जनता को अत्यन्त आवश्यकता के साथ कुछ प्रयत्न करना चाहिए। कांग्रेस की विभिन्न समस्याओं को सुलझाने में उनमें बड़ी दक्षता थी। भाषण- कला में वे अप्रतिम आचार्य थे। वे बड़े देश भक्त और भारत की स्वाधीनता के कांक्षी रहे।

दीनशा एदलजी वाचा :-

पारसी समाज के सदस्य श्री वाचा अन्य लोगों की तरह प्रारंभ में अंग्रेजों के प्रशंसक थे। इ उन्होंने पहले अंग्रेजों की सहायता की थी और विदेशी सरकार को बुद्धि पर काफी ध्यान दिया था। यद्यपि उसके कारण भारत गरीबी की ओर गतिशील हो रहा था। इसी नाते उन्होंने कांग्रेस की नीतियाँ ब० का विरोध किया था। लेकिन बाद में उनका मनोविचार बदल गया। वे कांग्रेस के पक्षधर सिद्ध हुए। सन् १९०१ में वे कांग्रेस के सभापति चुने गये। तब से उन्होंने अंग्रेजों की अनीति पर अपनी विरोधी भावना प्रकट की। सन् १८९६ से १९१३ तक वे कांग्रेस के प्रधान-मंत्री भी रहे। उस समय वे वे भारत की उन्नति के लिए अत्यंत सराहनीय कार्य कर सके। आगे महात्मा गांधी जी के जीवन और व्यक्तित्व पर विस्तृत अध्ययन होगा जिसका इस प्रबंध - विषय से संबंध रहता है।

जीवन और व्यक्तित्व :-

महात्मा मोहनदास करमचंद गांधी एक ऐसे महापुरुष थे, जिनका स्मरण समस्त भारतखण्ड करता रहता है।[१] उनकी महत्ता एवं लोक- प्रियता को जानने के लिए उनके जीवन और व्यक्तित्व पर प्रकाश डालना चाहिए।

जीवन :-

बालक गांधी का जन्म २ अक्तूबर १८६९ को पोरबंदर नामक गांव में हुआ।[२] उनका बचपन पोरबंदर की सुंदर प्रकृति की गोद में बीता। उनके पिता करमचंद गांधी थे और माता पुतली बाई। सात वर्ष की उम्र में गांधीजी को राजकोट की ग्रामशाला में पढ़ाई के लिए भेजा गया। इसके बाद उनको उपनगर की

- -

१: I am one of those who believe that we can not forget except at our own peril, the life and teachings of Gandhiji, which are in essence so fundamental, so noble and so basic to our way of life. - Mahatma @ Gandhi -100 years - P. 62

2. Gandhi was born in the ancient port pf Porbandar with the sound of the sea in his ears.
-The making of Mahatma - P. 12

शाला में और वहां से हाईस्कूल में भेज दिया गया । गांधीजी ने सन् १८८७ में मैट्रिक की परीक्षा पास कर लिया । आगे वे भावनगर के शामलदास कालेज में ऊपरी शिक्षा के लिए शामिल हो गये । इसी समय एक बार गांधीजी के घर पर एक विद्वान ने आकर कहा कि उनको वकालत की शिक्षा के लिए विलायत भेजना चाहिए । अंत में गांधीजी के पारिवारिक जन इससे सहमत हुए और उन्होंने विलायत जाने की तैयारी की । गांधीजी ने विलायत पहुंचकर बारिस्टरी की पढ़ाई शुरू की । सन् १८९१ में उन्होंने परीक्षा पास की और वे बारिस्टर हुए ।

गांधीजी के जीवन ने हमें जीने की नई राह दिखाई है । उनका जीवन, जीवन- मार्ग, कार्य- कलाप सब किसी भी भीषण स्थिति अथवा ललकार का सामना कर सकते थे । उन्होंने बताया था कि अगर कोई जीवन में कोई संतोष चाहता है तो उसे सत्य और अहिंसा को अपनाना चाहिए ।[1] उन्होंने मानव के संयुक्त तथा समस्त जीवन में प्रवेश करने का प्रयास किया है, जीवन के किसी एक खण्ड या भाग में नहीं ।[2] जिन धार्मिक तत्वों पर गांधीजी को विश्वास था, और जिनका व्यवहार जन- जीवन में सफलता के साथ हो चुका है था, उनके लिए गांधीजी- जीवन ही स्पष्ट उदाहरण है । गांधीजी का जीवन आद्यन्त अनुसन्धानात्मक रहा है।[3] उनके जीवन के बारे में श्री रामचन्द्रजी ने भी यही कहा है ।[4]

---

1. Gandhi said that man must pursue truth and non- violence in life if he wants inner contentment - Mahatma Gandhi -100 Years- P.67
2. He never approached human life in fragments or segments- - Mahatma Gandhi 100 years. P. 94
3. Gandhiji's life and work were an unceasing quest, a quest for truth, for his concept of morality, for specific methods of political stuggle, and for philosophical principles. - Mahatma Gandhi -100 years - P.362
4. Gandhiji's life was one long andceaseless saga of endeavour in which he added, bit by bit and piece by piece, to his stature ending up in the ever-advancing fulness of his total personality .

   - Mahatma Gandhi - 100 years - P. 313-314

गांधीजी ने बिलकुल सादगी और पवित्रता से युक्त जीवन ही बिताया था । मानव- जीवन के सामाजिक, आर्थिक आदि क्षेत्रों में भी पवित्रता लाने का प्रयत्न किया । उनका जीवन सर्वजनहिताय तथा सर्वभवमंगलाय रहा था । 'गांधीजी का जीवन जैसे उतना अपना न था, अत: बिखरा और बंटा न था; जितना भगवान का था । उसे एक लोकोत्तर लगन में पिरोया हुआ था । मानो एक सिद्धान्त, एक जीवन- नीति, एक जीवन- दर्शन का वह प्रयोग मात्र था, उसका स्पष्टीकरण, चित्रीकरण था ।'[१] गांधीजी ने जीवन के संयमय होने और फल-स्वरूप मृत्यु - लाभ होने पर बल दिया है ।

उनका जीवन अधिकत: राष्ट्रीय रहा है । अपने जीवन का अधिकांश समय उन्होंने राजनीति के क्षेत्र में बिताया । इसका कारण यह है कि वे बहुत पहले ही राजनीति में शामिल हो चुके थे । उनका जीवन कर्मरत था । अत: उन्होंने कर्महीन अथवा निष्क्रिय जीवन का विरोध किया । उनका जीवन जटिल न होकर, सहज एवं स्पष्ट था ; शुद्ध एवं पवित्र था । उनके जीवन के मूल में दो गुण-तत्व विद्यमान थे और वे थे श्रम और प्रेम । अत: वह अदम्य शक्ति का रहा था । सत्य, अहिंसा, चर्खा, धर्म, खादी आदि उनके जीवन के परम-प्रधान अंग थे जो उनके जीवन को सफल बनाने में सहायक सिद्ध हुए । उनके जीवन का साहित्यिक एवं ऐतिहासिक महत्व भी बहुत रहा है । ' गांधीजी का जीवन उनके सामने था, जो आदि से अंत तक उसके सफल अमल का आलेख था ।'[२]

गांधी परिवार :-

गांधीजी का गृह- परिवार बहुत विस्तृत था । उनके भाई और बहनें थे । गांधीजी व उनमें सबसे छोटे थे । गांधी- परिवार के लोग कट्टर वैष्णव थे । उनके माता- पिता हमेशा वैष्णव मंदिर में जाया करते थे । वे शिव और राम की उपासना भी करते थे । वे हिन्दू धर्म पर भरोसा रखते थे ।[३] अन्य धर्मों के

- -

१: अकाल पुरुष गांधी - पृ० ५० २: वही० पृ० २४३

३: He belonged to a Hindu Vaishnava Family influenced to some extent by Jainism - Mahatma Gandhi -100 Years. P. 201

प्रति उनमें घृणा नहीं थी। उनके यहां रामायण, गीता आदि ग्रंथों का पाठ प्रतिदिन होता था। गांधीजी के परिवार के जन बड़े ईश्वर- भक्त, कृत्य- निष्ठ एवं धर्मपरायण थे। इन कारणों से वे मांसाहार, मद्यपान आदि बुरी आदतों के विरोधी थे और ऐसी बुराइयों से सदा दूर रहते थे।

विवाह :-

जब गांधी जी हाईस्कूल में पढ़ते थे तब वे बारह वर्ष के थे। तेरह साल की वय में उनका विवाह कस्तूरबाई के साथ संपन्न हुआ। बहुत ही छोटी उम्र में गांधीजी यों दांपत्य- सूत्र में बांधे गये।

दिनचर्या :-

गांधीजी की दिन-चर्या में एक क्रम रहा था। जो कार्य जिस समय में करना है, वैसे ही वे करते थे। वे काम करते समय दूसरे काम की ओर उनका मन बहकता नहीं था। अपने काम में वे बड़ी सावधानी रखते थे।

गांधी जी प्राय: चार बजे उठते थे। हाथ-मुंह धोकर प्रार्थना करते थे। सात बजे वे नाश्ता कर लेते थे। उसके बाद कुछ समय टहल कर काम में लगते थे। नौ बजने पर तेल मालिश करके पुन: स्नान कर लेते थे। उसके बाद हल्की नींद लेकर दो बजे उठते थे। शौचादि कर्म के बाद पेट पर पट्टी (मिट्टी की) लगाकर आराम करते थे। लेटे - लेटे भी वे काम करते थे। चार बजे चर्खा कातना शुरू होता था। फिर लिखने - पढ़ने के काम में प्रवृत्त हो जाते। लगभग पांच बजते ही शाम का भोजन होता था, फिर टहलते थे। सात बजे शाम की प्रार्थना होती थी। बाद में कुछ काम करते थे। नौ साढ़े नौ बजे वे सोते थे। आवश्यकता पड़ने पर रात को दो बजे उठकर काम करते थे। जब नींद आती तब वे सो जाते। इसमें समय की कोई व्यवस्था नहीं रहती थी। वे केवल पंद्रह मिनट ही सोते थे चाहे जितना शीघ्र लेट जाते, चाहे जितनी देर से।

खानपान :-

गांधीजी की भोजन- विधा अत्यंत विचित्र थी। एक साधारण

आदमी के भोजन से उनका भोजन बिलकुल भिन्न था। गांधीजी बहुत कम खाते थे। वह सीधा-सादा था। वे दूध का परित्याग करके सिर्फ मूंगफली और गुड़ ही खाते थे। वे रोज बादाम भी खाते थे। रोटी और खजूर भी खाया करते थे। कुछ दिन के बाद उन्होंने रोटी त्याग दी। इस प्रकार उनके भोजन में एक प्रकार का रद्दोबदल चलता रहता था। जमाने के साथ वे अपने भोजन में भी परिवर्तन लाया करते थे। कुछ दिनों तक नीम की कच्ची पत्तियां और इमली आदि का प्रयोग होता था। किन्तु बाद में उन्होंने उन्हें भी त्याग दिया। अब तो वे खजूरी, सिकी फली, रूखी रोटी, उबला हुआ साग, गुड़, लहसुन और फल खाते थे। अपने भोजन में उन्होंने सोड़ा का व्यवहार किया था। एक दिन पांच से अधिक चीज वे नहीं खाते थे। यही उनकी आहार-संबंधी बात थी।

वेशभूषा :-

गांधीजी के वस्त्रधारण में सीधापन लक्षित होता है। आडंबर उन्हें बिलकुल पसंद न था। अत: अत्यंत मामूली ढंग से ही वे कपड़ों का प्रयोग करते थे। गांधी जी पहले धोती और कुर्ता पहनते थे, सिरपर गांधी टोपी लगाते थे। अपनी युवावस्था में वे पाजामा और कोट पहना करते थे। वे बिलकुल खादी के बनाये हुए ही धारण करते थे। पर जब उन्होंने देश की दरिद्रता को अपनी आंखों से देखा, तब से उसको मिटाने के उद्देश्य से घुटनों तक ही वस्त्र पहनने लगे थे। इस कारण से वे काव्य जगत में ` अर्द्ध- नग्न फकीर ` बन गये। अधिकांश कवियों ने अपने काव्यों में इस रूप के वर्णन करने का प्रयास किया है। अपने जीवान्त तक यही रूप जारी रहा था।

विनोद :-

गांधीजी में विनोद के लिए कोई भी कार्य दिखाई नहीं पड़ता। वे अत्यन्त लजीले व्यक्ति थे। अत: वे खेल- कूदों में कभी भी भाग न लेते थे। खेल-कूद के प्रति उनमें एक प्रकार की अरुचि थी। इस अरुचि का कारण था उनकी पितृसेवा। इसके अतिरिक्त उनमें हवा खाने की आदत पड़ गयी थी। इसी में वे आनन्द लूटना चाहते थे। उनकी पितृभक्ति इतनी तीव्र थी कि वे एक क्षण भी अपने पिता की

सेवा किये बिना नहीं रह सकते थे। इसलिए कि कसरत अनिवार्य होने पर भी वे स्कूल की छुट्टी होते ही पिता की सेवा- सुश्रुषा के लिए घर दौड़ जाते थे। पुस्तकें पढ़ने में उन्हें बड़ा मज़ा आता था। वे साहित्य के आस्वादक थे। कितनी ही पुस्तकों पर वे सम्मति देते थे। वे विविध- विषय संबंधी किताबें पढ़ा करते थे। पुस्तक - पाठ और ईश्वर - सेवा में वे सुख प्राप्त कर सकते थे। यही उनका विनोद भी था। परंतु किसी भी गंभीर परिस्थिति में मन को हलका बना लेने की शक्ति उनमें थी। उनके छोटे विनोदी वाक्य लाजवाब थे।

जीवन- दर्शन और नीति :-

गांधीजी का जीवन- दर्शन सर्व-समन्वय- मंगलार्थ भावनाओं से परिपूर्ण था। " जीवन एक यज्ञ है और मृत्यु को भी यज्ञ के रूप में ही आना है। मृत्यु जीवन के अनुरूप ही एक बलिदान हो। तमाम जीवन ही बलि है। धूप की भांति वह पवित्र और कृतार्थ भाव से उसको होम दिया जाय, यही है सच्ची जीवन-पद्धति।"[१] गांधीजी का जीवन और मृत्यु इसकी सच्ची व्याख्या थी।

उनके जीवन- दर्शन के मूल में यही उद्देश्य निहित था कि गरीबों के साथ संपूर्ण समझौता कर लें।[२] वस्तुत: गांधीजी का संपूर्ण जीवन दार्शनिक ग्रंथों पर आधारित था। वे कट्टर वैष्णव थे, आस्तिक थे और भगवान रामचन्द्र जी के परम भक्त भी। उनके दर्शन पर रामायण और गीता का प्रभाव पड़ा है। उन्होंने अपने जीवन को सर्व- समन्वयात्मक रूप प्रदान करने की प्रेरणा इन्हीं से प्राप्त की। अत: उनके दर्शन की विविधता में एकता का गुंजार सुनाई पड़ता है। गांधीजी में जनता के जीवन की उन्नति और कल्याण की प्रबल आशा है। अत: उन्होंने अपने जीवन को ही कि इसी की सिद्धि में अर्पित किया। उन्होंने जन- जीवन में समन्वयकारी

- -

१: अकाल पुरुष गांधी - पृ० ३२-३३

२: "His aim was complete identification with the poorest of mankind , longing to live no better than they . "

- Mahatma Gandhi -100 Years - P. 6

मानववाद की प्रतिष्ठा की, जो पूंजीवादी साम्राज्यवाद के विरुद्ध का विद्रोह माना जाता है। वे भगवद्गीता के "कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन" श्लोक के पोषक तथा प्रतिष्ठापक थे। कर्म के बिना सब अनर्थ एवं शून्य हैं - यही वे कहा करते थे। श्री उ थां (यू थान्ट) ने गांधीजी के दर्शन पर कुछ प्रकाश डाला है।[१]

जीवन- संदेश :-

गांधीजी ने संसार को अनेक संदेश दिये हैं। उनका जीवन ही एक महान संदेश माना जाय तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। श्रीमती इन्दिरा गांधी ने कहा है कि उनके वचनों से बढ़कर उनका जीवन ही सन्देश था।[२] उन्होंने शान्ति, सत्य, अहिंसा, धार्मिक एकता, आत्मशुद्धि आदि के बारे में अमूल्य संदेश दिये हैं। उन्होंने जनता को जो महान संदेश दिया है, वह है निर्भयता का। उनका कथन यही था कि किसी से विरोध प्रकट न करना, हिंसा का बदला हिंसा से न लेना।[३] वे जनता से यही बताते थे कि "धीरज धरो, निर्भय रहो।"[४] गांधीजी ने मानव के बीच में पारस्परिक संबंध स्थापित करने के लिए सत्य और अहिंसा का संदेश भी प्रस्तुत किया जो उनके मानसिक गठन में सहायक सिद्ध हुआ। उनका संदेश एकदेश या राष्ट्र, एक मनुष्य या प्राणी, एक काल या एक युग तक सीमित न रहकर समस्त संसार में व्याप्त है और सबके द्वारा स्वीकरणीय भी।[५] उनका संदेश ईश्वर- भजन एवं प्रार्थना एवं

---

1. Gandhiji's philosophy to me, has a meaning and a significance far beyond the confines of his country or of his time .
 - Mahatma Gandhi -100 years-P.373-374

2. More than his words, his life was his message .
 - Ibid . P. 90

3. Do not resist , do not in any case answer violence with violence.
 - Ibid .P. 268

4. For Gandhiji's message to his people was the message of abhaya, fearlessness and fortitude in pursuing the path of duty.
 - Ibid .P. 269

5. What Gandhiji said and did was not for an age or for the people of India alone, his message has relevance for all time and for all mankind .
 - Ibid P. 62

उपासना से उद्भूत भी है । उन्होंने अपनी मृत्यु के पहले इस छंद का उच्चारण करना चाहा ; इसलिए कि वह समस्त मानव के ये संदेशपूर्ण उपदेश हो -

असतोमासद्गमय ।
तमसोमाज्योतिर्गमय ।।[१]

अपने अन्तिम क्षणों में गांधीजी यही चाहते थे कि जनता अपने इस संदेश का परामर्श करे और उसे अपने जीवन में पूर्णतः व्यवहृत करें ।

व्यक्तित्व :-

गांधीजी के व्यक्तित्व पर उनके माता- पिता के चरित्रों का विशेष प्रभाव पड़ा है । इन्हीं के द्वारा उनके व्यक्तित्व का विकास हुआ । आगे चलकर यह व्यक्तित्व इतना अधिक विकसित हुआ कि वह अखण्ड विश्व के द्वारा सराहनीय बन गया । उनके व्यक्तित्व की विचित्र विशेषताओं से आकृष्ट होकर अनेक विद्वानों ने उसकी प्रशंसा की है । गांधीजी का अपना जीवित व्यक्तित्व रहता था जो सबके लिए प्रियकर था ।[२] गांधीजी ने अपने व्यक्तित्व को स्वयं बनाया है और उसका नवीकरण भी किया है ।[३]

गांधीजी के व्यक्तित्व पर प्रकाश डालने के लिए उसके विभिन्न पहलुओं के विश्लेषण की आवश्यकता है । उनके व्यक्तित्व के विभिन्न पहलु होते हैं ।[४] वे उनके राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक और दार्शनिक व्यक्तित्वों में विभाजित किये

- -

1. " Lead me from darkness into light, from untruth to truth . "
   - Mahatma Gandhi -100 Years - P. 284

2. Mahatma Gandhi's personality was real and lively and endearing.
   - Ibid - P. 24

3. His thought and speech expressed his whole personality and his personality was not an accident of nature, or a product of inherited culture, it had been fashioned by himself in accordence with a moral design.
   - Ibid -P-124

4. Gandhiji was a many sided personality .
   - Ibid P. 313

जा सकती हैं ।

राजनीतिक व्यक्तित्व :-

राजनीति के क्षेत्र में गांधीजी ने पहले पहल तब पदार्पण किया जब कि वे दक्षिण अफ्रीका में रहते थे । राजनीति के क्षेत्र में महात्मा जी ने सर्वप्रथम दक्षिण अफ्रीका में प्रवेश किया ।"[१] इसका कारण वहां की भारतीय जनता पर किया जाने वाला अत्याचार और अनीति ही था । " उनके अनुसार उद्देश्य अथवा ध्येय और राह अथवा उपाय दोनों को सच्चा सच्चा होना चाहिए । अच्छे उद्देश्य के लिए बुरे साधनों का सहारा लेने की बात समर्थन के लायक नहीं है । राजनीतिक क्षेत्र में गांधी- नीति की यही सबसे मूल बात है ।"[२] दक्षिण अफ्रीका में रहने वाली भारतीय जनता की रक्षा के लिए गांधीजी ने सत्याग्रह किया । राजनीति में तिलक- युग की समाप्ति पर गांधी- युग का आरंभ हुआ है । उनका राजनीतिक व्यक्तित्व अत्यंत क्रियाशील रहा है । अंग्रेजों की अधीनता के पाश में बद्ध भारत देश को मुक्ति दिलाना ही गांधीजी का लक्ष्य था ।

दक्षिण अफ्रीका से वे सन् १९१५ में भारत लौट आये और सन् १९२० में राजनीति के क्षेत्र में सक्रिय रूप से भाग लेते हुए क्रियाशील बने । सन् १९१४ में प्रथम महायुद्ध शुरू हुआ तब गांधीजी ने इस बार अंग्रेजों की दिल खोलकर मदद की । लेकिन इसका परिणाम असफल निकला और गांधीजी भारत की आजादी के बारे में और भी चिंतित हुए । इसी समय अंग्रेजों ने रौलट- एक्ट पास किया जिससे भारत पर भारी दुर्घटना हुई । महात्मा गांधी ने इसका घोर विरोध किया । " महात्मा गांधी ने कहा कि यदि रौलट कमीशन की सिफारिशों को एक्ट बनाया गया तो वे सत्याग्रह- युद्ध छेड़ देंगे ।"[३] राजनीति के क्षेत्र में गांधीजी ने हमें विविध रूपों में दर्शन दिया है । उन्होंने भारत की स्वतंत्रता - प्राप्ति के सिलसिले में कई बार आंदोलन का नेतृत्व किया और सत्याग्रह चलाया है ।

आंदोलन संचालक :-

सन् १८५७ का आंदोलन असफल ठहरा, जिसमें भारत की

- -

१: महात्मा गांधी - पृ० २३ २: वही० पृ० २६

३: भारतीय स्वातन्त्र्य आन्दोलन और हिंदी साहित्य- पृ० ११०

स्वतंत्रता की मांग थी, तो गांधीजी ने पुन: स्वतंत्रता - आन्दोलन शुरू किया। फिजी की कुली प्रथा को रोकने और बारडोली में कर बंद करने के लिए गांधीजी ने आन्दोलन किये। उनका अन्तिम आन्दोलन था ' भारत छोड़ो ' आन्दोलन। इसमें गांधीजी ने अंग्रेजों से भारत को छोड़कर अपने देश को लौट जाने का अनुरोध किया। इस प्रकार गांधीजी ने विभिन्न महत्वपूर्ण कार्यों के लिए अनेक आन्दोलनों का नेतृत्व किया जो पूर्ण रूप में भारतीय - स्वातन्त्र्य - लब्धि के अंतिम क्षण तक जितने आन्दोलन रचे थे, वे सब इस बृहत् आंदोलन के मुख्य अंग रहे हैं।

गांधीजी अपने जीवन की एक लंबी अवधि तक आंदोलन करते आये थे। उन्होंने उपाधि - त्याग करने से लेकर स्कूल, कालेज, अदालत, कौंसिल में न जाने, विदेशी चीजों का बायकाट तथा टैक्स न देने तक का आंदोलन शुरू किया।'[१] यह तो स्पष्ट है कि उन्होंने भारत की मुक्ति के जिस उद्देश्य से कितनी बार तरह तरह के आन्दोलनों को राष्ट्रीय - तल पर संगठित किया, वे सब सफल निकले हैं। ये उनकी कार्य- कुशलता और वाक् - चातुरी के परिचायक हैं। उनके राजनीतिक प्रयत्नों में अहिंसा का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। इस क्षेत्र में उनकी सारी प्रवृत्तियां अहिंसात्मक थीं। अत: उनके द्वारा घटित आन्दोलन के भी अहिंसात्मक होने में कोई आश्चर्य नहीं रहता। महात्माजी का आंदोलन अहिंसक असहयोग का आंदोलन था।'

समर्थ सत्याग्रही :-

राजनीतिके क्षेत्र में गांधीजी का सत्याग्रह एक एक अहिंसात्मक वस्तु रही है। आन्दोलन के अतिरिक्त उन्होंने भारत की स्वतंत्रता के लिए सत्याग्रह का भी प्रयोग किया है। सत्याग्रह के द्वारा उन्होंने अंग्रेजों से मुक्ति की मांग की थी।'[३] गांधीजी जब दक्षिण अफ्रीका गये थे, तब उन्होंने वहां की भारतीय जनता के ऊपर किये जानेवाले निठुर अत्याचारों को देखा। वे बहुत दु:खी हुए

- -

१: महात्मा गांधी - पृ० २२०

२: महात्मा गांधी - पृ० १३१

३: Gandhi tried to plead with the British government by his method of Satyagraha.
- Mahatma Gandhi 100 years - P. 6

और उन्होंने अफ्रीका के निवासियों का सामना करने का निश्चय किया और सत्याग्रह नामक निरुपद्रवी हथियार का प्रयोग एवं आविष्कार किया ।[१] सत्याग्रह का प्रयोग राजनीति के क्षेत्र में पर्याप्त मात्रा में हुआ है । अमृतसर में जालियांवाला बाग के हत्याकाण्ड (१९१९ ई०), नागपुर की पुलीस के द्वारा झण्डे सहित जाने को रोके जाना, हिन्दू मुसलिम एकता, नमक- कर, खेड़ा के अकाल आदि के विरुद्ध गांधीजी ने सत्याग्रह किये और इनमें वे सफल भी निकले । यद्यपि इसका आविष्कार दक्षिण अफ्रीका में हुआ था, इसका पहला प्रयोग चंपारन में हुआ है । गांधीजी ने सत्याग्रह के द्वारा राजनैतिक मुक्ति के लिए प्रयत्न किया था ।[२] उन्हें सत्याग्रह की सफलता पर पूरा विश्वास था ।[३]

अखिल उपवासी :-

गांधीजी ने राजनीतिक समस्याओं को सुलझाने के लिए कई बार उपवास अथवा व्रत लिया है । उपवास करते करते वे आमरण अनशन तक कर चुके हैं । रौलट एक्ट को बंद करने, पंजाब के हत्याकाण्ड को समाप्त करने और बारडोली में लगान बंद करने आदि के लिए उन्होंने कई दिन तक उपवास ठान लिया है । अहमदाबाद में मिल मालिकों के द्वारा मजदूरों का वेतन न बढ़ा दिया जाने के कारण गांधीजी ने सर्वप्रथम उपवास अनुष्ठित किया । यही उनका पहला - पहल उपवास था । रौलट एक्ट के विरुद्ध चौबीस घण्टे का जो उपवास किया गया, वही उनके जीवन में दीर्घ-कालीन उपवास माना जाता है ।

---

1. "This was the unique discovery he made in a unique laboratory. The laboratory was South Africa and the discovery was Satyagraha."- Mahatma Gandhi 100 years - P. 314

2. The chief legacy of Gandhi is satyagraha through which he lead the successful campaign for the political freedom of the Indian Subcontinent.
   - Ibid 129

3. As a firm believer in Satyagraha, Mahatma Gandhi never tried to take advantage of the difficulties of his opponents.
   - Ibid .P. 225

कांग्रेस नेता:-

गांधीजी सन् १९२० में कांग्रेस में शामिल हुए। गांधीजी के पहले कांग्रेस के नेता तिलक थे। उनकी मृत्यु के बाद गांधीजी इसके नेता बने। इसके बाद कांग्रेस की नीति भी गांधी - नीति में बदल गई। कांग्रेस की राजनीति ने उनके अहिंसा - तत्व को अपनाया। गांधीजी ने कांग्रेस को भारत की मुक्तिगत प्रवृत्तियों की ओर उन्मुख बनाया। तब से उसका लक्ष्य भी वही बना।

गांधीजी को अनेक बार कांग्रेसी सभा के नेता बनने का सुयोग प्राप्त हुआ था। अमृतसर की कांग्रेसी सभा में गांधीजी ने प्रथम बार सक्रिय रूप से भाग लिया। सन् १८८५ से लेकर सन् १९४१ तक की अवधि में विभिन्न जगहों पर भिन्न भिन्न उद्देश्यार्थ कांग्रेसी - सभा का कार्यक्रम होता था। कलकत्ता, बंबई, मद्रास, कराची, नागपुर, अहमदाबाद, बेलगांव, हरिपुरा, लाहोर आदि जगहों पर कांग्रेसी सभा बुलाई गई। इन सब में गांधीजी ने कभी नेता या वक्ता बनकर अनेक भाषण दिये हैं। अतः गांधीजी और कांग्रेस संस्था के बीच में अपार घनिष्टता रही है। कांग्रेस के द्वारा ही उन्होंने अपना- कार्य- निर्वहण किया है। इस प्रकार कांग्रेस को भारतीय स्वाधीनता- संग्राम में इतना महत्वपूर्ण एवं मान्य स्थान उन्होंने ही प्रदान किया है। कांग्रेस एक साधारण सी संस्था न रह कर अहिंसावादी राष्ट्रीय संस्था रही है। इसलिए भारतीय स्वतंत्रता का श्रेय इसी को है। कांग्रेस के नेता होने के साथ ही गांधी जी कर्मठ देश सेवक भी थे। उनकी देश-सेवा का मूल मंत्र यही था - `सर्वप्रदानेषु अभयप्रदानम्` अर्थात् समस्त मनुष्य जाति की विनाश से रक्षा`[1] गांधीजी ने राजनीतिक तौर पर देश की अनन्य सेवा की है। उनका कहना था - `देश सेवा के माने सत्य और भगवान की सेवा तथा दूसरे किसी का कोई अनिष्ट न करना।`[2] उनका देश- प्रेम इतना गहरा और सार्वजनिक था कि उन्होंने देश की मुक्ति के लिए अत्यंत प्रयत्नशील हो, बहुत ही साहसपूर्ण प्रवृत्तियां की थीं। उन्होंने अपने सेवापरक कार्यक्रमों के लिए अनेक आश्रमों की स्थापना की और वहां रहते हुए देश की सेवा की थी। राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक तौर पर उनकी सेवा अवर्ण्य है। `आल इण्डिया होमरूल लीग`, `निखिल भारतीय चरखा संघ`, `गोल मेज परिषद` आदि के गांधीजी सभापति रहे हैं।

१: महात्मा गांधी - पृ० २३   २: वही० पृ० ९५

युद्ध के समर्थक :

गांधीजी पहले न्याय के पक्ष में युद्ध के समर्थक थे। किन्तु बाद में अहिंसक होने पर वे युद्ध का विरोध करने लगे। जब प्रथम महायुद्ध चल रहा था तब गांधीजी ने अंग्रेजोंसे लड़ने के लिए सेना को बढ़ाने की बात बतायी। इतना ही नहीं उन्होंने बहुत बड़ी उम्मीद से अंग्रेजों की सहायता भी की। लेकिन उसके असफल परिणामस्वरूप गांधीजी ने अंग्रेजों की नीति का खूब विरोध किया।

पहले वे अंग्रेज सरकार के बड़े सहयोगी थे। परंतु अंग्रेजों के रौलट एक्ट के पास हो जाने पर वे असहयोगी बन गये। स्वभाव से वे सहयोगी थे -- बहुत आवश्यकता होने पर ही असहयोगी। -- -- गांधीजी बराबर ही सहयोग के पक्षपाती थे, नितांत असंभव होने पर ही असहयोग की बात उठाते थे। "[1] इसके बाद उन्होंने असहयोग आंदोलन को शुरू किया जो स्वभावतः अहिंसक भी था। उनके असहयोग आंदोलनों का अपना ऐतिहासिक महत्व रहा है।

अहिंसक क्रान्तिकारी :-

गांधीजी बड़े क्रांतिकारी विचारक थे।[2] लेकिन उसकी एक विशेषता यह थी कि वह विचार पूर्णतः अहिंसात्मक था। उन्होंने मानव की प्रकृति में बड़ा भारी परिवर्तन किया है। उन्होंने जनता के विचार और चिंता, मानव के बीच के पारस्परिक संबंध, शिक्षा, समाज, विश्व-व्यापक आर्थिक स्थिति आदि के पुनर्निर्माण में क्रांतिकारी परिवर्तन किया।[3] जनता के कल्याणार्थ जो हलचल उन्होंने मचाये, वे क्रान्ति का रूप धारण करने पर भी शान्तिमय थे।

सामाजिक व्यक्तित्व :-

गांधीजी समाज - प्रेमी व्यक्ति थे। वे समाज के जीवन्त प्राण थे। शिथिल एवं जीर्ण - शीर्ण भारतीय समाज का पुनर्निर्माण ही गांधीजी चाहते थे।

- -

१: महात्मा गांधी - पृ० १५१, ११९

२: "Gandhi was a revolutionary thinker ." Introduction, Mahatma Gandhi 100 Years -p. 1

3. he advocated revolutionary changes in our ways of thinking, in t[illegible] relationship between man and man, in the educational system, the social set-up and the world economy, because he recognised the un-godly and untruthful and therefore unnatural course of life, human [illegible] adopted. " Mahatma Gandhi- P. 74

अधिकार और कर्तव्यनिरत समाज को उन्होंने विकास की दृष्टि से हीन समझा। अधिकार और कर्तव्य- बोध जिस समाज में साथ साथ चलते हों उस समाज का उत्थान निश्चित है। अन्यथा उस समाज का विनाश अनिवार्य है।[१] वे समाज की उन्नति चाहते थे और इसी विचार से उसे आगे बढ़ाने का प्रयत्न भी करते थे। उन्होंने समाज और जनता में कोई फ़रक नहीं देखा है। जनता ही समाज को उद्धारक हैं और समाज के प्राण भी वे ही हैं।

शिक्षा की आवश्यकता के समर्थक :-

समाज की उन्नति के लिए गांधीजी ने अनेक दिशाओं में कार्य किये हैं। गांधीजी अनिवार्य शिक्षा का समर्थन करते थे। उनका कहना है कि समाज का हर एक व्यक्ति, चाहे लड़का हो या लड़की, शिक्षित होना चाहिए। अत: उन्होंने बुनियादी शिक्षा का आविष्कार किया और उसे समाज के पुनर्निर्माण में पेश किया। सामाजिक उन्नति के लिए यही उनकी प्रथम तथा अमूल्य देन रही है।

अस्पृश्यता - निवारक :-

समाज में एक वर्ग के लोग ऐसे थे जिन्हें अछूत माना जाता था। लेकिन गांधीजी ने इन्हें 'हरिजन' पुकारा है। 'महात्मा जी इन अछूतों को हरि का प्रिय जन या 'हरिजन' नाम देते हैं।'[२] हरिजनोद्धार के लिए गांधीजी ने आमरण अनशन किया है। 'यह अनशन सरकार के विरुद्ध नहीं था। हरिजन सेवा के लिए अपनी और सहकर्मियों की आत्मशुद्धि ही इसका उद्देश्य था।'[३] अछूतों के प्रति उनके मन में बड़ा प्रेम और आदर था। समाज में अन्य लोगों की भांति हरिजनों को भी समान रूप से मान्यता देने को गांधीजी चाहते थे। इसके लिए उन्होंने हरिजन-सेवक संघ की स्थापना की जिसकी शाखाएं विभिन्न देशों में वर्तमान थीं।[४]

१: महात्मा गांधी - पृ० १५   २: वही० पृ० १७२

३: वही० पृ० १७

४: "When he resolved to fight un-touchbility, he immediately created the necessary organisation the 'Harijan Sevak Sangh, gathered workers and collected funds and formulated programmes for the uplift of Harijans."
- Mahatma Gandhi 100 years, P. 357

एकता के समर्थक :-

गांधीजी ने समाज में जाति- ऐक्य का का समर्थन किया । इसी अवसर पर उन्होंने हिन्दू मुसलिम एकता के लिए भी कुछ प्रयत्न किया । गांधीजी जाति- भेद या वर्ण - भेद के विरोधी थे ।[१] अतएव उन्होंने भारत के विभाजन के वक्त यों कहा है कि इससे देश की जातीय एकता पर बहुत बड़ा आघात हो सकता है । "महात्माजी का दृढ़ विश्वास था कि भारत का विभाजन होने से हिन्दू और मुसलमान दोनों में से किसी का कल्याण नहीं होगा ।"[२] वे हिन्दू और मुसलमानों को एक मानने वाले थे । " भारतीय हिन्दू - मुसलमान जाति से एक ही हैं । धर्म सिर्फ अलग है, यही उनकी धारणा थी । "[३] इसलिए उन्होंने सांप्रदायिक एकता पर बल दिया । " उनका विश्वास था कि जातीय उत्थान के लिए यह आवश्यक है कि सभी संप्रदायों को समानाधिकार प्राप्त हों और देश के प्रति सभी अपने कर्तव्यों को समझें ।"[४] जनता में जाति- ऐक्य स्थापित करने के लिए उनमें एकता के तत्व को प्रतिष्ठापित करने का प्रयास किया गया है ।[५] गांधीजी का मत था - " भारतवर्ष हिन्दू - मुसलमान पास - पास रहते हैं । एक दूसरे के पड़ोसी हैं । पड़ोसी के मन में आघात लगने पर उसका दर्द कम करने की चेष्टा करना कर्तव्य है । इससे दोनों का मेल भी सुदृढ़ हो जाता है ।"[६] अत: उन्होंने हिन्दू - मुसलिम मैत्री स्थापना के लिए

- -

१. "He did not believe in the caste system as it prevails in India "

- Mahatma Gandhi 100 years- P. 201

२: महात्मा गांधी - पृ० ११

३: महात्मा गांधी - पृ० १३   ४: वहीं० १३

५: "Gandhiji asserted the importence of the dignity and worth of the human person and the principle of equality of all human beings regardless of their caste or creed. "

- Mahatma Gandhi - 100 years - P. 372

६: महात्मा गांधी - पृ० ११५

खिलाफत आन्दोलन चलाया। गांधीजी ही हिन्दू - मुसलिम एकता के मुख्य प्रवर्तक थे। और उन्होंने इनमें एकता स्थापित की। इसके फल-स्वरूप हिन्दू और मुसलमान दोनों ने सन् १९२२ से राष्ट्रीय झण्डे को स्वीकार किया। दोनों ने मिलकर भारत की आजादी के लिए युद्ध भी किया।

नारी उद्धारक :-

गांधीजी में नारी के प्रति प्रेम तथा श्रद्धा थी। आधुनिक युग तक नारी को अवहेलित और उपेक्षित माना जाता था। लेकिन आधुनिक युग में आकर वह सर्वत्र पूज्य मानी जाती है। महात्मा गांधी नारी का सभी प्रकार से उद्धार करना चाहते थे। उन्होंने अपनी समाज- सुधारवादी प्रवृत्तियों में नारी - उद्धार की परिकल्पना कीऔर उनका उद्धार भी किया है।[१] गांधीजी की इस स्थिति ने आधुनिक भारतीय समाज में नारी को समानाधिकार का पद प्रदान किया। वे कहते थे कि पुरुष और नारी में समता चाहिए, दोनों मिलकर ही समाज की प्रवृत्तियों को संभाल सकते हैं।[२] गांधी युग में आकर नारी की अपनी स्वतन्त्रता बन गई थी कि वह आन्दोलनों और विप्लवों में भाग लेने लगी। इस युग में यह स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ता है। पुरुषों के साथ स्त्रियों ने भी कर्म - क्षेत्र में बलिदान किया था। गांधीजी नारी को उच्च शिक्षा देने के समर्थक थे। उनका मत था कि नारी को किंचित शिक्षित रहना चाहिए। वे इसको समाज में ऊंचा पद देना चाहते थे। गांधीयुग की नारियां सूत कातती थीं और चरखा चलाती थीं। वे बड़ी कर्तव्यशील और राष्ट्र-सेविकाएं बन गयी थीं। नारी के उद्धार में गांधीजी को ब्रह्मचर्य अत्यंत सहायक सिद्ध हुआ। ब्रह्मचर्य का व्रती रहने पर भी गांधीजी नारी से अलग नहीं रहे थे। उनके प्रभाव से नारियों ने पति-धर्म को भी त्यागकर बलि- धर्म को अपनाया। नारी का

- -

1. " In the various constructive programmes he launched, and in the social, economic and educational institutions he founded, women always found a place of equal responsibility and importence with men ." Mahatma Gandhi-100 Years-P. 219

2. He truly believed that woman was man's equal and both were jointly responsible for conducting the affairsof society. " Ibid.P. 221

नारी का उद्धार करने में गांधीजी से बढ़कर किसी दूसरे व्यक्ति का मिलना असंभव है। यही जैनेन्द्रजी का भी कथन है - 'स्त्री को स्त्रीत्व से आगे व्यक्तित्व देने में गांधीजी से बढ़कर शायद ही कोई इतिहास का चरित्र ठहर सके।'[1] उनमें नारी के प्रति किसी प्रकार की घृणा नहीं थी। इस प्रकार गांधीजी ने स्त्री का उद्धार ही समाज का उद्धार मानकर, इसके लिए खूब प्रयत्न किया।

बाल-विवाह के विरोधी :-

गांधीजी का विवाह बहुत छोटी उम्र में होने पर भी वे बाल-विवाह के विरोधी थे।[2] बाल- विवाह होने पर अगर उसके पति की मृत्यु तुरंत हो जाती तो वह लड़की छोटी उम्र में ही विधवा बन जाती है। हिन्दू धर्म के अनुसार वह पुन: ब्याही नहीं जा सकती। लेकिन गांधीजी इसका विरोध करते हुए विधवा-नारी का उद्धार करना चाहते थे। विधवा - नारी के प्रति उनके मन में श्रद्धा,भक्ति तथ सहानुभूति अवश्य थी।

ग्राम - सुधारक :-

ग्राम- सुधारक के रूप में गांधीजी 'सेगांव का सन्त' कहलाते हैं। ग्रामीण जनता की उन्नति के लिए वे 'सेगांव' नामक गांव में बसते थे जो बाद में सेवाग्राम नाम से प्रसिद्ध हुआ। उन्होंने वर्धा और सेवाग्राम में रहकर ग्रामोन्नति का रचनात्मक कार्य आरंभ किया। वे गांव- गांव में पैदल जाते थे और वहां की जनता की आवश्यकताओं की जांच करते थे। इसका उद्देश्य था ग्रामीण जनता को भी स्वराज्य-संग्राम में सक्रिय बनाने के लिए शक्ति प्रदानकरना। गांवों में साधारणत: गंदगी होती ही है। गांधीजी ने उनकी सफाई व सुधार स्वयं किया था। 'ग्राम- सुधार' के लिए उन्होंने 'गांधी - सेवा - संघ' की स्थापना की। गांधीजी के लिए ग्रामवासिय को सेवा ही भारत की सेवा थी।

रामराज्य के कामी : -

भारत को रामायणीय कथा में वर्णित रामराज्य की भांति सुगठित करना गांधीजी का लक्ष्य था। उनका जीवन- लक्ष्य भी यही था। उनकी रामराज्य -

- -

१: अकाल पुरुष गांधी - पृ० ८५ २: महात्मा गांधी अवश्य ही अपने बाल-विवाह को अकल्याणकार ही समझते थे। महात्मा गांधी - पृ० ४८

संबंधी कल्पना का आभास अंग्रेजी लेखक प्यारे लाल के शब्दों में मिलता है ।[१] रामराज्य का सपना उनके जीवन का सपना था । उसी की स्थापना के लिए उन्होंने जितने साहसिक प्रयत्न किये थे उतना अन्य कोई नहीं कर सका है । वे तो भारत को आज़ादी दे सके । मगर रामराज्य का स्वप्न सफल होने के पहले ही वे मारे गये ।

जनता के नेता :-

वस्तुत: गांधीजी जनता के नेता थे । उनका समस्त जीवन जनता के बीच में ही बीता था । वे हमेशा जनता का साथ देते थे । उनकी आवश्यकताओं और इच्छाओं की पूर्ति वे सदा करते थे । उनके मन में जनता की सुख- सुविधाओं का ध्यान सदा रहता था । वे जन- वर्ग के उद्धारक थे । जनता का मंगल ही देश का मंगल है - यही वे कहते थे । इसलिए उन्होंने भारतीय - स्वतंत्रता - संग्राम में ग्रामोद्धार, मानवोद्धार आदि को प्रमुखता दी थी । इस दृष्टि से वे जनपालक, जननायक सब कुछ थे ।

इन सबसे ऊपर वे दरिद्र - नारायण भी थे । दीन- दलित जनता को उन्होंने हरिजन कहकर पुकारा था और उनकी रक्षा करने से वे दरिद्र- नारायण बन गये । जिस प्रकार भगवान नारायण समस्त चराचरों की रक्षा करते हैं उसी प्रकार गांधी ने दरिद्रों का उद्धार किया है । दरिद्रों के बारे में गांधी जी ने स्वयं कहा है - " दरिद्र केवल दरिद्र नहीं दरिद्रनारायण हैं ।"[२] दरिद्रों को उन्होंने

- -

१: " he wanted a self-relient India in which the common man would feel master of his destiny, which he could shape as he liked without let or hindrance, an India in which everybody would have enough for his basic needs, in which there would be no inseperable gulf between rich and poor and in which the rulesswould be the servents of the people and not their masters claiming exclusive privileges for themselves ." - Mahatma Gandhi 100 Years- P. 289

२: अकाल पुरुष गांधी - पृ० ५१

नारायण इसलिए कहा - " गरीब से गरीब को, अपने से बड़ा और अपने को गरीब से गरीब के समकक्ष पाने के लिए मानों वह प्रेम छटपटाता रहता था ।"[१] अत: दरिद्रता को दूर करने के लिए वे अत्यन्त उत्सुक रहे थे ।

प्रचण्ड मानवतावादी :-

गांधीजी मानवतावाद के प्रवर्तक एवं प्रचारक थे । उन्होंने ऐसे मानवतावाद की प्रतिष्ठा की है जिसमें अपने ही सिद्धान्तों और विचारों को निरूपित किया गया है । इसी बाद में गांधीवादी मानवतावाद नाम से प्रसिद्ध हुआ है । गांधीजी सच्चे मानव थे । उनकी मानवता में एकत्व की भावना थी ।[२] वेमानवता के पुजारी माने जाते थे । मानव के प्रति उनमें श्रद्धा, भक्ति, प्रेम सबकुछ था ।[३] संसार के प्रति गांधीजी का दृष्टिकोण मूलत: मानवतावादी रहा है । वे मनुष्य अथवा मानव को सुख- सुविधाओं के अभिलाषी थे । मानव का सुख और संतोष ही गांधीजी का सुख और संतोष रहा है । उन्होंने गीता के सत्य और अहिंसा आदि तत्वों को मानवतावाद के रूप में जन- जीवन में प्रस्तुत किया और उन्हें सारी जनता ने निस्संदेह अपना लिया । वे इतने पूज्य इसलिए बन गये कि उनका यह सुधारसंबंधी मानवतावाद सर्वग्राह्य बन गया । श्री स० वी० रामन ने कहा है - " इसमें कोई संदेह नहीं कि गांधीजी के उत्सर्ग पर संसार के हर कोने में जो स्वैच्छिक श्रद्धांजलियां उन्हें अर्पित की गई हैं, वे वास्तव में महात्मा गांधी के अपने मूलभूत मानवतावाद की स्वीकारोक्ति हैं, जिसने देश, विचार और जाति की सीमाओं को लांघ दिया था ।"[४] गांधीजी में

१: अकाल पुरुष गांधी - पृ० २०२

2. His humanism was rooted in the realisation and spiritual experience of his whole being that all life was one and that life was but the manifestation and reflection of the reality itself . " - Mahatma Gandhi. P. 79

3. "Bapu was intensively human, essentially a lover of mankind and not of mere ideas. "

- Mahatma Gandhi 100 years. P. 96 .

४:गांधी - व्यक्तित्व, विचार और प्रभाव - पृ० १०६

प्रेम, करुणा, सहानुभूति, परसेवा आदि अनेकों मानवीय गुणों का दर्शन है। गांधीजी के इसी मानवतावाद ने भारत को स्वाधीनता प्रदान कराई। मानवतावादी दृष्टि से उनमें एक विशेषता दृष्टव्य थी। जब मानव की बात आती थी, तब वे अपनी कोई परवाह किये बिना उसकी सहायता के लिए दौड़ पड़ते थे। आहतों, रुग्णों जैसी निस्सहाय जनता की सेवा वे बिना किसी संकोच के, करते थे। यह उनके लिए बड़े ही संतोष की बात थी। आप चाहे जितने थके होते थे, फिर भी जनता को मदद की चिंता में थकावट का अनुभव नहीं करते थे। यह कहना अनुचित न होगा कि गांधीजी और मानव दोनों हिलमिल रहते थे और इस प्रकार अपनी और जनता के बीच में अटूट संबंध बनाये रखते थे।

आर्थिक व्यक्तित्व :-

गांधीजी का आर्थिक-सुधार एकदम विलक्षण तथा नवीन था। उनके आर्थिक विचार और चिंता दृष्टि ने उन्हें एक अलग व्यक्तित्व प्रदान किया। भारतीय स्वतंत्रता के सूत्रधार के रूप में रहते हुए उन्होंने आर्थिक क्षेत्र में भी एक नये ढंग से स्वाधीनता प्रस्तुत की है। उनके मतानुसार " आर्थिक स्वाधीनता का अर्थ है हर एक के लिए आवश्यक वस्त्र घुटने के ऊपर से पहनने के लिए कपड़े का टुकड़ा भी नहीं - और दूध मक्खन रहित पर्याप्त आय।"[१] भारत में जितनी जनता रहती है उनमें अधिकांश लोग गरीब हैं। धनी लोगों में इनकी कोई चिन्ता नहीं रहती और वे बड़े ही ठाठबाट से अपना जीवन व्यतीत करते हैं। गांधीजी का मन इस दशा को देखकर करुणार्द्र हो उठा। वे ऐसी दशा को दूर करना चाहते थे। " महात्मा जी का मत था कि भारतवर्ष से अमीर - गरीबों की अत्यधिक दूरी का कम होना आवश्यक है।"[२] इस उद्देश्य से उन्होंने आर्थिक क्षेत्र में चरखा, खादी और घरेलू उद्योग-धंधों को काम दिया। लेकिन गांधीजी - प्रवत आर्थिक स्वाधीनता के मुख्य दो आधार- साधन थे - चरखा और खादी। डा० बोस ने भी बताया है - " उनकी आर्थिक नीति के कार्यक्रम के दो केन्द्र- बिन्दु थे, चरखे से सूत कातना और

- -

१: महात्मा गांधी - पृ० १६३ २: वही० पृ० १६५

सदर पहनना ।"[१] भारत के आर्थिक सुधार के लिए गांधीजी ने विदेशी वस्त्र- बहिष्कार पर भी जोर दिया । इसके सिलसिले में बहुत से विदेशी कपड़े जलाये भी गये । गांधीजी कहते थे कि विदेशी कपड़ा देश की अर्थ - नीति की हानि का द्योतक है । कपड़ों के जलाने पर गांधीजी ने बताया - " इनको जलाने के पीछे किसी भी तरह की घृणा नहीं है, केवल अपने को बचाये रखने की दृढ़ आकांक्षा । "[२] गांधीजी की देखरेख में भारत के आर्थिक क्षेत्र में चरखा और खादी का खूब प्रचार होने लगा । उन्होंने जनता को खादी का वस्त्र पहनने की सलाह दी । इसके फल-स्वरूप उनका महत्व बढ़ गया और आर्थिक दृष्टि से भी देश स्वतंत्र हुआ ।

गांधीजी धन- संपत्ति को जमाकर रखने अथवा अपने आप उसे भोगने के पक्ष में न थे । वे देश की जनता के लिए उसका उपयोग करना चाहते थे ।[३] गांधीजी ने संपत्ति का विरोध नहीं किया और उसी प्रकार यंत्रों के प्रयोग का भी निषेध भी नहीं किया । उनका मत था - मनुष्यों को यंत्रों का गुलाम नहीं बनना चाहिए, यन्त्र सदा मनुष्य के लिए होना चाहिए ।[४] गांधीजी पूंजीवाद का विरोध करते थे । पूंजीवादी समाज को एक सार्वजनिक समाज के रूप में बदल देने का उन्होंने निश्चय किया और 'ट्रस्टीशिप ' की भी स्थापना की । गांधीवादी आर्थिक नीति में इस स्थापना का बड़ा ही महत्वपूर्ण स्थान है । इसके सैद्धान्तिक विचार ने पूंजीवादियों में अपने दृष्टि-कोण को सुधारने का अवसर प्रदान किया ।[५] इस प्रकार गांधीजी ने अत्यंत अद्भुत

१: महात्मा गांधी - पृ० १४ २: वही० पृ० १३३ - १३४

3: " Gandhiji wanted them to hold their wealth in trust for the people and use it for social good and not for personal enjoyment alone. " Mahatma Gandhi 100 years.P.66

4. " He did not want mant man to become a slave of machines and lose his identity altogether ; he wanted machines to be for man, not man for machines. "

— Ibid.P. 66

5. " His doctrine of trusteeship does not approve of capitalism but instead of crushing capitalists, it gives them an oppurtunity to improve their outlook. " - Ibid.P. 66

चमत्कार के साथ धार्मिक क्षेत्र में सुधार- कार्य किया है ।

धार्मिक दार्शनिक व्यक्तित्व :-

गांधीजी के धार्मिक व्यक्तित्व पर हिन्दू धर्म और दार्शनिक व्यक्तित्व पर हिन्दू धर्म - ग्रंथ भगवद्गीता का निर्णयातीत प्रभाव पड़ा है । उन्होंने अपने जीवन को हिन्दू धर्म के मूल तत्वों के अनुसार गढ़ लिया और बताया कि इन तत्वों को अपनाकर दरिद्रनारायण अथवा हरिजनों की सेवा के लिए जब हम सब कुछ त्याग देते हैं तब हम सच्चे कर्म कर सकते हैं ।[१] उन्होंने गीता को माता के रूप में अपनाकर, आगे के अपने समस्त जीवन - कार्य के लिए उसी से प्रेरणा ली थी । अत: गीता उनके जीवन का एक प्रमुख अंग बन गई ।

गांधीजी पहले धार्मिक व्यक्ति थे बाद में राजनीतिक ।[२] भारतीय-स्वाधीनता- संग्राम के सूत्रधार के रूप में वे राजनीतिक व्यक्ति रहे हैं । लेकिन वे अपने को धार्मिक व्यक्ति मानना और कहना अधिक चाहते थे । गांधीजी ने स्वयं कहा भी है - " मैं धार्मिक आदमी हूं । राजनीतिक नहीं हूं । राजनीति धर्म के स्वास के बिना निरा छल - छद्म है ।"[३] गांधी जी धर्म भावापन्न और धर्म - निरपेक्ष व्यक्ति थे ।

- -

1. " His Hinduism was based on the teachings of the Upanishads and the Gita,. He moulded his life in accordence with the basic teachings of this scripture.--- --- In accordence with its teachings he held that good works must be performed in the spirit of sacrifice to the God of humanity Specially in serving Daridranarayana, God the poor and the down-trodden.

   - Mahatma Gandhi-100 years-P.202

2. "Gandhiji was a deeply religious man first, and a patriot afterwards ." - Ibid -P.226-227

3: अकाल पुरुष गांधी - पृ० १७३

कट्टर वैष्णव :-

गांधीजी वैष्णव थे। उनके माता - पिता वैष्णव थे। उनके परिवार के लोग वैष्णव- परंपरा का पालन करने वाले थे। उन्होंने अपने को सनातन हिन्दू कहा है। वैष्णव वह है जो पराई पीर जानता है, पराया दु:ख, पराया दर्द समझता है। पराई पीर समझने का अर्थ है उस पीर को मिटाने का जी जान से प्रयत्न करना, उस दु:ख- दर्द को दूर करने का सच्चे हृदय से प्रयत्न करना"।[१] गांधीजी का जीवन- लक्ष्य यही रहा है। " वैष्णव जन की अनिवार्य शर्त के अनुसार गांधी जब पीर पराई देखने गया तो उसे विवश होकर राजनीति में कूदना ही पड़ा।"[२] गांधी के परिवार में विष्णु की पूजा की जाती थी।[३] गांधीजी के पूर्वज वल्लभ संप्रदाय के रहे हैं, जिसका प्रभाव गांधीजी पर भी पड़ा था। बाद में वे भागवत् पुराण, बाइबल, भगवद्गीता आदि ग्रंथों से प्रभावित हुए। वैष्णव होने के कारण हवेली में जाते थे जहां अनेक लोगों से एक साथ रहकर भगवान की आराधना की जाती थी। लेकिन गांधीजी वहां की आडंबरपूर्ण पूजा - विधि से असंतुष्ट हुए। उनकी भक्ति भगवान श्रीकृष्ण और रामचन्द्र जी के योद्धागत नायक रूपों की ओर मुड़ गई।[४]

हवेली से उन्हें धर्म के संबंध में कुछ भी नहीं मिला। पर उन्हें यह मिला अपने परिवार की नौकरानी रंभा से। गांधी जी ने धर्म का अर्थ आत्म-बोध अथवा आत्मज्ञान बताया है। उनके लिए धर्म मानव- सेवा की पृष्ठभूमि के रूप में रहा है।[५] अत: उन्होंने धार्मिक एकता पर बल दिया है। उन्होंने धर्म को

- -

१: गांधी - जीवन - सूत्र - कल्याण - पृ० १२५६

२: वही० पृ० १२६२

3. " The Gandhis were Vaishnavas, worshippers of Vishnu in his incarnation as Sri Krishna." The Making of Mahatma-P.34

4. His own bhakti was directed towards Sri Krishna and Sri Rama in their heroic forms as warriors devoted to duty and truth."

-Ibid -P.36

5. Religion was to him merely the back-ground of a righteous life and it is the elaboration of his conception of righteousness that constitutes his great service to humanity."

-Mahatma Gandhi-100years-P.367

जनता के जीवन का प्रमुख अंग बना दिया ।[१] इसलिए धर्म का भारत के व राजनीति प्रभृति क्षेत्रों में बड़ा ही महत्वपूर्ण स्थान है । भगवद्गीता से उन्होंने सत्य और अहिंसा के तत्वों को अपनाया और उनके प्रयोगिक कर्मों द्वारा देश का कल्याण चाहा ।

सत्य के पुजारी :-

गांधीजी सत्य के पुजारी ही नहीं, उसके अभ्यासी भी थे । सत्य उनके लिए सब कुछ था । वे अपने जीवनान्त तक सत्य का पल्ला पकड़े रहे । सत्य उनके जीवन का मुख्य अंग था कि उन्होंने अपने जीवन को सत्य की प्रयोगशाला बना दिया । अत: उन्होंने अपने जीवन को ` सत्य के प्रयोग ` कहकर विशेषित किया है।

गांधीजी सत्य के अचंचल तथा अटूट विश्वासी थे । उन्होंने सत्य का वैज्ञानिक सामान्य दृश्य प्रस्तुत किया है । यहां उनकी प्रकृति - चिकित्सा की बात स्मरणीय है । यह तो एक वास्तविक सत्य है कि गांधीजी का औषधि में कोई विश्वास नहीं था । उनकी बीमारी प्रकृति - चिकित्सा के द्वारा दूर हो जाती थी । उनका मत यह था कि जो लोग स्वस्थ रहना चाहते हैं उन्हें प्रकृति से तादात्म्य कर लेना चाहिए ताकि वे रोगों को रोक सकते हैं । गांधीजी बड़े सत्यवीर थे और वे अकेले समस्त संसार को निर्भय हो ललकार सकें । उन्होंने सत्य को ईश्वर कहा है अत: सत्य का पालन करना ईश्वर का आदर करना बताया है । अधिकांश लोगों की दृष्टि में गांधीजी सत्य के प्रतीक थे । एक विद्वान ने कहा है कि गांधीजी ने सत्य का आविष्कार ही नहीं किया, उसका व्यवहार भी किया है और उसका व्यवहार ही नहीं प्रकाशन भी किया है ।[३] उन्होंने सत्य पर इतना हठ किसलिए किया था कि वे उसका साक्षात्कार करना चाहते थे ।

- -

1. " He brought religion out of the cloister and tried to make it a part of our daily life. " Mahatma Gandhi 100 years-P.229

2. " His unshakable faith in truth and love raised him to the the position accorded to saints and prophets in the old days. " - Ibid.P.229

3. " He not only discovered it, he practised it ; he not only practised it, he published it. "

- Ibid.P.230

अहिंसा के पुजारी :-

गांधीजी अखण्ड अहिंसक थे जिन्होंने राजनीतिक - सामाजिक क्षेत्रों में उसका व्यापक व्यवहार किया। अहिंसा उनके लिए सत्य की साधना की वस्तु रही है। उन्होंने अहिंसा का व्यापक अर्थ बतलाया है। उनके अनुसार प्राणि-मात्र का प्रेम अहिंसा है। उन्होंने प्रेम के वास्तविक बल को अहिंसा कहा है।[1] लेकिन इसे प्राणि- मात्र के प्रेम तक सीमित न रखकर, उन्होंने देश का राजनीतिक हथियार बना दिया। गांधीजी ने अंग्रेजों के राज- तंत्रीय शासन से भारत को मुक्त करने के लिए अहिंसा का सर्व-व्यापक प्रयोग किया।

गांधीजी अहिंसा का अक्षरश: पालन करने वाले थे। वे सभी प्रकार से अहिंसक रहे। गांधीजी ऐसा जूता पहनते थे जो प्रकृत्या मृत पशुओं का बनाया जाता था।[2] उन्होंने अहिंसा - रेशम को भी प्रोत्साहन दिया और वह रेशम ऐसे रेशमी कोशा से लिया जाता था जिससे रेशम का कीड़ा उड़ जाता है, मारा नहीं जाता।[3] गांधीजी अहिंसात्मक मार्ग द्वारा ही भारत को स्वतंत्रता दिलाने का मार्ग प्रकट करते थे।[4] गांधीजी लक्ष्य साधना और प्राप्ति के लिए हिंसा के मार्ग को

- -

1. " ... what he meant by his ahimsa was the positive force of love

- Mahatma Gandhi -100 years-P.325

2. "He put his ideas of ahimsa into action and wore only shoes made of ahimsa leather.(meaning leather made from the hides of animals that had died naturally.)
- Ibid.P.349

3. " He also encouraged ahimsa silk - silk made from cocoons from which the silk-worm-moths had not been killed but had flown away. " - Ibid.P. 349

4. " He therefore had no use for independence which was not won through non-violence, because it is only under non-violence that the weakest can take an equal share in the struggle for independence with the physically strongest, and consequently claim an equal share with the rest in the fruits of independence. "

- Mahatma Gandhi - 100 years - P.289

अपनाने वालों के विरोधी थे। वे अहिंसा के इतने सूक्ष्म व्यक्ति थे कि वे किसी भी प्राणी हत्या ही नहीं, उसे वेदना पहुंचाने तक को भी सहन नहीं कर सके। गांधीजी को अहिंसा का वकील कहा गया है। वे अपने जीवन के आरंभ से लेकर अन्त तक सफल अहिंसक रहे हैं।

ईश्वरोपासक :-

गांधीजी ने अपने जीवन को भगवान के विश्वास पर आधारित बनाये रखा है। वे ईश्वर के बड़े विश्वासी एवं अनन्य उपासक थे।[१] उनके लिए भगवान ही सबकुछ थे। गांधीजी भगवान श्रीरामचन्द्र जी के उपासक और आराधक थे। रामनाम की महिमा वे जानते थे। वे पल-पल में उसकी रट करते थे। रामनाम का यह पावन मन्त्र उनके लिए दवा का काम करता था। जब उन्हें दुःख होता था कपट झेलना पड़ता था, दूसरों को पीड़ा झेलना पड़ती थी, तब वे रामनाम जपते थे। एक विदेशी सज्जन केलेनबेक के इस प्रकार कहने पर कि गांधीजी की रक्षा करने केलिए उसने अपने साथ पिस्तोल रखा है, गांधीजी कहते हैं - " प्यारे भाई, आप चिन्ता न करें गांधीजी के प्राण बचाने की। गांधी तो राम की गोद में है। राम ही उसका रक्षक है। जिसे राम रखे उसे कौन मारे ? जिसे भगवान पर भरोसा होता है, उसे भला किसका डर ? -- -- जब तक उसकी मर्जी है, हम जीवित रहेंगे।"[२] इस कथन से उनका रामचन्द्रजी पर जो विश्वास है और उनके प्रति जो भक्ति और श्रद्धा हैं, वह स्पष्ट होता है। बचपन से उन्होंने रामनाम का जप किया था और अपनी मृत्यु के वक्त भी अपने मुंह से हे राम! शब्द निकला था। उन्होंने बताया है - " आज रामनाम मेरे लिए अमोघ शक्ति है।"[३] उनके शब्दों में राम निर्बल के बल हैं।

गांधीजी ने तन सब दुनिया का और मन सब ईश्वर का बनाया। उनका सिद्धान्त था कि अपने शारीरिक बल से देश तथा जनता की सेवा करनी चाहिए। और अपने मानसिक बल से भगवान की प्रार्थना करनी चाहिए। - यही सत्य है। प्रार्थना गांधी जी के जीवन का एक प्रमुख अंग थी। सवेरे और शाम को दोनों वक्त

---

1. His profound belief in God was more intuitive and emotional than intellectual and meta-physical." Mahatma Gandhi 100 years-P.357

२: गांधी - जीवन - मन्त्र - कल्याण - सितंबर १९७०, पृ० ११५२ ३: आत्मकथा-पृ०

उन्होंने ईश्वर की प्रार्थना की थी। यह उनके जीवन का सूत्र थी। उनका समस्त जीवन प्रार्थनामय था। प्रार्थना ही उनके जीवन का संबल थी और पाथेय थी। उन्होंने कहा है - " प्रार्थना ने मेरे जीवन की रक्षा की है। उसके बिना मैं कभी का पागल हो जाता। -- -- परन्तु मुझे छुटकारा मिला तो प्रार्थना के कारण ही मिला।"[१] अत: प्रार्थना को उन्होंने सबसे महत्वपूर्ण स्थान दिया है। गांधीजी जहां और जिस देश में रहते थे, कभी वे प्रार्थना नहीं छोड़ सके। जेल - जीवन बिताते वक्त भी वे प्रार्थना अवश्य करते थे। जब बीमार रहते थे, तब भी वे लेटे हुए आंखों को बंद करके प्रार्थना किया करते थे। उन्होंने कहा है - " अपने जीवन में जो कुछ कर पाया हूं, उसे प्रार्थना का ही चमत्कार समझना चाहिए।"[२] उनकी यह प्रार्थना उनके आजीवन जारी रही है।

आध्यात्मिक नेता :-

गांधीजी आध्यात्मिक थे और उन्होंने राजनीति, समाज आदि में आध्यात्मिकता भर दी। उनका विश्वास था -" आज देश के दुर्दिन के समय यह बात स्वीकार कर लेने का समय आ गया है कि राजनीति को आध्यात्मिकता से पूर्ण किये बिना भारत का कल्याण असंभव है।"[३] उन्होंने अपनी आध्यात्मिकता का समन्वय करके एक प्रकार के नये मनुष्य को उत्पन्न किया जो निर्भय, दयालु और निर्लोभी थे।[४] गांधीजी आध्यात्मिक विचारों की कुंजी हैं। देश के राजनीति, समाज, अर्थ, धर्म आदि के क्षेत्रों में को आध्यात्मिक बनाने का उनका उद्देश्य था कि इन क्षेत्रों में बुद्धिवान तथा धर्मप्राण मानवों का उदय हो। इसके मूल में उनकी धार्मिक - समन्वयवादी भावना वर्तमान थी।

आत्मिक नेता और महात्मा :-

गांधीजी का आत्मबल प्रबल था। वे आत्मा में अतीव भरोसा रखते थे। उनके आत्मबल की अद्भुत शक्ति के कारण वे महात्मा हो गये। गांधीजी

१: गांधी - जीवन - सूत्र - कल्याण - जून १९७० - पृ ६६०
२: गांधीजी से क्या सीखें - पृ ५१ ३: महात्मा गांधी - पृ ५

४: "By the practice of spiritual exercises, by fasts and prayers, he aimed at the production of a new type of human being, fearless, greedless and hateless."
- Mahatma Gandhi 100 years-P.3

ने जो कुछ किया है, अपने आत्मबल से ही किया है। उनमें शारीरिक बल की बात भी नहीं उठती थी। वे सारी देशगत समस्याओं का समाधान अपनी आत्मा के द्वारा ढूंढ निकालते थे। यह उनकी विलक्षणता थी। इसको गांधीजी ने खुद 'अंदर के देवता की आवाज' कहा है। इसके बारे में डा० घोष ने यों कहा है - 'जाग्रत अवस्था में बहुत सोचकर भी जिस समस्या का समाधान वे नहीं खोज पाये, सोचते सोचते सो जाने पर नींद टूटने के थोड़ा पहले या उसके साथ ही साथ हठात् प्रकाश दिखाई पड़ा। अर्थात् समस्या का समाधान मिल गया। इसी को गांधी ने 'अन्दर के देवता की आवाज' कहा है।[1] गांधीजी ने जो कुछ किया था अपनी आत्मा के आज्ञानुसार किया है। गांधीजी सदा अपनी आत्मा के द्वारा शासित होते थे। वे इसलिए महात्मा माने जाते हैं कि उन्होंने अपनी आत्मा की गहराई के अंतराल में पैठने की साहसिक एवं अद्भुत क्षमता रखी थी। अत: उनका कथन यह था - 'भगवान की सृष्टि में अनुचित कुछ होता नहीं है। इसी को दूसरे शब्दों में यों कहिये कि जो होता है, उसे अनुचित मानकर समझ से परे हटा देने के बजाय समझ के द्वारा उसके कारणों में जाने का धैर्य चाहिए।[2] यही उनके महात्मा होने की महिमा है।

गांधीजी बड़े ऋषि थे। उन्होंने आत्म-शुद्धि और धार्मिक विच विचारों को पवित्र बनाने पर जोर दिया था। गांधीजी बड़ा ही पुनीत जीवन बिता थे। उन्होंने अपनी आत्मा के बल से देश को मुक्त किया। गांधीजी ने ईश्वरत्व का अंश बड़ी मात्रा में विद्यमान है। वे एक प्रकार से देखने पर ईश्वरीय मानव थे। गांधीजी के व्यक्तित्व की अन्य कुछ विशेषताएं भी उल्लेखनीय हैं। गांधीजी बड़े उदारमना व्यक्ति थे। उनके मन में किसी के प्रति विद्वेष की भावना तनिक भी नहीं था। अंग्रेज लोग भारतीय जनता के शत्रु थे, लेकिन गांधीजी ने उनके प्रति भी उदारता का व्यवहार किया था। उन्होंने अपने शत्रु को अपने मित्र मानने का प्रयत्न किया। वे बड़े त्यागी और दानशील थे। वे असहायों के लिए सबकुछ दान देना चाहते थे। गांधीजी मधुरभाषी वक्ता थे। उनकी मधुर एवं स्नेह भरी वाणी ने

- -

१: महात्मा गांधी - पृ० १०६

२: अकाल पुरुष गांधी - पृ० १७७

समस्त संसार के लोगों को मुग्ध कर दिया । उनके मुंह से कभी भी एक कटु शब्द तक नहीं निकलता था । यही उनकी विशेषता थी । गांधीजी बड़े शांत स्वभाव के व्यक्ति थे । अत: उनकी वाणी से सदा कोमल वचन ही प्रस्फुरित होता था ।

वे हंसमुख थे । उनकी मुस्कुराहट ने समस्त जनता को मुग्ध किया इसी में सारी जनता अपने समस्या का समाधान ढूंढती थी । उनकी हंसी, मुस्कान आदि के बारे में डा० जकोर हुसेन का कथन यहां उल्लेखनीय हैं ।[१] वे लड़कों, लड़कियों युवकों तथा बूढ़ों के साथ हंसते - हंसते बातें करते थे । उनमें रसिकता की मनोवृत्ति थी । वे सबके साथ रत्कर मजा उड़ाते थे । उनका हृदय प्रेम से लबालब हो उठता था । बच्चों को वे बहुत प्यारकरते थे और वे बच्चों के ' बापू ' कहलाये । इस प्रकार गांधीजी ने अपनी मधुर प्रेमपूर्ण वाणी के द्वारा जनता पर बहुत बड़ा प्रभाव डाल दिया ।[२] हम ऐसे अनेक लोगों को देख सकते हैं जिन्होंने उनके मुस्कान पर अपना सब कुछ वार दिया है । महान व्यक्ति होने पर उनका स्वभाव अत्यंत सरल था । उनमें बच्चों का-सा दिल, बच्चों की-सी बोली, बच्चों का सा मुस्कान आदि थे ।

गांधीजी ब्रह्मचर्य का पालन करते थे । देश की सेवा के लिए उन्हें ब्रह्मचर्य स्वीकार करना था । 'गांधीजी इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि ब्रह्मचर्य पालन के बिना पूरे मन से सेवा कार्य संभव नहीं है - आत्मोपलब्धि तो बहुत दूर की बात है । '[३] इसके अनुसार उन्होंने सन् १९०८ में ब्रह्मचर्य का व्रत ग्रहण किया । ब्रह्मचर्य के व्रती होकर भी गांधीजी नारी से दूर रहना नहीं चाहते थे । उनके इस व्रत की महिमा यह ब मानी जाती है कि घर घर की नारियां अपने पति- धर्म को भूलकर बलि- धर्म के अनुयायी बनीं । ' उनके ब्रह्मचर्य का व्रत एक अमोघ व्रत था । उनके अनुसार

- -

1. "His smile, his laughter, his charm were essential elements of the design, so were his sincerety and humility."
 - Mahatma Gandhi 100 years-P.125

2. "Gandhiji's words were full of love and charity and because of this they had great power over the people. He influenced the millions through service, love, love of God."

 - Ibid. P. 198

३: महात्मा गांधी - पृ० ७५

ब्रह्मचर्य के संपूर्ण पालन का अर्थ है , ब्रह्म - दर्शन । "[१] ईश्वर साक्षात्कार के लिए भगवान की उपासना की चर्या, यही ब्रह्मचर्या थी । इसके द्वारा ब्रह्म अथवा परमात्मा का दर्शन यही उनका लक्ष्य था ।

समय - पालन और कर्तव्य - निष्ठा गांधीजी के प्रधान गुण थे । समय का मूल्य वे जानते थे और उसका पालन करना उनके लिए अनिवार्य कर्म था । जब गांधीजी पाठशाला में पढ़ते थे उस समय ही एक घटना ने उन्हें समय - पालन का पाठ सिखाया और जो उन्होंने सीखा, वह अपनी जीवान्त तक जारी रहा है । घटना यह थी कि एक बार कसरत के लिए गांधीजी बहुत देरी से गये । जब वे वहां पहुंचे तब सब लौट रहे थे । अगले दिन उनकी गैरहाजिरी पर अध्यापक ने जुर्माना किया बाद में यह जुर्माना माफ कर दिया गया । गांधीजी को इस घटना ने उसी दिन से समय- निष्ठ बनाया । गांधीजी जो काम जब और जहां करना था वैसा ही करने की श्रद्धा रखते थे ।

गांधीजी बड़े ही कर्मठ व्यक्ति थे । उनकी इस अद्भुत क्रियाशीलता पर भगवद्गीता का खूब प्रभाव है । उनका इस पृथ्वी पर जीना ही एक प्रकार से क्रियाशील रहना था । अपनी कार्य - सिद्धि - भारत की स्वतंत्रता- प्राप्ति के लिए वे जिन्दा रहे और जब कार्य सिद्ध हुआ, तब वे इस संसार से चले । उनके लिए इतना ही काफी था । गांधीजी ने कई बार यही कहा है - " मेरे राम को इस शरीर से और कुछ काम लेना होगा तो वह इसे रखेगा, नहीं तो उठा लेगा । "[२] गांधी जी की भाग्य लेखा में विश्राम का नाम तक नहीं रहा था । वे जैसे थे, वैसा ही उनका कर्म भी था । जैनेन्द्र जी ने जो कहा है, वह गांधीजी पर लागू होता है । राजकीय महापुरुषों का कर्म विराट किंतु व्यक्तित्व संकीर्ण होता है । मानो उस कर्म की बृहत्ता के पीछे मन प्राण की संकुचितता छिपी रहती है ।[३] गांधीजी के कर्म ने कालांतर में बृहत् फल उत्पन्न किया । वे अपना काम आत्मिक बल की प्रेरणा से करते थे ।

१: आत्म - कथा - पृ० १७९

२: गांधी - जीवन - सूत्र , कल्याण - सितंबर १९७०
- पृ० ११५३

३: अकाल पुरुष गांधी - पृ० ४७

देश के सारे कार्य- क्षेत्रों में गतिशील रहे । अत: इन्हें इस दृष्टि से अनेक अनुयायी मिले । उनकी प्रवृत्तियां अनेक थीं, पर प्रेरणा एक । उन्होंने राजा को सेवक और प्रजा को मालिक माना है । ' अपनी वाणी और कर्म से वह बराबर वातावरण में यह भावना भरते रहते थे कि राजा तो सेवक है और प्रजा मालिक है ।'[१]

गांधीजी बड़े ही व्यावहारिक श्रमिक और काम- काजी थे । उन्होंने मानव से संबंध स्थापित करने के लिए कर्म चाहा है । कर्म के द्वारा ही वह संभव है । यही उनका मत था । उनका कथन था - ' श्रम के बिना प्रेम विलास हो जाता है, यज्ञ नहीं रहता । जो प्रेम- भोग है वह श्रमहीन है और स्वार्थमय है । श्रम से चेतना स्वाधीन होती है और व्यक्ति निर्भीक बनता है ।'[२] समस्त संसार के आगे गांधीजी ' कर्मवीर गांधी ' रहे हैं । अब तक गांधीजी के व्यक्तित्व के विभिन्न पहलुओं पर विचार किया गया । लेकिन इनके अतिरिक्त उनके व्यक्तित्व की और एक विशेषता यह है कि वह अनंत समन्वयात्मक था । उन्होंने राजनीति में धर्म और अर्थ, समाज में राजनीति आदि का समन्वय किया है । राजनीति, धर्म और समाज और अर्थों में से एक के बिना दूसरा पूर्ण तथा अर्थहीन है । यही उनका मत था । देश की उन्नति में सब का समान अधिकार है और उनसे किसी एक को छोड़ना संभव नहीं । उन्होंने स्पष्ट रूप से बताया है - ' राजनीति को अलग करके सुदूर भविष्य में सामाजिक जीवन चलने की भी संभावना नहीं है । '[३] और भी ' धर्म सर्वव्यापी चीज ' है, राजनीति को अलग करके धर्म नहीं होता , न धर्म को अलग करके राजनीति ही होती है । यही उनकी सर्वांगीण दृष्टि थी । '[४] वे राजनीति को धर्म और नीति से अलग न कर सके । वे सब में समन्वय चाहते थे । उनका कथन यही था कि सर्व- समन्वय में ही जगत् का कल्याण निहित है । गांधीजी के समन्वयात्मक व्यक्तित्व

- -

१: अकाल पुरुष गांधी - पृ० ५६
२: अकाल पुरुष गांधी - पृ० १८७
३: महात्मा गांधी - पृ० ५
४: महात्मा गांधी - पृ० ५

गुणगान विभिन्न विद्वानों द्वारा किया गया है। [१]

निष्कर्ष :-

उपर्युक्त विश्लेषण से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि गांधीजी इतने महान व्यक्ति थे कि उनका चिन्तन - मनन न करने वाला कोई नहीं है भारत के इतिहास के लिए गांधीजी एक अमूल्य निधि हैं। उनके आगमन से भारत का इतिहास भी बदल गया। भारत का समस्त सार्वजनिक कार्य उनके सिर पर था और तब से भारत गांधीजी का और गांधीजी भारत के हो गये। वे ही एकमात्र व्यक्ति थे जिन्होंने अपने जीवन की पवित्रता, ~~अपने जीवन की~~, व्यक्तित्व की अमन्द प्रतिमा अपनी वाणी की मधुरिमा और अपने चरित्र के विशिष्ट गुणों की महिमा आदि

- -

१: (अ) शासन के समान बुद्धि की तटस्थता और भक्त के समान हृदय की सहज द्रवणता - गांधी एकसाथ स्वयं में दोनों का समन्वय है।

- अकाल पुरुष - पृ० १८८

आ): गांधी अपने अकेले व्यक्तित्व में दोनों तटों के संयोजक हैं - आदर्श और यथार्थ स्वप्न और श्रम, धर्म और राजकारण, और विश्लेषण - संश्लेषण।

- अकाल पुरुष गांधी - पृ० १८८

इ) श्री सुनीतिकुमार चट्टर्जी के शब्दों में -

" The sumtotal of my experiences of of Mahatmaji's personality was a great man who had faith in himself and in his ideas; and he had a real love for our masses who he wished should live a good life, prospering in this world and with health in their souls." - Mahatma Gandhi 100 years-P.48

" To me Gandhiji is not a collection of dry thoughts and dicta, but a living man who reminds one of the highest level to which a human being can evolve."
- Ibid.P. 90

E) In the words of Sri Giri - " Gandhiji was a statesman, cian, a social reformer,an orator,a writer,a teacher, a h a cosmopolitan,and seeker after truth,a sage, a saint, an prophet, all rooted into one." IbidP.96

F) He also adds " In Gandhiji I discovered the embodiment o Red-cross ideals- quest for peace,good-will,compassion,a yearning to help and succour those in need." IbidP.96

G) In the words of Sri Khunsru- " He is a man who may well b as a man among men, a hero among heroes,a patriot among p and we may well say that in him Indian humanity at the pr time has really reached its water -mark." -Ibid.P.224

H) According to Sri Gunnar Merdall -"" Mohandas Gandhi's per was a gem, faced with immence richness,. " IbidP.260

I) According to Sri Ramchandraji- " He was atonce a saint an revolutionary, a politician and a social reformer,an econ and a man of religion,an educationist and a satyagrahi,de alike of ~~religion and~~ faith and reason, Hindu and inter-r nationalist and internationalist, a man of action and a d of dreams. "

- Ibid.P. 318

J) According to Sri Santanam -

" His personality was compounded of many qual: which it is hard to find in the same person. he had almo absolute control over his word, thought and action. He wa always genial and pleasant and willing to joke and to lau But he never wasted words, and spoke with the same brevit and carefulness ~~which~~ with which he wrote. He was extrem strict and ascetic in his own personal life, but he was extremely tolerant and even indulgent to others,. "

- Ibid.P.366

द्वारा देश को भयानक एवं शिथिल परिस्थितियों से जूझकर भारत को मुक्त कर दिया। उनके व्यक्तित्व के अनेक पहलू होते हैं और प्रत्येक का अपना अपना महत्त्व भी रहता है।

गांधीजी के जीवन और व्यक्तित्व की महत्ता यह है कि हम जितना ही उन पर कहें, लिखें और पढ़ें, वे सब अपूर्ण ही जान पड़ते हैं क्योंकि आलोचना की दृष्टि से इनका चित्रण और वर्णन असंभव है। यह तो निस्सन्देह कहा जा सकता है कि उनका जीवन और व्यक्तित्व भारत की वर्तमान तथा आगामी जनता के लिए प्रतीक एवं पाठ बन जायगा। भारत के लिए यह तो बड़े ही गौरव की बात है कि उसे एक ऐसे महान व्यक्ति मिले हैं जिन्होंने मानव के अनन्त प्रेमी रहकर उनके कल्याण के लिए अपना जीवन अर्पित किया है। उनके ऐसे व्यक्तित्व के आगे, कि जिसमें कुसुम - सी कोमलता तथा वज्र - सी कठोरता रहती है, हम सदा विनत हो जाते हैं तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

गांधीजी का प्रभाव :-

प्रभाव के बारे में कहते ह हुए एक अमेरिकन विद्वान ने कहा है - "किसी व्यक्ति की श्रेष्ठता अथवा महत्ता इस दृष्टि से आंकना चाहिए कि उस व्यक्ति के जीवनादि का प्रभाव दूसरों पर कहां तक और कितना पड़ा है।"[१] इस कथन की दृष्टि से देखने पर गांधीजी का भारतीय समाज और जनता पर जो प्रभाव पड़ा है, उसे पूरा पूरा आंकना संभव नहीं। फिर भी गांधीजी की महानता का मूल्यांकन करते समय उनके प्रभाव की तीव्रता को जान लेना आवश्यक है। गांधीजी का प्रभाव भारतीय एवं विदेशीय नेताओं पर खूब पड़ा है। भारत की सारी जनता की नस - नस पर इनका प्रभाव स्पष्ट है। गांधीजी से प्रभावित प्रमुख महाव्यक्तियों की झांकी की चेष्टा की जा रही है। उनमें गहराई की दृष्टि से प्रमुख हैं विनोबा भावे। वे बाल ब्रह्मचारी हैं। इन्होंने ब्रह्मचर्य का व्रत लेकर उसका पालन किया है। विनोबा व काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में संस्कृत का अध्ययन करने चले थे। इस विश्वविद्यालय के समारोह की बेला में गांधीजी का भाषण हुआ था। भाषण सुनने से विनोबा पर

---

1. " Ultimately the greatness of a man must be measured not by the amount of adulation accorded to him but by the impact of his life on others. " - Profiles of Gandhi-P.7

गांधीजी का बड़ा असर पड़ा। अन्त में उन्होंने गांधीजी के चरणों में अपने को सेवार्थ सौंप दिया। "आप साबरमती आश्रम गए और महात्माजी के रंग में ऐसे रंगे कि अपना जीवन उनके चरणों में सौंप दिया।"[१]

साबरमती आश्रम में वे गांधीजी के साथ रहते थे। उन दिनों उन्होंने भोजन पर संयम रखा था। मसाले और नमक का त्याग किया, केले, दूध, और नींबू का प्रयोग हुआ। अस्वाद व्रत, अपरिग्रह, सत्य, अहिंसा और ब्रह्मचर्य आदि को अपनाया जो गांधी जीवन के अंग थे। भोजन बनाना, पाखाना साफ करनाआदि कार्य वे ही करते थे। गांधीजी के आज्ञानुसार वे वर्धा में आश्रम खोलने गये। आश्रम के कार्यक्रम में उन्होंने कठोर से कठोर नियम रखे। इसका ध्येय यह था कि आश्रम के लोग कठिन प्रयत्न से ही अपनी जीविका चलायें। विनोबा जी खुद सूत कातते और अपने लिए आवश्यक धन कमाते थे।

गांधीजी के सत्याग्रह आंदोलन में उन्होंने सोत्साह भाग लिया। उनकी दण्डी यात्रा में भी विनोबा जी ने साथ दिया। उनके सत्याग्रह आंदोलन पर विनोबा ने अनेक भाषण दिये थे। इनके फल-स्वरूप वे कई बार जेल गये और उपवास का भी अनुष्ठान किया। जब महात्मा जी की मृत्यु हुई, तब विनोबा ने उनके छोड़े अपूर्ण कार्यों को अपने कंधों पर ले लिया और इसी के व्यवहार में अपना शेष जीवन बिताने का भी निश्चय किया। गांधीजी की हिन्दू - मुस्लिम - मैत्री की जो इच्छा थी, उसकी पूर्ति विनोबा ने की।

गांधीजी की भांति विनोबा भी अपनी बीमारी के लिए औषधि का उपयोग नहीं करते थे। अपनी बीमारी के वक्त वे यों कहा करते थे - "यदि प्रभु को इस शरीर से कुछ काम लेना होगा, तो ठीक है। अन्यथा भलेही यह नष्ट हो जाए। मैं तो उस परमात्मदेव के हाथ में हूं।"[२] विनोबा ने निष्काम सेवा पर ही बल दिया। वे सर्वोदय सिद्धान्त के बड़े प्रवर्तक थे।

१: विनोबा भावे - पृ० १९

२: वही० पृ० ३५

गांधीजी से जवाहरलाल नेहरू सबसे पहले पूना में मिले थे। गांधीजी के दर्शन और परिचय से उन्होंने उनके व्यक्तित्व का ज्ञान प्राप्त किया। नेहरूजी में गांधीजी के प्रति जो प्रेम था, वह प्रबल था। उनका मन प्रारंभ में गांधीजी की अहिंसात्मक राजनीति को मानने तैयार नहीं था। लेकिन वह मन बाद में बदल गया। वे गांधीजी को अपना एकमात्र आचार्य मान गये। गांधीजी नेहरूजी को अपना एकमात्र उत्तराधिकारी कहते थे। उपवासादि आदि बातों पर गांधीजी जो प्रतिज्ञा लेते थे उन्हें नेहरूजी बड़ा महत्वपूर्ण मानते थे। वे गांधीजी पर बड़ी श्रद्धा रखते थे। सार्वजनिक कार्यों में गांधीजी के साथ नेहरूजी सदा संलग्न रहते थे और इसे वे अपने बड़े सौभाग्य की बात समझते थे।

लाल बहादुर शास्त्री और गांधीजी का प्रथम दर्शन तथा मिलन तब हुआ जब वे दक्षिण अफ्रीका से भारत लौट आये। यह तो शास्त्री जी के लिए सौभाग्य की बात थी कि वे अपनी बारह वर्षकी उम्र में गांधीजी का दर्शन कर सके। उनके दर्शन और मिलन ने फौरन शास्त्री जी पर प्रभाव डाल दिया। शास्त्री जी क्रांतिकारी होने वाले थे, लेकिन गांधीजी के प्रभाव से उनका० मन बदल गया। श्रीमहावीर अधिकारी ने कहा है : " अगर सन् १९२० में गांधी जी फिर बनारस न आते तो हो सकता कि लालबहादुर क्रांतिकारी दल में प्रवेश कर जाते। "[१]

शास्त्रीजी के जीवन पर सबसे अधिक प्रभाव गांधीजी का ही पड़ा है। हाई स्कूल में पढ़ते वक्त ही उन्होंने महात्मा जी की पुकार पर अपना अध्ययन समाप्त करने का निश्चय किया था। वे विद्यापीठ की पढ़ाई स्थगित कर राजनैतिक संग्राम में कूद पड़े। जेल का कष्ट उन्होंने कई बार झेला। उनकी संगठन- शक्ति जबरदस्त थी और कूटनीति में वे कुशल थे। स्वाधीन भारत में राज्य सरकार के मंत्री, केन्द्र सरकार के मन्त्री और अन्तमें प्रधान मंत्री बनने की योग्यता उन्होंने पूर्णतः प्रामाणित की थी। शास्त्री जी नेहरूजी से भी अधिक गांधीवादी थे। भारत भूमि के मौन सेवकों में अन्यतम आचार्य नरेन्द्र देव प्रारंभ में कांग्रेस के ही सदस्य थे। बाद में प्रगतिशील मत के

- -

१: लाल बहादुर शास्त्री - पृ० ४४

कारण वे जयप्रकाश नारायण आदि के साथ कांग्रेस से अलग होकर समाजवादी दल में आ गये। तथापि बापूजी के प्रति अपना विनीत- ममता संबंध वर्णन करने में बड़ा गर्व अनुभव करते थे। इन्होंने भी गांधीजी से प्रभावित होकर इस प्रकार कहा है कि गांधीजी की बताई राह पर जनता को आगे बढ़ना चाहिए और यही उनकी सच्चे अर्थ में आराधना और उपासना हो सकती है। उन्हें देवता कहने या उनकी यादगारी के लिए मंदिरादि बनाने का इन्होंने विरोध किया है। गांधीजी के सत्य - अहिंसात्मक समत्व - मार्ग पर उन्हें बड़ा विश्वास था और इसी मार्ग पर चलते हुए गांधी जी के अनुयायी बनने का जनता का आह्वान किया है।

इन नेताओं के अतिरिक्त अन्य नामी व्यक्तियों का भी उल्लेख किया जा सकता है जो गांधीजी के प्रभाव से अत्यधिक प्रभावित थे। इस पूरे युग में गांधीजी ही सर्वप्रभावशाली पुरुष थे। वस्तुत: यही कहना कठिन है कि वर्तमान युग के कौन से भारतीय महात्मा गांधी से प्रभावित नहीं रहे हैं। भारतीय ही नहीं, अनेक विदेशी नेताओं के व्यक्तित्व और जीवन पर भी गांधीजी का प्रभाव अत्यधिक पड़ा।[१] उनके अनेक विदेशी मित्र और शिष्य थे। महात्मा जी पर लिखते हुए विदेशी लेखकों ने पूरी श्रद्धा प्रकट की है। यदि चर्चिल ने गांधीजी पर व्यंग्य किया तो उस व्यंग्य की नींव में गांधीजी की सफलता से चर्चिल के मन में जनित आतंक ही इसका कारण था। श्री विल ड्यूरन्ट (Durant) ने गांधीजी से प्रभावित होकर उनका रूप - चित्रण प्रस्तुत किया है।[२] इन्होंने गांधीजी के चारित्रिक और व्यावहारिक कार्यों पर विचार व करते हुए उनका गुणगान किया है। हेरिसन और गांधीजी की

- -

1. " Leaders of men abroad have admired Gandhiji as one who developed an effective new'technique'based on non-violence for struggling against wrong. "

   - Mahatma Gandhi -100 years-P.310

2. "Picture the slightest,frailest man in Asia,with face and flesh of bronze,close cropped grey head,his cheekbones,kindly little brown eyes,a large and almost a toothless mouth,large ears... he has preached liberty to his countrymen..... his mind active with ready answers to every questioner of freedom."

   -Profiles of Gandhi-P.11

मुलाकात हुई तो तभी वे गांधीजी से प्रभावित हुए थे। उन्हें वे अपने घर के आदमी जान पड़े। उन्होंने गांधीजी का दर्शन एक पुण्यात्मा की तरह किये।[1] गांधीजी की बातचीत में ही उन्हें प्रभावित किया था। उनकी बातचीत साधारण-सी नहीं थी। बातचीत में जो प्रश्न पूछा जाता था उसे बड़ी सावधानी से सुन लेते थे। प्रश्न की आवृत्ति होती थी जिससे वे खूब समझ लेते थे, फिर उसका उत्तर देते थे। ऐसा करने में उनमें अपार क्षमता थी।

Bohn Fisher.)

डा० फिशर (Dr.Frederick) ने गांधीजी को पहले - पहल सन् १९१७ में देखा था। उनकी गांधीजी के प्रति आदर-भावना ने इन दोनों को मैत्री की डोरी में बांध दिया। उन्होंने गांधीजी को दूरदर्शी यंत्र के रूप में मान लिया था।[2] गांधीजी के शांत व्यक्तित्व से वे अत्यन्त प्रभावित थे और उन्होंने उसे अनदेखा तथा असामान्य व्यक्तित्व घोषित किया है।[3] उन्होंने गांधीजी को शांति और समाधान का राजनैतिक नेता कहा है। श्रीमती फिशर (Mrs.Fisher) ने अपने पति के साथ गांधीजी के दर्शन किये थे। उनके आचार - विचार, वेश-भूषा

- -

1. " Gandhiji's face was very mobile, every feature quivered and a constant change played over his face when he talked. He practised his passive resistence on me all the time while I worked, he submitted to my modelling him, but never willingly lent himself to it. "

   - Profiles of Gandhi.P.18

2. I use Mohandas Karamchand Gandhi as a telescope through which to view this balancing of force ; because he is without controversy, the outstanding personality of the new east. "

   - Ibid.P.21

3. " Never did I see more clearly in any personality such absobing love for men. and I have seldom heard more refreshingly scientific and practical suggestions for social improvement and growth. "

   - Ibid.P. 22

आदि से वे प्रभावित थीं । उनके जाति- ऐक्य संबंधी विचारों पर इनका बड़ा विश्वास था । श्रीमती सांगर (Margaret Sanger) जब गांधीजी से मिलीं, तब उनके व्यक्तित्व ने उनको पागल बना दिया । वे उनकी मुख - कांति की शोभा का वर्णन करने लगीं ।[१] डा० तर्मन (Thurman)का गांधीजी से प्रथम मिलन वर्धा में हुआ था । गांधीजी ने इनका स्वागत सत्कार किया और इसके बाद देर तक वार्तालाप हुआ । गुलामी के बारे में गांधीजी ने इनसे कई प्रश्न किये और उनका उत्तर इन्होंने दिया । श्री तर्मन गांधीजी के व्यवहार से अत्यंत प्रभावित हुए ।[२]

श्री गुंथर (John Gunther) और गांधीजी की भेंट हुई जब गांधीजी वर्धा के पास सेवाग्राम में रहते थे । उनके व्यक्तित्व का प्रभाव इन पर तुरंत पड़ गया । उनके मत में बुद्ध के बाद महान भारतीय गांधीजी थे ।[३] लुई फिशर (Louis Fisher) सन् १९४२ - १९४६ में गांधीजी के अतिथि बनकर रहे थे । अन्य अमेरिकन नेताओं की अपेक्षा फिशर गांधीजी से अधिक परिचित थे । उन्होंने गांधीजी पर कई ग्रन्थ भी लिखे हैं । वे गांधीजी के व्यक्तित्व से अत्यंत प्रभावित थे ।[४]

---

1. " He was an unusual light that shines through the flesh, that circles around his head and neck like a mist with white sails of a ship coming through." -Profiles of Gandhi.P.36

2. " His manner was simple, direct and heart enveloping. "Ibid.P.43

3. " An d he is the only man in India who by a single word, by lifting his little finger, could instigate a new national revolt who could start civil disobedience again among more than 360,000000 people - roughly a fifth of the human race."

   - Ibid .P. 47

6. " He was very vivid. He looked strange and was always an exciting copy. You could not find him in one interview or in six interviews. His thought process was circular and he sometimes stubbornly refused to let you follow him around more than one segment of the circumferance. The rest .... life time. "

   - Ibid.P. 54

श्री रॉबर्ट (Robert Trumbull) गांधीजी से केवल तीन बार ही मिले थे। फिर भी उन पर गांधी जी का प्रभाव बिना पड़े न रह सका। गांधीजी और उनकी अन्तिम बातचीत के बारे में उन्होंने कहा है कि गांधीजी बड़े सरल थे जिससे वे अत्यन्त प्रभावित हुए।[1] उन्होंने गांधीजी को उपवास कला का अधिकारी एवं शासक कहा है। जब एक बार उन्होंने गांधीजी को अपने जन्मदिन की याद दिलाई तब गांधीजी ने कहा कि प्रतिदिन उनका जन्मदिन है और उनका भी। प्रतिदिन हम सब जन्म लेते हैं और नया जीवन शुरू करते हैं। इस कथन का प्रभाव इतना पड़ा कि वे आगे और गांधीजी की मृत्युके बाद भी इसे दुहराते थे। श्री टेलर पर (Edmond Taylor) गांधीजी की बातचीत का बहुत असर पड़ा था।[2] उन्होंने बताया है कि राष्ट्रीय नेतृत्व का लक्ष्य दूसरों के व्यक्तित्व को सुधारने का रहा है। गांधीजी की अहिंसा उन्हें बहुत प्रिय थी।

श्रीमती मार्गरेट (Margaret White) पर गांधीजी का प्रभाव इतना पड़ा था कि वे हमेशा गांधीजी के साथ रहना चाहती थीं। उन्हें देखे बिना वे एक क्षण तक नहीं रह सकती थीं। उनके साथ मिलने, रहने और बातचीत करने की प्रबल इच्छा रखती थी। इसका कारण यह था कि वे गांधीजी के कई चित्र (फोटो) लेना चाहती थीं। उन्होंने चरखा चलाने वाले गांधीजी का एक बड़ा चित्र

---

1. " I remember the last conversation best, because in it Gandhi revealed a side of his character that has been little publici This was his sense of Humour. "Profiles of Gandhi-P.65

2. " He spoke softly, casually, intimately, like a grandfather speaking to his children, in an earnest, reasonable voice, marvellously controlled, full of self-discipline and inner-harmony. "

- Ibid .P.71

लिया भी था। उन्हें सूत कातना बहुत प्रिय लगता था और गांधीजी के कातने की कला के सिखाने की प्रार्थना भी उन्होंने की थी। श्री आल्बर्ट ऐंस्टाइन (Albert Einstein) ने गांधीजी पर बहुत कुछ लिखा है और इसका कारण है गांधीजी का उन पर पड़ा हुआ असर। उन्होंने उनके सार्वजनिक कार्यों की प्रशंसा की है जो भारत को स्वतन्त्रता- प्राप्ति के सिलसिले में किये गये थे। उन्होंने बताया है कि गांधीजी द्वारा प्रवर्तित सारा कार्य इस सत्य का जीवन्त प्रमाण है कि भौतिक बल से बढ़कर आत्म - विश्वास ही अत्यन्त बलवान है।[१]

Miss.
श्रीमती पर्लबक (Pearls Buck) गांधीजी की वाणी, ममता, चिन्तनशीलता आदि से अत्यन्त प्रभावित थीं। उन्होंने कहा है कि गांधीजी ने जनता के सामने अहिंसा के महान तत्त्व को रख दिया है और हिंसा को त्यागने का महत् उपदेश भी दिया है। गांधीजी के अहिंसा - मार्ग पर यदि भारत के लोग बढ़ सकते हैं तो भारत एक महान देश कहलायेगा।[२] श्री एड्गार पी० स्नो (Edgar P. Snow) ने गांधीजी के सार्वजनिक कार्यों की प्रशंसा की है। उन्होंने उन्हें राजनीतिक नेता माना है। संक्षेप में उन्होंने गांधीजी को अवतार - पुरुष मानते हुए कहा है कि गांधीजी ने जो अवतार लिया था, उसके तीन कारण होते हैं।[३] श्री माकूहोनारल

- -

1. " His work on behalf of India's liberation is living testimony to the fact that man's will, sustained by an indomitable convi tion, is more powerful than material forces that seem insurmountable. "-Profiles of Gandhi.P.100

2. "India will live and become great in our world,only as her people use this priceless force, the force of non-violence, which the life of Gandhi exemplified for them ." Ibid.P.104

3. "... He became an avatar for three reasons. He embodied man's need for meditation based on attainment of individual and collective reform by non-violent action."

- Ibid.P. 107

(Dwight Macdonald) पर गांधीजी के छुआछूत संबंधी विचारों का अत्यंत प्रभाव पड़ा था। उन्होंने देखा कि गांधीजी साधु - सन्त थे। वे ही एक ऐसे नेता थे जो जनता के साथ अपना जीवन बिता सके थे। वे उन्हें अत्यन्त प्रिय थे।[1] वे एक अलौकिक व्यक्ति थे। वे बड़े ही रसिक, चतुर, हठी और अभ्यासी थे। श्री राल्फ टि० टैम्पलिन (Ralf T. Templin) पर गांधीजी का हलका प्रभाव पड़ा है। उन्होंने गांधीजी के आन्दोलनों की महत्ता का प्रतिपादन किया है। उनके अहिंसा, सत्याग्रह, स्वदेशी - भावना, आदि का उन पर प्रभाव स्पष्ट है।

डा० होम्स (Rev.Dr.John Haynes Homes) ने गांधीजी पर अनेक पत्रिकाओं में कई लेख प्रकाशित किये हैं। ये गांधीजी से बारबार मिलते थे और अपनी मित्रता को सदा बढ़ा लेते थे। उन्होंने गांधीजी से लिखी गयी और गांधीजी पर लिखी गई अनेक पुस्तकों को संगृहीत कर रखा है। गांधीजी के बारे में उन्होंने अपनी जो सम्मति दी है, उसके अनुसार गांधीजी का संपूर्ण जीवन भगवान का ब आदर - मनन करना था। इस संसार में सबसे महान व्यक्ति गांधीजी ही थे - यही उनकी घोषणा थी।[2] श्री हारिंगटन (Donald Harrington) और गांधीजी दोनों

- -

1. " He was dear to me because he had no respect for rail-roads, assembly - belt production and other knick-knocks of liberalistic progress and insisted on examinging their(as against their metaphysical) value.Also because he was clever humourous,lively,hard-headed and never made speeches about Fascism,democracy,the commom man o r world Governmnent."

- Profiles of Gandhi.P.110

2. " To think him was a delight,to love him was an exaltation, to obey him was a privilege."-Ibid.P.126

अमेरिका में मिले थे। उन्हें गांधीजी अत्यन्त प्रिय लगे। वे गांधीजी के साथ घूमने जाते थे और तब बातें किया करते थे। इस प्रकार गांधीजी के साथ घूमना उन्हें बड़े गौरव की बात थी। उन पर गांधीजी का प्रभाव खूब पड़ा था।[1] डा० लूथर किंग (Martin Luther King) को एक बार गांधीजी के जीवन और सिद्धान्तों पर किसी का भाषण सुनने का मौका मिला। तुरन्त ही वे उनसे अत्यन्त प्रभावित हुए। भाषण समाप्त होने के बाद उन्होंने गांधीजी के जीवन से संबंधित कई किताबें खरीदीं। गांधीजी स्वयं शांतिप्रिय थे। और वर्ण- विद्वेष के कट्टर समालोचक भी। इसी कार्य में उनके प्राणों की आहुति हुई। इन नेताओं के अतिरिक्त गांधीजी के प्रभाव को स्पष्ट करने वाले अनेक विद्वान दिखाई देते हैं [2]

जनता पर गांधीजी का प्रभाव कितनी गहराई से पड़ा है इसका वर्णन संक्षेप में किया नहीं जा सकता। वे जनता के साथ हिल- मिल चुके थे और जनता भी उनका बहुत बड़ा आदर सम्मान करती थी। समाज - सुधार, नारी- उद्धार के संबंध अस्पृश्यता - निवारण, विधवा - विवाह आदि जनता से संबंधित अनेक समस्याओं की सुलझन उन्हीं के द्वारा हुई है जिनका एकमात्र जीवन- लक्ष्य जनतोद्धारण तथा

- -

1. " Never have I known a soul so joyous and a carefree one the one had, so full of humour and jokes, and at the same time so burdened with the sorrows of the world. He never let us forget our duties to our fellowmen, and most especially to the humble and the poor and the downtrodden."

   - Profiles of Gandhi.P.164

2. Eleanor Roosevelt,Herbort L.Mathews,Sydney Harris, Dr.Homes A.Jack,Chester Bowels,Vincent Sheean,Ved Mehta, Erik H.Erikson, Maurice J. Gold Bloom, Miss.Mary Mecarthy, and Dr. E. Stanuly Jones. etc. are importent.

जगत्कल्याण था। गांधीजी जनता के लिए मुक्ति-दाता थे और जनता उन्हें राष्ट्रपिता कहती थी। जनता की सुख-शांति उनके लिए सुख-समाधान की बात थी। उनका दरिद्र-नारायणत्व, हरिजन-सेवा-परायणता, सुश्रुषा भावना, जनता के हितार्थ त्याग और ममता आदि जनता पर पड़े उनके प्रभाव के सुन्दर दृष्टान्त हैं। गांधीजी की पुकार पर जितने नर-नारी, बूढ़े-बूढ़ी, बाल-बच्ची, युवक-युवती, आदि उनके मुक्ति-यज्ञ में भाग लेने आते थे। ऐसे जनों की गणना असंभव है। गांधीजी जहां-जहां जाते थे, वहां-वहां उनके दर्शन करने लिए एक जन-सागर ही उमड़ आता था। उनकी प्रार्थना-सभा में असंख्य लोग इकट्ठे होकर उनके साथ प्रार्थना करते थे। जब वे दिल्ली जाते थे, तब हरिजनों के साथ हरिजन बस्ती में रहते थे। उन्हें अछूत लोग इतने प्रिय थे कि उन्होंने उनको 'हरिजन' नाम देकर उन्हें देवत्व प्रदान किया।

जनता पर इनके प्रभाव की तीव्रता का ज्ञान हमें उस समय हुआ जब उनकी मृत्यु हुई। जब वे मर गये, तब उनके घर के चारों ओर ऐसा जन-प्रवाह एकत्र हुआ था, मानो सारा संसार ही आकर खड़ा हुआ हो। डा० जोन्स ने बताया है कि गांधीजी की मृत्यु की खबर सुनकर जनता की एक बाढ़ ही आ गयी थी।[१] भारत के लोगों ने उन्हें 'महात्मा' नाम से भूषित किया है। गांधीजी एक साधारण व्यक्ति थे, फिर भी उनमें असाधारणत्व की झलक दिखाई पड़ती थी। इस असाधारणत्व पर ही समस्त विश्व एवं जनता मोहित हुई थी। गांधीजी का प्रभाव जनता पर पड़ने के कई कारण हैं। भारत की स्वतंत्रता के पूर्व और पश्चात् गांधीजी ने भावी-भारत के निर्माण में जो कार्य किये हैं उनकी सफलता का जनता में पूर्ण विश्वास था। गांधीजी की सत्य-अहिंसा की परिभाषा एवं आलोचनात्मक प्रस्तुतीकरण ने जनता के धार्मिक तथा नैतिक विचारों को डंवाडोल कर दिया। उनके आत्मबल और आत्म-विश्वास

- -

1. " Never before had a flood of love and sympathy been poured out as was poured out on the death of this strange little man. People from every land- people whom we never suspected as being interested in the Mahatma and his ideas and methods poured out their affection. "

~~Principles of~~ Profiles of Gandhi-P.131

जनता पर खूब प्रभाव पड़ा है। उनका आकार - सौष्ठव, दया- ममता, आध्यात्मपरक राजनीति, धार्मिकता और समता, सादगी, फुर्तीली बुद्धिमत्ता, तोतली बोली आदि प्रभाव के कारण हैं। उपवास, सत्याग्रह, अनशन आदि उनकी जीवन- विधियों (प्रिंसिपल्स) से जनता अत्यंत प्रभावित थी। उनके जीवन और व्यक्तित्व ने भी जनता पर भी प्रभाव डाला है। उनका जीवन और व्यक्तित्व दोनों संसार के लोगों के लिए एक प्रेरणा- स्रोत बन गये हैं।[1] अनेक विद्वान और नेता लोग उनके जीवन का ही अनुकरण करते आये हैं।

गांधीजी का प्रभाव केवल भारत की जनता पर ही नहीं समस्त भारत देश और विदेश पर भी पड़ा है। यदि ऐसा कहें कि देश का कण-कण और प्रकृति का तृण-तृण उनसे प्रभावित है तो कोई अनुचित नहीं होगा। भारत पर उनका प्रभाव इतना पड़ गया है कि भारत को ही गांधीजी और गांधीजी को ही भारत कहा जा सकता है। अपने सार्वजनिक कार्यों से बढ़कर वे भारत के स्वतंत्रता- संग्राम के राष्ट्रीय नेता थे और मुक्ति के बाद राष्ट्र-पिता भी थे। विदेशी लोगों पर भी इनका प्रभाव अवश्य पड़ा है। उन्होंने गांधीजी पर कविता, निबंध, लेख आदि लिखे हैं जिनमें गांधीजी के प्रभाव के विभिन्न पहलुओं की आलोचना की गयी। गांधीजी की मृत्यु के बाद भी यह प्रभाव काफी समय तक जारी रहा है। उनके न रहने पर भी उनके आदर्शों एवं सिद्धान्तों की लीक पर चलते हुए, उनका पालन करने और इस प्रकार उन्हें व्यावहारिक रूप प्रदान करने की इच्छा जनता में रही थी। इनका व्यवहार भी एक सीमा तक हुआ। यह तो निस्संदेह कहा जा सकता है कि सारा संसार आज भी उनको याद करता है। उनके जन्मदिन का उत्सव मनाया जाता है और वैसे ही मृत्यु- दिन पर उनके वियोग में सहानुभूति प्रकट की जाती है। उनकी यादगार के लिए तरह तरह के विशेष कार्य - क्रमों की आयोजना भी होती है।

---

1. " His life thus became a profound source of inspiration to his fellow men in all walks of life. "

- Profiles of Gandhi.P.64

संसार भर में जितने साहित्यकार रहे थे और हैं, वे भी गांधीजी से अप्रभावित न रह सके हैं। साहित्यकारों पर इनका प्रभाव बहुत अधिक पड़ा है और इसे समझने के लिए इनकी कृतियों का अध्ययन करना पर्याप्त है। इनके घरेलू जीवन पर भी गांधी- जीवन का प्रभाव स्पष्टत: लक्षित होता है। कवियों, उपन्यासकारों, नाटककारों, कहानीकारों, आलोचकों और लेखकों ने गांधीजी और उनके सिद्धान्तों पर असंख्य कृतियों की रचना की है।

निष्कर्ष में यही कहा जा सकता है कि गांधीजी का प्रभाव कहां तक और कितना पड़ा है। इसका अनुमान करना अब भी मुश्किल ही जान पड़ता है क्योंकि कोई भी वस्तु ऐसी नहीं है जिस पर उनका असर बिल्कुल न पड़ा है। हर कहीं उनके मानवत्व और कर्तृत्व के अंश अंश का प्रभाव दिखाई पड़ता है। अत: उनके प्रभाव की खोज अधूरी ही रह जाती है। गांधीजी ही एक मात्र व्यक्ति थे जिनका इतना अधिक अमिट प्रभाव विश्व पर पड़ा हुआ है। यह प्रभाव कदापि फीका नहीं पड़ने वाला है। जब तक मनुष्य इस दुनिया में रहेगा, तब तक इनका प्रभाव भी अमिट रहेगा। इसलिए जब तक यह दुनिया रहेगी तब तक गांधीजी की याद भी की जाएगी। श्री एम० सी० छागला के शब्दों में - गांधी सब के हृदय में जीवित रहेंगे जो उन्हें जानते थे, उनके साथ काम करते थे और अब उनकी पीढ़ी का अनुकरण करते रहे हैं।[१]

गांधीजी के महात्मापन और सर्वप्रियता का कारण भी यही प्रभाव है। इस विश्व के आधुनिक और आने वाली पीढ़ी के लोगों पर भी ह यह प्रभाव अवश्य बना रहे तो उनकी महत्ता और भी बढ़ती जाएगी श्र।

- -

1. " But I have no doubt that Gandhiji will live in the hearts not only those who knew him and worked with him but also of succeeding generations who will find his name imprinted @ qn the pages of history and whose teachings have moved men to noble deeds and have improved the quality of life and have brought humanity near to the goal of peace and universal brotherhood. "

— Mahatma Gandhi- 100 years- P. 84

अध्याय - ३

गांधीजी, गांधीवाद और हिन्दी साहित्य

अध्याय - ३

गांधीजी, गांधीवाद और हिन्दी साहित्य

हम इस शोध- प्रबंध में आधुनिक हिन्दी काव्य की एक खास प्रवृत्ति का विश्लेषण करना चाहते हैं। वह है गांधी जी के व्यक्तित्व और उनके विचारों- सिद्धान्तों का गहरा प्रभाव। ऐसे विचार एवं विश्लेषण के ऐतिहासिक पक्ष पर प्रकाश डालना इस प्रकरण का ध्येय है। यहां हिन्दी साहित्य के इतिहास का विस्तृत विवेचन या पुनर्मूल्यांकन तो नहीं किया जाता, न उसकी गुंजाइश ही है। तथापि गत युगों के हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियों का संक्षेप में परिचय अनिवार्य लगता है और उसीका प्रयास किया जा रहा है।

हिन्दी साहित्य का प्रारंभ कब हुआ, इसके बारे में मतभेद हैं। उसे विक्रमी सातवीं सदी तक पुराना घोषित करने वाले इतिहासकार हैं। दूसरी तरफ संवत १०५० से उसका प्रारंभ भी माना जाता है। डा० रामकुमार वर्मा ने इसका आरंभ संवत् ७०० से बताया और डा० विनयतोष भट्टाचार्य ने संवत् ६९० से रखा है। लेकिन आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जी ने इसका आरंभ काल संवत् १०५० से स्थापित किया है। बाद में यह मत अधिक प्रामाणिक माना गया है। उन्होंने अध्ययन की सुविधा के लिए संपूर्ण हिन्दी वाङ्मय को चार बड़े युगों में विभाजित किया है। वे हैं - वीरगाथा काल, भक्ति काल, रीतिकाल और आधुनिक काल। इन समस्त युगों की अपनी - अपनी विशेषताएं भी हैं।

वीरगाथा काल में राजपूतों और सामन्तों का गुण- कीर्तन करने वाले चारण कवियों द्वारा वीरगाथाओं का प्रणयन होता था। विजयपाल रासो (नल्लसिंह), हम्मीर रासो (शार्ङ्गधर), बीसलदेव रासो (नरपति नाल्ह), पृथ्वीराज रासो (चन्द बरदाई), परमाल रासो (जगनिक) आदि इस युग में प्रणीत काव्य- ग्रंथ ठहरे। इन प्रवृत्तियों के पहले इसी युग में जैन, सिद्ध, नाथ आदि विविध पंथियों की धारा बही थी। जैन धारा में " पउम चरिउ " (स्वयं भू), महापुराण (पुष्पदन्त), पाहुड दोहा (मुनिराम सिंह), कलिकाल (सर्वज्ञ) कलिकाल सर्वज्ञ (हेमचन्द्र सूरि), आदि काव्य ग्रंथ उपलब्ध हैं।

भक्तिकाल में देश में शांति की स्थापना के लिए भगवान के चरण- कमलों की उपासना और आराधना की आवश्यकता थी। अत: इस काल में अनेक भक्त कवियों ने भक्तिरस प्रधान काव्यों की रचना की और रामभक्ति एवं कृष्णभक्ति की युगल धारा को प्रवाहित किया। यह तो भक्ति की सगुणोपासना की बात हुई। इसके अतिरिक्त इस काल में भक्ति और एक धारा निर्गुण- धारा भी चलने लगी। इस धारा के कवियों ने प्रेम प्रधान और शृंगार रस प्रधान काव्यों का सृजन किया। इन दोनों धाराओं की दो- दो शाखाएं भी हुईं। जैसे सगुण धारा की रामभक्ति और कृष्ण भक्ति शाखाएं और निर्गुण धारा की ज्ञानाश्रयी और प्रेममार्गी शाखाएं। रामभक्ति शाखा के महाकवि गोस्वामी तुलसीदास, कृष्णभक्ति के महाकवि सूरदास, ज्ञानाश्रयी शाखाके कवि कबीरदास, प्रेममार्ग के महाकवि मुहम्मद जायसी आदि महान कवि मशहूर एवं मुख्य थे। इनके अतिरिक्त इन शाखाओं में कई अन्य छोटे छोटे कवि भी रहे थे जिन्होंने अपनी - अपनी काव्य- रचनाओं से भक्तिकाल को सुसंपन्न बनाया था। रीतिकाल में वीर- शृंगार रस प्रधान अलंकृत काव्यों एवं लक्षण- ग्रंथों की रचना की गयी। रीतिकाल के बाद आधुनिक काल का श्रीगणेश होता है। आधुनिक काल को चार सोपानों के अंतर्गत चार युगों में विभक्त किया गया है। भारतेन्दु युग (१८५७ - १९००), द्विवेदी युग (१९०० - १९२०), छायावादी युग (१९२० - १९३५) और प्रगतिवादी युग (१९३५ - १९४३) [१]

१: यह विभाजन एक लेखक का है। वैसे, विभिन्न कसौटियों के आधार पर आधुनिक काल का विभाजन कई प्रकार से किया गया है।

चारों साहित्यिक युगों के संक्षिप्त सर्वेक्षण के बाद हम देख लेंगे कि प्रत्येक युग की कुछ खास अंतर्धाराएं चालू थीं, जैसे , वीरगाथा काव्यों में पृथ्वीराज एक प्रतीक रहे । अर्थात् वीरता, साहस, उदारता, दानशीलता, स्त्रियों को मोहित करने वाला सौंदर्य आदि गुणों के निधान पृथ्वीराज, युग के सारे कवियों के लिए आदरणीय थे । सब उनका प्रभाव मानते थे । पूरे राजस्थान में हिन्दूधर्म, साहस पुरुषार्थ, वीरता आदि के भाव समाये हुए थे । देश की भेच्छता, सतीत्व की उच्चता, वीरमृत्यु का स्वर्गीय फल, स्वाभिमान का प्राणों से अधिक महत्व आदि युगीन विचारों- प्रवृत्तियों के अच्छे तत्व थे । इनके प्रतीक राजपूत- नरेश युग के आदर्श पात्र रहें । इसलिए हम वीरगाथा काल की काव्यगत वैचारिक प्रवृत्तियों में उपर्युक्त गुणों की बहुलता पाते हैं । यहाँ तक कि हम पृथ्वीराज को वीरगाथा काल का युग- पुरुष कह सकते हैं ।

भक्तिकाल का हिन्दी काव्य भगवान का गुणगायक ठहरा । भगवान के दो रूप रहे । - १- निर्गुण रूप परब्रह्म परमात्मा और २- सगुण अवतार- रूप राम, कृष्ण आदि । निर्गुण भक्तिकाव्य में परब्रह्म की गाथा है । नाथपंथ या सिद्धपंथ आदि के योग- साधना आदि में पारंगत ज्ञानी संतगण इस धारा के प्रमुख पात्र हैं । सांसारिक मोह- माया से निर्लिप्त और हठयोग- साधना आदि में कुशल संत ही इस युग के आदर्श व्यक्ति हैं । उनका पुरुषार्थ अरूप निर्गुण परमात्मा के भजन में है । कबीर और गोरखनाथ उस युग के युग- पुरुष निकले जिसका भजन करते थे वह परमात्मा अरूप था और अरूप परमात्मा का युग पुरुष होना संभव नहीं रहा ।

सगुण भक्ति धारा के युग में जब हम पहुंचते हैं, तब हमें राम और कृष्ण युग देवता के रूप में मिलते हैं । सुग्रीव एवं विभीषण को कृपापूर्वक उचित राज गद्दी दिलाने वाले - रामराज्य बसाने वाले रामचन्द्र एवं गोकुल के सारे नर- नारियों को कुशल- मंगल देने वाले गोपी पालक नंद- लाल - संपूर्ण भक्ति युग के ज्योतिस्तम्भ रहे । इनकी महिमा भांति भांति से गायी गयी । राम के अनन्य भक्त और कृष्ण के अनन्य सेवक सारे लोगों के लिए बड़े प्रिय और आदर्शपात्र रहे । हनुमान, प्रह्लाद, राधा ऐसे ही पात्र अत्यंत आदरणीय थे । जिस तरह कबीर और

गोरखनाथ श्रद्धापात्र बने उसी तरह सगुणभक्ति युग में तुलसी, सूर और नन्ददास आदि थोड़े से कतिपय युग- पुरुष सिद्ध हुए। उनका जबरदस्त प्रभाव शेष कवियों पर पड़ा। वीरगाथाकाल में पृथ्वीराज जैसे ऐतिहासिक पात्र युगपुरुष रहे तो भक्तिकाल में ऐतिहासिक या युगीन समाज के कोई मामूली मानव ऐसा सौभाग्य पा नहीं सके। देवताओं को ही ऐसा सौभाग्य प्राप्त हुआ।

रीतिकाल में भक्ति-युग का विकसित - यों कहिए कि विकृत रूपान्तर पाया जाता है। अर्थात् श्रीकृष्ण का रास- विलास, विलोल रूप कवियों का आदर्श वर्ण्य- विषय रहा। तो वही राधा- वल्लभ शृंगार विलोल कृष्ण रीतिकाल के युग नायक थे। ऐसे कृष्ण की भक्ति युग की अंत: प्रवृत्ति थी। अपने वैभव विलास और मानसिक प्रवृत्ति से गोपी मनोहारी मोहन का अनुकरण करने वाले प्रभुगण और राजा रीतिकाल के आदर्श पात्र रहे। बिहारी के आश्रयदाता जयसिंह और जगन्नाथ के आश्रयदाता शाहजहाँ कवियों के वर्ण्य विषय रहे। शृंगारी और मनमौजी राजा का समाज में सम्मान और युग युगान्तर में प्रतिष्ठा संभव नहीं। इस युग में समाज का ध्यान व श्रद्धाभाव वीरगाथा कालीन प्रवृत्ति के ही अनुकूल रहा। अर्थात् फिर से वीर-पूजा को महत्व दिया गया। हिन्दू राजा और मुसलमान बादशाह एक दूसरे के दुश्मन निकले थे। उन दोनों के द्वन्द्व में मुसलमानों का छक्का छुड़ाने वाले वीर हिन्दू नरेश श्रेष्ठ प्रमाणित हुए। इस दृष्टि से प्रताप, शिवाजी एवं छत्रसाल इस युग के लोगों के लिए आदर्शपात्र रहे। इससे मिलते- जुलते कई वीरों का यश गाया गया। वीरसिंह आदि उदाहरण हैं। विडंबना की बात है जो रीतिकालीन कवियों ने एक तरह से राणा प्रताप का यश उतना नहीं गाया जितना शिवाजी का। शिवाजी के यशोगायक सिर्फ भूषण ही रीतिकाल में हुए। किंतु राणा प्रताप के विषय में यह भी नहीं रहा। अत: हम कुछ विचित्र बात लगने पर भी यह कह सकते हैं कि जनता के श्रद्धापात्र होने की दृष्टि से रीतिकाल के महान व्यक्ति एवं पात्र शिवाजी थे।

आधुनिक युग पूर्व युगों से एकदम भिन्न रहा है। राजशासन या भक्ति भावना के प्रभाव का स्थान अब नहीं रहा। यह युग तो सामाजिक एवं राजनैतिक जागरण का रहा है। विदेशी शासन के बोझ से छूटने की छटपटाहट

और नये सामाजिक जागरण की लहरें संपूर्ण भारत में इस युग में फैली नजर आती हैं। इस नयी सामाजिक दृष्टि से जिन महान भारतीयों ने अत्यन्त श्रेष्ठ सेवाएं कीं, वे ही आदर्श महापुरुष माने गये। भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता का नव- निर्माण इस आधुनिक युग का विकास- स्रोत रहा। इसके प्रमुख उन्नायक रहे सर्वश्री दयानन्द सरस्वती, विवेकानंद, रवीन्द्रनाथ तथा गांधीजी। दयानन्द सरस्वती ने धार्मिक क्षेत्र में क्रांतिकारी परिवर्तन किया। विवेकानंद ने भारतीय चिंतन-की शून्यता और अलसता को दूर कर सेवा- व्रत का संदेश फैलाया। रवीन्द्रनाथ ने स्वदेशी भावना के साथ बंगला साहित्य एवं कला का नवोत्थान कराया। भारतीय वातावरण के अनुकूल अंग्रेजी की प्रतिष्ठा करायी। इन सब का योगदान अलग अलग क्षेत्र का रहा। महात्मा गांधीजी का व्यक्तित्व इन सबसे बढ़कर उज्ज्वल रहा। उन्होंने संपूर्ण देश में राजनीतिक और सामाजिक चेतना फैलाई। गांधीजी की देन का विशद वर्णन अन्यत्र किया जाएगा। यहां सिर्फ इसी तथ्य का उल्लेख किया जाता है कि आधुनिक युग में सब के लिए समादरणीय और सबसे आदर्श भारतीय व्यक्ति गांधीजी थे। उन्हीं के विचारों का प्रभाव सर्व-व्यापक हो गया। अत: गांधीजी और गांधीवाद का जैसा प्रभाव आधुनिक काव्य, कथा आदि पर पड़ा वैसा अन्यत्र नहीं पड़ सका है।

गांधीजी का साहित्यिक ज्ञान :-

गांधीजी स्वभावत: किताबें पढ़ने की आदत रखते थे। अनेक प्रमुख कृतियों का अध्ययन उन्होंने किया है। विद्यार्थी जीवन के दिनों में उन्हें पाठशाला की किताबों को छोड़कर दूसरी किसी भी किताब के अध्ययन का शौक नहीं था।[१] प्रतिदिन का पाठ पढ़ने तथा उसे याद रखने का प्रयास करना ही वे पर्याप्त मान लेते थे। लेकिन अपने पिताजी की खरीदी हुई एक खास किताब पढ़ने की इच्छा उनके मन में हुई और उसका नाम था श्रवण- पितृ- भक्ति - नाटक। उसे उन्होंने बड़े चाव से पढ़ लिया। इसके बाद उन्होंने भागवत और मनुस्मृति का अध्ययन किया

१: आत्मकथा - पृ० ४

इनमें मनुस्मृति उन्हें उतना पसंद न आया। गांधीजी का हिन्दू धर्म में बड़ा विश्वास था। अत: उनके घर पर रामायण- पारायण प्रतिदिन होने के कारण रामायण का अध्ययन वे प्राय: करते थे। गोस्वामी तुलसीदास के रामायण को वे अत्यधिक पसंद करते थे। इसके अतिरिक्त उन्होंने भगवद्गीता का पाठ भी किया है। गीता उनके जीवन में उपस्थित सारी समस्याओं को सुलझाने के लिए एक उत्तम माध्यम रहा है।

जब गांधीजी दक्षिण अफ्रीका में रहते थे, तब उन्होंने अंग्रेजी पुस्तकों का खूब अध्ययन किया है। वहां बड़े बड़े विद्वानों एवं लेखकों से उनका मेल होता था और इस प्रकार उनकी कई अंग्रेजी की पुस्तकें गांधीजी को पढ़ने के लिए प्राप्त होती थीं। फलत: उनकी साहित्यिक रुचि बढ़ने लगी थी। गांधीजी द्वारा अध्ययन की हुई तथा उन पर प्रभाव डालने में समर्थ कुछ ग्रंथों की एक सूची [१] तो यों दी जा सकती है :-

१- भगवद्गीता २- तुलसी रामायण ३- उपनिषद्(ईशोपनिषद्)
४- योगसूत्र ५- मनुस्मृति ६- रामायण
७- महाभारत ८- बेन्थम का ग्रंथ ९- अन्नाहार की हिमायत (साल्ट)
१०- आहार नीति (हावर्ड विलियम्स) ११- उत्तम आहार की रीति (डा० मिसेज एना किंग्सफर्ड) १२- बुद्ध चरित (एडविन आर्नल्ड)
१३- की टु थियासफी (मैडम ब्लेवट्स्की) १४- बाइबिल - न्यू टेस्टमेंट
१५- विभूतियां और विभूति पूजा १६- मैं थियासफिस्ट कैसे बनी (मिसेज बिसेन्ट) १७- कामन ला (ब्रूम) १८- इक्विटी (स्नैल)
१९- अन्टु दिस लास्ट (रस्किन) २०- हिन्दू ला (मैन)
२१- वैकुण्ठ तेरे हृदय में (टालस्टाय) २२- षड्दर्शन - समुच्चय (हरिभद्र सूरि) २३- धर्म विचार (नर्मदा शंकर) २४- हिन्दुस्तान क्या सिखाता है (मैक्समुलर) २५- जरथ्रुस्त के वचन २६- गास्पेल्स इन ब्रीफ, व्हाट टु डु, लास्ट आव एशिया (टालस्टाय) २७- स्टैंडर्ड एलोक्यूशनिस्ट (बेल) २८- एथिक्स आव डायट् २९- मैनी इनफालिबल (पियर्सन)

१: यह सूची गांधीजी की 'आत्मकथा' और अन्य गांधी- साहित्य में दिये विवरणों के आधार पर दी जाती है।

(३०) प्लाटो, पार्लमेन्ट के , बाइबल का नया अर्थ (बटलर) (३१) मानी शिक्षामण (डा० त्रिभुवन दास (३२) राज योग (विवेकानन्द (३३) रिटर्न टु नेचर (जुस्ट) (३४) निरामिषाहार संबंधी पुस्तकें (साल्ट) (३५) थोरो के निबन्ध ।

इन महान ग्रंथों के अध्ययन से उनके कानून, आहार,निरामिषाहार शासन, बालक पोषण, विविध धर्म आदि से संबंधित ज्ञान बुद्ध किये ।

गांधीजी ने कुछ पुस्तकों की रचना स्वयं की है । उनमें दक्षिण अफ्रीका में रहने वाले प्रत्येक अंग्रेजों से विनती, भारतीय मताधिकार - एक विनती, हरि पुस्तिका, सर्वोदय, हिन्द स्वराज्य आदि ग्रन्थ मुख्य हैं । इनके अतिरिक्त उन्होंने अपने सिद्धान्तों की विवेचना करते हुए कई किताबें लिखी हैं । अपनी जीवनी पर ' आत्मकथा' नामक किताब लिखी गयी है । इनका 'गांधी - साहित्य ' दस भागों में प्रकाशित हुआ है ।

गांधीजी को धार्मिक ग्रन्थ अत्यन्त प्रिय थे । इसलिए विभिन्न धर्मों से संबंधितपुस्तकों का अध्ययन वे करते थे और यह समझ लेना चाहते थे कि किस धार्मिक ग्रंथ में किस बात का कैसा प्रतिपादन हुआ है । उनका मुख्य उद्देश्य, जो उनकी विभिन्न प्रवृत्तियों के मूल में द्रुयमान था, मानव- कल्याण था । उनके सामने जो अकेला ' विजन ' था, वह यही था । अत: जहां मानव के कल्याण की बातें वर्णित हैं, ऐसे ग्रन्थों का अध्ययन करना वे चाहते थे । इसी दृष्टि से उन्होंने 'अंटु दिस लास्ट' और गीता के ' अनासक्ति योग ' का अध्ययन किया था । गांधीजी अक्सर यही कहते थे कि सांसारिक वस्तुएं पाने और उनके सुखद अनुभव करने का मानव में जो मोह पैदा होता है, वही मानव- जीवन की अधोगति एवं विनाश का हेतु । अत: उन्होंने जनता से यही प्रार्थना की है कि सांसारिक सुख-भोग के मोह को दूर करना चाहिए । जनता के मानस में उत्पन्न होने वाले इस मोह-बोध को मिटाने के लिए ही गांधीजी ने मानव- कल्याण- संबंधी विचारों को सामान्य जीवन के धरातल में व्यवहृत करने का प्रयास किया था ।

शृंगारिकता के प्रति गांधीजी में अरुचि अवश्य थी। अत: उन्होंने जो लिखा है, उसे आलंकारिक शैली में न लिखकर बहुत ही स्पष्टता के साथ छोटी छोटी बातों में अपने विचारों को अभिव्यक्त किया है। साहित्य के विषय में यही लगता है कि वे स्पष्टता को अधिक मुख्यता देते थे, अलंकार व शृंगार को नहीं क्योंकि यह विलासिता और सुख का निशान है। प्राचीन ग्रन्थों में वे परिवर्तन करना नहीं चाहते थे। इसके स्पष्ट उदाहरण हैं उनके सिद्धान्त और विचार-तत्व। अहिंसा, सत्य, ब्रह्मचर्य आदि उनके जो तत्व हैं, सब प्राचीन ग्रंथों की देन हैं। उनके इन सिद्धान्तों के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि उन्होंने अपने सिद्धान्तों के रूप में जिन तत्वों को अपनाया, उनकी विभिन्न व्याख्याएं अत्यधिक स्पष्टता के साथ करने का प्रयास ही किया है। उन्होंने अपने सिद्धान्तों के बारे में यही बताया है कि वे सब कोई नई वस्तुएं नहीं हैं। यह भी मननीय है कि अपनी 'आत्मकथा' में उन्होंने छोटी - छोटी बातों से लेकर बड़ी बड़ी बातों तक का वर्णन इतनी स्पष्टता के साथ प्रस्तुत किया है जिन्हें साधारण व्यक्ति भी पढ़ और समझ सकता है।

गांधीजी जो लिखते थे, उनमें आलंकारिक शैली का प्रयोग बिल्कुल नहीं था। इसका कारण भी शायद चमत्कार के प्रति अरुचि और मानव-कल्याण का आग्रह हो सकता है। लिखने की प्रवृत्ति में उनका एकमात्र उद्देश्य यही रहा कि आप जो लिख डालते हैं, उसे समझने में दूसरों को कोई कठिनाई न रहनी चाहिए। वे उन्हें ठीक ठीक जान लें, इतना ही नहीं, शंका की बात तक न उठनी चाहिए। इन कारणों से उन्होंने लिखते वक्त शब्द शब्द का विश्लेषण और व्याख्या करने में बड़ी श्रद्धा बतलायी है। अत: उनकी साहित्यिक भाषा अत्यन्त सरल एवं स्फुट दिखाई पड़ती है। इस दृष्टि से यों कहना अनुचित न होगा कि जैसी उनकी बोली है, वैसी ही उनकी भाषा भी है। एक जगह उन्होंने श्रेष्ठ साहित्य को मानव को मानव से जुड़ाने वाली चीज़ बतायी है।[१]

- -

१: Great literature is the bond that connects man with man.

- Gandhi's view of life - P. 194

जिन्हों दो वस्तुओं या साधनों को आपस में जोड़ने के लिए तीसरी वस्तु की आवश्यकता होती है। वह तीसरी वस्तु जो है, वह अपनी सच्ची और उच्च विचारों से युक्त श्रेष्ठ होनी चाहिए ताकि उनमें जुड़ने की क्रिया संपन्न हो सके। यहाँ मानव- कल्याण के ध्येयवाले गांधीजी ने भी यही बताने का प्रयास किया है कि साहित्य और जीवन के बीच के संबंध के कारण वही जीवन के विकास और उन्नति में समर्थ हो सकता है जिससे मानव- मानव में समता प्रस्तुत कर सके हैं। जिस साहित्य का ध्येय जन- कल्याण हो, वही श्रेष्ठ है और शाश्वत भी। उसी में जीने की राह बतायी जाती है ; उसी का अध्ययन हमें करना होगा। आधुनिक साहित्य मानव कल्याण की वैचारिक प्रेरणा से लिखा गया है जिसका अध्ययन और अनुकरण करने में ही मानव- जीवन का भेद निहित है।

संभव है, महात्मा गांधीजी ने कुछ सज्जनों की कृतियों के लिए भूमिका लिखी हो या सम्मति दी हो। जैसे मैथिलीशरण गुप्त जी ने जब साकेत की प्रति गांधी जी को भेजी थी, तब उसे पढ़कर गांधी जी ने यह सुझाव दिया कि उर्मिला की विरह भावना को यों मुखरित करना नहीं चाहिए था। किंतु प्रयत्न करने पर भी ऐसी पुस्तकें नहीं मिल सकीं। इस विवशता पर अनुसंधाता अत्यन्त दु:खी और क्षमाप्रार्थी है।

गांधीजी और गांधीवाद का स्थान :-

आधुनिक काल के प्रथम सोपान अथवा भारतेन्दु काल में गद्य की रचना अधिक मात्रा में होती थी। द्वितीय सोपान अथवा द्विवेदी युग में कविता का क्षेत्र कुछ विकसित हुआ। महाकाव्य, खण्डकाव्य,गीतिकाव्य आदि की रचना होने लगी। कविता के क्षेत्र में और एक विशेषता यह रही कि खड़ीबोली को काव्य-भाषा के रूप में स्वीकृत किया गया। तृतीय सोपान में जिसे छायावादी युग कहा जाता है कविता य के क्षेत्र में छायावाद नामक प्रवृत्ति का जन्म हुआ। शैली एवं छन्द के प्रयोगों में नवीनता दिखाई पड़ने लगी। चतुर्थ सोपान यानी प्रगतिवादी युग में प्रगतिवाद का प्रचार हुआ। इसके बाद कई वर्ष प्रयोगवाद जैसे वादों की धारा चली। आगे हिन्दी काव्य प्रगति - पथ पर चलते चलते विकसित हुआ है।

हिन्दी साहित्य का आधुनिक युग संबंध गांधी युग माना जा सकता है। इस युग का सारा साहित्य गांधीजी के जीवन और विचारों से प्रभावित है। अत: हिन्दी साहित्य के चार कालों में से यह काल इस दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। साहित्यिक दृष्टि से भी यह युग बड़े महत्व का रहा है। गांधीजी के जीवन और व्यक्तित्व ने हिन्दी साहित्य को जितना प्रभावित किया है, वैसा अन्य किसी भी व्यक्ति के नहीं। उनके जीवन के पल- पल और व्यक्तित्व के अंग अंग का विश्लेषणात्मक विवेचन हिन्दी के समस्त साहित्यकारों ने किया है। अगर कोई व्यक्ति हिन्दी साहित्य का पूर्णरूपेण अध्ययन करता उसे यह सोचकर बड़े आश्चर्य की बात होगी कि गांधीजी के जीवन और व्यक्तित्व ने इन साहित्यकारों पर कैसा प्रभावपूर्ण एवं प्रेरणा प्रदान जाल बिछाया है।

सन् १९२० से लेकर हिन्दी साहित्य में गांधीजी के रचनात्मक कार्यक्रम की अभिव्यक्ति होने लगी है। इस काल के बाद का हिन्दी साहित्य गांधीवादी राष्ट्रवाद के प्रतिपादन से परिपूर्ण है। इस राष्ट्रवाद के मानवतावादी रूप को साहित्यकारों ने अपनाया और उस पर अधिक बल दिया है। डा० सुषमा नारायण ने बताया है - " राष्ट्रवाद में मानवतावाद का समाहार कर,गांधीजी ने विश्व के सम्मुख राष्ट्रवाद के जिस पूर्ण उ॰ आदर्श रूप को समुपस्थित किया था, राष्ट्रवाद का वही रूप हिन्दी साहित्य में भी सन्निहित मिलता है।"[१] जो भी हो, सन् १९२० से भारत की राष्ट्रीयता का जो स्वरूप है वह गांधीवादी राष्ट्रवाद के नाम से प्रसिद्ध है। इस युग के बाद की साहित्यिक रचनाएं गांधीवाद से ओत-प्रोत दिखाई पड़ते हैं। इस युग के नेता, जनता, कवि, साहित्यकार जैसे सभी लोग गांधीजी की शासन- पद्धति में सहयोग देने वाले थे। इन्हें गांधीजी के व्यक्तित्व ने जिस तरह प्रभावित किया था, उस पर यों बताया गया है।- "भाषा और साहित्य की प्रतिष्ठा भी स्वतन्त्र राष्ट्र में किस तरह हो, इस दिशा में गांधीजी बहुत सतर्क थे। जहां वे नव-युवकों को स्वतन्त्रता - आंदोलन में बड़ी कुशाग्र बुद्धि से जुड़ने का आमन्त्रण दिए जा रहे थे, उसी तरह उन्होंने साहित्यकारों को भी अपनी निष्ठावान वाणी से प्रभावित किया था।" २ इसलिए गांधीवादी

- -

१: भारतीय राष्ट्रवाद के विकास की हिन्दी साहित्य में अभिव्यक्ति- पृ० ३८१ .
२: राष्ट्रकवि श्री मैथिलीशरण अभिनंदन ग्रंथ- भारतीय राष्ट्रवाद के विकास की हिन्दी साहित्य में अभिव्यक्ति - पृ० ३८१

साहित्य में पुष्ट अभिव्यक्त हुई है।

जब से गांधी जी भारत के राष्ट्रीय कार्यक्षेत्र में आये, तभी से
रंभ भी हुआ है। उस समय साहित्यकारों की अभिरुचि उनकी
वृत्ति की तरफ रही। वे धीरे-धीरे गांधीजी और उनकी विभिन्न
प्रवृत्तियों से प्रभावित होने लगे और आगे उन्हें अपने साहित्यिक-विषय
बनाने लगे। गांधीजी पर स्वतंत्र एवं संयुक्त रूप से काव्यों, नाटकों, कहानियों
र उपन्यासों का सृजन होने लगा। गांधीजी द्वारा संचालित तथा प्रवर्तित
भारतीय स्वतंत्रता संग्राम और गांधीय राष्ट्रीय विचारधारा दोनों ने हिन्दी
साहित्य के स्वरूप को ही बदल दिया है। गांधीजी भारत के मुक्ति-दाता रहे
हैं। अतः स्वतंत्र भारत के नये साहित्य में उनका उल्लेख अवश्य होना ही चाहिए।
तिलक, नेहरू, राजेन्द्रप्रसाद, गोखले आदि कितने ही नेताओं ने देश के स्वाधीनता-
संग्राम में भाग लिया और काफी परिश्रम किया था; मगर गांधीजी ही ऐसे नेता थे
जिन्होंने स्वतंत्रता संग्राम में अंतिम पल तक दृढ़तापूर्वक प्रयत्न करके भारत को मुक्ति
प्रदान की थी।

हिन्दी साहित्य में गांधीजी और उनके सिद्धान्तों को
महत्त्वपूर्ण स्थान मिलने पर कुछ बातें बताने के पूर्व, उनके कारणों और गांधीजी
की विभिन्न नेताओं की चर्चा करना उचित होगा। भारत में कितने ही महान
एवं कर्मठ नेताओं का जन्म हुआ है, उनकी गणना असंभव है। उन सारे
महान नेताओं से महात्मा गांधी जी को अधिक महत्त्व देने के कई कारण हैं। एक
कारण यह है कि वे इस अखण्ड भारत-देश के राष्ट्रपिता हैं। दूसरा कारण यह है
कि उनके पूर्व के नेताओं ने मानव-कल्याण संबंधी जो काम अधूरा छोड़ दिया था,
उसे गांधीजी पूरा कर सके। इस दृष्टि से वे सब के लिए पूज्य एवं मान्य रहे थे।
गांधीजी ऐसे में अद्भुत शक्तिवाले कोमल स्वभाव वाले, एवं शांत-स्वभाव व्यक्ति
उनकी दुनिया सभी जन को मोहित करने वाली थी। नन्हें-नन्हें बच्चे भी
हिल-मिल जाते थे और गांधी जी तो उनसे बड़े वात्सल्य के साथ बर्ताव करते
बड़े ही लोगों से वे अमृत-वाणी से बातचीत करते थे। दीन-दरिद्र

सांत्वना- प्रदायी बातों से आश्वासन पाते थे। रुग्ण ...
प्रेमपूर्ण सेवा- सुश्रूषा से रोग- शांति प्राप्त होती थी। इस प्रका...
इस समस्या को हल किया था। उनके सामने कोई भी एक समस्या ऐसी न...
जो सुधार करने योग्य रही हो।

गांधीजी की सेवाएं :-

भारत की राजनीति के क्षेत्र में गांधीजी ने सर्वप्रथम सन् १९२० में अपना पदार्पण किया। तब तक कांग्रेस के नेता तिलक जी थे और इसी साल में उनकी मृत्यु हुई। उनके बाद गांधीजी कांग्रेस के नेता चुने गये। इस प्रकार भारत की स्वतंत्रता का स्वर गुंजाने वाली कांग्रेस का नेतृत्व- भार अपने सिर पर वहन करते हुए उन्होंने राजनीतिक क्षेत्र में प्रवेश किया। इसके पूर्व वे भारत के बाहर - देशों में अपना राष्ट्रीय कार्य का संचालन कर रहे थे। वहां वे विज...
विजय पाते थे। उदाहरण के लिए दक्षिण- अफ्रीका में उन्होंने अपने स...
का सर्वप्रथम प्रयोग किया था और विजय पायी थी। वहीं बार- अ...
वे भारत लौट आये। भारत आने पर उनकी रुचि सीधे राजनीति में...
और वे जन- मन पर अंकित रह सके थे। यहां उनका परम० तथा एक...
स्वाधीनता प्रदान करके उसे रामराज्य - सा स्वराज्य बनाना था...
प्रवृत्तियां इसी लक्ष्य तक पहुंचने की रही थीं। सन् १९४७ अगस्...
की जनता का वह चिरकाल- स्वप्न गांधीजी द्वारा साकार...
उन्होंने सत्याग्रह, आंदोलन, उपवास, व्रत, अनशन आदि ...
प्रयोग भारत की राजनीति में किया था जो पाप- मुक्...
रक्षित है।

उनके कर्तव्य का मूल- मन्त्र - ...
अतः उन्होंने मानव- जीवन की नयी भूमिका के ...
सदुपयोग किया था। सत्य, अहिंसा, प्रेम औ...
सकल जीवों को प्रभावित किया। ऐसे मह...
अगर कोई ऐसा रहता तो वही अ...
था।

राजनीति के क्षेत्र में गांधीजी :-

गांधीजी की राजनीतिक प्रवृत्तियों पर प्रकाश डालने के पहले, गांधीजी की राजनीति- संबंधी मान्यताओं पर प्रकाश डालना उचित जान पड़ता है। गांधीजी का इस क्षेत्र में प्रमुख उद्देश्य यह था कि भारत की राजनीति को अराजकता और साम्राज्यवाद से मुक्त करके स्वराज्य प्राप्ति के बाद रामराज्य की स्थापना करनी चाहिए। देश का कल्याण भी। यही सच्चा मार्ग है। इसलिए उन्होंने राजनीति को संपूर्णतः आध्यात्मिकता रंगीन बनाने और राजनीति और धर्म को मिलाकर उनमें संबंध स्थापित करने का प्रयास किया। धर्मविहीन राजनीति की कल्पना तक वे कर नहीं सकते थे। राजनीति उनके मन में मानव की पतित दशा को सुधारने का साधन है।[१] देश का अस्तित्व हिंसा पर निर्भर है क्योंकि यह आत्म- बल विहीन है। अतः उससे हिंसा को निर्वासित करना कठिन कार्य है। लेकिन जब हम देश में चलते कानूनों का परित्याग करते हुए, स्वतंत्रता के साथ दूसरे धर्मनिष्ठकारी नियमों का पालन करते हैं तब देश- कल्याण के पथ पर बढ़ता है।

'यथा राजा तथा प्रजा' की भांति देश की शासन-रीति होनी चाहिए अर्थात् राजा जिस स्थिति में जैसा रहता है वैसी स्थिति में प्रजा का वैसा ही देखभाल करनी चाहिए। इस नियम का व्यवहार भारत में होना चाहिए।[२] देश की उन्नति के लिए जनता में राष्ट्रीय भावना जागृत होनी चाहिए। एक व्यक्ति देश-भक्त तभी कहा जा सकता है जब उसमें राष्ट्रीयता का भाव फूट पड़ता है। राष्ट्रीयता से मतलब है राष्ट्र की चिंता, उसके प्रति प्रेम तथा आदर, उसके विकास और प्रगति में व्यग्रता या उत्कण्ठा और उसके कल्याण में आनंद आदि। अतः राष्ट्रीय भावना से युक्त व्यक्ति अपने राष्ट्र की प्रगति और कल्याण के लिए रात- दिन परिश्रम करने को

- -

१: मेरी दृष्टि में राजनैतिक सत्ता कोई साध्य नहीं है वरन जीवन के प्रत्येक विभाग में लोगों के लिए अपनी हालत सुधार सकने का वह साधन है - गांधी-विचार-रत्न, पृ० १८६

२: जैसा नेता करेंगे, जनता भी खुशी से वैसा ही करेगी। - गांधी - विचार- रत्न - पृ० १६०

तैयार एवं उत्सुक होता है ।

राजनीति में गांधीजी ने बलिदान को अधिक महत्व प्रदान किया है ।[1] उन्होंने दूसरों का रक्त बहाने के बदले अपना रक्त दान देने का उपदेश दिया है । भारत - भूमि के लिए स्वयं अपने प्राण को त्यागना महत्वपूर्ण माना है । आत्म- बलिदान से दूसरों को हानि नहीं होती , प्रत्युत भलाई ही भलाई होती है । स्वयं अपने लिए गौरव या अभिमान की बात भी होता है । गांधीजी ही इसके उत्तम उदाहरण हैं । आत्म बलिदान से जनता का दिल बदलता है और वह भी इसका समर्थन करने लगती है । यही इसकी विशेषता है । अहिंसक राष्ट्र को दूसरे राष्ट्रों का सामना अहिंसा के द्वारा ही करना चाहिए । गांधीजी इस नियम पर अधिक बल देते थे । अपनी भलाई के लिए हमें दूसरों की सेवा भी करनी चाहिए । लेकिन इसके लिए हमें दूसरों का शोषण नहीं करना चाहिए और दूसरों से हमारा शोषण भी कराना नहीं चाहिए । देश- प्रेम पर गांधीजी ने बहुत बल दिया । वे बड़े देश- प्रेमी थे । वे भारत- पुत्र थे । भारत की स्वतंत्रता के लिए वे मर मिटे और देश की स्वतंत्रता का प्रेम भी उन्हीं को ही है । उनका देश- प्रेम उठ उठ एवं अटूट एवं अगाध था । सच्चा देश- प्रेमी ही गांधीजी के समान देश का कार्य-संचालन कर सकता था । अत: उन्होंने बताया है कि देश- प्रेम दूसरों को एकता के सूत्र में मिलता है । वह किसी प्रकार से दोषी नहीं है ।[2]

१: जिस राष्ट्र में असीम बलिदान की योग्यता है, उसी में असीम ऊंचाई तक उठने की क्षमता है । बलिदान जितना अधिक शुद्ध होता है, उतनी ही अधिक तीव्र उन्नति होती है ।

- गांधी - विचार- रत्न - पृ० १६१

२: देश प्रेम दूसरों का बहिष्कार नहीं करता । वह सारे जगत को अपने भीतर समा लेने वाला है । -

गांधी - विचार- रत्न - पृ० १६२

गांधीजी ने स्वतंत्रता के बारे में अपना मत प्रकट किया है। उनके मतानुसार देश की स्वतंत्रता के साथ व्यक्ति- व्यक्ति की स्वतंत्रता की आवश्यकता है। प्रत्येक व्यक्ति को अपनी हर आवश्यकता की पूर्ति के लिए स्वतंत्र रहना चाहिए। गांधी जी ने सत्य और अहिंसा के द्वारा स्वतंत्रता प्राप्त की और इसी पर उन्होंने स्वयं बताया - " सत्य तथा अहिंसा के द्वारा पूर्ण स्वातंत्र्य का अर्थ जाति, रंग तथा संप्रदाय के भेद- भाव के बिना हर एक इकाई का स्वातन्त्र्य है, चाहे वह राष्ट्र का सबसे छोटा व्यक्ति ही हो। यह स्वातन्त्र्य कभी भी विघटनकारी नहीं होता।"[१]

व्यक्तिगत स्वतंत्रता अहिंसा के द्वारा ही हो सकती है। इसीलिए गांधीजी ने अहिंसा को स्वराज्य प्राप्ति का मुख्य साधन बनाया। व्यक्ति- व्यक्ति की स्वाधीनता में ही देश का कल्याण निहित है और इसलिए उन्होंने इस पर अधिक जोर दिया। अत: वे बताते थे - " स्वतंत्रता का मैं तो यह अर्थ करता हूं कि स्वतंत्र मनुष्य अपनी जरूरतों की पूर्ति में किसी का सहारा न ले। स्वतंत्रता का अर्थ केवल भौगोलिक स्वतंत्रता नहीं है। गांधी जी ने पूर्ण स्वतंत्रता या पूर्ण स्वराज्य की मांग की थी। एक देश स्वतंत्र तभी कहा जा सकता है जब वह सभी दिशाओं में स्वतंत्र ठहराता है। इसी बात का समर्थन उन्होंने इन पंक्तियों में किया - " थोथी स्वतंत्रता के समान कोई चीज नहीं है। स्वाधीनता जन्म के समान है। जब तक हम पूर्ण रूप से स्वतंत्र नहीं हो जाते, हम गुलाम हैं। तमाम जन्म एक क्षण में होता है। देश का कोई भी एक अंश या जन गुलाम न रहे। संपूर्ण देश की तमाम आजादी बनी रहे।"[३]

स्वराज्य का अर्थ दलित वर्गों की स्वतन्त्रता है।[४] स्वराज्य के लिए गांधीजी ने हरिजनोद्धार पर अधिक बल दिया है। उन्होंने दलितों की दशा को

- -

१: गांधी - विचार - रत्न - पृ० १६३

२: वही० पृ० १६३-१६४

३: वही० पृ० १६४

४: " स्वराज्य का अर्थ देशवासियों में अत्यंत दलित लोगों की स्वाधीनता है।" - गांधी - विचार- दोहन, पृ० १६६

सुधारने का स्तुत्य कार्य किया है। उनमें इन लोगों के प्रति विशेष ममता और श्रद्धा थी। उनका विचार यह था कि देश को स्वतन्त्रता मिलने के लिए हरिजनों की दशा सुधारनी चाहिए। गांधीजी ने भारत की राजनीति में प्रजातन्त्र पर अधिक बल दिया। प्रजातन्त्र से गांधी जी का मतलब यह रहा है कि दुर्बल लोगों को भी बलवानों की तरह अपना काम करने का अवसर देना चाहिए।[१] ऐसे प्रजातन्त्र की स्थापना मैं अहिंसा और साधना के द्वारा ही हो सकती है। प्रजातन्त्र में प्रजा के हितों पर अधिक ध्यान दिया जाता है। जो संस्था प्रजा के हितों के लिए होती है, वह प्रजातंत्रीय मानी जाती है। राजतन्त्र की अपेक्षा प्रजातन्त्र ही शाश्वत और लाभकारी है। प्रजातन्त्र में किसानों को उच्च बनाने का प्रयत्न होना चाहिए। देश को किसानों का राज्य बताना ही उचित होगा। किसानों की उन्नति ही देश की भी उन्नति है।

इस प्रकार गांधीजी के भारतीय राजनीति के संबंध में उपर्युक्त विचार जो हैं, वे सोद्देश्य और लक्ष्य साधक हैं। इन्हीं विचारों और तत्वों को सफल बनाने के लिए इन्हें अपने में ध्यान रखते हुए राजनीति के क्षेत्र में सुधारक के रूप में वे उतरे। गांधीजी की सक्रिय देशसेवा का इतिहास

गांधीजी ने भारतीय राजनीति के क्षेत्र में सन् १९२० में पदार्पण किया। उसी साल से लेकर भारतीय राजनीति गांधीवादी राष्ट्रवाद से ओतप्रोत हुई और गांधीवादी राष्ट्रवाद के तत्वों को इस राजनीति के रंगमंच पर प्रयुक्त होने लगा।

जब भारत देश की दशा का अंग्रेजों के शासन काल में अधः पतन हुआ था, तब गांधीजी दक्षिण अफ्रीका में बारिस्टरी के लिए पढ़ने गये थे। वहां भारत के असंख्य लोग रहते थे। इन भारतीयों के प्रति वहां के लोगों ने बड़ी क्रूरता

१: मेरी कल्पना का प्रजातन्त्र वह है, जिसमें अत्यन्त दुर्बल लोगों को वही अवसर प्राप्त हों जो कि अत्यन्त बलवानों को प्राप्त हैं।

- गांधी विचार रत्न - पृ० १९७

और पाशविकता के साथ व्यवहार किया था। इस कारण से भारत के लोगों के मन में अफ्रीका के लोगों के प्रति घृणा और द्वेष की भावना भ उत्पन्न हुई। इस भावना ने उनके मन को पूर्णत: बदल दिया और वे भारतीय राष्ट्रीयता के मंच पर आये थे। तिलक की मृत्यु के बाद गांधीजी कांग्रेस के नेता बने। उनके आगमन के एक साल पूर्व रौलट - बिल प्रकाशित हुआ। रौलट बिल में जिन सिफारिशों का प्रकाशन हुआ था, गांधीजी उनका विरोध करते थे, और उन्होंने यह भीषण घोषणा की कि यदि यह कानून पास हो जाएगी तो वे सत्याग्रह शुरु करेंगे। देश की सारी जनता ने इस सत्याग्रह में अपना सहयोग दिया और उसे सफल बनाया। इसी सिलसिले में उन्होंने हड़ताल की घोषणा भी की और मार्च ३०, १९१९ को इसका आयोजन हुआ और हड़ताल सफल हुई। इसकी एक विशेषता यह थी कि इस सत्याग्रह और हड़ताल में मुसलमानों को खूब मदद मिली थी; फलत: हिन्दू और मुसलमानों में एकता स्थापित हुई।

जालियांवाला बाग के हत्याकाण्ड ने देश में बड़ा विप्लव मचा दिया। अमृतसर के जालियांवाला बाग में कांग्रेस की सभा हो रही थी और इससे क्रुद्ध होकर वहां के जनरल डायर ने जनता की भीड़ पर गोली चलाने की आज्ञा दी जिससे असंख्य लोगों की मृत्यु हुई। इससे गांधीजी बहुत व्याकुल हुए और सत्याग्रह को स्थगित किया। आगे उन्होंने अपनी जनता से स्वदेशी का प्रचार, विदेशी वस्त्र का बहिष्कार और हिन्दू मुसलिम एकता का अनुरोध किया। गांधीजी का ध्यान खिलाफत और पंजाब के प्रश्नों पर गया और उन्होंने इन प्रश्नों को सुधारने के लिए खिलाफत - आंदोलन का अनुरोध किया।

गांधीजी आल इण्डिया होमरूल लीग के प्रेसिडेन्ट रहे। उन्होंने इस हैसियत से हिन्दी भाषा को राष्ट्रभाषा बनाने के लिए स्तुत्य प्रयत्न किया है। शर्तबंदी - कुलीप्रथा का विरोध उन्होंने किया और इसके लिए आंदोलन का आयोजन भी किया। गांधीजी कांग्रेस के नेता बनने के बाद उनका ध्येय शान्तिपूर्ण और उचित उपायों से स्वराज्य को प्राप्त करना रहा। इसके बाद मद्य- निषेध पर अधिक बल दिया गया और संपूर्ण नाश करने का प्रयत्न भी किया गया। बारडोली में

मालिकों से जमीनें छीन लेने की प्रथा थी । इसलिए वहां के मालिकों को बहुत उठाना पड़ता था । गांधीजी ने इस पर अपना प्रस्ताव भेजा और सरकार ने अंत में मालगुजारी बढ़ाने की सलाह दी जिससे मालिकों को अपनी अपनी जमीनें वापस मिलीं । यह तो बारडोली के सत्याग्रह के रूप में प्रसिद्ध हुआ ।

गांधीजी ने नमक कानून के विरुद्ध नमक सत्याग्रह प्रारंभ किया । वे अपने साथियों को साथ लेकर दण्डी की कूच पर निकले और दण्डी पहुंचकर समुद्र-तट से नमक इकट्ठा करके प्रस्तुत कानून तोड़ दिया । उपर्युक्त कार्य- सिद्धि के लिए गांधीजी ने सविनय - अवज्ञा आंदोलन किया । गांधीजी के रचनात्मक कार्यक्रम में हिन्दू मुस्लिम एकता के प्रमुख अंग थी । अन्त में उन्होंने भारत की पूर्ण स्वराज्य प्राप्ति की मांग की । सन् १९४७ अगस्त १५ को भारत ने पूर्ण स्वाधीनता प्राप्त की।

इस प्रकार हम देख सकते हैं कि गांधीजी ने भारत के राजनीतिक क्षेत्र में जो सुधारात्मक कार्य किया है, वह अत्यन्त माननीय एवं प्रशंसनीय है । गांधीजी के आगमन के पूर्व भारत के अनेक नेताओं ने इस क्षेत्र में सुधार की प्रवृत्तियों का श्रीगणेश किया था और उसके लिए खूब प्रयत्न किया था; लेकिन गांधीजी ही प्रशंसा के योग्य हैं, जिन्होंने राजनीतिक सुधार को पूर्ण किया और उसमें नये नये कानूनों का आविष्कार किया । राजनीति के क्षेत्र में उन्होंने जो कार्य किया था, वह एकदम सुधारवादी था, वैसा ही समाज के क्षेत्र में भी गांधीजी ने प्रशंसात्मक सुधार किया ।

समाज के क्षेत्र में गांधीजी :-

गांधीजी की सामाजिक मान्यताएं अनेक थीं जिनके आधार पर उन्होंने समाज की सुधार- संबंधी बातों का उल्लेख करके उन्हें भारत के सामाजिक क्षेत्र में प्रयोग योग्य बनाकर समर्पित किया । समाज का निर्माण व्यक्ति करता है; व्यक्ति का निर्माण नहीं करता । व्यक्तियों के समूह से ही समाज बनता है। अत: उसे समाज की उन्नति के लिए जीना और प्रयत्न करना चाहिए । व्यक्ति को समाज से अलग करना संभव नहीं । समाज की भलाई के लिए व्यक्ति- व्यक्ति को

स्वतन्त्रतापूर्वक रहने का अधिकार प्राप्त होना चाहिए ।[१] हर व्यक्ति की उन्नति हो समाज की भी उन्नति हो सकती है। इसलिए गांधीजी ने समाज में जनता की उन्नति और अधिकार पर अधिक ध्यान दिया है । उन्होंने ऐसे समाज का निर्माण करना चाहा था जिस में व्यक्ति ही प्रमुख हो । उसे समाज की सारी मंजिलों पर उच्च स्थान और सर्वाधिकार देना चाहिए ।

समाज और व्यक्ति के संबंध पर गांधीजी के विचार :-

व्यक्ति को अपनी स्वतंत्रता प्रकट करनी है तो वह अहिंसा पर आधारित समाज में ही संभव है । अहिंसा में ऐसा कोई काम नहीं है जो करने योग्य नहीं है । उसमें समता का भाव होने के कारण प्रत्येक व्यक्ति अपना काम साफल्य-पूर्ण कर सकता है । गांधीजी ने समाज के संगठन में अहिंसा को इस उद्देश्य से ही प्रमुख स्थान दिया है । उसे समाज के धर्म के रूप में स्वीकार किया गया है । प्रत्येक व्यक्ति को समाज की सेवा के लिए तैयार होना चाहिए क्योंकि उसके परिश्रम से ही समाज विकसित हो सकता है । व्यक्ति की पारिवारिक योग्यता की कसौटी पर ही समाज की भलाई को हम कस सकते हैं । गांधीजी ने समाज को परिवार माना है जिसमें जनता और समाज में आपसी मेल या संबंध हो और जो स्वतंत्रता की कुंजी कहा जा सकता है ।[२] व्यक्ति और समाज में - कथनी और करनी में - समता होनी चाहिए । अगर दोनों समतापूर्ण हैं तो समाज और व्यक्ति की उन्नति होती है । आधारभूत समता की भावना ही समाज के कल्याण का रहस्य है जिस पर समाज अग्रसर होता रहता है ।

१: वैयक्तिक स्वतंत्रता को अस्वीकार करके कोई सभ्य समाज नहीं बनाया जा सकता है । - गांधीजी - विचार - रत्न - , पृ० १४०

२: To Gandhi, Society is just like a family and the relation between the individual and society is one of close independance .

- The political philosophy of Mahatma Gandhi. P. 287

सर्वोदय सिद्धान्त :-

गांधीजी ने एक स्थायी एवं सुगठित समाज की कल्पना करते हुए सामाजिक क्षेत्र में सुतुप कार्य किया । समाज के क्षेत्र में उनका मुख्य ध्येय था सर्वोदय । सर्वोदय का अर्थ है सबका उद्धार । सर्वोदय से ही समाजोद्धार संभव है । अत: गांधीजी ने सर्वोदय के लिए समाज का सुधार करना चाहा । समाज सुधार का पहला कदम है - जाति- भेद का मिटाना । जाति-भेद के रहने से समाज में एकता की पूर्णता नहीं होती । इसलिए उसे मिटाकर जनता को एकता के सूत्र में बांधना व्यक्ति का कर्तव्य है । सर्वोदय के लिए गांधीजी ने जाति- भेद की बात को सुदृढ़तापूर्वक पकड़ लिया था । इसी सिलसिले में उन्होंने अस्पृश्यता- निवारण पर अधिक ध्यान दिया । अस्पृश्यता या अछूतापन भारत में बहुत पुराना था । इससे भारत की सामाजिक दशा अत्यंत बिगड़ी हुई थी । गांधीजी को यह बात बहुत खटकती थी और उन्होंने इसका समूल नाश करने का प्रयत्न किया । गांधी युग में भी यह प्रथा चलती थी ।

भारत में बड़ों की सेवा- सहायता करने वाले निम्न वर्ग के लोगों को अछूत माना जाता था । उन्हें यहां रहने का स्थान भी नहीं देते थे । दक्षिण अफ्रीका में भी इन लोगों को हीन तथा अस्पृश्य मानते थे और उन्हें कुली बताते थे । भारत में कुली का अर्थ केवल मजदूर है । लेकिन दक्षिण अफ्रीका में यह शब्द अवहेलनात्मक तथा उपेक्षा-सूचक के रूप में प्रयुक्त होता था । ऐसे लोग जहां एक साथ रहते थे उसे 'कुली लोकेशन' कहते थे । छुआ-छूत की प्रथा बिहार में अत्यंत कट्टर थी । हरिजनों पर किये गये प्रतिबन्धों को मिटाने का प्रस्ताव कांग्रेस में सन् १९१७ में पास किया गया । इसके बाद वर्षों तक अस्पृश्यता निवारण को राजनीति के कार्यक्रम का प्रमुख अंग माना गया । स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए अछूत का निवारण अत्यंत आवश्यक माना गया । सविनय अवज्ञा आन्दोलन के तृतीय चरण में अस्पृश्यता निवारण की प्रवृत्तियां तीव्र होती चलीं । हरिजनोद्धार के लिए यह समय अत्यंत महत्वपूर्ण था । इसके लिए गांधी जी ने उपवास किया और फलत: उन्हें मंदिर में प्रवेश करने का अधिकार मिला । और एक बात पर भी उन्होंने अधिक जोर दिया था - वह थी हिन्दू - मुसलिम एकता । भारत के हिंदुओं को मुसलमानों से बहुत कष्ट सहना पड़ा था । मुसलमानों के अत्याचार और अनीति से हिन्दू जनता सातंक रहती थी ।

गांधीजी ने इससे दु:खित होकर इनमें एकता लाने का प्रयास किया। हिन्दु-मुसलिम एकता देश की उन्नति और कल्याण के लिए अत्यंत आवश्यक थी। इसलिए यह उनके रचनात्मक कार्यक्रमों का प्रमुख अंग था। उन्होंने इसके लिए उपवास- आंदोलन आदि किया। उनके अथक एवं उत्साहपूर्ण प्रयत्न के फल- स्वरूप भारत में हिंदु - मुसलिम एकता की स्थापना हुई।

वर्ण- व्यवस्था पर उन्होंने बताया है कि वर्ण- व्यवस्था का अर्थ है कर्तव्य या धर्म।[1] वे वर्णाश्रम धर्म और वर्ण- व्यवस्था को मानने वाले थे। लेकिन इसमें उच्च- नीच की भावना को पैदा करना वे नहीं चाहते थे। जिस वर्ण के व्यक्ति को जो कर्म करना चाहिए उसे वह कर्म करने का अधिकार होना चाहिए। वेदों में प्रतिपादित चारों वर्णों का समर्थन उन्होंने किया है। एक व्यक्ति के एक अलग कर्म के कर्ता होने पर ही यह बताया जा सकता है कि वह अमुक वर्ण का है। इस प्रकार कर्म पर ही वर्ण - व्यवस्था आधारित है। वह कर्म - क्षेत्र तक ही सीमित रह सकते हैं; प्रत्युत उसे उससे बाहर दूसरे किसी भी क्षेत्र में फैलाना नहीं चाहिए।

गांधी जी ने बाल- विवाह का विरोध और विधवा- विवाह का समर्थन किया है। बाल- विवाह को वे कभी प्रोत्साहन नहीं देते थे। गांधीजी का विवाह तो उनकी बाल्यावस्था में ही हुआ था। वे तेरह साल की उम्र में विवाहित हुए। गांधीजी इससे सहमत नहीं थे। अत: उन्होंने अपनी 'आत्मकथा' में बताया है - 'यह लिखते हुए मन अकुलाता है कि तेरह साल की उम्र में मेरा विवाह हुआ था। आज मेरी आंखों के सामने बारह - तेरह वर्ष के बालक मौजूद हैं। उन्हें देखता हूं और अपने विवाह का स्मरण करता हूं। मुझे अपने ऊपर दया आती है, और इन बालकों को मेरी स्थिति में से बचने के लिए बधाई देने की इच्छा होती है।'[2] आगे गांधीजी ने इसका विरोध किया। उनके मतानुसार बाल- विवाह से कोई लाभ नहीं। इसका कारण तो यह बताया गया है कि बाल- विवाहों से बालकों और बालिकाओं को जीवन के दु:खों को भोगना पड़ता है, बहुत पहले से ही।

१: गांधी विचार रत्न - पृ० १५५

२: आत्मकथा - पृ० ५

साधारणत: विधवाओं को पुन: विवाह करने का अधिकार नहीं दिया जाता था। मगर गांधीजी ने इस प्रथा का विरोध किया और विधवा विवाह को समाज में प्रमुख स्थान दिया गया। उनका कथन यह था कि जब एक नारी विधवा होती है तो उसे अपने जीवान्त तक वैधव्य का अनुभव करके रहना पड़ता है। इससे उसका जीवन ही बरबाद हो जाता है। गांधी जी इस प्रकार नारी के वैधव्य- भोग को पसंद नहीं करते थे। इसलिए उन्होंने विधवा को पुनर्विवाह करने के अधिकार की घोषणा भी की। हिन्दू विधवा के बारे में गांधीजी ने यों बताया है -

"हिन्दू विधवा त्याग और पवित्रता की मूर्ति है। वह माता की तरह सबके लिए पूज्य है। उसे अशुभ समझने वाला हिन्दू समाज महान अपराध करता है। शुभ कार्यों में उसकी उपस्थिति और आशीर्वाद प्राप्त करने का प्रयत्न अवश्य किया जाना चाहिए। पवित्र विधवा को समाज का भूषण समझकर उसके सम्मान और प्रतिष्ठा की रक्षा की जानी चाहिए।"[१] गांधीजी का विधवा विवाह संबंधी दृष्टिकोण यही था। उन्होंने हिन्दू युवकों से ऐसी विधवाओं से विवाह करने का अनुरोध किया था। इस प्रकार उन्होंने विधवाओं को भी समाज की अन्य नारियों के समान ऊंचा स्थान दिलाने का स्तुत्य कार्य किया।

अर्थ के क्षेत्र में गांधीजी :

गांधीजी ने भारत के आर्थिक क्षेत्र में भी सुधारात्मक कार्य किया है। उन्होंने अक्सर यही बताया है कि देश की आर्थिक स्थिति बिगड़ने के कारण ही देश की अवनति होती है। अर्थ की दुर्दशा उसके नाम पर हुए किये जाने वाले दूषणों तथा दूषणों के कारण होती हैं। इतना ही नहीं अर्थ के नाम पर जनता के बीच में उच्च- नीच का भाव फूट पड़ा है। इसलिए अमीर - गरीब की व्यवस्था प्रचरित हुई। इस व्यवस्था के अनुसार अमीर बड़ी धूम-धाम से जीवन बिताते हैं जब कि गरीबों को एक भी दिन काटना अत्यन्त कठिन तथा बड़ा मुश्किल हो जाता है। इसके कारण से देश में दरिद्रता जन्म लेती है। और अपना संहार तांडव प्रारंभ कर देती है। यह ताण्डव इतना तीव्र हो जाता है जिसमें असंख्य गरीबों की हत्या की संभावना होती है।

१: गांधी विचार दोहन - पृ० ४७

ऐसे आर्थिक वातावरण में आर्थिक सुधार अत्यन्त आवश्यक हो जाता है।

गांधीजी ने देश की संपत्ति को बढ़ाने के लिए आर्थिक क्षेत्र में चरखा और खादी का प्रचार किया। चरखे को गांधीजी ने घरेलू उद्योग के रूप में अपनाया। अत: प्रत्येक घर में चरखा रहता था और प्रत्येक नारी चरखा चलाने या सूत्र कातने का काम करती थी। गांधीजी के लिए चरखा आर्थिक स्वतंत्रता का हथियार रहा। उन्होंने विदेशी वस्त्रों की ठाटबाट का विरोध किया, जिससे जनता अर्थ का सर्वनाश करती है। उन्होंने स्वदेशी वस्त्र खरीदने और देश की आर्थिक दशा सुधारने का अनुरोध किया। खादी का वस्त्र शांति और समाधान का चिन्ह माना गया। देश की आर्थिक दशा की उन्नति के लिए खादी का वस्त्र पहनना आवश्यक रहा। अत: उन्होंने इसी पर अधिक बल दिया था। गांधी जी देश की समस्त नारियों को चरखा चलाने की प्रवृत्ति सिखाने में बड़े तत्पर एवं उत्सुक थे। वे भी नियमत: स्वयं सूत कातते थे। चरखा और खादी को इतनी प्रमुखता देने की और एक विशेषता यह है कि उन्होंने इन दोनों में एकता तथा समता का दर्शन किया और इन दोनों के प्रचार और प्रयोग के द्वारा देश की जनता में संकल्पना सम-भावना की प्रतिष्ठा की। खादी के कपड़ों के उत्पादन से वे देश की आर्थिक दशा को बहुत कुछ सुधार सके।

खादी उनके लिए बहुत प्रिय थी जिसमें उन्होंने देश की आर्थिक उन्नति की कल्पना की थी। उन्होंने स्वयं बताया है - "मुझे याद नहीं पड़ता कि सन् १९०८ तक मैं ने चरखा या करघा कहीं देखा हो। फिर भी मैं ने हिन्द स्वराज्य में यह माना था कि चरखे के जरिये हिन्दुस्तान की कंगाली मिट सकती है।[१] गांधीजी ने लेकिन इस कल्पना को साकार बना दिया। बहुत प्रयत्न करने के बाद उन्होंने संपूर्ण भारत में खादी के द्वारा आर्थिक दशा का सुधार किया। इतना ही नहीं, स्वदेशी वस्त्रों और अन्य वस्तुओं के उत्पादन और उपयोग की उन्नति के लिए उन्होंने स्वदेशी आंदोलन का आयोजन किया। भारत में ही नहीं, संसार- भर में इस आंदोलन का स्वागत हुआ। स्वदेशी आंदोलन की सफलता ने देश में विदेशी - वस्त्र का बहिष्कार को सफल बना दिया।

समाज को आर्थिक सुरक्षा का और एक उपाय गांधीजी ने रखा था और वह था ट्रस्टीशिप अथवा सार्वजनिक संस्था। इसकी सहायता से उन्होंने अर्थ की रक्षा की। इसकी एक ऐसी व्यवस्था है जिसका धन सार्वजनिक आवश्यकताओं

के लिए उपयोगी सिद्ध हो । उन्होंने इस संस्था का स्थापन करते हुए यह बताया था कि इस संस्था में जो धन सुरक्षित है उसे जनता की आवश्यकता के लिए ही खर्च करना चाहिए । इससे देश की आर्थिक दशा बहुत कुछ सुधर सकी ।

अंत में गांधीजी की आध्यात्मिक व धार्मिक दृष्टि पर प्रकाश डालना आवश्यक है । गांधीजी बचपन से ही भगवान के अनन्य भक्त थे और उन्हें ईश्वर पर अटूट विश्वास था । उन्होंने भारत की राजनीति को आध्यात्मिकता का रंग प्रदान किया । राजनीति के क्षेत्र का आध्यात्मीकरण करने का उन्होंने बड़ा प्रयत्न किया । भारत में प्रचलित सभी धर्मों में समता लाने की कोशिश की । उन्होंने भारत के विजातीय लोगों को अपने- अपने धर्मों में विश्वास रखने और उसका पालन करने का अधिकार दिया था । उन्होंने धर्म और राजनीति को एक ही माना और उनके अटूट संबंध का समर्थन भी किया । धर्म के बिना राजनीति की कल्पना तक वे कर नहीं सकते थे । भारत की राजनीति में हिन्दू - मुस्लिम की एकता का जो महान कार्य हुआ है , वह उनकी सर्वधर्म- सम्भावना का उदाहरण है । भारत के एक धर्म- निरपेक्ष राज्य होने के कारण इस कार्य की सिद्धि में सफलता पायी ।

भारतीय राजनीति को एकदम आध्यात्मिक बनाने की दो मुख्य वस्तुएं थीं - सत्य और अहिंसा । ये भारतीय आध्यात्मिक राजनीति के दो स्तम्भ रहे हैं । देश की जनता में ईश्वर- विश्वास पैदा करने और बढ़ाने का प्रयास ही उनका उद्देश्य था । उनका अभिप्राय यह था कि देश का कल्याण अहिंसात्मक प्रवृत्तियों द्वारा ही हो सकता है और इसके लिए जनता को भी अहिंसात्मक बनाना चाहिए । उन्होंने अहिंसा के द्वारा जनता को सत्य तक पहुंचाने का प्रयत्न भी किया था । अहिंसा की नीति भारत की राजनीति के लिए स्वीकार्य थी । इसके अलावा उन्होंने अस्तेय, अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य, मौन, उपवास, आत्म संयम आदि तत्वों का समावेश भी किया जो भारत की राजनीति को आध्यात्मिक बनाने में सहायक सिद्ध हुए ।

हिन्दी साहित्य में गांधी जी और गांधीवाद का स्थान :-

हिन्दी साहित्य में गांधीजी को इतना महत्वपूर्ण स्थान प्रदान करने

का श्रेय हिन्दी के साहित्यकारों को है । इन साहित्यकारों में पूर्ण- अपूर्ण प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष, यथार्थ - मौलिक आदि विभिन्न रूपों में गांधीवाद की भावना मौजूद है । कहने का मतलब यह है कि उनके जीवन और व्यक्तिगत विशेषताओं को लेकर केवल दो या चार पंक्तियों वाली कविता तक रचने वाले कवि भी कम नहीं हैं । उन पर महाकाव्य जैसे बृहत् एवं महत् ग्रंथों की रचना करने वाले कवियों की संख्या भी बड़ी है । इस प्रकार काव्य के भेदों और उपभेदों में गांधी - जीवन का वर्णन है । हिंदी साहित्य के काव्य, मुक्तक कविताएं, नाटक, उपन्यास, कहानी, एकांकी आदि विभिन्न विधाओं में गांधीजी का मूल्यांकन किया गया है । हिन्दी के साहित्यकारों ने अपनी- अपनी तूलिका से विविध साहित्य- पट पर अपनी अपनी भावनाओं के अनुसार गांधीजी के बहुरंगी गुण- वर्णन-चित्र खींचने में अपनी रुचि प्रकट की है । यह भी देखा जा सकता है कि जो साहित्यकार स्वभावत: गांधीजी के अनुयायी न हों, वे भी गांधीजी या उनसे संबंधित कोई विषय चुनकर अपनी लेखनी से दो- चार बातें प्रस्तुत करने का प्रयास करते अवश्य हैं ।

कुछ साहित्यकार ऐसे भी हैं जो गांधीजी और गांधीवाद पर किंचित् प्रकाश डालने भर से संतुष्ट होते हैं । ऐसा साहित्यकार केवल युगधर्म का अनुकरण करना ही चाहता है । ऐसी रचनाओं में गांधीजी या गांधीवाद से संबंधित कोई खास बात नहीं रहती । इनकी रचनाएं गांधीजी की व्यक्तिगत विशेषताओं की प्रशंसाओं से भरी रहेंगी । यह साहित्यकार उनके सिद्धान्तों पर गहराई से चिंतन- मनन करने का प्रयास नहीं करता । केवल अपने विषय का बाह्य वर्णन ही उसका लक्ष्य रहता है । कभी यही प्रशंसा बढ़कर अति प्रशंसा हो जाती है । फिर भी कोई दोष नहीं है । वह अपने मन के गांधीय भावों को किसी न किसी प्रकार व्यक्त करना चाहता है ।

गांधीजी का गांधीवादी राष्ट्रवाद अपना निजी वरदान है । अत: उसमें मौलिकता दिखाई पड़ती है । वह विचार और भाव में अपने में स्वतंत्र है । अत: हिन्दी के साहित्यकारों को इसने तुरंत प्रभावित किया ।[१] इन साहित्यकारों ने

१: हिन्दी साहित्यकार गांधीजी के राष्ट्रवाद से अत्यधिक प्रभावित हुए । अत: सत्याग्रह आन्दोलनों तथा रचनात्मक कार्यक्रमों द्वारा देश जीवन के सभी पक्षों के उत्थान का पूर्ण प्रयास हिन्दी साहित्य में मिलता है। - भारतीय राष्ट्रवाद की हिन्दी साहित्य में अभिव्यक्ति - पृ० २९

देश की विभिन्न परिस्थितियों को गांधीजी के दृष्टिकोण से देखा- परखा है और उनसे जनित समस्याओं का समाधान गांधीवाद के प्रस्तुतीकरण में ढूंढने का प्रयास किया है। यही गांधीवादी साहित्यकारों की प्रमुख प्रवृत्ति रही है। यह वाद भारत में शान्ति और समाधान से युक्त शासन की संस्थापना का साधन रहा है। इसके अंतर्गत गांधीजी के अपने व्यक्तिगत समस्त विचारों का समावेश हुआ है। उनकी वैयक्तिक राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक धार्मिक संबंधी विभिन्न विचार- परंपराओं का समन्वय इसमें पाया जाता है। उन्होंने अपने इन विचारों को भारतीय- स्वाधीनता - संग्राम के धरातल पर सक्रिय बनाया और बाद में ये सर्वप्रिय तथा सर्वमान्य हो गये।

यह तो स्पष्ट है कि आधुनिक हिन्दी साहित्य में गांधीवाद की विवेचनात्मक अभिव्यक्ति की प्रवृत्ति स्वतंत्रता के पूर्व ही होने लगी थी। स्वातन्त्र्योत्तर साहित्य में यह प्रवृत्ति और भी अधिक मात्रा में पायी जाती है। कविता और काव्य- क्षेत्र में इसका विशेष विस्तृत प्रतिपादन देखने को मिलता है। गांधी- युग में रहनेवाले साहित्यकारों को गांधीवाद ने अत्यंत प्रभावित किया भी है। अद्यतन युग के साहित्यकारों पर भी इसका प्रभाव समयानुकूल पड़ता है और वे भी गांधीवादी साहित्यिक रचनाओं का सृजन करते हैं। गांधीवाद के प्रत्येक तत्व का सम्यक् निरूपण हिन्दी साहित्य में उपलब्ध होता है। गांधीवादी तत्वों के आधार पर छोटी सी कविता से लेकर दीर्घकाय महाकाव्य तक की रचनाएं हुई हैं। सोहनलाल द्विवेदी, माखनलाल चतुर्वेदी, सियारामशरण गुप्त, बालकृष्ण शर्मा ' नवीन ', मैथिलीशरण गुप्त, दिनकर, बच्चन सुमित्रानन्दन पन्त, नरेन्द्र शर्मा, हरिकृष्ण ' प्रेमी ', शिवमंगलसिंह ' सुमन ', सुभद्राकुमारी ' चौहान ', रामेश्वर शुक्ल ' अंचल ', पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश ' आदि अनेक कवियों ने अपनी स्फुट कविताओं में गांधीजी और गांधीवाद का विवेचन किया है। मैथिलीशरण गुप्त, सियारामशरण गुप्त, पन्त, गोकुलचन्द्र शर्मा, केदारनाथ मिश्र 'प्रभात' आदि कवियों ने गांधीजी और गांधीवाद को लेकर खण्डकाव्यों की रचना की है। गीतिकाव्य, गीति- नाट्य, शोकगीति, मुक्तक काव्य, आख्यानक काव्य, निबंध काव्य आदि का सृजन भी हुआ है। ठाकुर गोपालशरण सिंह, डा० बलदेवप्रसाद मिश्र 'नवीन ' 'हरिऔध', डा० रामकुमार वर्मा, गुरुभक्त सिंह ' भक्त ', दिनकर, गिरिजादत्त

शुक्ल ' गिरीश ', मैथिलीशरण गुप्त, डा० हरिशंकर शर्मा आदि प्रशस्त कवियों और अन्य कम प्रसिद्ध कवियों ने भी गांधी जी और गांधीवाद पर महाकाव्य का सृजन किया है । इनके अतिरिक्त कुछ काव्य- संकलन भी निकले हैं जिनमें गांधीजी और उनके सिद्धान्तों का ही प्रतिपादन विस्तृत रूप से किया गया है । इस प्रकार हिंदी साहित्य में गांधीजी और गांधीवादी काव्यों का एक विशाल एवं विस्तृत भंडार मौजूद है । काव्यों में गांधीवाद का स्फुरण साहित्यिक रचनाओं के प्रधान पात्रों के संवादों के द्वारा हुआ है । ये पात्र चाहे नायक हो या नायिका, आद्यन्त गांधीवादी होते हैं ; बीच में उनका हृदय बदलता नहीं । अगर बदलता भी है तो ऐसे पात्रों का हृदय बदलता है जो पहले गांधीवादी नहीं । प्रत्युत जो पहले से ही गांधीवादी हैं, वे वैसे ही रहते हैं । नायक - नायिकाओं को गांधीवादी बताने से रचना और पात्र दोनों महत्वपूर्ण बनते हैं । नायक-नायिकाएं गांधीवादी तत्वों को प्राण और ओज प्रदान करते हैं । ये दूसरे पात्रों के लिए भी अनुकरणीय रहते हैं, उन्हें मार्ग- दर्शन कराते हैं, हृदय- परिवर्तन कराते हैं और मानव - कल्याण की ओर ले जाते हैं । युग युग से उपेक्षित नर- नारियों को महाकाव्य, खण्डकाव्य आदि के नायक- नायिका पात्रों के रूप में प्रस्तुत करने का श्रेय भी गांधीवाद को ही है ।

गांधीजी का मुख्य लक्ष्य इस भारत-भूमि को रामराज्य बनाना और जीवन के सभी क्षेत्रों में मानव- मात्र को प्रमुखता देते हुए मानवतावाद की प्रतिष्ठा करना था । यह तो दैविक शक्ति से युक्त मानवीय रूप धारण करने वाले साधारण मनुष्य के द्वारा ही संभव है । इसीलिए इस युग में आध्यात्मिकता, आत्मविश्वास और ईश्वर- प्रार्थना को प्रधानता दी जाती है । गांधीजी वास्तव में एक साधारण व्यक्ति थे । मगर उनमें अतिशय दिव्यता एवं दैवी शक्ति निहित थी । गांधीवादी काव्यों ने ईश्वर को भी साधारण मनुष्य के रूप में चित्रित किया है । उन्होंने भगवान श्रीराम- चन्द्र जी को साकेत , रामराज्य आदि महाकाव्यों में मानवीय रूप प्रदान किया है । महाभारतीय, रामायणीय तथा पुराणीय महाकाव्यों और खण्डकाव्यों में यह प्रवृत्ति अधिक दिखाई पड़ती है ।

हिन्दी साहित्य के काव्येतर अन्य अंगों पर भी गांधीवाद का प्रभाव

कितना पड़ा है, यह दर्शनीय है। गांधीवादी कवियों की भांति गांधीवादी उपन्यासकार, नाटककार, कहानीकार, एकांकीकार आदि को भी हिंदी साहित्य ने जन्म दिया है। इन्होंने गांधीवाद के विभिन्न तात्त्विक पहलुओं को लेकर साहित्यिक रचनाएं की हैं, जिनका भी उद्देश्य लोक- मंगल और मानव- कल्याण रहा है। गांधी- युग में पहुंचते ही इन उपर्युक्त साहित्यकारों की दृष्टि भी जनता भी जनता की ओर फिर गयी और जन- जीवन से संबंधित विभिन्न पहलुओं का चित्रण करना अपना कर्तव्य मान लिया। इनमें मानवतावाद के प्रति रुचि पैदा हो गयी और इन्होंने अपनी रचनाओं द्वारा मानववाद की प्रतिष्ठा करने का निश्चय किया। गांधीजी और गांधीवाद से संबंधित तथा आधारित उपन्यास, कहानी, नाटक, उपन्यास, एकांकी, आदि की रचना बड़ी संख्या में होने लगी। गांधीवाद के सत्य अहिंसा, हिंदू- मुस्लिम एकता, हृदय- परिवर्तन, विधवा- विवाह, अस्पृश्यता आदि सिद्धान्तों को इन साहित्यकारों ने अपनाया और इन्हें अपनी रचनाओं में महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है।

गांधीजी धार्मिक व्यक्ति थे और आध्यात्मिकता उनका दिव्य मंत्र थी। उन्होंने भारत की संपूर्ण परिस्थितियों को आध्यात्मीकरण एवं नैतीकरण के द्वारा बदलने का प्रयास ही किया है। अतः उन्होंने भारत के शासन के क्षेत्र में आध्यात्मिकता को उतारा और उसका प्रचार भी किया। इसलिए सन् १६२० के बाद के साहित्य में आध्यात्मिकता मिली रहती है। उन्होंने इस राष्ट्रवाद में मानववाद को भी मिलाया है और आधुनिक हिन्दी साहित्य में राष्ट्रवाद- मानववाद का बड़ी युगल रूप समाहित है। गांधीजी के आगमन के बाद देश के अनेकों साहित्यकारों ने अपनी वाणी और बुद्धि से ही नहीं, व्यक्तित्व के द्वारा भी उनकी प्रवृत्तियों में योगदान दिया है। हिन्दी के कवियों ने गांधीजी के आन्दोलनों में सक्रिय भाग लेते हुए कष्ट अनुभव किया है और कारागृह का मधुर स्वाद भी चखा है। इन्होंने गांधीवाद को कोरी कल्पना न करके उसे अपने जीवन का अनुभूत विषय बनाया है। इस राष्ट्रवाद के प्रतिपादन से सूक्ष्म से सूक्ष्म भावनाओं पर भी प्रकाश पड़ा और वे जनता के सम्मुख प्रस्तुत की गयी। गांधीवादी राष्ट्रवाद ने हिन्दी साहित्य में बड़ा परिवर्तन उपस्थित किया है। आधुनिक युग के प्रारंभ के पूर्व तक हिंदी साहित्य में श्रृंगारिकता और विलासिता का निरूपण होता था। इस दृष्टि से हिंदी साहित्य का स्तर अत्यंत नीचा भी रहा था। लेकिन आधुनिक युग की राष्ट्रीय भावना ने इन्हें समाप्त किया और अपना प्रचार किया। इसने

साहित्यकारों की रुचि को जन- जीवन की ओर उन्मुख बनाया । काव्यादि का विषय जहां पहले राजा जैसे बड़े लोगों की स्तुति, प्रशंसा, रूप- वर्णन, गुण- कीर्तन आदि था वहां इस युग में उसके विषय निर्माण के लिए जन- जीवन से बहुत सी सामग्रियां प्राप्त होने लगीं । गांधी- युग में साहित्य में जनता को ऊंचा स्थान प्रदान किया गया जब कि वह पहले सिर्फ अभिजात वर्ग का रहा था । पिछले युगों का साहित्य शृंगार, वात्सल्य, शान्त आदि रसों से रंगा हुआ था । आधुनिक युग के साहित्य ने तो इन रसों को फीका बना दिया है । इस युग के साहित्य में राष्ट्रीयता की बलि- वेदी पर आत्म- बलिदान करने वाले तरुण युवकों की वीर- गाथा तथा अमर -गाथा का प्रणयन प्रतिदिन हुआ है और आज का साहित्य इसका प्रत्यक्ष साक्षी है ।

अध्याय ४

गांधी - दर्शन और सिद्धान्त

अध्याय ४

गांधी दर्शन और सिद्धान्त

वाद :

आधुनिक विचार जगत में अनेक राजनैतिक, अर्थ-शास्त्रीय और अन्य वाद प्रचलित हैं। वाद तत्व का सामान्य अर्थ होता है तत्व। किन्तु यह शब्द, तत्व शब्द से कहीं अधिक व्यापक अर्थ का होता है। जैसे गांधीजी से संबंधित जितने भी सिद्धान्त होते हैं उन सब का समावेश गांधीवाद के अन्तर्गत किया जाता है। अत: गांधीवाद शब्द की व्याख्या एक ही पर्यायवाची शब्द से करना असंभव है। अन्य राजनीतिक नेताओं से कोई किसी क्षेत्र के विशेषज्ञ थे तो उसी के संबंध में उनके विचारों का महत्व था। गान्धीजी का कार्यक्षेत्र बहुमुखी था और प्रत्येक दिशा में उनकी साख जम गयी थी। जिस किसी क्षेत्र में गांधीजी कार्यशील थे, उसमें गांधीजी काअपना मत एवं अपना दृष्टि-कोण होता था। अनेकों लोग दिशा- निर्देशन के लिए उनकी राह देखते थे। इस विशेषता के कारण हम महात्मा गान्धीजी के विचारों का विश्लेषण अलग अलग क्षेत्र में हो कर सकते हैं। इस विशेषता से यह तथ्य भी सिद्ध होता है कि 'गांधीवाद' का विवेचन प्रत्येक क्षेत्र को लेकर अलग अलग करना पड़ता है, न कि एकत्र।

गांधीवाद बीसवीं शताब्दी का सिद्धान्त रहा है। इसका प्रचार जिस समय हुआ, वह विश्वयुद्धों का था। एक तरफ़ शोषण संयुक्त शस्त्रबल की सत्ता घोषित कर रहे थे, दूसरी तरफ़ साम्यवाद खूनी क्रांति के बाद अपनी विजय की पताका फहराने लगा था। इस विकट परिस्थिति के बावजूद गांधीजी प्रत्यक्षत: नकारात्मक, किन्तु आन्तरिक दृष्टि से सशक्त विचार एवं प्रयोग लेकर कार्यक्षेत्र में आये। कई लोगों ने उनकी तारीफ़ की और भक्त बने। कुछ लोग तो गांधीजी के विचारों से असहमत थे और उन्होंने उनकी कटु आलोचना की। अत: गांधीवाद को फूल ही फूल नहीं मिले हैं, शूल का कष्ट भी सहना पड़ा है। गान्धीवाद अपने दिनों में इतना बहुप्रचलित शब्द होगया कि बड़े विद्वान और प्रामाणिक अधिकारियों से लेकर मामूली आदमी तक इस शब्द की व्याख्या करते आये हैं। यह कठिन हो गया है कि गांधीवाद की सर्वथा प्रामाणि और वैज्ञानिक व्याख्या सुनायें। यहां तक कि गांधीवाद के संबन्ध में जितनी मनमानी बातें हुई हैं, अन्य किसी सिद्धान्त के विषय में नहीं हो सकतीं हैं।

परिभाषा :

गान्धीवाद की विभिन्न व्याख्याओं के परस्पर अन्तर को समझने के लिए कई ऐसी परस्पर विरोधी और विभिन्न परिभाषाएं हम दे सकते हैं। जैसे, गांधीवाद को एक सज्जन (रामजीलाल बधौतिया) महात्मा गांधीकी चिन्तन पद्धति का व्यापक नाम मानते हैं।[१] यही सज्जन और अन्यत्र अत्यन्त अस्पष्ट रूप में कहते हैं कि गांधीजी के स्वानुभूत व्यवहार, दर्शन एवं अभिव्यक्त विचारसरणी का नाम गान्धीवाद है।[२] एक सज्जन (भगवानदास तिवारी) गान्धीवाद को प्रधानत: राजनीतिवाद कहते हैं तो अन्यत्र यशपाल जैसे लेखक कहते हैं कि गांधीवाद का आदर्श सत्य, अहिंसा और सेवा द्वारा रामराज्य की स्थापना है और यही उसका कार्यक्रम और साधन भी है। डा० नगेन्द्रजी का निम्नलिखित कथन कहीं दूसरे मत की पुष्टि करता है - ` गान्धीवाद दार्शनिक शब्दावली में आध्यात्मिक मानवतावाद कहा जा सकता है।` इसी तरह कई अन्य विभिन्न व्याख्याएं लीजिए।

१: गान्धीवाद महात्मा गान्धी की चिन्तन पद्धति का व्यापक नाम है - हिन्दी साहित और विभिन्न वाद - पृ० ३१७

२: गांधीजी के स्वानुभूत व्यवहार, दर्शन एवं अभिव्यक्त विचारसरणी का नाम ही गान्धीवाद है - वहीं पृ० ३१७

डा० सत्येन्द्र ने गांधीवाद को " वैज्ञानिक पदार्थवादी नास्तिकता की प्रतिक्रिया माना है ।[१] गांधीजी के राजनीतिक कार्यक्रम को ही गांधीवाद या गांधी- दर्शन नाम से पुकारा जाता है । इस विचार को यशपालजी ने और भी स्पष्ट किया है ।[२] डा० रामरतन भटनागर ने गांधीवाद और बुद्ध के करुणावाद की समता प्रतिपादित करते हुए इसी करुणावाद को गांधीवाद बताया है । उनका कथन है -" गान्धीवाद को बुद्ध के करुणावाद का ही प्रयोगिक रूप कह सकते हैं ।"[३] आगे भटनागर जी ने गांधीवाद को और भी स्पष्ट बताते हुए कहा है कि साधन की महत्ता , आत्मशुद्धि, कर्तव्य की अनिवार्यता , अपरिग्रह, सर्वोदय आदि कुछ गान्धीवादी विशेषताओं को गान्धीवादकी संज्ञा दी है । " गांधीजी के जीवन- दर्शन की कुछ विशेषताओं को हम गांधीवाद का नाम दे सकते हैं जैसे साधन की श्रेष्ठता पर विश्वास, निरन्तर आत्मपरिष्कार की आवश्यकता , अधिकार की अपेक्षा कर्तव्य निष्ठा पर बल, अपरिग्रह तथा सर्वोदय का महत्व ।"[४]

प्रो० ओमप्रकाश शर्मा ने महात्मा गान्धी की विचार- पद्धति को गांधीवाद बताया है ।" महात्मा गान्धी की विचार- पद्धति का नाम गांधीवाद है ।"[५] आगे इन्होंने बताया है कि समाज व्यवस्था का नियमीकरण मात्र गांधीवाद है , यह कोई दार्शनिक प्रणाली नहीं है । यह कथन गांधीवाद की दृष्टि से ठीक नहीं जंचता । कारण यह है कि गांधीवाद का मूल आधार दर्शन है - विशेषत: भारतीय दर्शन । इतना ही नहीं , उनकी समाज- व्यवस्था के सुधार की दृष्टि से भारतीय राजनीति का संपूर्ण आध्यात्मीकरण ही उनका जीवन- लक्ष्य था । हिन्दी के सुप्रसिद्ध छायावादी कवि प्रो० सुमित्रानन्दन पन्त ने भी गांधीवाद की व्याख्या की है । उन्होंने इन पंक्तियों में गान्धीवाद की लाक्षणिक परिभाषा दी है -

---

१: गान्धीवाद वैज्ञानिक पदार्थवादी नास्तिकता के विरुद्ध प्रतिक्रिया है - समीक्षात्मक निबंध - पृ० १४२

२: गान्धीजी ने देश की राजनीतिक मुक्ति के लिए जनता के सामने जो राजनैतिक कार्यक्रम रखा था , उसे गांधी- दर्शन और गांधीवाद का नाम दिया गया था । - गांधीवाद की शवपरीक्षा - पृ० १

३: सामयिक जीवन और साहित्य - पृ० ४४१

४: सामायिक जीवन और साहित्य - पृ० ४४३

५: आधुनिक निबन्ध - समाजवाद - गांधीवाद - पृ० ३०

मनुष्यत्व का तत्व सिखाता, निश्चय हमको गांधीवाद ।
सामूहिक जीवन विकास को, साम्य योजना है अविवाद ।।[१]

इसप्रकार हम देखते है कि विभिन्न साहित्यकारों ने गांधीवाद की परिभाषा प्रस्तुत की है । लेकिन यह बात स्पष्टत: कही जा सकती है कि स्वयं गांधीजी ने तो जो गांधीवाद के निर्माता के हैं, इसके लिए कोई एक परिभाषा भी देने का प्रयास नहीं किया है । वे अपने नाम पर कोई 'वाद' का चलाना नहीं चाहते थे । उन्होंने बताया है 'वाद' का अन्त दुराग्रह और संकोच है ।[२] अत: उन्होंने स्वयं बताया है - 'गांधीवाद नाम की कोई वस्तु है ही नहीं, न मैं अपने पीछे कोई संप्रदाय छोड़ जाना चाहता हूं । मेरा यह दावा नहीं है कि मैं ने किसी नये तत्व या सिद्धान्त का आविष्कार किया है । मैं ने तो सिर्फ़ जो शाश्वत सत्य हैं, उनको अपने नित्य के जीवन और प्रतिदिन के प्रश्नों पर अपने ढंग से उतारने का प्रयास मात्र किया है । मुझे दुनिया को कोई नई चीज नहीं सिखाना है । सत्य और अहिंसा अनादि काल से चले आये हैं ।[३]

गांधीजी के उपर्युक्त कथन को अंग्रेजी विद्वानों ने भी और अधिक पुष्ट किया है । एक विद्वान श्री० हिरन मुकर्जी ने गांधीजी के इस कथन को दुहराया है ।[४] श्री० मोरारजी देसाई ने बताया है कि गांधीजी ने गांधीवाद नाम का कोई सिद्धान्त अपने पीछे नहीं छोड़ा है । लेकिन उनका जीवन ही उनके दर्शन को हमारे सम्मुख रखता है जो सारे लोगों के लिए ग्राह्य है ।[५] डा० राजेन्द्रप्रसाद ने कहा है कि गांधीजी किसी 'वाद' के आविष्कारक नहीं हैं ।[६]

१: युगवाणी- पन्त - पृ० ४३

२: ----- उनका कोई निजी धर्म, मत या संप्रदाय नहीं है । वे गांधीवाद के विरोधी थे क्यों कि वाद का अन्त ही दुराग्रह और संकोच है । सामयिक जीवन और साहित्य - पृ० ४४१

३: गांधीवाद की रूपरेखा -पृ० ६

४: There is no such thing as Gandhism and I do not want to leave any sect after me. - Gandhi A Study .P. 208

5. Gandhiji did not leave any set doctrine of Gandhiism behind him, but his life reflects his philosophy which is so basic that it appeals to every human heart. - Mahatma Gandhi 100 years.P.67

6. Gandhism for Millions . P. 48

व्यक्ति कदापि वाद नहीं हो सकता । प्रस्तुत उनके द्वारा प्रतिपादित विचारों सिद्धान्तों को ही ' वाद ' के अन्तर्गत रखा जा सकता है । लेकिन गांधीजी के जीवन और सिद्धान्त को ' वाद ' के अन्तर्गत समाकर रखना कठिन है । गांधीजी का जैसा जीवन एक साधारण व्यक्ति जी नहीं सकता, चाहे वह कितना ही परिश्रम करे । क्योंकि उनका जीवन पूर्णत: त्यागमय एवं तपोमय था । प्रत्येक व्यक्ति अपना अपना जीवन ही जिता सकता है । अत: उसे ' वाद ' में बांधना कठिन है, विशेषत: गांधीजी के जीवन को । डा० रामरतन भटनागर ने इस पर प्रकाश डालते हुए कहा है- व्यक्ति ही व्यक्ति का जीवन ग्रहण कर सकता है, संपूर्ण समाज और संप्रदाय नहीं । इसीलिए गांधी का जीवन जीना व्यक्ति की साधना की वस्तु ब रहेगी । वह ' वाद ' में नहीं बांध सकेगी । '[१]

' वाद ' का प्रचलित अर्थ है तर्क अथवा विवाद । लेकिन साहित्य में 'वाद ' शब्द किसी विचार - धारा की अभिव्यक्ति के लिए प्रयुक्त है । ऐसे साहित्यिक वादों में भी भले और बुरे दोनों प्रकार के वाद होते हैं । वाद जो व्यावहारिक हो या साहित्यिक, स्वभावत: व्यक्तियों के बीच में संघर्ष उत्पन्न करता है , उनके आपसी व्यवहार में एक प्रकार से मन- मुटाव पैदा करता है, उनके चिन्तापथ में भाव भेद की एक गहरी खाई बनाता है और बाद में दोनों व्यक्तियों में शत्रुता जन्म लेती है । यही कारण है कि गांधीजी ने अपने विचारों को ' वाद ' के अन्तर्गत संगृहीत करने से इनकार किया था ।

गांधीजी की सम्मति के विरुद्ध साहित्यकारों ने उनके विचारों को 'गांधीवाद ' नाम से पुकारना शुरू किया । ' गांधीवाद ' एक साहित्यिक विचार-धारा का ही नाम है । इसके प्रस्तुतकर्ता गांधीजी हैं, इसलिए ' गांधीवाद' संज्ञा दी गयी है । गांधीजी की विचारधारा के अनुसार सत्य, अहिंसादि अनेक पहलु होते हैं जिन्हें एक साथ मिलाकर ' गांधीवाद ' शब्द से अभिव्यक्त करना साहित्यकारों और अन्य लोगों को उचित जान पड़ा । अत: ' गांधीवाद ' शब्द का प्रयोग गांधीजी की मृत्यु के बाद से लेकर आज भी बहुत प्रचलित रूप में होता रहा है । आगे गांधीवाद के

- -

१: सामयिक जीवन और साहित्य - पृ० ४४१

दर्शन, प्रकृति, विशेषता आदि पर विस्तार से विचार होगा ।

दर्शन :

`दर्शन`[1] शब्द `दृश` (देखना) धातु से करण अर्थ में `ल्युट्` प्रत्यय लगाकर बना है । इसका अर्थ है जिसके द्वारा देखा जाय ।[2] यह तो एक मामूली बात है कि किताब पढ़ने या कोई बात सुनने के बदले, आँखों देखा ज्ञान प्राप्त करना बहुत अच्छा और अत्यन्त प्रभाव-जनक होता है । प्रत्येक धर्म का प्रत्येक दर्शन होता है। उससे उस धर्म का स्वरूप हम समझ सकते हैं । दर्शन ही धर्म का मूलाधार है और उसकी नींव पर धर्म का अस्तित्व शाश्वत रहता है । दर्शन के बिना धर्म का अस्तित्व असंभव है । कोई धर्म ऐसा नहीं हो सकता जिसका कोई न कोई न दर्शन भी न हो । दर्शन से ही धर्म में प्राण आते हैं । अतः दर्शन से अलग धर्म, प्राण से रहित शरीर के समान है । धर्म का सम्यक् ज्ञान उसके दर्शन के अध्ययन से ही प्राप्त किया जा सकता है । दर्शन के दर्पण में हम धर्म का स्वरूप देख सकते हैं ।

दर्शन या फिलासफी विचारों के उस रूप को कहा जाता है जिससे व्यक्ति और समाज के जीवन के लिए आदर्श और नियम निश्चित करने में सहायता ली जाती है ।[3] धरती पर मानव का जीवन हमेशा सुख- दुख- सम्मिश्रित होता है । वह आजीवन सुख- दुख के सागर में चढ़ता - उतरता जाता है । अतः वह किसी भी एक दिन इस संसार के कष्टों से मुक्त होना चाहता है । इसलिए मानव दर्शन का आश्रय लेता है । दर्शन इसी मुक्ति के लिए अपना सुव्यवस्थित तथा सुगठित मार्ग उसे बताता है। इससे यह स्पष्ट होता है कि दर्शन का लक्ष्य चिर- जीवन- मुक्ति है और यही उसका परम उद्देश्य भी है ।

जीवन और दर्शन :

जीवन और दर्शन का अत्यधिक निकटतम संबंध है । अनादि काल से होकर सांसारिक दुःख तथा क्लेशों को सहकर मानव क्षीण होता आ रहा है और

१: दर्शन शब्द यहां अंग्रेजी के फिलासफी शब्द का रूपांतर है । फिलासफी शब्द का अर्थ है विचार- संहिता ।

२: भारतीय दर्शन - पृ० ५

३: गांधीवाद की शव- परीक्षा - पृ० २३

दर्शन के सहारे वह मुक्ति - लाभ चाहता आ रहा है। इसके लिए वह तरह तरह के छोटे - बड़े काम करता है, जिसके लिए दर्शन से उसे प्रेरणा प्राप्त होती है। इस दृष्टि से देखने पर दर्शन मानव के लिए जीवन्मुक्ति का साधन है। दर्शन में मानव-जीवन की पूर्णता है। मुक्ति के द्वारा वह जीवन की इति ह करता है। दर्शन में सत्कर्मों पर विस्तृत रूप से प्रतिपादन हुआ है जिसके पालन से मानव- स्वर्ग-लोक पाता है। यही दर्शन का जीवन संबंधी रहस्य है।

हिंदू दर्शन :

भारतीय व हिंदू दर्शन संसार भर में जितनी व्यापकता से फैला है, उसी प्रकार अन्य कोई नहीं। इस दर्शन के आधार पर अन्य विविध दर्शनों का सृजन हुआ है। भारतीय दर्शन बहुत ही पुरानी चीज है जो अत्यंत प्राचीन काल में लिखा गया है। इसका प्रथम दर्शन हमें प्राचीन ग्रंथ ऋग्वेद में मिलता है। इसके अंतर्गत वेदों, उपनिषदों, भगवद्गीता, जैन, बुद्ध, योग, वैष्णव आदि दर्शनों का उल्लेख किया गया है। इनमें आत्मा, ज्ञान, त्याग, कर्म, भक्ति, प्रेम, संयम, सत्य, अहिंसा, अवतार आदि पर दार्शनिक दृष्टि से विचार किया गया है। 'भगवद्गीता' के दर्शन का परम लक्ष्य मोक्ष है जिसे भगवान श्रीकृष्ण यों बताया है -

> ' सर्व धर्मान परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
> अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुच:। '[१]

गान्धी दर्शन :

वाद का निर्माण दर्शन के आधार पर ही होता है। इसलिए हर वाद का अपना अपना दर्शन भी अवश्य होता है। अब तक हिंदी साहित्य में छायावाद, प्रगतिवाद,प्रयोगवाद, रहस्यवाद, मार्क्सवाद,समाजवाद,यथार्थवाद, आदर्शवाद,साम्यवाद आदि अनेक वादों का आविर्भाव हुआ है और इनमें गांधीवाद की भी गणना हुई है। यों कहे तो कोई आश्चर्य नहीं होगा कि हिन्दी साहित्य का आधुनिक युग साहित्यिक वादों का भण्डार रहा है। इन वादों का अपना अपना दर्शन रहता है।

१: गीता - १८ वां अध्याय - श्लोक ६६

गांधीजी का दर्शन मूलत: भारतीय दर्शन पर आधारित है। उनका दर्शन इससे प्रभावित है और वैष्णव कुल में जन्म लेने के कारण उन्होंने हिंदू धर्म को बड़ी इच्छा से अपनाया और उसे अन्य धर्मों से सर्वोत्तम सिद्ध किया। उन्होंने इस धर्म को इतना पसंद किया कि वे जितना और जैसा चाहे, उसका बड़ी गंभीरता से समर्थन किया करते थे। उनका दर्शन एक प्रकार की खिचड़ी है। कहने का तात्पर्य यह है कि भारतीय दर्शनों में से किसी एक दर्शन को मात्र न लेकर, अन्य दर्शनों के तत्वों को भी अपने दर्शन के लिए अपना है। उनका दर्शन विभिन्न दार्शनिक तत्वों का सम्मिश्रण है। उसमें हम विविध दार्शनिक विचार पा सकते हैं। इसका कारण तो यह है कि गांधीजी जन्म से ही कट्टर वैष्णव होने पर भी अन्य धर्मों के प्रति अपने मन में बड़ी श्रद्धा और आदर-सम्मान रखते थे। उनके अनुसार सभी धर्मों का मूलतत्व एक ही है और उनका लक्ष्य भी एक है। अत: उन्होंने अपने दर्शन केके अन्तर्गत अन्य दर्शनों को भी महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है। यह गांधीजी की अपनी विशेषता ही है।

स्रोत :

गांधीजी के दर्शन का स्रोत भगवद् - भक्ति ही है। गांधीजी ने वैश्य परिवार में जन्म लिया था। उनके माता और समस्त परिवार- जन भगवान विष्णु की उपासना करते थे, ईश्वर के प्रति अनन्य भक्ति रखते थे। गांधीजी का जन्म तो ऐसे भक्ति-पूर्ण वातावरण में ही हुआ था। उनकी माता एक साध्वी नारी थीं। वे रोज पूजा- पाठ करती थीं। यह एक क्रम था। उनके जीवन में पूजा- पाठ और प्रार्थना- उपासना के बाद ही वह भोजन किया करती थीं। वे विष्णु - मंदिर में हमेशाजाया करती थीं। पूजा - पाठ के समय वे बालक गांधीजी से के सामने गीता- पाठ कराती थीं और दिव्य ग्रंथों के श्लोकों का पाठ भी कराती थीं। इस प्रकार गांधीजी में अपनी पुण्य माता की प्रेरणा से धर्म का ज्ञान बचपन से ही उदित एवं विकसित होने लगा था। धीरे - धीरे गांधीजी के व्यक्तित्व पर विभिन्न धार्मिक संस्कृतियों का प्रभाव पड़ने लगा।

गांधी - कुटुंब वैष्णव था और श्रीरामचन्द्र, श्रीकृष्ण आदि देवताओं की उपासना करता था। उनके घर में तुलसीदास के रामायण का पारायण होता ह था। इससे गांधीजी में रामचन्द्रजी के प्रति जो भक्ति और विश्वास थे वे और भी बढ़ गये। बचपन में वे भूत-प्रेत आदि से डरते थे और उनके घर की

नौकरानी ने रामनाम का जो पाठ सिखाया, तब से उनकी यह ईश्वर- भक्ति विकसित हुई और वे भगवान रामचन्द्रजी के अनन्य उपासक बने । उनके जीवन में प्रातःकालीन तथा संध्याकालीन ईश्वर - प्रार्थना निरंतर होती रही थी । यह तो सच ही है कि उनके जीवन में दूसरे किसी काम में भी रुकावट हो सकती थी, मगर उनकी ईश्वर- प्रार्थना निर्विघ्न चलती थी । इस प्रकार उनकी भगवद् - भक्ति इतनी गहरी और तीव्र हुई कि रामचन्द्र जी की कृपा से ही वे सब कुछ करते थे । अतः उनके दर्शन में ईश्वर विश्वास, ईश्वर- प्रार्थना आदि को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है ।

गांधीजी का एक विशेष गुण यह रहा है कि वे बड़े बड़े ग्रंथों तथा पुस्तकों का अध्ययन करते थे । इसके अध्ययन से उन्हें जो ज्ञान प्राप्त हुआ, वह उनके दर्शन के निर्माण का मूल- कारण बन गया। उनके हाथ जो किताबें आती थीं, उसे तुरंत ही अनायास पढ़ते थे । बाद में इन पर चिंतन- मनन करते थे और उनके आवश्यक तत्वों का समर्थन करते थे । दार्शनिक दृष्टि से देखने पर जहां वे किताबों का अध्ययन करते थे, वहां एक प्रकार से नीर- क्षीर - विवेक की प्रवृत्ति होती थी ।

उन्होंने रामायण, भागवत, गुजरात के वैष्णव कवियों और जैनों के ग्रंथ आदि का अध्ययन किया है । इसके अतिरिक्त अंग्रेजी पुस्तकों का भी अच्छी तरह अध्ययन किया । उनमें मुख्य हैं नर्मदाशंकर का धर्म- विचार, मैक्समूलर की 'इंडिया- हुवाट इट केन टीच अस?', उपनिषदों के अंग्रेजी अनुवाद, वाशिंगटन इरविन की लाइफ आव मुहम्मद, सेयिंग्स आव जरथुस्त्र, कुरान का सेल द्वारा अनुवाद, एडविन आर्नल्ड की लाइट आव एशिया, एनिबीसेंट की हाउ आइ बिकेम ए थियोसाफिस्ट, रस्किन की 'अनटु दिस लास्ट, कार्लाइल की हीरोस एण्ड हीरो वरशिप आदि ।[1] गांधीजी हिंदू, इस्लाम, ईसाई, जैन आदि धर्मों में विश्वास रखते थे, और इन धर्मों से उनका खूब परिचय भी था । हरिभद्र सूरि का षडदर्शन - समुच्चय नामक[2] दार्शनिक ग्रंथ उन्होंने पढ़ा है । उन्होंने इस्लाम धर्म में वर्णित भ्रातृ- भावना को अत्यंत विस्तृत तथा गहरा पाया । इसके बारे में उन्होंने बताया है - 'भ्रातृत्व की भावना जैसी इस में प्रकट हुई है वैसी किसी अन्य धर्म में नहीं ।'[3]

१: आधुनिक भारतीय चिन्तन - पृ० १९५ २: वही० पृ० १९६ ३: वही० पृ० १९६

जब वे इंग्लैंड गये थे, तब बाइबिल पढ़ा। थोरो, टालस्टाय आदि प्रसिद्ध अंग्रेजी साहित्यकारों का प्रभाव उन पर पड़ा। टालस्टाय की 'दि किंगडम आव गाड ईस विदिन यू' नामक किताब का अच्छा प्रभाव उन पर था। उन्हें जब विलायत जाने का अवसर मिला, तब वहां अनेक थियोसोफिस्ट और ईसाई धर्म - प्रचारकों से उनका परिचय संपन्न हुआ जिससे उन्हें बहुत बड़ा धार्मिक लाभ प्राप्त हुआ। ईसाई धर्म ग्रंथों को पढ़ने से उनकी धर्म - निष्ठा सुदृढ़ बनी। इसके अतिरिक्त साधु- सन्तों के जीवन का प्रभाव भी गांधीजी पर अवश्य पड़ा था। इस कारण से वे अंत तक योगी रहे और उन्हीं का सा जीवन बिताते थे।

इस प्रकार इस संसार में प्रचलित सभी धर्मों का अध्ययन करने का मौका गांधीजी को प्राप्त हुआ। लेकिन इन धर्मों की अपेक्षा उन्होंने हिंदू धर्म को अपने जीवन- दर्शन के मूल के रूप में अधिक अपनाया और इसी में उन्हें आध्यात्मिक संतोष प्राप्त हुआ। हिंदू धर्म के परंपरागत सैद्धान्तिक मूल्यों को उन्होंने अपने जीवनादर्श के लिए आधार मान लिया। 'श्रीमद् भगवद्गीता' ने उन्हें जितना प्रभावित किया उतना किसी दूसरे ग्रंथ का नहीं पड़ा। गीता पर उन्होंने स्वयं गीता- भाष्य नामक एक टिप्पणी भी लिखी है। वे गीता को आध्यात्मिक संदर्भ - ग्रंथ कहते थे और उसको बड़ी धार्मिक अन्योक्ति भी मानते थे।[१] उन्होंने 'गीता' को अपने जीवन में मार्ग-दर्शन का साधन बनाया और प्रत्येक क्षण में उन्होंने गीता के संदेश के अनुसार कार्य किया। गांधीजी के सचिव श्री महादेव देसाई ने इस बात का समर्थन करते हुए कहा है। 'गांधीजी के जीवन का प्रत्येक क्षण गीता के संदेश के अनुरूप जीवन- यापन का सफल प्रयत्न है।'[२] गांधीजी गीता से ही संशय- निवृत्ति पाते थे। जब उन्हें किसी बात पर संदेह होता था उसका समाधान वे गीता के किसी भी श्लोक से ढूंढ़ ले सकते थे। उन्होंने स्वयं यों बताया है - 'जब भी संशय मुझे घेरता है -- -- और क्षितिज पर प्रकाश की एक भी किरण नहीं दिखाई पड़ती, तब मैं गीता की ओर उन्मुख होता हूं और उसमें कोई न कोई श्लोक मुझे सांत्वना देने को मिल जाता है।'[३] गांधीजी के सर्व- धर्म - ज्ञान की प्राप्ति की विशेषता यह थी कि उन्हें जो भी किताब मिलती,

---

१: आधुनिक भारतीय चिन्तन - पृ० १९७ २: वही० पृ० १९७

३: वही० पृ० १९७

उसका खूब अध्ययन कर पचाये बिना नहीं छोड़ते। उनकी यह विशेषता अन्य किसी में नहीं पायी जा सकती।

वाद का लक्षण बताते हुए श्री जैनेन्द्रकुमार ने यों कहा है - "वाद का लक्षण यह है कि वह प्रतिवाद से विवाद द्वारा खण्डित करे और इस तरह अपने को प्रचलित करे।"[1] हिन्दी साहित्य में जितने वादों का आविर्भाव हुआ है, वे सब एक दूसरे को खण्डित करते हुए प्रतिक्रिया का रूप धारण करते हैं और अपने को व्यवहार-योग्य बनाते हैं। यही वादों का कार्य है। गांधीवाद भी ऐसी प्रतिक्रिया का कार्य ही करता है। मार्क्सवाद जैसे वादों के प्रचार से देश में जिनकी हालत जो पैदा हुई है, उसको प्रतिक्रिया के रूप में गांधीवाद ने समाजवाद, जनवाद आदि वादों का सृजन किया जिसमें उपर्युक्त वादों के खण्डन की शक्ति रहती है।

गांधीवाद के सिद्धान्तों को गांधीजी अपने आप व्यवहार में लाया करते थे और उसके परिणाम का खूब वीक्षण-निरीक्षण करते थे। उसके बाद ही वे उन्हें जनता के बीच में प्रचलित करने का प्रयास करते थे। उन्हें इस बात का भी ध्यान अवश्य था कि अपने सिद्धान्तों के प्रयोग का परिणाम - फल लाभदायक या दोषदायक होगा। गांधीजी बड़े ही चिन्तनशील, प्रयोगशील एवं अनुभवशील व्यक्ति थे। अपने जीवन में ही नहीं, सांसारिक जीवन में भी प्रतिदिन होने वाले अच्छे - बुरे अनुभवों से वे सुपरिचित थे। अतः पहले "खुद करना" और बाद में "दूसरे से कराना" - यही उनका आदर्श था। "पहले करनी बाद में कथनी" यह उनके जीवन का मार्ग-दर्शक तत्त्व था।[2] गांधीजी अपने सिद्धान्तों को मौखिक कहने के लिए तैयार न थे। उसका कारण यह है कि उनके विचार जो हैं, वे सब विविध धार्मिक ग्रंथों में बिखरे पड़े हैं। उन्होंने अपने विचारों की व्यावहारिक परीक्षा की है, समस्याओं को सुलझाने में और उन्हें समाधान के लिए उचित औचित्य सिद्ध किया है।[3]

गांधीवाद की विशेषताएं :

गांधीवाद की कई विशेषताएं होती हैं जिनसे वह लोक-प्रिय बना है। गांधीवाद अमर है, अजर, शाश्वत और अनन्त ही है। गांधीजी ने स्वयं इस बात को

1:-अकाल पुरुष गांधी - पृ० ४१ 2: समन्वय पत्रिका- राष्ट्रपति का जीवन दर्शन- एवं शिक्षा-दर्शन - पृ० ८३ 3:(अगले पृष्ठ में)

गांधीवाद की अन्य विशेषता दुःख सहन की प्रवृत्ति है। साधारणतः यह देखा जा सकता है कि संसार में जो सुखी रहता है, वह दूसरों का कष्ट समझ लेने में असमर्थ होता है। इसका कारण यह है कि उसे दूसरों की चिंता नहीं रहती। वह अपनी सुख - समृद्धि के सागर में लहराता रहता है। उसी प्रकार जो दुःख का अनुभव करता है, वह चिर- दुःखी बनता है। उसकी दशा पर कोई कुछ प्रश्न तक करने का प्रयास भी नहीं करता। मगर गांधीवाद दूसरे को कष्ट देने की अपेक्षा अपने को कष्ट सहने का पाठ पढ़ाता है। गांधीजी परायी पीड़ा जानने वाले थे और उन्होंने यही संदेश दोहराया है। - " वैष्णव जन तो तेने कहिये, जो पीर पराई जाने रे "। दूसरे के मन को चोट पहुंचाना वे नहीं चाहते थे। ऐसा सोचना भी उनके लिए असहनीय था।

गांधीवाद में क्षमता और अक्रोध को अपनाया गया है। " धम्मपद " में कहा गया है - " अक्रोधेन जिने क्रोधः असाधुं साधुना जिने। " अर्थात् क्रोधी को अक्रोधसे और असाधु को साधुता से जीतना चाहिए। साधारण रूप से व्यक्ति- व्यक्ति में विद्वेष या शत्रुता रहती है, तो दोनों के बीच में संघर्ष उपस्थित होता है। और कभी कभी वह दोनों की या एक की मृत्यु में परिणत हो जाता है। यहां हम देख सकते हैं कि घृणा को घृणा से, विद्वेष को विद्वेष से या हिंसा को हिंसा से जीतने का मार्ग अपनाया गया है। लेकिन गांधीजी ने इसी मार्ग को बंद करने का प्रयास किया है। जिस प्रकार हम दूसरों से व्यवहार करते हैं उसी प्रकार वे हम से भी करेंगे। गांधीजी में अपने मित्रों एवं शत्रुओं से एक ही समय में अत्यंत शांत मनोवृत्ति से बर्ताव करने की क्षमता रहती थी।

गांधीवाद सारी मानव जीवन-गत आवश्यकताओं को पूरा करता है, वास्तव में यह जीवन का पूरक है जिसमें जीवनगत सारी समस्याओं का समाधान मिलता है। समस्या चाहे छोटी हो या बड़ी, उसका समाधान गांधीवाद करता है। उसी प्रकार मानव को ही नहीं, समस्त राष्ट्र को जिसकी आवश्यकता होती है, तो तुरंत गांधीवाद उसका प्रबंध करता है और उसके द्वारा साधन की पूर्ति करता है, वह शोषित जनता की पूर्ण स्वतंत्रता का की घोषणा करता है।

गांधीवाद में स्वामिभक्ति पर अधिक बल दिया जाता है। प्रजा, दास, सेवक, मजदूर आदि को अपने स्वामी की मदद करनी चाहिए। उनके लिए

मर मिटना चाहिए । उन्हें स्वामी बनने की इच्छा न रखनी चाहिए । एक दास या सेवक के लिए स्वामी बनने का लोभ प्रकट करना गांधीजी के मतानुसार दुराग्रह है । साधनहीन एवं दरिद्र जनता की सहायता के लिए धनी लोगों में आर्थिक त्याग की मनोभावना अवश्य होनी चाहिए । साधनवानों और साधनहीनों का पारस्परिक सहयोग होना चाहिए । साधनवान अपनी आवश्यकता से अधिक साधन को साधनहीनों के बीच में बांट दें । यही गांधीजी का मत था । यह मालिक- मज़दूर संघर्ष को आर्थिक तथा आध्यात्मिक दृष्टि से हानिकारक मानता है । मज़दूर अपनी आवश्यकता के लिए जब कोई साधन मांगता है तब मालिक और मज़दूर में संघर्ष पैदा होता है । गांधीजी ने इस संघर्ष का विरोध किया है । उन्होंने इनके बीच में पिता- पुत्र का सा प्रेम स्थापित करने का प्रयास किया है । उन्होंने बताया है - ' मज़दूर - किसान की सच्ची भलाई धर्म का पालन करने में है । उन्हें ईश्वर का ज्ञान होना चाहिए । उसके लिए सत्य - अहिंसा का पालन आवश्यक है । इसी का दूसरा नाम प्रेम है । जहां प्रेम है, वहां जीवन है, जहां घृणा है, वहां नाश है ।'[1] गांधीवाद ने सत्यं और शिवं को ही विस्तृत रूप से स्वीकार किया है । सुंदरम् तो सत्यं- शिवं का अंगी मात्र है । सुंदरम् को स्वतंत्र तत्व के रूप में स्वीकार नहीं किया है । इसका कारण तो स्पष्ट है कि गांधीजी का जीवन- दर्शन राग- भोग के त्याग और आत्म- पीड़ा के तप से बनाया गया है । अत: इसमें भोग और आनंद की जगह त्याग और तप की अधिकता है ।

गांधीवाद शुद्ध जीवन को श्रेष्ठतम कला मानने वाला है । इसके लिए आंतरिक अनुशासन की आवश्यकता है, जिससे आदर्श समाज की प्रतिष्ठा हो सकती है । उन्होंने कला में भी आध्यात्मिकता का बीज बोया था । उसे आत्म-साक्षात्कार की शिक्षा देने वाला साधन बताया है । ' जो कला को आत्मा को आत्म- दर्शन करने की शिक्षा नहीं देती, वह कला नहीं है । '[2] स्पष्ट है गांधीवाद की दृष्टि से कला आत्म- संयम का प्रसाद मानी गयी है । गांधीवाद बुराई का शत्रु है, बुराई करने वाले का नहीं । गांधीजी ने हर कहीं यही बताया है - ' पाप से घृणा करो, पापी से नहीं । ' उपर्युक्त वचन की भी यही बात है । बुराई, पाप आदि हमेशा स्वीकार्य

- -

१: गांधीवाद की शव - परीक्षा - पृ० ६४

२: रसवंती - आधुनिक हिंदी काव्य में गांधीवाद- पृ० १८

नहीं है। बुरा बुराई इसलिए करता है कि वह बुरे मार्ग पर चलता है और आध्यात्मिकता की दृष्टि से अज्ञात है। जब उसे ईश्वर पर विश्वास आता है, वह अपनी आत्मा की चिंता करता है तो वह खुद ही सन्मार्ग पर चलने लगता है और बुराई से क्रमश: हटने भी लगता है। अत: गांधीवाद पापियों को फिर पाप करने की उत्तेजना न देकर, उनको पापों से मुक्त करने का उपदेश देता है।

गांधीवाद में विश्व- प्रेम की भावना दिखाई पड़ती है। वह 'वसुधैव कुटुंबकम्' का समर्थन करता है। इतना ही नहीं इसका संदेश भी यही बताया गया है। 'सर्वेभवन्तु सुखिन: सर्वे भवन्तु निरामया:।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दु:ख माग्भवेत् ।।'

गांधीवाद में शिव अर्थात् विश्व- कल्याण की महत्ता पायी जाती है। अत: इसमें विश्व के प्रति अपार प्रेम है। वह सभी को अर्थात् समस्त जगत् को सुखी और शांतिमय देखना चाहता है। गांधीवाद इसलिए जनता से समाज की, समाज से देश की और देश से राष्ट्र की तथा राष्ट्र से विश्व की अधिक उन्नति के लिए सतुत्य कार्य करता है। इसका दृष्टिकोण व्यष्टिगत न होकर समष्टिगत है। गांधीवाद बुद्धिपक्ष के साथ हृदय- पक्ष का सामंजस्य अनिवार्य बताता है। गांधीवाद के तत्व जो हैं - वे बौद्धिक और आत्मिक हैं। इसमें आत्म- संयम की भावना तीव्र है। गांधीजी बड़े ही संयमी थे। वे हमेशा अपने मन पर आवश्यक नियंत्रण रखते थे। इसलिए वे 'महात्मा' भी कहलाये। उनके जीवन का दृष्टिकोण वस्तुत: आध्यात्मिक था। अत: उन्होंने हृदय- पक्ष का समर्थन किया है।

गांधीवाद उनकी जीवनानुभूतियों और दैनिक अनुभवों का परिपाक है। गांधीजी ने अपने नित्य, वैयक्तिक और भौतिक जीवन में जितने कष्टों और कठिनाइयों को भोगा है, उन सबकी यातना- भरी गाथा है उनका दर्शन या गांधीवाद। उन्होंने अपने दैनिक जीवन से ही गांधीवाद का निर्माण किया है। इस दृष्टि से वह अपने में मौलिक है। गांधीवाद हमें उनके जीवन का अच्छा परिचय देता है। उसके द्वारा उनका जीवन- चैतन्य झलकता है। शारीरिक श्रम गांधीवाद के लिए अत्यंत आवश्यक और अनिवार्य माना जाता है। गांधीजी ने इसके लिए स्वावलंबन की घोषणा की है। प्रत्येक व्यक्ति को अपनी अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए अपने शरीर से प्रयत्न

करना चाहिए। दूसरों का मुंह ताकता रहना या उनके अधीन जीवन बिताना ठीक नहीं। जो सच्चा काम करता है उसे शुभ फल प्राप्त होता है। ऐसा व्यक्ति प्रात:काल से लेकर सायंकाल तक परिश्रम करने का उत्साही बनता है। गांधीजी ने शारीरिक परिश्रम पर जितना जोर दिया है उतना अन्य किसी पर नहीं। उनके अनुसार श्रमिक व्यक्ति ही जीवन में सफलता पा सकता है। गांधीजी अपने जीवन-काल में एक क्षण भी चुपचाप रहना नहीं चाहते थे। उनके लिए हर क्षण बहुत ही मूल्यवान था। जिस प्रकार घड़ी की सुई निरंतर चलती रहती है उसी प्रकार वे भी अपनी जीवन- घड़ी की कर्म - सुइयों को चलाते रहे। उनका जीवित रहना भी एक प्रकार का परिश्रम था।

गांधीवाद में त्याग और बलिदान को प्रमुखता दी गयी है। जो भौतिक सुख- भोगों का त्याग करता है, वही गांधीवादी बन सकता है। उसके लिए आत्म- बलिदान की योग्यता भी होनी चाहिए। गांधीवाद में दूसरों को मारने की नहीं, स्वयं मरने की प्रधानता है। गांधीजी ने देश की स्वतंत्रता के लिए अपने को बलिदान कर दिया। इसे हम कदापि नहीं भूल सकते। यह भी हम देख सकते हैं कि गांधीजी की आत्म- बलिदान वाली प्रेरणापाकर कितने ही लोग शहीद हुए हैं। गांधी- युग में आत्म- बलिदान के अनेक उदाहरण मिल सकते हैं। गांधीवाद आधंत यह भारतीय हिंदु दर्शन से अनुप्राणित है। डा० सत्येन्द्र ने बताया है - " गांधीवाद भारतीय मेधा का प्रतिनिधित्व करता है। इसके भारतीय कांट्रस्ट ये हैं - ध्येय-सत्य, मार्ग - अहिंसा, बल और विश्वास - ईश्वर, योग्यता - त्याग तथा तप, ।[१]

गांधीवाद एक आदर्शवादी दर्शन है। यह भौतिकवाद का विरोधी दर्शन है। किंतु यह पूर्णत: भौतिकवाद का विरोधी न होकर अंशत: उसका विरोध प्रकट करता है क्योंकि गांधीजी संपूर्ण रूप से भौतिकता के प्रति नीरसता या वैराग्य प्रकट नहीं करते थे। गांधीवाद की श्रेष्ठता एवं उत्कृष्टता के लिए वे भौतिकवाद का अस्तित्व चाहते थे। लेकिन भौतिकता में डूबता रहता व्यक्ति गांधीवादी नहीं बन सकता।

१: समीक्षात्मक निबंध - पृ० १४२

इसके प्रति जनता के मन में मोह, लालसा आदि जो उत्पन्न होता है, उसे दूर करने के लिए ही गांधीवाद का जन्म हुआ है। अतः गांधीवाद ने कुछ आध्यात्मिकता का आश्रय लिया है। भौतिकवाद के नाम पर संसार में होनेवाली हिंसक प्रवृत्तियों को दूर करने के लिए गांधीवाद भौतिकता को रोकने का प्रयास करता है।

गांधीवाद को सार्वजनिक तौर पर मानवतावाद बताया जाता है। गांधीवाद का संबंध हमेशा समष्टि से रहता है, व्यष्टि से नहीं, समाज से रहता है व्यक्ति से नहीं। सकल मानव को कल्याण के शिखर पर चलने का यही सुगम मार्ग है। इसमें तर्क की जगह स्वानुभूति है क्योंकि दूसरे वादों की तरह इसका कोई व्यवस्थित शास्त्रीय अध्ययन प्रस्तुत नहीं है। अतः इसकी यह विशेषता रही है कि इसमें आस्था और विचार- स्वातन्त्र्य दोनों रहते हैं। गांधीवाद में इस प्रकार विविध प्रकार के तत्वों और सिद्धान्तों का समन्वय होता है। अतः उसका निर्वाह करना कठिन है। श्री मुकुन्द देव शर्मा ने अपने निबन्ध ` हरिऔध और उनका साहित्य ` में बताया है - ` गांधीवादी विचार- धारा के अनुसार वही व्यक्ति गांधीवाद के मानदण्ड पर खरा उतरेगा जो अपने सुख- दुख की चिन्ता किये बिना लोक कल्याण में निरंतर रहता है।` एक साधारण व्यक्ति इतनी जल्दी गांधीवादी नहीं बन सकता जितनी जल्दी वह बुरा हो सकता है। गांधीवादी होने के लिए जीवन में सब कुछ का त्याग करना पड़ता है। उसके लिए अनेक कष्ट सहने पड़ते हैं। वह विरागी का सा तपस्या-पूर्ण जीवन बिताने के लिए बाध्य होता है। जो इस प्रकार का व्रत ले सकता है, वही गांधीवादी बन सकता है।

गांधीजी की विचार- संहिता की अभिव्यंजना के स्रोत मिलते हैं - १- उनके वक्तव्य तथा २- अन्य लोगों की व्याख्या। इस संबंध में सामग्री इतनी ज्यादा मिलती है कि बहुधा आवृत्ति का दोष भी हो जाता है। पर इस विषय में हम लाचार हैं। इन विचारों का विषयानुसार विश्लेषण आगे प्रस्तुत है। यह आधुनिक गांधीवादी काव्य की भूमिका का काम दे सकता है।

अध्ययन की सुविधा के लिए गांधीवाद के सिद्धान्तों को विविध पक्षों के अंतर्गत रखा जा सकता है। गांधीवाद के मूलाधार तत्व हैं सत्य, अहिंसा और

१: नवीन निबंध - पृ० ४२६

सेवा । गांधीवाद के अनुसार मानव- जीवन का उद्देश्य और लक्ष्य ईश्वर से साक्षात्कार करना अथवा उनमें समा जाना है । उसी प्रकार यह समाज के कल्याण के साथ साथ मानव का पारलौकिक कल्याण भी चाहता है । इसी कारण से गांधीवाद ने उपर्युक्त तीन तत्त्वों को आधार- शिला के रूप में ग्रहण किया है । ` सत्य ` को गांधीजी ने `परमेश्वर ` माना है । `सेवा ` अर्थात् जन- सेवा को उस परब्रह्म को पाने का मार्ग बताया है । और अहिंसा उस महान सेवा का ` सच्चा तरीका ` कहा है । अर्थात् अहिंसात्मक मानव- सेवा द्वारा उस महान सत्ता का दर्शन पाया । इस दृष्टि से गांधीवाद में ` सत्य `, साध्य अथवा` लक्ष्य `और ` अहिंसा `, इस लक्ष्य को पाने का मार्ग अथवा ` साधन ` के रूप में विवेचित हैं ।

सत्य और अहिंसा, साध्य - साधन होने के कारण सदा एक साथ चलती हैं । ` अहिंसा ` के साधन होने के कारण गांधीजी ने इसकी विशुद्धता और नि:संगता पर अधिक प्रमुखता दी है । इसके अलावा अभय और असंग भी उनके लिए साधन रहे हैं । साधन और साध्य में वे कोई भिन्नता नहीं मानते थे । साधन अपनी शुद्धता, पवित्रता एवं नैष्ठता से साध्य में लीन होता है । इसलिए उन्होंने साधन के वास्तविक और अच्छे प्रयोग पर अधिक बल दिया है । गांधीवाद के अब तक कही गयी बातों से दो रूप हम प्रस्तुत कर सकते हैं । - १: लौकिक रूप , २- अलौकिक या पार- लौकिक रूप । लौकिक रूप में गांधीवाद की विश्व-कल्याण की भावना निहित है । द्वितीय रूप में मुक्ति- कल्याण की भावना होती है । इन दोनों रूपों के मेल से मिलकर गांधीवाद का एक तीसरा समन्वयात्मक रूप - लौकिक एवं अलौकिक रूप प्रस्तुत किया है। जिसमें विश्व- कल्याण और मुक्ति- कल्याण से ईश्वर का दर्शन संभव होता है । इस दृष्टि से गांधीवाद के विविध पक्षों और उनसे संबंध सुधारवादी प्रवृत्तियों पर विचार किया जाएगा ।

गांधीवाद के निम्न-लिखित पक्ष होते हैं - १: आध्यात्मिक और धार्मिक पक्ष, २- आर्थिक पक्ष, ३- सामाजिक पक्ष, ४- राजनीतिक पक्ष । इनके द्वारा गांधीजी ने विश्व- कल्याण और ईश्वर साक्षात्कार का जो ध्येय प्रस्तुत किया है, वह अत्यंत आश्चर्य जनक तथा प्रशंसनीय है । इसका कारण तो यह है कि इस धरती पर कितने ही महान नेताओं का जन्म हुआ हो, लेकिन गांधीजी जैसे नेता को हम और कहीं पा नहीं सकते ।

गांधीवाद के आध्यात्मिक और धार्मिक पक्ष के अंतर्गत निम्न लिखित सिद्धान्तों का विवेचन हो सकता है। गांधीवाद का आध्यात्मिक ध्येय है `मोक्ष`। मोक्ष- प्राप्ति के लिए कुछ दैविक कृत्यों को करने की जरूरत है। सबसे पहले `सत्य` अर्थात् ` परमेश्वर ` के अस्तित्व का बोध होना चाहिए। इसके बाद उस परमात्मा तक पहुंचने के लिए ` अहिंसा का पालन करना है`। अहिंसा का पालन व्रतानुष्ठान से ही हो सकता है। गांधीजी ने एकादश व्रतों का समर्थन किया है और वे हैं - अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य,अपरिग्रह , शारीरिक परिश्रम, अस्वाद, अभय, सर्वधर्म-समभावना, स्वदेशीपन और अस्पृश्यता।[१] व्रतानुष्ठान के लिए आत्मबल की आवश्यकता है। आत्मबल ` आत्म शुद्धि ` से ही संभव है। इसके लिए ईश्वर - विश्वास, प्रार्थना, रामनाम जप, आत्म- संयम, अहंकार - त्याग, भोग- तिरस्कार, अवतारवाद आदि अनिवार्य हैं। इसके साथ ही धार्मि क एकता , सर्वधर्म समभावना, धर्म- निरपेक्षता आदि विचारों को भी पैदा करना चाहिए।

गांधीवाद के आर्थिक पक्ष में भी इन तत्वों पर विचार किया गया है। अर्थ या संपत्ति का आवश्यक संग्रह, इसका वास्तविक प्रयोग, अस्तेय, अपरिग्रह, ट्रस्टीशिप की स्थापना, मशीनों का तिरस्कार, चरखा खादी आदि। इसका सामाजिक पक्ष इन तत्वों से विवेचित है। अस्तव्यस्त समाज का उद्धार रक्षा करना इस वाद का मुख्य उद्देश्य है। इसके लिए सर्वप्रथम जनता में समष्टि भावना को उत्पन्न करना चाहिए। समष्टिभावना तभी उत्पन्न होती है जब उनके बीच के जाति- भेद की भावना मिट जाती है। इसके लिए गांधीजी ने हृदय- परिवर्तन के सिद्धान्त के द्वारा हिंदू- मुसलिम एकता, अस्पृश्यता निवारण, उच्च- नीचत्व का मिटाव आदि का समर्थन किया है। इन सुधारवादी प्रवृत्तियों से समाज की उन्नति एवं कल्याण संभव है।

इसके राजनीति क पक्ष में कई तत्वों का निरूपण हुआ है। राजनीति की प्रगति के लिए देश की स्वतंत्रता अनिवार्य है। इस स्वतंत्रता- संबंधी विचार के मूल में गांधीजी ने राम- राज्य की कल्पना की थी। रामराज्य-की

- -

१: अहिंसा सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्य असंग्रह:
शरीरश्रम अस्वाद: सर्वत्र भयवर्जन:
सर्वधर्मी समानत्वं स्वदेशी स्पर्श भावना पृ० ८४
हि एकादश सेवा विनम्रत्वे व्रत निश्चये ।।- मेरे निबन्ध- गुलाबराय

स्थापना के लिए स्वदेशी एवं स्वावलंबी भावना के साथ नीतियुक्त कार्य के द्वारा प्रयत्न करने पर जोर दिया गया है। इसके लिए उन्होंने देश- सेवा को अधिक प्रधानता दी है। इस सेवा के मूल में ` सर्वोदय `(सब की उन्नति `) की भावना प्रबल थी। सर्वोदय के लिए गांधीजी ने ` सत्याग्रह ` के तत्व को अत्यन्त उचित तथा उपयोगी सिद्ध किया है। उनके द्वारा आयोजित विविध आंदोलन (असहयोग, सविनय अवज्ञा आदि) हड़ताल, अनशन, उपवास, धरणा, आदि इसी सत्याग्रह के मुख्य अंग रहे हैं।

गांधीवाद की कोई सीमा नहीं रही है। वह भारत देश को पार कर विदेशों में भी अपनी महत्ता प्रकट करने में समर्थ हुआ है। गांधीजी ने अपने दर्शन या सिद्धान्तों के प्रस्तुतीकरण का लक्ष्य दरिद्रों को पहचानना बताया है। अतः उन्होंने दरिद्र- नारायण बनकर उनकी सेवा की थी। गांधीजी के जीवन और सिद्धान्तों को हम कदापि भूल नहीं सकते। विशेषतः विपत्ति के समय में, जो मौलिक श्रेष्ठ एवं आधारभूत हैं।[1] उनके सिद्धान्त और विचार एक व्यक्ति या देश के लिए मात्र न होकर समस्त देशों और कालों के लिए उपयोगी सिद्ध हुए हैं। उनके इन सिद्धान्तों का संसार भर में अनुकरण हुआ है,जो मानव मुक्ति की आधार- शिला हैं।[2] गांधीवाद स्वतंत्रता की खुली वायु में विहार कर रहा है जिसका मोल धार्मिक तत्वों में समाया हुआ है। गांधीवाद एक ऐसी बारहमासी - पौधे की टहनी है जो वर्षभर हरा- भरा रहने वाला है। बारह मासी पौधा निरंतर वैसा ही हरा- भरा रहता है। वह कदापि भूल नहीं जाता। वैसे ही गांधीवाद भी चिरंजीवी है,जिसका नाश नहीं हो सकता। गांधीवाद के बारे में भी गोपीनाथ धवाने ने यों बताया है कि गांधीवाद भारत के राजनीतिक शासन के लिए अत्यंत लाभ-दायक साधन है।[3]

- -

1. I am one of those whoê believe that we can not forget,except at our own peril, the life and teachings of Gandhiji.,which are in essense so fundamental ~~that~~ so noble and so basic to our way of life. Morarji Desai- Mahatma Gandhi 100 Years.P.6A
2. It is also well to remember that the only faith that prevents man from entering into a metallic atmosphere, is Gandhism- Gandhiism for millions -P.52
3. His philosophy is also importent because it is the most original contribution if India to political thought and politica practice. - The Political Philosophy of Mahatma Gandhi .P.4

गांधीवाद के विविध सिद्धान्त और उनका सामान्य परिचय :

गांधीजी का दर्शन महान है चूंकि वे कोरे व्यावहारिक राजनीतिज्ञ न होकर जीवन दर्शन के व्याख्याकार और सत्यान्वेषक रहे हैं। इसलिए उन्होंने अपने सीखे और स्वीकृत तत्वों में से प्रत्येक का व्यवहार प्रत्यक्ष जीवन में पाना चाहा। हर क्षेत्र में हर प्रसंग पर प्रत्येक सिद्धान्त का अर्थ समझाना और उसे अनुभव में लाना उनका ध्येय रहा है। अतः गांधी दर्शन के मूलभूत सिद्धान्तों का अर्थ बड़ा व्यापक होता है। एक एक क्षेत्र में उसका अर्थ अलग अलग होता है। गांधीजी का दृढ़ मत है कोई भी सच्चा सिद्धान्त एक जगह उचित और दूसरी जगह अनुचित नहीं हो सकता। साधारण कोटि के लोग यह समझ नहीं पायेंगे कि गांधीजी कैसे अजीब ढंग से जीवन के सारे अंगों में उन सिद्धान्तों को लागू कर देते हैं।

आगे गांधी- दर्शन के विभिन्न पक्षों के अंतर्गत समाहित पक्षों का विश्लेषण प्रस्तुत है -

गांधी दर्शन

राजनीतिक पक्ष

स्वतन्त्रता, रामराज्य, सर्वोदय, स्वदेशीपन, स्वावलंबन, देशसेवा
असहयोग, हड़ताल (धरना), उपवास, सत्याग्रह

सामाजिक पक्ष

समष्टि भावना, अस्पृश्यता निवारण, जाति ऐक्य, श्रेणी मैत्री, हृदय परिवर्तन, विधवा विवाह, बाल- विवाह - मिटाव

आर्थिक पक्ष

ट्रस्टीशिप (सार्वजनिक संस्था), अस्तेय, अपरिग्रह, चरखा- खादी, मशीनों का तिरस्कार, दरिद्रता- निवारण

धार्मिक पक्ष

सर्व धर्म सम भाव	आत्म संयम
अवतारवाद	ईश्वर- विश्वास और प्रार्थना
सत्य	रामनाम महिमा
अहिंसा	कर्म की महत्ता (निष्काम)
ब्रह्मचर्य	शारीरिक परिश्रम
मोक्ष	व्रत और त्याग - मनोभावना
आत्म- शुद्धि	

तत्त्वगत विस्तृत विश्लेषणात्मक अध्ययन :

गांधीवादी सिद्धान्तों के स्वरूप और विशेषताओं को समझने के लिए उनका विश्लेषणात्मक गंभीर अध्ययन की आवश्यकता है। यहां गांधीवाद के ऐसे तत्वों - मुख्यत: गांधीवादी काव्यों तथा स्फुट पुस्तकों में प्रसंगानुसार वर्णित तत्वों का विचारात्मक विवेचन दिया जा रहा है।

अहिंसा - उत्पत्ति और विकास :

आध्यात्मवाद के आत्मतत्व का पहला तत्व है अहिंसा। अहिंसा[1] शब्द बहुत पुराना है और उसका प्रयोग प्राचीन युग से ही चला आ रहा है।

अहिंसा की उत्पत्ति का कारण तो बताया गया है कि वैदिक युगीन धर्मों में हिंसात्मक यज्ञों की प्रथा चलती थी जिसकी आवश्यकता के लिए अनेक पशुओं को

१: हिंदी में अहिंसा शब्द का जो प्रयोग अब हो रहा है वह अंग्रेजी शब्द ' नान वायलेन्स ' के रूपांतर के रूप में किया गया है।

हत्या भी होती थी। उस युग के पुरोहितों ने हिंसापूर्ण यज्ञ का समर्थन किया था। लेकिन भगवान श्रीकृष्ण ने बताया है कि वही सबसे उत्तम यज्ञ माना जा सकता है जो किसी की हत्या किये बिना संपन्न हो जाता है।[१] ऐसी हिंसात्मक यज्ञ- वृत्तियों का अन्त करने के लिए ही अहिंसा का स्वर गुंजाने वाले जैन और बौद्ध धर्मों का आविष्कार हुआ है। इसकी उत्पत्ति पर और एक मत प्रसिद्ध है, वह यह है कि श्रमण संस्कृति में अहिंसा को तपाचरण का एक अनिवार्य अंग माना जाता था। इस संस्कृति के पार्श्वमुनि ने अपने चारों यामों में अहिंसा के साथ सत्य, अस्तेय, अपरिग्रह आदि को भी अपनाया था। अतः अहिंसा का उद्गम उन मुनि के चतुर्यामों से हुआ है।[२]

परिभाषा :

अहिंसा की परिभाषा यदि एक साधारण ढंग से दी जाय तो कहा जा सकता है - हिंसा का अभाव अहिंसा है।[३] इसके अर्थ को कुछ व्यापक रूप से बताते हुए प्रो० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार ने एक नयी परिभाषा दी है - " हम जीयें और दूसरों को जीने दें, जरूरत पड़े तो दूसरों के जीवन के लिए अपने जीवन की आहुति दे दें - यह अहिंसा है।"[४] अहिंसा के मूल प्रवर्तक घोर आंगीरस और ऋषभ देव थे।[५] इसे परम धर्म के रूप में उस युग में माना जाता था और इसका व्यावहारिक रूप अधिकतर तपस्वियों में दिखायी पड़ता था। जैन तीर्थंकर पार्श्वनाथ ने अहिंसा का सन्देश सुनाया था और वे ही अहिंसा प्रचार कार्य के प्रथम प्रवर्तक थे जिन्होंने अपने नेतृत्व में एक संघ की स्थापना की और उसके द्वारा जनता के बीच में अहिंसा के प्रचार का सुन्दर कार्य किया।

क्षत्रिय जन्म से ही अहिंसक थे। वैदिक युग में जब हिंसा और अहिंसा में संघर्ष चल रहा था, तब ब्राह्मणों ने हिंसा का पक्ष अपनाया जिससे उनका यज्ञ संपन्न होता था और क्षत्रिय ने अहिंसा का नेतृत्व स्वीकार किया।[६] इसका कारण

- -

१: ऐसे यज्ञ के बारे में गीता के तीसरे अध्याय में और यत्र-तत्र श्रीकृष्ण द्वारा बताया गया है।

२: भारतीय संस्कृति और अहिंसा - पृ० ७५

३: Ahimsa is the Indian doctrine of non-injury, that is, to all living things (man and animals,) -Encl.of Religionand Ethics.P. Vol I. & P. 231

४: वैदिक संस्कृति के मूल तत्व- पृ० २६३ ५: संस्कृति के चार अध्याय:पृ० १२६

६: वही० पृ० १२८

भी यह था कि इन निरीह एवं निरपराधी प्राणियों की रक्षा का भार इन क्षत्रियों पर था। इस प्रकार वेदों से होकर अहिंसा का विकास जो उत्तरोत्तर होता आया और आधुनिक युग में आकर उसे राष्ट्रीय- तल पर जितना सम्मान प्राप्त हुआ, उसका विवेचन आगे किया जायगा।

परंपरा और विकास :

अहिंसा की परंपरा बहुत पुरानी है क्योंकि इसका विवेचन पुराने युग से ही होता आया है। वैदिक युग के पूर्व के ब्राह्मण धार्मिक ग्रंथों में अहिंसा की विवेचना पायी जाती है।[१] बाद में वेदों में भी इसका प्रतिपादन हुआ। एक अंग्रेजी विद्वान के अनुसार अहिंसा का प्रथम उल्लेख छान्दोग्य उपनिषद में होता है। इस उपनिषद् में ऐसा बताया गया है कि यमुना नदी के तट पर यज्ञ की आवश्यकता के लिए गोहत्या की प्रथा बहुत चलती थी जिसे देखकर भगवान कृष्ण अत्यन्त व्याकुल हुए। इस समय मुनि आंगिरस ने उन्हें यज्ञ की एक नयी रीति को बताया और इस यज्ञ की दक्षिणा थी थी सत्य, तप, अहिंसा आदि।[२] मनु ने बताया है कि उसने सत्य, अस्तेय, इन्द्रिय निग्रह आदि धर्मों का विवेचन किया है जिसमें अहिंसा को परम धर्म माना है।

- -

१: ब्राह्मण - ग्रंथों में केवल `सर्वमेधे सर्वं हन्यात्` (सर्वमेध - यज्ञ में सब कुछ मारा जा सकता है) ही नहीं,` मा हिंस्यात् सर्वभूतानि `(किसी भी जीव को मत मारो) का भी आदेश था। - संस्कृति के चार अध्याय। - पृ० १२५

२- अ) अथयत्तपो दानमार्जवमहिंसा सत्यवचनमिति ता अस्य दक्षिणा: - छान्दोग्योपनिषद् - भारतीय संस्कृति और अहिंसा - पृ० ५६

आ) It finds its expression in a mystical passage in the Chandogya Upanishad (3-17) where five ethical qualities, one being Ahimsa, are said to be equivalent to a part of the sacrifice of which the whole lifeof man is made an epitome.

- Encyclopaedia of Religion and Ethics.@
- Vol.I James Hastings-P. 231

अहिंसा सत्यमस्तेयं शौचमिन्द्रिय निग्रह : ।
एतं सामासिक धर्म चातुर्वर्ण्ये - ब्रवीत्र मनु: । ।[1]

(मनुस्मृति - श्लोक: ६३, अध्याय: १००)

पतंजलि ने योग-दर्शन में बताया है कि अहिंसा हिंसा को दूर करने का सिद्धान्त ही नहीं, उसमें समस्त प्राणियों के प्रति मित्रता की भावना भी रहती है ।[१] इसकी ओर एक जगह पर अहिंसा पर विचार किया गया है । यम और नियम की चर्चा करते समय जिसे भगवान बुद्ध ने अपनी पांच शिक्षाओं के रूप में अपनाया है ।[२]

'आग्नेय महापुराण' में अहिंसा को परम धर्म माना गया है ।[३] उसमें उसे परमतत्व भी माना गया है । इतना ही नहीं, महाभारत के बीच बीच में अहिंसा का प्रवचन दिखाई पड़ता है । गीता में एक जगह पर भगवान श्रीकृष्ण ने बताया है कि अहिंसा दैवी स्वभाव या गुण है जिसके सत्य, त्याग, तेज, क्षमा, धैर्य आदि गुणों को लेकर मानव जन्म लेता है ।[४] एक जगह पर प्राणियों की विभिन्न दशाओं के अन्तर्गत अहिंसा की विवेचना की गयी है ।[५]

' महाभारत ' के शान्तिपर्व के अन्तर्गत अहिंसा तत्व का उपदेश कहीं कहीं दिया गया है । अर्जुन के समागमन के प्रसंग में युधिष्ठिर ने अहिंसा का उपदेश दिया है ।[६] भक्ष्य, अभक्ष्य, पात्र, अपात्र आदि के विवेचन के प्रसंग में व्यास ने युधिष्ठिर से अहिंसा का समर्थन विवेक से कराते हुए उसके बारे में बताया है ।[७] आत्मिक यज्ञ के निरूपण में भी भीष्म ने युधिष्ठिर से इसके बारे में कुछ बताया है ।[८] ब्रह्म की प्राप्ति के

- -

१: अहिंसा प्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्याग: ।

२: तत्रा-हिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रह: यमा: - बुद्ध और गांधी-
नवीन निबंध - पृ० १५

३: अहिंसा परमोधर्म: अहिंसा पर तप: ।
अहिंसा परमं सत्यं, ततो धर्म प्रवर्तते ।। - आग्नेय महापुराण- मलयालम-
पृ० ८७४

४: गीता - देखिये- २-३ वां श्लोक १६ वां अध्याय

५: गीता - देखिए - पांचवा श्लोक - दसवां अध्याय ।

६: साधु: क्षमा दम: शौचं वैराग्यं चाप्यमत्सर: ।
अहिंसा सत्यमक्रोध क्षमा धर्मस्य लक्षणम् । महाभारत-शान्तिपर्व-पृ० ३२४

बारे में कहते वक्त भीष्म ने अहिंसा को भी अनिवार्य माना है ।[१] इसी प्रकार परमात्मा की प्राप्ति के बारे में कहते वक्त भीष्म का कथन[२] व्यास का कथन[३], हिंसा की निंदा और अहिंसा की प्रशंसा संबंधी कथन[४] आदि ने भी अहिंसा का समर्थन अवश्य किया है । ब्राह्मण के नीतिशास्त्र पर बताते हुए भीष्म ने युधिष्ठिर से अहिंसा का उल्लेख किया है।[५]

श्रीमद्भागवत के एकादश स्कन्ध में अहिंसा का विवेचन हुआ है । भगवान ने यहां तीन जगहों पर अहिंसा के बारे में बताया है ।[६] याज्ञवल्क्य स्मृति में एक जगह पर अहिंसा का उल्लेख किया गया है ।[७] जैनों में अहिंसा की प्रचुरता की कोई सीमा ही नहीं थी । हिंसा करना, करवाना, किसी प्रकार उसमें योग देना आदि का जैनों ने विरोध किया है । इनकी अहिंसा शारीरिक मात्र न होकर बौद्धिकता के स्तर पर पहुंच गयी है । इसे जैन - दर्शन का अनेकान्तवाद बताया गया है । अहिंसा जैनों का

- -

पृष्ठ : ३५ के:

७: ॐ तदस्यानुपादानं दानमध्ययनं तप:
अहिंसा सत्य मक्रोध इज्या धर्मस्य लक्षणम् ।-महाभारत- शांतिपर्व-पृ०३५६

८: अहिंसा सत्यवचनमानृशंस्यं दमो घृणा ।
एतत् तपो विदुर्धीरा न शरीरस्य शोषणम् ।। - वही० पृ० ४०६

------0:--

१: अहिंसा सत्यवचनं सर्वभूतेषु चार्जवम् । - महाभारत- शान्तिपर्व - पृ० ५५२

२: वही० पृ० ५५३ ३: वही० पृ० ५८६ ४: वही० पृ० ६१६ ५:वही०पृ०३८४

६: (अ) अहिंसा सत्य मस्तेय कामक्रोध लोभता ।
भूत प्रिय हितोहा च धर्मो-यं सार्ववर्णिक: । भागवतम्- एकादश स्कन्ध पृ० ७००

(आ) भिक्षोर्धर्म: शमो-हिंसा तप ईक्षा वनौकस: ।
गृहिणो भूतरक्षेज्या द्विजस्याचार्य सेवनम् ।
श्री मद्भागवतम् - एकादश स्कन्ध: - ४२ श्लोक: -पृ० ७०१

(इ) अहिंसा सत्यमस्तेय मसंगो ह्रीरसंचय: ।
आस्तिक्यं ब्रह्मचर्यं च मौनं स्थैर्य क्षमाभयम् ।।
- श्रीमद्भागवतम् - एकादश स्कन्ध: - ३३ श्लोक: - पृ० ७०५

(ई) अहिंसा सत्यमस्तेयं शौचमिन्द्रिय निग्रह: ।
दानं दया दम: क्षान्ति: सर्वेषां धर्म साधनम् ।।
- याज्ञवल्क्य स्मृति: - १२२ श्लोक: -पृ०२

परम धर्म थी। सातवीं शताब्दी इसका प्रत्यक्ष प्रमाण थी कि जैनों ने अहिंसा का अध्यापन स्कूलों में कराया था।[१]

अहिंसा जैन- मुनियों के पांच तत्वों में से सबसे प्रथम तत्व थी। और इसका पालन वे कितनी श्रद्धा और सावधानी से करते थे, यह इस उद्धरण से स्पष्ट होता है - " -- -- जब जैन धर्म के उत्कर्ष का समय था, तब जैन मुनि खेती का विरोध करते थे क्योंकि खेत जोतने से मिट्टी में पड़े जीव मारे जाते हैं। वे पानी को केवल छानकर ही नहीं, औंटकर पीते थे, जिससे जीव उनके मुख में न चले जाएं। वे शहद नहीं पीते थे क्योंकि उसे लाने के क्रम में मक्खियों का नाश होता है। वे दीपक को बराबर कपड़े से आवृत रखते थे जिससे पतंग उस पर आकर न जल जाय। और आगे की राह को वे बुहारते चलते थे, जिससे चींटियों और कीट- पतंगों पर उनके पांव न पड़ें।[२] अहिंसा को जैन धर्म में सर्वोच्च प्रतिष्ठा मिली थी। गृहस्थों के लिए चार प्रकार की अहिंसा मानी गयी है - संकल्पी, उद्योगी, आरंभी और विरोधी।[३]

जैन धर्म में अहिंसा का प्रतिपादन वेदों से ही हुआ है। क्योंकि जैन धर्म के प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव ही थे, जिनका वैदिक युग में गार्हस्थ्य जीवन बिताने वाले ऋषियों में प्रमुख स्थान था। और जिनकी कथा विष्णु- पुराण भागवत् पुराण आदि में मिलती है।[४]

- -

१: This was also the probable time of the rise of the Jains who made the non-injury doctrine a leading tenet of their school. (Encyclopaedia of Brit Ethics.

२: संस्कृति के चार अध्याय - पृ० १३८

---- They carried it to great extremes, not driving away remain from their clothes or bodies, and carrying a filer and a broom to save minute insects in the water they drnk or on the ground they sat. (Encyclopaedia of Ethics.P.231

३: प्राचीन भारतीय साहित्य की सांस्कृतिक भूमिका - पृ० ४७२

४: संस्कृति के चार अध्याय - पृ० १३०

जैन धर्म के बाद बुद्ध धर्म में अहिंसा का विकास पाया जाता है। भगवान बुद्ध देव ने इस धर्म को जन्म दिया। बुद्ध बड़े अहिंसक थे। पर उनकी अहिंसा सीमित थी। इसका संदेश किसी की हत्या न करने वाली था। बुद्ध ने अपने उपदेशोंका प्रचार करने के लिए शिष्यों का संघ बनाया था और अहिंसा, सत्य, धर्म, अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य, सादगी आदि तत्वों का प्रतिपादन भी किया था। बुद्ध ने अहिंसा को अपने अष्टांग मार्ग में स्थान दिया है। बौद्ध संस्कृति की अहिंसा, वैदिक संस्कृति की अहिंसा से सूक्ष्मतर है। उन्होंने अहिंसा को पुनर्जन्म के सिद्धान्त के आधार पर प्रतिष्ठित किया है। बुद्ध ने यही बताया है कि अपनी रक्षा के लिए अन्य प्राणियों की हिंसा न करनी चाहिए। दूसरों को भी हिंसा की वृत्ति से दूर करें। यही एक अहिंसक का कर्तव्य है। दयानंद ने भी अहिंसा का प्रचार किया था। ईसा और मुहम्मद नबी ने भी अहिंसा का प्रचार किया था और हिंसा की निंदा भी की थी। ईसाई धर्म में अहिंसा को सत्य का दूसरा भाग माना गया है। इस्लाम धर्म में अपने प्रेम और दया के संदेशका आधार अहिंसा को माना गया है।

भारतीय दर्शन के अनुसार कर्म, मन और वाणी तीनों में हिंसा का वर्जन अनिवार्य माना गया है।[१] "न हिंस्यात् सर्वभूतानि" (वेद) "अहिंसा परमो धर्मः" (महाभारत) दोनों ने जीवन में अहिंसा की प्रामाणिकता को अभिव्यक्त किया है। इस प्रकार हिंदु, बौद्ध, जैन आदि धर्मों के द्वारा विकसित अहिंसा की परंपरा ने भारत में अनेक लोगों को निरामिष बना दिया। फलतः आगे के वैष्णवादि धार्मिक महात्माओं ने अहिंसा को अपनाया।

भारतीय दार्शनिक ही नहीं, विदेशीय दार्शनिकों ने भी अहिंसा को अपनाया। चीनी लोगों के बीच में अहिंसा की परंपरा चलती थी। ले ओत्से ने पीड़ितों के प्रति अहिंसा के द्वारा व्यवहार करने पर अधिक बल दिया। पुराने रोम में भी अहिंसात्मक असहयोग के अनेक उदाहरण प्राप्त होते हैं।

१: "कर्मणा मनसा वाचा सर्व भूतेषु सर्वदा।
अक्लेश जननं प्रोक्तं अहिंसा॥"
- विश्व विज्ञान कोश - पृ० ६६४

इस प्रकार भारतीय दार्शनिकों, धार्मिक महाचार्यों ने अहिंसा का विकास किया है और उसे मानव - जीवन में व्यवहृत करते हुए जीवन- दर्शन बना दिया है। निस्संदेह यह कहा जा सकता है कि लोक- मतों में अहिंसा का प्रतिपादन किसी न किसी रूप में होता है।

अहिंसा का साधारण प्रचलित अर्थ है हिंसा न करना। सामान्यतः यही अर्थ प्राचीन काल से लेकर परंपरागत रूप से चला आया है। वर्तमान युग के लोग भी इसी अर्थ को मानकर चलते हैं। लेकिन गांधीजी ने इसका व्यापक अर्थ निकाला। उन्होंने बताया - " अहिंसा माने प्रेम। सर्वांगीण प्रेम, सर्वग्राही प्रेम। अहिंसा का माने है किसी को न सताना, किसी को कष्ट न पहुंचाना, मन से वचन से, कर्म से भी किसी को भी, प्राणिमात्र के अनिष्ट का चिंतन न करना।"[१]

भारतीय राजनीति में अहिंसा :

गांधीजी ने अहिंसा को धार्मिक क्षेत्र से राजनीतिक क्षेत्र की ओर बढ़ाया और वह इतनी प्रसिद्ध हुई कि उन्होंने इसका भारतीय - स्वतंत्रता- संग्राम के निरुपद्रवी हथियार के रूप में विस्तृत प्रयोग भी किया। यह तो बीसवीं शताब्दी की बात है कि गांधीजी के द्वारा राजनीति के क्षेत्र में अहिंसा का पहला प्रयोग हुआ। इसके बारे में डा० सुधीन्द्र ने बताया है - " वर्तमान शताब्दी में एक शक्ति उद्भूत हुई जिसका प्रवेश तो राजनीति में हुआ, परंतु उसने सांस्कृतिक रूप धारण कर लिया और वह साहित्य को भी प्रभावित करने लगी। यह शक्ति अहिंसावाद की थी।"[२] यह भी माननीय बात है कि भारत ही पहला देश है कि जिसने अहिंसात्मक प्रतिरोध को देशव्यापी कार्यक्रम के रूप में अपनाया है।

- -

१: कल्याण पत्रिका - नवंबर १९७० - गान्धी जीवन सूत्र - श्रीकृष्णजी भट्ट पृ० १२६।

" Ahimsa means an effort to abandon the voilence that is @ inevitable in life .. Thus ahimsa means avoidin injury to anything on earth in thought, word or deed. "
The Political Philosophy of mahatma Gandhi P.64

गांधीयुग की अहिंसा :

अंग्रेजों के साथ लड़ने के लिए गान्धीजी ने भारत की राजनीति के धरातल पर अहिंसा की विचार- धारा को बहाया था। उन्होंने यों कहा - ' अंग्रेज बुरे नहीं, उनसे हम घृणा नहीं। उनकी शोषण नीति से हमें लड़ना है, हम अंग्रेज जाति के प्रति प्रेम रखते हुए भी उनकी नीति के प्रति विद्रोह का झण्डा खड़ा कर सकते हैं।[१]

गांधीयुग में अहिंसा की अपनी निजी विशेषताएं थीं। गांधीजी का मुख्य उद्देश्य यह था कि भारत के लोगों के कष्टों के निवारण की अपेक्षा उन पर किये जाने वाले पाशविक कृत्यों का अन्त होना चाहिए और मारक शस्त्रों का भी नाश करना चाहिए। इसीलिए उन्होंने अहिंसा पर बल दिया था। उनकी अहिंसा कायिक, वाचिक और साथ ही बौद्धिक भी थी। अहिंसा उनके लिए समझौते का साधन थी। उनकी अहिंसा के बारे में दिनकर ने बताया है - ' अहिंसा, यह शब्द ही गांधी- धर्म का निचोड़ है तथा हिंसा से पूरित विश्व में यह एक शब्द गांधीजी का जितना व्यापक प्रतिनिधित्व करता है, उतना उनके और सारे उपदेश मिलकर भी नहीं कर पाते।'[२] गान्धीजी जो देश में अहिंसा का निर्वाध प्रयोग करते थे तो उस समय ऐसे लोग भी थे जो इसकी हंसी उड़ाते थे। वे उनकी अहिंसात्मक क्रांति की अवहेलना करते थे। लेकिन गान्धीजी ही एकमात्र व्यक्ति थे जिन्होंने अहिंसा में छिपी हुई उस अद्भुत शक्ति को पहचाना, और उसे देश के जन- जन के उर में उत्पन्न करने का महान प्रयास भी किया। ऐसे लोगों को उन्होंने यह बताया - ' सच्ची अहिंसा भय से नहीं, प्रेम से जन्म लेती है, निस्सहायता से नहीं, सामर्थ्य से उत्पन्न होती है। जिस सहिष्णुता में क्रोध नहीं, द्वेष नहीं, और निस्सहायता का भाव है, उसके समक्ष बड़ी से बड़ी शक्तियों को भी झुकना ही पड़ेगा।'[२] उनकी अहिंसा का विरोध करने वाले लोग चाहे जितने भी रहे हों। उनमें उसका सामना करने की शक्ति तो नहीं रही होगी अवश्य। गांधीजी को अपने अहिंसा प्रयोग में सफलता ही मिली थी।

१: संस्कृति के चार अध्याय - पृ० ६३५

२: वही० पृ० ६३६

गान्धीजी की अहिंसा की मान्यताएं :

गांधीजी की अहिंसा की कई मान्यताएं होती हैं। अहिंसा से निर्भयता आती है। गांधीजी ने बताया है कि जिसे अहिंसा में पूरा विश्वास है उसे डरने की कोई आवश्यकता नहीं।[१] इसलिए गांधीजी ने धैर्य पर हमेशा बल दिया था। यदि किसी में साहस नहीं है तो, तो वह जीवन में हार जाता है। अत: उन्होंने जनता से यही प्रार्थना की थी कि डरो मत, साहस धरो।[२] सत्य की खोज और उससे साक्षात्कार करने के लिए साधक को जगत के समस्त बाहरी भय से दूर रहना चाहिए। ये भय हैं - मृत्यु का भय, लूट का भय, रोग का भय, शस्त्र का भय, आदि। मोह से ही भय की उत्पत्ति होती है। अपनी इच्छा की पूर्ति के लिए व्यक्ति चोरी करता है, किसी की हत्या करता है, किसी को चोट पहुंचाता है। न जाने कैसे अनेक क्रूर कृत्यों का कर्ता बन जाता है वह। यदि किसी के लिए अपने मन में मोह पैदा नहीं होता, तो वह भीतिपरवश कभी नहीं होता। अत: निर्भीक व्यक्ति के लिए अपने मोहों को त्यजना चाहिए। गान्धीजी ने निर्भयता को मोहहीन दशा की पराकाष्ठा माना है।[३]

अहिंसा की अभिव्यक्ति कर्म से अधिक होती है, शब्द से नहीं। केवल शब्द के द्वारा उसको प्रतिपादन करने की अपेक्षा कर्म के द्वारा उसके व्यावहारिक रूप को जनता के सामने रखने से वह तुरन्त उसे जान लेती है। अहिंसा में वैर, त्याग और निष्काम कर्म की भावना प्रधान है। अहिंसा की सफलता के लिए शत्रुता और कामना का तिरस्कार करना चाहिए। अहिंसा में वैर के स्थान पर प्रेम को अधिक महत्व दिया गया है क्योंकि देश में साधनहीन और साधनसंपन्न के बीच में संघर्ष को दूर करने के लिए यह आवश्यक है। अहिंसा के द्वारा इस संघर्ष को हटाया जा सकता है।[४] प्रेम द्वारा

- -

१: लेकिन अहिंसा भीरुता का ही दूसरा नाम नहीं है। तथा अहिंसा पर विश्वास करनेवाले लोग भी निर्भीक और तेजस्वी हो सकते हैं। - महात्मा गांधी- पृ० ८४

२: Do not resist, do not in any case answer voilence with veilence Gandhi would say, but at the same time his adjuration was Be brave, do not fear - Mahatma Gandhi -100 Years-P. 259

३: अभय मोह-रहित स्थिति की पराकाष्ठा है- गांधीसाहित्य-धर्मनीति-पार्ट ५-पृ०१

४: यदि मैं अपने विरोधी को मारूं तो वह हिंसा होगी ---- वह मुझे मारे तो भी उसके लिए प्रार्थना करनी चाहिए। हिन्दी साहित्य और विभिन्न वाद-पृ० ३१

अहिंसक की सफलता की संभावना के कई उदाहरण गान्धीजी की जीवनी में प्राप्त है ।[१]

समबुद्धि से ही अहिंसा की उत्पत्ति होती है । समबुद्धि से तात्पर्य है जनता के बौद्धिक विकास से है जो विश्व बन्धुत्व और समानबुद्धि में केन्द्रित हो । यदि सबकी कामना ईश्वर साक्षात्कार की हो तो सभी में अहिंसा का प्रादुर्भाव हो सकता है । यह समबुद्धि आपसी प्रेम से प्राप्त हो सकती है । गान्धीजी ने अहिंसा के तत्व को मुख्यतया सत्य के साक्षात्कार के लिए स्वीकार किया है । अहिंसा के अलावा इसके लिए और कई तत्वों के पालन की आवश्यकता है जिनमें से कुछ तत्व अहिंसा के लिए भी अनिवार्य माने गये हैं । सत्य के साक्षात्कार की प्रक्रिया में अपने हाथ में रहनेवाला साधन है अहिंसा और इस दृष्टि से यह परम धर्म है । इसके लिए ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह आदि की आवश्यकता है ।

अहिंसा में सत्य से ही बल आता है । जिसमें ईश्वर पर विश्वास रह रहता है, जो धर्म का पालन करता है ऐसे व्यक्ति में अहिंसा स्वयं उत्पन्न होती है । हिंसक के मन में अहिंसा कदापि उत्पन्न नहीं हो सकती । अहिंसक पर प्रभु की कृपादृष्टि सदा रहती है । वे उसे खूब चाहते हैं, उसकी प्रवृत्तियों को मानते हैं और उसे अपना कर्तु कर्म करने के लिए बल या शक्ति देते हैं । इसलिए अहिंसा में ही शक्ति है, तेज है, हिंसा में नहीं।

अहिंसा के लिए आत्मशुद्धि की आवश्यकता है । अहिंसा में सत्य से । जो बल आता है , वह शारीरिक नहीं, आत्मिक बल है । आत्मबल के लिए आत्मशुद्धि अनिवार्य है । अहिंसा में मात्र स्वीकृति है । इसीसे जीवन स्थिति और अवकाश प्रकृति प्राप्त करता है । अहिंसा की दृष्टि से जो सत्कर्म किया जाता है, उसका तिरस्कार कभी नहीं होता । ~~केवल~~ अहिंसा में हमेशा स्वीकार ही स्वीकार है । ऐसा कहने का

१: गान्धीजी के पुत्र देवदास गान्धी ने एक बार अलूणा व्रत (नमक न खाने का व्रत) ले लिया । -------- पुत्र के मन में पिता के प्रति जो प्रेम था , वही इस सफलता का कारण है ।

मतलब यह है कि अहिंसा के नाम पर जो भी कर्म, चाहे वह छोटा हो या बड़ा, किये जाते हैं, वे सब कल्याण कारी होते हैं। अत: ऐसे कर्मों का स्वागत हमेशा होता ही है। लेकिन हिंसा में तो हम देख सकते हैं कि उसमें सबका तिरस्कार किया जाता है क्यों कि वे सब हानि ही पहुंचाते हैं। इसलिए अहिंसा में जैसी प्रवृत्तियों, विचारों, मतों को स्थान दिया जाता है, उन्हीं से जीवन अपना रूप संवारता है। अत: अहिंसा से ही जीवन अपनी प्रेरणा प्राप्त करने के लिए बाध्य रहता है।

गान्धीजी के मतानुसार अहिंसक, सत्य अर्थात परमात्मा तक पहुंचने का साधन है। परमात्मा और जीवात्मा के बीच का परदा हटाकर वह उनसे भक्त का साक्षात्कार कराती है। अहिंसा सत्य की प्राप्ति का क्रियात्मक पथ है। सत्य का एक पहलू है वह, अहिंसा के प्रकाश से ही सत्य दृष्टव्य होता है। सत्य अर्थात ईश्वर का दर्शन अहिंसा से ही होता है जो इस क्रिया में साधन बनकर आती है।

वस्तुतः गान्धीजी की अहिंसा को उन्होंने किन किन अर्थों और पहलुओं पर प्रस्तुत किया है, यह कहना कठिन है। पहले ही कहा जा चुका है कि गान्धीजी की अहिंसा से तात्पर्य केवल हिंसा न करना ही नहीं है। उन्होंने उसमें मानव-जीवन के कल्याण के लिए उपयुक्त विभिन्न पहलु ओं को समाहित किया है। इसे क्रूरता अधिकार- लिप्सा, अनीति आदि के विरुद्ध युद्ध करने का शस्त्र माना गया है। यह युद्ध तो शारीरिक युद्ध न होकर आत्म - युद्ध है अर्थात् आत्म बल से लड़नेवाला युद्ध। इस युद्ध की लड़ाई के लिए अहिंसा, भय, क्रोध, पाप, लोभ आदि का तिरस्कार करने का उपदेश देती है।[1]

युद्ध पर गान्धीजी का मत : गान्धीजी युद्ध नहीं चाहते थे - ऐसा कहना ठीक नहीं। उनका कथन था कि अपने अपने धार्मिक विचारों और संप्रदायों की सुरक्षा के लिए जो युद्ध लड़ा जाता है, वह हिंसात्मक नहीं, अहिंसात्मक है। कारण यह है कि वह धर्म- युद्ध है। गान्धीजी ने बताया है कि युद्ध तो आवश्यक है, कभी कभी;

---

1. For Gandhi non-voilence involves an inner war, which requir es us to defeat fear, greed, anger and guilt. Mahatma Gandhi - 100 Years - P. 9

लेकिन यह धर्म-युद्ध होना चाहिए। वह युद्ध जीवन का मृत्यु पर, प्रकाश का अंधकार पर धर्म का अधर्म पर विजय प्राप्त करने का होना चाहिए।[१]

अहिंसा में अद्वैत भाव रहता है।[२] अहिंसा में किसी प्रकार के भेद-भाव को स्थान नहीं दिया गया है। उसमें अभेद की प्रतिष्ठा का समर्थन किया है। यह तो माननीय है कि अहिंसा में हृदय- परिवर्तन का सिद्धान्त मौजूद है।[३] गांधीजी ने इसी सिद्धान्त के द्वारा अहिंसात्मक तरीके से जनता के भेद को मिटाने का प्रयास किया था। उनका मत यह था कि अगर दो व्यक्तियों के बीच में कोई भेद- भाव रहता है, तो उसे रोकना अहिंसक का कर्तव्य है। उसी प्रकार किसी राष्ट्रों के बीच में युद्ध छिड़ जाता है तो उसे रोकना चाहिए। उसमें भाग न लेना न चाहिए। ` चोर हमें सताता है, उससे बचने को हमने उसे दण्ड दिया --- --- जब चोर अपने भाई - बिरादर है तो उसमें धर्म- भावना पैदा करनी चाहिए। हमें उसे अपनाने का उपाय खोजने तक का कष्ट सहने को तैयार होना चाहिए। यह अहिंसा का मार्ग है।[४] इस प्रकार अभेद की प्रतिष्ठा से ही अद्वैत की भावना जाग उठेगी। भेद मिट जाने पर अभेद या अद्वैत जन्म लेता है। सब एक हैं, दूसरा क एक कोई नहीं - यही अद्वैत की भावना है। इसी का प्रतिपादन उन्होंने अपने दर्शन में किया है।

१: युद्ध तो अनिवार्य है, वह किंतु वह धर्म - युद्ध हो। एक क्षण भी उस युद्ध में आंख झपकने का अवकाश नहीं है। किंतु पल भर के लिए भी वह युद्ध वासनामूलक नहीं हो सकता। वह जीवन और मौत का, प्रकाश और अंधकार, और धर्म - अधर्म का युद्ध है - अकाल पुरुष गांधी - जैनेन्द्र कुमार - पृ० ४५

२: अहिंसा की तह में ही अद्वैत - भावना निहित है - आत्मकथा - पृ० ३०६

३: The purpose of non-voilence is, it seems to compel the oppositi or the oppressor, to change his mind and his action, but how that is to come about is no where perfectly clear, and the ordinary westren explanation that it is to come through th e awakening of his conscience seems to me too fecile. Rather non-voilence is expected to leave its affect in changing the oppressed themselves. Mahatma Gandhi 100 years - P. 60

गांधीजी की अहिंसा सच्ची है, पर वह कच्ची भी है और अपूर्ण भी जिस प्रकार कहा गया है कि व्यक्ति मरता है, उसके द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों का नाश नहीं होता, उसी प्रकार गांधीजी की अहिंसा अनश्वर, अमर, अनन्त है। उसका अन्त नहीं हो सकता। वह हमेशा बनी रहेगी और अपूर्णता में भी उसका अस्तित्व है। अहिंसा के बिना सत्यरूपी ईश्वर का दर्शन असंभव है। ईश्वर अनादि अनन्त हैं क्योंकि जब तक ईश्वर - दर्शन की प्रक्रिया बनी रहेगी तब तक अहिंसा भी बनी रहेगी। उन्होंने बताया है अहिंसा अब तक अपनी परिपक्वावस्था में नहीं पहुंची है, इसलिए वह कच्ची है। उसे और भी बढ़ाना, उसका और भी व्यापक प्रयोग करना है। अब तो अहिंसा के प्रयोग का प्रारंभ ही हुआ है। उसका प्रयोग करते करते उसे बढ़ाना चाहिए।

अहिंसा मार्ग जितना सीधा है उतना ही कठिन भी है। अहिंसा के मार्ग पर चलने के लिए उन अनेक कष्टों का सामना करना पड़ता है। नट की डोर से भी बहुत पतली है अहिंसा की रस्सी। यदि उस पर चलते वक्त श्रद्धा और सावधानी न बरतता तो गिर पड़ता।[१] अहिंसा का मार्ग अपनाने के प्रयास में बाधाएं उपस्थित होती ही हैं। वस्तुत: इस पथ पर चलने वाला व्यक्ति अपना सारा सुख- भोग त्यागने को हठ- बद्ध होता है। गांधीजी ने कठिन तपस्या से ही अहिंसा का मार्ग अपनाया था। अहिंसा उनके लिए सब कुछ थी, जिसे पाने के लिए उन्होंने अपना सुख- भोग त्याग दिया था। दूसरों की भलाई के लिए उन्होंने अपने जीवन को तपस्या बनायी। इसी कारण से उन्होंने अहिंसा काठीक पालन किया।

अहिंसा में किसी को कष्ट न पहुंचाने की बात है। यदि किसी के मन में किसी के प्रति शत्रुता का भाव होता है, तो वह उसे जबरदस्त कष्ट पहुंचाता है। उसे सताता है और उसके दु:ख में स्वयं हंस लेता है। गांधीजी बताते थे कि शत्रु और मित्र दोनों भगवान की ही संतान ही हैं। अहिंसा में आत्मा की ही शक्ति रहती है। इसी शक्ति से शत्रु- मित्र में एकता लाना हमारा कर्तव्य है। शत्रु को कष्टा पहुंचाना

- -

१: अहिंसा का यह शस्त्र अत्यन्त व्यापक है, अत्यन्त सूक्ष्म है और इतना कठिन है कि तलवार की धार पर चलने के समान है।"

- कल्याण - गान्धी-जीवन- सूत्र - पृ० १२६३
देखिए गान्धीजी से क्या सीखें - पृ० ४

गान्धीजी के शब्दों में ईश्वर तथा सारी सृष्टियों का अपमान करना है ।[१]

अहिंसा को जीवन - निरपवादी तत्व माना है । अहिंसा में अपवाद की कोई बात नहीं है । अहिंसा किसी का अपवाद नहीं करती । वह सब की भलाई ही चाहती है । अत: वह जीवन की असली तत्व है ।[२] पापियों से प्रेम करना ही अहिंसा है ।[३] गान्धीयुग के पहले पापियों को हमेशा ठुकरा देते थे । लेकिन गांधीजी ने इस महान संदेश ' पाप से घृणा करो पापी से नहीं ' को जनता के सामने रखा । उनका विश्वास था कि अहिंसा के द्वारा पापियों का हृदय बदल सकते हैं और उनसे प्रेम कर सकते हैं । उनका कथन है कि आदमी अपने आध्यात्मिक और धार्मिक विचारों से अज्ञानी रहने के कारण ही वह पाप करता है । उनको इन विचारों का ज्ञान प्रदान करना ज्ञानी लोगों का कर्म है ।

गांधीजी ने पुन: बताया है कि अहिंसा माने पाप पर पुण्य की जीत है ।[४] वास्तविक अहिंसा को हिंसा से मुक्ति मानी जा सकती है । अर्थात् शत्रुता, क्रोध, घृणा आदि से मुक्ति और सब के प्रति अगाध एवं अनंत प्रेम । किसी व्यक्ति की हिंसा पर पूर्ण विजय को अहिंसा कहा जा सकता है । कारण यह है कि

- -

१: दोष पर हमें आक्रमण करना चाहिए, उससे टक्कर लेनी चाहिए । पर बेचारे दोषी से वैर करना, यह आत्म- वैर सरीखा है । -- -- इसलिए एक भी जीव को कष्ट पहुंचानामानो ईश्वर का अपमान और सारी सृष्टि को कष्ट पहुंचाना जैसी बात है ।' - गांधीजी से क्या सीखें-पृ०१

२: अहिंसा ही निरपवाद रूप में जीवन की असली तत्व है -

- गांधी विचार रत्न - पृ० ४४ - ऐसे थे बापू -पृ० ६१

३: Ahimsa thus means the largest love, love even for t he evil-doer. The Political Philosophy of Mahatma Gandhi.

4. Non-voilence on the other hand, seeks to conquer eviby good . Absolute ahimsa means perfeot from ahimsa, ie, freedom from ill-will, anger and hate rooted in ignorence, and an overflowing understanding love for all -

- Ibid. P. 66

वह हिंसा का मूलत: नाश कर सका है और अपने आप मुक्ति पा सका है। उसी प्रकार पाप के सर्वनाश को पुण्य माना जाता है और यही पुण्य अहिंसा की भलाई है। वैसा ही रजोगुणों से दूर रहना या उन्हें अपने मन में पैदा न करना अहिंसा का लक्षण है। गान्धीजी जन- सेवा को ही ईश्वर सेवा मानने वाले थे। अत: उसे कष्ट देना उनके लिए असह्य था।

मनुष्य ने किसी न किसी प्रकार से पशु- पक्षियों पर अपने प्रभुत्व का अधिकार जमाया है। मानव गाय का दूध दुहता है, बैल को खेती के काम में जोतता है, गदहे को कपड़े आदि ढोने के काम में प्रयुक्त करता है आदि आदि। इस प्रकार काम में आनेवाले पशुओं को कभी कभी वह मारता है, उनकी हत्या करता है। गान्धीजी ने कहा है कि पशु- पक्षी, जो हमेशा स्वतंत्र रहते हैं, वे मानवाधिकार के अधीन में रहने अथवा मारकर खाने के लिए नहीं हैं, प्रत्युत उनकी रक्षा करना ही उसका कर्तव्य है, धर्म है। जिस प्रकार मनुष्य आपस में एक दूसरे की मदद करते हैं उसी प्रकार पशु- पक्षियों का उपयोग भी होना चाहिए।[१]

अहिंसा से गांधीजी का तात्पर्य केवल हिंसा न करना ही नहीं है, प्रत्युत सकल जीवजालों से प्रेम करना और पर-दु:ख के प्रति सहानुभूति दिखाना भी है। पीड़ितों के प्रति करुणा एवं सहानुभूति प्रकट करना गान्धीजी का प्रधान गुण था।[२] अहिंसा में समष्टिगत प्रेम को प्रधानता दी गयी है। उनका कहना है कि प्रेम के द्वारा समस्त चराचर में एकता की भावना उत्पन्न होती है जिससे वह एक दूसरे को समान मानने लगता है और वह अहिंसा का पालन कर सकता है। परदु:ख-कातरता से मानव के बीच

१: मनुष्य को पशु- पक्षियों पर जो प्रभुत्व प्राप्त हुआ है, वह उन्हें मारकर खाने के लिए नहीं, बल्कि उनकी रक्षा के लिए है, अथवा जिस प्रकार मनुष्य एक दूसरे का उपयोग करते हैं, पर एक दूसरे को खाते नहीं, उसी प्रकार पशु- पक्षी भी उपयोग के लिए हैं; खाने के लिए नहीं।"
- आत्मकथा- गान्धीजी - पृ० ४७

२: लेकिन महात्मा जी की अहिंसा केवल हत्या न करना ही नहीं थी। उनकी अहिंसा का मतलब था सभी जीवों से प्रेम करना। दरिद्रों तथा पीड़ितों के लिए अंतर में दर्द और प्रेम होना ही अहिंसा का असली स्वरूप है।" - महात्मा- डा० प्रफुल्लचन्द्र घोष- पृ० ६

के उच्च- नीचत्व का अन्त हो जाता है। इस भाव से दूसरों के दुःख को पहचान सकते हैं और उनकी मदद भी कर सकते हैं।

अहिंसा में मारने की अपेक्षा मरने की भावना निहित है। अहिंसा हमेशा स्वयं मरने अथवा आत्मबलिदान करने का पाठ पढ़ाती है। गान्धीजी ने भी मरने पर अधिक प्रमुखता दी है। दूसरों को मारना उनके लिए वेदना-जनक है। अतः उन्होंने मृत्यु को बड़े सन्तोष के साथ स्वीकार किया है। अहिंसक व्यक्ति मृत्यु से नहीं डरता। वह उसे ससन्तोष स्वागत करता है।[1] यहां गांधीजी ने मारने को भी स्वीकार किया है। अहिंसा के आचरण के लिए मारने की शक्ति भी आवश्यक बतायी है।

अहिंसा में भीरुता और दुर्बलता का कोई स्थान नहीं है।[2] गान्धीजी की अहिंसा सबलों की मात्र है। दुर्बल व्यक्ति अहिंसा का पालन नहीं कर सकता। इसका कारण यह है कि अहिंसा के पालन के लिए व्यक्ति में बल, धैर्य, साहस, शक्ति आदि आवश्यक है। अहिंसा का पालन करना मुनियों की तपस्या करने के समान कठिन और क्लेशपूर्ण है। दुर्बलों के लिए तपस्या अनुचित है। अहिंसा में भय की चिंता त्याज्य है। जिसके मन में अपने चारों ओर की परिस्थितियों के प्रति भय रहता है वह घुटघुटकर मरता है और हमेशा डरपोक तथा कायर बनता जाता है। अहिंसा की तपस्या के लिए दृढ़-चित्तता जरूरी है।

अहिंसा को सत्य की प्राप्ति का साधन बताया गया है। गांधीजीके अनुसार सत्य ही ईश्वर है। उस ईश्वर तक अहिंसा मात्र के द्वारा ही पहुंच सकते हैं। इस दृष्टि से उन्होंने सत्य की अपेक्षा अहिंसा को अत्यधिक महत्व दिया है अर्थात् साध्य की अपेक्षा साधन पर अधिक बल दिया है। इस साधन का प्रयोग प्रेम सेहोता है। सत्य तक पहुंचने के लिए एकमात्र साधन अहिंसा ही है, दूसरा कोई नहीं। इसलिए अहिंसा सत्य के उनके दर्शन का मूल मन्त्र है। समस्त चर- अचरों से आत्मीयतापूर्ण तादात्म्य ही अहिंसा मानी गयी है। इसका अर्थ है सर्वभूतमयप्रेम। इस प्रेम की प्राप्ति के लिए समस्त प्राणियों से मिल-जुलकर रहना चाहिए।

- -

१: मनुष्य मारना सीखे, उससे पहले उसमें मरने की शक्ति होनी चाहिए। -
- गांधी- विचार- रत्न- पृ० ६

२: उनकी अहिंसा दुर्बल की अहिंसा नहीं थी।-- -- उनकी अहिंसा में भीरुता को कोई स्थान नहीं था।- महात्मागान्धी- डा० प्रफुल्लचन्द्र घोष- पृ० ७

गांधीजी के लिए अहिंसा धर्म है, दर्शन है, नीति है और जो कुछ हो सकता है, होता है। लेकिन गांधीजी की अहिंसा प्रयोग की दृष्टि से मानवीय आध्यात्मिक है और शाश्वत भी। गांधीजी का मुख्य उद्देश्य देश की राजनीति का आध्यात्मीकरण था। उन्होंने अक्सर यही बताया है कि देश में जो हिंसा - वृत्ति का ताण्डव हो रहा है।, उसका सर्वनाश करने के लिए ही उन्होंने अहिंसा को राजनीति के क्षेत्र पर उतारा था।

गांधीजी ने कहा है कि अहिंसा की भाषा मूक है और उसकी अभिव्यक्ति शब्द से अधिक कर्म में होती है।[1] कर्म में ही अहिंसा स्पष्ट होती है। कभी कभी ऐसा भी हो सकता है कि व्यक्ति के अहिंसक होने पर उसकी प्रवृत्ति हिंसा की होती है। इसका कारण है वह हिंसकों कीप्रेरणा से अपने मन को बदललेता है। जिसका रूप, भाव, कर्म आदि अहिंसात्मक होते हैं, वही जन अहिंसक माना जाता है। अहिंसा को ग्रहण करने और उसका प्रयोग करने के लिए कोई विद्या की जरूरत नहीं।[2] शिक्षित - अशिक्षित, अमीर- गरीब, उच्च- नीच, सबल- दुर्बल, बच्चा - बूढ़ा, अच्छा- बुरा, सभी को उसका प्रयोग करने में कोई कठिनाई नहीं है। उत्साही मनुष्य अहिंसा का प्रयोग सम्पूर्ण कर सकता है।

अहिंसा इस संसार की सकल प्राणियों के लिए सर्वथा ग्राह्य है। यही इसकी बड़ी विशेषता है। मानव- सेवा के मूल में अहिंसा की भावना अवश्य रहती है। अहिंसा के द्वारा मानवों में एकता लायी जाती है और इसी एकता से ही मानव की सेवा भी विजयी बनती है। अतः इस प्रकार की अहिंसात्मक सेवा के लिए

१: अहिंसा परम धर्म है, जिसका मैं यही अभिप्राय लेता हूं कि जीवन की हर स्थिति में अहिंसा संगत है। अहिंसा भाषा- निर्भर नहीं है। वह भाव में है। वह हृदय की चीज है। - अकाल पुरुष गांधी-पृ०२:

२: --- अहिंसा की चरितार्थता के लिए किसी को विद्वान होने की आवश्यकता नहीं है। सेवा- सेवी और उत्सर्गशील विद्या के बिना भी हुआ जा सकता है, और अहिंसा का सार यह सेवा-मय उत्सर्ग ही है। ' -

अकाल पुरुष गांधी - पृ० २२५

मानव- मन में जो उत्साह पैदा होता है, वही अहिंसा का परम ध्येय है।

अहिंसा में बुरी प्रवृत्तियों के प्रति द्वेष की भावना है और साथ ही प्रेम की उपलब्धि भी है। अहिंसा हमेशा सत्कर्मों की महत्ता प्रतिपादित करती है क्योंकि वह ईश्वर से साक्षात्कार पाने का साधन है। ईश्वर- साक्षात्कार के लिए सत्कर्मों की ही आवश्यकता होती है। ये सत्कर्म जो हैं पद-प्राप्ती न होने चाहिए। ऐसा सत्कर्म करने के लिए सभी प्राणियों से प्रेम करना अनिवार्य है। दुष्कर्मों का फल हमेशा बुरा ही निकलता है जिससे मानव को अनेक कष्ट भोगने पड़ते हैं। अतः दुष्कर्मों का तिरस्कार सब कहीं अवश्य होता है।

गांधीजी ने बताया है कि जिस मनोवृत्ति में द्वेष अथवा वैराग्य की भावना नहीं रहती उसमें अहिंसा का वास होता है।[१] पहले कहा गया है कि अहिंसा भाव में उपस्थित होती है और वह भाव तो उत्पन्न होता है हृदय से। अहिंसा में विद्वेष या वैराग्य की भावना नहीं है रहती। जिस हृदय में अहिंसा पैदा होती है, वह हृदय शुद्ध, निर्मल, काम-क्रोधादि दुर्गुणों से दूर रहता है। अहिंसक में वैराग्य नामवास तक न रहता।

आध्यवाद और अहिंसा :

अहिंसा व्यक्ति व्यक्ति की जायदाद पर क्रमागत स्वामित्व का प्रतिपादन करती है। यही वास्तविक रीति है। जो उस पर अधिकार रखने के लिए योग्य नहीं ठहरता, उस पर अधिकार जमाना अन्याय है। स्वामी को अपने धन और संपत्ति का पूरा ध्यान और अधिकार होना चाहिए। सामंतवाद और पूंजीवाद के समय में धन या संपत्ति का अधिकार ऐसे व्यक्ति में रहा था जो उसके लिए योग्य नहीं। लेकिन गांधीजी ने बताया है कि धन का अधिकार स्वामी को ही होना चाहिए। और प्रजा, दास, सेवक सब को उस स्वामी की भलाई के लिए खूब प्रयत्न करना चाहिए। लेकिन उनमें कभी भी स्वामी बनने की इच्छा तक नहीं रखनी चाहिए।[२]

१: अहिंसा केवल आचरण का स्थूल नियम नहीं है, बल्कि यह मन की वृत्ति है। जिस वृत्ति में कहीं भी द्वेष की कहीं भी गंध नहीं रहती। इसका नाम अहिंसा है।" - गांधी-विचार- दोहन- पृ० १

२: गांधीवाद और आध्यात्मवाद के अनुसार पैदावार के साधनों और संपत्ति पर क्रमागत स्वामित्व के अधिकार की रक्षा करना ही अहिंसा है। -गांधीवाद की शवपरीक्षा- पृ० ६०

गांधीजी हमेशा बताते थे कि अहिंसा उनके लिए धर्म है नीति नहीं । वे हिन्दू - धर्म में विश्वास करते थे और उनकी अहिंसा भी इसमें स्वीकृत है । उन्होंने अहिंसा नामक एक नवीन धर्मकी प्रतिष्ठा की । इस धर्म की प्रतिष्ठा के लिए उन्होंने विशेषत: गीता से प्रेरणा ली है । अहिंसा शिकार, प्राणि- हिंसा, आमिषाहार, आदि की व्यवस्था का निषेध करती है ।[1] शिकार के खेल में पशुओं और पक्षियों की हत्या होती है । प्राणि- हिंसा में उनका चीर- फाड़ होता है । अत: अहिंसा में इनका सर्वथा परित्याग होता है ।

समाज की अर्थ- व्यवस्था में अहिंसा का योग :

अहिंसा मानवता के वैज्ञानिक और अन्य प्रयत्नों के प्रति एक ऐसी महत् शक्ति है जिसे मानव ने अपनी बुद्धि- चतुरता से आविष्कृत किया है । गांधीजी सचमुच मशीनों और अन्य यंत्रों का विरोध करते थे । उनका निर्माण करना वे नहीं चाहते थे । उन्होंने बताया है कि इनसे आर्थिक सुधार संभव नहीं है । इतना ही नहीं जनता के लिए शारीरिक परिश्रम की आवश्यकता नहीं रहती । उन्होंने अक्सर यही बताया था कि इन मशीनों और यन्त्रों का शिकार न बनकर अपने अपने हाथों से काम करना और इस प्रकार स्वावलंबी रहकर जीवन बिताना - यही मानव- जीवन है । गांधीजी की अहिंसा में इतनी शक्ति है जिसकी तुलना में इन मशीनों- यन्त्रों की शक्ति कुछ नहीं ठहरती ।[2] गान्धीयुग में यही अहिंसा जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में काम करती आयी थी ।

अहिंसा एक ऐसी औषधी है जिससे इस संसार के अन्य महान शक्तियों का नाश हो सकता है । इसका कोई अंत नहीं होता । किसी से भी बदला लेने में अहिंसा स्वयंसिद्ध है । अहिंसा के सामने अन्य सब झुक ही सकते हैं । अहिंसा को जीतना कठिन है । अहिंसा - औषधी से बढ़कर दूसरी कोई औषधी नहीं हो सकती। अहिंसा की दवा से जीवन - संबंधी सारी बीमारियों को दूर कर सकते हैं । अहिंसा-

- -

1. Ahimsa rules out all wanton himsa to the sub- human creation eg. hunting, vivisection, non-vegitarian diet etc. The poetical Philosophy of Mahatma Gandhi- P. 66
2. Non-violence is the greatest force at the disposal of mankind, mightier than the mightiest weapon devised by the ingenuity of mankind . Ibid . P. 74

औषधि सब के लिए शान्ति- जनक है।[१] अहिंसा तपस्वी एवं गुफा- निवासी जनों के लिए कोई तटस्थता वादी साधन नहीं है। इनके लिए अहिंसा का पालन करना अनिवार्य है। तपस्वी जन मोक्ष- प्राप्ति अथवा कार्य- सिद्धि के लिए ही तपस्या करते हैं। इसलिए उनके तापसी जीवन में अहिंसा अत्यंत आवश्यक है।

अहिंसा वास्तविक प्रयोग वही है जो उसका क्रियात्मक प्रयोग करता है और इतनी कुशलता से करे कि अपनी उत्कट बुद्धिमत्ता और जागृत अन्त:करण से उसका प्रयोग करता है। वाणी या वचन द्वारा अहिंसा के बारे में रटते रहने से कोई लाभ नहीं होता। उसका प्रयोग करके उसकी योग्यता का परिचय देना चाहिए। अहिंसा के व्यापक प्रयोग से जीवन का कल्याण संभव है। इसे गांधीजी ने हमें अहिंसा का व्यापक प्रयोग करके दिखाया है।

अहिंसा की शिक्षा पहले पहल घरेलू पाठशाला में होनी चाहिए। अगर यहीं इसकी जीत होगी तो अन्य सभी जगहों पर इसकी विजय जरूर होगी। यह स्वाभाविक है कि हम बचपन में जो शिक्षा प्राप्त करते हैं, उसका प्रभाव आजीवन रहता है, उसका वैसा ही पालन हम करते हैं। इसी बात का समर्थन गान्धीजी ने भी किया है।

अहिंसा वैयक्तिक गुण मात्र नहीं है, वह धार्मिक और राजनीतिक गुण न होकर, व्यक्ति और समाज के लिए एक जीवन-पथ है।[२] गान्धीजी ने बताया है कि अहिंसा के पथ पर चलने से जीवन सुखद और संतोषमय होता है। व्यक्ति और समाज दोनों इसे समान रूप से अपना सकते हैं। यह आध्यात्मिक और धार्मिक क्षेत्रों से बढ़कर राजनीतिक और सामाजिक क्षेत्रों में उतरी है। यों अहिंसा अनिवार्य है आज के युग में जीवन- संबंधी बन गयी है।

- -

1. Non-voilence has no limitsif a particula dose does not seem to answer, more should be administered. It is a never failing remedy .- The Political Philosophy of Mahatma Gandhi.P. 75

2. Non-voilence, Gandhiji once remarked is not an individual virtue, but a cource of spiritual and political conduct both for the individual and the community.

:- The Political Philosophy of Mahatma Gandhi. P. 165

भारतीय राजनीति और अहिंसा :

अहिंसा ने भारतीय राजनीति को आदर्श के समतल पर उठाया है और राष्ट्रीयता की, अवसरवाद से, रक्षा की है। अहिंसा का प्रयोग भारत की राजनीति में गांधीजी ने पहले पहल किया है। अत: उपर्युक्त बात का श्रेय गांधीजी को है। भारत की राजनीति को अहिंसात्मक बनाना गांधीजी की देन है। राजनीति के क्षेत्र में वर्तमान हिंसा और अत्याचार का अंत करना उनका परम ध्येय था। इसलिए उन्होंने राजनीति के क्षेत्र में अहिंसा का व्यवहार किया है।

अहिंसा में दुर्बल व्यक्ति भी बिना दुर्बलता के, शामिल हो सकता है। गांधीजी ने कभी कभी यह बताया है कि अहिंसा सबल का अधिकार है, दुर्बल का नहीं। लेकिन दुर्बल भी उसका प्रयोग कर सकता है अत: वह भी उसमें अपनी दुर्बलता की चिंता को भूल सकता है। गांधीजी के लिए अहिंसा निषेधात्मक स्थिति नहीं है। वह वास्तविक और गतिशील है। उनके लिए अहिंसा का त्याग कदापि नहीं हो सकता था। उनकी अहिंसा गतिवान है; सक्रिय भी है। वह प्रकाश गति से चलती रहती है। यह कहीं रुकने वाली नहीं है। यह अत्यंत व्यापक है।

गांधीजी ने अहिंसा और प्रेम को एक ही चीज माना है।[१] प्रेम से ही अहिंसा का पालन हो सकता है। अहिंसा के मूल में प्रेम- भावना सदा रहती है अहिंसा का अर्थ बताया ह गया है - सकल चराचरों से प्रेम करना। जिसके मन में प्रेम नहीं होता, वह अहिंसक नहीं हो सकता। जिसके मन में वैर होता है, उसमें हिंसा की भावना ही उत्पन्न हो सकती है। अहिंसा में वैर- त्याग की प्रमुखता रहती है। अहिंसा में प्रेम और प्रेम में अहिंसा सम्मिलित हैं। अहिंसा का नाम ही प्रेम है और प्रेम का नाम ही अहिंसा है। अत: अहिंसा और प्रेम दोनों एक ही हैं। सत्य का साक्षात् दर्शन के लिए अहिंसा का पूर्णत: पालन होना चाहिए।[२] जो सच्चा काम करता है, उसके आगे भगवान प्रत्यक्ष होते हैं। सत्य अथवा भगवान का दर्शन करना

१: अहिंसा और प्रेम एक ही चीज है - गांधी - विचार- रत्न- पृ० ६२

२: मैं अपने तमाम प्रयोगों के परिणाम-स्वरूप विश्वासपूर्वक इतना कह सकता हूं कि सत्य के संपूर्ण दर्शन अहिंसा के संपूर्ण पालन के बाद ही हो सकते हैं।' - वही० पृ० ६२

कोई आसान काम नहीं है। वह बहुत कठिन है अगर वह सारे लोग उतना शीघ्र नहीं कर सकते जितना वे हिंसा और पाप करते हैं। अहिंसा का सीमान्त पालन उसके लिए आवश्यक है। जो अहिंसा का सम्यक् पालन करता है वह सत्य का दर्शन ठीक ठीक करता है।

गांधीजी का दृढ़ मत था कि अहिंसा के प्रयोग से हम ईश्वर सा हो सकते हैं, यद्यपि ईश्वर नहीं बन सकते हैं।[१] गांधीजी ने स्व अहिंसा का पालन आजन्म किया था जिससे वे भगवान के समान महान, विश्ववन्द्य, महात्मा आदि बन गये। लेकिन वे ईश्वर नहीं बन सके। गांधीजी जन्म से कोई ईश्वर नहीं थे। उन्होंने मानवता का अवतार लेकर जन्म लिया था। बाद में वे अहिंसा का पालन करके ही ईश्वर-सदृश हो गये थे।

अहिंसा को मानव का बड़ा बल और अन्य हथियारों से प्रबल कहा है। अहिंसा कोई विज्ञान- वस्तु है नहीं, वह मानव- बुद्धि की वस्तु है अतः वह अन्य वैज्ञानिक हथियारों से बहुत सबल है। बुद्धि की वस्तु हमेशा तीव्र और तीखी होती है। ऐसी वस्तुओं की शक्ति को जीतना असंभव है। अहिंसा की शक्ति भी प्रचण्ड है, अजेय है

गांधीजी ने अहिंसा आदि मानवीय गुणों की शक्ति की परीक्षा के लिए हिंसा आदि पशुीय गुणों का अस्तित्व अनिवार्य माना है। बुराई में ही सच्चाई की महिमा अधिक स्पष्ट रूप से दिखती है। इसलिए बुराई का समूल नाश गांधीजी नहीं चाहते थे। अतः गांधीजी ने उनका अस्तित्व अनिवार्य बताते हुए कहा है कि सत्य, अहिंसा आदि सद्गुणों की परीक्षा मानव में तब होती है जब उसे हिंसा, वैर आदि का सामना करने का अवसर मिलता है। संघर्ष में ही अच्छी - बुरी मान्यताओं का परिचय मिलता है। अहिंसा को व्यापक सिद्धान्त बताया है गांधीजी ने। गांधीजी के अन्य सिद्धान्तों का मूल सिद्धान्त है अहिंसा। अहिंसा के पालन की आवश्यकता के लिए ही अन्य सिद्धान्तों की रचना हुई है। अन्य जो सिद्धान्त गांधीजी ने जो बताये हैं वे सब व्रत माने गये हैं जिनका पालन अहिंसा की सिद्धि के लिए अनिवार्य

१: हम जिस हद तक अहिंसा को सिद्ध करते हैं, उतनी ही हद तक ईश्वर के सदृश बनते हैं, परंतु हम पूरी तरह ईश्वर कभी नहीं बन सकते। -गांधी-विचार-रत्न-पृ० ४२

बताया गया है । प्रेम और अहिंसा दोनों निःशब्द रहकर अपना कर्तव्य निभाते हैं । वे किसी प्रकार की उथल पुथल नहीं मचाते । उसके प्रयोग के लिए शान्त वातावरण ही पर्याप्त है ।

सत्य और अहिंसा का प्रयोग जितना करेगा उतना ही ज्ञान बढ़ेगा । सत्य और अहिंसा से ज्ञान अधिक बढ़ता है । अज्ञानी भी इसके प्रयोग से ज्ञानी बन सकता है । अहिंसा पर सारा समाज आधारित है और उसी पर समाज इस प्रकार निर्भर रहता है, जिस प्रकार धरती गुरुत्वाकर्षण से ही जो चीज़ हम ऊपर की ओर फेंकते हैं वह ऊपर की ही ओर न जाकर नीचे आकर गिरती है । उसी प्रकार सारा समाज अहिंसा पर वैसी ही एक विशेष- शक्ति के कारण कायम रहता है । उसे अहिंसा इतना अधिक स्वीकार्य है कि वह अहिंसा से कदापि दूर नहीं रह सकता ।

गांधीजी बताते थे कि निर्बल की अहिंसा वास्तविक अहिंसा नहीं होती । सबल की अहिंसा ही वास्तविक है । निर्बल की अहिंसा केवल प्रसंगोचित युक्ति मात्र होती है । असल में वह हिंसक होता है, मगर कभी कभी वह अहिंसक का झूठा आचरण करता है । यह अहिंसा उतनी हो श्लाघनीय नहीं है जितना कि अहिंसक की अहिंसा । हिंसक की अहिंसा क्षण- क्षण में बदल जाती है ।

पुराने मुनियों ने बताया है कि जो अहिंसा का पालन करता है, उसका मन फूल से कोमल और वज्र से कठोर होना चाहिए । यही कारण होगा कि गांधीजी का मन भी कुसुम सा कोमल और वज्र सा कठोर था । अहिंसा के पालन के लिए कोमलता और कठोरता दोनों को अनिवार्य माना गया है । कोमल हृदय में ही सर्व चराचरों के प्रति सहानुभूति और ममता पैदा हो सकती है । अहिंसा का आचरण करने वाले को कुछ नियमों पर दृढ़- चित्तता से रहना पड़ता है । ऐसे अवसर पर वह कठोर हृदयी बनता है । मगर यह दृढ़- चित्तता जो है, वह भलाई के लिए ही होती है।

इस प्रकार गांधीजी ने अहिंसा के अर्थ को विभिन्न रूपों में प्रस्तुत करने का अर्थात् उसकी व्याख्या करने का प्रयास किया है ।

सत्य :-

आध्यात्मवाद के आस्तिकतत्व का दूसरा तत्व है ` सत्य ` । `सत्य ` शब्द बहुत पुराना है और उसका प्रयोग प्राचीन युग से ही चला आ रहा है ।

` ऋग्वेद ` में सत्य को सर्वोच्च स्थान पर प्रतिष्ठा की है । उसमें यों बताया गया है सृष्टि के पहले ही सत्य की उत्पत्ति हुई है और उसी से आकाश पृथ्वी वायु आदि तत्व स्थायी रहते हैं ।[१] शतपथ ब्राह्मण में सत्य को सबसे उच्चतम गुण बताया गया है । इसके द्वारा मानव तेजस्वी और अभ्युदय- सिद्ध बनता है । जो सत्य का पालन करता है, उसकी वृद्धि हमेशा होती है । जो असत्य कथन करता है उसकी अवनति होती है । अत: हमेशा सत्य ही बोलने का समर्थन यहां किया गया है ।[२] मनु ने अपनी ` मनुस्मृति ` में सत्य का उल्लेख किया है ।[३] योग- दर्शन में भी सत्य का प्रति- पादन किया गया है ।[४]

`महाभारत ` में अनेक स्थलों पर सत्य का विवेचन हुआ है । एक जगह पर भीष्म ने युधिष्ठिर से राजधर्म के बारे में कहते वक्त सत्य की महिमा बताई है ।[५]

- -

१:(अ) ऋतं च सत्यं चा भीद्धात्तपसो-ध्यजायत ।

ऋग्वेद: - दशमं मण्डलम् - १९० सूक्तम् - पृ० ११ १८१८

(आ) सत्येनोत्तमिता भूमि: सूर्येणोत्तमिता द्यौ ।

ऋग्वेद: - दशमं मण्डलं - ८५ सूक्तम् - पृ० १७१८

२: प्राचीन भारतीय साहित्य की सांस्कृतिक भूमिका - पृ० ५८४

३: अहिंसा सत्यमस्तेयं शौचमिन्द्रिय निग्रह: ।

-- -- -- --

(मनुस्मृति: - ६३ वां श्लोक - अध्याय १०)

४: तत्राहिंसा सत्यास्तेय ब्रह्मचर्यापरिग्रहा: यमा: ।

बुद्ध और गांधी - नवीन निबन्ध - पृ०

५: (१) सत्ये हि राजा निरत: प्रेत्य चेह च नन्दति ।

(-- -- -- --) १७ श्लोक:

(२) तथा राज्ञां परं सत्यान्नान्यद् विश्वासकारणम् !

(-- -- -- --) १८ श्लोक

महाभारतम् - शान्तिपर्व: - ५६ अध्याय: - पृ० ३७०

ब्राह्मण के नीतिशास्त्र पर भीष्म ने जो बताया है, उसमें सत्य, असत्य, अहिंसा आदि का उल्लेख किया है।[1] सत्य असत्य का विश्लेषण करते हुए भीष्म ने सत्य की महिमा यों बतायी है -

सत्यस्य वचनं साधु न सत्याद् विद्यते परम् ।
यत् लोकेषु दुर्ज्ञानं तत् प्रवक्ष्यामि भारत ॥ (४)
भवेत् सत्यं न वक्तव्यं वक्तव्यमनृतं भवेत् ।
यत्रानृतं भवेत् सत्यं सत्यं चाप्यनृतं भवेत् ॥ (५)
(भारतम् - शान्ति पर्व - १०६ वा अध्याय - पृ० ४३६)

युधिष्ठिर से सत्य का लक्षण, स्वरूप, महिमा आदि पर बताते हुए भीष्म ने उनका वर्णन किया है।[2] एक जगह पर सत्य को भीष्म ने परम- धर्म बताया है।[3] सत्य- असत्य, लोक- परलोक, सुख- दुख पर विवेचन करते हुए भृगु ने बताया है कि सत्य पर ही जगत् स्थिर रहता है और उसी के द्वारा ही स्वर्ग की प्राप्ति हो सकती है।[4] राजा से ब्राह्मण ने सत्य की महिमा बताते हुए उसका समर्थन किया है।[5] इसी प्रकार महाभारत में सत्य का विवेचन पर्याप्त मिलता है।

- -

१: भारतम् - शान्तिपर्व - १५१ श्लोक - पृ० ३८४

२: सत्यं सत्सु सदा धर्मः सत्यं धर्मः सनातनः ।
-- -- -- --
सत्यं यज्ञः परः प्रोक्तः सर्वं सत्ये प्रतिष्ठितम् ॥
(भारतम् - शान्तिपर्व: - १७७ १६२ अध्याय - पृ० ४६४

३: नास्ति सत्यात् परो धर्मो नानृतात् पातकं परम् ।
स्थितिर्हि सत्यं धर्मस्य तस्मात् सत्यं न लोपयेत् ॥
(भारतम् - शान्तिपर्व: - १६२ अध्याय: - पृ० ४६४)

४: सत्यं ब्रह्म तपः सत्यं विसृजते प्रजाः ।
सत्येन धार्यते लोकः स्वर्गं सत्येन गच्छति ॥
- भारतम् - शान्तिपर्व: - १९० अध्याय: - पृ० ५२३

५: सत्यमेकाक्षरं ब्रह्म सत्यमेकाक्षरं तपः ।
-- -- -- --
सत्यं यज्ञस्तपो वेदाः स्तोभा मन्त्राः सरस्वती ॥ - वही० पृ० ५३३

'श्रीमद्भागवत' के अन्तर्गत जहां अहिंसा का प्रतिपादन हुआ है, वहां सत्य का समर्थन भी किया गया है। इसमें भगवान श्रीकृष्ण ने अहिंसा अस्तेय आदि के साथ अस्तेय सत्य की महिमा का गुणगान किया है।[1] मुण्डकोपनिषद् में सत्य को परमेश्वर बताया गया है। जिन मुनियों की कोई कामना नहीं रहती, वे उनके पास सरलता से पहुंचते हैं। सत्य की जीत ही होती है; झूठ की नहीं।[2] बृहदारण्यक-उपनिषद् में सत्य को धर्म का स्वरूप घोषित किया गया है। सत्य के बल से दुर्बल भी बलवान को जीत सकता है। सत्य ही दुर्बल का श्रेष्ठ अधिकार है।[3] मुण्डकोपनिषद् में यों बताया गया है कि सत्य का ठीक तथा कठिन पालन करने से ही परमात्मा प्राप्त होते हैं।

' सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष आत्मा
सम्यग्ज्ञानेन ब्रह्मचर्येण नित्यं।
अन्त: शरीरे ज्योतिर्मयो हि शुभ्रो
यं पश्यन्ति यतय: क्षीण दोषा: ।। (पृ० १२२ - १२३)

'पद्मपुराण' में महादेव ने सत्य पर बहुत कहा है। सत्य को ही सबकुछ बताते हुए उसकी भूरि भूरि प्रशंसा की गयी है।[4] भगवान शिवजी की महिमा

- -

१: देखिए भागवतं - एकादश स्कन्ध: - श्लोका: २१,३३ पृ० ७००,७०४

२: सत्यमेव जयते नानृतं
सत्येन पन्था विततो देवयान: ।।
येनाक्रमन्त्यृषयो ह्याप्तकामा ।
यत्र तत् सत्यस्य परमं निधानम् ।।
(मुण्डकोपनिषद् - पृ० १२३)

३: बृहदारण्यकोपनिषद् - पृ० ३३७ १- ४ - १४ प्राचीन भारतीय साहित्य की सांस्कृतिक भूमिका- पृ० ४८७

४: सो स्वर्गान्महीयन्ते ये चान्ये सत्यवादिन: ।
-- -- -- --
सत्यं देवेषु जागर्ति सत्यं च परमं पदम् ।।
-- -- -- --
अनाथे विपुले सिद्धे सत्यतीर्थे शुचिहृदे।।
- पद्म पुराणम् - उत्तरकाण्डम: - १७ वां अध्याय -पृ०९७-९

बताते हुए ब्रह्म ने कहा है कि सत्य के नामोच्चारण मात्र से सारा पाप दूर हो जाता है[1]
`याज्ञवल्क्य स्मृति` में अहिंसा के साथ सत्य का उल्लेख भी किया गया है।[2] जैन-दर्शन में भी पांच व्रतों के भीतर सत्य का प्रतिपादन हुआ है। बुद्ध ने अपने उपदेशों में अन्य तत्वों के साथ सत्य का विवेचन भी किया है। ईसाई धर्म में सत्य को सर्वोच्च स्थान पर प्रतिष्ठित किया गया है। इसके अतिरिक्त जिहोवा की `दस आज्ञाओं` और हजरत मसीह के ` सेरमन आन दि माउंट ` में भी सत्य को प्रतिपादित किया गया है।

जो ठीक ठीक बताया जाता है, वह सत्य बताया जाता है। जो है वही सत्य है। अत: सत्य का साधारण अर्थ होता है सच कहना। लेकिन सांस्कृतिक एवं धार्मिक दृष्टि से देखने पर उसके कई रूप देख सकते हैं। उसे परमेश्वर, धर्म, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, तपस्या आदि के रूप में चित्रित किया गया है। दर्शनों में सब कुछ सत्य बताये जाते हैं। सत्य ही इस संसार में शाश्वत है और उसी की ही विजय हमेशा होती है। उसी के द्वारा ही हम परमात्मा से साक्षात्कार कर सकते हैं। इसलिए सत्य को अत्यंत व्यापक दृष्टि से ही देखा जाता है।

गांधीजी और सत्य :

गांधीजी और सत्य के बीच का संबंध सचमुच अवर्णनीय है। उन्होंने सत्य का, कितनी विशाल एवं पैनी दृष्टि से विचार किया है, वह कहना असंभव है। उन्होंने सत्य को ` परमेश्वर ` बताया है और इस सत्य रूपी परमेश्वर का साक्षात्कार करने के लिए ही वे अपने जीवन में सब कुछ करते थे।

बचपन से ही गांधीजी में सत्य का बीज बोया गया था। जब उन्हें ` सत्य हरिश्चन्द्र ` का नाटक देखने को मिला, उसी क्षण से वे सत्य के सेवक बन गये। आगे वे इसी सत्य से तादात्म्य पाने के लिए कर्तव्य - क्षेत्र में कूद पड़े। इस कारण से ही उन्होंने अपनी ` आत्म कथा ` को सत्य के प्रयोग की संज्ञा दी है।

१: सत्यं सत्यं पुन: सत्यं भाषितं मम सुव्रत।
नामोच्चारण मात्रेण महापापात्प्रमुच्यते ।। - पद्म पुराण- पृ० २४४

२: याज्ञवल्क्य स्मृति - १२२ श्लोक - पृ० २५

सत्य की निर्विघ्न निष्ठा रखने में वे अपने जीवन की कृतार्थता मानते थे। उनकी सत्य- निष्ठा इतनी सूक्ष्म थी कि वे जो बोलते थे उसे नाप- नाप कर, तोल तोल कर ही बताते थे। अत: वे किसी के सामने पराजित न होते हुए थे। वे कदापि झूठ बोलने का साहस नहीं करते थे। वे अंत तक सत्य का पालन कर सके। यह भी सत्य होगा कि गांधीजी के जैसे सत्य का पालन दूसरा कोई न कर सका होगा। वे सत्य के ही वक्ता थे, पुजारी थे, सेवक थे और पालन- कर्ता भी थे।

गांधीजी की सत्य संबंधी मान्यताएं :

जिस प्रकार गांधीजी ने अहिंसा, अपरिग्रह आदि पर अपनी बहुतसी व्याख्याएं की हैं, उसी प्रकार सत्य पर भी कई व्याख्याएं दी हैं। इन व्याख्याओं का विस्तार करने से गांधीजी के सत्य संबंधी विचारों का परिचय हमें मिलता है।

अपने बचपन में गांधीजी को एक बार ` सत्य हरिश्चन्द्र ` नामक नाटक देखने का अवसर मिला। जब उन्होंने पहली बार उसे देखा तो उस नाटक का प्रभाव उन पर कितनी गहराई से पड़ा, यह अवर्णनीय है। वे इस नाटक के बारे में बार - बार चिंतन मनन करते थे और सोच विचार भी करते थे। बाद में उन्होंने इस नाटक को दो - तीन बार फिर देख भी लिया। हरिश्चन्द्र को अपने जीवन में अनेक कठिनाइयां भोगनी पड़ीं और कष्ट भी सहने पड़े। फिर भी वे हमेशा सत्य ही बोलते थे। सत्य के मार्ग से अणु- मात्र भी विचलित न होते थे। गांधीजी ने इस नाटक का दर्शन करने के बाद अपने जीवन को भी बदल दिया। उन्होंने हरिश्चन्द्र के समान सत्य बोलने का शपथ ले लिया। उनके समान सारे कष्टों को सहते हुए जीवन बिताने का भी निश्चय किया। उसके बाद हिंदु धार्मिक ग्रंथों से सत्य के बारे में सारी बातें ग्रहण कीं और तत्संबंधी ज्ञान बढ़ाया। लेकिन यह कहने से अनुचित न होगा कि गांधीजी ने बचपन में ही सत्य को स्वीकार किया था। उदाहरण के लिए अपने विद्यार्थी जीवन में एक परीक्षक के निरीक्षण की जो घटना घटी, वही काफी है। यह वही ` केटिल ` वाली घटना है जिसमें गांधीजी ने ` केटिल ` शब्द गलत लिखा था और परीक्षक के इस आदेश को पास बैठे हुए लड़के के स्लेट में देखकर उसे ठीक किया जाय मना किया था। यह घटना बहुत छोटी होने पर भी अब गांधी साहित्य में

सुप्रसिद्ध एवं महत्त्वपूर्ण बन गयी है जो उनके मन में सत्य का बीज बोने का कारण ठहरी। कहने का तात्पर्य यह है कि जो भी व्यक्ति चाहे वह कवि या साहित्यकार या मेहमान या लेखक हो, जब गांधीजी के सत्य पर लिखता है तो गांधीजी की यह 'बैटिल' वाली घटना को वह कदापि भूल नहीं सकता। इस नाटक की बात भी यही है। यह नाटक उनके लिए अपने जीवन का मार्ग- दर्शक था।

गांधीजी का जीवन- लक्ष्य सत्य अर्थात् परमात्मा से उनका साक्षात्कार अथवा इस सांसारिक जटिलता से मुक्ति रहा है। सत्य अथवा उस परम सत्ता के पास पहुंचने के लिए अपने लौकिक जीवन में बड़ी बड़ी मुश्किलों, कठिनाइयों और दु:खों का सामना करना पड़ता है। गांधीजी पर हरिश्चन्द्र के व्यक्तित्व का असर अच्छी तरह पड़ गया था। अत: उन्होंने भी आजीवन बहुत कष्ट सहे और दु:ख का अनुभव किया। तब उन्हें ऐसा लगा कि विपत्तियों और विषमताओं को भोगते हुए सत्यका पालन करना ही वस्तुत: सत्य कहा जा सकता है।[१]

सत्यव्रती हमेशा कम ही बोलता है। इतना ही नहीं, खूब सोच-विचार किये बिना वह कुछ नहीं कहता। वह अपने हरएक शब्द को तोलता है। वह सत्यव्रती हमेशा सत्य ही बोलता है। उसके मुंह से एक ही झूठा शब्द कदापि नहीं निकलता। वह आवश्यकता मात्र से बातचीत करता है। अनावश्यक बातों को सुनना, उनका उत्तर देना या उनका समर्थन करना ऐसी बातों में वह कभी नहीं पड़ता। उसे जो कहना है उसी के बारे में आवश्यक बातें ही बताता है। वह जो कहने का प्रयास करता है, तो उसके बारे में अच्छी तरह सोचता है और फिर कहता है। वह इसलिए सोचता और विचारता है कि अपनी कथनी में कोई असत्य न हो। इसलिए उसका प्रत्येक शब्द मूल्यवान होता है। वह इतनी श्रद्धा के साथ अपने हर शब्द का उच्चारण करता है कि उस प्रत्येक शब्द में असत्य या झूठ की गुंजाइश न हो। गांधीजी भी बड़े सत्यव्रती थे और सत्य का पालन भी थे। सत्य उनके लिए भगवान था

- -

१: हरिश्चन्द्र पर जैसी विपत्तियां पड़ीं वैसी विपत्तियों को भोगना और सत्य का पालन करना ही वास्तविक सत्य है। -

- आत्मकथा - पृ० ४

और अत: सत्य या भगवान पर कोई असत्य कहना उनके लिए वेदनाजनक था। गांधीजी बहुत कम ही बोलते थे। जिस कार्य का उनसे संबंध रहता है, ऐसे कार्य की ओर ही वे अपनी श्रद्धा रखते थे और कुछ बोलते थे। गांधीजी अपने कहने पर खूब सोचते थे, मनन करते थे और बाद में ही बोलते थे। अत: उन्होंने दूसरों को भी यही उपदेश दिया है।

सत्य वज्र के समान कठिन और कमल के समान कोमल है। कहने का तात्पर्य यह है कि सत्य की प्राप्ति होती है तो वह अच्छा है लेकिन उसे प्राप्त करना ही कठिन है। अगर सत्य मिल जाय तो उसकी प्रतिक्रिया बहुत कोमल होती अर्थात् उसका आशीर्वाद हमेशा शीघ्र ही प्राप्त होता। सत्य को पाने के मार्ग में जो क्लेश सहना पड़ता है वह अत्यंत कठिन है। उसे मार्ग से हटाने पर पर भी हटता। प्रत्येक व्यक्ति उसे भोगने के लिए बाध्य होता है। वज्र में जितनी कठिनता रहती है, वैसी कठिनता इस क्लेश में भी है। फिर भी सत्य कमल सा कोमल है। सत्य का स्वभाव अत्यन्त कोमल है। वह वही जान सकता है जिसने सत्य को पाया है। गांधीजी ने सत्य को भगवान के रूप में समझकर उसकी आराधना- उपासना की थी। उनका जीवन- लक्ष्य भी इसी सत्य से साक्षात्कार होना या उसमें लीन होना था। इस साक्षात्कार के लिए उन्होंने वज्र से भी कठोर यातनाओं को भोगा है। इसके बाद उन्होंने सत्य को पा लिया।

सत्य का दूसरा अर्थ है सच कहना। यह तो साधारणत: देखा जाता है कि सच कहना बहुत कठिन लगता है। लेकिन झूठ की बात ऐसी नहीं है। वह बहुत ही आसानी से कहा जाता है। एक व्यक्ति लाखों झूठ कहकर भी एक सत्य कहने के लिए झिझकता है। सत्य बहुत कोमल शब्द है। सत्यव्रती के लिए सत्य अत्यंत कोमल है और असत्यव्रती के लिए कठिन। क्योंकि वह सत्य कहना नहीं जानता। गांधीजी सत्य ही कहते थे अत: यह उनके लिए आसान था, लेकिन सब की स्थिति यह नहीं है। वे सत्य के पुजारी थे, सारे लोग ऐसे पुजारी नहीं हो सकते।

सत्य एक विशाल वृक्ष होता है। सत्य की जितनी सेवा की जाती है, उतना ही फल प्राप्त होता है।[१] जिस प्रकार एक वृक्ष की बड़ी श्रद्धा के साथ

- -

१: सत्य एक विशाल वृक्ष है। ज्यों ज्यों उसकी सेवा की जाती है त्यों त्यों उसमें से अनेक फल पैदा होते दिखाई पड़ते हैं। उसका अंत ही नहीं होता; हम जैसे-जैसे उसकी गहराई में उतरते हैं, वैसे -वैसे उसमें से अधिक रत्न मिलते जाते हैं। -
आत्मकथा- पृ० १८६

सेवा - शुश्रूषा की जाती है, तो वह आवश्यकता से भी अधिक फल प्रदान करता है। उसी प्रकार सत्य रूपी भगवान की उपासना जितनी अधिक होती है, तब चिरमुक्ति प्राप्त होती है।

वह सत्य अगाध है, अनश्वर है और अमर भी। उसकी सेवा जितनी गहराई से की जाती है उतने ही फल के रत्न हमें मिलते हैं। कहने का मतलब यह है कि सेवा की घनिष्ठता के अनुसार फल भी मिल सकता है। गांधीजी बड़े सेवक थे। सत्य अर्थात् उस परमेश्वर को पाने के लिए उन्होंने जन- सेवा को सच्चा मार्ग बताया है अत: सेवा उनका प्रिय विषय थी। उनकी सेवा वैयक्तिक न होकर सार्वजनिक थी। वे जीवनान्त तक निरंतर परिश्रमी रहे थे।

सत्य का पालन होता है लेकिन हमेशा हमारे अनुमान के समान फल नहीं मिलता। कभी उस पालन का परिणाम बुरा होता है। लेकिन उसे बुरा न क समझना चाहिए। प्रत्युत उसे अपने अनुमान की अपेक्षा बढ़कर गुणदायक मानना चाहिए। जिस प्रकार हम कोई विद्या सीखते हैं या कोई अक्षर पहले पहल लिखते हैं तो कई बार दोनों में गलतियां होती हैं। इसके बाद कठिन परिश्रम के बाद ही ठीक हो जाती है, वैसा ही सत्य के पालन में भी पहले पहल कठिनाइयां होती हैं और कुपरिणाम निकलता है। इसीलिए अपना प्रयत्न समाप्त न करना चाहिए। सच्चा परिणाम निकलने तक हमें प्रयत्न करना चाहिए। गांधीजीअपने प्रयत्नों के बीच में कितना प्रकार निराश हो उठे थे। फिर भी उन्होंने निराशा की परवाह न करते हुए फल- प्राप्ति तक प्रयत्न किया था। उन्हें इस अनंत परिश्रम का फल भी प्राप्त हुआ।

सत्य के पालन का अर्थ शरीर और आत्मा की रक्षा बताया है। कथनी और करनी में समता का पालन आवश्यक है। एक ही व्यक्ति की कथनी और करनी में बड़ा अंतर अक्सर दिखाई पड़ता है। वह कहता है एक प्रकार से, बल्कि करता है दूसरे प्रकार से। ऐसे करने से कोई लाभ नहीं हो सकता। लेकिन गांधीजी के अनुसार जो जैसा कहता है उसी प्रकार उसे करना भी चाहिए। उनके मत में शब्दार्थ और भावार्थ का मतलब यही है।

सत्य से भिन्न कोई ईश्वर नहीं है। उन्होंने हर कहीं बताया है क कि सत्य ही ईश्वर है। सत्य को उन्होंने ईश्वर बताया है। अत: उस पर उनका

बड़ा विश्वास था । सत्य के बिना वे ईश्वर की कल्पना भी नहीं कर सकते थे । सत्य माने ईश्वर । अत: उन्होंने ' ईश्वर ' शब्द की जगह ' सत्य ' शब्द का ही प्रयोग किया है । जैसा ईश्वर अमर, अजर और अनन्त है वैसा सत्य भी अबाध और अनश्वर है । सत्य का पालन करने से मतलब है ईश्वर का ध्यान करना और उनकी आराधना करना ।

सत्य को पाने का मार्ग है अहिंसा । सत्य अथवा भगवान हमेशा कल्याण ही चाहते हैं । उनका कर्तव्य दुष्टों का दमन और शिष्टों का पालन है । भगवान यही चाहते हैं कि जनता सर्वमंगल भावना के द्वारा उनके दर्शन करने का प्रयत्न करे । अहिंसावादी व्यक्ति में ही यह भावना पैदा हो सकती है ।

गांधीजी भगवान को सत्य- नारायण बताते थे । उनका दर्शन समस्त जीव- जालों के प्रेम से ही संभव हो सकता है । यह संसार उनके शासन के अधीन में ही चलता है । इस विश्व का प्रत्येक साधन उन्हीं का है । अत: उनको पसंद करने या सन्तुष्ट करने के लिए इन समस्त जीव- जालों से प्रेम करना चाहिए । इसे सार्वभौमिक प्रेम कहा जा सकता है । कहने का मतलब यही है कि भगवान से प्रेम- भाव रखने के लिए धरती की सारी वस्तुओं के प्रति स्नेह के साथ व्यवहार करना चाहिए ।

सत्य के प्रति गांधीजी की आस्था इतनी गहरी थी कि उन्होंने 'सत्य ' को परमेश्वर बताया है । पहले वे ' परमेश्वर सत्य हैं ' यों कहा करते थे लेकिन बाद में सत्य ही परमेश्वर कहने लगे । सत्य पर उनका जो विश्वास था वह अवर्णनीय है । अत: उन्होंने बताया है जैसा भगवान को अजर, अमर, अनन्त और अपार आदि बताते हैं, वैसा ही सत्य भी है । सत्य का नाश नहीं होता । वह नित्य निरंजन और शाश्वत है । इसलिए उन्होंने सत्य को परमेश्वर मानते हुए, उसकी पूजा करने की बात कई बार दुहराई है ।

जिस प्रकार भगवान के अनेक रूप होते हैं और प्रत्येक तथा अनुकूल परिस्थिति में युग - युग में इन रूपों में प्रत्यक्ष होते हैं वैसा ही सत्य के भी अनेक रूप होते हैं । सत्य ही हरि, राम, नारायण, श्रीकृष्ण सब कुछ हैं । भक्त अपनी अपनी भक्ति की आसक्ति के अनुसार अपने उपास्य को विविध नामों से पुकारता है। गांधीजीके उपास्य देवता हैं - श्रीरामचन्द्र जी । अत: उन्होंने सत्य को राम बताया है और

इसी रूप में उनकी उपासना ही है। सत्य माने उनके मतानुसार भगवान रामचन्द्र जी ही हैं। फिर भी उन्होंने सत्य के जिन अन्य रूपों की उपासना दूसरों से होती है, उसका विरोध नहीं किया है। हम जितने रूपों में भगवान की उपासना करते हैं वे सब एक ही भगवान के होते हैं। जिस प्रकार भगवान के बारे में कहते वक्त कहा जाता है कि नाम अनेक हैं, पर नामी एक ही है उसी प्रकार यहां भी यह कहा जा सकता है कि रूप अनेक होने पर भी रूपी एक ही है। सत्य ही यह एक रूपी है।

सत्य का पालन जो करता है उसमें अहंकार नहीं होना चाहिए। उसे अत्यंत विनम्र एवं क्षमाशील रहना चाहिए। भक्ति की पवित्र भावना ही उसे इस प्रकार विनम्र बना देती है। विनम्रता उसे अत्यंत सावधानी के साथ प्रयत्न करने का गुण सिखाती है। उसे दयालु भी होना चाहिए। दूसरों को सताने वाली अहंकारी कहलाता है तो दूसरों को सन्तुष्ट करने के लिए जो कुछ करता है वह दयालु कहलाता है। अहंकार में दूसरों के प्रति विद्वेष, घृणा, अप्रियता आदि भावनाएं होती हैं, दूसरों की हत्या करने की करने की वासना होती है, दोषारोपण, अपहरण, निन्दा आदि भी हो सकते हैं। लेकिन सत्य का पालन तो विश्व - प्रेम से ही हो सकता है। तब उसे अहंकार को त्यागना पड़ता है। सत्य के पालन में ऐसा संभव नहीं है कि वह अहंकारी हो। जो सत्य का पालन करने लगता है, वह स्वयं अपने अहंकार को भूलने लगता है।

सत्य को पाने का अर्थ है मोक्ष प्राप्त करना और अपने लक्ष्य को पूर्ण करना। सत्य की प्राप्ति तभी होती है जब भक्त या जीव इस संसार से मुक्ति पाता है। जब किसी की मृत्यु होती है, तब साधारणतः कहा जाता है कि वह व्यक्ति भगवान में ही अन्तर्लीन हो गया। अतः महान व्यक्ति मृत्यु को सहर्ष अपनाता है। गान्धीजी भी महान व्यक्ति थे और उनमें एक प्रकार की आध्यात्मिक शक्ति अन्तर्निहित थी। जब उनकी हत्या हुई, तब वे उ इस संसार को छोड़कर दूसरे संसार या परलोक गये और भगवान से मिल- जुल गये। यही ईश्वर- साक्षात्कार मा ना जाता है। इस दृष्टि से ऐसे महान व्यक्तियों को मृत्युंजयी कहा जाता है। गांधीजी को भी अनेक विद्वानों ने मृत्युंजयी बताया है। कहने का तात्पर्य है कि जब ईश्वर से साक्षात्कार होता है तभी सत्य का पालन भी पूर्ण होता है।[१]

१: सत्य को पूरी तरह प्राप्त कर लेना, अपने को और अपने लक्ष्य को प्राप्त कर लेनाहै, अर्थात् संपूर्ण हो जाता है। - गांधी विचार रत्न - पृ० ५६

अगर वह संभव नहीं तो सत्य का पालन भी अपूर्ण रहता है। लेकिन ऐसा नहीं हो सकता। सत्य का पालक सचमुच ईश्वर-साक्षात्कार प्राप्त करता ही है।

गांधीजी ने बताया है कि सत्य की खोज में जिन साधनों का प्रयोग होता है, वे बहुत कठिन हैं, साथ ही सरल भी हैं। उन्होंने सत्य को पाने के लिए कई हथियारों का उपयोग किया था, जैसे अहिंसा, ब्रह्मचर्य, अस्तेय, अपरिग्रह, सत्याग्रह अनशन, उपवास आदि आदि। साधारण व्यक्ति तो इसका पालन उतनी आसानी से नहीं कर सकता जितनी एक अनुभव-सिद्ध योगी कर सकता है। इसके पालन में बहुत कठिनाइयों, दु:खों, क्लेशों और कष्टों को सहना पड़ता है जिसमें इसके लिए शक्ति या बल रहता है वही इसका पालन कर सकता है। बल तो कोई शारीरिक शक्ति या बल न होकर आत्मिक शक्ति या बल ही हो सकता है। ऐसी शक्ति पाने के लिए ईश्वर की प्रार्थना हमें करनी चाहिए और उनकी कृपा हम पर होनी चाहिए। यदि इन दोनों की प्राप्ति होती तो हमें इनके पालन में कोई तकलीफ उठाना नहीं पड़ता। अगर कोई इनका पालन करने में समर्थ निकलता तो उसे आगे बड़ी सरलता से इनका पालन करने का अवसर मिल जाता है। ऐसे संदर्भ में ये साधन अत्यंत सरल होते हैं। गांधीजी को तो इन साधनों का पालन क्षिप्र साध्य था। लेकिन दूसरों के लिए ये अत्यधिक कठिन ही दीखते हैं।

सत्य के पालक को हमेशा अन्त: करण की प्रेरणा प्राप्त होती है। वह उसी के अनुसार प्रयत्न करता है। उसे अंत:करण से जिस समय जो बात जैसी सूझती है, वह सत्य ही हो सकती है। अन्त:करण अगर शुद्ध है तो वह हमेशा सत्यपूर्ण बातों एवं विचारों को ही प्रकट करता है। उसमें बुरी या झूठी बात नहीं हो सकती। गांधीजी अपने अन्त:करण के आदेश के अनुसार ही कुछ करते थे। उन्होंने इसे कहीं कहीं 'अंतर की आवाज' कहकर विशेषित किया है। उन्हें कभी कभी किसी समस्या की सुझाव या किसी प्रश्न का उत्तर नहीं मिलता। वे बहुत सोचते - विचारते थे। लेकिन जब वे रात में सोने के लिए लेटते, या कभी सोते समय उन्हें सुझाव और उत्तर मिलता है। गांधीजी का यह मत था कि जिस प्रकार अपने मन के अन्त:करण से जो सुझाव सूझती है या उत्तर मिलता है वह सत्य वाणी ही होगी।[१]

- -

१: निर्मल अन्त:करण को जिस समय जो प्रतीत हो, वह सत्य है। उस पर दृढ़ रहने से शुद्ध सत्य की प्राप्ति हो जाती है। - गान्धी-विचार-रत्न - पृ० ५६

सत्य निष्ठ व्यक्ति कदापि पतित नहीं होता । उसे चारों तरफ से उन्नति ही उन्नति मिलती है । जहां सत्य रहता है, वहां सफलता प्राप्त होती है । उसे किसी के भी आगे सिर झुकाना नहीं पड़ता । उसे संकट की वेला में सन्मार्ग का बोध होता है । वह स्वयं संकट से दूर किया जाता है । उसे सब कहीं सफलता के हाथ स्वागत करने के लिए खड़े रहते हैं ।

सत्य हमारे लिए अदृश्य है । परन्तु वह सदा प्रत्यक्ष रहता है । हम उसे इसलिए नहीं देख सकते कि हमारे सामने अज्ञान का परदा गिरा रहता है । हम सर्वदा मायाजालों से आवृत रहते हैं और जकड़े रहते हैं । अतः उसे अप्रत्यक्ष दीख पड़ता है । यदि इस जाल और परदे को हटाकर देखते तो सत्य का दर्शन संभव है । सत्य का दर्शन करना ही हमारा जीवन- लक्ष्य है । अतः गांधीजी ने इसी का उपदेश दिया है । इन मायाजालों से मुक्ति पाने के लिए ही गान्धीजी ने तप और व्रत को अपनी दिनचर्या का प्रधान अंग मान लिया है । सत्य को असत्य से पाना असंभव है । उसे पाने के लिए सत्य का आचरण ही करना चाहिए । जिस प्रकार प्रेम से प्रेम मिलता है और सहायता से सहायता मिलती है वैसा ही सत्य से सत्य मिलता है । कहने का मतलब है कि सत्य के पालन से ही परमात्मा (सत्य) को पा सकते हैं ।

सत्य के विश्वास से जो काम किया जाता है, उसका फल अवश्य मिलता है । सत्यनिष्ठा से जो काम किया जाता है, वह सत्यमय ही होता है । अतः उसका फल तुरंत मिलता है । जो कोई झूठा काम करता है उसे फल तो मिलता है, लेकिन वह अच्छा फल नहीं होगा । झूठे काम का फल सदा झूठा ही होता है। सच्चे काम का फल सदा सच्चा ही होता है । सच्चे काम या सत्कर्म से ही जगत से मुक्ति प्राप्त हो सकती है । इसलिए सत्कर्म की महत्ता और श्रेष्ठता पर अधिक प्रमुखता दी जाती है ।

सत्य ईश्वर का एक गुण ही नहीं वही ईश्वर है । सत्य के बिना कुछ भी नहीं। सत्य नहीं तो दूसरा कुछ भी नहीं । सबका आधार सत्य ही है । उससे ही अन्य सारी वस्तुओं की उत्पत्ति हुई है । अतः यदि सत्य मिट जाय तो शेष सबका नाश हो जाएगा । लेकिन शेष सब के मिट जाने पर भी सत्य का नाश नहीं होगा, वह अनन्त , अनादि, अखण्ड है ।

जीवन के अन्त तक सत्य का पालन होना चाहिए। तभी सत्य का पालन पूरा हो सकता है। गान्धीजी ने अपनी मृत्यु के समय भी उस परम सत्य अथवा रामचन्द्रजी का नाम लिया था। उन्होंने अपने जीवन के अन्त तक सत्य का सम्यक आचरण किया था। गान्धीजी ने सबको जन्म से आजीवन सत्य का पालन करने का उपदेश दिया था।

सत्य हमें चिरकाल तक आनन्द देता है। संस्कृत में बताया गया है सत्, चित् और आनन्द तीनों के मेल से सच्चिदानन्द शब्द निकलता है जिसका अर्थ सत्य बताया जाता है। सत्य हमारा जीवन और ज्ञान है। सत्य के पालन से हमें आनन्द मिलता है। ईश्वर सच्चिदानन्द मूर्ति है। इसीलिए ही गान्धीजी ने उन्हें सत्य के नाम से पुकारा है।

सत्य को किताबों में ढूंढने से नहीं मिलता है। वह प्रत्येक मनुष्य के मन में रहता है। प्रत्येक व्यक्ति को सत्य के अपने- अपने मन के भीतर ही ढूंढना चाहिए। लेकिन एक व्यक्ति को दूसरे व्यक्ति को सत्य के पालन के लिए मोचित करने की आवश्यकता नहीं। जो चाहता है, वह करता है।

गान्धीजी ने बताया है कि सबसे पहले सत्य की खोज कर लेनी चाहिए और बाद में शिव और सुन्दर को उससे मिलाना चाहिए।[१] सत्य की सृष्टि ही सबसे पहले हुई है। अतः वही सबका मूल आधार है। सत्य से ही शिव और सुन्दर का आविर्भाव हुआ है। इसलिए सत्य की खोज से ही शिव और सुन्दर प्राप्त होते हैं। पवित्र हृदय में सत्य सचमुच रहता है। सत्य के निवास के लिए शुद्धि और पवित्रता आवश्यक हैं। सत्य मात्र ही यथार्थ है।

<u>अस्तेय</u> :

आत्मभाव के आत्मतत्त्व का तीसरा तत्त्व है अस्तेय। अस्तेय[१] वैदिक युग की देन है और यह शब्द इतना पुराना है कि अपरिग्रह और अहिंसा के

- -

1. Truth, he said is the first thing to be sought for, and beauty and goodness will then be added into you.
Gandhiji's views of life. P.194

१: अंग्रेजी में इसके लिए `नान स्टीलिंग` (non - stealing) का प्रयोग हुआ है।

साथ इसका प्रयोग भी होने लगा। जहां अपरिग्रह और अहिंसा का प्रतिपादन होता है, वहां अस्तेय अवश्य रहता ही है। अर्थात् अपरिग्रह, अहिंसा, अस्तेय तीनों का प्रयोग एक साथ होता है।

`अस्तेय` शब्द `अ` और `स्तेय` से बना है जिसका अर्थ है परद्रव्य की इच्छा न करना और उसका अपहरण न करना। परजनों की किसी भी चीज की चोरी न करना अस्तेय है। यह स्तेय शब्द का विलोम शब्द जिसका अर्थ होता है चोरी या अपहरण करना होता है। अस्तेय शब्द कोई नई चीज नहीं है। बोलचाल की भाषा में हम जिसे चोरी न करना कहते हैं, वही अस्तेय है।

भौतिकवाद में सांसारिक सुख- भोग से परे कुछ भी नहीं रहता। इस सुख - भोग के लिए बहुत धन अवश्य चाहिए। अतः ऐसे सुख- भोगियों के लिए पैसा ही परमेश्वर है। इनके पास पैसा इतना अधिक रहता है कि वे एक प्रकार के असमंजस्य में पड़ जाते हैं कि इसका किस प्रकार खर्च हो। देश में जहां एक ओर ऐसे फिजूल- खर्ची लोग वर्तमान हैं वहां दूसरी ओर ऐसे लोग भी बहुतायत में हैं जो अपने पेट भरने के लिए धक्के खाते हुए दर- दर भटकते फिरते हैं। अमीर पैसे को ही सब कुछ समझकर बैठते हैं और पागल बनकर उसके पीछे दौड़ते हैं। लेकिन गरीबों की दशा अत्यंत दयनीय होती जाती है। ऐसे लोग भी देखने को मिलते हैं जिनके पास पर्याप्त धन होने पर भी दूसरों के धन की चोरी करते हैं। इस भौतिक वृत्ति को ही वैदिक संस्कृति में `स्तेय` बताया गया है। अस्तेय इसका उन्मूलन करने वाला साधन है। भौतिकवाद जब स्तेय का प्रचार करता है, तब आध्यात्मवाद अस्तेय की महिमा का समर्थन करता है। जहां स्तेय में छीनना, झपटना, मारना आदि कुत्सित विचारों की अधिकता है, वहां अस्तेय में लेना- देना, बंटना आदि सौम्य विचारों की बहुलता है।

परंपरा और विकास :

अपरिग्रह, अहिंसा आदि की भांति अस्तेय की परंपरा भी वैदिक युग से जुड़ी है। ब्रह्मचर्य व्रत के पालन के लिए जैसा अपरिग्रह आवश्यक है, वैसा ही अस्तेय भी।

मनु ने अपने पांच व्रतों में `अस्तेय` का उल्लेख किया है। योग-दर्शन के

मनु ने अपने पांच व्रतों में ` अस्तेय ` का उल्लेख किया है ।[१] योग दर्शन के अष्टांग योग के ` यम ` के नियमों के अन्तर्गत अस्तेय का निरूपण किया गया है ।[२] `गीता ` में बताया गया है कि ऐसी आत्मा हमेशा नाशावान होती है जो संसार में कर्महीन और दूसरों की वस्तुओं पर दुराग्रही रहती है ।[३] भागवत में भी अस्तेय का उल्लेख अवश्य किया गया है ।[४] याज्ञवल्क्य स्मृति में अस्तेय का प्रतिपादन यों किया गया है -

` अहिंसा सत्यमस्तेयं शौचमिन्द्रिय निग्रह: ।
दानं दया दम: क्षान्ति: सर्वेषां धर्म साधनम् ।।

(याज्ञवल्क्यस्मृति - १२२ श्लोक: - पृ० २५)

` उपासकाध्ययन ` में सोमदेवसूरि ने अस्तेय का समर्थन करते हुए कहा है कि पानी, घास आदि वस्तुएं सबको भोगने के लिए दी गयी हैं । उनके सिवा जो वस्तुएं जो दूसरों की हैं, उन्हें दिये बिना लेना स्तेय है ।[५]

- -

१: धृति: क्षमा - दमो-स्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रह : ।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्म लक्षणं ।।
- मनुस्मृति - ६ - ९२

२: तत्रा-हिंसा सत्यास्तेय ब्रह्मचर्या परिग्रहा: यमा: ।।
बुद्ध और गान्धी - नवीन निबन्ध - पृ० १५

३: नैव तस्य कृतेनार्थो नाकृतेनेह कश्चन ।
न चास्य सर्वभूतेषु कश्चिदर्थव्यपाश्रय: ।।
- गीता - ३ अध्याय: - १८ वां श्लोक ।

४: (अ) अहिंसा सत्यमस्तेयमकामक्रोधलोभता ।
भूतप्रिय हितेहा च धर्मो-यं सार्ववर्णिक: ।।
- ११ वां स्कन्ध: - २१ श्लोक: - पृ० ७००

(आ) अहिंसा सत्यमस्तेय मसंगो ह्रीरसंचय : ।
- ११ स्कन्ध: - ३३ श्लोक: - पृ० ७०४

५: अदत्तस्य परस्वस्य ग्रहणं स्तेयमुच्यते ।
सर्वभोग्यात्तदन्यत्र मावारीतृणादित: ।।- उपासकाध्ययन- १७ कल्प-
३६४ श्लोक- पृ० १६६

वैसा ही दूसरों के द्रव्य और धन को ग्रहण करना स्तेय बताया गया है ।[१] जैन दर्शन में व्रत के अन्तर्गत अस्तेय का उल्लेख किया गया है । यहां अस्तेय का अर्थ चोरी न करना बताया गया है । जैनों ने जीवन से मुक्ति प्राप्त करने के लिए चौदह गुण- स्थानों का अनुभव करने का नियम बताया है । इनमें से छठे गुण- स्थान [२] ` प्रमत्त ` के अन्तर्गत अस्तेय का विवेचन हुआ है ।[३] बुद्ध ने अपने अष्टांग मार्ग में अस्तेय का प्रतिपादन किया है।

इस प्रकार भारतीय दर्शन के अलावा अन्य दर्शनों में भी अस्तेय का उल्लेख अवश्य मिलता है जैसे जिलोवा की दस आज्ञाओं और ईसा के ` सरमन आन दि माउंट ` में भी अस्तेय का विवेचन हुआ है । क्योंकि इन सबका मूल भारतीय दर्शन का योग दर्शन ही है और इसके ` यम ` नियम के अन्तर्गत जो तत्व प्रतिपादित हुए हैं, वे ही उपर्युक्त आज्ञाओं और उपदेशों में हैं ।[४]

गांधीजी और अस्तेय :

गांधीजी के सिद्धान्तों में अस्तेय का भी विस्तृत विवेचन मिलता है। उन्होंने अपने एकादश व्रत के अन्तर्गत अस्तेय का उल्लेख भी किया है । उन्होंने अस्तेय का व्यवहार भारत की राजनीति में इस उद्देश्य से किया कि देश में प्राप्त होने वाली चीजों का ठीक उपयोग हो अर्थात् उनकी किसी प्रकार की चोरी या अपहरण न हो , इस प्रकार चीजों का अनावश्यक बरबाद भी न हो । गांधीजी के अस्तेय ने भारत में होने वाली चोरी और अपहरण को मिटाने में सफलता प्राप्त की है । धार्मिक व्यक्ति के होने के कारण उन्होंने अस्तेय शब्द का प्रयोग करना ही उचित समझा है ।

१: आत्मार्जितमपि द्रव्यं द्वापराब्धान्यथा भवेत ।
निजान्वयावतो-न्यस्य व्रती स्वं परिवर्जयेत् ।
उपासकाध्ययन - २७ वां कल्प - ३६८ श्लोक- पृ० १६२

२: मोक्ष को प्राप्त करने के लिए उर्ध्वगतिशील जीव के स्वरूप के एक अवस्था - विशेष को ` गुण स्थान ` कहते हैं ।
- भारतीय दर्शन - डा० उमेश मिश्र - पृ० १००

३: वही० पृ० १००

४: वैदिक संस्कृति के मूल तत्व - पृ० ३२४

गांधीजी की अस्तेय संबंधी मान्यताएं :

गांधीजी ने अस्तेय की अनेक व्याख्याएं दी हैं जिससे जनता को उन्हें समझने में अधिक सुविधाएं उपलब्ध होती हैं। उन्होंने बताया है कि 'अस्तेय' का अर्थ चोरी न करना है।[1] दूसरों की वस्तुओं को और संपत्ति को चुरा लेने से वे अत्यन्त दरिद्र हो जाते हैं और अपना जीवन बिताने में अनेक कष्ट सहते हैं। हर व्यक्ति को अपने अपने धन से जीवनयापन करना चाहिए। यही वास्तविक नियम है। इससे सब सुखी बनते हैं। एक बार चोरी करने से आगे उसकी वासना बढ़ती है और वह नित्य चोर कहलाता है। बाद में यह प्रवृत्ति उसे दूषित करती है। अत: गांधीजी ने चोरी न करने पर अधिक बल दिया है जिसे अस्तेय द्वारा प्रकट किया है।

गांधीजी ने चोरी न करने की प्रवृत्ति को अहिंसा बताया है।[2] चोरी करना एक प्रकार की हिंसा है। चोरी करना उस व्यक्ति के जीवन पर पानी डालने के समान है जिसके घर से वह चोरी करता है। यह तो समाज की सुव्यवस्था को आघात पहुंचाने वाली बात है। अत: गांधीजी ने चोरी करने का विरोध किया है और बताया है कि चोरी न करके अपने कमाये धन से ही जीवन बिताना अहिंसा है।

दूसरों की वस्तु लेने के लिए हमें उनकी अनुमति मांगनी चाहिए। यदि अनुमति के बिना ही लेते तो वह चोरी ब कहलाती है। अत: गांधीजी ने बताया है कि अगर हमें कोई चीज़ की आवश्यकता होती तो हमें उसे लेने के लिए अनुमति मांगनी चाहिए। इस प्रकार करने से बड़े संतोष के साथ वह चीज हमें मिलती है। यही वास्तविक रीति है। उन्होंने बताया है कि कुछ लोग ऐसे होते हैं जो अपनी वस्तु कहते हैं, वह भी कभी चुराते हैं। उदाहरण के लिए एक घर का एक व्यक्ति अपने माता-पिता बेटा- बेटी आदि से वही चीज़ चुराता है और चुपके से लाता है जो अपने ही घर की है। इसे गांधीजी ने अस्तेय कहा है। कहने का तात्पर्य यह है कि उनके लिए चोरी की सारी प्रवृत्तियां जो किसी प्रकार की भी हों।, अस्तेय हैं। यह तो स्पष्ट है कि दूसरे की वस्तुकी

१: गान्धीजी - साहित्य - भाग ५ - पृ० १०५

२: समाज की सुव्यवस्था के लिए अहिंसा अर्थात् व्यक्तियों से उनका धन न छीनने के नियम का पालन आवश्यक है। - गांधीवाद की शव-परीक्षा- पृ० ५६

चोरी मात्र को अस्तेय बताने का प्रयास उन्होंने नहीं किया। अस्तेय का अर्थ उन्होंने विपुलता से बताया है।

जिस वस्तु की आवश्यकता हमें नहीं है उसकी इच्छा करना ही स्तेय है इसके अलावा आवश्यकता न होने पर भी उसे उस व्यक्ति की आज्ञा से लेना भी स्तेय है। जिसके पास वह चीज़ रहती है। जिसकी हमें जरूरत नहीं है, उसे न मांगना ही अच्छा है। यही अस्तेय का गुण है। गांधीजी ने भी इसी पर बल दिया है। अनावश्यक चीज़ के लेने से दूसरों को बड़ी कठिनाई होगी जिनके लिए वह आवश्यक होती है। जो व्यक्ति जो ईश्वर में विश्वास रखता है कदापि चोरी नहीं करता और उसे यह विश्वास अवश्य रहता है कि वह जो चीज़ जब मांगता है, आसानी वह प्राप्त हो सकती है। अतः अस्तेय के पालन में भी ईश्वर विश्वास का होना अनिवार्य है।[1]

अस्तेय का पालन वही कर सकता है जो दूसरों को कष्ट जानता है। इस प्रकार का व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं को घटाकर शेष से दूसरों की सहायता करने को तैयार होता है।[2] गान्धीजी ने कहा है कि अस्तेय का व्रती दूसरों का दुःख जानने वाला है, ईश्वर पर अटूट विश्वास रखने वाला है और इसलिए वह दूसरे की आज्ञा के बिना अपनी आवश्यकताओं को कम करके दूसरों की सहायता करने में उत्सुकता दिखाता है।

जो व्यक्ति आत्मा की निन्दा करते हुए उसका तिरस्कार करता है वह स्वभावतः चोर होता है। चोर को आत्मा पर विश्वास नहीं रहता। उसका उसका स्वभाव चोरी होता है। वह अपने आजीवन चोरी करता रहता है और जेल जाता-यही उसकी जीवन - रीति बनती है। लेकिन अस्तेय में दूसरों के साधनों पर आग्रह रखने या कुदृष्टि डालने का विरोध किया गया है। उनके साधनों को देखकर उन पर मोहित न होना चाहिए प्रत्युत हमें वैसा साधन अपनी कमाई से खरीदना चाहिए। यही वास्तव में अस्तेय का पालन होगा।

- -

१: किसी चीज़ के लेने की हमें आवश्यकता न हो, उसे जिसके पास वह है, उसकी आज्ञा लेकर भी लेना चोरी है। ऐसी एक भी चीज़ न लेनी चाहिए, जिसकी जरूरत न हो। - गांधी - विचार - रत्न - पृ० ७२

२: अस्तेय व्रत का पालन का निश्चय करने वाला उत्तरोत्तर अपनी आवश्यकताओं को कम करेगा। गांधी- विचार - रत्न - पृ० ७३

आत्मत्यागी कदापि चोर नहीं बनता । वह हमेशा अपनी आत्मा की पुकार एवं आज्ञा का पालन करता रहता है । वह सदा ईश्वर का ध्यान भी करता रहता है । इसलिए उसका मन चोरी जैसी कुप्रवृत्तियों की ओर मुड़ता नहीं । गान्धीजी ने भी यहां आत्मा को अधिक महत्वपूर्ण बताया है और उसका ध्यान करना अनिवार्य बताया है ।

अस्तेय का पालक बाद में मिलने वाली चीजों के बारे में कोई सुख-स्वप्न देखता नहीं । कहने का तात्पर्य यह है कि अस्तेयी जिस प्रकार आगामी फल की इच्छा किये बिना अपना काम करता है, उसी प्रकार वह भावी में मिलने वाली चीजोंकी पूर्व - प्रतीक्षा नहीं करता । उसे इस बात का ध्यान नहीं रहता कि उसे कैसी चीज़ मिलने वाली है अच्छी या बुरी । वह इस प्रकार की इच्छा तक नहीं रखता कि उसे भविष्य में अच्छी चीज़ ही मिलनी चाहिए । अस्तेयी के लिए भविष्य में प्राप्त होने वाली सारी चीजें स्वीकार्य हैं चाहे वह बुरी हो या अच्छी । अतः वह चीज़ों की भलाई-बुराई पर चिन्तित नहीं होता ।

अस्तेय- व्रती के लिए सद्गुणों का होना व आवश्यक है , उसे बहुत नम्रताशील, विचारशील, सावधानी, और सादगी होना चाहिए ।[१] अस्तेय का पालन करना सबके लिए संभव नहीं । यह ऐसे लोगों के लिए संभव है जिनमें सद्गुण ही रहते हैं और जो सदाचार का पालन भी करता है । अस्तेय का आचरण अत्यन्त कठिन है और जो अहिंसा, अपरिग्रह आदि बड़े बड़े कठिन व्रतों का पालन कर सकता है, वही अस्तेय का पालन भी कर सकता है । अस्तेय के लिए शारीरिक बल की अपेक्षा आत्म-बल की आवश्यकता है । यह आत्मबल सबके लिए चिप्र- साध्य नहीं है । आत्मबल की प्राप्ति के लिए व्यक्ति को अनेक कष्ट भोगने पड़ते हैं । इस प्रकार देखने से अस्तेय का पालन विषम है ।

अस्तेय के पालन में यह बात माननीय है जो चीज़ हम किसी विशेष काम के लिए खरीदते हैं उसे उसी काम के लिए उपयोगी बनाना है , दूसरे काम के

१: अस्तेय व्रत का पालन करनेवाले को बहुत नम्र बहुत विचारशील, बहुत सावधान और बहुत सादगी से रहना पड़ता है -

- गान्धी विचार रत्न - पृ० ७३

लिए नहीं ।[1] उदाहरण के लिए जब हमसे कोई व्यक्ति कुछ खरीद देने के लिए पैसा देता है और उसे हम अपनी आवश्यकता को पूरा करने के लिए खर्च करते हैं तो यह स्तेय कीप्रवृत्ति होती और उस व्यक्ति के प्रति बड़ा अन्याय भी होता जिससे सहायता करने का वादा किया था । इसी का समर्थन करते हुए गान्धीजी ने बताया है कि जो चीजें हमें जितने समय के लिए दी हैं, उसका प्रयोग उस सीमित समय ही में करना है । इस प्रकार समय की परिधि पर अधिक जोर दिया गया है । इस परिधि के अन्तर्गत ही चीज़ का उपयोग करना चाहिए । अगर उसकाप्रयोग सीमातीत हो जाता तो उसका नाश हो जाता है ।

अस्तेय में वसुधैवकुटुंबकम् की भावना अवश्य रहती है । प्रत्येक व्यक्ति को सांसारिक वस्तुओं को ईश्वर की मान लेना चाहिए ।[2] संसार के सभी लोगों को सांसारिक वस्तुओं का भोग करने का अधिकार है । पर जब वह अधिकार असीम हो जाता है तब वह चोरी, परिग्रह, हिंसा आदि प्रवृत्तियों को जन्म देता है । जब सब लोग अपने अधिकार का ध्यान रखते हुए सांसारिक चीज़ों का उपभोग करते तो परिग्रह आदि का प्रश्न ही नहीं उठता । अतः प्रत्येक व्यक्ति को उसे जितना अधिकार दिया गया है, उसका ध्यान रखना चाहिए ।

अस्तेय में चीज़ों का ठीक उपयोग पर बल दिया गया है ।[3] किसी भी चीज़ का व्यर्थ उपयोग नहीं करना चाहिए । व्यर्थ उपयोग से वह चीज़ बिगड़ जाती है ।

- -

१: जो चीज़ हमें जिस काम के लिए मिली हो, उसके सिवा उसे दूसरे काम में लेना, या जितने वक्त के लिए मिली है उससे ज्यादा वक्त तक काम में लेना वह भी चोरी ही है । - गान्धी विचार रत्न - पृ० ७१

२: यदि हम संसार की सब वस्तुओं को परमेश्वर की मालिकी की समझें और प्राणिमात्र को परमात्मा के कर्ता - हर्तापन के अधीन रहनेवाला एक विशाल कुटुंब मानें, तो संसार की नितान्त आवश्यक वस्तुओं का उप भोग भर करने का अधिकार भर हमें रहता है । उन पर इससे अधिक अधिकार समझना चोरी है । - गान्धी- विचार - रत्न -पृ० ११

३: अस्तेय हमें सिखाता है कि हम जिस चीज़ का उपयोग करें, उसे ठीक ज्ञान के के साथ बरतें । किसी चीज़ को इस तरह बरतना कि उसका अर्थ बिगड़ हो, अस्तेय का भंग करना ही है । - गान्धी - विचार - दोहन - पृ० १२

हमें किसी साधन का दुरुपयोग न करना चाहिए । चीज़ों का ऐसा उपयोग करें जिससे अच्छा फल प्राप्त होता है । यह तो कहा गया है कि हमें जो काम जैसा करना है, उसे उसी प्रकार करने से अच्छा फल मिलता है । यदि हम चीज़ों का व्यर्थ करते हैं तो वह अस्तेय का नाश करता है । अत: अस्तेय के पालन में यही ध्यान देने योग्य बात है।

गांधीजी ने अस्तेय के सामुदायिक भंग पर प्रकाश डालते हुए बताया है कि जब हम प्राकृतिक वस्तुओं का नाश करते हैं और कच्चे माल को नालायक समझते हैं तो यह अस्तेय का सामुदायिक भंग कहलाता है ।[1] कच्चे माल भी कभी कभी उपयोगी सिद्ध होते हैं । कच्चे मालों से असंख्य नयी चीज़ों का उत्पादन हो सकता है । अत: उन्हें नालायक अथवा उपयोगशून्य बताना ठीक ही नहीं । जीवन में इनकी आवश्यकता कभी कभी होती है । वैसे ही हम प्राकृतिक वस्तुओं को, इस विचार से कि वे प्राकृतिक हैं और उन्हें कोई मूल्य देकर खरीदना नहीं, और खूब मिलतीं अत्यधिक उपयोगी समझकर उनका आवश्यकता से भी बढ़कर उपयोग करते हैं । ऐसा करने पर ये वस्तुएं तुरन्त नष्ट हो जाती हैं और भविष्य में जब उनकी आवश्यकता होगी तब वे अप्राप्य बन जाती हैं। अत: हमें प्राकृतिक चीज़ों का निरंतर फलदायी उपयोग, कच्चे मालों का सदुपयोग आदि पर ध्यान देना चाहिए । इससे मानी के जीवन में एक प्रकार की संतृप्ति आती है ।

अस्तेय का साधारण अर्थ ` चोरी न करना ` के अलावा गान्धीजी ने दूसरों की चीज़ों पर इच्छा न रखना, उन पर कुदृष्टि न डालना, वस्तुओं पर अपना सीमित अधिकार मात्र रखना, चीज़ों का सदुपयोग करना, कच्चे मालों का आवश्यकतानुसार प्रयोग करना आदि को भी बड़ी व्यापक दृष्टि से देखकर ही गान्धीजी ने उसे भारत की राजनीति में व्यवहृत किया था ।

- -

१: माल के उत्पादन की आज की पद्धति में हम प्राकृतिक साधन संपत्ति का आवश्यकता से अधिक नाश करते हैं और कच्चे माल को नाहक बिगाड़ते हैं यह अस्तेय का सामुदायिक भंग है । - गान्धी - विचार- दोहन- पृ० १२

ब्रह्मचर्य :

अध्यात्मवाद के आत्मतत्व का चौथा तत्व है ब्रह्मचर्य ।[१] अध्यात्मवाद स्वभावत: भोग को त्याग की ओर ले जाने वाली अन्त: प्रेरणा से युक्त है । अत: उसके विभिन्न तत्वों में भी इसकी प्रतिक्रिया देखने को मिलती है । ब्रह्मचर्य को ऐसी प्रतिक्रियात्मक प्रवृत्ति के रूप में मुख्य स्थान रहा है । ब्रह्मचर्य का उद्गम मानव- जीवन के प्रारंभ से हुआ और यह उतना पुराना है जितना मानव- जीवन । यह मानव-जीवन के चार पड़ावों (चार आश्रमों) - ब्रह्मचर्याश्रम, गृहस्थाश्रम, वानप्रस्थाश्रम, सन्यासाश्रम - में सबसे प्रथम आश्रम माना गया है । जीवन का प्रारंभ भोग से होता है और अन्त त्याग से । हमारे पूर्वजों ने यह बात अवश्य बतायी है कि त्याग के बिना भोग का अनुभव संभव नहीं । त्यागमय भोग ही जीवन के लिए आवश्यक है । यदि भोग हो तो अन्त में त्याग हो जैसे यदि प्रवृत्ति होती तो निवृत्ति अवश्य होती है । त्याग और निवृत्ति की भावना सुदृढ़ होने के लिए भोग और प्रवृत्ति दोनों की आवश्यकता है । अत: भोग-त्याग, प्रवृत्ति - निवृत्ति, वर्तमान - भविष्य आदि का समन्वय करके भारतीय वैदिक मुनियों ने जीवन के एक सुदीर्घ कार्यक्रम का प्रबन्ध किया है जिसमें अहिंसा, सत्य, अपरिग्रह अस्तेय इत्यादि के साथ ब्रह्मचर्य की चर्चा भी की है ।

परिभाषा :

` ब्रह्मचर्य ` का अर्थ यों दिया गया है कि अपने से ऊपर रहनेवाले उस परम सत्ता अथवा ` सत्य ` को पहचानना ।[२] ब्रह्मचर्य का और एक अर्थ है इन्द्रियों को विषयों में से हटाकर संयत रखना । संयम शब्द बहुत विस्तृत एवं प्रसिद्ध है जिसके बिना ब्रह्मचर्य का पालन ही असंभव माना जाता है । ब्रह्मचर्य की परिभाषा ऋग्वेद के अंतिम मंडल में दी गयी है ।

१: वैदिक संस्कृति के मूल तत्व - पृ० १०३

२: ब्रह्म का अर्थ है बड़ा महान्, विशाल । `चर्य ` शब्द चर गति - भक्षणयो धातु से निकला है जिसका अर्थ है चलना, गति करना । ब्रह्म होने के लिए, क्षुद्र से महान होने के लिए विषयों के छोटे छोटे रूपों में से निकलकर, आत्मशक्ति के विराट रूप में अपने को अनुभव करने के लिए चल पड़ना ` ब्रह्मचर्य ` है । - वैदिक संस्कृति के मूलतत्व- पृ० १०४

ब्रह्मचर्य की साधना करने वाले व्यक्ति को ब्रह्मचारी कहते हैं। अमरकोश में बताया गया है कि ब्रह्म अर्थात् वेद के आचरण यानी अध्ययन करने का व्रत अपनाने वाला व्यक्ति ही ब्रह्मचारी कहा जाता है।[१] इसके बारे में अथर्व वेद में कहा गया है कि ब्रह्मचारी देवताओं का अंग रूप है और वह ब्रह्मचर्य में रमता हुआ प्रजा में विचरता है।[२] ब्रह्मचारी यहां रह कर ब्रह्मचर्य - व्रत को तप: साधना करता है इसे ब्रह्मचर्याश्रम कहते हैं। यहां रहने वाले व्यक्ति का जीवन मुख्यत: विद्यार्थी का जीवन होता है। इस व्रत का पालन करने वाले व्यक्तियों के जीवन की कुछ विशेषताएं होती हैं जो साधारण मानव- जीवन से भिन्न होती हैं और इसका उल्लेख अथर्व वेद में २५ श्लोकों में मिलता है।[३] ब्रह्मचारी गुरु - गृह में रहता है, मृगचर्म धारण करता है, ईंधन एकत्र करता है, यज्ञ करता है, भिक्षाटन करता है, आदि आदि। इस नवीन जीवन की दीक्षा साधारण रूप से बारह वर्ष तक होती है। कभी कभी यह दीक्षा बत्तीस वर्ष तक दीर्घ-कालीन होती है। ब्रह्मचारी का मुख्य कर्तव्य अपने आचरण को पवित्र रखना है। यदि कोई आचरण- भ्रष्टता होती है तो उसे कठिन दंड दिया जाता है।

परंपरा और विकास :

ब्रह्मचर्य की परंपरा भी बहुत प्राचीन ही दिखाई पड़ती है। क्योंकि उसका उल्लेख वेद में भी पहले पहल दिखाई पड़ता है। बालक वैदिक युग में ब्रह्मचर्य की शिक्षा ही सीखने के लिए आचार्य के समीप जाता था। ब्रह्मचर्य- जीवन के संबंध में आचार्य कहा करते थे - " ब्रह्मचर्यस्य पोशान, कर्म कुरु, दिवा मा, स्वाप्सीराचार्या धीनोवेद मधीष्व। वैदिक युग में स्त्रियां भी ब्रह्मचर्य का पालन करती थीं क्योंकि उसमें

१: अमर कोश - पृ० ५१०

२: ब्रह्मचारी चरति वेविषद् विष: सदेवानां भवत्येकमंगम् ।

- अथर्व वेद - पंचम खण्ड - १७ सूक्त - ५ श्लोक - पृ० २२०

३: ब्रह्मचारीष्णं श्चरति रोदसी उभे तस्मिन् देवा: सम्मनसो भवन्ति ।

-- -- -- --

प्राणापानौ जनयन्नाद व्यानं वाचं मानो हृदयं ब्रह्म मेधाम् ।

- अथर्व वेद - एकादश काण्ड: - ५ सूक्त: - १ - १४ श्लोक:-

ही कन्या युवा पति प्राप्त करती है।[1] मनु ने 'मनुस्मृति' में बताया है कि ज्ञान की प्राप्ति के समय तक ब्रह्मचर्य का व्रत धारण करना है।[2] योग दर्शन के अष्टांग योग के 'यम' के अन्तर्गत ब्रह्मचर्य की चर्चा की गयी है जिसका अर्थ इन्द्रियों - विशेषतः गुप्तेन्द्रियों में लोलुपता न रखना बताया है।[3]

'महाभारत' में यत्र तत्र ब्रह्मचर्य का उल्लेख प्राप्त होता है। इसमें ब्रह्मचर्य की महिमा पर बताया गया है।[4] और एक जगह पर ब्रह्मविद्या के बारे में कहा गया है -

' नैतद् ब्रह्म त्वरमाणेन लभ्यं यन्मां पृच्छस्यतिहृष्यसीव।
बुद्धौ विलीने मनसि प्रचिन्त्या विद्या हि सा ब्रह्मचर्येण लभ्या ।।
(भारतम् - उद्योग पर्व - पृ० १४४)

'महाभारत' में ही धर्म की परिभाषा देते वक्त दान, भूतदया, सत्य आदि धर्म के सनातन मूलाधार की चर्चा करते हुए ब्रह्मचर्य पर भी विचार किया गया है।[5] चतुराश्रम धर्म के बारे में कहते वक्त भीष्म ने ब्रह्मचर्य का विवेचन किया है।[6] भीष्म ने

- -

१: ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम् ।
अथर्व वेद - एकादश काण्ड: - ५ सूक्त: - पृ० ६०६

२: मनुस्मृति: - ३,१, प्राचीन भारतीय साहित्य की सांस्कृतिक भूमिका- पृ० ५००

३: तत्रा-हिंसा सत्यास्तेय ब्रह्मचर्यापरिग्रह: यमा: -
- नवीन निबन्ध - पृ० १५

४: अपेतव्रतकर्मा तु केवलं ब्रह्मणि श्रित: ।
-- -- -- .
विदित्वा चान्मपयन्त सोऽभ्रेनानु दर्शिनः ।।
- भारतम् - अश्वमेधिक पर्व - १६ अध्याय:-१६-१८ श्लोक:-पृ० ३०१

५: इष्टधर्मो महायोगी दानं भूतदया तथा ।
ब्रह्मचर्यं तथा सत्यमनुक्रोशो धृति: क्षमा: ।
सनातनस्य धर्मस्य मूलमेतत्सनातनम् । - भारतम्- अश्वमेधिक पर्व- ६१ अध्याय:- ३३ श्लोक:- पृ० ३६२

६: चरित ब्रह्मचर्यस्य ब्राह्मणस्याभिशाम्यते । भैक्षचर्यास्वधीकार: प्रशस्त इह मोक्षिणा: ।।
- भारतम् - शान्तिपर्व: - ६१ अध्याय: - ७ श्लोक:- पृ० ३८६

युधिष्ठिर को आपत् काल में ब्राह्मणों की रक्षा के लिए किये जाने वाले धर्मों का उपदेश दिया है और ब्रह्मचर्य की महिमा पर भी विचार किया है ।[1] धर्माचरण के प्रसंग में अलायुध के उपदेशमें ब्रह्मचर्य का उल्लेख मिलता है ।[2] परमात्मा की प्राप्ति के लिए ब्रह्मचर्य की आवश्यकता पर भीष्म ने बताया है -

> ` ब्रह्मचर्यमहिंसा च शरीरं तप उच्यते ।
> वाङ्मनोनियमः सम्यङ्मानसं तप उच्यते ।।

(भारतम् - शान्तिपर्वः २१७ अध्यायः- १७ श्लोक पृ० ५५३)

`भागवत ` में भी ब्रह्मचर्य पर स्वतन्त्र विचार किया गया है । भगवान श्रीकृष्ण ने ब्रह्मचर्य का समर्थन दो जगहों पर किया है ।[3] `याज्ञवल्क्य स्मृति ` में भी ब्रह्मचर्य का समर्थन किया गया है ।[4]

उपनिषद् काल में ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति को सर्वाधिक महत्व दिया गया था । अध्ययन और नैष्ठिक ब्रह्मचर्य धर्म का प्रमुख अंग रहा । ब्राह्मणों को ब्रह्मचर्य की साधना का अध्ययन करना अनिवार्य था । जो ब्राह्मण ब्रह्मचर्य की शिक्षा न लेता था उसे नाम मात्र का ब्राह्मण माना जाता था ।[5]

- -

१: तपसा ब्रह्मचर्येण यज्ञेन च बलेन च ।
अमायया मायया च नियन्तव्यं तथा भवेत् ।
- भारतम् - शान्तिपर्वः - ७८ अध्यायः - २० श्लोकः- पृ० ४०५

२: धर्मं ब्रूते कृषिर्वैश्ये दण्डनीतिश्च राजनि ।
ब्रह्मचर्यं तपो मन्त्राः सत्यं चापि द्विजातिषु ।।
- भारतम् - शान्तिपर्वः - ११ अध्यायः- ४३ श्लोक पृ० ४१८

३: ब्रह्मचर्यं तपः शौचं सन्तोषो भूतसौहृदम् ।
गृहस्थस्याप्यृतौ गन्तुः सर्वेषां मदुपासनम् ।।
(भागवतम् - एकादश स्कन्धः - ४३ श्लोक- पृ० ७०३
और भी
(आ) अहिंसा सत्यमस्तेयमसंगो ह्रीरसंचयः ।
आस्तिक्यं ब्रह्मचर्यं च मौनं स्थैर्यं क्षमाभयम् ।। -वही० ३३ श्लोकः, पृ०७०

४: याज्ञवल्क्य स्मृतिः - देखिये - श्लोकाः ३२, ३६, ४६, १२२, १४६, पृ० ६- ७ - ६ - २५ - ४६

इस काल में ब्रह्मचर्य और तपस्या की समन्वित रूपरेखा मिलती है और उसमें यज्ञ,सत्रायण, मौण,अनशनायन,अरण्यायन आदि को स्थान मिला है ।[1]

'प्रश्नोपनिषद्' में ब्रह्मचर्य का उल्लेख यों मिलता है । ब्रह्मचारी ब्रह्मचर्य की विद्या प्राप्त कर भगवान की खोज में सूर्यलोक में पहुंचते हैं ।[2] ब्रह्मलोक की प्राप्ति के लिए व्यक्ति को सत्य में विश्वास रखना चाहिए, साथ ही तप और ब्रह्मचर्य की साधना करनी चाहिए ।[3] 'मुण्डकोपनिषद्' में भी परमात्मा को प्राप्त करने के लिए ब्रह्मचर्य की अनिवार्यता पर प्रकाश डाला गया है ।[4] 'उपासकाध्ययन' में सोमदेव सूरि ने बताया है कि एक पुरुष अन्य स्त्रियों को माता, बहिन, और पुत्री के रूप में मानने लगता है तो वह ब्रह्मचर्य का व्रत माना जाता है ।[5] इसी में ब्रह्मचर्य की साधना के परिणत फल के बारे में बताते हुए कहा है कि ब्रह्मचर्य व्रत का अनुष्ठान करने वाला अद्भुत ऐश्वर्य, वीरता, सुन्दरता, धीरता आदि सद्गुणों को प्राप्त कर सकता है ।[6]

१: अथ यत्सत्रायणमित्याचक्षते ब्रह्मचर्यमेव । तद्ब्रह्मचर्येण --

-- -- --

हिरण्मयम् । छान्दोग्योपनिषद् - पृ० ३४१

२: अथोत्तरेण तपसा ब्रह्मचर्येण श्रद्धया विद्यया-- आत्मान-मन्विष्यादित्यमभिजयन्ते - प्रश्नोपनिषद् - पृ० ६४

३: तेषामेवैष ब्रह्मलोको येषां तपो ब्रह्मचर्यं येषु सत्यं प्रतिष्ठितम् - - प्रश्नोपनिषद् - पृ० ६५

४: सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष आत्मा

सम्यग्ज्ञानेन ब्रह्मचर्येण नित्यम् ।।

-- -- --

यं पश्यन्ति यतयः क्षीणदोषाः ।। (मुण्डकोपनिषद्- पृ० १२२-१२

५: वधूवित्तस्त्रियौ मुक्त्वा सर्वत्रान्यत्र तज्जने ।

माता स्वसा तनूजेति मतिर्ब्रह्म गृहाश्रमे ।।

- उपासकाध्ययन - ३१ कल्प - श्लोक ४०५ - पृ० १६१

६: ऐश्वर्यौदार्यशौण्डीर्य धैर्य सौन्दर्यवीर्यताः ।

लभेताद्भुतसंभाराश्चतुर्थव्रतपूत धीः ।।

- उपासकाध्यान - ३२ कल्प - श्लोक ४३२ - पृ० २०३

जैन दर्शन में प्रतिपादित पांच व्रतों में ब्रह्मचर्य का उल्लेख भी किया गया है । इस दर्शन में भी इसलिए अनिवार्य माना गया है कि इस व्रत के पालन से आत्मा में कर्म - पुद्गलों के प्रवेश को रोक सकता है ।

बौद्ध दर्शन में ब्रह्मचर्य का सबसे प्रमुख स्थान रहा था । यह बुद्धधर्म का मेरुदण्ड माना जाता था । गौतम ने संघों की स्थापना इसलिए की थी कि उसके द्वारा ब्रह्मचर्य चिर-स्थायी बने । उनके अष्टांग मार्ग के नियमों में ` ब्रह्मचर्य ` का प्रतिपादन भी हुआ । नैतिक सदाचार में ब्रह्मचर्य की महत्ता सर्वोपरि है । गृहस्थ के स्वच्छन्द जीवन में तो उसका पालन असंभव होने के कारण ही गौतम ने संघों की स्थापना करके उसका पालन करने वाले व्यक्ति को प्रस्तुत संघ में ही रहने का आदेश दिया है । स्त्रियों को भी संघ में रहने की अनुमति दी जाती थी और ब्रह्मचर्य का पालन अनिवार्य बताया जाता था । इस्लाम धर्म में भी ब्रह्मचर्य का प्रतिपादन मिल सकेगा क्योंकि इसका मूलाधार वेद और उपनिषद ही हैं ।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि ब्रह्मचर्य का कठोर पालन वैदिक युग से ही वर्तमान है । आधुनिक युग में महात्मा गान्धीजी ने उसका अधिक समर्थन किया है और मानव जीवन में उसके व्यवहृत होने पर अधिक बल दिया है ।

गान्धीजी और ब्रह्मचर्य :

ब्रह्मचर्य और गान्धीजी का बहुत ही निकट संबंध है । गान्धीजी विवाहित थे और विवाह के समय से ही उनके मन में ब्रह्मचर्य के पालन का तीव्र विचार था । यह तो सच है कि उन्होंने अपने दांपत्य जीवन के उपरान्त ही ब्रह्मचर्य का पालन करना शुरू किया । उन्होंने इसका विचार तभी किया था जब वे दक्षिण अफ्रीका में थे । लेकिन उन्होंने इसका कारण तो बताया नहीं । फिर भी यह बताया गया है कि अपनी पत्नी के प्रति उन्हें जो वफादारी थी,उसे और अधिक मूल्यवान बनाने के लिए ही ब्रह्मचर्य का व्रत लिया था । उन्होंने अपनी ` आत्मकथा ` में बताया है - पत्नी को विषय - भोग का साधन बनाने में पत्नी के प्रति वफादारी कहां रहती है? जब तक मैं विषय- वासना के अधीन रहता हूं, तब तक मेरी वफादारी का मूल्य साधारण

ही माना जायेगा ।[१]

गान्धीजी एकपत्नीव्रती थे और इसे वे अपने सत्यव्रत का अंग मानते थे । जब वे फीनीक्स में थे, तब सन् १९०६ में उन्होंने ब्रह्मचर्य का व्रत ले लिया । इसके पीछे उनके तीन मुख्य उद्देश्य थे । उनमें प्रथम था सन्तानोत्पत्ति । उस समय सन्तानोत्पत्ति को रोकने के लिए कई प्रकार के कृत्रिम उपायों का प्रयोग होता था। लेकिन मि० हिल्स द्वारा इसके विरोध में किये गये आन्तरिक साधना या संयम के समर्थन ने गान्धीजी को खूब प्रभावित किया । फलत: गान्धीजी ने सन्तानोत्पत्ति की अनावश्यकता का ध्यान होने पर ऐसे संयम का पालन करने का निश्चय किया ।

उनका दूसरा उद्देश्य यह था कि सार्वजनिक सेवा । उनका मत यह था कि सार्वजनिक सेवा की सफलता के लिए सन्तानोत्पत्ति और उनका लालन- पालन दोनों विरुद्ध कार्य हैं । अत: ऐसे समय में संयम की अत्यन्त आवश्यकता पड़ती है । सेवा की वेला में व्रत अधिक मूल्यवान बनता है और इस सिलसिले में यह स्वतन्त्रता का द्वारा माना जाता है । गान्धीजी को जब युद्ध में घायल व्यक्तियों की सेवा करने का मौका मिलता था, तब ब्रह्मचर्य का व्रत उनके लिए बड़ा उपयोगी सिद्ध हुआ ।

तीसरा उद्देश्य यह था कि स्वादेन्द्रिय पर प्रभुत्व की प्राप्ति और उपवास । गान्धीजी ने जब ब्रह्मचर्य का पालन करना आरंभ किया तब से उनके दैनिक आहार में भी बड़ा भारी परिवर्तन दिखाई पड़ने लगा । इस प्रकार ब्रह्मचर्य का पालन के लिए स्वादेन्द्रिय पर प्रभुत्व पाने पर अधिक बल दिया जाता है । गान्धीजी ने भी इसी उद्देश्य से अपने आहार में यथोचित परिवर्तन किये । उन्होंने बिना मिर्च - मसाले का थोड़ा और सादा आहार ग्रहण किया । फिर उन्होंने वन के पके फलों का भोजन करना शुरू किया । इसी कारण उनका व्रत- पालन अत्यन्त स्वाभाविक बन गया जो अन्नाहार के भोजन में न संभव था ।[२]

- -

१: आत्मकथा - गान्धीजी - पृ० १७७

२: जब मैं सूखे और हरे वनपक्व फलों पर रहता था, तब जिस निर्विकार अवस्था का अनुभव मैं ने किया था, वैसा अनुभव आहार में परिवर्तन करने के बाद मुझे नहीं हुआ । -

- आत्मकथा - पृ० १८०

ब्रह्मचर्य - व्रत के अन्तर्गत उन्होंने दूध का पूरा त्याग किया था। उनके मतानुसार ब्रह्मचारी के लिए दूध व्रत का भंग करने वाला साधन है।[१] ब्रह्मचर्य का व्रत लेने के पहले उन्होंने दूध का पान किया था और बाद में उसे इन्द्रिय- विकार का जनमी समझकर छोड़ दिया। एक बार गोखले के आग्रह को ठुकराते हुए उन्होंने दूध पीने से इनकार किया और कहा कि दूध भी गाय या अन्य पशुओं के मांस की तरह मनुष्य का आहार न होना चाहिए।[२] उन्होंने दूध को ही नहीं, उससे बनाये जाने वाले पदार्थों को भी छोड़ दिया था।

ब्रह्मचर्य व्रत के सिलसिले में गान्धीजी ने नमक का भी त्याग किया था। पर इससे यह समझना न चाहिए कि इस व्रत के पूर्व वे नमक न खाते थे। व्रतानुष्ठान के आरंभ तक उसका प्रयोग अवश्य होता था। किसी एक पुस्तक से उन्होंने जान लिया कि नमक खाना मानव के लिए अनिवार्य नहीं, उसे न खाने वाला भी नीरोग रह सकता है।[३]

उपर्युक्त इन चीजों के अलावा चाय,काफी,दाल, अनाज आदि को भी पूर्णत: त्याग उन्होंने मूंगफली, कच्चे और पके केले, नींबू, जैतुन का तेल,टमाटर, अंगूर आदि का प्रयोग किया था।

ब्रह्मचर्य और उपवास में गान्धीजी ने बहुत निकटता का वर्णन किया है। उपवास के अनुष्ठान के लिए उन्हें ब्रह्मचर्य व्रत अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुआ है।[४] उन्होंने इन्द्रिय दमनार्थ किये जाने वाले उपवासों को अधिक प्रभावशाली बताया है। शारीरिक उपवास के साथ मन के उपवास भी अनिवार्य हैं और तभी उपवास का सफल परिणाम निकल सकता है। यहां गीता के एक श्लोक ने जो उपवास से संबंधित है,गान्धीजी को

- -

१: यहां तो यही कहना काफी है कि ब्रह्मचारी के लिए दूध का आहार व्रत - पालन में बाधक है, इस विषय में मुझे शंका नहीं है - आत्मकथा- पृ० १८०

२: आत्मकथा - पृ० ३११ ३: वही० पृ० २८२

४: मेरा अनुभव तो मुझे यह सिखाता है कि जिसका मन संयम की ओर बढ़ रहा है, उसके लिए आहार की मर्यादा और उपवास बहुत मदद करने वाले हैं - आत्मकथा, पृ० २८६

अत्यन्त प्रभावित किया और इसका समर्थन उन्होंने इस अवसर पर किया भी है ।[१] गान्धीजी ने अपने जीवन में कई बार कई प्रकार के उपवास किये हैं और इनका विवेचन बाद में स्वतंत्र रूप से होगा । अतः यहां इतना ही कहना काफी है ।

गान्धीजी की ब्रह्मचर्य-सम्बन्धी मान्यताएं :

उपर्युक्त बातों के विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि गान्धीजी के जीवन में ब्रह्मचर्य ऐसा साधन रहा है जिसका किसी भी तरह से परित्याग असंभव था । उन्हें अपने दाम्पत्य - जीवन की अपेक्षा लोकसेवा ही अत्यन्त प्रिय था जिसके कारण वे ब्रह्मचर्य के व्रती बने । साधारण व्यक्ति के लिए जो दाम्पत्य - सूत्र में बांध चुका हो ब्रह्मचर्य का व्रत लेना और उसका अनिश्चित पालन करना उतना आसान नहीं । लेकिन गान्धीजी की ब्रह्मचारी बनने की तृष्णा इतनी घनी थी कि इसके लिए उन्होंने अपनी पत्नी और सन्तान की चिन्ता तक नहीं की थी । यह तो सच है कि वे जब से ब्रह्मचारी बने तब से अन्त तक कट्टर ब्रह्मचारी ही रहे । एक शुद्ध ब्रह्मचारी होने तथा अचल एकपत्नी-व्रती होने के कारण पर स्त्रियां उनकी सन्निधि में रहती और उनका दर्शन करने के लिए आती थीं और वे उनसे अपनी माता या बहनों का सा व्यवहार करते थे । अतः पुरुषों की तरह असंख्य नारियां भी उनकी आराधक हुई थीं ।

गान्धीजी ने ब्रह्मचर्य के बारे में अपनी जो मान्यताएं होती हैं, उनका समर्थन किया है । ब्रह्मचर्य के पालन में सार्वजनिक प्रेम की आवश्यकता है ।[२] इस प्रेम की वर्षा ही ब्रह्मचर्य हो सकती है । समस्त जीव- जालों से आत्मीय प्रेम होना चाहिए । इस विश्व की समस्त वस्तुओं को हमें ईश्वर की ही मानना और उनका आदर- सम्मान करना चाहिए । ऐसे प्रेम को ही निःस्वार्थ प्रेम कहा जा सकता है । इसी प्रेम के द्वारा हमें ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए ।

ब्रह्मचर्य का ठीक पालन करने के लिए संयम की आवश्यकता है । ब्रह्मचर्य का आधार प्रधानतः मन है । मन को सदा शुद्ध एवं पवित्र रखना चाहिए । इसके लिए ईश्वर का ध्यान करना और उनकी प्रार्थना आवश्यक है । मानव- सेवा के लिए भी ब्रह्मचर्य की आवश्यकता है । ब्रह्मचर्य का व्रत उन्हें सुखद था कि उसके बिना जीवन के बारे में वे सोच भी नहीं सकते थे ।[३]

१: विषयाविनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः । रसवर्जं रसो-प्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते ।।
२: अकाल पुरुष गान्धी - पृ० ८२   ३: आत्मकथा- पृ० २७६

गान्धीजी ने ब्रह्म को सत्य अर्थात् परमेश्वर माना है। उनसे साक्षात्कार करने के लिए जो आचार किया जाता है उसे ब्रह्मचर्य का व्रत बताया है।[1]

ब्रह्मचर्य माने मनसा, वाचा, कर्मणा इन्द्रियों को संयमित रखना है।[2] स्वादेन्द्रिय आदि इन्द्रियों का दमन ब्रह्मचर्य के लिए आवश्यक है। ब्रह्मचर्य के वास्तविक और शुद्ध पालन के लिए सुखदायक अनेक वस्तुओं और कर्मों को त्यागना पड़ता है। ब्रह्मचारी हमेशा भगवान का दर्शन करता है, ईश्वर- भजन सुनता है, ईश्वर की आराधना करता है और शरीर की रक्षा के लिए आवश्यक भोजन मात्र खा जाता है। ब्रह्मचारी कोई नाटक, सिनेमा देखने या कोई विलासी नृत्य गान आदि सुनने में देखने में भाग नहीं लेता। वह हमेशा ईश्वर की चिंता में अपना दिन बिताता है और विरागी होकर जीवन यापन करता है। वह अपने ही मन में किसी की कोई बुराई नहीं चाहता। वाणी से किसी को अनिष्ट नहीं सुनाता और हाथों का किसी का द्रोह भी नहीं करता।

वह सब की भलाई ही चाहता है। फिर भी ब्रह्मचारी ब्रह्मचर्य का व्रत निभाने के लिए इन्द्रियों के दमन पर अधिक बल देता है। ब्रह्मचर्य का पालन सच्ची एकाग्रता से ही किया जाता है। एकाग्रता के लिए इन्द्रियों पर संयम अत्यंत जरूरी है। संयम से ही एकाग्रता मिलती है। जिसके मन में सांसारिक सुख की इच्छा रहती है, उसे एकाग्रता कदापि मिलती नहीं। उसका मन चंचल रहता है। लेकिन जो व्यक्ति अत्यंत संयमशील होता है, उसे एकाग्रता जरूर मिलती है। एकाग्रचित्त से ब्रह्मचर्य का पालन करने से ही परमात्मा की प्राप्ति हो सकती है।

सत्याग्रही के लिए ब्रह्मचर्य का व्रत सत्य- व्रत के समान अनिवार्य है। ऐसे व्यक्ति को ब्रह्मचर्य का व्रत लेना ही चाहिए। सत्याग्रही का उद्देश्य ईश्वर- साक्षात्कार

- -

१: ब्रह्मचर्य अर्थात् ब्रह्म की - सत्य की - शोध में चर्या - अर्थात् तत्संबंधी आचार। - साहित्य सम्मिलन - भाग ५ - पृ० ६८

2. Brahmacharya consists in the fullest control over all the senses in thought, word and deed. Thus Brahmacharya means self- control in all directions.

The Political Philosophy of Mahatma Gandhi - P. 76

होता है। अतः उसे ब्रह्मचर्य का पालन करना ही चाहिए। सत्य का आग्रह अर्थात् परमेश्वर का दर्शन करने की इच्छा जिसमें है, वही सत्याग्रही है। जिसमें ब्रह्मचर्य का पालन करने की योग्यता रहती है, वही सत्याग्रह कर सकता है। जो ब्रह्मचर्य का सच्चा व्यवहार करता है, वही सत्याग्रह के द्वारा ईश्वर को पा सकता है।

ब्रह्मचर्य का अर्थ लिंग - व्यवहार पर नियन्त्रण करना बताया है। पर उसका व्युत्पत्ति के अनुसार, अर्थ यह होता है कि ब्रह्म को पहचानने का व्यवहार।[१] अतः गांधीजी ने भी इसका अर्थ यही बताया है कि ब्रह्म को पहचानने का मार्ग है ब्रह्मचर्य।

गांधीजी ने बताया है कि ब्रह्मचर्य के लिए उपवास की आवश्यकता है। इसके लिए त्याग और तपस्या जरूरी है। सुख- भोग में लीन व्यक्ति ब्रह्मचर्य का व्रत नहीं ले सकता। इसका कारण यह है कि सांसारिक सुख में ब्रह्मचर्य का पालन नहीं हो सकता। इसके लिए वैराग्यपूर्ण जीवन ही उचित है।

गांधीजी का कथन है कि ईश्वर से साक्षात्कार करने के लिए ब्रह्मचर्य अनिवार्य है। ब्रह्मचर्य का व्रती योगी का सा जीवन बिताता है जिससे उसे एकाग्रता प्राप्त होती है। इस प्रकार के एकाग्र चित्त के द्वारा ही उस परब्रह्म का ध्यान कर सकता है। ऐसे ध्यान से भगवान का दर्शन होता है। ईश्वर का ध्यान करते समय अपने चित्त या मन को उन्हीं के विचार में लीन रखना चाहिए। इसके लिए ब्रह्मचर्य आवश्यक है। ब्रह्मचर्य के व्रत में सांसारिक सुख भोग को भूलने का अवसर मिलता है। ईश्वर को पाने का अवसर भी मिलता है।

गान्धीजी ने जीने के लिए ब्रह्मचर्य रखना आवश्यक माना था कि उसके बिना उन्हें जीवन नीरस तथा पाशविक लगता था। ब्रह्मचर्य का पालन करते करते गांधीजी ने बताया है कि ब्रह्मचर्य का व्रत लेने के पहले उन्होंने आनंद का जैसा भोग किया था, उससे बहुत अधिक आनंद का रस ब्रह्मचर्य - व्रत लेने के बाद --

- -

1. Brahmacharya means control over sex function . Etymologically brahmacharya means the discipline which leads to the realisation of the Brahman. So Gandhiji defines Brahmacharya as that correct way which leads to Brahman.

- The Political Philosophy of Mahatma Gandhi - P. 76 .

छूटा था।[१] अगर ब्रह्मचर्य का व्रत न होता तो समस्त लोग हिंसक बन जाते। ब्रह्मचर्य के अभाव में पाशविक, कृत्यों की अधिकता होती है। ब्रह्मचर्य में इनको रोकने की शक्ति है। गांधीजी तो संसार में व्याप्त हिंसा और पाशविकता को दूर करने के पक्ष में थे थे। अतः उन्होंने ब्रह्मचर्य का व्रत लिया।

गांधीजी बताते थे कि जिसका मन विकाराधीन रहता है, उसके ब्रह्मचर्य का पालन करने का प्रयास करने से कोई फायदा नहीं है। उसका मन तो सदा विकारपूर्ण होता है। फिर भी वह उपवास, संयम आदि से अपने मन को कष्ट पहुंचाता है। लेकिन उसे कोई फल नहीं मिलता। ब्रह्मचर्य के पालन में मन को विकारों से मुक्त करना चाहिए। विकारातीत मन ही ब्रह्मचर्य व्रत का पालन ठीक तरह से कर सकता है। इसलिए मन को विकार हीन बनाने में गांधीजी अत्यंत प्रयत्नशील थे। गांधीजी एक साधारण व्यक्ति ही थे, विकारी जीव भी थे। फिर भी ब्रह्मचर्य के पालन के समय वे अपने मन के विकारों से दूर संयमित रहने में समर्थ थे। उनके अनुसार मन का विकारी होना, उसका दूषित या मलिन होना है। इसलिए उन्होंने इन्द्रियों के दमन पर अधिक बल दिया।

ब्रह्मचर्य का और एक अर्थ गांधीजी ने बताया है कि ब्रह्म या सत्य को पाने में जो अन्वेषण और उससे संबंधित आचार किया जाता है, वही ब्रह्मचर्य है। सत्य को पाने के लिए अनेक कठिन प्रयत्न करने पड़ते हैं। उसे पाना आसान नहीं है। सत्य को प्राप्त करने के लिए उपवास, इन्द्रिय - निग्रह, संयम आदि क्रियाओं की चर्या हो ब्रह्म की चर्या ब्रह्मचर्य मानी जाती है। किसी को प्राप्त करने के लिए हमें कुछ न कुछ प्रयत्न करना ही पड़ता है। ब्रह्मचर्य के लिए व उपर्युक्त प्रयत्न अनिवार्य हैं। इस दृष्टि से सत्य की खोज जो की जाती है, वह भी एक प्रकार का यत्न है। उसी प्रकार ब्रह्म को पाने की जो चर्या है, वह ब्रह्मचर्य है।

१: संयम पालने की वृत्ति तो मुझ में १९०१ से ही प्रबल थी, और मैं संयम पाल भी रहा था, पर जिस स्वतंत्रता और आनंद का उपभोग मैं अब करने लगा, सन् १९०६ के पहले उसके वैसे उपभोग का कोई स्मरण मुझे नहीं है। - आत्मकथा - पृ० १७९

ब्रह्मचर्य का अनुष्ठान सुखसागर की लहरों में डूबने - तैरने वालों के लिए नहीं है । ऐसे लोग ब्रह्मचर्य से अपरिचित रहते हैं । गान्धीजी के अनुसार जो व्यक्ति धार्मिक या आध्यात्मिक बनता है और देश- सेवा से मुक्ति पाना चाहता है, वही इसका पालन कर सकता है । ब्रह्मचर्य के पालन के मूल में ईश्वर - विश्वास और ईश्वर- भक्ति वर्तमान है । ब्रह्मचर्य के व्रती को ईश्वर पर अनन्त विश्वास होना और समस्तसंसार से प्रेम करना चाहिए । इस सार्वजनिक प्रेम से ही जनता की सेवा संभव है । इसलिए उन्होंने धार्मिक बनने और सेवा करने पर जोर दिया । अगर ब्रह्म की प्राप्ति न होती तो ब्रह्मचर्य व्रत से कोई फायदा नहीं है । हम जो काम करते हैं, उसका फल हमें मिलना ही चाहिए । यही गांधीजी का भी मत था । गांधीजी को ब्रह्मचर्य के व्रत के पालन का फल मिला था । उन्होंने स्वयं अपने को आत्म- बलिदान किया और उस परमेश्वर के पास वे पहुंचे गये ।

ब्रह्मचर्य का पालन करते समय रामनाम का जप करना चाहिए ।[१] इससे यह विचार आ जाता है कि जीव भगवान का अंश है और भगवान प्रत्येक मनुष्य के मन- मन में निवास करते हैं । राम नाम से ब्रह्मचर्य के व्रती को धैर्य और बल मिलता है । रामनाम का जप करने से उसमें एक प्रकार की ईश्वरीय भक्ति और शक्ति दोनों उत्पन्न होती हैं । भगवान श्रीरामचन्द्रजी के गांधीजी अनन्य उपासक थे । उनके मन में श्रीरामके प्रति अपार भक्ति थी और वह भक्ति तब से उनकी मानस- भूमि में फूटी जब उन्होंने रामनाम की महिमा के बारे में कुछ सुना था । रामनाम उनके लिए इतना प्रिय था कि वे उसका जप किये बिना क्षण तक भी नहीं रह सकते थे । राम नाम ही उनके लिए सब कुछ था । वही उनके जीवन का आधार था । गांधीजी ने बताया है कि प्रत्येक व्यक्ति के मन में ईश्वर रहते हैं लेकिन वह इस बात को नहीं जानता। अत: उसे इसका ज्ञान होना चाहिए यही गांधीजी का विचार था । इसलिए उन्होंने राम नाम की रटन पर अधिक प्रबलता से जोर दिया ।

१: ब्रह्मचर्य के पालन के लिए रामबाण उपाय तो इस बात का अनुभव होना चाहिए कि यह जीव परमात्मा का ही अंश है और परमात्मा का हमारे हृदय में वास है ।

- गान्धीजी विचार रत्न - पृ० ७१

ब्रह्मचर्य मन ह की स्थिति है और यह आन्तरिक प्रवृत्ति है। शरीर की अपेक्षा मन के द्वारा ही ब्रह्मचर्य का पालन खूब कर सकता है। ब्रह्मचर्य के लिए शारीरिक या मानसिक निग्रह की आवश्यकता है। मन को चारों ओर से संयम रखने से ब्रह्मचर्य का व्रत हम कर सकते हैं। हमारे शरीर की समस्त इन्द्रियों को नियन्त्रित करना बहुत जरूरी है। इसके लिए मन को शुद्धता, प[illegible]ता, निर्मलता आदि भी आवश्यक हैं। इस प्रकार सब प्रकार के निग्रह से हम ब्रह्मचर्य का पालन ठीक - ठीक कर सकते हैं।

किसी को भी जबरदस्ती से इस व्रत का पालन कराना नहीं चाहिए।[१] क्योंकि इसमें जबरदस्ती या मजबूरी से कोई काम नहीं चलता। इसका कारण तो गान्धीजी ने बताया है कि ब्रह्मचर्य का जन्म भीतर से ही होता है। जिसमें इसे अपनाने की रुचि होती है। और उसे अच्छी तरह निभाने की योग्यता रखती है, वही इसका पालन कर सकता है। जो इसे स्वीकार करने में कठिनाई प्रकट करता है., उसके अनमना होकर अपनाने से कोई फायदा नहीं। ब्रह्मचर्य को अपनाने की रुचि अपने अपने मन के भीतर स्वयं ही उत्पन्न होनी चाहिए। प्रत्युत किसी को जबरदस्त ब्रह्मचर्य का व्रती बनाने क से कोई लाभ नहीं।

ब्रह्मचर्य का व्रती बड़ा ही दृढ़ चित्त रखता है। उसे किसी प्रकार का विकार छू तक नहीं सकता। उसे सचमुच निर्विकार रहना चाहिए। गान्धीजी ने बताया है कि ब्रह्मचर्य के व्रत में जो दृढ़- चित्तता से काम करता है, उसके सामने अप्सरा ही आकर नाचे, तो भी वह कदापि चंचल नहीं हो सकता। वह व्रती अपनी चारों ओर की गड़बड़ी से अज्ञात होता है और इसके आचरण के लिए यह अज्ञातता अत्यन्त उपयोगी है।

इसी व्रती का हृदय शुद्ध और पवित्र रहना चाहिए। उसमें वैकारिक मलिनता कहीं से न आवे। यदि हृदय पवित्र है, तो विकारेन्द्रिय भी विकारातीत होते हैं। अतः हृदय - शुद्धि सर्वथा अनिवार्य है। हृदय शुद्धि से ही ब्रह्मचर्य का पालन हो सकता है। वह कदापि विकारों के जाल में नहीं फंसता।

- -

१: किसी को ब्रह्मचर्य पालन के लिए मजबूर नहीं किया जा सकता। वह तो भीतर से पैदा होना चाहिए। -

गान्धी वि[illegible]ार रत्न - पृ० ७९

साधारणतः विषय की ओर जनता के मन में आसक्ति पैदा होती है। लेकिन इससे दोष ही होता है, गुण नहीं। गान्धीजी का कथन यह है कि जनता विषयासक्ति रख सकती है, किन्तु जगत का अस्तित्व ब्रह्मचर्य पर ही हो सकता है और हो सकेगा सकेगा भी।[१] विषय मात्र पर निर्भर रहने से संसार की उन्नति की अपेक्षा अवनति ही होती है। अतः विषय में आसक्त रहना ठीक नहीं है। ब्रह्मचर्य से संसार की उन्नति हो सकती है। ब्रह्मचर्य पर यदि संसार का अस्तित्व रहता है, तो वह कल्याण के पथ पर अग्रसर होगा। गान्धीजीने संसार का कल्याण ब्रह्मचर्य के द्वारा ही संभव बताया है।

अब यह स्पष्ट हो जाता है कि गान्धीजी की ये मान्यताएं अत्यन्त गहरी और साधारण व्यक्तियों के लिए अगम हैं। उन्होंने ब्रह्मचर्य का ठीक - ठीक यह पालन किया है। त्याग की उग्र मूर्ति होने के कारण वे ब्रह्मचर्य के अनुष्ठान में जितनी चीजों को छोड़ना है, छोड़ सकें। यह उनकी अतिशयपूर्ण योग्यता ही कह सकते हैं। इसमें कोई शंका की आवश्यकता नहीं कि गान्धीजी द्वारा ब्रह्मचर्य का नियमानुकूल जैसा पालन हुआ है, वैसा अन्य किसी के द्वारा न हुआ होगा। पहले वे विषय - भोगी रहने पर भी, ब्रह्मचर्य व्रती होने के बाद, अद्भुत ब्रह्मचारी ही रहें।

अपरिग्रह :

अध्यात्मवाद के आत्मतत्त्व को प्राकृतिक बन्धनों तथा विषय-वासनाओं से दूर रखने वाला पांचवां तत्त्व है अपरिग्रह। अपरिग्रह[२] शब्द वैदिक युग से ही चलता है। इसे ' असंग्रह ' शब्द से भी सूचित किया जाता है। ' अपरिग्रह शब्द की उत्पत्ति अ + परि + ग्रह से हुई है।

१: विषयासक्ति जगत में जरूर रहेगी, परन्तु जगत की प्रतिष्ठा ब्रह्मचर्य पर निर्भर है, और रहेगी -

गान्धीजी विचार रत्न - पृ० ७२

२: अंग्रेजी में इसके लिए ' नान पोसेशन ' शब्द प्रयुक्त होता है।

'अपरिग्रह' की परिभाषा यों दी जा सकती है कि जिसका परिग्रह न हो, वह अपरिग्रह है। अपरिग्रह का अर्थ है वस्तुओं के संग्रह की इच्छा न रखना।[१] यह उस परिग्रह का उल्टा शब्द है जिसका अर्थ है सभी प्रकारों से धन या संपत्ति को इकट्ठा करना। लेकिन अध्यात्मवाद में इसे अपरिग्रह शब्द से निरूपित किया गया है। आत्मतत्व का यह नियम है कि भोगो और भोगकर स्वयं हट जाओ। यही अपरिग्रह का भी नियम है। दूसरों की धन- संपत्ति को लेकर अपना जीवन बिताना परिग्रह है। अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए दूसरों के धन की इच्छा करना उचित नहीं। अपने ही कमाये धन से अपना जीवन निर्वाह करना चाहिए। एक व्यक्ति को अपने खर्च के लिए जो धन पर्याप्त है, उतना ही उसके पास रखना चाहिए। अगर उससे भी अधिक धन रहे तो उसे दीन दलित एवं पीड़ितों को बांट देना चाहिए। यही विचार अपरिग्रह के अन्दर बताया गया है। अत: इसमें भोग की अपेक्षा त्याग को, प्रवृत्ति की अपेक्षा निवृत्ति को, तृष्णा की अपेक्षा दान को और संग्रह की अपेक्षा अपरिग्रह अथवा असंग्रह को स्थान दिया गया है।

परंपरा और विकास :

अपरिग्रह का प्रतिपादन हमें वैदिक से ही प्राप्त होता है। ब्रह्मचर्य व्रत के अनुष्ठान के लिए अपरिग्रह अनिवार्य माना गया है। अत: अहिंसा, सत्य, ब्रह्मचर्य आदि आध्यात्मिक तत्वों के साथ इस तत्व का भी समावेश अवश्य हुआ है। यजुर्वेद में एक लोक-प्रसिद्ध सूक्त है जिसमें अपरिग्रह की महिमा का समर्थन किया गया है।[२]

- -

१: 'परि' का अर्थ है चारों तरफ से, 'ग्रह' का अर्थ है ग्रहण करना, पकड़ना। 'परिग्रह' का अर्थ हुआ किसी चीज़ को कसकर चारों तरफ से पकड़ लेना ; 'अपरिग्रह' का अर्थ हुआ पकड़ को ढीला कर देना, छोड़ देना , - वैदिक संस्कृति के मूलतत्व - पृ० ३१०,३११

२: ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किंच जगत्यां जगत् ।
तेन त्यक्तेन भुंजीथा मा गृध: कस्यस्विद्धनम् ।।
- यजुर्वेद - चत्वारिंशोऽध्याय: - पृ० ५५३

मनु ने अपरिग्रह को पांच व्रतों के अन्तर्गत रखा है। उन्होंने बताया है कि अहिंसा, सत्य के अन्तर्गत अपरिग्रह भी भगवान के साक्षात्कार के लिए अनिवार्य है।

`योग दर्शन` में अष्टांग योग के `यम` के अन्तर्गत भी अपरिग्रह का विवेचन किया गया है।[1] इसमें पर-द्रव्य को स्वीकार न करना अपरिग्रह माना गया है। `गीता` में अपरिग्रह के बारे में कुछ विशेष प्रसंगों पर भगवान कृष्ण ने बताया है एक जगह उनका कथन यह है कि योगी जनों को एकांत में रहना चाहिए, उन्हें सभी इच्छाओं को त्यागना चाहिए और किसी भी परिग्रह की कामना नहीं करनी चाहिए।[2] और एक जगह पर ईश्वर से साक्षात्कार होने की बात बताते समय श्रीकृष्ण ने कहा है कि ऐसे साधक को अहंकार, बल, घमण्ड, परिग्रह आदि को त्यागना चाहिए।[3] उन्होंने पुन: इस बात का समर्थन करते हुए बताया है कि निष्काम कर्म और अपरिग्रह की भावना को रखने वाला व्यक्ति पाप का भागी नहीं बनता।[4] भागवत में ब्राह्मण में परिग्रह जन्य दोष पर विचार करते हुए अपरिग्रह पर परोक्ष रूप से प्रकाश डाला है।[5]

- -

१: तत्रा-हिंसा सत्यास्तेय ब्रह्मचर्यापरिग्रहा: यमा: -
बुद्ध और गांधी - नवीन निबंध - पृ० १५

२: योगी युंजीत सततमात्मानं रहसि स्थित: ।
एकाकी यतचित्तात्मा निराशीरपरिग्रह: ।।
- गीता - ६ अध्याय: - १० श्लोक: -पृ० १६२

३: अहंकारं बलं दर्पं कामं क्रोधं परिग्रहम् ।
विमुच्य निर्मम: शान्तो ब्रह्मभूयाय कल्पते ।।
- गीता - १८ अध्याय: - ५३ श्लोक: , पृ०३५६

४: निराशीर्यतचित्तात्मा त्यक्तसर्वपरिग्रह: ।
शारीरं केवलं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्बिषम् ।।
- गीता - ४ अध्याय: - २१ श्लोक

५: परिग्रहो हि दु:खाय यद् यत् प्रियतमं नृणाम् ।
अनन्तं सुखमाप्नोति तद् विद्वान् यस्त्वकिंचन: ।।
- भागवतम् - ६ अध्याय- एकादश स्कन्ध: - प्रथम श्लोक:

जैनों के व्रतों के अन्तर्गत अपरिग्रह को स्वीकार किया गया है। जो उनके द्वारा बताये गये ` संवर तत्व ` के अन्तर्गत है जिन्हें जीवन - बन्धनों से मुक्ति पाने के लिए लिया गया है। ` संवर ` का अर्थ है कार्मिक पुद्गलों का जीव से छूटना।[१] बुद्ध ने भी अपने दस नियमों के अन्तर्गत अपरिग्रह का विवेचन किया गया है। ` उपासकाध्ययन ` में सोमदेव व सूरि ने परिग्रह अपरिग्रह के दोष - गुणों पर प्रकाश डालते हुए बताया है कि बाह्य और आभ्यान्तरिकवस्तुओं को देखकर जिसके में ` यह मेरी है ` - ऐसी भावना उत्पन्न होती है, वह परिग्रह है और जिसके मन में अंतरंग एवं बहिरंग दृष्टि से निस्पृहता रहती है, वह तुरंत स्वर्ग और मोक्ष की लक्ष्मी का स्वामी बनता है।[२]

गान्धीजी और अपरिग्रह :

प्राचीन युग से प्रचलित अपरिग्रह को महात्मा गान्धीजी ने बड़ी व्यापक दृष्टि से अपनाया। उन्होंने उसे अपने ` एकादश व्रत ` के अन्तर्गत महत्वपूर्ण स्थान दिया। गान्धीजी ने इस धार्मिक प्रवृत्ति को भारत की राजनीति के क्षेत्र में, देश की समस्याओं को सुलझाने के लिए प्रयुक्त किया। अब वह भारतीय राजनीति का एक अंग बना है। गान्धीजी ने अपरिग्रह का प्रयोग केवल व्यक्तिगत बातों के लिए न करके इस उद्देश्य से किया है कि देश में गरीबी और दरिद्रता मिट जाये। मानव अपनी आवश्यकताओं को कम करके, उसके आवश्यक धन का खर्च करके, शेष बचे हुए धन से दरिद्रों और गरीबों की सहायता करने से देश में दरिद्रता और गरीबी एक हद तक मिट सकती है।

गान्धीयुग का अपरिग्रह :

गान्धीजी के युग में अपरिग्रह का प्रयोग विश्व- कल्याण की दृष्टि से शुरू हुआ था। देश में वर्तमान गरीबी और दरिद्रता को मिटाने के लिए उन्होंने भारत की

१: ममेदामिति संकल्पो बाह्याभ्यन्तरवस्तुषु
परिग्रहो मतस्तत्र कुर्याच्चेतो निकुंचनम् ।।
- उपासकाध्ययन - ३२ वाँ कल्प - ४३२ श्लोक - पृ० २०३

२: अस्पर्शमर्थमंतः यामावश्यं(संसारावर्तवर्तनम्) वाक्ते गुणाम् ।
अघसंचयचित्तं चेत: संसारावर्तं वर्तनम् ।।
- वही० ४४६ श्लोक: , पृ० २०५

राजनीति में इस तत्व का व्यवहार किया। अत: उन्होंने अपरिग्रह के बारे में अपनी जो निजी मान्यताएं हैं, उनका प्रतिपादन किया है ताकि भारत की जनता उनको समझ

गांधीजी के मत में अपरिग्रह आध्यात्मिक है, भौतिक नहीं, क्योंकि भौतिक वातावरण में भोग प्रधान है और उसमें प्रयोग और विकार संभव नहीं। इसका प्रयोग करने के लिए मनुष्य को वस्तुओं पर अधिकार जमाने की लालसा को दूर करना चाहिए। ऐसी चीज़ों के मोह से, जो मनुष्य से संबंध रखती हैं हमेशा दूर रहना चाहिए इसका तर्क यह है कि पारस्परिक संघर्ष जो होता है, उसका कारण भौतिक सभ्यता है इसी से समाज और राष्ट्र भी संघर्षमय होते हैं और हिंसक भी। गांधीजी ने इस संघर्ष आध्यात्मिक सभ्यता से दूर करना चाहा है और भौतिक सभ्यता की जगह आध्यात्मिक सभ्यता को लाने का प्रयास किया। जो इसके इच्छुक हैं, वे अपनी आवश्यकताओं को कम करके, दूसरों की मदद करने की त्याग - धर्मभावना से प्रयत्न करने में अपने को संतुष्ट मान लें।[1]

उन्होंने आगे बताया है कि मानव अपनी आवश्यकता की पूर्ति करने के लिए भौतिकता की ओर न बढ़े। इससे वह अपनी पूर्ति मात्र कर सकता है। समाज, देश या जनता की नहीं। अपरिग्रह में वे व्यष्टि की सहायता पर नहीं समष्टि की सहायता करने पर बल दिया है।

अपरिग्रह को सत्य और अहिंसा की रक्षा का मार्ग बताया है। इसके द्वारा जनता में समानता और एकता की भावना फूट पड़ती है। ऐसी स्थिति में ही सत्य और अहिंसा की रक्षा भी हो सकती है। अपरिग्रह की भलाई में ही सत्य और अहिंसा सुरक्षित रह सकती हैं।

सत्य की खोज करने वाला व्यक्ति, जो अहिंसक ही हो सकता है, परिग्रह या संग्रह नहीं करता।[2] इसका कारण यह है कि अहिंसक दूसरों का कष्ट

- -

१: इस आध्यात्मिक सभ्यता का आधार व्यक्ति का परलोक को लक्ष्य मानकर सांसारिक समृद्धि की उपेक्षा करना और अपनी आवश्यकताओं को कम करके त्याग की भावना में संतोष पाना है। - गांधीवाद की शव-परीक्षा पृ० १५

२: सत्य - शोधक अहिंसक परिग्रह नहीं कर सकता - गांधी-विचार-रत्न- पृ० ७४

जानता है और पराई पीर जानने वाला होता है। दूसरों का दुख उसके लिए दु:ख-दायी और उनका सुख उसके लिए सुखदायी होता है। वह अपने को ऐसे लोगों की उन्नति एवं सुधार के लिए कर्तव्य के क्षेत्र में अर्पित करता है।

डा० सत्येन्द्र ने गांधीजी के अपरिग्रह की दूसरी व्याख्या दी है कि जीवन में त्याग और तप का अर्थ ही अपरिग्रह है।[१] उन्होंने यही बताने का प्रयास किया है कि त्याग और तप ही अपरिग्रह है और अपरिग्रह ही त्याग और तप। अपनी आवश्यकताओं को कम करने तथा उसी से संतुष्ट होने के लिए त्याग की परम आवश्यकता है। वैसा ही दूसरों के लिए अपना धन खर्च करने और उनकी हार्दिक सहायता करने के लिए तपस्या का जीवन भी बिताना पड़ेगा। इसका स्पष्टीकरण आगे दिया जाता है।

गांधीजी ने बताया है कि अभ्यास के द्वारा जो व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं को कम करता है, वह हमेशा सुखी रहता है। अभ्यास से यहां मतलब है त्याग और तपस्या। अभ्यास से ही अपरिग्रह का आचरण कर सकते हैं। इस अभ्यास के लिए कठिन प्रयत्न करना चाहिए। त्यागी एवं तपसी जन ही इस अभ्यास का प्रयोग कर सकता है। गांधीजी बड़े ही अनुभवी त्यागी थे और अखण्ड तपस्वी भी थे। उन्होंने इस अभ्यास द्वारा अपरिग्रह का निर्वाह किया और इसे जनता के सम्मुख आर्थिक सुधार की दृष्टि से रखा।

साधारण जन को अपनी आवश्यकताएं पूरी करने के लिए समाज की आर्थिक स्थिति को परिवर्तित करना नहीं चाहिए।[२] प्रत्युत अपनी अपनी आवश्यकताओं

१: त्याग और तप का दूसरा अर्थ है आवश्यकताओं को कम करना और अपने को दूसरों के लिए, दूसरों में तादात्म्य भाव से अर्पण।

- समीक्षात्मक निबंध, डा० सत्येन्द्र - पृ० १४३

२: सर्वसाधारण को अपनी आवश्यकताएं पूरी करने के लिए समाज की आर्थिक व्यवस्था में परिवर्तन करने की चेष्टा नहीं करनी चाहिए। बल्कि अपनी आवश्यकताओं को कम करके संतोष द्वारा उसी व्यवस्था की रक्षा जीवन का उद्देश्य मान लेना चाहिए। -

गांधीवाद की शव - परीक्षा - पृ० ५०

को कम करके, सन्तोष के साथ आर्थिक स्थिति की रक्षा ही जीवन का उद्देश्य मानना चाहिए। अपनी आवश्यकताओं को पूर्ण करने के लिए समाज की आर्थिक स्थिति को बदलने से दूसरों की हानि होती है। लेकिन अपनी आवश्यकताओं को जब कम करते हुए अर्थ की स्थिति बढ़ाने का प्रयास करते हैं, तब यह बहुत उपयोगी सिद्ध होता है। दूसरों के लिए सब कुछ त्यागने से हमें सब कुछ प्राप्त होता है। दूसरों की सहायता करने से हमें सहायता मिलती है। इस प्रकार अपरिग्रह में परोपकार, पर-चिंता, परोन्नति आदि की भावनाओं के जागृत होने का अवसर मिलता ही है।

अपरिग्रह का और एक अर्थ है भौतिक वस्तुओं पर निर्भर न रहना। वह निजी संपत्ति को समाप्त करने पर बल देता है। इसका मतलब यह है कि एक व्यक्ति को अपनी संपत्ति को अकेला भोगने का अधिकार नहीं दिया जा सकता। अपरिग्रह इस विचार पर बल देता है कि किसी भी व्यक्ति को जो अपने पास बहुत अधिक धन रखता है, उसे स्वयं न भोगकर अपनी आवश्यकता के बाद बचने वाले धन को दूसरोंकी आवश्यकता के लिए उपयोगी बनाना चाहिए। यही इस तत्व का परम ध्येय है। इस दृष्टि से अपरिग्रह ट्रस्टीशिप पर बल देता है जिसमें आवश्यकता से अधिक संपत्ति को सुरक्षित रखा जाता है और जनता की उन्नति के लिए खर्च किया जाता है।

आध्यात्मिक दृष्टि से देखने पर अपरिग्रह ईश्वर के साक्षात्कार का साधन है। अतः ईश्वर की चिंता मन में रखते हुए अपरिग्रह को अपनाना चाहिए। लेकिन परिग्रही तो ईश्वर के चिंतन से दूर ही रहता है और इसलिए ही वह पाप-कृत्य करता रहता है। गांधीजी इस कारण से ही परिग्रह के त्याग और अपरिग्रह के स्वीकार की चुनौती दी है।

उन्होंने बताया है कि अपरिग्रह के द्वारा जो आज का मात्र उपभोग करता है, तो उसके कल के उपभोग के लिए भगवान ही अपनी ओर से कुछ सहायता करेंगे। इसका मतलब यह है कि जो व्यक्ति सप्ताहों, महीनों, वर्षों तक के लिए संग्रहीत कर रखता है वह पाप तथा दुःख की बात है। गांधीजी के अनुसार वह परिग्रह है। प्रत्युत जो व्यक्ति जो अपनी कमाई अथवा संग्रह से प्रतिदिन का भोग करता है, अर्थात् उसकी कमाई या संग्रह एक दिन के लिए पर्याप्त होता है, उसीके लिए कल की चिंता

नहीं करनी पड़ती । कारण यह कि वह दिन- दिन कमाता है और उससे सारे दिन बिताता है । ऐसे लोगों पर भगवान की कृपादृष्टि तुरन्त अनुभव होती है और भगवान स्वयं ही उसकी सहायता करने के लिए तैयार होते हैं । ऐसे लोगों को ईश्वर पर विश्वास रहता है और वे यों सोचने लगते हैं कि आज का दिन ईश्वर की कृपा से यों गुजर गया और इसी प्रकार कल का दिन भी अगर उनकी कृपा होगी तो गुजर जाएगा। यह विश्वास स्थायी होने पर उनका जीवन सुख से बीतता है ।

गांधीजी ने इस बात का समर्थन किया है कि जो व्यक्ति श्रम नहीं करता, वह यह नहीं जानता कि भगवान उसका उपकार करने वाले हैं । इसलिए वह परिग्रह की प्रवृत्ति बढ़ाता रहता है । लेकिन जो व्यक्ति कठिन परिश्रम करता है और अपरिग्रह का पालन करता है, उसकी मदद भगवान करते हैं । उनका कथन यह है कि अश्रमी हमेशा ईश्वर की चिंता से अज्ञानी रहता है और वह परिग्रह या संग्रह के बारे में सोचता रहता है । कहने का तात्पर्य यह है कि जिसके मन में ईश्वर के प्रति अनन्य विश्वास रहता है वह कदापि संग्रह नहीं करता । अत: अपरिग्रह का आचरण करने वाला ही शुद्ध ईश्वर - विश्वासी होता है । उसके बिना अपरिग्रह का पालन संभव नहीं है ।

अपरिग्रह को गांधीजी ने समाज के आर्थिक सुधार के अंतर्गत रखा है। स्वदेशी भावना और शारीरिक परिश्रम को बढ़ाने का साधन है यह । अपरिग्रह से प्रत्येक देश की आर्थिक दशा सुरक्षित रहती है और इससे यह ज्ञात हो सकता है कि देश की तथा वहां की जनता की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए प्रस्तुत देश की निजी संपत्ति पर्याप्त है । अर्थात् उसे दूसरे देश की शरण लेने की आवश्यकता नहीं पड़ती । इतना ही नहीं प्रतिदिन कमाने की आवश्यकता पड़ने से शारीरिक श्रम की महत्ता और मूल्य बढ़ता जाता है ।

- -

१: ------ जिसकी हमें आज आवश्यकता नहीं है, उसे भविष्य के विचार से संग्रह करके रखना परिग्रह है । परमेश्वर पर विश्वास रखने वाला यह मानता है कि जब जिस वस्तु की स्पष्ट आवश्यकता होगी तब वह मिल ही जाएगी । इस कारण वह किसी प्रकार के संग्रह की उपाधि में पड़ता ही नहीं । - गांधी - विचार- दोहन - पृ० १२

जब मानव- मन अपरिग्रह का उपदेश देता रहता है, तब मानव-शरीर तो परिग्रह का काम करता रहता है।[१] ठीक है, मानव का शरीर अपने अस्तित्व के लिए कई चीजों को संगृहीत कर रखता है। जब तक शरीर में प्राण रहते हैं, तब तक वह क्रिया शील है। प्राण की अपेक्षा शरीर की पुष्टि और शक्ति के लिए अनेक चीज़ों की आवश्यकता है। इन चीज़ों से शरीर अपनी आवश्यकता के लिए उपयोगी सार को संगृहीत करके रखता है।

लेकिन यह प्रवृत्ति स्वतः में संग्रह होने पर भी इसे संग्रह या परिग्रह नहीं कह सकते क्योंकि प्रत्येक शरीर अपने - अपने अस्तित्व के लिए ही संग्रह कर सकता है। दूसरों के शरीर के लिए संग्रह का कार्य करने या न करने से कोई फायदा या दोष नहीं। जिसे भूख लगती है, उसकी भूख को मिटाने के लिए वह खाता है और उसे खाना भी चाहिए। दूसरे व्यक्ति के खाने से उपर्युक्त व्यक्ति की भूख मिट नहीं सकती। अतः शरीर की दृष्टि से देखने पर यह संग्रह का कार्य नहीं। इसके का तात्पर्य यह है कि एक व्यक्ति का शरीर उसके अस्तित्व के लिए कितनी ही चीज़ संगृहीत करें, दूसरों के लिए कोई हानि न पहुंच सकती। शरीर के लिए जो चीज़ें आवश्यक हैं, वे सब अन्य चीज़ों की भांति सब के लिए समान नहीं होतीं। अतः यह परिग्रह नहीं होता।

अपरिग्रह के नियम :

अपरिग्रह का आचरण करने के लिए कुछ नियमों का पालन करना जरूर चाहिए। गान्धीजी ने बताया है कि अपरिग्रह को अपनाने वाले को अपना हृदय-परिवर्तन करना चाहिए ताकि उसमें समभाव की उत्पत्ति हो सकती है।[२] अपरिग्रही को भौतिक और आर्थिक उपयोग का कम करते हुए दूसरों की सहायता के लिए कुछ त्यागने की मनोवृत्ति उत्पन्न कर लेनी चाहिए। यही उसके हृदय - परिवर्तन की बात है। अतः अपरिग्रह के पालन के लिए आत्म- विश्वास होना चाहिए। साथ ही उसका मन परिस्थितियों के अनुकूल बदलता रहे। अर्थात् जब उसके दूसरों की सहायता के लिए

१: शुद्ध सत्य की दृष्टि से यह शरीर भी एक परिग्रह है - गान्धी विचार रत्न - पृ० ७५

२: अपरिग्रही बनने में, समभावी होने में हेतु का - हृदय का परिवर्तन आवश्यक है। - गान्धी विचार रत्न - पृ० ७४ -आत्मकथा- २२८

जब आवश्यक जान पड़ता है, तो उसे देने के लिए तैयार होना चाहिए। अपरिग्रह की दृष्टि से यही हृदय- परिवर्तन का तत्व है। दलितों और गरीबों की आर्थिक रूप से जो सहायता की जाती है वह भी अपरिग्रह है जिससे जनता के बीच में समता आ सकती है।

परिग्रह को कम करने और अपरिग्रह को बढ़ाने का प्रयत्न करना ही संस्कृति और सभ्यता का लक्षण है। परिग्रह का ध्यान हमें हमेशा रखना चाहिए। उससे देश में शांति और समाधान नहीं आ सकता। उससे हमेशा संघर्ष पैदा होता है। अत: अपरिग्रह पर ही अधिक बल दिया गया है। अगर परिग्रह कभी बढ़ जाता है तो देश की हालत बिगड़ जाती है। इसलिए प्रत्येक व्यक्ति को परिग्रह को सीमित करके अपरिग्रह को व्यापकता से अपनाना चाहिए।

जो वस्तुएं देश के अधिकांश लोगों को मिल नहीं सकतीं, उन्हें न लेना अपरिग्रह है।[१] अपरिग्रह में सर्वदा और सर्वथा समभावना को प्रमुखता दी गयी है। इस दृष्टि से देखने पर यह उचित नहीं दिखाई पड़ता कि जितने लोग एक वस्तु की खोज करके उसके न मिलने से कष्ट उठाते हैं, तब कोई एक व्यक्ति उसे प्राप्त करके अपने आप संतुष्ट होता दीख पड़ता है। इसलिए अपरिग्रह यही बताता है कि अगर अनेक लोगों को एक वस्तु नहीं मिल सकती तो उसे अपने आप छोड़कर उसका स्वयं - भोग करने की इच्छा को दूर करना चाहिए। सारी वस्तुओं का सब लोगों एक साथ मिलकर उपभोग करें यही अच्छा है।

हमें ऐसी कोई चीज़ संग्रहीत नहीं करनी चाहिए जिसका उपयोग उस दिन न होने वाला है।[२] इस प्रकार करने से सारी जनता को सारी चीज़ें संग्रह करना आसान होता है और वे शांतिपूर्वक जीवन बिता सकती हैं। इसके बदले यदि कोई चार दिन के बाद की आवश्यकता के लिए जो चीज़ खरीदनी पड़ती है उसे आज ही खरीद रखता है तो बहुत कष्ट की बात है और नुकसान की बात भी। कष्ट की बात यह है कि वह चीज़ कुछ ज्यादा खरीद कर रखने से, उस दिन कई लोगों को मिलने में

- -

१: सुवर्ण नियम यह है कि जो चीज़ लाखों को नहीं मिल सकती उसे लेने से हम दृढ़ता पूर्वक इनकार करें - गांधी - विचार- रत्न- पृ० ७४

२: अपरिग्रह से मतलब यह है कि हम ऐसी कोई चीज संग्रह न करें जिसकी हमें आज दरकार नहीं है। - गांधी विचार रत्न- पृ० ७४

कठिनाई होती है जिस दिन उसकी जरूरत होती है। नुकसान की बात यह है कि वह चीज़ कुछ पहले ही खरीदने से खराब हो जाती है या बरबाद हो जाती है।

अन्तिम नियम यह है कि अपरिग्रही को कभी कभी लाखों रुपयों की रक्षा करनी पड़ती है। उस समय में उसे इस बात का ध्यान अवश्य रखना चाहिए कि ये रुपये अपने नहीं है, वे समाज के हैं; जनता के हैं। उसे केवल इतना ही करने का अधिकार रहता है कि वह उनकी रक्षा दक्षता करे और आवश्यकता पड़ने पर उसका उपयोग ठीक ठीक करे। लेकिन उसे एक क्षण के लिए भी इन रुपयों का स्वामी बनने की चिंता तक करने का अधिकार नहीं रहता। प्रत्युत जो व्यक्ति ऐसे रुपयों का उपयोग अपने बाल- बच्चों की आवश्यकता के लिए करता है, वह परिग्रही कहा जाता है। अपरिग्रही तो ऐसे धन पर अणुमात्र भी इच्छा नहीं रखता। अपरिग्रह में पर- धन की इच्छा का बड़ा विरोध किया गया है। किसी भी संपत्ति की रक्षा करना अपरिग्रह में स्वीकार्य है। लेकिन उसका स्वामी बनना इसमें स्वीकार्य नहीं।

अस्वाद :

मनुष्य - शरीर के स्वादेन्द्रिय अर्थात् रसनाको जीत लेना अस्वाद कहा जाता है। अगर रस को जीत लिया तो, शेष सब जीता हुआ मान सकता है।[1] जिसका स्वाद या रस न लिया जाता है उसे अस्वाद कहते हैं। अस्वाद शब्द `अ और स्वाद` के मेल से बना है। मानव के शरीर- धारण तथा शरीर अस्तित्व के लिए आहार आवश्यक है। आहार न लेते हुए रहना या जीना भी असंभव है। लेकिन जब वह स्वाद के लिए होता है तब अस्वाद का व्रत टूट जाता है। अतः यहां कहा गया है कि स्वाद के पीछे न जाने और स्वाद के वश में न होने को अस्वाद व्रत बताया जा सकता है।[2]

स्वादी बनने के दो कारण होते हैं - लट्टू होकर खाना, २- हदसे ज्यादा खाना।[3] अगर अस्वादी बनने के लिए इन दोनों का तिरस्कार करना चाहिए। हमें अपने शरीर की वृद्धि के लिए योग्य आहार योग्य प्रमाण में ही लेना चाहिए। स्वादिष्ट भोजन हमेशा भोगी ही करता है, योगी नहीं।

१: गान्धी विचार दर्शन - पृ० १२४

२: गान्धी जी का जीवन- दर्शन - पृ० १२४

३: वही० पृ० १२४

गान्धीजी और अस्वाद :

अस्वाद की कोई प्राचीन परंपरा उपलब्ध नहीं। गान्धीजी ने ही अस्वाद का उल्लेख पहले पहल किया है। - ऐसा मान लेना चाहिए। गान्धीजी के मतानुसार ब्रह्मचर्य व्रत के ठीक पालन के लिए अस्वाद- व्रत आवश्यक है।[1] अत: उन्होंने अपने दैनिक आहार में बड़ा परिवर्तन डाल दिया और बिना मिर्च और मसाले का सादा आहार ले लिया। वन का पका फल ही वे अधिक खाते थे। उपवास के दिनों में किसी को कोई क्षोभ नहीं होता।

अस्वादी को जो कुछ खाना है उसकी टीका न करते हुए संतोष के साथ उसे आवश्यकतानुसार लेना है। कहने का तात्पर्य है कि जो भोजन खाता है उसे संतोष के साथ ही लेना चाहिए चाहे वह अच्छा हो या बुरा, उस पर कोई टीका नहीं करनी चाहिए। यदि बड़े विरोध के साथ भोजन करता है तो वह शरीर के लिए हानिकारक होता है। अत: जो मिलता है और जितना मिलता है उसे खुशी के साथ अपनाना।

गांधीजी ने बताया है कि जीभ अथवा रसना पर संयम से विजय प्राप्त करना दूसरी वस्तुओं पर भी विजय प्राप्त करने के समान है। रसना के द्वारा हम वस्तुओं या चीज़ों का स्वाद जान लेते हैं। स्वादिष्ट वस्तुएं तो सुख और संतोष को पैदा करने वाली होती हैं। लेकिन ब्रह्मचर्य के पालन में इनका त्याग अनिवार्य है। अत: अन्य इन्द्रियों के साथ स्वादेन्द्रिय पर नियंत्रण पाने का आदेश दिया गया है।

जिस चीज़को हम लेना नहीं चाहते और हमें जिसे पाने की इच्छा नहीं होती उसका स्वाद लेना ठीक नहीं। जो चीज़ हमें आवश्यक है, उसे मात्र लेना और उसको अपनाना ही गांधीजी के मत में अस्वाद है।

उनका कथन यह है कि अस्वाद का व्रत लेने के बाद ऐसी चीजें खाकर अपने शरीर को हानि न पहुंचानी चाहिए, जो बहुत कच्ची हों, बेपकाई हों, ठंडी हों और खारी हों। अस्वादी अच्छा और ताजा फलाहार ही लें। शरीर को दोष पहुंचाने वाली कोई चीज़ न खायें। अस्वादी के लिए सारी प्रवृत्तियों में एक सीमा रहती

१: मैं ने स्वयं अनुभव किया है कि यदि स्वाद को जीत लिया जाय, तो ब्रह्मचर्य का पालन बहुत सरल हो जाता है - आत्मकथा- पृ० १८०

है और उससे उसे बाहर न जानाचाहिए।

यहां गान्धीजी ने एक ऐसे व्रत पर विचार किया है जिसके बिना ब्रह्मचर्य का व्रत अपूर्ण रहता है। यह व्रत अत्यन्त कठिन है कि साधारण व्यक्ति इसको अपना नहीं सका। इसका पालन ऐसे महान व्यक्ति ही कर सकते हैं जो सर्वदम - संयमी हैं। गान्धीजी बड़े संयमी थे ताकि वे अस्वाद का ठीक पालन कर सकें। अस्वाद या स्वाद को जीतना अत्यन्त कठिन है। लेकिन गांधीजी के लिए यह बहुत सरल था और उन्होंने दूसरों को भी इसका पालन करने का उपदेश दिया है। अस्वादगांधीजी द्वारा निवेचित तत्व है जिसका उनके पूर्व किसी ने भी करने काप्रयास नहीं किया है। शायद यह उन लोगों के लिए असंभव सिद्ध हुआ होगा।

अभय ::

अभय शब्द से सब लोग परिचित हैं। अभय शब्द का अर्थ है निडरता। जिसका भय नहीं होतावही अभय है। मानव के व्यावहारिक जीवन में ही नहीं विविध साहित्यों में भी अभय का प्रतिपादन हुआ है।

स्वामी विवेकानंद जी ने बताया है कि अभय का प्रतिपादन वेदों में बारंबार हुआ है।[1] उन्होंने आगे यह बताने का प्रयास किया है कि भय निर्बलता का निशान है। अत: व्यक्ति को हंसी या मज़ाक की परवाह किये बिना अपना कर्तव्य करते रहना चाहिए।[2]

महाभारत में यह कहा गया है कि निर्भयता के साथ अपना कर्तव्य करने या निभाने वाला हमेशा माननीय होता है।[3] और एक जगह पर युधिष्ठिर से भीष्म ने

---

1. If you read the Vedas, you will find this word always repeated - ' Fearlessness ' Fear nothing. ' The complete works of Swami Vivekananda - P. 45

2. Fear is a sign of weakness. A man must go about his duties without taking notice of the success and the ridicule of the world. Ibid.P. 45

3. भीतमीरुणां कौरव्य कर्ता सम्मानमर्हति- भारत- शांतिपर्व-७८ अध्याय-पृ०४०५

ब्रह्म स्वरूप का लक्षण बताते हुए अभय के बारे में कहा है । [१] भागवत में अभय की अनिवार्यता पर बल दिया है ।[२]

'गीता' में अभय का समर्थन यत्रतत्र मिलता है । एक जगह मुनियों के लिए आवश्यक गुणों का समर्थन करते समय अभय का निरूपण किया उन्होंने कहा है -

दु:खेष्वनुद्विग्नमना: सुखेषु विगत स्पृह: ।
वीतराग भय क्रोध: स्थितधीर्मुनिरुच्यते ।। [३]

आगे श्रीकृष्ण ने बताया है कि राग, भय, क्रोध आदि का करने वाला व्यक्ति सीधे उनके पास पहुंच सकता है । [४] निर्भयता के साथ ब्रह्म पालन करने वाला व्यक्ति भगवान का साक्षात्कार अनायास ही कर सकता है भगवान ने बताया है कि जो जगत की घृणा नहीं करता और जिसे जगत् घृणा जो भय, विद्वेषादि का तिरस्कार करता है, वह उनके लिए सबसे प्यारा होत

- -

१: येनं पुरुषकारश्च मोक्षामोक्षौ यथा भये ।
हिंसा हिंसे तपो यज्ञ: संयमो-थ विधाविधम् ।।
महाभारतम् - शांतिपर्व: - २७ श्लोक: - १२१ अध्या: -

२: अहिंसा सत्यमस्तेयमसंगो ह्रीरसंचय: ।
आस्तिक्यं ब्रह्मचर्यं च मौनं स्थैर्यं क्षमाभयम् ।।
- भागवतम् - एकादश स्कन्ध: - ३३ श्लोक: - पृ०

३: गीता - द्वितीय अध्याय: - श्लोक ५६

४: वीतरागभयक्रोधा मन्मया मामुपाश्रिता: ।
बहवो ज्ञान तपसा पूता मद्भावमागता: ।।
- गीता - चतुर्थ: अध्याय: - १० श्लोक :

५: प्रशान्तात्मा विगत भी ब्रह्म चारिव्रते स्थित: ।
मन: संयम्य मच्चित्तोयुक्त आसीत मत्पर? ।।
- गीता - षष्ठ: अध्याय? - १४ श्लोक:

६: यस्मान्नो द्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च य: ।
हर्षामर्ष भयोद्वेगैर्मुक्तो य: स च मे प्रिय: ।। -वही- १२ अध्या

अभय को गीता के सोलहवां अध्याय के प्रथम श्लोक में देव संपत्ति के अंतर्गत के रखा गया है। उसी प्रकार इसके अठारहवां अध्याय के तीसवां श्लोक में अभय को बुद्धि की सात्त्विकी वृत्ति के गुणों में से एक गुण बताया गया है।

इस प्रकार सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य आदि तत्त्वों के समान अभय का उल्लेख भी वैदिक युग से प्राप्त होता है।

गांधीजी और अभय :-

गान्धीजी ने अपने सिद्धान्तों में अभय को बड़ा स्थान दिया है। अभय गांधीजी का एक विशेष गुण था। वे बड़े ईश्वर विश्वासी थे और रामनाम उनके लिए सकल- रोगने - संहारी था। गांधीजी को बचपन में बड़ा भय होता था। वे भूत - प्रेतादि से डरते थे। जब उनके घर की नौकरानी से रामनाम का प्रथम बार पाठ सीखा, तब से उनका भय दूर हो गया।[१] इसके बाद जब उन्हें डर लगता था तब वे रामनाम का जप करते थे। धीरे धीरे उनका भय पूर्णत: दूर हो गया है। रामनाम का बाण उन पर ठीक तरह से लग गया। बचपन में रामनाम का जप जो उन्होंने करना शुरू किया, उसकी रट उन्होंने अपनी अंतिम सांस लेते समय भी ली थी। गांधीजी जब युवक बने तब से अपनी मृत्यु तक वे किसी से नहीं डरे। गांधीजी ने भारत का जो शासन किया था उस समय वे छल, कपट, धोखा, भीषणता आदि से नहीं डरते थे। उन्होंने यह समझ लिया कि अभय अथवा निर्भयता से एक व्यक्ति सब कुछ कर सकता है। अत: उन्होंने अपने देश की जनता को सदा निडर रहने का उपदेश दिया।

गान्धी की मान्यताएं :

गान्धीजी ने अभय का मतलब यही बतलाया है कि बाह्य जगत् के भय से मुक्ति प्राप्त करना। जैसा कि मृत्यु का भय, धन- संपत्ति का भय, परिवार - जन्य भय, रोग से भय, नृशंसता का भय आदि।[२]

१: आत्मकथा - पृ० २५-२६

२: अभय के मानी है बाह्य भय मात्र से मुक्ति मौत काभय, धन-दौलत लुट जाने का भय, कुटुंब- परिवार विषयक भय, रोग भय, शस्त्र प्रहार का भय। गान्धी साहित्य धर्म नीति - भाग- ५ - पृ० १०६

जब तक ईश्वर और आत्मा पर पूर्णतः विश्वास रहता है तब तक एक व्यक्ति बाह्य जगत से नहीं डरता, क्योंकि ईश्वर की कृपा तथा अनुग्रह उसे हर प्रकार के भय से अनजाने बचाता है। ईश्वर - विश्वासी को मृत्यु, धन, रोग, और हिंसा का भय नहीं रहता। उसे ऐसी वृत्तियां छू तक नहीं सकतीं। ऐसा व्यक्ति मृत्यु को भी सहर्ष स्वीकार करता है, जिससे अन्य साधारण लोग डरते हैं। गांधीजी में अपार निडरता थी। उन्हें न धन का भय था, न रोग का भय था। और न हिंसा का भय था। उन्होंने मृत्यु को भी बड़े धीरज के साथ अपनाया और वे मृत्युंजयी कहलाये। उन्हें धन का भय बिलकुल इसलिए न था कि उन्हें धन का मोह अणुमात्र भी नहीं था। वे धन या संपत्ति को इकट्ठा कर रखते नहीं थे। अगर अपने पास कोई धन रहता था तो उसे जनता की आवश्यकता के लिए खर्च करते थे। इसलिए उन्हें डरने की कोई बात ही नहीं थी। वे चोरी नहीं करते थे और छीन नहीं लेते थे। वे किसी को धोखा भी नहीं देते थे।

अभय की दशा मोहहीन स्थिति की पराकाष्ठा मानी गयी है।[१] मोह और इच्छा से भय उत्पन्न होता है। यदि हमें किसी चीज़ की इच्छा और उसे पाने का मोह होता है तो हम किसी न किसी प्रकार उसे पाने के लिए तड़प उठते हैं। यदि वह ठीक तरह से नहीं मिलता, तो हम उसकी चोरी करते हैं। इतना ही नहीं, अगर मालिक वह चीज़ हमें देने से इनकार करता है तो उससे वह चीज़ पाने के लिए उसकी हत्या तक करते हैं। इस प्रकार मोह हमें ऐसे निर्दयतापूर्ण पाशविक कृत्यों के लिए प्रेरित करता है। इस संसार में अक्सर यही देखने को मिलता है कि तुच्छ से तुच्छ बात पर भी लोग मोहित होते हैं और उसे न मिलने से चुप न रह कर दूसरों की हत्या करके भी उसे पाने का प्रयास करते हैं। इसलिए गांधीजी ने बताया है कि अभय में मोह नहीं होता। अभय स्वभावतः मोह रहित अवस्था है। निडर व्यक्ति मोह के जाल में कदापि नहीं फंसता। अतः गांधीजी को डरने की कोई आवश्यकता नहीं रहती थी।

'डरो मत', 'धीरज धरो' यही गांधीजी का अभय विषयक नारा

१: अभय मोह रहित स्थिति की पराकाष्ठा है। -

- गान्धी साहित्य - धर्म - नीति- भाग ५ -

पृ० ११०

था। उन्होंने जनता को डरो का उपदेश दिया है।[१] भगवान पर विश्वास रखते हुए धैर्य के साथ युद्ध करने में डरने की कोई बात नहीं है। ईश्वर विश्वासी किसी को भी नहीं मारता, किसी की हत्या न करता और न किसी को सताता है। अत: उसे डरने की बात तक नहीं रहती। जो काम करते हैं, उन्हें सत्य के साथ करने से भय नहीं होता, गांधीजी ने बिना डर के अपना काम किया। वे सत्यव्रती थे और अहिंसावादी थे। व ईश्वर उनकी हमेशा उनकी रक्षा करते थे। ईश्वर के आदेश के अनुसार ही वे सब कुछ करते थे।

हम तो यह जानते ही हैं कि हमारा शरीर नश्वर है और उसे किसी न किसी दिन अपनी आत्मा से अलग होना ही पड़ेगा। अत: शरीर के बिगड़ने में भयभीत होने की जरूरत नहीं है। भय को छोड़कर हमारे शरीर में प्राण रहने तक हमें कर्तव्य करना चाहिए। लेकिन मनुष्य को ईश्वर से डरना चाहिए। दूसरे किसी से हमें डरना नहीं है।

अभय का व्रत लेना उतना आसान नहीं है जितना भय का। भय के लिए कोई महान कार्य की आवश्यकता नहीं है। छोटी सी बात या घटना पर भय होता ही है। लेकिन अभय रहना बहुत कठिन है। ' मुझे किसी से डरना नहीं चाहिए या मैं किसी से नहीं डरूंगा ' - ऐसे एक निश्चय पर पहुंचने में बहुत समय लगता है। अभय की चरम अवस्था तक पहुंचना साधारण व्यक्ति के लिए आसान नहीं। उसे इसके लिए कठिन प्रयत्न करना पड़ता है। यदि संपूर्ण निडरता प्राप्त होती है, तो उसका कोई बिगड़ता नहीं है।[२]

जिसका भगवान पर अटूट विश्वास है, उसे वे निर्भय बनाते हैं।[३]

१: Do not resist, do not in any case answer voilence with voilence . Gandhiji would say, but at the same time his adjuration was ' Be brave do not fear. '

- Mahatma Gandhi 100 Years - P. 268

२: अभय- व्रत का पूरा पालन जन- सामान्य के लिए लगभग असंभव है। परंतु निश्चय करने, लगातार कोशिश करने और आत्मा में श्रद्धा रखने से अभय की भावना बढ़ती ही जाती है। - गांधीजी की सूक्तियां - पृ० १२

३: भगवान ऐसे लोगों को अभय कर देते हैं जो उनमें विश्वास रखते हैं। - वही० पृ० १

भगवान डरपोक को सांत्वना देते हैं। उसे भयभीत करने वाले को उससे हटाते हैं। अतः जिसे डर लगता है, उसके भगवान का नाम अपने से भय दूर हो जाता है। अगर भगवान पर भरोसा रहता है तो उसे डर लगता ही नहीं। क्योंकि भगवान उसकी रक्षा करते हैं।

जो व्यक्ति निर्भय होता है, उसी में बल रहता है। साधारणतः वही बलवान माना जाता है जिसके शरीर का वजन बड़ा होता है। ऐसे लोग उस व्यक्ति के बाहरी बल पर ही दृष्टि लगाते हैं। मगर गांधीजी बताते थे कि शरीर का वजन बढ़ाने से कोई बलवान नहीं कहला सकता। बल निर्भयता में ही हो सकता है। कभी कभी ऐसा भी देखने को मिलता है कि भय के कारण सत्य के बदले असत्य या झूठ बोलते हैं। इससे कोई लाभ नहीं होता। वह और भी पतित एवं पशुतुल्य माना जाता है। जो कुछ हम करते हैं, वह सत्य हो या झूठ निर्भयता के साथ उसे कहना चाहिए। यही वास्तविक सत्य है।[१]

डर न लगने की दवा उसे दूर करना ही है। डर के बारे में हमें सोचना ही नहीं चाहिए। भगवान के लालन- पालन में जीने वाला व्यक्ति कदापि डरेगा नहीं। उसे डर लगने की शंका होने से ही भगवान उसकी मदद करते हैं। अतः उनकी प्रार्थना से डर को दूर हटाना ही उचित उपाय है।

अभय से अन्य गुणों की उत्पत्ति होती है। अभय व्यक्ति हमेशा प्रशंसनीय और आदरणीय होता है। उसकी गुण- महिमा हर कहीं गायी जाती है। अभय को गांधीजी ने आध्यात्मिकता की पहली शर्त माना है।[२] आध्यात्मवाद में इसका पहला स्थान है। निडरता से ही मानव- गुण का विकास होता है। अतः प्रत्येक व्यक्ति को सर्वप्रथम निडर होना चाहिए।

ईश्वर प्रार्थना :

गांधीजी ने ईश्वर - प्रार्थना पर बहुत अधिक बल दिया है।

१: गान्धी साहित्य - भाग - ५ पृ० १२

२: निर्भयता- अभय - आध्यात्मिकता की पहली शर्त है - गांधी-विचार- रत्न

उनके जीवन में प्रार्थना ही सब कुछ थी । प्रार्थना के बिना वे कोई काम कर नहीं सके । उन्होंने जो कुछ किया था, प्रात:कालीन प्रार्थना के बाद ही किया था । उन्होंने ईश्वर की प्रार्थना की विविध व्याख्याएं करते हुए उसकी आवश्यकतापर प्रकाश डाला है ।

गांधीजी ने बताया है कि शरीर के लिए भोजना उतना जरूरी नहीं है जितना आत्मा के लिए प्रार्थना । इसका कारण यह है कि एक या दो दिन आहार कम होने से शरीर को कोई हानि नहीं होती । बहुत लोग कभी उपवास, व्रत, निराहार आदि का प्रयोग करते हैं । लेकिन इनसे ह शरीर की हालत कुछ बिगड़ती नहीं । शेष दिनों में वे भोजन करते भी हैं । जब अमिताहार से शरीर की दशा खराब होती है तब कुछ दिनों के लिए निराहार रहना ही उचित होता है । तभी शरीर अपनी पूर्व दशा को प्राप्त कर सकता है । लेकिन प्रार्थना की बात ऐसी नहीं । प्रार्थना प्रतिदिन निश्चित समय में करनी ही चाहिए । प्रार्थना की कोई सीमा नहीं रह सकती है । जिस प्रकार अन्न की सीमा अनिवार्य होती है । प्रार्थना के संबंध में कहें तो यह बात स्पष्ट है कि प्रार्थना जितना अधिक हम करेंगे उतनाअधिक फल हमें प्राप्त होगा । इसलिए प्रार्थना पर किसी प्रकार का उपवास भी ठान नहीं सकता । प्रार्थना जितनी दीर्घ हो उतना ही फलदायक है । उसमें कदापि अति अथवा अधिकता की शिकायत नहीं हो सकती ।[१]

प्रार्थना गांधीजी के लिए जीवन की रक्षा करने वाली थी । उनका कथन यह है कि प्रार्थना के अभाव में वे कभी का पागल हो सकते थे । उन्हें अपने जीवन में कठिन से कठिन एवं सार्वजनिक एवं व्यक्तिगत अनुभवों का सामना करना पड़ा था । ऐसे संदर्भ में उन्हें प्रार्थना से ही समाधान मिलता था । प्रार्थना के द्वारा उनमें एक प्रकार की शक्ति और जोश आता था । यह उन्हें निराशा से बचने के लिए आशा की किरणें प्रदान करती थी। अत: वे प्रार्थना को एक क्षण तक भी छोड़ नहीं सकते थे । क्योंकि उनके जीवन की रक्षक थी प्रार्थना । उनकी प्रार्थना पर इतनी

- -

१: असल में शरीर के लिए अन्न उतना जरूरी नहीं है, जितनी आत्मा के लिए प्रार्थना; क्योंकि शरीर को स्वस्थ रखने के लिए निराहार रहना अक्सर जरूरी होता है, परंतु प्रार्थना का उपवास तो हो ही नहीं सकता । प्रार्थना में संभवत: कभी अति हो ही नहीं सकती । - कल्याण पत्रिका- पृ० ६५१

जुड़ता थी कि उसे भूलकर वे कोई काम कर नहीं सकते थे। अपनी प्रवृत्तियों के लिए भगवान रामचन्द्रजी से ही प्रेरणा मिलती रहती थी। वे ही उनकी देखभाल करते रहते हैं, ऐसा उनका विश्वास था।[१]

ईश्वर में जितना विश्वास होता है वह जितनाअधिक बढ़ जाता है तो प्रार्थना में अवश्य लगन होती है। प्रार्थना के मूल में ईश्वर - विश्वास और भक्ति मौजूद हैं। इसी से ही प्रार्थना का ध्यान मन में ही रहता है। प्रार्थना के बिना उनको जीवन निस्तेज और सूना भास पड़ता है। उनके जीवन में प्रार्थना एक अनिवार्य साधन थी। वह उनके जीवन का प्रमुख अंग थी। गांधीजी को भगवान पर बड़ा विश्वास था और हमेशा उनका ध्यान किया था। ईश्वर उनके लिए सब कुछ थे। इसलिए वे प्रार्थना में इतनी गहराई से डूब जाते थे। वे अपने आप को ही भूल जाते थे। प्रार्थना की लगन जो है वह अटूट है और अद्भुत भी है। प्रार्थना विहीन जीवन उनके लिए मरुभूमि के समान शुष्क तथा शून्य है। इसका कारण तो उनका ईश्वर-विश्वास ही है।

गांधीजी के जीवन में शांति तथा समाधान लाने वाली साधन थी प्रार्थना के बल पर उन्होंने अपनी क्षमता को खो नहीं दिया था। गांधीजी के आने के बाद उन्होंने देश की परिस्थितियों को जो दुःख भोगा था वह अवर्णनीय है। फिर भी उन्होंने अपनी वह शक्ति नहीं छोड़ी थी। उन्होंने बताया है कि देश की राजनीति पर अत्याचार का बादल जो छाया था, उससे वे अत्यंत दुःखी हुए। लेकिन उन्होंने ऐसे वातावरण में भी शांति बरती। वह शांति उन्हें प्रार्थना से ही प्राप्त हुई। यही उनका कथन था। ईश्वर विश्वासी को दुर्घट परिस्थितियों में भगवान की मदद अवश्य मिलती है। गांधीजी को भी भग वान रामचन्द्र जी का अनुग्रह सदा रहा था। उन्हें सावधानी से काम करने का उपदेश भगवान से मिलता था। इस प्रकार उन्होंने शांतता और क्षमता के साथ अपना काम किया था।

१: प्रार्थना ने मेरे जीवन की रक्षा की है। उसके बिना मैं कभी का पागल हो जाता। मेरी आत्मकथा आपको बताएगी कि मुझे भी कटु से कटु सार्वजनिक और व्यक्तिगत अनुभवों का काफी हिस्सा मिला है। उनसे मैं थोड़ी देर के लिए निराशा में डूब गया। परंतु मुझे छुटकारा मिला था तो प्रार्थना के द्वारा ही मिला-.
कल्याण पत्रिका - पृ० १५१

सारे लोग, जो ईश्वर के भक्त एवं विश्वासी हैं, स्तोत्र- पाठ अवश्य करते हैं। इनमें ऐसे लोग भी होते हैं जो दूसरों की करनी देखकर किसी न किसी प्रकार से स्तोत्र पाठ करते हैं। इन दोनों पाठों में बहुत बड़ा अंतर होता है। पहली श्रेणी के लोग तो हृदयुक्त पाठ ही करते हैं क्योंकि वे ईश्वर की महिमा के बारे में सब कुछ जानते हैं। दूसरे लोग तो इस बात से अज्ञात हैं। इसलिए ऐसे लोग जितना अधिक पूजा- पाठ करें उससे कोई फायदा नहीं हो सकता। किसी स्तोत्र अथवा श्लोक का पाठ करते समय पाठक को उसका अर्थ भी समझना चाहिए। अर्थज्ञान के बिना श्लोक या स्तोत्र पढ़ने से कोई लाभ नहीं। जो स्तोत्र का अर्थ नहीं जानता, वह उस स्तोत्र में निहित भाव नहीं जान सकता। अत: स्तोत्र का अर्थ जानते हुए उसका पाठ करने से ही भगवान् भक्ति उत्पन्न हो सकती है। इसलिए ही गांधीजी ने स्तोत्र के अर्थ ज्ञान पर अधिक बल दिया था।[१]

जब हमें कोई संकट घेरता है, तब हम उसकी निवृत्ति के लिए ईश्वर की प्रार्थना करते हैं। ऐसी प्रार्थना में शोक और आकुलता छायी रहती है। हम अपनी मानसिक विषमता को प्रार्थना के द्वारा भगवान को सुनाते हैं और इस प्रकार वह अपने दु:ख को भगवान को घोषित करती है। इसलिए गांधीजी ने [illegible] प्रार्थना को आत्मा की आकुलता की द्योतिका कहा है। प्रार्थना पश्चात्ताप का चिह्न बतायी गयी है। जब हम कभी बुद्धि हीन होकर किसी को कष्ट देते हैं और बाद में उसके बारे में सोचने लगते हैं तो हम पश्चात्ताप करने लगते हैं। इससे दूर होने के लिए हम

१: अर्थहीन स्तोत्र पाठ प्रार्थना नहीं है, न शरीर को भूखों मारना उपवास है। प्रार्थना तो उसी हृदय से निकलती है, जिसे ईश्वर का श्रद्धापूर्वक ज्ञान है और उपवास का अर्थ है बुरे या हानिकारक विचार, कर्म [illegible] से परहेज रखना। - कल्याण पत्रिका - पृ० ६५६

२: Prayer is not vain repetition, nor fasting mere starvation of the body. Prayer has to come from the heart which knows God by faith and fasting is abstinence from evil or injuries, thought, activity or food.
The Political philosophy of Mahatma Gandhi. P.124

कोई प्रायश्चित भी करने का वादा करते हैं। ऐसे समय में जो प्रार्थना होती है उसमें पश्चात्ताप की झलक पायी जाती है।

प्रार्थना से शरीर और मन दोनों शुद्ध होते हैं। मन - शुद्धि के लिए प्रार्थना अनिवार्य है। उससे मन की मलिनता दूर होती है, दुश्चिन्ता छूट जाती है और वह पवित्र तथा निर्मल बनता है। अत: प्रार्थना में हृदय - शुद्धि की तीव्रता होती है। प्रार्थना के द्वारा हमारा मन एकाग्र होकर भगवान में लीन रहता है और कोई बुराई उसे छू तक नहीं सकती। यही प्रार्थना की विशिष्टता है।[१]

हर एक धर्म में प्रार्थना का विवेचन होता है। जहां धर्म है, वहां प्रार्थना भी अवश्य होती है। अपने अपने धर्म के अनुसार प्रार्थना विविध तरह की होती है। जिस धर्म में जिस मूर्ति का समर्थन हुआ है, उन्हीं की प्रार्थना होती है। प्रार्थना से मूर्ति की आराधना होती है। अत: धर्म का प्राण और सार है प्रार्थना।[२] वह ईश्वर से एकता लाने का साधन है। ईश्वर की प्राप्ति के लिए प्रार्थना की अनिवार्यता है।

गान्धीजी ने वैयक्तिक प्रार्थना के साथ साथ सामूहिक प्रार्थना पर अधिक बल दिया है। लेकिन उसे वैयक्तिक प्रार्थना की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण नहीं बताया है। प्रत्येक व्यक्ति अपनी - अपनी ओर से प्रार्थना करना ही उचित है। सामूहिक प्रार्थना तो एक प्रकार से ठीक है, कोई दोष नहीं। इस प्रार्थना में प्रत्येक स्थल की सारी जनता शामिल होती है। ऐसी प्रार्थना से दूसरों को प्रेरणा मिलती है। और वे भी प्रार्थना के लिए तैयार होते हैं। फिर भी व्यक्तिगत प्रार्थना ही अत्यन्त उचित एवं गुणदायक है। गान्धीजी का कथन है कि प्रत्येक व्यक्ति के मन में ईश्वर के

- -

१: प्रार्थना आत्मा की आकुलता की द्योतिका है। प्रार्थना पश्चात्ताप का चिह्न है। प्रार्थना हमारे अधिक अच्छे, अधिक शुद्ध होने की आतुरता को सूचित करती है। - कल्याण पत्रिका - पृ०१५६

२: Prayer is the very soul and essence of religion and therefore prayer must be very core of the life of man for no man can live without religion.... without prayer there is no inward peace.

The Political Philosophy of ahatma Gandhi. P. 124

प्रति विश्वास तभी हो सकता है जब वह व्यक्तिगत रूप से ईश्वर की प्रार्थना करता है। सामूहिक प्रार्थना से भी अधिक एकाग्रता व्यक्तिगत प्रार्थना में मिल सकती है। अत: उन्होंने व्यक्तिगत प्रार्थना पर बल दिया है और उसे महत्वपूर्ण बताया है।

प्रार्थना दिन के दो समयों में हो सकती है, एक तो सुबह और दूसरी शाम को। सवेरे उठते समय और रात को सोने के पहले प्रार्थना होती है, उसके लिए कोई मन्त्र आवश्यक नहीं। केवल भगवान की याद करना ही काफी है। गान्धीजी ने इस बात का समर्थन किया है कि बच्चा जब कुछ कुछ समझने लगता है, तब से उसे प्रार्थना सिखानी चाहिए। बचपन से ही उसमें इस प्रकार ईश्वर विश्वास पैदा करना बड़ों का काम है।

ईश्वर के कई रूप होते हैं। लेकिन गांधीजी ने सत्य रूपी ईश्वर की उपासना की। वे ईश्वर को सत्य के रूप में देखते थे। उन्होंने उन्हें सत्य का अवतार माना है। वे ऐसे सत्य स्वरूप भगवान हैं जो सनातन और अपरिवर्तनशील हैं। गांधीजीने पहले 'गॉड इज ट्रुथ' बताया था, लेकिन बाद में 'ट्रुथ इज गॉड' कहा करते थे। अन्त तक उन्होंने ईश्वर ही सत्य है का नारा लगाया था। गान्धीजी को अपने जीवन के अनुभवों से ईश्वर रूप में भगवान को देखने के कारण गान्धीजी ने उनके अन्य रूपों को भी छोड़ा नहीं है। इन रूपों में वे ईश्वर को ही उच्च मानना ठीक समझा। सत्य के रूप में भगवान को देखने के कारण गांधीजी ने उनके अन्य रूपों को भी छोड़ा नहीं है। इन रूपों में वे ईश्वर को देखते थे और विशेषत: सत्य के रूप में ही देखना ही अधिक महत्वपूर्ण मानते थे। उनके लिए सत्य ही ईश्वर थे और सब कुछ थे।[१]

सत्य अथवा परमेश्वर का साक्षात्कार करने या उनमें लीन हो जाने के लिए इस संसार से मुक्ति पाना है। इसके लिए ब्रह्मचर्य का पालन आवश्यक है। इसमें अपने लौकिक विचारों पर स्वयं संयम रखने का अभ्यास होता है। इस प्रकार के संयमशील होने के लिए ईश्वर का ध्यान करना चाहिए। गान्धीजी ने ब्रह्मचर्य के पालन में सदा भगवान की भिक्षा रखी थी। यह तो स्पष्ट है कि ईश्वर का ध्यान किये

१: ईश्वर के अनेक रूप हैं, पर मैं उसी रूप का पुजारी हूं जो सत्य का अवतार है- वह नित्य सनातन और अपरिवर्तनशील सत्य है, जो ईश्वर है - बापू - घनश्यामदास बिड़ला पृ० ५५

बिना ब्रह्मचर्य का पालन असंभव है और विचारों पर संयम रखना भी असंभव है।

प्रार्थना से शरीर को शक्ति और मन को शान्ति मिलती है। जिस प्रकार शरीर के स्थायित्व के लिए प्रार्थना अनिवार्य है। भोजन से शरीर मात्र को ही फायदा होता है। लेकिन शरीर और मन दोनों को फायदा मिलता है। इसलिए प्रार्थना को हमें जीवन में महत्व देना चाहिए।

प्रार्थना में ईश्वर की प्रतीक्षा होती है। ईश्वर का दर्शन करने के लिए ही प्रार्थना की जाती है। प्रार्थना जब उसकी चरमसीमा तक पहुंचती है, तब ईश्वर प्रत्यक्ष होते हैं। प्रार्थना हृदय के अन्तःस्थल से फूटनी चाहिए। तभी वह वास्तविक प्रार्थना होती है। बाह्य रूप से प्रार्थना करने का बहाना करने से कोई फायदा नहीं। यहां कबीर का यह दोहा प्रस्तुत करना उचित होगा -

' माला तो कर में फिरे, जीभ फिरे मुख मांहि।
मनुवा तो दस दिसि फिरे, यह तो सुमिरन नाहिं।। '

अगर प्रार्थना करते हैं तो सच्ची भक्ति के साथ एकाग्रचित्त होकर करनी चाहिए।

प्रार्थना हमेशा अन्तःशुद्धि के लिए की जाती है। गान्धीजी ने बताया है कि इसके लिए उपवास की आवश्यकता है। उपवास के बिना प्रार्थना नहीं हो सकती। उन्होंने प्रार्थना के समय कई बार उपवास किये थे। उपवास से ईश्वरीय भक्ति बढ़ती है, ईश्वर का दर्शन करने की लालसा तीव्र होती जाती है और ईश्वर - प्रसादसे ही उपवासी शांत होता है। उपवास से संयमता और एकाग्रता मिलती हैं। प्रार्थना के लिए ये दोनों आवश्यक हैं।

गान्धीजी को जितना विश्वास प्रभु में था, उतना ही विश्वास प्रार्थना में भी था। गान्धीजी ने अपनी प्रार्थना जो की थी, उसके लिए किसी विशेष मूर्ति या बिंब की प्रतिष्ठा नहीं की थी। अपने प्रिय उपास्य रामचन्द्रजी का साक्षात् रूप उनके हृदय- पट में अंकित था। उनकी प्रार्थना की विशेषता यह थी कि वह कोई याचना के रूप में न होकर, ईश्वर की प्रशंसा और आत्मा की व्यथा भरी पुकार है। उनकी प्रार्थना की मांग यह थी कि मनुष्य को बलवान बनाना और

सांसारिक प्रलोभनों से दूर रखना । उनके लिए दूसरी कोई इच्छा नहीं थी । वे अपनी मात्र आवश्यकताओं के लिए उनसे कुछ भी नहीं मांगते थे । उनको कोई मूर्ति या चित्र की आवश्यकता भी नहीं थी । वे अपनी आँखें मूंदकर उस परमात्मा का ध्यान मन में करते थे और प्रार्थना करते थे । उनकी प्रार्थना अत्यंत शांत मन से चलती थी ।[१] गांधीजी ने अपनी प्रार्थना में भगवान से सत्य और प्रकाश ही मांगा था जिससे उनकी देशगत उन्नति हो सकती है ।

गांधीजी ने बताया है कि मूक प्रार्थना (साइलेंट प्रेयर) उनकी बड़ी इच्छा है । प्रार्थना में गान्धीजी ने किसी प्रकार का कोलाहल नहीं चाहा । वे चुपचाप बैठकर प्रार्थना करना ही चाहते थे । मूक प्रार्थना में भगवान की एकाग्रचित्त से प्रार्थना करने का अवसर मिलता है । प्रार्थना के लिए एकाग्रचित्तता अनिवार्य है । प्रार्थना करते समय प्रार्थी का मन उस भगवान में लीन रहना चाहिए । जिनकी वह प्रार्थना करता है, गांधीजी ने प्रार्थना अस्त्र से अंध- विश्वासों और रूढ़ियोंका नाश किया था ।

आत्मा की भूख प्रार्थना से ही मिट जाती है । जिस प्रकार ह शरीर की भूख भोजन से मिटता है, शरीर की भूख को मिटाने के लिए हम भोजन करते हैं वैसा ही आत्मा की भूख को मिटाने के लिए प्रार्थना करते हैं । भोजन से आत्मा की प्यास नहीं मिटती । प्रार्थना से ही वह मिट सकती है । भोजन और प्रार्थना में यही भेद है कि प्रार्थना हम जितनी करते हैं उतना ही फल भी मिलता है । मगर जब भोजन अधिक होता है तो वह हानिकारक होता है । शरीर का भूखा खूब भोजन मिलने में जितना सुख होता है और आत्मा का भूखा प्रार्थना से उतना ही आनंद लूटता है । आत्मा का भूखा कदापि भोजन की चिंता नहीं करता ।

प्रार्थना से ही हमारे जीवन में व्यवस्था और शांति आती है । प्रार्थना के द्वारा हमारे ऊपर ईश्वर की कृपा- दृष्टि होती है और हमारा जीवन भी

१: Believing in God, Gandhiji had great faith in Prayer. In his prayer no image or symbol was kept. His prayers were no petitions. They were in praise of God and they were the yearnings of the soul. They also meant to strenghen man and keep him away from earthly temptations.
Mahatma Gandhi - 100 Years - P. 207

आदेश के अनुसार बोलता है। अगर प्रार्थना नहीं होती, तो हमारे जीवन में अशांति और अस्वस्थता आती है। जो भी हो प्रार्थना के साथ दिनचर्या शुरू करने से कल्याण होता है।

प्रार्थना हमारे मन में यह भाव उत्पन्न करती है कि ईश्वर ही हमारे रक्षक हैं और उनके अभाव में हम अनाथ और निस्सहाय बनते हैं। प्रत्येक व्यक्ति के मन में यही भाव उत्पन्न होना है। यह तो प्रार्थना से ही संभव हो सकता है। प्रार्थना करने से ईश्वर का ध्यान हममें सदा रहता है। सच में ईश्वर के बिना हम अनाथ होते हैं। हमारी रक्षा करने वाला दूसरा कोई नहीं मिलता। अतः उनकी शरण ही हमारा ध्येय होना चाहिए। उनके चरणों में शरण पाना ही हमारा कर्तव्य है। सभी से हमारी ओर करुणा की दृष्टि से देखें।

प्रार्थना नम्रता की पुकार है। उससे आत्मशुद्धि और आत्म-निरीक्षण का आह्वान बताया है। प्रार्थना सदा विनीत भावना से होती है। ईश्वर को हम सबसे परे और ऊँचे मानते हैं और अपने को उनका दास मानते हैं। यही विनीत भावना है। हम उनसे अपने भक्त- दासको रक्षा करने की प्रार्थना भी करते हैं। प्रार्थना से आत्म- शुद्धि और आत्म- निरीक्षण की बात बताई है। प्रार्थना आत्मा को शुद्ध करती है, उसके मालिन्य को दूर करती है। वह आत्मा का ज्ञान बढ़ाती है। अतः प्रार्थना विनीतता, आत्म- शुद्धि और आत्म- ज्ञान को बढ़ाने की बात बताती है। ईश्वर का गुण गान करते हुए हम प्रार्थना करते हैं। प्रार्थना में ईश्वर की स्तुति ही होती है। उनकी प्रशंसा करते हुए स्तुतिपरक गीत गाना ही प्रार्थना है। प्रार्थना के समय प्रार्थी कोकदापि अपने को उच्च और महान नहीं मानना चाहिए। उसको हमेशा अपने को उनसे भी बहुत निम्न मानना चाहिए। उसे अपने को अयोग्य और दुर्बल बताना चाहिए। उसे अपने ही अपना अहंकार या गर्व न करना चाहिए। ऐसे भक्तों की ही ईश्वर रक्षा करते हैं और उनकी भलाई करते हैं। भक्तों में भी बड़े - छोटे का भाव देखा जा सकता है। लेकिन यह ठीक नहीं। सारे भक्त ईश्वर के सामने समान ही हो सकते हैं। सारे भक्तों का कल्याण ईश्वर करते भी हैं। फिर भी जो अनन्य भक्त होता है उस पर भगवान की कृपा तुरंत पड़ती है।[१]

- -

१: ईश्वर की पूजा करना ईश्वर का गुण- गान करना है। प्रार्थना अपनी अयोग्यता और दुर्बलता को स्वीकार करना ही है। - गान्धी -विचार- रत्न- पृ० ६७

प्रार्थना अनेक प्रकार की होती है। मूक प्रार्थना की ढंग प्रचलित है। गीत गाते हुए प्रार्थना की जाती है। किसी भक्ति प्रधान ग्रंथ के श्लोक- पाठ से प्रार्थना होती है। कभी चुपचाप बैठकर, ध्यानमग्न होकर, अपने मनोमुकुर में भगवान का रूप- दर्शन करते हुए प्रार्थना होती है। यह प्रार्थना हृदय द्वारा होती है। गांधीजी ने इसी प्रार्थना पर अधिक बल दिया है। उन्होंने बताया है कि प्रार्थना वाणी से नहीं होनी चाहिए, प्रत्युत हृदय से होने वाली प्रार्थना ही अच्छी है। हृदय द्वारा होने वाली प्रार्थना ही मूक- प्रार्थना है। यह अत्यधिक गुण- दायक है। क्योंकि इसमें ईश्वर का ध्यान बड़ी एकाग्रता से हो सकती है। मन को उन्हीं में केंद्रित कर प्रार्थना करना वास्तविक प्रार्थना होती है। इससे यह अर्थ नहीं होता कि वाणी से प्रार्थना करने से कोई लाभ नहीं। लाभ तो होता है अवश्य। वाणी द्वारा प्रार्थना तो ठीक है। लेकिन उसे बड़े ध्यान के साथ करना चाहिए। मन की एकाग्रता और श्रद्धा आवश्यक है। कोई वाणी से भगवान की स्तुति का गीत गाता है, लेकिन उसका मन चारों तरफ घूमता - फिरता रहता है; उससे कोई फायदा नहीं है। इसलिए यह बताया गया है कि हृदय की प्रार्थना वाणी की प्रार्थना की अपेक्षा उत्तम और श्रेष्ठ है।

जिस व्यक्ति की वाणी में अमृत की धारा होती है मगर हृदय विष - धारा से भरा पड़ा है और वह प्रार्थना करता है तो भगवान उसकी प्रार्थना नहीं सुनेंगे। भक्त का हृदय सदा शुद्ध और निर्मल रहना चाहिए। उसमें किसी भी प्रकार की मलिनता अथवा दुष्टता को स्थान न देना चाहिए। हृदय और वाणी दोनों शुद्ध रहने चाहिए। प्रार्थना हृदय से फूटकर वाणी द्वारा बाहर सुनायी देती है। अतः प्रार्थना के लिए दोनों की शुद्धता अनिवार्य है। प्रार्थी के मन में दुर्गुणों और दुर्विचारों को जगाना और बढ़ाना उचित नहीं। सच्चे हृदय से प्रार्थना करते हैं तो वह हमेशा माननीय और प्रशंसनीय होती है। ऐसी प्रार्थना भगवान अवश्य स्वीकार करते हैं। हार्दिक प्रार्थना अच्छा हथियार है। वह बुरी आदतों पर विजय पाने का सुमार्ग है। जब सच्ची प्रार्थना होती है कोई बुरा दोष या बुरी आदत हमें छूती तक नहीं। प्रार्थना स्वयं उन्हीं को दूर हटा देती है।

प्रार्थना करने वाला कदापि पीछे नहीं हटता । उसे हटने की आवश्यकता भी नहीं रहती क्योंकि वह सच्चा प्रार्थी होता है । गांधीजी ने मूर्तियों की आवश्यकता पर अधिक बल नहीं दिया है । लेकिन मंदिरों के होने में उन्होंने किसी प्रकार का विरोध नहीं किया है । मंदिर का होना जनता के लिए आवश्यक है। मंदिर तो ऐसा पुण्य स्थान है जहां जो चाहे और जिनको जाने का अधिकार है, वह जा सकता है और भगवान का दर्शन कर सकता है । प्रत्येक देश में कोई न कोई मंदिर होना ही चाहिए । मंदिर में मूर्तियां हो सकती हैं । मूर्तियों के बिना मंदिर की स्थापना नहीं हो सकती । लेकिन गांधीजी ने बताया है कि मंदिर की स्थापना अनिवार्य है । उसमें मूर्तियों के होने न होने की बात लोगों की रुचि के अनुसार हो सकती है । गांधीजी साधारणतः मूर्तियों को नहीं रखते थे । इसलिए ही उन्होंने मंदिरों में भी मूर्तियों की अनिवार्यता पर अधिक जोर नहीं दिया है ।

मंदिर में जाने से आत्मा शुद्ध होती है । मंदिर में जाकर मूर्ति के आगे खड़े होकर बड़ी श्रद्धा के साथ प्रार्थना करने से हमारा मन सानंद हो उठता है । हमारी आत्मा ऐसी प्रार्थना से पवित्र हो जाती है । दूसरों की बुराई, अवनति, नाश, मृत्यु आदि के लिए भगवान से प्रार्थना करना ठीक नहीं । ऐसी प्रार्थना में स्वार्थता रहती है । स्वार्थ मन से जो प्रार्थना की जाती है, उसे भगवान ठुकरा देते हैं । प्रार्थना जो होती है तब उसमें हमें अपनी भलाई और उन्नति के साथ दूसरों की भलाई और उन्नति भी चाहनी चाहिए । प्रार्थना में सब की भलाई की इच्छा होनी चाहिए । इसमें स्वार्थता का रंग नहीं पड़ना चाहिए । प्रार्थना हमेशा शुद्ध मन से ही होनी चाहिए । उसका मन निष्कलंक रखना चाहिए । तभी प्रार्थना का फल भी प्राप्त होता है ।

गांधीजी बताते थे कि कोई तीव्र इच्छा ही प्रार्थना का रूप धारण कर लेता है । प्रार्थना के मूल में या पीछे कोई इच्छा होती है । हम किसी की इच्छा करते हैं और उसकी पूर्ति के लिए हम भगवान से प्रार्थना करते हैं । गांधीजी का प्रधान उद्देश्य ईश्वर साक्षात्कार था । उन्होंने इसी की पूर्ति के लिए प्रार्थना की थी । प्रार्थना तो इच्छा को पूरा करने के लिए ही होती है । लेकिन हम भगवान के सामने जाकर यह कहकर प्रार्थना नहीं करते कि " मेरी इच्छा की पूर्ति करो, यदि इच्छा पूरी

होती तो तुम्हें कोई न कोई उपहार दूंगी आदि आदि । हम प्रार्थना मात्र करते जाते हैं और उसका फल देना भगवान का कर्तव्य है । जो फल की इच्छा न किये बिना प्रार्थना करता है उसे भगवान उचित फल देते हैं । लेकिन जो फल की चाह से प्रार्थना करता है उसे उचित फल नहीं मिलता है । अत: जब हम प्रार्थना करते हैं तो निष्काम प्रार्थना करनी चाहिए । वही सच में ईश्वर - प्रार्थना है ।

गान्धीजी ने अपने अनुभवों के सहारे बताया है कि प्रार्थनापूर्ण कर्तव्य के द्वारा आधुनिक युग के अणुबमों का सामना कर सकते हैं । उनके अनुसार अणुबमों में जितनी शक्ति होती है, उसकी अपेक्षा प्रार्थना में अधिक शक्ति होती है । प्रार्थना के सामने अणुबम आदि तृण - तुल्य हैं । जिस प्रकार गान्धीजी की अहिंसा आधुनिक नाशकारी हथियारों को बेकाबू करती है, उसी प्रकार उनकी ईश्वर - प्रार्थना में अणुबमों को नष्ट करने की शक्ति मौजूद थी । गान्धीजी ने ईश्वर पर बड़ा विश्वास रखा था और उन्हीं के आदेशानुसार ही सब कुछ करते थे । अत: उनकी आध्यात्मिकता के आगे आधुनिकता शक्तिहीन और नाकामयाब हो गयी है । यह उनके ईश्वर विश्वास और प्रार्थना का ही गुण है ।

प्रार्थना में किसी प्रकार की बनावट या कृत्रिमता का होना त्याज्य है । उसी प्रकार प्रार्थना भरी कार्य भी बनावट या कृत्रिमता से हीन रहना चाहिए । गान्धीजी ने श्रद्धा और प्रार्थनाहीन कार्य की तुलना एक बनावटी फूल से की है जिसमें सुरभि नहीं होती । प्राकृतिक सभी फूल सुगंधित होते हैं । बनावटी फूल में वह नहीं हो सकता । वैसा ही कोई काम करते समय बड़ी श्रद्धा और ईश्वर-विश्वास से करना चाहिए । कुछ लोग तो अपने कर्तव्य को निभाने के मात्र लिए, दूसरों को कोसते हुए वह कार्य करते हैं । ऐसे काम में कृत्रिमता अवश्य रहती है और इससे कोई लाभ नहीं होता । अत: हम जो काम करते हैं, उसमें कृत्रिमता न आने की चिन्ता हमेशा होनी चाहिए ।

प्रार्थना के बिना इस दुनिया में जीना असंभव है । अगर कोई प्रार्थना किये बिना रहता है तो उसे सदा दु:ख भोगना पड़ता है । इतना ही नहीं वह दूसरों को दु:खी बनाता है । ऐसे व्यक्ति पर भगवान की कृपा नहीं हो सकती ।

और भगवान भी उसकी रक्षा करने में हिचकते हैं। बहुत दु:ख सहने के बाद यदि वह प्रार्थना करने की कोशिश करता है कि तो भी उसे फल शायद मिलता है। कभी - कभी वह भी नहीं मिलता। ऐसी परिस्थिति में वह अत्यन्त व्याकुल हो उठता है। उसे इस दुनिया में कोई सहारा नहीं मिलता। वह बहुत निराश हो जाता है। अन्त में वह आत्म हत्या तक करने का निश्चय कर लेता है। इस दृष्टि से देखने पर ईश्वर - प्रार्थना हमारे जीवन के लिए अनिवार्य वस्तु है।

दिल खोलकर प्रार्थना करने से सच्चे कर्तव्य का बोध होता है। प्रार्थना हमें सत्कर्म करने का पाठ पढ़ाती है। प्रार्थना करने वाला दुष्कर्म करने के लिए कदापि तैयार नहीं होता। अगर वह करना चाहता है तो भी कर नहीं सकता। क्योंकि प्रार्थना का प्रभाव उस पर इतनी तीव्रता से पड़ता है कि उसका मन स्वयं उससे हट जाता है। प्रार्थना को गान्धीजी ने आत्मा को साफ करने करने की झाड़ू बताया है। जिस प्रकार झाड़ू करने से जमीन पर की धूल हट जाती है उसी प्रकार प्रार्थना करने से आत्मा की मलिनता दूर हो जाती है।

प्रार्थना तभी सच्ची होती है जब प्रत्येक व्यक्ति अपने हृदय से करता है। हमारे लिए दूसरों से प्रार्थना कराने से कोई प्रयोजन नहीं है। जब तक हमारे मन में गन्दगी होती है तब तक हम प्रार्थना नहीं कर सकते। ईश्वर में जिसका मन लगता है वही प्रार्थना कर सकता है। जो ईश्वर में विश्वास नहीं रखता, उसके लिए प्रार्थना की कोई आवश्यकता ही नहीं है। किसी को भी प्रार्थना करने के लिए हम मजबूर नहीं कर सकते। प्रार्थना करना या न करना अपनी अपनी पसंद की चीज़ है।

प्रार्थना का साधारण अर्थ है कुछ मांगना। हम कभी कभी सहायतार्थ किसी से कुछ मांगते हैं और अपनी आवश्यकता को पूरा करने के लिए कोई चीज़ मांगते हैं। इस प्रकार प्रार्थना कई प्रकार की हो सकती है। लेकिन जहां ईश्वर की स्तुति, उपासना, भजन, कीर्तन, सत्संग आदि को ही प्रार्थना बताया गया है। वहां प्रार्थना का अर्थ व्यावहारिक नहीं है। उसका अर्थ गान्धीजी ने आध्यात्मिक दृष्टि से बताया है।

प्रार्थना मन के अंतराल से फूटनी चाहिए। ऐसी प्रार्थना ही भगवान सुनना चाहते हैं। केवल मुंह से कुछ बातें गुनगुनाने से वह प्रार्थना नहीं होती।

प्रार्थना बड़ी ही श्रद्धा के साथ भक्तिपूर्ण हृदय से होनी चाहिए। प्रार्थना में श्रद्धा और भक्ति ही अनिवार्य हैं। प्रार्थना के समय हमारे मन को उसी में लीन रखना चाहिए और उसे चारों ओर फैलाना नहीं देना चाहिए। मन की एकाग्रता के भंग होते ही प्रार्थना भंग हो जाती है। प्रार्थना के लिए शांति की भी अत्यंत आवश्यकता है। कभी कभी यह शांति उपद्रव, कोलाहल, हलचल आदि के कारण नष्ट होती है। लेकिन प्रार्थना करने वाला इसके होने पर भी अपनी शांति छोड़ना उचित नहीं। सच्चा प्रार्थी अपनी प्रार्थना में इतना मग्न रहता है कि अगर आकाश ही नीचे गिर जाये तो भी वह नहीं जानता। यही सच्ची प्रार्थना मानी जाती है।

हम जो काम ठीक ढंग से करते हैं तो उसका फल अवश्य मिल जाता है। काम करने के ढंग का ध्यान खूब रखना चाहिए। प्रार्थना की बात भी यही है। प्रार्थना यदि ठीक तरह की जाती है तो उसका फल अवश्य मिलता भी है। इस संसार में ऐसा कोई काम नहीं है, जिसका फल प्राप्त न होता। लेकिन इस बात पर हमें ध्यान रखना चाहिए कि काम जो भी हो और जैसा भी हो, उसे ठीक- ठीक करना चाहिए।

प्रार्थना हमारा जीवन- धर्म है। उसे हमें निभाना ही चाहिए। हमारे लौकिक जीवन का एक अभिन्न अंग है प्रार्थना। प्रार्थना के बिना हम जी नहीं सकते। क्योंकि उससे ही हमें कुछ न कुछ शांति मिलती है। जो व्यक्ति दूसरों की प्रार्थना को बड़ी श्रद्धा के साथ सुनता है, उस पर प्रार्थना का असर जरूर हो पड़ता है। इस प्रभाव से वह भी प्रार्थना करने के लिए प्रेरित हो जाता है। इस प्रकार व्यक्ति- व्यक्ति के प्रभाव के फल- स्वरूप सारे लोग प्रार्थना करने के इच्छुक बन जाते हैं। परिणामत: ईश्वर के भक्त बढ़ जाते हैं और प्रार्थना का महत्व भी दुगुना हो जाता है।

गान्धीजी ने प्रार्थना की उपर्युक्त कई व्याख्याएं दी हैं। उन्होंने प्रार्थना की आवश्यकता, उसकी महिमा, उसका परिणात फल, उसे करने के लिए आवश्यक साधनों की अनिवार्यता आदि पर विचार किया है। उन्होंने अपने जीवन के अनिवार्य अंग के समान प्रार्थना को अपनाया ही था। उन्हें इस बात पर पूरा विश्वास था कि जीवन के सभी क्षेत्रों में जो भी विजय उन्हें मिली है वह सब उनके ईश्वर- विश्वास और

प्रार्थना से ही मिली है। इसलिए उन्होंने देश की सारी जनता को ईश्वर - विश्वासी एवं प्रार्थना - प्रेमी बनाने के उद्देश्य से इन व्याख्याओं का विवेचन किया है।

रामनाम:

भारतीय दर्शन के वैष्णव संप्रदाय में रामभक्ति तथा कृष्ण भक्ति दोनों की अभिव्यक्ति होती है। गांधीज का परिवार इसी संप्रदाय का था और उनके यहां इन दोनों देवताओं की उपासना और पूजा होती थी। गांधीजी बचपन से ही बड़े डरपोक थे और उन्हें भूत - प्रेत आदि का डर लगता था। अपने इस भय को दूर करने के लिए उन्हें एक सच्चा रास्ता मिला। उनके घर की नौकरानी रंभा ने उन्हें ` रामनाम ` की दवा पिलायी। उस दिन से गांधीजी ने रामनाम जपना शुरू किया। बाद में वह उनके लिए अमोघ शक्ति बन गया।[१] उनके चाचाजी के एक लड़के ने जो बड़े रामभक्त थे गांधीजी को राम- रक्षा का पाठ पढ़ाया और उसका स्नानान्तर नित्य पाठ होने लगा। इतना ही नहीं पोरबन्दर के राममन्दिर में प्रतिदिन रामायण का पारायण होता था। गांधीजी अपने पिता जी के साथ राममंदिर जाकर रामायण का पाठ सुनते थे। उस समय वे केवल तेरह वर्ष के बालक थे। इस रामायण- श्रवणसे रामायण पर उनका बड़ा असर पड़ गया और तुलसीकृत मानस को उन्होंने सर्वोत्तम ग्रंथ मान लिया।[२] फलत: वे भी रामचन्द्र जी के बड़े भक्त बने।

गांधीजी अपने जीवन में हमेशा रामनाम का जप करते थे। उन्होंने अपने जीवन में प्रतिदिन सिद्ध होने वाले सुन्दर एवं कटु अनुभवों को ईश्वर की लीला ही माना है। उनका कथन यह है कि सब ईश्वर की प्रवृत्ति है। उन्हें ईश्वर पर बड़ा विश्वास था। अत: रामनाम काजप किये बिना वे कुछ भी नहीं लाते थे। रामनाम ब उनके लिए बड़ा ही दिव्य औषध था।

गान्धीजी की मान्यताएं :

गांधीजी ने बताया है कि वे रामनाम का जप इसलिए करते थे कि उसके द्वारा भगवान से अपनी कार्य - सिद्धि की सहायता मांगना उसका प्रधान उद्देश्य

१: आज रामनाम मेरे लिए अमोघ शक्ति है - आत्मकथा, पृ० २९

२: यह रामायण श्रवण रामायण के प्रति मेरे अत्यधिक प्रेम की बुनियाद है। आज मैं तुलसीदास जी की रामायण को भक्तिमार्ग का सर्वोत्तम ग्रंथ मानता हूं। वही

होता था ।[1] अपनी इच्छाओं की पूर्ति और जीवन को मंगलमय बनाने के लिए हम भगवान से प्रार्थना करते हैं और उनकी कृपा करते हैं । गांधीजी को भी अपने दैनिक अनुभवों से यह मालूम हुआ है कि यह संसार एक अतुलनीय सत्ता के शासन के अधीन है और यहां जो कुछ होता है, सब उन्हीं के विचारों के अनुसार ही होता है । गांधीजी को कभी दु:ख और कष्ट का अनुभव करना पड़ा है और ऐसे समय वे भगवान रामचन्द्रजी का ध्यान करते थे अवश्य । वे "राम" "राम" जपते थे । रामनाम ने उन्हें अपने जीवन में सफल बनाया है ।

उनका कथन यह है कि रामनाम रोग - निवारण के लिए एक सच्चा औषध है । यह कहना यहां उचित होगा कि गांधीजी पहले से ही रोगों के लिए दवा लेने के विरोधी थे । उन्हें उसमें अरुचि ही थी ।[2] रोगों को नष्ट करने के लिए या रोगों से पीड़ित न होने के लिए रामनाम का जप पर्याप्त माना गया है । जो व्यक्ति प्रतिदिन रामनाम लेता है, वह नीरोगी बनता है । रामनाम की ऐसी दिव्य शक्ति रहती है कि रोग व्यक्ति के पास तक नहीं फटक सके । गांधीजी का कथन है कि जब व्यक्ति का आहार सीमातीत होता है, त बवह रोग-ग्रस्त होता है और उसे डाक्टर या वैद्य की शरण लेनी पड़ती है । इस प्रकार मिताहारी और रामनाम-प्रेमी रोगी कदापि नहीं हो सकता ।

रामनाम के दुरुपयोग पर गांधीजी ने बड़ा आक्षेप किया है । किसी अच्छे उद्देश्य के लिए ही उसका प्रयोग होना चाहिए, बुरे के लिए नहीं ।[3] रामनाम भगवान श्रीरामचन्द्र जी का दिव्य मन्त्र है और उसका दुरुपयोग करना बड़ा पाप है । अच्छे उद्देश्य से रामनाम जपने वाले पर ईश्वर की कृपा अवश्य होती है और वह अपने जीवन के सभी क्षेत्रों में उन्नति पाता है क्योंकि रामनाम कोई खिलौना नहीं है, दिव्य और तेजस्वी मन्त्र है ।

१: हृदय से राम- नाम लेने का अर्थ एक अतुलनीय सत्ता से सहायता प्राप्त करना है।
- गांधी -विचार- रत्न-पृ० १४

२: जैसे जैसे मेरे जीवन में सादगी बढ़ती गयी, वैसे वैसे रोगों के लिए दवा लेने की मेरी अरुचि जो पहले से ही थी, बढ़ती गयी । - आत्मकथा- पृ० २११

३: रामनाम किसी अच्छे उद्देश्य के लिए ही काम में लिया जाता है, न कि बुरे काम के लिए । - गांधी - विचार - रत्न - पृ० १४

रामनाम योगी के लिए भोगी के लिए नहीं। शुद्ध हृदय का व्यक्ति ही रामनाम का जप कर सकता है। शुद्ध हृदय के बिना इच्छित फल की प्राप्ति असंभव है। जिसकी प्रार्थना दूसरों की बुराई, अवनति, कष्ट आदि के लिए होती है उसे ही अंत में कुफल भोगना पड़ेगा। अतः बुरे विचारों को दूर करके निर्मल एवं स्वच्छ मन से भगवानका ध्यान करना चाहिए। भोगी हमेशा सांसारिक सुख-भोग के सपनों में लीन रहकर अपने को भी खो देता है। वह इस खुशी में भगवान को भी भूल जाता है। तब वह मन्त्र का उच्चारण कैसे कर सकेगा ? इसके लिए उसे अवसर कैसे प्राप्त होगा ? मगर योगी की बात ऐसी नहीं है। उसका मन तो सदा भगवान की चिंता एवं मनन में ही संलग्न रहता है। विरागी होने के कारण उसे इसके लिए अधिक अवसर मिलता भी है। गांधीजी पहले भोगी थे और बाद में योगी बने। जब उन्होंने ईश्वर की चिंता, प्रार्थना और उपासना करना प्रारंभ किया, तब से वे योगी बने। उन्होंने इसके लिए अपनी प्रिय पत्नी और पुत्रों को भी त्याग दिया। वे सत्य अथवा उस परम सत्ता के अन्वेषक थे जिसके अनुग्रह से वे अपने जीवन में सफलता प्राप्त करते थे। अतः उनके लिए रामनाम अपनी उद्देश्यपूर्ति का मार्गद्रष्टा था।

गांधीजी ने इस बात का समर्थन यों किया है कि केवल मुंह से रामनाम जपने से कुछ फायदा नहीं है।[१] मुंह से राम राम कहना, मन को किसी दूसरी चिंता में भटकाना - यह जपने का ठीक रास्ता नहीं है। यहां सन्त कबीरदास का एक दोहा अत्यन्त स्मरणीय है -

माला तो कर में फिरै, जीभ फिरै मुख मांहि।
मनुवां तो दहुं दिसि फिरै, यह तो सुमिरन नाहिं।।[२]

यही बात गांधीजी ने भी बताया है। किसी भक्त को मन्त्र का उच्चारण करना है, तो उसे सबसे पहले उसका अर्थ समझ लेना चाहिए। इसके बाद जिस भगवान का मन्त्र उच्चरित होता है, उस भगवान के ध्यान में अपने मन को केन्द्रित करना चाहिए। फिर उक्त मन्त्रका उच्चारण ध्यानपूर्वक होना है। गांधीजी बड़े संयमी थे और

- -

१: गांधी - विचार - पृ० १४

२: कबीर दोहावली - पृ० ४४

भगवान का ध्यान बड़ी श्रद्धा से ही करते थे। उन्होंने भक्तों को भी यही उपदेश दिया।

सुख- दुख - सम्मिश्रित लौकिक जीवन में रामनाम का महत्त्व सराहनीय है।[१] सुख और दुख के जो भाव हंसने और रोने में प्रकट होते हैं, दोनों की उत्पत्ति का स्रोत मानव- हृदय है। जब मनुष्य को दुख का अनुभव होता है, तब वह रोता है। और जब वही दुख सुख में परिणत होता है, तो वह हंसता है। यह मानव- जीवन का एक क्रम है। इस प्रकार आगत दुख का सुख के रूप में परिणत होने के लिए भगवान से प्रार्थना की जाती है। यहां गांधीजी संकट के समय रामनाम का जप करते थे। अर्थात् जब किसी कार्य की सिद्धि नहीं होती, तब उसकी सिद्धि के लिए वे ईश्वर का ध्यान किया करते थे। गांधीजी के रामचन्द्रजी के भक्त होने के कारण यहां रामनाम की विशेषतः चर्चा हुई है।

गांधीजी के कथनानुसार रामचन्द्रजी गान्धीजी के रक्षक हैं। गांधीजी और रामचन्द्रजी के बीच में इतनी घनिष्ट भक्ति थी कि वे यों कहा करते थे कि वे दिनमें उन्हीं के आदेशानुसार प्रयत्न करते थे और रात को उन्हीं की गोद में सोते थे। वे इस बात पर बड़ा विश्वास रखते थे कि जिसकी रक्षा श्रीराम करते हैं उसे कोई मार नहीं सकता। जो सच्चे रूप से भगवान पर भरोसा रखता है, उसे डरने की कोई आवश्यकता नहीं। ठीक है, गांधीजी निडर थे, उन्हें किसी का भी भय नहीं था। वे हमेशा यही कहा करते थे। `जिसे राम राखे उसे कौन मारे `?[१]

उपर्युक्त बातों से यह स्पष्ट होता है कि रामनाम का गांधीजी के जीवन यानी आध्यात्मिक जीवनमें कितना महत्वपूर्ण स्थान था। बचपन में उनके मन में रामनाम का जो बीज बोया गया था, वह उनके जीवन भर अविनाशी बनकर विकसित रहा। जब उन पर गोलियां चलायी गयीं तब उस अंतिम क्षण में भी उनके मुंह से `राम ` शब्द ही निकला।

रामराज्य ::

अयोध्या अथवा साकेतपुरी का दूसरा नाम है ` रामराज ` जिसका शासन भगवान श्रीरामचन्द्रजी करते थे। रावण नामक राक्षस का वध करने के उपरांत

१: कल्याण पत्रिका - पृ० ६१२

सीतासहित प्रत्यागत श्री रामचन्द्रजी का राज्याभिषेक बड़े ही आडंबरपूर्वक संपन्न हुआ। उन्होंने राज्य का शासन अपने हाथों में ले लिया जिससे साकेत की जनता स्वर्गीय अनुभूति का अनुभव करती थी। रामचन्द्रजी के राज्यशासन की महिमा का वर्णन मूलग्रंथ 'श्रीमद् वाल्मीकि रामायणम्' में किया गया है।[१]

गांधीजी भगवान श्रीरामचन्द्र जी के परम भक्त थे और तुलसीदासकृत 'रामचरित मानस' का अध्ययन प्रतिदिन करते थे। रामराज्य की महिमा के बारे में कुछ समझ लेने के कारण उनके मन में भी उसकी भावना पैदा हुई। उन्होंने यों निश्चय किया कि भारत को भी रामराज्य सा रूपांतरित करना है। भारत को दूसरे एक रामराज्य के रूप में वे सपने में देखा करते थे। लेकिन वह सपना मात्र ही रह गया। क्योंकि भारत के स्वतंत्र होने के एक साल बाद, गांधीजी की हत्या की गयी है। उनका विचार यह था कि पहले भारत को स्वतंत्र होना चाहिए फिर उसे रामराज्य बनना चाहिए। पहला कार्य संपन्न हुआ लेकिन दूसरा अधूरा रह गया।

रामराज्य की महिमा को जानने के लिए उसके राजनीतिक, सामाजिक और अन्य चौमीय दृष्टिकोण से उसके नियमों पर प्रकाश डालना चाहिए।

राजनीति :

रामराज्य में राजा के द्वारा देश का शासन होता है। राजनीति में प्रजा को मुख्य स्थान रहता है। उनके इष्टों और अनिष्टों, आवश्यकताओं और आग्रहों का परामर्श करके उनके मतानुसार राजा सब कुछ करता है। अतः यहां जन-सम्मति अवश्य अपेक्षित होती है। लोक-रंजन एवं लोक-संतुष्टि ही राजा का प्रधान उद्देश्य होता है। इसलिए वह सदा प्रजा का साथ देता है और उनकी सम्मति के बिना कुछ भी करने को तैयार नहीं होता।

एक सार्वभौम शासन को रामराज्य की राजनीति में अधिक प्रधानता दी जाती है। क्योंकि इसके द्वारा राज्यों के बीच में समन्वय एवं सामंजस्य का सफल

१: न पर्यदेवन् विधवा न च व्यालकृतं भयम्।

-- -- -- --

प्रातुभि: सहित: श्रीमाञ्श्रीमा राज्यमकारयत्।।

प्रशस्त हो सकता है । अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के लिए यह रीति अत्यंत सुविधाजनक होती है । जैसा कि एक राष्ट्र में अगर आवश्यकता से बढ़कर कोई चीज़ रहती है तो उसे उस राष्ट्र में भेज देता है जहां उसकी कमी होती है । उसी प्रकार जिस देश में किसी चीज़ का उत्पादन अधिक होता है, उसे दूसरे राष्ट्र में पहुंचा देता है जहां वह कम उत्पन्न होता है । इस प्रकार के आदान- प्रदान की प्रक्रिया से राष्ट्रों के बीच में व्यापारिक समझौता स्थापित कर सकते हैं ।

एक सार्वभौम विश्व - सरकार की योजना को रामराज्य में अधिक श्रेष्ठ माना जाता है । ऐसी सरकार की प्रतिष्ठा से राष्ट्र में शांति, समन्वय और विकास की संभावना अवश्य होती है । प्रत्येक अधिकारी अपने - अपने क्षेत्र में स्वतंत्रता के साथ सबकुछ कर सकता है । इस प्रणाली से अपने राष्ट्र की उन्नति के साथ साथ दूसरे राष्ट्रों की उन्नति भी संभव है । अत: रामराज्य में प्रजाहिताभिलषणात्मक राजशासन की घोषणा ही सदा करते रहते हैं ।

समाज :

रामराज्य को साधारणत: जनतन्त्र राज्य भी कहा जाता है जिससे प्रजा की प्रमुखता की बात स्पष्ट होती भी है । राज्य का शासन तो राजा ही करता है, मगर वह राज्य पूर्णत: जनता का प्रतीत होता है । जनता का राज्य की सारी वस्तुओं पर पूर्ण अधिकार माना जाता है । राजा की भांति उन्हें भी सारी वस्तुओं के उपभोग का अधिकार रहता है । इसका कारण यह है कि जन- समुदाय का संतोष ही राजा का संतोष है । राज्य से संबंधित कोई भी चीज़ चाहे भूमि हो या संपत्ति हो, या कारखाना हो, जनता के लिए भी भोग्य है । एक बात अनिवार्य है कि ये चीज़ें अन्याय, अत्याचार या शोषण के द्वारा प्राप्य नहीं होनी चाहिए । या तो वे पितृ- पितामहादि के दाय से परंपरागत प्राप्य हों नहीं तो अपनी शारीरिक श्रमजन्य पसीने से या पुरस्कारादि रूप में प्राप्त हों ।

व्यक्तियों के समूह से ही समाज बनता है - यह सर्वविदित है और साथ ही समाज और व्यक्ति में समन्वय की आवश्यकता पर रामराज्य में अधिक बल दिया जाता है । एक के द्वारा दूसरे की निंदा करना वहां त्याज्य है । सब को समानता की

दृष्टि से देखकर उनमें सामंजस्य पैदा करते हुए अभ्युदयोन्मुखी प्रगति को अधिक श्रेयस्कर समझा जाता है। अतः यहां किसी की भी निंदा करने के लिए कोई कारण ही नहीं उपजता।

किसी का शोषण, भक्षण या कुमार्ग से चिंतन आदि दुर्भावनाओं व को पालने का वर्जन किया गया है। सब को आपस में पोषक - रक्षक- एवं सुमार्गी व बनना अनिवार्य माना गया है। अगर कोई व्यक्ति शारीरिक दृष्टि से दुर्बल, क्षीण एवं अस्वस्थ दिखाई पड़ता तो सबल एवं स्वस्थ देहधारी से उसे सहायता प्राप्त करने का प्रबंध भी यहां मौजूद है। दूसरों के कष्ट में सब समान रूप से कष्ट का अनुभव करते हैं और उसकी सहायता के लिए सारा रास्ता खोजते हैं।

रामराज्य का सिद्धान्त है ' वसुधैव कुटुंबकम् '। अतः यहां व्यष्टि और समष्टि में समन्वय की अनिवार्यता को आवश्यक माना गया है और राजा का विश्वास है कि इस समन्वय के के द्वारा समाज में सुव्यवस्था की स्थापना हो सकती है। इसी विश्वास को रामराज्य का उच्च आदर्श माना गया है।[१] रामराज्य के अनुसार व्यष्टि समुदाय ही समष्टि का सृजन करता है और इसमें व्यष्टि का प्रधान हाथ रहता है। व्यक्ति के प्रयत्न से ही समाज का, कुटुंब, राष्ट्र आदि का विकास होता है। अतः उसे समाज की चिंता रखते हुए अपना विकास भी करना चाहिए। हमारा प्रयत्न व्यष्टि तक सीमित न रहकर समष्टि की ओर अग्रसर होना चाहिए और तभी राष्ट्र की उन्नति एवं प्रगति निश्चित होगी।

अर्थ :

अर्थ के संचालन में सुत्योग का नियम रामराज्य में प्रचलित रहा है। यज्ञों के अवसर में शूद्र से सेवा लेकर, वैश्य से आवश्यक वस्तुएं खरीद कर, क्षत्रिय से यज्ञ की रक्षा की मांग पाकर तथा ब्राह्मण से यज्ञ के याजन की प्रार्थना करके यज्ञों का कार्य संपन्न किया जाता है और सब को तुल्य संपत्ति या तुल्य द्रव्य दिया जाता है। इससे किसी को भी आर्थिक कष्ट सहन की आवश्यकता नहीं रहती और कोई याचक भी न रहने पाता।

१: वैज्ञानिक साधनों एवं धार्मिक, आध्यात्मिक साधनों से समष्टि जगत को उच्च से उच्च स्तर पर पहुंचाना रामराज्य का आदर्श है। - मार्क्सवाद और रामराज्य -पृ० ३१८

इस प्रकार करने से देश में आर्थिक संतुलन रहता है। इतना ही नहीं लूट- मार और चोरी-खसोट की बात नहीं सोची जाती। दूसरों की वस्तुओं की चोरी करना पाप माना जाता है। यदि किसी वस्तु की आवश्यकता होने पर भी, उसे निश्चित-पूर्व पाना चाहिए, छीनकर नहीं।

आर्थिक संतुलन को स्थायी बनाने के लिए दान की महत्ता पर प्रतिपादित हुआ है। जितने अर्थ का उपार्जन किया जाता है, उसका आवश्यकतापूर्ण उपयोग भी किया जाना चाहिए। अर्थ को पांच विभागों में बांटा जाता है और चार हिस्से राष्ट्र-हित कामों में खर्च किये जाते हैं; शेष एक ही हिस्सा अपने खर्च के लिए लिया जाता है और इसमें यही नियंत्रण रहता है एक व्यक्ति के लिए अपने पेट भरने और तन ढकने को जितना आवश्यक है उतना ही अर्थ स्वीकार करना चाहिए।

बेकारी की समस्या दूर करने के लिए उद्योगों को विकेन्द्रीकरण उचित माना जाता है। छोटे व्यवसायों के द्वारा बेकारी दूर करके व्यापक रूप से रोजगारी का प्रबंध किया जाता है। महायंत्रों के निर्माण पर रामराज्य में प्रतिबंध अवश्य लगाया जाता है। क्योंकि मशीनों के व्यवहार होने पर जनता सुस्त बन जाती है। यदि वह खुब मेहनत करती है तो किसी की पराधीन न होकर स्वतंत्रता के साथ रह सकती है। मशीनों के बढ़ जाने के कारण बेकारी बढ़ती जाती है और पराधीनता भी बढ़ती जाती है।

आर्थिक संतुलन का और एक तरीका है मजदूरों की संख्या और वेतन-वृद्धि में क्रम लाना। इससे बेकारी दूर कर सकते हैं। मजदूरों के बीच में शोषक-शोषित का भेद नहीं रखना चाहिए। सब के सब पोषक होना चाहिए। इस प्रकार आर्थिक संतुलन एवं विकेन्द्रीकरण को देश के आर्थिक सुधार के लिए सर्वतापेक्षित माना जाता है और रामराज्यवादी ही इसमें सफल हो सकता है।

धर्म :

रामराज्य में धर्म का पालन सभी संस्थाओं में अनिवार्य है। जिसके अनुसार सभी व्यवस्थाओं का निर्देशन हो सकता है। रामराज्यवादी अनादि और अनन्त भगवान के विश्वासी है और वे धार्मिक, राजनीतिक, सामाजिकादि परंपराओं का पा

करते हैं । संसार की हर वस्तु उस परमेश्वर का ही अंश मानी जाती है । प्राणीमात्र को ईश्वर का अंश माना जाता है जो भगवान के समान अविनाशी, चेतन, अमल, सहज सुखराशी है । -

' ईश्वर अंस जीव अविनाशी । चेतन अमल सहज सुख राशी । '

सब को सुखी रखना चाहिए । भगवान की चिंता करनी चाहिए, आपसी मदद करनी चाहिए, शुभ- कामना करनी चाहिए । दुर्जनों को सज्जन बनाना चाहिए - यही रामराज्य की नीति है । रामराज्य धर्म- निरपेक्ष राज्य है । ईश्वर को अजय, अविनाशी, सनातन माना जाता है । सत्य, अहिंसा, अस्तेय, आदि गुण तो समष्टि की वृद्धि के लिए आवश्यक हैं । जनता के बीच के वैर को मिटाने के लिए अहिंसाकी प्रतिष्ठा को योग्य बताता है । मनसा, वाचा, कर्मणा अहिंसा का पालन होने पर वैरी की हिंसा भावना भी छूट जाती है । धर्म से नियंत्रित जनता किसी भी दंड- विधान के बिना अपना सब कुछ प्राप्त कर लेती है । जनता की आत्मा में संपर्क दोष से आने वाली मलिनता को दूर करने के लिए उन्हें स्वधर्म का अनुष्ठान करना पड़ता है ।

युद्ध :

रामराज्य में युद्ध अनिवार्य है ; पर आचरणीय भी । उसके कुछ धर्म एवं नियम रहते अवश्य हैं । युद्ध में होने वाले धर्म,धन, जन, तथा शक्ति आदि का नाश तथा नष्ट तो दुःख की बात ही है । मगर जब सभ्यता, संस्कृति एवं न्याय की सुरक्षा के लिए अनिवार्य होने पर युद्ध से हटना पाप माना जाता है । ऐसे होने वाले धर्म-युद्ध को स्वर्ग का खुला द्वार भी मानाजाता है । रामराज्य निःशस्त्र युद्ध की घोषणा करता है । अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह आदि सात्विक नियमों का आदर एवं पालन करना है व्यष्टि का कर्तव्य है जो विश्व के हित के साधन माने जाते हैं । लेकिन जब राष्ट्र या व्यक्ति इन सिद्धान्तों का पालन न करने से कूटनीतिक व्यक्ति या राष्ट्र का शिकार बनता है, तब रामराज्य में युद्ध की अनिवार्यता का अंश बनता है । उदाहरण के लिए रामराज्य में अन्यायी रावण से पहले अन्याय से विरत होने के लिए समझाया बुझाया गया ह था । जब अनेक प्रकार से समझाने- बुझाने पर भी रावण राह पर न आया, तब उसे दण्ड देना अनिवार्य हो गया । यही रामराज्य

का युद्ध है। ऐसा युद्ध स्वर्ग का द्वार होने के कारण से इससे पराङ्मुख की अकीर्ति और पुण्य लोकों का नाश संभव है।[1] यहां म कृष्ण ने युक्त बताया है कि धर्मयुद्ध करने में कोई पाप नहीं, प्रत्युत उससे पीछे हटने से ही अनादर और निंदा प्राप्त होती है। अत: धर्मयुद्ध करना ही क्षत्रियों की शोभा है।[2] इस प्रकार राम- रावण युद्ध को धर्म-युद्ध माना गया है। रामराज्य में युद्ध अवश्य होता है मगर वह धर्मयुद्ध ही होता है अर्थात् धर्म और नीति की रक्षा के लिए किया जाने वाला युद्ध होता है।

उपर्युक्त बातें यह स्पष्ट करती हैं कि रामराज्य न्याय और धर्म की गणना इस प्रकार करता है था और वहां की जनता कितना संतुष्ट रहती है थी। शायद यही कारण होगा कि गान्धीजी भी इस रामराज्य से प्रभावित हुए और भारत को दूसरा रामराज्य बनाने का आग्रह प्रकट करते थे।

रामराज्य :

गान्धीजी ने रामराज्य की कई व्याख्याएं करते हुए यह बताने का प्रयास किया है कि रामराज्य से उनका मतलब क्या है और किस अर्थ में इसका प्रयोग किया है।

रामराज्य से उनका मतलब है धर्मियों का राज्य। वह एक व्यक्ति, एक दल या एक मत का राज्य नहीं। वह संपूर्ण जनता का- विशेषत: परिश्रमी लोगों का राज्य है। वह प्रेम का राज्य है। वह व्यक्ति का राज्य नहीं समष्टि का राज्य है। यह राजा का राज्य नहीं, प्रजा का राज्य है।[3]

- -

१: अथ चेत्त्वमिमं धर्म्यं संग्रामं न करिष्यसि।
ततः स्वधर्मं कीर्तिं च हित्वा पापमवाप्स्यसि॥
(गीता - द्वितीय: अध्याय: - श्लोक - ३३)

२: स्वधर्ममपि चावेक्ष्य न विकम्पितुमर्हसि।
धर्म्याद्धि युद्धाच्छ्रेयो-न्यत्क्षत्रियस्य न विद्यते॥
(वही- श्लोक- ३१)

३: रामराज्य यानी इस दल और उस दल का नहीं, इस मत या दूसरे मत का नहीं, इस तन्त्र या उस तन्त्र का नहीं, बल्कि प्रेम का राज्य, सबका पंचायत का राज्य। - अकाल पुरुष गांधी - पृ० २३२

रामराज्य में देशके समाज की जनता को प्रमुख स्थान दिया जाता है। समाज में प्रत्येक व्यक्ति को कर्म करने का प्रोत्साहन दिया जाता है। उसे ईश्वर का साक्षात्कार कराने का प्रयास किया जाता है। रामराज्य की स्थापना आध्यात्मिकता की नींव पर हुई है। यहां की जनता ईश्वर की कृपा से अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करती है और सुखी तथा सन्तुष्ट जीवन बिताती है।

गांधीजी ने स्वराज्य को रामराज्य के नाम से घोषित किया है। राम-राज्य धर्म, न्याय और प्रेम का राज्य है। यह जनता का राज्य है। रामराज्य में स्वतन्त्रता की महत्ता रहती है। उसमें सबको अपना अपना कार्य करने का स्वतन्त्र अधिकार रहता है। इसमें धर्म,नीति, न्याय, अहिंसा, प्रेम आदि का व्यवहार होता है। गान्धीजी ने भारत को स्वतन्त्र भारत बनाकर इन्हीं तत्वों जीवन में व्यवहृत करने का प्रयास किया था। उनकी बड़ी इच्छा यह थी कि देश की जनता की अस्तव्यस्त हालत को सुधारना चाहिए। और उनको भी अन्य बड़े बड़े लोगों की तरह जाने का अवसर देना चाहिए। इस प्रकार देश को एक दूसरा रामराज्य बनाना वे चाहते थे।

रामराज्यमें सेवा को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। जो सच्ची सेवा करता है, उसे अधिकार प्राप्त होता है। जनता की सेवा से ही रामराज्य स्थापित होता है। गांधीजी ने भी जनता की सेवा को अत्यंत आवश्यक माना है। उन्होंने कई बार यही बताया है कि जनता की सेवा ही ईश्वर की सेवा है। क्योंकि वे ईश्वर की ही संतान हैं। दरिद्र नारायण हैं और हरिजन भी। अत: उनकी सेवा करने से ईश्वर का साक्षात्कार होता है।

रामराज्य में सत्य और अहिंसा का धर्म जो व्यक्ति पालता है, उसे अन्य काम करने के लिए अधिकार मिलता है। रामराज्य सत्य और अहिंसा की नींव पर ही बनाया जाता है। इसमें असत्य, हिंसा, धोखा, कपट, छल, मार- पीट आदि को कोई स्थान नहीं है। दूसरों की सेवा और भलाई के लिए प्रत्येक व्यक्ति अपने अपने अधिकार का प्रयोग करता है।

रामराज्य में सारी प्रवृत्तियों में समता दिखाई पड़ती है। यहां न अटूट धन है और न असह्य भूख- प्यास है, न पशुबल है और न छल- कपट। सारी प्रवृत्तियां आपसी सहयोग से होती हैं। इसका मतलब यह है कि यहां जनता में समभाव और

समता रहती है। जनता के बीच में उच्चता- नीचता की भी दीवार नहीं है। व
वे सब मिलती जुलती रहती हैं।

यहां जाति- भाव नहीं है। दुनिया में यह देखा जा सकता है कि ऊंची जाति के लोग निम्न जाति के लोगों को खूब सताते हैं और उनको क्षोभ पहुंचाते हैं। वे लोग निम्नस्तरीय लोगों की चिंता तक नहीं करते हैं। वे अपने सुख- संपत्ति की समृद्धि की तरंग- माला में बहते रहते हैं। मगर रामराज्य के लोग ऐसे नहीं हैं। यहां उच्चता और नीचता का भाव नहीं है। ऊंचे लोग नीचे लोगों की सहायता और रक्षा करते हैं। एक दूसरों को मदद करना और सब की क्षेम- कुशलता की इच्छा करना यहां की जनता का कर्तव्य है। रामराज्य में जितने लोग

रामराज्य में जितने लोग रहते हैं उन सब का कल्याण वह चाहता है। जिसे राज्याधिकार का भार है, वह जनता का मुख्य सेवक कहलाता है। उसे जनता राजा, राष्ट्रपति आदि नामों से पुकारती है। वह जनता से कोई पैसा नहीं लेता और उन्हें किसी प्रकार भी नहीं सताता। गांधी जी को भारत और विदेश की जनता ने राष्ट्रपिता के नाम से भूषित किया है। इसका कारण यही है कि वे जनता के सच्चे सेवक थे और उनकी प्रगति तथा उन्नति के लिए खूब प्रयत्न करते थे। सारी जनता उन पर मोहित हुई और वे सब की आंखों का तारा बन गये। आज भी उन्हें राष्ट्रपिता के रूप में मानते हैं और उनकी आराधना करते हैं।

रामराज्य अत्यंत छोटा होता है लेकिन उसमें असंख्य लोग निवास करते हैं। जनता को नष्ट करानेवाला कोई ऐसा कानून नहीं चलता जो वस्तुतः बड़ा खतरनाक होता है। जनता कानूनों में अपनी आवश्यकता के अनुसार सुधारने की बात बतायी है और अधिकारी लोग उस पर चर्चा करते उसे सुधारते हैं। इस प्रकार राज्य के शासन में भी जनता को प्रमुख स्थान दिया जाता है।

रामराज्य खेती के काम से सुप्रसिद्ध है। खेती का काम यहां सबसे प्रमुख होता है। गाय, बैलों की यहां कोई कमी नहीं है। यहां की जनता को अन्न और वस्त्र खूब मिलते हैं, अतः लोग यहां सुखी जीवन बिताते हैं। यहां अन्य देशों में होने की भांति गाय- बैलों की हत्या नहीं होती। प्रत्युत उनकी महत्वपूर्ण रक्षा की

होती है । गांधीजी ने गो- रक्षा के प्रति अनुकूल आवाज उठायी है । उन्होंने पशु- हत्या पर अपना तीव्र विरोध प्रकट किया है । गो- रक्षा के लिए सत्याग्रह किया है । उन्होंने गायों और भैसों का इतना आदर किया है कि उनका दूध पीना भी बंद किया । दूध का स्थान उनका एक व्रत ही बन गया । उनकी रक्षा करना ही गांधीजी का उद्देश्य था, उनसे कुछ लेना नहीं ।

रामराज्य में विभिन्न वर्ग, धर्म एवं वर्ण के लोग रहते हैं । लेकिन उनके बीच में कोई झगड़ा- फिसाद नहीं होता । वे सब मिल जुलकर रहते हैं । यहां समाज में पुरुष के समान स्त्री को भी प्रमुख स्थान दिया जाता है । गान्धीजी ने नारी के उद्धार के लिए खूब प्रयत्न किया है । उन्होंने भी पुरुष का सा अधिकार स्त्री को भी देने का समर्थन किया था । वे नारी को घर की दीवारों के अन्तर्गत बन्द रखना नहीं चाहते । उसे देश की सारी प्रवृत्तियों में भाग लेने का अधिकार तथा अवसर देना ही उनका कर्तव्य था । अत: उनके युग में देश के सारे क्षेत्रों में नारियों ने भागलिया था और प्रयत्न किया था ।

रामराज्य में सेना की संख्या तो अनगिनित थी । लेकिन वह किसी देश से भी लड़ना चाहती नहीं है । इसका कारण यह है कि यहां की जनता परदेश से कुछ लूटने, जीतने या अनीति का व्यवहार करने की इच्छा नहीं रखती है । वे दूसरे राष्ट्रों से मित्रता से रहना चाहती हैं । देशीय अथवा राष्ट्रीय मित्रता बनाये रखने पर गांधीजी ने अपनी सम्मति दी है ।

रामराज्य एक आदर्श राज्य है । वह समस्त संसार के लिए आदर्श का निशान है । वह सारे राज्य के लिए उत्तम है जिसका प्रभाव उन पर भी पड़ सकता है । रामराज्य में अत्यंत आदर्शपूर्ण जीवन ही बिताया जाता है । अत: साहित्यकारों ने अपने साहित्य के निर्माण में आदर्श राज्य के रूप में अपनाया है । इसी के समान अपने अपने देश का रूप संवारने में उनकी अपनी रुचि होती है । आज भी रामराज्य को आदर्श मानकर अनेक साहित्यिक रचनाओं का सृजन होता है ।

रामराज्य की इन विभिन्न व्याख्याओं से रामराज्य का एक सुंदर रूप प्रस्तुत किया गया है । रामराज्य में जिस प्रकार का आदर्श जीवन बिताया जाता है

उसका एक चित्रण गान्धीजी ने किया है।

गान्धीजी ने रामराज्य के बारे में जो कल्पना की थी, वह डा० राधा कृष्णन के शब्दों में इस प्रकार है -

" He wanted a self - relient India in which the common man would feel master of his destiny, which he could shape as he like d without any let or hindrance, an India in which everybody would have enough for his basic needs, in which there would be no inseperable gulf between rich and poor and in which the rulers would be the servents of the people, and not the masters claiming exclusive rights and privileges for themselves. "[1]

हृदय परिवर्तन :

यह सिद्धान्त गांधीवाद की एक विचित्र देन है। हृदय- परिवर्तन की परिभाषा गांधीजी ने यों दी है - " मनुष्य कितना ही स्वार्थान्ध क्यों न बन गया हो और चाहे जैसे घातक अथवा कुटिल उपायों से काम लेने की उसकी तैयारी क्यों न हो, फिर भी अपने दिल की गहराई में उसे यह प्रतीति होती है कि सत्य ही सबसे श्रेष्ठ है और इसी कारण उसके मन में सत्य के प्रति आदर और भय हो रहते हैं। मनुष्य - मात्र के हृदय में यह जो गुप्त प्रतीति, आदर और भय पाये जाते हैं, वे सत्याग्रह के शस्त्र की बुनियाद हैं। इसी को मनुष्य के हृदय में विद्यमान ' अन्तःकरण की आवाज ' कहा जा सकता है। स्वार्थ के वश होने वाला कुछ समय तक अपने इस अन्तःकरण की आवाज की उपेक्षा करता है अथवा इसे दबा देने की कोशिश में रहता है ; किंतु यदि उसका विरोधी सच्चा सत्याग्रही सिद्ध हो, तो अंत में इस आवाज को उसे सुनना ही पड़ता है। उसके सामने यह आवाज अनेक रूपों में प्रकट होती है। उसे अपने अन्याय का विश्वास हो जाय और उसके लिए पश्चाताप हो, यह उसका श्रेष्ठ प्रकार है। इसी का नाम हृदय-परिवर्तन है।[२]

---

1. Mahatma Gandhi - 100 years - P. 289 - 290

२: गांधी विचार दोहन - पृ० ५१

हृदय परिवर्तन वास्तव में हृदय का ही परिवर्तन होता है और व केवल आत्मा के बल से हद संभव होगा । इसके लिए कष्ट- सहन और क्षमता अत्यन्त आवश्यक हैं ।[१] यह हमेशा आन्तरिक प्रक्रिया होती है, बाह्य नहीं । मात्र वाणी और कर्म का परिवर्तन कदापि हृदय का परिवर्तन नहीं होगा । कोई बुरा व्यक्ति जब बुराई ही करता जाता है और हम उसकी अनुचित एवं असंगत प्रवृत्ति पर कोई उपदेश देते हैं तब वह मुंह से आगे न करने की बात बताता है । मगर वह दूसरे क्षण उसी बुराई की ओर फिर मुड़ता है । इसे हृदय - परिवर्तन कह नहीं सकते । अग वह इस बुरे काम की चिंता पूर्णत: छोड़ देता तो वह हृदय परिवर्तन का फल माना जाएगा ।

गांधीजी और हृदय- परिवर्तन :

गांधीयुग के प्रारंभ से देश में ऐसा एक नियम चलता था कि शत्रु का बदला शत्रुता से, पापी का बदला पाप से , बुरे का बदला बुराई से , घृणित का घृणा से और हिंसा का बदला हिंसा से होता था । गांधीजी ने इन सब का विरो किया और इन सबको मिटाने के लिए एक नया मार्ग अपनाया - यही है हृदय- परि सिद्धान्त ।

गांधीजी का इस बात पर बड़ा विश्वास था कि हृदय- परिवर्तन के द्वारा देश में सर्वोदय की प्रतिष्ठा हो सकती है । इस प्रकार वह सर्वोदय का ध्येय अत: उन्होंने ऐसा नियम चलाया था कि शत्रुता का बदला मित्रता से, बुराई का बद सच्चाई से, घृणा का बदला प्रेम से, पाप का बदला पुण्य से और हिंसा का बदला से होना चाहिए । तभी देश की जनता को एकता के सूत्र में बांध सकते हैं । इसके लिए ही उन्होंने इस सिद्धान्त काप्रतिपादन किया था । हृदय परिवर्तन के मूल में या प्रवृत्ति होती है कि कोई व्यक्ति शत्रु हो, चोर हो, पापी हो और जो कुछ भी ऐसी नीच वृत्ति से पतित हो, उसे सदुपदेशों से (यदि उपदेश सप्रमाण हों तो अच्छा होगा

- -

१: परिवर्तन आएगा तो बाहर से नहीं, सबके अंतर से वह आएगा । इस असली परिवर्तन हृदय में, और हृदय का होना है और वह किसी संस्था शास्त्र के या मत के बल से नहीं होगा । आत्मा के बल से होगा । यानी कष्ट सहन और क्षमा की शक्ति से वह परिवर्तन होगा ।

विवश बनाकर उसके हृदय का परिवर्तन किया जाता है। उदाहरण के लिए कोई अपने राज्य को विस्तृत करने के लिए दूसरे राज्यों से युद्ध करता है। फलतः उसे उन राज्यों की असंख्य जनता की आहुति होती है और रक्त की अविच्छिन्न धारा बहने लगती है। इसे देखते ही राजा खूब पछताने लगता है और अपनी बुद्धि-हीनता पर दुःखी होता है। आगे वह यह दृढ़ निश्चय कर लेता है कि आगे वह कदापि नहीं करेगा और युद्ध करने की इच्छा को यहीं समाप्त करेगा। यही सच्चा हृदय-परिवर्तन है। इसी प्रकार मित्रतापूर्ण सत्कर्मों से शत्रु का दिल बदला सकते हैं।

गांधीजी ने बताया है कि सत्याग्रही का प्रधान धर्म है हृदय-परिवर्तन कराना।[१] सत्याग्रही ही इस सिद्धान्त की महिमा जान सकता है। साधारण इसे आसानी से समझ नहीं सकता। अतः गांधीजी ने बताया है कि सत्याग्रही को अन्याय और अत्याचार करने वाले लोगों से मित्रता के द्वारा व्यवहार करना चाहिए उनका मन-परिवर्तन करना चाहिए।

गांधीजी के इस सिद्धान्त को विद्वानों, आलोचकों, साहित्यकारों ने बिना किसी मत भेद के स्वीकृत किया। इस सिद्धान्त पर छोटी छोटी कविताओं से लेकर महाकाव्य तक भी उपलब्ध हैं। गांधीवादी कवियों ने इस सिद्धान्त का खूब प्रयोग किया। अपनी रचनाओं में आने वाले अन्यायियों तथा अत्याचारियों का हृदय-परिवर्तन करना गांधीवाद की दृष्टि से अपना कर्तव्य मान लिया गया है। इस प्रकार हृदय-परिवर्तन करने में विस्तार और व्यवहार में कठिन होने पर भी गांधीवादी के लिए एक अनिवार्य तत्त्व के रूप में महत्वपूर्ण बन गया है।

सत्याग्रह :

सत्य का साधारण अर्थ है सच्चाई। हमारे जीवन के व्यावहारिक तौर पर इसका प्रयोग उस अर्थ में होता है। सत्याग्रह शब्द सत्य और

१: सत्याग्रही का उद्देश्य अन्याय करने वालों को दबाना नहीं होता बल्कि उसका हृदय-परिवर्तन करना होता है।
- गांधी - विचार-रत्न - पृ० २४१

आग्रह के मेल से बना है। सत्याग्रह का आविष्कार गांधीजी ने ही किया है।[१] इसकी उत्पत्ति के संबंध में गांधीजी एक घटना का वर्णन भी करते हैं - 'अंग्रेजी में इसे 'पैसिव रेसिस्टेंस' कहते हैं जिसका गुजराती में खूब प्रयोग होता था। अंग्रेज इसी शब्द के द्वारा वे लोग इसे जानते थे। लेकिन एक बार गांधीजी ने देखा है कि भारत के लोगों के द्वारा इस शब्द का संकुचित अर्थ में प्रयोग होने लगा और उसे कमजोरों का हथियार माना जाने लगा है तब गांधीजी को लगा कि इसका परिणाम कुफल ही निकलेगा, उसका सच्चा स्वरूप बताने का निश्चय किया। उन्होंने इसके लिए एक नये शब्द को ढूंढने का प्रयास किया और एक प्रतियोगिता ही चलायी। फलतः मगनलाल गांधी ने सत् + आग्रह को मिलाकर सदाग्रह शब्द बनाकर भेज दिया। लेकिन गांधीजी ने उसे और स्पष्ट करने के विचार से उसके बीच में 'य' अक्षर लगाकर 'सत्याग्रह' निकाला।[२] यही 'सत्याग्रह' की उत्पत्ति की कहानी है। बाद में यही शब्द व्यवहृत हुआ और सुप्रसिद्ध भी।

सत्याग्रह की परिभाषा में यों देना चाहती हूं कि सत्याग्रह माने मिलने योग्य चीजों को अर्थात् जो सत्य हैं, 'ईश्वरीय' हैं पाने के आग्रह की पूर्ति के लिए दूसरों की देह- हानि किये बिना, भक्ति, प्रेम और न्याय के ढंग से किया जाने वाला आत्मिक प्रतियोग है।

शारीरिक कष्टों का सहन करते हुए खूब प्रयत्न करना और अपनी आत्मा को किसी के सामने भी न नमाना सत्याग्रह है। यही गांधीजी द्वारा प्रतिपादित सत्याग्रह की रीति है।[३] जीवन के रहस्य को ही गांधीजी ने सत्य की संज्ञा दी है।[४] प्रत्येक व्यक्ति को अपने अपने सत्य का आग्रह रहता ही है और जब वह उसे पाने के लिए संघर्ष करता है तब सत्याग्रह होता है। तमाम मनुष्य भगवान की दुनिया के बाशिन्दे हैं

- -

1. He invented the term Satyagraha which unfortunately has been widely used as a fair label to cloak every form of indiscipline and has even voilence for enforcing ones demand. Mahatma Gandhi - 100 years - P. 369

२: आत्मकथा- पृ० २७८ ३: गान्धीजी का जीवन दर्शन - पृ० २१

४: वही० पृ० २२

और ईश्वर की सारी वस्तुओं के प्रति हमारे मन में प्रेम और आदर की भावना रखनी चाहिए ।

गान्धीजी ने सत्याग्रह करने के लिए चार कदमों का समर्थन किया है । पहला कदम वह है जिसमें पारस्परिक विचार- विनिमय और समझौते का कार्य होता है। इससे काम न चलता तो दूसरे कदम पंचायत का सहारा लेना है , उससे भी असंतुष्ट होता तो तीसरा कदम है न्यायालय । यदि यहां भी असंतोष पैदा होता तो चौथे कदम को अपनाता है जहां मनुष्य अपने सत्य पर दृढ़ रहकर सब कुछ सह लेना का वादा कर लेता है। अंतिम कदम को सत्याग्रह का उग्र रूप बताया गया है । वह भी कहना यहां उचित होगा कि सत्याग्रही हमेशा समझौते का कदम ही अपनायेगा । यदि वह संतोष- दायक हो तो ।

गांधीजी ने अपने जीवन में कई बार सत्याग्रह किया है । जिस कार्य की सिद्धि होनी है तो वे सत्याग्रह का मार्ग ढूंढते थे । इसका कारण यह कि कभी कभीअपने इष्ट कार्य की सिद्धि समझौते से नहीं हो सकती । उन्होंने अपने सत्याग्रहका पहला प्रयोग दक्षिण- अफ्रीका में किया जो बाद में लोक- प्रसिद्ध घोषित किया गया यही उनके जीवन में बड़ा सत्याग्रह रहा है । इसमें सफलता प्राप्त होने केकारण उन्होंने कई प्रकार के छोटे छोटे सत्याग्रहों का श्रीगणेश किया ।

गांधीजी के कुछ सत्याग्रहों का विवेचन यहां करना उचित होगा । एक बार अपनी पत्नी की बीमारी के कारण गांधीजी ने उनसे नमक त्यागने का अनुरोध किया । मगर वे इसे मानने वाली नहीं थीं । उन्होंने बताया कि यदि यही बात गांधीजी से कहें तो वे इसे मानने के लिए तैयार न होंगे । यह सुनते ही गांधीजी ने हो सबसे पहले नमक छोड़ने का शपथ लिया । अत: बा को बड़ा पश्चाताप हुआ और उन्होंने गांधीजी से अपने शपथ को वापस लेने की प्रार्थना की । मगर गांधीजी अपनी प्रतिज्ञा को वापस लेने के लिए तैयार न थे । पत्नी पर अपनी विजय को उन्होंने एक छोटा सा सत्याग्रह बताया है । [१]

एक बार गांधीजी ने नायब अधिकारी की नियुक्ति में असंतुष्ट होकर सत्याग्रह करने का अनुरोध किया । बात यह थी कि गांधीजी और अन्य लोगों को कवायद सिखाने के लिए एक अधिकारी नियुक्त किया गया था । उन्हें नायब अधिकारी

१: आत्मकथा - पृ० २८४ - २८६

के रूप में ही रखा गया था । लेकिन उन्हें किसी ने पसन्द न किया क्योंकि वे धीरे-धीरे अपना अधिकार चलाना तथा हुक्म देना शुरू कर गये थे । तब गान्धीजी ने यह प्रस्ताव पास कराया कि अगर उस अधिकारी को हटाकर, उसका नये अधिकारी की नियुक्ति न होगी तो सत्याग्रह करेंगे ।[१]

काठियावाड़ की चुंगी संबंधी बातों का वहां तर्क- वितर्क हो रहा था गान्धीजी ने चुंगी को उठा देने की प्रार्थना की थी । लेकिन वहां उसे मानने वाला कोई नहीं था । इसके संबंध में उन्होंने केन्द्रीय सरकार को पत्र भेजा, पर कोई उत्तर न मिला था । अन्त में वे लार्ड चेम्सफर्ड से मिले और इस बात पर चर्चा की । उन्होंने तुरंत ही उनकी बात मान ली और चुंगी रद्द कर दी । गान्धीजी ने यहां सत्याग्रह की कोई आवश्यकता न पड़ने पर भी, इस जीत को सत्याग्रह की ही जीत बतायी है ।[२]

खेड़ा जिले में जब अकाल की - सी स्थिति उपस्थित हुई, तब भी वहां की सरकार ने लगान माफ करने की पाटीदार लोगों की मांग का विरोध किया । गान्धीजी ने सरकार से बहुत अनुनय - विनय तथा परामर्श किया । मगर वे किसी भी प्रकार मानने वाले न थे । अत: उन्होंने सत्याग्रह आरंभ किया । दण्डी- कूच पर गान्धीजी ने नमक- सत्याग्रह जो किया वह यहां स्मरणीय है जिसे बाद में बड़ी कीर्ति मिली ।

आश्रम-स्थापना :

इस प्रकार गांधीजी ने अपने व्यक्तिगत जीवन तथा राष्ट्रीय जीवन दोनों क्षेत्रों में कई बार विभिन्न उद्देश्यों की पूर्ति के लिए सत्याग्रह किये हैं । अपने सत्याग्रह संबंधी विचारों को कार्यान्वित करने के लिए उन्होंने सन् १९१५ मई में २५ तारीख को सत्याग्रह आश्रम की स्थापना की । आश्रम के नामकरण के लिए पहले सेवाश्रम, तपोवन आदि नामों को सुझाया गया । मगर इन्हें गांधीजी ने पसंद न किया । उन्होंने यह आग्रह प्रकट किया कि हमें सत्य की पूजा और शोध करने का

१: आत्मकथा - पृ० ३०७ - ३१०

२: वही० पृ० ३२८ ं - ३३०

दृष्टिकोण रखना चाहिए और दक्षिण अफ्रीका में जिस सत्याग्रह की सफलता हुई, उसे भारत की जनता को भी समझाना चाहिए ।[१] इसी उद्देश्य से ही गांधीजी ने सत्याग्रह - आश्रम की संज्ञा देने की इच्छा प्रकट की । अत: उसका नाम सत्याग्रह - आश्रम पड़ा ।

आश्रम का स्वरूप :

गांधीजी द्वारा प्रतिष्ठित इस आश्रम में विजातीय लोग रहते थे और एक साथ भोजन करते थे । उनमें छूत - अछूत की भावना न थी । आश्रम-वासियों को वहां के नियमों का कठोर पालन करना आवश्यक था । इनकी प्रधान प्रवृत्ति बुनाई काम की थी । आश्रम का प्रत्येक व्यक्ति सूत कातता था और चरखा चलाता था । वे अत्यंत सरल एवं सादगी का जीवन बिताते थे । इन लोगों को आश्रम का जीवन नगर तथा शहर के विलासपूर्ण तथा भीड़-भाड़ के जीवन की अपेक्षा अत्यंत सुखद और शांतिमय लगता है । उन्होंने आश्रम के लोगों के ऐसे जीवन के द्वारा, जो बिल्कुल आदर्श-पूर्ण था भारत के सारे लोगों को अस्पृश्यता- निवारण, आत्मिक एकता, अहिंसा, सत्य, मैत्री आदि की शिक्षा देते हुए उनके सम्मुख प्रस्तुत जीवन को उपस्थित किया । उनका लक्ष्य यह था कि आश्रम के जीवन की भांति देश का जन- जीवन भी आदर्शपूर्ण रहे । यह निस्सन्देह कहा जा सकता है कि गांधीजी के सत्याग्रह - आश्रम में देश के जीवन को आदर्शयुक्त बनाने में स्तुत्य कार्य किया है ।

सत्याग्रह संबंधी गांधीजी की मान्यताएं :

गान्धीजी ने सत्य पर जितना व्यापक दृष्टिकोण रखा है उसी प्रकार सत्याग्रह पर भी बहुत बड़ा व्यापक दृष्टिकोण रखा है । उन्होंने इसकी भी अनेक व्याख्याएं प्रस्तुत की हैं । सत्याग्रह का प्रयोग गांधीजी ने देश की परतंत्रता हटाने और स्वतन्त्रता प्रदान करने के लिए राजनीति के क्षेत्र में किया था । और उनका यह राष्ट्रीय हथियार था । भारत के स्वतंत्रता- संग्राम में इस हथियार का बड़ा महत्वपूर्ण स्थान रहा है । अब गान्धीजी की विभिन्न व्याख्याओं पर विचार होगा ।

१: आत्मकथा - पृ० ३४४

सत्याग्रह का व्यावहारिक अर्थ बताते हुए गांधीजी ने बताया है उसका अर्थ अपने जीवन- लक्ष्य को पाने के लिए शारीरिक शक्ति का प्रयोग न करके खूब प्रयत्न करना चाहिए और कष्ट सहना भी चाहिए।[१] कष्ट सहना गांधीजी के लिए अत्यंत प्रिय था। स्वयं कष्ट सहकर अपने आप प्रयत्न करते हुए दूसरों की मदद करना उनका परम कर्तव्य था। कष्ट सहना उनके लिए कोई बड़ी बात न थी। ऐसा ही शारीरिक परिश्रम करने को भी उन्हें कोई नियम नहीं था। उन्होंने किसी के लिए भी शारीरिक शक्ति का प्रयोग नहीं किया था। इसकी जगह उन्होंने सत्याग्रह के हथियार को प्रचलित किया। यह शारीरिक बल को हटाने के लिए ही उपयोगी होता है। अत: उन्होंने सत्याग्रह पर अधिक बल दिया है। सत्याग्रह से किसी की हानि या कष्ट नहीं होता। उससे किसी को किसी प्रकार की चोट तक नहीं पहुंचती। अत: उन्होंने सारी जनता के कल्याण के लिए सत्याग्रह को उनके सामने रखा।

सत्याग्रह एक तरह से देखने पर कर्म ही है। सत्याग्रह गांधीजी के कर्म का व्यावहारिक रूप है जिसके द्वारा उन्होंने सत्य को पाने का प्रयास किया था। अत: यह एक प्रकार का कर्म ही है। साथ ही राजनीतिक सुधार के लिए उन्होंने इस हथियार का खूब प्रयोग किया था।

गान्धीजी ने सत्याग्रह को मनुष्य के लिए ईश्वरीय बताया है। सत्याग्रह आत्मीय कर्म है, सांसारिक नहीं। मनुष्य को कभी कभी अपने जीवन में निराश होना पड़ता है। ऐसे समय में अपने मन को भगवान को लीन करके अपना सुख भोग सब कुछ छोड़ देने में बड़ा आनंद मिलता है। इसी दशा को उन्होंने सत्याग्रह बताया है। गांधीजी ने सत्याग्रह शब्द को आध्यात्मिक या ईश्वरीय रूप से प्रस्तुत किया है। उनका मुख्य उद्देश्य राजनीति को आध्यात्मिक अथवा ईश्वरीय बनाना ही था। इसलिए उन्होंने राजनीति में प्रयुक्त होने वाले सारे शब्दों को आध्यात्मिकता का रंग देकर प्रस्तुत किया है। यहां यहां गांधीजी ने अपने अपने मन को भगवानमें अंतर्लीन करने को सत्याग्रह बताया है।

१: सत्याग्रह का व्यावहारिक अर्थ अपने लक्ष्य या उद्देश्य के लिए शारीरिक शक्ति को प्रयोग किये बिना, स्वयं कष्ट सहकर दृढ़ता पूर्वक यत्न करना ही है। -

- गांधीवाद की शव- परीक्षा - पृ० १४३

गान्धीजी का सिद्धान्त विरोध और युद्ध को पूर्णत: त्यागता नहीं था। उन्हें बनाये रखना भी तो चाहता नहीं था। इस प्रकार उनके वर्तमान में ही अहिंसा, प्रेम आदि के व्यवहार के साथ ही सत्याग्रह का प्रयोग करके दिखाना गांधीजी का विचार था। इसमें वे सफल हुए थे। गांधीजी का सत्याग्रह युद्ध के समय और विरोध के समय में भी अपनी अहिंसात्मक और प्रेमपूर्ण प्रकृति को छोड़ता नहीं था। यही उसकी विशेषता भी मानी जाती है।[१]

सत्याग्रह एक ऐसा अस्त्र है जो शुद्ध और अहिंसात्मक है। सत्याग्रह को उन्होंने उत्कृष्ट एवं श्रेष्ठ हथियार माना है जिसमें अमोघ शक्ति और तेज रहते हैं। इस भारत में गांधीजी के युग में अंग्रेजों का आधिपत्य रहता था, उनका शासन होता था और उनकी शक्ति भी बड़ी थी। फिर भी गांधीजी का सत्याग्रह उनकी शक्ति का सामना करने के लिए कुशल था। सत्याग्रह के आगे अंग्रेजों की शक्ति नालायक हो जाती थी। अत: उन्होंने सत्याग्रह को सर्वोपरि अस्त्र बताया है। अंग्रेजों की शक्ति के साथ यह युद्ध लड़ा था। सत्याग्रह और आधुनिक युग के अस्त्रों, तोपों आदि में जितना अंतर रहता है। फिर भी इन तोपों एवं अस्त्रों की शक्ति को नष्ट करने की शक्ति सत्याग्रह में थी। शक्ति के बारे में कहते वक्त यह बात भूलनी नहीं चाहिए कि सत्याग्रह में जो शक्ति रहती है, वह आत्मिक या ईश्वरीय है। लेकिन अंग्रेजों के तोपों और हथियारों में जो शक्ति थी, वह अत्यंत मारक और हिंसात्मक थी। फिर भी वह शक्ति क्षणिक थी, नाशवान थी। सत्याग्रह की शक्ति अनश्वर है, अक्षय है। यहां यह कहना उचित होगा कि इस संसार में चाहे कितनी महान शक्ति रहती होगी, वे सब ईश्वरीय शक्ति के सामने शक्तिहीन और क्षीण हो जाती हैं।

सत्याग्रह के द्वारा हिंसाहीन युद्ध जो हुआ था वह युद्ध धार्मिक था। सत्याग्रह - युद्ध आत्मशुद्धि के लिए लड़ा था। यह एक प्रकार का ऐसा व्रत है जिसका पालन सत्याग्रही को करना ही पड़ता है, जिसमें अन्य अनेक व्रतों को भी मान्य बताया है। इतना ही नहीं उसे सांसारिक सुख भोग को त्यागना चाहिए। संपत्ति का दान करना

- -

१: विरोध अथवा युद्ध करते हुए भी अहिंसात्मक बने रहना, प्रेम का दावा करते रहना, अथवा अहिंसा का दम भरते रहना, गांधीवादी सत्याग्रह की विशेषता है। - गांधीवादी समाज-परीक्षा-पृ० १४१

साथ ही ब्रह्मचर्य का व्रत भी लेना चाहिए । ये सारे व्रत आत्मशुद्धि के साधन हैं । सत्याग्रह परमेश्वर (सत्य) को पाने का मार्ग होने के कारण यहां आत्मशुद्धि को अत्यधिक प्रमुखता दी गयी है ।

सत्याग्रह सत्य और नीति की ओर लालायित है । वह शारीरिक बल को त्यागना चाहता है । सत्याग्रह में शरीर बल को कोई स्थान नहीं है । वह हमेशा सत्य और न्याय का पल्ला पकड़ना चाहता है । उसमें आत्मबल को ही अधिक प्रमुखता दी जाती है । क्योंकि उससे ही सत्याग्रह का पालन हो सकता है । इसीलिए वह आत्मबल को अनिवार्य मानता है ।

सत्याग्रह, युद्ध का प्रतिनिधित्व करता है जो सत्य, प्रेम, सहनशीलता आदि पर अवलंबित है ।[1] गान्धीजी के सत्याग्रह ने इस संसार में होने वाले हिंसात्मक और पाशविक युद्ध को हटाते हुए अपना स्थान जमा कर दिया है । गान्धीजी के पहले जो युद्ध होता था उसी जगह गान्धीयुग में सत्याग्रह चलता रहा था । वह सत्याग्रह, सत्य, प्रेम आदि पर निर्भर रहता है । उनका सत्याग्रह शब्द युद्ध का प्रतिनिधित्व ही करता है, इसमें अंतर केवल इतना ही है कि सत्याग्रह अहिंसात्मक और दैविक है और युद्ध हिंसात्मक तथा भूतीय है । गान्धीजी के समय में युद्ध शब्द चलता ही नहीं था । हर कहीं सत्याग्रह का ही प्रयोग होता था ।

सत्याग्रह प्रेम पर आधारित है, विद्वेष या घृणा पर नहीं । उसमें शत्रुओं को प्रेम करने और उनका हृदय- परिवर्तन करने की बात है । सत्याग्रही को अन्याय करने वाले को दबाना नहीं, उससे प्रेम के साथ व्यवहार करने को सीखना चाहिए । उसके मन को किसी प्रकार से भी दु:खी बनाना नहीं चाहिए । यदि ऐसा करता तो महापाप माना जाता है ।[2]

सत्याग्रह की आत्म- बलिदान, सहनता, उपवास, स्वतन्त्रता, मृत्यु आदि पर बड़ी मांग है क्योंकि यही साध्य की ओर साधन को ले जाने वाली सीढ़ी है।

- -

1. Satyagraha is his substitute for war and is based on absolute adherense to truth, practice of love and self-suffering by the resister in case of conflict. Mahatma Gandhi -100 years-P.1
2. Satyagraha is based on love, not on hate; on loving ones opponents and suffering to convert them . It is resistence to sin and not to the sinner. Ibid P.4

साध्य के पास पहुंचने के लिए उपर्युक्त साधनों का प्रयोग करना अनिवार्य है । इसलिए सत्याग्रही को इन साधनों का व्यवहार करना पड़ता है । यदि सच्चा सत्याग्रही इनका सम्यक् पालन करता है वह सत्य अथवा परमात्मा का दर्शन कर सकता है ।

गान्धीजी द्वारा प्राप्त अमूल्य धन है सत्याग्रह । उन्होंने इसी के द्वारा ही भारत को स्वतन्त्रता प्रदान की है । गान्धीजी ने उसे हमें मुक्तपत्र की भांति प्रदान किया है । स्वतंत्रता- संग्राम के दिनों में उसका सफल प्रयोग हुआ था । गान्धीजी ने आजन्म इसका प्रयोग किया था । सत्याग्रह एक धार्मिक विश्वास है जिसके जल से सत्य को सींचा जाता है । सत्याग्रह हिंसा, असत्य, विद्वेष आदि के प्रति अहिंसा, सत्य, प्रेम का पाठ पढ़ाता है जिसके द्वारा आदर्शात्मक भाईपन की प्राप्ति हो सकती है ।[1] देश की एकता के लिए आपसी भाई - भाई का भाव होनाआवश्यक है । यह भाईचारा की भावना ईश्वर- विश्वास से ही संभव है । अत: सत्याग्रह ऐसे भाईपन की प्रतिष्ठा के लिए सहायक होता है ।

सत्याग्रही को हमेशा असत्य को सत्य से, द्वेष को प्रेम से, पाप को पुण्य से और हिंसा को अहिंसा से हटाना चाहिए । गान्धीजी ने असत्य को असत्य से या हिंसा को हिंसा से मिटाने की बात नहीं बतायी है , प्रत्युत सत्य और अहिंसा से ही उनका सामना करना उचित बताया है । उन्होंने हमेशा दुष्टों को शिष्ट, शत्रुओं को मित्र, निर्गुण को सगुण बनाने का प्रयास ही किया है । उनकी इच्छा भी यही थी कि संसार के सारे लोग शिष्टता, मित्रता और सत्समभाव के साथ रहें । सत्याग्रही हमेशा अपने अन्त:करण की प्रेरणा एवं आदेश के साथ प्रयत्न करता है । वह बाह्य प्रेरणा(एवं आदेश के साथ प्रयत्न करता है) या दूसरों के आदेश को नहीं सुनता ।

सत्याग्रह के तत्त्व और उसकी व्यवहार कला इतनी प्रभावशाली हैं, उन्हें अपने सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक सुधार के लिए जहां चाहे और जैसा चाहें, बदल सकते हैं । गान्धीजी ने सत्याग्रह का प्रयोग हर क्षेत्र में किया है ।

---

1. Satyagraha is the practical application of truth, non-violence and love to fight social evils and march towards the ideal of human brotherhood .

- Mahatma Gandhi- 100 Years-P.258

सत्याग्रह एक ऐसी चीज़ है जिसका प्रयोग सब ज कहीं हो सकता है। उसके प्रयोग के लिए व्यक्ति- विशेष, स्थान विशेष या कालविशेष की कोई जरूरत नहीं है।

गान्धीजी ने सत्याग्रह का अर्थ यों बताया है कि सत्य पर अवलंबित रहना या सत्य पर विश्वास रखना।[१] इन दोनों के होने पर ही सत्याग्रह का पालन हो सकता है। सत्य पर विश्वास और प्रेम होना चाहिए। तभी सत्य का आग्रह भी हो सकेगा। उन्होंने सत्याग्रह के गुण (क्वालिटी) की अपेक्षा उसकी मात्रा (क्वान्टिटी) पर अधिक बल दिया है। उन्होंने उसे चाहे जितना व्यापक हो सकता उतना ही व्यापक बनाना चाहा था। इसलिए ही देश की सारी समस्याओं को सुलझाने में सत्याग्रह का प्रयोग किया गया था। सत्याग्रह आजकल तो संसार- व्यापक हो गया है।

सत्याग्रह बलवानों का शस्त्र है, दुर्बलों का नहीं। सत्याग्रह के पालन के लिए दुर्बलों में उतनी शक्ति नहीं रहती जितनी सबलों में होती है। दुर्बल व्यक्ति सत्याग्रह का पालन नहीं कर सकता। क्योंकि उसमें आत्मशक्ति बहुत कम होती है। वह शारीरिक दृष्टि से भी अत्यंत दुर्बल- पतला होता है। ऐसा व्यक्ति सत्याग्रह कैसा कर सकता है। जिसमें आत्मबल अधिक है वह सत्याग्रह कापालन कर सकता है।

गान्धीजी ने सत्याग्रह को इस उद्देश्य से प्रस्तुत किया कि वह हिंसा और संघर्ष को दूर करे, और अनीति, निर्बलता आदि को मिटावे। गांधीजीके आगमन के पूर्व देश में राजकीय शासन और हिंसात्मक विद्रोह चलते थे। उन्होंने इनका नाश करना चाहा। लेकिन उन्हें इस बात पर बड़ी हठ थी कि अहिंसा के मार्ग से यह कार्य करना चाहिए। इसलिए उन्होंने सत्याग्रह का प्रस्ताव किया जो मूलतः अहिंसात्मक होता है।

सत्याग्रह कदापि हार नहीं सकता, वह चिर जयी है। संसार में जितनी भौतिक- प्राकृतिक वस्तुएं होती हैं, वे सब एक न एक दिन मिट जाती हैं और

- -

१: It means approximately " adherence to truth ' or ' reliance on truth (- Gandhiji- his relevance for our time.P. 62

फिर नयी नयी वस्तुएं होती रहती हैं। लेकिन सत्याग्रह की एक विशेषता यह है कि वह मौलिक होने पर भी शाश्वत है और व्यापक है।

सत्याग्रह में कार्य सिद्धि की जो योग्यता रहती है वह अद्भुत है। उसके द्वारा कितनी भी छोटी या बड़ी समस्याओं को सुलझा सकते हैं। वह मानसिक समस्याओं को सुधारने में भी सक्षम है। जिस प्रकार कि पिता- पुत्र, पति- पत्नी, भाई - बहन, दोस्त- दोस्त, समूह - समूह, किसान- मजदूर, शासक- शासित के बीच की समस्याओं को सत्याग्रह शीघ्रता से सुलझाता है। गांधीजी ने अपने अनुभवों की आसानी से यह सिद्ध किया है कि सत्याग्रह समस्या- समाधान के लिए अच्छा साधन है। समस्याओं के विषम- सरल की बात की चिन्ता नहीं रहती सत्याग्रह में। कहने का तात्पर्य है कि सत्य का आग्रह करते हुए सत्याग्रह - शस्त्र के द्वारा देश की बुराई हटाने का प्रयास करता है, उसे किसी भी काम में विषमता- सरलता का प्रश्न उठता तक नहीं। इतना ही नहीं वह राज्य- राज्य और शहर - शहर के बीच की समस्याओं को भी सुलझाता है। यों कहें तो समस्या के सुलझाने मार्ग में सत्याग्रह का अपना सामर्थ्य रहता है। अत: इस दृष्टि से यह अत्यंत महत्वपूर्ण है। सत्याग्रह

सत्याग्रह इस बात का समर्थन करता है कि शत्रु का मन एक सत्यव्रती के अथक परिश्रम से परिवर्तित हो सकता है। यहां गांधीजी के हृदय- परिवर्तन की बात आती है। उन्होंने अपने सिद्धान्तों के द्वारा शत्रुओं, कुमार्गियों एवं अत्याचारियों का दिल बदलाने का मार्ग बताया है। उनका सत्याग्रह भी इसी विश्वास पर आधारित है।[१]

गांधीजी ने सत्याग्रह शब्द का प्रयोग अहिंसात्मक आंदोलन के लिए किया है जो दक्षिण - अफ्रीका के लोगों ने वहां की सरकार के विरुद्ध किया था। इस प्रकार सत्याग्रह का पहला प्रयोग भी वहीं हुआ था।

- -

1. The whole conception of Satyagraha rests on the psychologica l assumption that the innate goodness of the the most brutal opponent can be aroused by the pure suffering of a truthful man.
-The Political Philosophy of M.Gandhi.P.110

सत्याग्रह सत्य - स्वरूप साध्य के पास पहुंचने का अहिंसात्मक साधन है। एक दृष्टि से देखने पर वह तपस्या ही है। तपस्या के लिए जैसा सुख- त्याग भौतिक - जीवन - त्याग, इन्द्रिय- निग्रह आदि की आवश्यकता है, ये सब सत्याग्रह के लिए भी अनिवार्य हैं। सत्याग्रह और तपस्या में कोई अंतर नहीं है। सत्याग्रह एक नैतिक अस्त्र है जिसका निर्माण आत्मबल से हुआ है। इसलिए वही इसका संधान कर सकता है जिसमें मरने की ताकत रहती है।[१] शर - संधान के समय प्रतिपक्षी की ही नहीं अपनी भी मृत्यु कहीं होने की संभावना है। इस कारण से वीर व्यक्ति ही शर- संधान के लिए तैयार होता है। शिकारी तो अपनी आवश्यकता की पूर्ति और मनोल्लास के लिए शिकार खेलता है। लेकिन उसे भी अपने जान की रक्षा करनी पड़ती है। उसे इस बात का निश्चय नहीं रहता कि उस पर कौन, कब शिकार करेगा। इसलिए जो मरने के लिए तैयार है वही न शिकार खेलेगा, शर साधेगा।

सत्याग्रह में हिंसा की गंध तक नहीं रहती। सत्याग्रह ईश्वरीय शक्ति है। उसे कोई दुष्टता छू नहीं सकती। वह दुष्टता का नाशक है और संहारक भी। आकस्मिक प्रयोजन के वक्त भी सत्याग्रह हिंसा का उपदेश या आदेश नहीं देता। सत्याग्रही के आन्तरिक सुधार और लक्ष्य - स्थान के बीच में अटूट संबंध रहता है जिस प्रकार साध्य और साधन में रहता है। अगर लक्ष्य सत्य या परब्रह्म को पाना है तो साधन उसी के अनुसार पवित्र एवं परिशुद्ध होता है। सत्याग्रही की स्थिति भी यही है। अगर उसका लक्ष्य पवित्र या निर्मल कोई साधन है तो सत्याग्रही का मन भी वैसा ही होना चाहिए। उसका आन्तरिक सुधार भी इसी के अनुकूल होता है। ऐसी स्थिति में हिंसा की बात ही नहीं उठती। ऐसा सत्याग्रही हिंसा नहीं कर सकता।

सत्याग्रह का प्रयोग सार्वजनिक तौर पर हो सकता है। उसका प्रयोग समाज में हो सकता है और घरेलू कामकाज में भी। हर कहीं उसका प्रयोग होता है। यह सभी स्थानों, कालों, स्तरों, कुलों के बीच में प्रयुक्त होने वाला साधन है।

---

1. Satyagraha is a moral weapon based on the superiority of soul force over physical force . Satyagraha can be practised only by the bravest who have the courage of dying without killing " The Political Philosophy pf M.Gandhi. P. 127

सत्याग्रह के मूल में भी प्रेम अर्थात् विश्वप्रेम निहित है। सत्याग्रही को भी संसार की सारी वस्तुओं से प्रेम करना चाहिए और इसी के आधार पर ही एक व्यक्ति सत्याग्रह का पालन तथा प्रयोग कर सकता है।

सत्याग्रह का प्रयोग हम जैसा चाहें वैसा कर सकते हैं। जो इसका उपयोग करता है उसे भगवान का अनुग्रह मिलता है। जिसके ऊपर यह प्रयुक्त होता है, उसे भी भगवान का अनुग्रह मिलता है। सत्याग्रह का प्रयोग भगवान को अत्यंत प्रिय होता है। जिसके ऊपर इसका प्रयोग होता है उसका हृदय- परिवर्तन होता है। अतः भगवान की कृपा उस पर भी पड़ता है। सत्याग्रह के सहारे जनता को शिक्षा दी जाती है।" सत्याग्रह सब धारों वाली तलवार है। इसका किसी तरह भी प्रयोग किया जा सकता है। जो इसका प्रयोग करता है और जिसके विरुद्ध इसका प्रयोग किया जाता है वह दोनों का मंगल करता है। खून की एक बूंद बहाये बिना यह दूर-गामी परिणाम पैदा करता है।"[१] सत्याग्रह के प्रयोग से जनता में अध्यात्मवाद की दीक्षा हो सकती है। वैसा ही उनकी सुषुप्त आत्मा को जगाने के लिए सत्याग्रह अच्छा औषध है। सत्याग्रह हर तरह से स्वयं पर्याप्त है; वह दूसरे किसी पर निर्भर नहीं रहता। उसमें जो अद्भुत शक्ति रहती है वह स्वयंसिद्ध है।

गांधीजी ने अपने अनुभव से बताया है कि सत्याग्रह एक प्रबल शक्ति है। यह तो समुदाय के बीच में इतना प्रचलित एवं व्याप्त हो गया है कि जिस समुदाय में उसका प्रयोग हुआ, उस समय में उसने सफलता प्राप्त की है। अब तो यह सरकार तक पहुंच गया है और उसे हटाना भी सरकार को कठिन हो जाता है।[२]

सत्याग्रह माने आत्मा की शक्ति पर विश्वास, सत्य पर विश्वास और प्रेम पर विश्वास है। इसके द्वारा हम अपना पाप मिटा सकते हैं। सत्याग्रह द्वारा पाप का दूरीकरण तब होता है जब हममें सब कुछ सहने की शक्ति आती है और अपने को बलिदान करने की मनोभावना पैदा होती है। सर्वत्याग और आत्मदान ही

१? गांधी - विचार - रत्न - पृ० २४२

2. My experience of Satyagraha leads me to believe that it is such a potent force that, once set in motion, it spreads till at least it becomes a dominant force in the community in which it is brought into play, and if it is so spread on government can neglect it.
The Political Philosophy of M. Gandhi. P.27

सत्याग्रह का नारा है ।

सत्याग्रह हमेशा नैतिक मूल्यों की रक्षा करते हुए मान की प्रतिष्ठा करने के लिए प्रयुक्त होना चाहिए । कदापि भौतिक वस्तुओं को संग्रहीत करने के लिए न होना चाहिए ।

सत्याग्रह के अंतिम फल का निर्णय उसके आरंभ में नहीं उसके आरंभ में नहीं अंतिम परिणाम में ही हो सकता है । गांधीजी ने जब सत्याग्रह का आविष्कार किया, तब उसका कई लोगों ने विरोध किया था । लेकिन बाद में इसका प्रचार देश भर में हुआ और सारी जनता ने उसे अपना लिया । आरंभ में जनता सत्याग्रह के बारे में नहीं जानती थी । सत्याग्रह को जान लेना उतना आसान नहीं है । उसे ठीक तरह से जान लेने में कुछ समय लगता है । लेकिन जनता ने जब उसे अच्छी तरह जान लिया तो उसे बहुत अधिक चाहा ।

सत्याग्रह का मार्ग बहुत साफ है । उसे बुराई, अनीति, असत्य के बीच में रहना पड़ता है । सत्याग्रही बहुत कष्ट सहता है और इससे पथरीले हृदय को भी पिघला देता है । अगर यह संभव होता है तो सत्याग्रह सफल होता है । सत्याग्रही किसी को नहीं डराता । उसमें डर या भय की बात की बात नहीं रहती । गान्धीजी ने बड़ी ही निर्भयता के साथ अपना कार्य किया था । वे किसी से नहीं डरते थे । किसी की बात को भी मानने के लिए तैयार न थे । किसी की धमकी या धोखा से नहीं डरते थे । उन्हें अपना स्वतंत्र मत था, विचार था और चिंतन भी । इसलिए उन्हें किसी से डरने की आवश्यकता ही न थी । अत: उन्होंने सदा अभय का समर्थन किया है और किसी को भी किसी से न डरने का उपदेश दिया है ।

गांधीजी ने एक नयी बात बतायी है कि सत्याग्रही जेल जाता है अवश्य । यानी उसे जाना पड़ता है । वह इसलिए नहीं जाता कि जेल के अधिकारियों को कष्ट दें । मगर उन्हें अपने दोष की सप्रमाण व्याख्या देता है और उनका हृदय-परिवर्तन करता है । यही उनके जेल जाने का उद्देश्य है ।[1] गांधीजी भी बड़े सत्याग्रही

१: सत्याग्रही अधिकारियों को परेशान करने के लिए जेल नहीं जाता बल्कि अपनी निर्दोषता का प्रत्यक्ष प्रमाण देकर उनका हृदय- परिवर्तन करने के लिए जाता है । - गांधी विचार रत्न - पृ० २४१

थे और अनेक बार जेल गये थे। लेकिन उन्हें कुछ दिन तक ही जेल में रहना पड़ता था। गांधीजी को कैद करने की बात सुनते ही देश का जन-सागर क्षुब्ध हो उठता है और उन्हें छोड़ने के लिए हलचल मचाता है। इस प्रकार करने से जेल के अधिकारी उन्हें छोड़ देते थे। इस प्रकार गांधीजी कितने बार जेल गये थे और कारावास का अनुभव करते थे इसका पता नहीं चलता था। सत्याग्रही बनने के लिए एक व्यक्ति को अपनी आत्मा पर अनुशासन करना चाहिए। सत्याग्रही को आत्म-संयम, इन्द्रिय-निग्रह आदि व्रतों का पालन आवश्यक है। इसके लिए आत्मा पर अपनाठीक शासन होना चाहिए। वैसे ही इन्द्रियों पर भी संयम रखना आवश्यक है। इस प्रकार अपने अपने शरीर का शासन स्वयं करना पड़ता है।

सत्याग्रही का कर्तव्य है कि वह बुराई को भलाई से, क्रोध को प्रेम से झूठ को सत्य से और हिंसा को अहिंसा से जीतना। उसे गांधीजी ने बुराई को बुराई से क्रोध को क्रोध से झूठ को झूठ से या हिंसा को हिंसा से जीतने का उपदेश नहीं दिया है। उनका मत यह था कि ऐसा करने से बुराई, हिंसा, क्रोध, झूठ आदि बढ़ते ही जाएंगे। प्रत्युत उन्हें भलाई, प्रेम, सत्य, अहिंसा आदि से मिटाने का प्रयत्न करने से वे मिट जाते हैं। इसलिए सत्याग्रही में इसी पर अधिक बल दिया है। दुनिया में जो हिंसा और पाप-वृत्ति होती रहती हैं उन्हें दूर करने का एकमात्र उपाय यही है। इस उपाय से अगर सफलता मिलती है तो यह दुनिया ही अहिंसात्मक बन जाती है।

सत्याग्रह लोक-मत को स्वीकार करता है, व्यक्ति-व्यक्ति के मत को नहीं। सत्याग्रह सब का कल्याण करना चाहता है। इसलिए वह लोकमत को प्रमुखता देता है। वह समाज की समस्त समस्याओं पर ध्यान देता है और उनको सुलझाने के प्रयत्न में मग्न रहता है। सत्याग्रह का प्रधान उद्देश्य ही लोक-कल्याण है।

सत्याग्रह में जनता को साहसी और स्वतन्त्र करने की शक्ति है। उसने अपने अहिंसात्मक मार्ग के द्वारा जनता को स्वतन्त्रता प्रदान की। वैसा ही स्वतन्त्रता के लिए लड़ने के लिए जनता में वीरता का भाव उत्पन्न किया।

सत्याग्रही अपनी प्रेम-वाणी और अहिंसा-मार्ग के द्वारा सारे विश्व को अपने वश में कर लेता है। सत्याग्रही सबके लिए प्रियकर होता है। संसार की

सारी जनता सत्याग्रही से प्रेम करती है । अपनी उदारमना स्थिति और स्वभाव-विशेषता से जनता को मुग्ध कर देता है । गान्धीजी ने भी सत्याग्रह के द्वारा सारी जनता को मोहित कर दिया । उनके सत्याग्रह पर समस्त जनता ने अपने को न्योछावर कर दिया । उनके युग में संसार के सारे लोगों ने उनके सत्याग्रह में सोत्साह भाग लिया था । सब ने उनके सत्याग्रह की प्रशंसा की थी ।

सत्याग्रही को भी फल की कामना नहीं करना चाहिए जैसा अहिंसक को फल की कामना नहीं करना है । जो फल की इच्छा से या अधिक मिलने की इच्छा से सत्याग्रह करता है, वह असली रूप से सत्याग्रही नहीं माना जा सकता । गान्धीजी ने निष्काम कर्म पर कहीं कहीं बताया है और इसी को ही सच्चा कर्म भी बताया है । सत्याग्रह के मूल में भी निष्काम कर्म की अनिवार्यता प्रबल है ।

चरखा - खादी :

चरखा और खादी गांधीजी के जीवन की एक अनिवार्य अंग थी । देश के आर्थिक सुधार के लिए उन्होंने चरखा और खादी को अपनाया । इसकी एक प्राचीन परंपरा भी चलती आयी है । वैदिक युग में मानव- जीवन में इसका खूब प्रयोग होता था । आधुनिक युग तक आते ही मानव भी विकसित हुआ और इसका प्रचार भी कम होता गया । लेकिन यह पूर्ण-रूपेण त्याज्य नहीं हुई है । आज के युग में भी इसका प्रचार यत्रतत्र दिखाई पड़ता है ।

गांधीजी और चरखा :

गांधीजी के युग में चरखा और खादी ही सब कुछ थे । उन्होंने इस बात पर बड़ा हठ किया कि देश की सारी जनता को खादी का वस्त्र ही पहनना चाहिए । इससे गांधीजी का लक्ष्य सादगी की ओर था । उनका अनुमान यह था कि चरखे के द्वारा हजारों लोगों को नौकरी दी जा सकती है । उन्होंने खादी के कपड़ों पर इतना बल दिया था कि कपड़े के समस्त कारखानों को बंद किया गया । उनकी प्रेरणा पाकर भारत की जनता ने इस नौकरी को संतोष के साथ अपनाया और वे

खादी के कपड़े पहनने लगे । इस प्रकार चरखा और खादी का गांधी युग में महत्वपूर्ण स्थान रहा है ।

गांधीजी की मान्यताएं :

चरखा और खादी की अनेक व्याख्याएं हुई हैं । इनके द्वारा चरखा-खादी की आवश्यकता पर प्रकाश डाला गया है ।

गांधीजी के युग में चरखा घरेलू धंधे का प्रतीक थी । उस युग में घर घर में एक चरखा अवश्य रहता था । घर की प्रत्येक नारी चरखा चलाती थी । अधिकांश लोग ऐसे थे जो चरखे पर अपना जीवन यापन करते थे और उसी पर निर्भर रहते थे । चरखे का महत्व यह भी है कि उसे छोटी छोटी लड़कियां भी चला सकती हैं। चरखा चलाना सब को प्रिय होता है । चरखा चलाना उतना कठिन नहीं जितना मशीन चलाना । चरखे के द्वारा गांधीजी ने देश में शांति की प्रतिष्ठा की बात बतायी है । देश का प्रत्येक व्यक्ति चरखा चलाता है और अपने लिए कुछ कमाता है । इससे सब को स्वतंत्रता से कुछ कमाने का अधिकार होता है । स्वतंत्रता से कमाता है और स्वतंत्रताके साथ खर्च करता है और स्वतंत्रता के साथ ही जीवन बिताता है । ऐसी परिस्थिति में जनता में आर्थिक गड़बड़ी या कि नीरसता उत्पन्न नहीं हो सकती । इसलिए सब० सबको शांति और समाधान से जीने का मौका मिलता है । उन्हें बड़ा विश्वास था कि चरखे से शांति मिलेगी । यह विश्वास तो पूरा भी हो चुका ।

गांधीजी ने अपने तत्वों को विश्व- कल्याण और जीवन्मुक्ति की दृष्टि से आध्यात्मिक रूप और अर्थ से ही प्रतिपादित किया है । उन्होंने अपने तत्वों और साधनों को आध्यात्मिकता से ओतप्रोत बताया है । अत: चरखा उनका आध्यात्मि शस्त्र है । वह दैविक है, अहिंसात्मक है और अमूल्य है । चरखा, शांति की स्थापना के द्वारा ईश्वर साक्षात्कार करने का साधन है ।

खादी का प्रचार उन्होंने इसलिए किया है कि देश की विलासिता दूर हो जाय। इसलिए रूई, रेशम आदि के कपड़ों को छोड़कर खादी का कपड़ा पहनने

का अनुरोध किया गया है। खादी अहिंसा का प्रतीक मानी गयी है। खादी के द्वारा जनता के बीच में सरलता और शांति का सृजन हो सकता है। खादी का वस्त्र पहनने से जनता में उच्च- नीच या अमीर- गरीब की भावना नहीं होती। सब अपने आप को समानता की दृष्टि से देखते हैं। जो खादी को अपनाता है वह हमेशा शुद्ध आचरण ही करता है। वह कदापि हिंसा न करता, झूठ न बोलता और किसी को सताता भी नहीं। गांधीजी ने खादी और चरखा में ही शांति और समाधान देखा है। खादी तो वास्तव में देश में शांति की स्थापना कर सकती है। खादी जनता में समभाव को उत्पन्न करती है। प्रत्येक व्यक्ति दूसरे को भी अपने समान मानने लगता है। इस प्रकार शांति की प्रतिष्ठा देश में अवश्य होती है। अनेक युगों से होकर देश में विलासित जीवन देखा जाता है। यह तो देश की अवनति और नाश का कारण होता है। गांधीजी ने भी बताया है कि देश का पतन विलासिता के कारण ही हो होता है। अत: उसे दूर करना चाहिए। खादी ही इसके लिए उचित साधन सूझा।[१]

प्रत्येक व्यक्ति को चाहे वह नारी हो या पुरुष प्रतिदिन कुछ समय के लिए चरखा चलाना चाहिए। अगर समय नहीं मिलता तो समय किसी न किसी प्रकार निकाल लेना चाहिए। खादी से गरीबों की दशा सुधरती है। चरखा चलाने तथा सूत कातने से गरीब लोग कुछ कमाते हैं और उन्हें भी दूसरों की भांति जीने का अवसर मिलता है। खादी में स्वदेशी भावना रहती है। इसका कारण यह है कि खादी के कपड़े भारत में ही बनाये जाते हैं। इसलिए यह स्वदेशी चीज़ है। अत: इसका अपना महत्व है।

चरखा और खादी में अपने और दूसरे की भलाई होती है। अपनी भलाई से मतलब है कि वह खुद ही कुछ कमा सकता है और जीवन बिता सकता है। दूसरों की भलाई से मतलब यह है कि उनके बीच समानता की प्रतिष्ठा होती है।

१: खादी का अर्थ विलासिता का त्याग है, खादी अहिंसा का प्रतीक है। सच्चा खादी धारी असत्य आचरण नहीं करेगा। खादी में ही स्वराज्य और स्वाधीनता निहित हैं। - महात्मा गान्धी - डा० प्रफुल्लचन्द्र घोष - - पृ० १९५

चरखा अहिंसा का निर्मल रूप है ।[१] अहिंसा को ही वह बढ़ा सकती है ।

चरखा ग्रामीण जनता का प्राण है । वह ग्रामोद्योग के लिए उपयोगी साधन है । चरखा चलाना एक निर्दोष उद्योग है जिससे किसी को हानि नहीं होती । चरखे पर गांव की जितनी जनता निर्भर रहती है वह अकल्पनीय है । गान्धीजी ने चरखे को सूर्य बताया है । जिस प्रकार सूर्य के बिना यह संसार अन्धकारपूर्ण और अपूर्ण रहता है, वैसा ही चरखे के बिना अन्य कोई उद्योग नहीं चलता है । सूर्य ही जगत को प्रकाशित करता है । चरखे से ही जनता का सुहाग - सूर्य चमकता है । चर्खा भी सूर्य के समान संसार को प्रकाशमान बनाती है ।

गान्धीजी ने चरखे को सत्य का एक अंश माना है ।[२] उसे भगवान की एक मूर्ति के रूप में देखा है। इसलिए उसका बड़ा आदर - सम्मान के साथ व्यवहार होता था । उन्होंने बताया है कि चरखा और रामनाम दोनों एक ही हैं । उनकी हर चीज़ का भगवान से संबंध है । अपनी चीज़ होते हुए भी वह भगवान की ही बताते थे । यह उनकी एक विशेषता थी । चरखे के द्वारा गांधीजी एकाग्रता करते थे । चरखा चलाते वक्त वे दूसरी किसी बातों पर भी ध्यान नहीं देते थे । अत: उन्होंने बताया है कि एकाग्रता उन्हें चरखा रूपी माला फेरने से मिलती थी ।

जिस प्रकार लंगड़े को लाठी का संबल सहायक होता है उसी प्रकार गरीबों को चरखे का संबल सहायक होता है । लंगड़ा लाठी के सहारे चलता है और आगे बढ़ता है । गरीब चरखे की सहायता से अपने जीवन को अग्रसर करता है । इसलिए चरखे को लंगड़े की लाठी बतायी है ।

चरखे की वृत्ति इतनी सुविधा- जनक है कि असंख्य लोग उसकी छाया में काम कर सकते हैं । चरखे का काम सभी कर सकते हैं । अगर यह देश- भर में फैल

१: For him the spinning wheel became the par excellence of non-violence. It united the people peacefully and in common trust. It promised relief from degrading poverty.
- Gandhi- His relevance of our time. P.24

२: चरखा सत्य का अंश है । इसलिए मैं उसे सत्य रूपी भगवान की एक मूर्ति के तौर पर देखता हूं । - गान्धीजी की सूक्तियां - पृ० ४७

जाता तो सबके लिए सहायक होगा। चरखा चलते समय उससे जो ध्वनि निकलती है वह अधिक मधुर एवं सुरीली लगती है। क्योंकि उससे प्रेम की ध्वनि ही निकलती है। वह प्रेम तो वास्तविक देश- प्रेम है। इस प्रकार चरखे के द्वारा देशप्रेम की स्थापना होती है।

गान्धीजी को यह मालूम नहीं था कि कितने लोग चरखे को स्वीकार करेंगे। लेकिन उन्हें यह दृढ़ विश्वास था कि किसी न एक दिन इसे इस देश की सारी जनता अपनायेगी। इसका तात्पर्य यह है कि विश्वास के साथ जो काम करता है वह सफल ही होगा। गान्धीजी ने कदापि अपने विश्वास को नहीं छोड़ा है। उन्होंने जो काम किया था, उसमें पूर्ण विश्वास था।

राजनीति के क्षेत्र में चरखे का अत्यधिक महत्व रहा है। गान्धीजी ने देश की स्वतन्त्रता के सिलसिले में चरखे को अपना आर्थिक अस्त्र बनाया है और उसके द्वारा आर्थिक स्वतन्त्रता दिलायी। राजनीति में उसका प्रयोग बड़े ही विस्तृत रूप से हुआ है। अत: उसे सबसे अच्छी चीज़ माना गया।

जो व्यक्ति चरखे की सादगी पसंद करता है, वह शिक्षित जनता के लिए मान की बात है। यदि अनेक लोग कातने का काम अपनाते हैं तो कताई सफल होगी। केवल एक या दो व्यक्तियों के द्वारा अपनाये जाने से कोई फायदा नहीं। चरखा भारत देश में बहुत अधिक व्यापक हो गया है। भारत के गांव - गांव में चरखा मौजूद है। गान्धीजी के जीवन में एक दिन भी ऐसा नहीं रहा होगा कि वे एक घंटे के लिए भी चरखा कातना भूल गये हों। चरखा उनके प्राण थी। वे उसे कदापि नहीं छोड़ सकते थे।

खादी का प्रचार करते हुए गान्धीजी ने बताया है कि गांव की जनता को जिन वस्तुओं की आवश्यकता होती है, उन्हें गांव में ही बनाना चाहिए। खादी का प्रचार तो अभी पहलीसीढ़ी बताया गया है। खादी के द्वारा उन्होंने अन्य साधनों का निर्माण भी शुरू करने का प्रयास किया है। अगर खादी की विजय होती तो अन्य साधनों की भी विजय अवश्य होगी।

खादी की स्थापना स्वदेश प्रेम और मानवता पर हुई है।[१] खादीरे

१: खादी के अर्थशास्त्र की रचना स्वदेश - प्रेम भावना और मानवता के तत्व पर हुई है।
- गान्धीजी की सूक्तियां - पृ० ३५

दोनों का विकास होता है और दोनों खादी का प्रचार करते हैं। खादी स्वदेशी चीज होने के कारण जनता में स्वदेश प्रेम की भावना उत्पन्न कर सकती है। खादी का उद्देश्य ही स्वदेश प्रेम और मानवता को जगाना है। खादी का वस्त्र पहनने से सबको समता और सादगी की भावना का आभास होता है।[१]

खादी के द्वारा जन-सेवा कर सकते हैं। खादी का कपड़ा पहनने से विलासी वस्त्रों का त्याग किया जाता है। जनता खुद ही समाज की सेवा में मग्न रहने लगती है। अपनी आवश्यकता की पूर्ति से बचते धन का समाज-सेवा के हितार्थ व्यय करती है। खादी को अपनाने के बाद उन्हें अन्य वस्त्रों के प्रति मोह नहीं होता।

खादी समाजोद्धार के लिए उपयोगी साधन है। खादी का वस्त्र अत्यन्त मूल्यवान होता है। फिर भी वह सस्ता है। अगर हमें कितने कष्ट सहना पड़ता है तो भी खादी पहनना छोड़ नहीं देना है। खादी-धारी हमेशा, हरकहीं, हरसमय खादी पहनता है। वह चाहे जहां हो, अर्थात् चाहे स्वदेश में हो या विदेश में हो उसे खादी ही पहननी चाहिए। जो खादी मात्र पहनता है वही खादीधारी कहलाता है।

खादी तो एक राष्ट्रीय पोशाक है। यही उसका विशेष महत्व भी है। यह तो देखा जा सकता है कि भारत के महान राष्ट्रीय नेता खादी के कपड़े ही पहनते हैं। इससे वे अपने देश और गांधीजी के प्रति अपने मन का आदर भाव जो है, उसे प्रकट करते हैं।

खादी दरिद्रता और कमजोरी के प्रति सहानुभूति दिखाने वाली चीज है।[१] खादी इन्हें सांत्वना देती है। खादी पहनने से उनमें जोश और उत्साह भर जाता है। दूसरों को भी खादीधारी देखकर वे अत्यंत संतुष्ट होते हैं। वे अपने और दूसरों में समता अथवा एकता का लकीर खींचते हैं।

- -

१: कमजोर के प्रति सहानुभूति दिखाने वाला कोई निशान तो हमारे पास होना चाहिए -- -- और वह यदि कोई हो सकता है तो खादी है। - गान्धीजी की सूक्तियां - पृ० ३६

Khadi signifies simplicity, and therefore, purity of life.

It is a symbol of the eagerness of the rich for the uplift of th e. poor. The Political Philosophy of M.Gandhi.P.200

भारत को आजादी दिलाने के मूल में गांधीजी की खादी अत्यंत क्रियाशील थी । खादी के द्वारा विलासिता का अंत और गरीबों का उद्धार स्वाधीनता-प्राप्ति के लिए अनिवार्य था । अत: स्वाधीनता के लिए दोनों की आवश्यकता है । आजादी का नारा लगाना है तो खादी पहनना चाहिए ।[१] उसी से ही स्वतंत्रता की प्राप्ति हो सकती है ।

चरखे का संदेश अत्यंत मशहूर । उसने सादगी, अहिंसात्मक जीवन, मानव-सेवा, राजा-किसान संबंध आदि का द्योतक है । गांधीजी का उद्देश्य चरखे के द्वारा शांति की स्थापना है । अत: उन्होंने चरखे के द्वारा उपर्युक्त संदेश का प्रचार किया है । यह संदेश तो अनश्वर है ।

खादी के कपड़ों के मूल्य से मिल के कपड़े के मूल्य अत्यंत अधिक होता है । इसलिए मिल के कपड़ों को गरीब खरीद ही नहीं सकते । इस कारण खादी के कपड़े बहुत बिक जाते हैं । गरीब - लोग बड़ा मूल्य देकर मिल का कपड़ा खरीद नहीं सकते । अत: वे हमेशा खादी का कपड़ा ही पहनते हैं ।

गांधीजी ने चरखा चलाने के काम को खेती करने की अपेक्षा बढ़कर बताया है । क्योंकि यही विश्व-सम्पत्ति का रूप प्राप्त कर सकता है । खेती की अपेक्षा चरखे को अधिकांश लोग अपनाते हैं । चरखे के द्वारा बहुत अधिक कमा सकते हैं ।

चरखे का काम बहुत आसान है और उसकी उपज भी अधिक मात्रा में होती है । राष्ट्र के दो फेफड़ों में से एक खादी है और दूसरा खेती ।[२] मनुष्य के शरीर में फेफड़ों का जो महत्त्वपूर्ण स्थान रहता है वही खादी और खेती का भी है ।

चरखा गान्धीजी के जीवन के सारे दर्शनों का प्रतिपादन करती है । यह तो अहिंसा की जीवित निशान है । चरखा चलाने पर किसी का कोई नहीं बिगड़ता।

- -

१: मेरे लिए तो खादी पहनना आजादी का जामा धारण करना है ।
- गांधीजी की सूक्तियां - पृ० ३६

२: So to Gandhi Khadi is one of the lungs of the nation the other being agriculture.
The Political Philosophy of Mahatma Gandhi.p.19

उसे उससे लाभ ही होता है। चरखे के तार तार में गान्धीजी की जीवन- ध्वनि सुप्तावस्था में रहती है। उसे जब कोई चलाता है तो वह ध्वनि सुन सकते हैं।

उन्होंने इस बात पर अधिक ध्यान दिया था कि जो व्यक्ति खादी को उपजाता है और उसका वस्त्र बेचता है वह खुद ही जुलाहा भी हो। अगर प्रत्येक व्यक्ति को यह अधिकार दिया जाय तो उसे किसी के भी पांव पकड़ने की जरूरत ही नहीं होती।

<u>ट्रस्टीशिप</u> (सार्वजनिक संस्था)

'ट्रस्टीशिप' जिसका प्रयोग गांधीजी ने किया है वह एक ऐसी संस्था है जिससे सार्वजनिक तौर पर सब की भलाई होती है। ट्रस्टी का अर्थ है धरोहर रखने वाला है। ट्रस्टीशिप का अर्थ है धरोहर रखने का अधिकार प्राप्त संस्था। गांधीजी ने ट्रस्टीशिप का प्रयोग देश की आर्थिक उन्नति के लिए किया। उसके द्वारा उन्होंने आर्थिक सुधार संभव माना। इसलिए अपने युग में जनता का ध्यान इसीकी ओर आकर्षित किया गया। उन्होंने ट्रस्टीशिप के लिए 'संरक्षकता' शब्द का भी प्रयोग किया है।

एक व्यक्ति को ट्रस्टी तभी कहा जाता है जब वह हरिजनों की आवश्यकता के लिए अपनी आवश्यकता से शेष बचे धन का ट्रस्ट बना लेता है।[१] इस धन को वह अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए नहीं लेता। प्रस्तुत हरिजनों के पोषण के लिए ही उसका उपयोग करता है। ट्रस्ट के धन पर ट्रस्टी का स्वतंत्र अधिकार कुछ भी नहीं होता और इतना ही नहीं उसे उसमें एक भी पैसा अपना रखने का अधिकार नहीं रहता।

'ट्रस्टी' तो हजारों, लाखों, करोड़ों रुपयों का रक्षक हो सकता लेकिन यह बात तो स्पष्ट है कि वह उससे एक पैसा भी नहीं ले सकता। सच्चा ट्रस्टी तो

१: जब एक आदमी के पास अपने अनुरूप भाग से अधिक हो तो वह परमात्मा की संतान के लिए उस भाग का ट्रस्टी बन जाता है। -

- गांधी - विचार - रत्न - पृ० २३०

लैसा भी नहीं है।

गांधीजी का कथन यह ह कि आर्थिक समता के मूल में ट्रस्टीपन अवश्य रहता है। [१] उन्होंने अपने व्यावहारिक अनुभवों के प्रकाश में इसका सफलतापूर्ण परिणाम देखा है। देश की राजनीति की आर्थिक परिस्थिति की शिथिलता को एक हद तक इसने सुधारा है। अमीर गरीब का भेद, आर्थिक उच्च- नीच का भाव मिटाना और विशेषतः हरिजनों का उद्धार करना आदि कार्मों को अधिक महत्व दिया है। उन्होंने ट्रस्टीशिप के द्वारा जनता के बीच में आर्थिक समता का महान कार्य किया।

ट्रस्ट का मालिक जो है, उसे जो धन सौंप दिया है, उसका सदुपयोग करना चाहिए। साधारणतः मालिक अपने धन का दुरुपयोग करता है, लेकिन ट्रस्टी को, मालिक को इस पर अधिक ध्यान देना चाहिए कि वह दुरुपयोग न करे। उसे धन के प्रयोग में सावधानी से काम लेना चाहिए और उससे अच्छा अच्छा कार्य ही करना चाहिए। इसका कारण तो यह है कि ट्रस्ट तो सार्वजनिक उपयोगिता का साधन है।

ट्रस्ट का संरक्षक (ट्रस्टी) अहिंसक होता है। ट्रस्टीशिप की एक विशेषता यह है कि इसका प्रयोग अहिंसा के राज्य में ही होता है। ऐसे देश में संरक्षक का कमीशन वगैरह अत्यंत सीमित तथा मर्यादित रहेगा। इसलिए उसमें किसी प्रकार की अस्वस्थता नहीं रहेगी। सब को अपना अपना कमीशन मिलेगा। गांधीजी का ट्रस्टी-शिप अहिंसात्मक है और अहिंसा पर उसकी स्थापना हुई है। वह किसी का शोषण नहीं करता। उसके द्वारा सब की भलाई और उन्नति ही संभव है। सार्वजनिक दृष्टि से ही उसका स्वरूप निकला है।

ट्रस्टीशिप की सफलता के लिए अत्यंत अनिवार्य है कि प्रत्येक व्यक्ति प्रतिदिन की आवश्यकता की पूर्ति के लिए दिन- दिन कमाता रहे। इसके बदले दो-चार दिन या एक सप्ताह के लिए कोई बोझ इकट्ठा करने की आवश्यकता नहीं। इससे

- -

१: आर्थिक समानता की जड़ में धनिक का ट्रस्टीपन निहित है।
- गान्धी विचार रत्न - पृ० २३०

ट्रस्टीशिप की भी हानि हो सकती है क्योंकि इस प्रकार के चीजों के इकट्ठे करने से उसे बहुत धन खर्च करना पड़ता है और चीजों के बराबर उपयोग न करने के कारण उनके गल जाने से धन का दुरुपयोग होता है। ट्रस्ट का लक्षण है सदुपयोग करना और आवश्यकतानुसार खर्च करना।

ट्रस्टीशिप गान्धीजी के मत में एक प्रकार से अहिंसा का मार्ग है। एक अहिंसक संरक्षक यही कर सकता है कि वह प्रजा की ओर से अपने बचे हुए धन से ट्रस्ट की स्थापना करे और उसका सदुपयोग भी करे। उन्होंने प्रत्येक प्रजा से ट्रस्टी बनकर ट्रस्टीशिप की स्थापना करने का अनुरोध किया है। ट्रस्टीशिप के द्वारा जो व्यक्ति समाज का सेवक बनेगा, समाज के हित धन कमायेगा, समाज-- कल्याण के लिए खर्च करेगा तो वह सच्चा ट्रस्टी बनेगा और उसकी कमाई में भी शुद्धता भी आ जायेगी।[1]

गांधीजी की राय यह है कि जो व्यक्ति सच्ची ईमानदारी से नैष्कर्म्य कर्तव्य करता है, वही वास्तविक रूप से संरक्षक माना जायगा। यदि कोई व्यक्ति ट्रस्टीशिप का स्थापन करता है, उसे उसका सम्यक व्यवहार तथा प्रयोग करना चाहिए जहां तक उसका अस्तित्व रहता है। ट्रस्टीशिप के संपूर्ण उपयोग से ही देश की आर्थिक उन्नति हो सकती है।

उनका व्यक्तिगत मत यह है कि ट्रस्टीशिप का अस्तित्व बनाये रहे क्योंकि आर्थिकता पर देश में व्यक्ति शक्ति में हिंसा वृत्ति बढ़ गयी है। अर्थ के नाम पर निर्दयता पूर्ण व्यवस्था भी होती है।[2] गान्धीजी ने यहां ट्रस्टीशिप के लिए 'अमानती' शब्द का प्रयोग किया है और एक जगह पर उन्होंने 'संरक्षकता' शब्द का भी प्रयोग किया है। ट्रस्टीशिप की सहायता से अर्थ पर जो हिंसा होती है उसे

१: अहिंसक मार्ग यह है कि जितनी उचित मानी जा सके, अपनी उतनी आवश्यकताएं पूरी करने के बाद जो पैसा बाकी बचे, उसका वह प्रजा की ओर से ट्रस्टी बन जाय। -- -- --
तब उसकी कमाई में शुद्धता आयेगी। - गान्धी-विचार- रत्न- पृ०२३

२: मैं व्यक्तिगत रूप से यह पसन्द करूंगा कि ट्रस्टीशिप (अमानती) की भावना बढ़े, क्योंकि मेरा ख्याल है कि राज्य की हिंसा से व्यक्ति की हिंसा कम खतरनाक होती है। - गान्धीजी की सूक्तियां - पृ० ५२

दूर करने में गांधीजी ने बहुत प्रयत्न किया ।

ट्रस्टीशिप में शोषण की भावना त्याज्य है । ट्रस्टी वास्तव में दूसरों के धन का शोषण नहीं करता । वह धन या संपत्ति का पालन - पोषण करता है और उसमें वह अधिक श्रद्धा रखता है । वह दूसरों का धन छूता भी नहीं और यह भी माननीय बात है कि उसे दूसरों की चीज़ों पर कोई इच्छा नहीं रहती । यही ट्रस्टीशिप की सच्ची भावना है ।

गान्धीजी ने ट्रस्टीशिप की भावना को उच्च चरित्र की निशान मानी है ।[1] ट्रस्टीशिप का भाव जिस व्यक्ति में होता है, उसका चरित्र भी उज्ज्वल होता है ।[2] इसकी भावना तीव्र होने से उसका चरित्र भी बढ़ता जाता है । उसका चरित्र इसलिए इतना प्रशंसनीय होता है कि ट्रस्टीशिप की सहायता से वह देश की भलाई करता है । अतः ट्रस्टीशिप उस व्यक्ति के चरित्र की उज्ज्वलता का निशान है जो वास्तविक ट्रस्टी होता है ।

गान्धीजी ने जिस संस्था को ट्रस्टीशिप का रूप दिया है, वह पूंजीवाद का विरोध नहीं करती, प्रत्युत दलित एवं पीड़ित पूंजीपतियों की दशा को सुधारने का आदेश देती है । उन्होंने उन्हें अपने धन को ट्रस्ट में इकट्ठा करने और सामाजिक या सामूहिक आवश्यकताओं के लिए उसका उपयोग करने का उपदेश दिया ।

गान्धीजी के मतानुसार सार्वजनिक संस्था का अर्थ है लोगों के धन से चलनेवाली संस्था ।[3] ट्रस्टीशिप की स्थापना के लिए देश की जनता की सम्मति तथा स्वीकृति का होना आवश्यक है । नहीं तो उसका विकास नहीं हो सकता क्योंकि उसके स्थापन के लिए लोगों की सहायता अवश्य चाहिए । यदि जनता की सहायता के बिना उसकी स्थापना होती है तो वह शाश्वत रूप से वर्तमान नहीं रह सकता । इसलिए

१: ट्रस्टीशिप या धरोहरदारी की भावना उच्च चरित्र की निशानी है -
गान्धीजी की सूक्तियां -पृ० ५३

२: वही० पृ० ५३

३: सार्वजनिक संस्था का अर्थ है, लोगों की स्वीकृति और लोगों के धन से चलने वाली संस्था । ऐसी संस्था को जब लोगों की सहायता न मिले, तो उसे

गान्धीजी ने ट्रस्टीशिप की स्थापना हमेशा हमेशा जनता की अनुमति के साथ करने पर अधिक बल दिया है। ट्रस्टीशिप के निर्वाह के लिए प्रतिवर्ष चन्दा मिलना चाहिए। और यही उसकी कसौटी भी होनी चाहिए। यदि प्रतिवर्ष चन्दा मिलता रहता तो यह संस्था भी ठीक तरह से चलेगी। अत: उनका मत यह है कि चन्दा की कसौटी पर ही संस्था को कसना चाहिए।[१]

ट्रस्टी को अपने अधिकार के अनुसार काम करना मना किया गया है और उसे समुदाय के अधिकार के साथ प्रयत्न करना पड़ता है। इतना ही नहीं ट्रस्टी को अपनी सेवा की मूल्यता के अनुकूल दस्तूरी देनी चाहिए। यह गान्धीजी का अपना प्रबन्ध था।[२]

अस्पृश्यता निवारण :

भारत में ही नहीं, इस संपूर्ण जगत में कितनी जातियां वर्तमान हैं यह कहना असंभव है। फिर भी ऐसा अनुमान किया जा सकता है कि भारत में तीन हजार जातियां अवश्य रहती हैं।[३] और इसे सुपरिचित होने के लिए एक विश्वकोश की जरूरत है। भारत में अनादि काल से होकर विदेशों से कई लोग आकर रहते थे जो आजकल यहां रहने वाले लोगों के पूर्वज माने जाते हैं। नीग्रो, आर्य, द्रविड़, यूनानी आदि विभिन्न जाति के लोग यहां आकर रहते थे और यहां की जनता से मिल-जुलकर रहते थे। वे हिन्दु समाज में शामिल होकर उनकी रीति-रिवाजों तथा आचार-विचारों के अनुसार जीवन बिताते थे। इस प्रकार हिंदु संस्कृति एक जाति से नहीं, विभिन्न जाति-विशेषों के मेल से निर्मित है।[४]

- -

१: -- -- प्रतिवर्ष मिलने वाला चन्दा ही उन संस्थाओं की अपनी लोक-प्रियता और उनके संचालकों की प्रामाणिकता की कसौटी है, और मेरी यह राय है कि हर एक संस्था को इस कसौटी पर कस जाना चाहिए। - आत्मकथा-पृ०१७

२: Trustees should act as owners not in their own right but in the right of the community and should be given a fair commission commensurate with the values of service rendered to the society. The Political Philosophy of M.Gandhi P. 55-56

3. There are thought to be some 3000 castes in India. Caste in India. J.H.Hutton. P.2 (4 th edition)

४: असल में हम जिसे हिंदु संस्कृति कहते हैं---सभी जातियों की संस्कृतियों के मिश्रण का परिणाम है- (संस्कृति के चार अध्याय) पृ०४

आर्य - द्रविड़ों के भारत में आगमन के पूर्व आदिवासियों का वास था और इसके बाद द्रविड़ लोग आये; बाद में आर्य लोग भी । अंतिम वर्ग के लोगों के आगमन से भारत में हिन्दू सभ्यता का आविर्भाव हुआ । आर्यों के बीच में जाति- प्रथा अत्यंत दृढ़ हो गयी । इसका कारण यहां की ग्राम- संस्कृति थी । इतना ही नहीं उनकी अर्थ - व्यवस्था ग्रामों पर आधारित थी । इसलिए उन्होंने जाति भेद को अनिवार्य माना था । इसका एक और कारण यह था कि आर्य स्वभावत: ग्रामों के भक्त थे और इसलिए उनमें कला और शिल्प की रुचि नहीं के बराबर थी । अत: शिल्पी और कारीगर की अवहेलना अवश्य होती थी जो शूद्र जाति के थे । वे लोग स्वभावत: आर्य - रक्त के न होने के कारण इन्हें त्रिवर्णों में गिनना परंपरागत रूप से अनुचित माना जाता था । इस प्रकार जाति- प्रथा भारत में बहुत ही प्राचीन थी । ब्राह्मण धर्म के प्रसार के साथ समस्त देश में इसका भी प्रसार हुआ । दूसरे शब्दों में कहें तो ब्राह्मण धर्म का मूलाधार ही जाति- प्रथा रही है ।

जाति का उद्भव :

वैदिक काल में पहले क्षत्रिय,ब्राह्मण, वैश्य इन तीनों वर्णों का ही उल्लेख हुआ था । जब शूद्रों की उत्पत्ति हुई उसके साथ वैदिक समाज ने चार वर्णों को अपनाया । भगवद् गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने बताया है चातुर्वर्ण्य - संस्था के बारे में -

' चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्म विभागश: ।
तस्य कर्तारमपि मां विद्ध्यकर्तारमव्ययम् ।। '[1]

जाति व्यवस्था के संबंध में धर्मशास्त्रों, स्मृतियों और पुराणों में जो सिद्धान्त प्रचलित है, वह ऋग्वेद के अन्तर्गत मिलता है । जाति की उत्पत्ति के बारे में भिन्न भिन्न बातें मिलती हैं । शतपथ ब्राह्मण में बताया गया है कि जाति का उद्भव भू:, भुव:, स्व:, इन शब्दों से हुआ है ।[2] तैत्तरीय ब्राह्मण में कहा गया है कि सामवेद से ब्राह्मण, यजुर्वेद से क्षत्रिय और ऋग्वेद से वैश्य जाति यों का आविर्भाव हुआ है।[3]

१: श्रीमद्भगवद्गीता - चतुर्थ अध्याय - श्लोक १३

२: शतपथ ब्राह्मण - ११, १, ४ - जाति व्यवस्था - पृ० १७

३: तैत्तरीय ब्राह्मण- १११, १२, ६ - ,, -पृ० १७

शतपथ में और एक जगह बताया गया है कि वर्णों का जन्म देवताओं और असुरों से हुआ है ।[१] मनु ने मनुस्मृति में जाति के जन्म का उल्लेख यों किया है कि मानव की रचना के लिए ब्रह्मा ने अपने मुख से ब्राह्मण, बाहुओं से क्षत्रिय, उदर से वैश्य और पैर से शूद्र उत्पन्न किये हैं ।[२] महाभारत में वर्णों की उत्पत्ति के बारे में बताया गया है - "जातियों में कोई अन्तर नहीं है । शुरू में ब्रह्मा ने इस विश्व की रचना की और सब लोग जन्मना ब्राह्मण थे । तत्पश्चात् अपने अपने कर्मों के अनुसार लोग विभिन्न जातियों में बंट गए ।[३] महाभारत में ही और एक स्थान पर श्रीकृष्ण से चार वर्णों की उत्पत्ति मानी गयी है ।[४] इस प्रकार जाति के उद्भव के बारे में कई मान्यताएं मिलती हैं । निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है कि जातियों का आविर्भाव ब्रह्मा के मुख बाहु, जंघा और चरण से हुआ है ।[५]

जाति-व्यवस्था की विकास- परंपरा :

शूद्रों की उत्पत्ति से होकर भारत में जाति- व्यवस्था का प्रचार होने लगा । वैदिक काल में ही इसका खूब प्रचार और विकास होता था । आर्यों ने जाति-प्रथा को इस उद्देश्य से अपनाया कि भारत की विजातियों जो बाहर से आयी हैं और यहां के मूल निवासियों को एक समाज में मिलना चाहिए । आर्यों ने जाति- प्रथा से इन विदेशियों को अछूत बनाना नहीं चाहा था । लेकिन इनमें से जो आर्य- सभ्यता और संस्कृति का पालन करने को तैयार होता था तो उसे ऊंचे पद पर बिठाता था । प्राचीन काल में जाति- प्रथा के अस्तित्व से बड़ा लाभ होता था । आर्यों के समय शूद्रों की संख्या अधिक रही है । इसका कारण यह था कि उन्होंने दस्युओं और दासों को जीत लिया और अपने समाज में सम्मिलित किया । अनुलोम, प्रतिलोम [६] विवाहों से

- -

१: शतपथ ब्राह्मण - १४, ४ , २ , १३ - जाति- व्यवस्था - पृ० १७

२: लोकानां तु विवृद्ध्यर्थं मुख बाहूरुपादत: ।
ब्राह्मणं क्षत्रियं वैश्यं शूद्रं च निरवर्तयत् ।। (३१) मनुस्मृति:-प्रथम अध्याय पृ० १०

३: न विशेषो-ऽस्ति वर्णानां सर्वं ब्राह्ममिदं जगत् ।
ब्रह्मणा पूर्वसृष्टं हि कर्मभिर्वर्णतां गतम् ।। मोक्षधर्मपर्वणि शान्ति पर्वणि-
१८८ वां अध्याय: - १० श्लोक - पृ० ५२२ - श्रीमन्महाभारतम्- तृतीय भाग

४: चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागश:। (चतुर्थ अध्याय: - श्लोक १३)

५: जाति- व्यवस्था - डा० नर्मदेश्वर प्रसाद - पृ० १८

अनुलोम- प्रतिलोम [1] विवाहों से भी इनकी संख्या बढ़ती गयी। इस युग में ऊंची जाति के लोग बड़े धनी, शिक्षित और परिश्रमी थे। मगर निम्न जाति के लोग बड़े धनी, इनके समान उतने अमीर, शिक्षित और सक्रिय परिश्रमी न थे। इन निम्नजाति के लोगों को अछूत मानते थे। जातिवाद का पूरा अधिकार ब्राह्मणों में था और कोई भी जाति- परिवर्तन करना चाहता तो पुरोहित की मंजूरी के बिना नहीं हो सकता था। महाभारत काली युग में ही अनुलोम और प्रतिलोम विवाह होता था। महाभारत में इसके कई उदाहरण मिलते भी हैं। शूद्रों को यज्ञोपवीत धारण करने से मना किया गया था।

इस प्रकार हम देखते हैं कि वैदिक युग में वर्णाश्रम की व्यवस्था थी और उसमें चार वर्णों की व्याख्या भी थी। मगर इन वर्णों में छूत - अछूत या जात- पांत का भेद - भाव न रहा। लेकिन पौराणिक युग में आते ही वर्ण- व्यवस्था को जन्मना स्वीकार किया गया है और जाति- भेद का भाव प्रादुर्भाव यहीं से हुआ जिसने वैदिक युग की जातीय एकता को नष्ट किया। इस युग में महापुराण में ही जाति- प्रथा को प्रश्रय मिला था। इसके संबंध में दयानंद ने इस प्रकार बताया है - "सर्वप्रथम यदि कोई ग्रंथ है तो वह महापुराण ही है जिसमें जाति- व्यवस्था को प्रश्रय मिला है।[2]

भारतीय साहित्य में जनता के वर्ग को सूचित करने के पहले ' वर्ण ' शब्द का प्रयोग होता था। ' जाति ' शब्द बहुत बाद में ही प्रचलित होने लगा है। ऋग्वेद, शतपथ ब्राह्मण, तैत्तरीय उपनिषद ब्राह्मण में शूद्र का उल्लेख नहीं हुआ है क्योंकि इसमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यादि इन तीनों को ही वर्ण के अन्तर्गत माना गया है चौथा एक वर्ण वहां नहीं था। मनुस्मृति और महाभारत में शूद्र के स्थानपर वृषल शब्द प्रयुक्त हुआ है। ऐतरेय ब्राह्मण इनको यथा काम प्रेष्य ' और ' यथा कामी वध ' मानते थे।

- -

१: उच्च वर्ण के पुरुषों का हीन वर्ण की स्त्रियों से विवाह अनुलोम विवाह कहलाता है और हीन वर्ण के पुरुषों का उच्च वर्ण की स्त्रियों के साथ विवाह प्रतिलोम विवाह। -

संस्कृति के चार अध्याय- पृ० ५४

२. महर्षि दयानन्द - यदुवंश सहाय - पृ० १५७

कलियुग में आकर ही इस जाति प्रथा का विरोध प्रारंभ हुआ। इसका कारण बौद्ध और जैन धर्म का वैराग्य प्रधान मत तथा कुच्छ्राचार था। प्राचीन काल में इससे बड़ी सहायता और लाभ होता था। लेकिन आधुनिक युग में इसका घोर विरोध ही हुआ है। अन्तर्जातीय विवाह का प्रचार भी प्राचीन युग में बहुत मिलता है। महाभारतीय काल में ऐसे विवाह के अनेक उदाहरण दिखाई पड़ते हैं। इस युग में यह भारतीय संस्कृति का पहला कदम माना जाता था।

बुद्ध के युग में इसके विरुद्ध आवाज़ उठाना शुरू हुआ। बुद्ध ने सबसे पहले ही इसका विरोध करते हुए एक महान आन्दोलन प्रारंभ किया जिसका प्रचार गांधीजी ने भी आधुनिक युग में आकर किया। जाति- प्रथा को चुनौती देते हुए बुद्ध ने बताया है '-- -- कोई मनुष्य केवल ब्राह्मण - कुल में जन्म लेने से पूज्य नहीं हो जाता, न कोई शूद्र होने से पतित होता है। उच्चता और नीचता जन्म पर नहीं कर्म पर अवलंबित है। इसलिए ब्राह्मण भी पतित हो सकता है और शूद्र भी अपने को पूजा के योग्य बना सकता है।'[1] बुद्ध की प्रेरणा पाकर मध्यकाल में निर्गुण सन्तों ने भी जाति- प्रथा का डटकर विरोध किया। उन्होंने वर्णाश्रम धर्म को बनाये रखते हुए जाति- प्रथा का विरोध किया है जिसे निर्गुण सन्तों ने और भी तीव्र बनाया है। बुद्ध ने वर्ण-व्यवस्था को जन्मना न होकर कर्मणा स्वीकार किया है और इसी पर अधिक प्रबलता दी है। याज्ञिक भरद्वाज को बुद्ध ने वर्ण - व्यवस्था पर ऐसी ही फटकार दी है - ' जाति नहीं पूछ, आचरण पूछ, नीच कुल का पुरुष भी सत्कर्मों से ज्ञानी और पाप-रहित हो जाता है -- --।[2] सत्यकाम जाबाल, पुराणों में प्रसिद्ध व्याध, गीता का उपदेशक व्यास, महामुनि विश्वामित्र (ब्रह्मर्षि) ऐसी ही कर्मणा - वर्ण-व्यवस्था के प्रतिनिधि हैं। जातक की कथाओं से पता चलता है कि वर्ण- व्यवस्था पूर्ण रूप से बौद्ध भिक्षु भी न निकाल सके। विवाह के अवसर पर वे लोग जाति का ध्यान रखते थे। अर्थात् समान वर्ण में ही विवाह करना अच्छा समझते थे - ' एक समाजातिक कुला कुमारिकं गहाह'। जातकों में जातिवाद का पता चलता है। सिद्धान्त से अस्पृश्यता न थी किन्तु व्यवहार में आचरण करते समय भिक्षुगण भी वर्ण पर लक्ष्य रखते थे। जातकों में शूद्र और अछूतों के लिए हीनता सूचक शब्द मिलते हैं। मातंग जातक में लिखा है -

- -

१: संस्कृति के चार अध्याय - पृ० १८४

२: भारतीय संस्कृति - गौतम से गान्धी तक - पृ० ३७

'उनकी पूजा तो दूर रहा, उनका केवल दर्शन अघनाशक है।'

जातिवाद एवं वर्णव्यवस्था को महावीर ने भी मान्यता नहीं दी। भागवत धर्म की दूसरी विशेषता यह है कि संकीर्ण - वर्ण-व्यवस्था के परे उपासना में व सभी वर्णों को समान स्थान दान। वेदों में वर्ण- व्यवस्था केवल जन्मना नहीं, कर्मणा थी; कालान्तर में उच्च वर्णों ने बुद्धि, सत्ता और धन के प्रभाव से उसे जन्मना निश्चित कर दिया। पुराणों ने इस संकीर्ण, अशास्त्रीय वर्ण- व्यवस्था का विरोध कर उपासनामें शूद्रों एवं अन्त्यजों को भी समान स्थान दिया गया। पुराणकारों ने इस वर्ण-व्यवस्था को हटाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। पुराण- साहित्य किसी जाति- विशेष, धर्म - विशेष या वर्ण- विशेष की संकीर्णता में बन्धा हुआ नहीं था। ब्राह्मणों से लेकर शूद्रों तक शूद्रों से परे नीच अन्त्यजों तक वैदिक धर्म से बाह्य म्लेच्छादि विधर्मियों तक, वे चाहे स्त्री हो अथवा पुरुष, सब का उनके प्रति समानाधिकार है और उनमें सबको पावन करने की शक्ति है।[1] पुराणों में यह भी प्रतिपादित हुआ है कि धार्मिक तथा पारमार्थिक ज्ञान का अधिकार केवल विप्रों और क्षत्रियों को ही नहीं, सभी को है।

वैष्णव धर्म में भी तुकाराम चैतन्य ने वर्णभेद को ईश्वरीय प्रेम और धार्मिक प्रवृत्तियों में बाधक माना है। बुद्ध की प्रेरणा पाकर मध्यकाल में निर्गुण सन्तों ने भी जाति- प्रथा का डटकर विरोध किया। वर्णाश्रम धर्म को बनाये रखते हुए जाति- प्रथा के विरुद्ध आवाज़ उठायी, बुद्ध ने। मुसलमानों के आगमन के पश्चात् जात- पांत का विचार कम होता चला। इसका समूल नाश के लिए हिन्दू - मुस्लिम एकता को उत्तम साधन बनाया गया। इसके मुख्य प्रवर्तक थे कबीरदास, सम्राट अकबर और राष्ट्रपिता महात्मा गान्धी। कबीर ने इस जाति- भेद का घोर विरोध किया और राम- रहीम को एक दिखाने की कोशिश की।[2]

१: विप्राद्द्विषड्गुणयुतादरविन्दनाभ,
पादारविन्द विमुखात्श्वपचं वरिष्ठम्।
मन्ये तदर्पित मनो वचनेहितार्थ प्राणं,
पुनाति स कुलं न तु भूरि मानः॥ भागवत्- प्रथम खण्ड-७ स्कन्ध-९ अध्याय- पृ० ८२५

२: हिन्दू कहत है, राम हमारा, मुसलमान रहमाना।
आपस में दोउ लड़े मरत हैं, भेद न कोई जाना॥ - संस्कृति के चार अध्याय- पृ० ३३०

कवि दादू दयाल ने इसी प्रवृत्ति पर बल दिया है ।[1] इसके अतिरिक्त विद्यापति,सूरदास तुलसीदास आदि की साहित्यिक कृतियों में मुसलमानों के प्रति किसी भी प्रकार का विरोध किया हुआ नहीं मिलता । तुलसीदासकृत रामचरित मानस हिन्दुओं के लिए 'वेद' तथा मुसलमानों के लिए 'कुरान' माना जाता है । रहीम ने इस बात का समर्थन करते हुए बताया है - 'हिन्दुआन को वेद सम, तुरकहिं प्रगट कुरान'[2] वैसे ही आलवार सन्त भी जाति- पांति को नहीं मानते थे । लेकिन वर्णाश्रम धर्म को बनाये रखने पर उन्होंने बल दिया ।

जाति- भेद का विरोध विभिन्न विद्वानों ने किया है । आचार्य रविषेण ने पद्मपुराण में जातिवाद का निषेध किया है और यों बताया है - 'कोई जाति गर्हित नहीं है । वास्तव में गुण कल्याण के कारण हैं, क्योंकि भगवान जिनेन्द्र ने व्रतों में स्थित चाण्डाल को भी ब्राह्मण माना है ।'[3] अमितगति श्रावकाचार के कर्ता ने इससे भी जोरदार शब्दों में जातिवाद को निषिद्ध माना है - 'वास्तव में यह उच्च और नीचेपन का विकल्प ही सुख और दुख का करनेवाला है । कोई उच्च और नीच जाति है, और वह सुख और दुख देती है, यह कदाचित भी नहीं है । अपने उच्चेपन का निदान करने वाला कुबुद्धि पुरुष धर्म का नाश करता है और सुख को नहीं प्राप्त होता । जैसे बालू को पेलने वाला लोक निन्द्य पुरुष कष्ट भोगकर भी कुछ भी फल का भागी नहीं होता, ऐसे ही प्रकृति में जानना चाहिए ।'[4]

१: दोनों भाई हाथ - पग, दोनों भाई कान,
दोनों भाई नैन हैं, हिन्दू मुसलमान ।।
- संस्कृति के चार अध्याय - दिनकर - पृ० ३३१

२: वही० पृ० ३४०

३: न जातिर्गर्हिता काचिद् गुणाः कल्याणकारणम् ।
व्रतस्थमपि चाण्डालं तं देवा ब्राह्मणं विदुः ।।
- पद्मपुराण - रविषेणाचार्य - वर्ण - जाति- और धर्म -
- पृ० १५४

४: महर्षि दयानन्द - [illegible] - पृ० ५

जाति- विरोध का प्रथम प्रस्थान जैन धर्म को माना जा सकता है। जैन धर्म प्राणिमात्र का धर्म है और वह वर्णाश्रम धर्म से भिन्न है। जैन धर्म में जाति को सांसारिक मोक्ष अथवा मुक्ति के लिए बाधक समझा गया है। इस भाव को आचार्य पूज्यपाद ने समाधि तन्त्र में बताया है।[1] इसी धर्म के आचार्य कुन्दकुन्द ने कहा है - "- न देह वन्दनीय है, न कुल वन्दनीय है और न जाति संयुक्त मनुष्य ही वन्दनीय है। गुणहीन मनुष्य की मैं वन्दना कैसे करूं। ऐसा मनुष्य न श्रावक हो सकता है और न श्रमण ही।"[2] द्वादशानुप्रेक्षा में इन्होंने पुन: बताया है - जो कुल रूप, जाति, बुद्धि, तप, श्रुत और शील का थोड़ा भी अहंकार करता है वह श्रमण मार्दव धर्म का अधिकारी नहीं हो सकता।"[3] आचार्य समन्तभद्र ने लिखा है - " जो ज्ञान, पूजा, कुल, जाति, बल, ऋद्धि, तप और शरीर के महत्व को प्रस्थापित कर जैन धर्म को स्वीकार करता है, वह सम्यग्दर्शन का भी अधिकारी नहीं हो सकता।"[4] इस मत को जातिवादी विरोध का द्वितीय प्रस्थान माना गया है। आचार्य पूज्यपाद के मत को तृतीय प्रस्थान बताया गया है। आचार्य जटासिंह नन्दि ने इस प्रकार समर्थन किया है - " शिष्ट पुरुषों ने मात्र व्यवहार चलाने के लिए दया, रक्षा, कृषि और शिल्प कर्म के आश्रय से चार वर्ण कहे हैं। अन्य प्रकार से ये चार वर्ण नहीं बनते।"[5] इस मत को जाति- निषेध का चतुर्थ प्रस्थान माना जा सकता है। इनके अतिरिक्त अन्य कई आचार्यों ने भी जाति भेद का निषेध करते हुए गुणपक्ष की स्थापना द्वारा अध्यात्म पक्ष पर बल दिया है।

जाति- व्यवस्था का इतिहास :

वैदिक युग में जाति- व्यवस्था प्रचलित थी। वैदिक देवताओं के भी वर्ण थे, जैसे अग्नि और बृहस्पति - ब्राह्मण, इन्द्र, वरुण और सोम - क्षत्रिय,

- -

१: जातिर्देहाश्रिता दृष्टा देह एव आत्मनो भव: ।
न मुच्यन्ते भवात्तस्मात्ते ये जाति कृताग्रहा: ।। (८८)
जाति लिंग विकल्पेन येषां च समयाग्रहा: ।
तेऽपि न प्राप्नुवन्त्येव परमं पदमात्मन: ।। (८९)
महर्षि दयानन्द - अछूत समाज - पृ० ५०

२: महर्षि दयानन्द - पृ० १६५ ३: वही० १६५ ४: वही० १६६ ५: वही० १६६

वसु, रुद्र, आदित्य, वैश्व देव और मरुत वैश्य ; पूषा आदि शूद्र थे। महाभारत में भी चार वर्णों का उल्लेख मिलता है - आदित्य को ब्राह्मण, मरुद्गण को वैश्य अश्विनीकुमार को शूद्र बताये हैं। वैदिक युग में जन-साधारण को विश बताया है। इसी 'विश' से ब्राह्मण, क्षत्रिय की जाति का उद्भव हुआ, शेष को वैश्य कहा गया। इस प्रकार के वर्णों के होने पर भी इस काल में जाति-भेद की व्यवस्था नहीं थी ; इस काल में मिश्रित विवाह बहुत होते थे।

उत्तर वैदिक युग में ब्राह्मण और क्षत्रियों में वर्ग-संघर्ष रहा है। महाभारत से यह स्पष्ट हो जाता है कि इस काल में जाति भेद बढ़ता गया। महाभारत में इन चार वर्णों के लोगों की विभिन्न कर्मों का निरूपण किया गया है और उन्हें बताया है - 'ब्राह्मण को भीख मांगकर जीवन-यापन करना चाहिए, क्षत्रिय अपनी प्रजा की रक्षा करे वैश्य को धनोपार्जन करना चाहिए और शूद्र को चाहिए कि वह उपर्युक्त तीनों वर्णों की सेवा करे।'[1] गौतम ने मिश्रित जातियों का समर्थन किया था और आपस्तंब ने अस्पृश्यता वाले विचार का विरोध भी किया था। इस काल में स्पृश्यास्पृश्य का विवाद चलता रहा।

मौर्यकाल :

इस काल में देश का शासन चन्द्रगुप्त मौर्य नामक जिस सम्राट का अधीन था वह शूद्र था। अत: यहाँ वर्ग-संघर्ष फूट पड़ा। इसकी क्रांतिक्रिया प्रतिक्रिया कौटिल्य ने अर्थशास्त्र की रचना द्वारा प्रस्तुत की। इन्होंने धार्मिक धर्मनिरपेक्षवादी नियमों का निर्माण किया और क्षत्रिय, ब्राह्मणादि जाति से शूद्र जाति का अन्तर्जातीय विवाह की अनुमति दी। शूद्रों को आर्य मानकर दास-प्रथा का अन्त भी इन्होंने किया।[2]

- -

१: अत: पृथिव्या भर्तारं क्षत्रियं दण्डधारिणम्।
द्वितीयं वर्णमकरोत् प्रजानामनुगुप्तये ।। (७)
वैश्यस्तु धन धान्येन त्रीन् वर्णान् बिभृयादिमान्।
शूद्रो ह्येतान् परिचरेदिति ब्रह्मानुशासनम् ।। (८)
श्रीमन्महाभारतम् - तृतीय भाग: - ७२ अध्याय - राज-
धर्मानुशासन पर्व - शान्ति पर्व - पृ० ३६६

२: अर्थशास्त्र - कौटिल्य - अध्याय १२, पृ० १८१ -जाति-व्यवस्था-
पृ०६१

उन्हें राज्याधिकार भी देते थे ।

गुप्त युग :

इस युग में विष्णु- संहिता की रचना हुई जिसमें छुआछूत का सवाल उठाया गया था । इस काल में अछूत की प्रथा चलती थी । विष्णु संहिता में बताया गया है - " अछूत जाति का कोई व्यक्ति यदि जान- बूझकर तीनों उच्च जातियों में से किसी व्यक्ति को छू देता है तो उसे मृत्यु दण्ड मिलेगा ।"[१] प्रतिलोम विवाह इस युग की विशेषता थी । वैश्यों और शूद्रों का स्तर ऊँचा था । देश का शासक गुप्त- वंशीय था । मुसलमानों के आगमन के बाद यह जाति- भेद की व्यवस्था अत्यंत कठोर और क्रूर बन गयी । अछूत को मंदिर में प्रवेश करने या उसके पास से गुजरने का अधिकार ही नहीं था । इस नियम ने झगड़े का रूप धारण कर लिया । इस कारण जनता के बीच में जाति- भेद का भाव उठ खड़ा हुआ और वे अनेक जातियों और उप-जातियों में बँटी गयी ।

ब्रिटिश युग :

इस युग में जाति- प्रथा को और अधिक प्रश्रय मिला । हिन्दुओं को शासकों ने अछूत बनाया था । इस युग में ब्राह्मणों की शक्ति बढ़ गयी । जाति- व्यवस्था के बहाने ब्राह्मण अपना प्रभुत्व दिखाते थे । हिन्दुओं को हर तरफ और हर तरह से सताया जाता था । ब्रिटिश सरकार ने हिंदु जाति एवं धर्म को हानि पहुँचाने का प्रयास किया था । इस प्रकार हम देखते हैं कि भारत की परतंत्रता की वेला में भी देश में जाति- व्यवस्था का प्रचार खूब था और इससे जनता के बीच की एकता की कड़ी टूट गयी थी और वे हमेशा से झगड़े में फंसे हुए थे जिससे देश में अशांति ही अशांति मौजूद थी

सुधार का आन्दोलन :

धीरे - धीरे भारत की जनता को शांति और समाधान के साथ जीवन बिताने के लिए आपसी एकता की आवश्यकता का गौरव सूझा । अत: इन्होंने जाति- व्यवस्था को मिटाने के प्रयास पर बल दिया । उन्नीसवीं सदी से लेकर जाति- प्रथा की नाशकारी क्रियात्मक प्रवृत्तियाँ प्रारंभ होने लगीं ।

१: विष्णु संहिता - १६ - १४ - जाति-व्यवस्था - पृ० ७२

अस्पृश्यता का विधान शरीर से स्पर्श करने के अर्थ में प्रायः कम ही रहा था। इसकी सीमा भोजन और पान तक ही व्याप्त थी। शूद्रों के प्रति अस्पृश्यात्मक व्यवहार जो होता था वह धीरे धीरे कम होता गया, जैसे अत्रि ने बताया है -

आलयार्थं तथा क्षीरं मधुरं दधिसन्तता: ।
स्नेह पक्वं च तक्रं च शूद्रस्यापि न दुष्यति ।।`

अन्त्यभाण्डस्थितास्त्वेते निष्क्रान्ताः शुचिमाप्नुयुः ।

उत्सवादि अवसरों पर स्पृष्टास्पृष्ट का विचार नहीं था - अत्रि ने कहा है -

देवयात्रा विवाहेषु यज्ञप्रकरणेषु च ।
उत्सवेषु च सर्वेषु स्पृष्टास्पृष्टं न विद्यते ।।

अर्थात् वर्णों में चारों वर्णों के लोग - शूद्र भी सवर्णों संस्था में निमन्त्रित होकर जाते थे। राजा परीक्षित के विषय में कहा गया है -

चातुर्वर्ण्यं स्वधर्मस्थं स कृत्वा पर्यरक्षत ।।

-- -- --

ब्राह्मणाः क्षत्रियाः वैश्याः शूद्राश्चैव स्वकर्मसु
स्थिताः सुमनसो राजंस्तेन राज्ञा स्वनुष्ठिताः ।। `

आधुनिक युग में अछूतों के प्रति आदर-सम्मान प्रकट करने की कोशिश की जाती है। देश के बड़े बड़े नेताओं ने इसके लिए उद्बोधना दी थी। इनमें प्रमुख व्यक्ति थे विवेकानन्द। उन्होंने अछूतों को प्यार किया था और बड़े आदर-भाव के साथ उन्हें देखा था। विवेकानन्द जब मध्य भारत में थे वे अछूतों के घरों में रहे थे जिसके कारण वे पैरों की धूल के समान तुच्छ तथा मूल्यहीन माने जाते थे। यह उनको हृदय खटका और उन्होंने छूत - अछूत को मिटाने का निश्चय किया। वे दरिद्र - जन की सेवा में लगने लगे। उन्होंने वहां के अमीरों, राजकुमारों जैसे सुख-लोलुप व्यक्तियों से भी कहा था - "क्या आप में से एक भी ऐसा नहीं जो परसेवा में जीवनार्पण कर सके ? वेदान्त-पाठ और चिन्तन-मनन फिर कर लेना, यह शरीर सेवा में समर्पित कर दो। तभी मैं समझूंगा कि तुम्हारा हमारे पास आना सार्थक हुआ।"[1] वे दरिद्रों की सेवा

१: विवेकानन्द - रोमां रोला - अनुवादक 'अज्ञेय' - पृ० ७२

करने में इतना तत्पर थे थे कि इसके लिए कई बार जन्म लेने के लिए भी तैयार थे। उन्होंने बताया - " यदि अपने एकमात्र भगवान और परमात्मा और ईश्वर दरिद्रपीड़ित निर्धन मनुष्य की आराधना के लिए मुझे बार बार जन्म लेकर सहस्राधिक यातनाएं भोगनी पड़ें तो निश्चय ही भोगूंगा।"[1]

जब वे सर्व धर्म सम्मेलन के लिए शिकागो जा रहे थे, तब राजाओं और महाजनों ने उन्हें आर्थिक सहायता देना चाहा। लेकिन उन्होंने उसे त्याग दिया। इन लोगों से बड़े अभिमान के साथ यों बताया - " मैं जनता का निर्धनों का प्रतिनिधि होकर जा रहा हूं। इसलिए मुझे मध्य- वित्त जनों से ही सहायता लेना उचित होगा।"[1] जाति- भेद के विरुद्ध उन्होंने यों कहा - " हिन्दू हो या मुसलमान या ईसाई है, मुझे इससे मतलब नहीं, जो भी प्रभु का प्रेमी होगा मैं उसका सेवक होऊंगा।"[2] धार्मिक एकता से जातीय एकता की संभावना को बताते हुए उन्होंने कहा है - " हमारी जन्मभूमि का कल्याण तो इसमें है कि उसके दो धर्म, हिन्दुत्व और इस्लाम मिलकर एक हो जायें। वेदान्ती मस्तिष्क और इस्लामी शरीर के संयोग से जो धर्म खड़ा होगा, वही भारत की आशा है।"[3]

अस्पृश्यता के सुधारवादी आन्दोलन में ब्रह्मसमाज, आर्य समाज, सत्य समाज जैसी संस्थाओं और गोपालकृष्ण गोखले, बाल गंगाधर तिलक, महात्मा गांधीजी आदि महान राष्ट्रीय सुधार मना व्यक्तियों का योगदान माननीय है। अस्पृश्यता- निवारण का सुधारवादी कार्यक्रम को गान्धीजी ने ही पूरा किया जिसे उनके पूर्वकालीन नेताओं ने प्रारंभ किया था। उनके विभिन्न राजनीति कार्यक्रमों में अस्पृश्यता निवारण का प्रमुख हाथ रहा है। उनके मन में जाति का आधार जन्म नहीं था। गान्धीजी ने अछूतों को " हरिजन " माना और उन्हें अन्य लोगों के समान जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में समानाधिकार देने की आवाज दी। अछूतों को मंदिर में प्रवेश करने में निषिद्ध माने जाने पर उन्होंने विरुद्ध शब्द उठाया और उन्हें मंदिर में प्रवेश करने और जीवन की प्रत्येक चाल में उन्हें विशेष स्थान देने का वादा किया।[4] इनकी प्रेरणा पाकर डा० अंबेडकर

- -

१: विवेकानन्द - रोमां रोला - अनु० अज्ञेय - पृ० ७४ २: वही० पृ० ८६

३: वही० पृ० १०५

४: He asked temples should be thrown open to them and that they should be given the same treatment as the other sect of Hindus inn all walks of life. India through Ages. P.397

भी अछूतों के नेता बने और उन्होंने हरिजनों के लिए पाठशालाएं खुलवायीं और आर्थिक सहायता का प्रबन्ध भी किया।

स्वतन्त्रतासंग्राम के समय में जाति- भेद बहुत कम था। इसका कारण यह था कि गान्धीजी के नेतृत्व में भारत की सारी जनता विदेशियों को भगाने के परिश्रम में क्रियाशील थी। गान्धीजी के कठिन परिश्रम से जाति- भेद और अछूतापन दोनों का नाश हुआ। लेकिन उनके निधन के बाद दोनों का पुन: कहीं कहीं आविर्भाव होने लगा है। अत: आजकल की परिस्थिति में जाति- भेद और अछूतापन पूर्णत: मिट नहीं सके हैं।

अस्पृश्यता निवारण :

प्राचीन काल से लेकर अछूत की प्रथा चली आ रही है। उस युग में समाज में ब्राह्मणों को महत्वपूर्ण स्थान दिया जाता था। शूद्रों और वैश्यों की निंदा भी होती थी। इनको अछूत माना जाता था। इनसे बातें करना अथवा इनसे मिलना और साथ रहना भी मना किया गया था। यह प्रथा भारत में मध्ययुग तक चली। जब बुद्ध ने जन्म लिया तब से लेकर इस जाति- भेद की प्रथा का विरोध होने लगा। इस प्रथा को चुनौती देते हुए महावीर गौतम बुद्ध ने एक बार एक ब्राह्मण को यह उपदेश दिया जो जाति- भेद का समर्थन कर रहा था - " जाति नहीं पूछ, आचरण पूछ, नीच कुल का पुरुष भी सत्कर्मों से ज्ञानी और पाप-रहित हो जाता है।"[1] बुद्ध के युग में बुद्ध ने जिस संघ का निर्माण किया था, उसने अस्पृश्यता निवारण का खूब प्रयत्न किया। जैन दर्शन में भी जाति - प्रथा का कट्टर विरोध होता था। वैदिक युग में तो वर्ण-व्यवस्था की प्रथा जो थी, वह जन्मना और कर्मणा मानी जाती थी। बाद में उसे जन्मना मात्र निश्चित किया गया।

एक बात यहां माननीय है। सवर्णता- अवर्णता, कुजाति- सुजाति आदि की भिन्नता कदापि कर्म से नहीं होती। पूर्वजन्म के कर्मफलों के अनुसार ही मानव विभिन्न जातियों में आकर जन्म लेता है। कर्म तो सब लोग करते हैं; उसका अधिकार सबको रहता भी है। लेकिन कुछ लोग जो ऊंचे होते हैं, अपने में और अपने से भिन्न स्तरीय लोगों में यह वर्ण भेद या जातिभेद जबरदस्त लाते हैं। कभी ऊंचे लोगों

१: भारतीय संस्कृति - गौतम से गांधी तक - पृ० ३७

नीच है। इसी कारण पुराणों में इसका विरोध किया गया और सबको उपासना पूजा आदि करने का अधिकार भी दिया गया। पुराणों ने किसी धर्म-विशेष, वर्ण-विशेष या जाति-विशेष को स्वीकार नहीं किया।[1] उनमें सबका समानाधिकार है अर्थात् निम्न स्तरीय जनता भी उच्च स्तरीय जनता के साथ रह, भी मेल और उपासना कर सकती हैं। यह बात निम्न लिखित श्लोक से स्पष्ट होती है -

विप्राद्विषड्गुणयुतादरविन्दनाभ,
पादारविन्द विमुखाच्छ्वपचं वरिष्ठम्।
मन्ये तदर्पित मनो वचने हितार्थं।
प्राणं पुनाति स कुलं न तु भूरि मानः।[2]

सिख संप्रदाय में भी अभेद का प्रचार हुआ था। इसके बाद इस्लाम धर्म में सम्राट अकबर ने हिन्दू और मुसलमानों में एकता स्थापित करके जाति-भेद को मिटाने का यत्न किया था। इस्लाम धर्म के बाद ईसाई धर्म का प्रवेश हुआ और इसने हिन्दू - मुसलिम एकता पर अधिक बल दिया। इसके उपरांत ब्रह्म समाज, आर्य समाज, सत्य समाज आदि संस्थाओं ने भी जाति- प्रथा का नाश करने का प्रयास किया है। इस प्रकार जाति - भेद के विरोध का कार्य गांधीजी के युग में चल रहा था। गांधीजी ने इस विरोध को और अधिक दृढ़ता से पकड़ लिया और अभेद की स्थापना करने तक उन्होंने आन्दोलन किया। गांधीजी के समाज- सुधार का प्रमुख अंग था अछूतोद्धार या हरिजनोद्धार तथा या अस्पृश्यता निवारण। अतः उन्होंने अछूतोद्धार की विविध व्याख्याएं की हैं।

गांधीजी ने इस संसार की सारी जनता को समान रूप से देखने का प्रयास किया। उनके सामने कोई उच्च नहीं, कोई नीच नहीं, कोई बुरा नहीं, कोई पापी नहीं। अगर कोई नीच, बुरा या पापी होता था तो उसे उच्च, अच्छा और पवित्र बनाने का प्रयास वे करते थे। उनका मत यह था कि ईश्वर एक ही है। लेकिन

१: भारतीय संस्कृति - गौतम से गांधी तक - पृ० १०३
२:भागवत महापुराण - ७ - ६ - १०

लेकिन लोगों या भक्तों ने उन्हें अनेक नामों से पुकारा है और पुकारते भी हैं। ईश्वर के एक होने से आत्मा भी एक ही है। इसलिए गांधीजी ने यह कहा कि अगर ईश्वर एक है और आत्मा भी एक है तो, कोई अस्पृश्य या अछूत नहीं हो सकता। वास्तव में ईश्वर ने किसी को उच्च या नीच बनाकर सृष्टि नहीं की। सबकी अपने पूर्वजन्म के कर्म के अनुसार सृष्टि की है। लेकिन मानव ही अपने बीच में जाति की प्रथा का प्रचार करता है। अतः गांधीजी इससे सहमत नहीं थे कि यह जाति-प्रथा जारी रहे। सबको जाति-विहीन और एक मानना वे चाहते थे। इसलिए वे बताते थे कि ईश्वर, आत्मा और मानव सब एक हैं और प्रत्येक व्यक्ति को आपस में व एक दूसरे को अपनाना चाहिए। गान्धीजी हमेशा जाति-भेद का विरोध करते थे और इसी दृष्टि से वे हरिजनों को दरिद्र-नारायण कहकर पुकारते थे।[१]

अस्पृश्यता निवारण का अर्थ गान्धीजी ने समस्त संसार के साथ मित्रता रखना और सब की सेवा करना बताया है। अस्पृश्यता के अस्तित्व से शत्रुता बनी रहती है। यदि एक उच्च कुलीन व्यक्ति एक निम्नकुलीन व्यक्ति को अछूत समझता है उससे बातें करना अनुचित मानता है और उसकी मदद करना घृणित मानता है तो इसमें मित्रता कैसे हो सकती है। ऐसा होने से अछूत अछूत ही रह जाता है और उच्च लोग उनपर अपना सर्वाधिकार जमाकर बैठे हैं। इससे मानव का पद नष्ट हो जाता है। इससे समाज का अस्तित्व भी संशयास्पद बन जाता है। समाज और मानव की उन्नति के लिए पारस्परिक मित्रता आवश्यक है। यदि मित्रता होती है तो जाति-भेद को मिटाना चाहिए। जाति-भेद से मित्रता संभव नहीं। उसी प्रकार किसी का सेवक बनने के लिए मित्रता की आवश्यकता है। यदि दोनों व्यक्तियों में आपसी प्रेम होता है तो वे एक व दूसरे की सेवा कर सकते हैं। मित्रता ही इस अछूतापन को दूर कर सकती है।[२]

जीव मात्र के प्रति पूर्ण प्रेम को गान्धीजी ने व अहिंसा बताया है। और उसी को अस्पृश्यता-निवारक भी कहा है। अहिंसा के पालन के समान

- -

१: यदि आत्मा एक ही है, ईश्वर एक ही है, तो अछूत कोई नहीं -
गान्धी - विचार - रत्न - पृ० १६१

२: अस्पृश्यता दूर करने का अर्थ है समस्त संसार के साथ मित्रता रखना उसका सेवक बनना -
वही० पृ० १६२

अछूतोद्धार के लिए भी प्रेम की आवश्यकता है। समस्त प्राणियों से स्नेहपूर्ण व्यवहार करने से ही जाति- भेद को मिटा सकते हैं। पारस्परिक प्रेम से ही आपसी मिलाप हो सकती है। जो जाति- भेद का मानता है वह दूसरों से प्रेम नहीं कर सकता। अत: यहां आपसी प्रेम को अधिक महत्व दिया गया है।[१] अस्पृश्यता की भावना जिसके मन में रहती है, उसे दूर करने के लिए प्रेम की आवश्यकता है। गान्धीजी ने इसका अच्छा अनुभव किया है कि प्रेम भरी वाणी से दूषितों का दिल बदल सकता है। जो व्यक्ति दूसरे को अस्पृश्य बताता है उसका मन प्रेम- वाणी से परिवर्तित कर सकता है। अत: उन्होंने अछूतों को सुधारने के लिए सार्वभौमिक प्रेम को अनिवार्य माना है।

गान्धीजी ने भारत को स्वतन्त्र बनाने के लिए अछूतोद्धार या हरिजनोद्धार की प्रथा चलायी। उन्हें यही सूझा कि भारत की मुक्ति पाने के लिए हरिजनों को भी अपनाना चाहिए। उनका कथन यह है कि जो हिन्दू अस्पृश्यताको अपने धर्म का अंग मानता है और उन्हें छूना पाप समझता है, वह स्वतन्त्रता का सुख भोगने योग्य नहीं है। छुआछूत हिन्दू धर्म का कलंक मात्र है, उससे उस धर्म की महत्ता घट जाती है। अत: गान्धीजी ने उसे मिटाना चाहा। हरिजनों में भावुकता की भावना अधिक रही है। वे धार्मिक और सदाचारी भी होते हैं। वे हिन्दुओं से भी अत्यधिक माननीय तथा पूजनीय हैं। अत: उनका आदर - सम्मान होनाचाहिए। तभी देश की स्वतंत्रता जारी रह सकती है। जो हिन्दू हरिजनों से घृणा एवं उनका तिरस्कार करता है, उसे देश की स्वतन्त्रता भोगने का अधिकार नहीं है।[२]

गान्धीजी ने बताया है कि जब हम हरिजनों के ऊपर अत्याचार करते हैं, उसको मिटाने तक हम पशु ही कहलायेंगे। कहने का तात्पर्य यह कि जो व्यक्ति हरिजनों को पीड़ा देता है, वह पशु के समान है। पशुओं के बीच में भी हम मित्रता देख सकते हैं। वर्तमान युग में मानव तो पशुओं से भी नीच और निर्दय बन गया है। अब तो हमें देश की स्वतन्त्रता की आवश्यकता है। अत: हरिजनों को हमें सहर्ष अपने

- -

१: अहिंसा के मानी है जीव मात्र के प्रति पूर्ण प्रेम। अस्पृश्यतानिवारण का भी यही अर्थ है। जीव मात्र के साथ का भेद मिटाना अस्पृश्यता - निवारण है।

गान्धी साहित्य - पृ० ५०

२: मेरी धारणा है कि जब तक हिन्दू लोग छुआछूत को अपने धर्म का अंग समझते रहेंगे, जब तक हिन्दू लोग अपने हरिजन भाइयों को छूना पाप समझते रहेंगे, तब तक

साथ अपनाना चाहिए। जब तक हम उन्हें अपनाते नहीं हैं, तब तक हमारी गणना पशुओं से भी हीनता से होगी।

भारत की स्वतन्त्रता और अस्पृश्यता दोनों में से अस्पृश्यता का प्रश्न गान्धीजी के अधिक बड़ा है। दोनों के लिए पारस्परिक एकता की आवश्यकता है। गौतमबुद्ध के आविर्भाव तक अस्पृश्यता की प्रथा चलती थी और उन्होंने एक हद तक उसे मिटाने के लिए आन्दोलन किया था। लेकिन वह पूर्णत: मिटी नहीं थी। गान्धीजी ने उसके लिए निरन्तर परिश्रम किया। अन्त में उसे संपूर्णत: हटा दिया गया।

गान्धीजी ने कहा है - ' जिस धर्म में अस्पृश्यता की भावना रहती है वह धर्म नहीं, अधर्म है। किसी भी धर्म को इस भावना को बरतना नहीं चाहिए। यथार्थत: यह भावना अत्यन्त नाशकारी है। इस भावना से धर्म ही नहीं, समाज, मानव, राष्ट्र सबकी हानि हो सकती है। अत: इसको मिटाना चाहिए। राष्ट्र की उन्नति के लिए ही धर्म को अपनाया जाता है। यदि वह धर्म गुणदायक नहीं हो तो राष्ट्र कैसे उन्नत होगा। मानव- जीवन और राष्ट्रीय कार्यों की भलाई के लिए धर्म का आधार लेना पड़ता है। जो धर्म सत्पथ का उपदेश देता है वही सच्चा धर्म है। शाश्वत भी है। प्रत्येक धर्म में अस्पृश्यता की दोषकारी भावना नहीं हो सकती है। इन कारणों से ही अस्पृश्यता को मानने वाले धर्म को अधर्म बताया गया है। [१]

हिन्दु धर्म में वास्तविक रूप से अस्पृश्यता की भावना बिलकुल नहीं थी। परिस्थितियों के प्रभाव से यह भावना उसमें घुस गयी है। अत: उसे दूर करना ही हर हिन्दू का कर्तव्य है। गान्धीजी इसका कट्टर विरोध करने वाले व्यक्ति थे। उन्होंने हिन्दु धर्म से उसे दूर करना चाहा है। उनके अनुसार अस्पृश्यता हिन्दु धर्म का अंग नहीं है। [२]

जनता के बीच में जाति का रोग अत्यंत व्यापकता से फैला है। अस्पृश्यता के मूल में जाति भेद का भाव रहता है। जनता आपस में भेद की दृष्टि से देखती है और आगे परस्पर छूना तक नहीं चाहती है। अत: अस्पृश्यता निवारण के

- -

१: जो धर्म अस्पृश्यता को मानता या तदनुसार बरतता है, वह धर्म नहीं, अधर्म है, और नाश के योग्य है। - गान्धी - विचार - रत्न - पृ० १६१

२: अस्पृश्यता हिंदू धर्म का अंग नहीं है। बल्कि वह हिन्दु धर्म में घुसी हुई सड़ांध है ... है और उसका निवारण करना प्रत्येक हिन्दु का धर्म है -- वही०पृ० १६

लिए जाति- भेद को भी मिटाना चाहिए। यदि जाति- भेद को मिटा सकते हैं तो अस्पृश्यता भी दूर कर सकते हैं। इसलिए गान्धीजी ने इस सन्दर्भ में भी जाति- भेद के उन्मूलन पर बल दिया है।[१]

संसार में जितने लोगों का जन्म होता है वे सब अछूत बनकर नहीं पैदा होते हैं। वे लोग भगवान की ही सन्तान हैं। इसलिए इन लोगों को अस्पृश्य समझना नहीं चाहिए। अस्पृश्यता की भावना को भगवान ने नहीं रखा है। मनुष्य ने ही अपने बीच में जाति- भेद की प्रथा को रखा है। प्रत्येक व्यक्ति अत: किसी को भी जन्मना अछूत समझ लेना उचित नहीं।

गांधीजी ने बताया है कि यदि इस संसार में जो कुछ प्राप्त है तो वे सब ईश्वर के हैं। उनमें ऊंचा - नीचा, भला- बुरा, पंडित-मूर्ख आदि कोई नहीं है। सब में ईश्वर का आवास है चाहे वे किसी भी जाति के हों। भगवान का अधिकार सब पर समान रूप से होता है। सभी को सुख- दुख पूर्ण जीवन बिताना और अंत में मरना भी पड़ता है। कोई भी इससे बच नहीं सकता।

अस्पृश्यता धर्म की आज्ञा नहीं, बल्कि शैतान का आविष्कार है। संसार में अनेक प्रकार के लोग रहते हैं। उनके आचार- विचार, रूप- रंग, वेश सब तरह तरह के होते हैं। इनमें समता पाना अत्यंत कठिन है। धर्म तो सब को एक ही पाठ सिखाता है कि " वसुधैव कुटुंबकम् "। लेकिन जनता कभी कभी यह भूल जाती है। इस प्रकार उनमें भिन्नता आती है। एक दूसरे को घृणा की दृष्टि से देखने लगती है और धीरे धीरे उसे अछूत सिद्ध करती है। यही इस संसार में होता भी है। इस संसार के लोगों के बीच में कुछ ऐसे ऐसे शैतान भी होते हैं जिन्होंने इस छुआछूत को बनाये रखा है। इस प्रथा का पालन करने वाले को ही गांधीजी ने शैतान बताया है।[२]

- -

१: जीवमात्र के साथ का भेद मिटाना ही अस्पृश्यता निवारण है।
- गांधी - विचार- रत्न - पृ० १६२

२: अस्पृश्यता धर्म की आज्ञा नहीं है, वह तो शैतान का आविष्कार है।
- वही० पृ० १६२

इस संसार में जितने लोग अछूत माने जाते हैं, वे केवल अछूत मात्र माने नहीं जाते। उन्हें किसी भी कार्य में भाग लेने अथवा कहीं जाने का अधिकार भी नहीं दिया जाता। उन्हें समस्त सांसारिक विषयों से उपेक्षित रखा जाता है। इससे वे इस संसार के संबंध में और अपने जीवन के संबंध में अज्ञानी रहते हैं। गांधी बताते हैं कि उनको सार्वजनिक संस्थाओं में जाने से जो रुकावट बनी है, उसे हटाना चाहिए। जो अछूतों के छूने से छुआछूत मानता है उसे भी मिटाना चाहिए। अछूतों को सारी संस्थाओं में जाने का अधिकार देना चाहिए और उनकी उन्नति करनी चाहिए।[१]

अस्पृश्यता को विष कहा है। जिस प्रकार विष को अंत कर डालता है उसी प्रकार अस्पृश्यता का विष समाज का अंत कर सकता है। गान्धीजी ने इस विष को दूर करके उस जगह प्रेम का अमृत बहाना चाहा है। विष को बनाये रखना ठीक नहीं। उसको उसी समय मिटा देना चाहिए।

गान्धीजी ने अत्यन्त कष्ट सहकर ही अस्पृश्य - निवारण के लिए प्रयत्न किया था। अस्पृश्यता या अछूतापन पाप है और इस पाप को धोने के लिए चाहे जितना ही कष्ट सहना पड़ेगा तो भी कोई परवाह नहीं। कष्ट सहने से ही कोई लाभ होता है अतः कष्ट की चिंता तक करना एक परिश्रमी के लिए बड़ी बात नहीं है।

पुराने जमाने में अछूतों को या हरिजनों का मंदिर में प्रवेश करना निषिद्ध माना गया। लेकिन गांधीजी ने सोचा कि इन्हें मंदिर में प्रवेश कराने से ही यह पाप दूर हो सकता है। इसके सिलसिले में उन्होंने अनेक आन्दोलन किये थे। अन्त में हरिजनों को मंदिर में प्रवेश करने का प्रवेश गांधीजी को ही था। उन्होंने इस बात का दृढ़ निश्चय किया कि हरिजनों को मंदिर में जाने, मूर्ति की उपासना करने, प्रार्थना करनेक आदि का अधिकार होना चाहिए। अतः मंदिर - प्रवेश इस निवारण का मुख्य अंग माना है।[२]

- -

१: अछूतापन मिटाने का अर्थ यह है कि अछूतों के सार्वजनिक संस्थाओं में जाने पर जो रुकावटें लगायी जाती हैं, उन्हें दूर किया जाय ; उन्हें छूने पर जो छुआछूत मानी जाती है, उसे मिटाया जाय। - गांधी-विचार-रत्न- पृ० १६२

२: मंदिर प्रवेश अस्पृश्यता निवारण का आवश्यक अंग है। वही० पृ० १६३

जिस व्यक्ति में अछूतापन की भावना रहती है, वह आत्मा की हत्या करता है सच में। वह आत्मा के बारे में कुछ भी नहीं जानता। उसकी दृष्टि बाह्य जगत की ओर होती है और अंतर्मन की ओर उसकी दृष्टि जाती भी नहीं। वह भौतिक वातावरण से अपना संबंध रखता है। उसी प्रकार समाज में जाति- पांति की प्रथा को बनाये रखना बुरा है। जाति - पांति से समाज शिथिल हो जाता है। समाज के अस्तित्व के लिए जनता की एकता की आवश्यकता है। इसलिए जाति- पांति को मिटाना हमारा कर्तव्य है और धर्म भी।[१]

गान्धी जी की शिकायत यह है कि देश के सवर्ण हिंदुओं में ही अछूत का प्रचार हुआ है। अगर अछूतापन बंद हो जायगा तो देश में जाति- भेदकी भावना में सुधार आयगा। यदि जाति- भेद मिट जाय तो जनता में एकता आ हिंदुओं को हरिजनों को अपनाना चाहिए। तभी देश का कल्याण संभव है। अछूतापन तभी नष्ट हो सकता है, उसका नाम तक नहीं लेता। अछूतापन का समूलनाश करना ही ठीक है।

साधारणतया मंदिरों में जो मूर्तियां रहती हैं उन्हें साधारण व्यक्ति छू नहीं सकता चाहे वह कोई भी हो। केवल पुजारी ही उन्हें छू सकते हैं। गांधीजी बताया है कि जिस प्रकार साधारण व्यक्ति को मूर्तियों को छूने का अधिकार नहीं है वैसा वैसा ही अधिकार हरिजनों को भी देना चाहिए। उन्हें यह अधिकार इस दृष्टि से नहीं जाना चाहिए कि वे हरिजन हैं। यदि ऐसा नहीं करते तो उनके लिए यह बहुत बड़ा आघात होगा। गान्धीजी के कहने का मतलब यह है कि सबको समान अधिकार देना चाहिए। साधारण व्यक्ति को जो अधिकार नहीं है वह उसी दृष्टि से हरिजनों को नहीं दिया जाना चाहिए, यही उत्तम है। उन्हें हरिजन मानकर कोई विशेष अधिकार देना पाप है।

देश में हरिजन लोग अन्य लोगों की अपेक्षा अधिक हैं। इसका कारण जाति- भेद की प्रथा का प्रचार है। इस प्रकार जाति- भेद के कारण देश को संस्कृति कलंक लगाता है। संस्कृति का नाश होता है। देश की नीति भी अनीति बन जाती है।

- -

१: मन्दिर प्रवेश अस्पृश्यता के निवारण का आवश्यक अंग है - गांधी-विचार-रत्न, पृ० १६३
अस्पृश्यता आत्मा का हनन करने वाला पाप है। जातपांत सामाजिक बुराई है।
वही० पृ० १६३

गान्धीजी बताते थे कि भंगी दूसरे सबों से अच्छे हैं, उनकी सेवा सबसे बड़ी है।[१] साधारणत: सब लोग उनसे घृणा करते हैं, उनका परिहास करते हैं और उनसे बातचीत करने में भी झिझकते हैं। लेकिन गांधीजी उनका आदर - सम्मान करते थे। उनके काम से घृणा होने पर भी उनसे घृणा नहीं कर सकते। यही गांधीजी का मत था। भंगी को वे ऊँचा उठाना चाहते थे।

गान्धीजी ने बताया है कि हर व्यक्ति को भंगी का काम करना चाहिए। जो यह काम नहीं करता, उसे इस संसार में जिन्दा रहना नहीं चाहिए। गान्धीजी जब कलकत्ता गये थे, तब वहां उन्हें पाखाना साफ करना पड़ा था। वहां उन्होंने एक स्वयं सेवक से पाखाना साफ न करने का कारण पूछा तो उसने यों उत्तर दिया - "यह तो भंगी का काम है। लेकिन गांधीजी को इस काम से कोई घृणा न थी। उन्होंने बड़ी खुशी से यह काम किया। इसलिए उन्होंने बताया है कि प्रत्येक व्यक्ति को यह काम करना चाहिए। उनके कहने का मतलब यह है कि जो यह काम करता है, वही इस काम की महिमा जान सकता है। इसलिए वे इस काम पर जोर देते थे।

जन्म से ही मानी जाने वाली अस्पृश्यता, अहिंसा और सर्वभूतात्मभाव को ठेस पहुँचाती है। उसमें संयम नहीं, उच्चता की भावना रहती है। अत: यह अधर्म है। इस अधर्म ने अनेक लोगों को गुलाम बना दिया है। जन्म से किसी को अस्पृश्य नहीं माना जा सकता। अस्पृश्यता का निवारण न करना अधर्म है। जन्म के बाद वह जो काम करता है, उसके अनुसार लोग उसे लोग अस्पृश्य बताते हैं। इस कारण से अनेकों लोगों की स्थिति दयनीय हो जाती है। अत: इस अधर्म को दूर करना चाहिए।

अनेक युगों से अस्पृश्य लोगों की स्थिति अत्यंत करुणाजनक रही है। अत: उनका उद्धार करना हिंदू लोगों का परम कर्तव्य है। उन्हें उनकी उन्नति के लिए अपने प्राण तक का बलिदान करना पड़ता है। सबको समानता की दृष्टि से देखना ही अस्पृश्यता के निवारण का अर्थ है। यही हिन्दुओं का धर्म है। जनता के बीच में जातीय एकता के होने पर ही समाज का कल्याण हो सकता है। इसीलिए उन्होंने

- -

१: भंगी हम सबसे ऊँचे हैं, क्योंकि उनकी सेवा सबसे बड़ी है। -
- गांधी - विचार- रत्न - पृ० १६५

अछूतों या हरिजनों का उद्धार करने पर बल दिया था ।

अछूतों को सुधारने के लिए उनकी परंपरागत रूढ़ियों से उन्हें उठाने या उनके प्रति अरुचि हटाने की आवश्यकता है । प्रत्येक व्यक्ति अपना अपना काम करता रहे, चाहे वह जो भी हो,। उसे अस्पृश्य न माने तो अच्छा है । उनके परंपरागत रूढ़ि-रिवाजों को सुधारना हमारा कर्तव्य है । कुछ गाँवों में जो लोग मरे हुए ढोरों को उठाने का काम करते हैं उनका बहिष्कार किया जाता है । यह तो बड़ी ही वेदना-जनक बात है ।

अस्पृश्यता को दूर करने के लिए परंपरा को छोड़ने की आवश्यकता नहीं है । उसे सुधारने से कार्य सिद्ध हो सकता है । किसी भी व्यक्ति को घृणा नहीं करनी चाहिए चाहे वह कैसा काम भी करने वाला हो । किसी के प्रति घृणा की भावना दिखाना उचित नहीं । सभी के प्रति प्रेम का व्यवहार करना चाहिए । गांधीजी ने अक्सर यही बताया है कि सबको अपना अपना कार्य करने का अधिकार होना चाहिए और होता भी है । अर्थात् जो व्यक्ति जिस धर्म या संप्रदाय में विश्वास रखता है और उसका पालन करता है, उसे उस धर्म या संप्रदाय में चलने की अनुमति देनी चाहिए । उसी प्रकार जो व्यक्ति जो काम करना चाहता है, उसे वही काम करने का अधिकार रहना चाहिए । उसे धर्म की दृष्टि से या काम की दृष्टि से अथवा अन्य किसी की भी दृष्टि से उसे अछूत न समझना चाहिए ।[१] [illegible]

प्राचीन काल से ही सफाई के धन्धे को एक अलग रूप देकर उसे अन्य धन्धों से हटाया है और इतना ही नहीं जो इस धन्धे का काम करते हैं उन्हें निम्न वर्ग में बिठा दिया है । इस कारण समाज की स्थिति अत्यंत गिरी हुई है । उन्हें किसी प्रकार का अधिकार नहीं दिया जाता । गांधीजी ने इसको सुधारने का मार्ग यों ढूंढ़ा है कि हर एक परिवार अपने पाखानों की सफाई कर लेनी चाहिए और दूसरे धन्धों के समान इस धन्धे को भी ऊंचा मानना चाहिए ।

गान्धीजी की यह योजना व्यावहारिक होगी, इस बात पर संदेह अवश्य हो सकता है । फिर भी गांधीजी के शब्दों के साथ हम भी कह सकते हैं कि

- -

१: अस्पृश्यताओं की स्थिति --- यही भारती अन्याय और पाप है । -
- गान्धी - विचार- रत्न - पृ० ४२

सब को अपना अपना पाखाना साफ करना चाहिए और इस प्रकार अगर करते तो हम एक दूसरे को समता की दृष्टि से देख सकते हैं। उच्च- नीच की भावना भी नष्ट हो सकती है। सफाई का काम करने वाला भी हम जैसा साधारण व्यक्ति ही हो सकता है। अत: हम उससे घृणा नहीं कर सकते। सफाई के काम से हमारे मन में घृणापेक्षा हो सकती है लेकिन कभी कभी उनके प्रति सहानुभूति भी हो सकती है। सफाई के काम कुछ लोग अत्यंत उच्च और प्रशंसनीय मानते हैं। ऐसे लोग यह जानते हैं कि भंगी का काम कितनी कठिनाइयों से किया जाता है। वह यही जानता है जो भी हम अगर भंगी का काम करें या न करें उससे या उसके कर्ता से हमारे मन में घृणा व या हीनता के बदले प्रेम और उच्चता का भाव उत्पन्न होना चाहिए।

उन्होंने आगे बताया है कि केवल अपने को शुद्ध एवं संस्कारी बनाकर आचरण करने से कोई फायदा नहीं। जिस प्रकार हम रहते हैं, उसी प्रकार दूसरों के भी रहने में सहायता देने में ही हमारी सभ्यता है। अस्पृश्यों को जूठन देना, अशुद्ध अन्न देना और उनसे पशुता का व्यवहार करना जाति अछूतापन का लक्षण है। हमें किसी को भी जूठन न देना चाहिए, चाहे वह उच्च हो या नीच। जो उच्च स्तर पर रहता है और जो नीच स्तर पर रहता है - सब मानव ही हैं। अत: उन्हें जूठन न खिलाकर उनका अपमान करना पाप है। यदि यह विचार सबके मन में रहेगा तो अस्पृश्यता को दूर कर सकता है।

सर्वोदय :

सर्वोदय शब्द का अर्थ है ' सब की उन्नति '।[१] इस भावना में सब की उन्नति और कल्याण की भावना निहित है। सर्वोदय शब्द से यह भावना अत्यंत स्पष्ट होती भी है। देश की उन्नति एवं भलाई के लिए इस भावना की अनिवार्यता पर बल दिया जाता है। जनता की उन्नति से ही देश की उन्नति संभव है और यह इस भावना से ही संपन्न हो सकती है।

---

1. Sarvodaya means the good of all, literally the rise and welfare of all. - Contemporary Indian Philosophy.P.71

गांधीजी और सर्वोदय :

गांधीजी ने अपने द्वारा अनूदित एक पुस्तक का नाम ही 'सर्वोदय' रखा है जिसमें एक अंग्रेजी विद्वान और लेखक रस्किन की 'अन टु दिस लास्ट' पुस्तक में प्रतिपादित सिद्धान्तों का समावेश किया गया है। उन पर इस पुस्तक का गहरा असर पड़ा। और उसका गुजराती अनुवाद करके 'सर्वोदय' नाम से प्रकाशित किया गया।[१] गान्धीजी ने जिस प्रकार अपने अन्य सिद्धान्तों का व्यवहार मानव के जीवन में किया था वैसा ही इस तत्व का भी व्यवहार किया था। सर्वोदयके व्यवहार के मूल में गांधीजी ने विश्व कल्याण का आग्रह रखा था।[२] उन्होंने सर्वोदय के तीन मुख्य सिद्धान्तों को अपनाया था। और वे ये हैं -

१- सबकी भलाई में हमारी भलाई निहित है।

२- वकील और नाई दोनों के काम की कीमत एक सी होनी चाहिए। क्योंकि आजीविका का अधिकार सबको एक समान है।

३- सादा मेहनत- मजदूरी का, किसान का जीवन ही सच्चा जीवन है।[३]

सर्वोदय के अध्ययन ने हमें इस बात को समझा दिया कि दूसरे और तीसरे सिद्धान्तों की सफलता से पहला सिद्धान्त सफल हो सकता है। अत: इस कार्य की सिद्धि के लिए प्रयत्न करने के हेतु उन्होंने फीनिक्स संस्था की स्थापना की।

गांधीजी ने सर्वोदय - समाज की स्थापना के लिए चार मुख्य साधनों का समर्थन किया है। वे हैं - व्यापक आश्रम जीवन, जीवन-व्यापी सहयोगी प्रवृत्तियां, पंचायत राज्य और शांति सेना का संगठन।[४] आश्रम के जीवन में स्त्री- पुरुषों को समानाधिकार रहता है। ये लोग आजीवन समाज- सेवा करने का व्रत लेने वाले होते हैं।

- -

१: " -- इन पुस्तकों में से जिसने मेरे जीवन में तत्काल महत्त्व के रचनात्मक परिवर्तन कराये, वह 'अन्टु दिस लास्ट' ही कही जा सकती है। बाद में मैं ने उसका गुजराती अनुवाद किया और वह 'सर्वोदय' नामसे छपा।" - आत्मकथा - पृ० २५६

२: आज की दुनिया जिस बुरी हालत में है उसी से बचने के लिए, आत्मरक्षा के लिए एवं विश्व कल्याणके लिए गान्धीजी ने सर्वोदय का रास्ता बताया। -
गांधीजी का जीवन दर्शन - पृ० ८६

अनेक परिवारों का सम्मिलित जीवन ही यहां स्वीकार्य है। ये लोग जाति- भेद, धर्म- भेद वर्ण- भेद आदि को भूलकर अपनी अपनी वस्तुओं को मिलाकर, सभी के उपयोग के लिए दान देने वाले होते हैं। दूसरे साधन में को-आपरेटिव सोसाइटियों का उपाय विचारणीय है। यहां सहकारी मण्डलियों के द्वारा आर्थिक, शैक्षणिक, औद्योगिक आदि सहायताएं प्राप्त होती हैं। तीसरे साधन में पंचायत राज्य का प्रयोग माननीय होता है। चौथे साधन में हजारों या लाखों नागरिकों की भरती पर जोर दिया जाता है। ये लोग देशवासियों की सेवा करेंगे। विदेशी आक्रमणों का सामना करना अहिंसक उपायों से देश की रक्षा करना आदि इन लोगों का प्रधान कर्तव्य होता है। इस प्रकार इन चार साधनों के व्यवहार की सफलता में ही सर्वोदय की सफलता भी हो सकती है।

गान्धीजी की मान्यताएं :

सर्वोदय के लिए उन्होंने देश की आर्थिक व्यवस्था को सुधारने पर जोर दिया था। उन्होंने भारत को ही नहीं, समस्त संसार की आर्थिक व्यवस्था को सुधारना चाहा। देश और संसार के लिए ऐसी आर्थिक व्यवस्था की आवश्यकता है जहां कोई भी भूखा अथवा नंगा न हो। सबको खूब खाने और पहनने की सुविधा रहनी चाहिए आर्थिक सुधार से सर्वोदय संभव है। यही उनका दृढ़ विश्वास था। सर्वोदय के लिए आर्थिक क्षेत्र को भी बढ़ाना है। मनुष्य का यह मामूली रोग रहा है कि उसके पास अगर कुछ धन या संपत्ति रहती है तो वह उस पर अपना ध्यान खो बैठता है। किसी एक दिन वह धन- संपत्ति नष्ट हो जाती है और वह ऊपर की ओर आंखें लगाकर देखता रहता है। धन या संपत्ति एक दिन आती और दूसरे दिन चली जाती है। उसके बदले में मनुष्य में किंचित मानवता की भावना रहती है तो वह अनश्वर होती है। इसी मानवता की सहायता से ही आर्थिक सुधार हो सकता है।

देश की आर्थिक स्थिति में समानता होनी चाहिए। सबको अपने अपने धन को खर्च करने का अधिकार रहना चाहिए। खर्च करने से मतलब अनावश्यक खर्च नहीं, बल्कि आवश्यक एवं सीमित खर्च है। संपत्ति या धन का उपयोग करने और उसके लेन- देन में समान अधिकार रहना है। भारत की स्वतन्त्रता के लिए आर्थिक समानता अत्यन्त अपेक्षित है।

अपेक्षित है। वह तो स्वतन्त्रता की कुंजी है।[1] साधारणत: अर्थ के नाम पर ही देश में कलह, द्वन्द्व, झगड़ा, नरहत्या आदि होती है। इसलिए आर्थिक समानता अत्यन्त आवश्यक है। उसके बिना देश स्वतन्त्र नहीं हो सकता।

देश की संपत्ति समस्त जनता की है। वह किसी एक की नहीं हो सकती। संपत्ति वास्तव में परिश्रमी जनों की निधि है। उनके अथक मेहनत की सीढ़ है। देशीय वित्त का उपयोग प्रजा की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए होना चाहिए। शासकों के सुख भोग के लिए नहीं। जिस प्रकार नर पिशाच एवं धूर्त चरी चरती भेड़ों की कही जाती है वैसा ही देश का धन प्रजा का कहलाना चाहिए। देश के श्रमिक वर्ग के लोगों के पसीने का परिणाम फल है देश का वित्त। इसलिए वह प्रजा की ही है।

अपनी अपनी जीविका के लिए आवश्यक धन कमाने का अधिकार सभी को दिया गया है। लेकिन वह कदापि धन को इकट्ठा कर रखने से मनाकिया गया है। धनोपार्जन करने से दूसरों के लिए असुविधा उत्पन्न होती है। धीरे धीरे उसकी आवश्यकता की पूर्ति न होने के कारण गरीब तथा भिखारी बनते हैं। अत: सबको अपनी अपनी जीविका के लिए खूब कमाना चाहिए और उसी की रक्षा करनी चाहिए।

शिक्षा देने से देश की दुखी तथा गरीब जनता की दशा कुछ कुछ सुधरती है। देश में ऐसे लोग बहुत मिलते हैं जिन्हें काम करने या पैसा कमाने तक की योग्यता नहीं रहती। वे अत्यंत दुबला-पतला और रोगग्रस्त होते हैं। ऐसे लोगों की सहायता काम और अन्न के रूप में ही की जा सकती है। जो काम करने के लिए तैयार होता है, उसे किसी न किसी काम पर नौकरी देना, और उनके लिए भी अयोग्य लोगों को अन्न का दान देना।

गांधीजी ने समाजवाद को ही सर्वोदय बताया है। उनके समाजवाद का प्रधान उद्देश्य सर्वोदय ही है। उनका समाजवाद शुद्ध जनवाद है। उनका समाजवाद देश में फैले आडंबरपूर्ण साम्राज्यवाद का विरोध करने वाला है। सर्वोदय मानवता के विकास का मूल मन्त्र है। सर्वोदय के द्वारा मनुष्य का उद्धार होना चाहिए। सर्वोदय

१: आर्थिक समानता अहिंसक स्वतन्त्रता की मुख्य कुंजी है - गान्धीजी की सूक्तियाँ-पृ०१०८

द्वारा मानवतावाद की प्रतिष्ठा हो सकती है । गांधीजी ने इसकी प्रतिष्ठा सर्वोदय द्वारा ही की थी ।

सर्वोदय में समस्त जनता की भलाई की कामना होती है । जिसमें सर्वोदय की भावना रहती है । वह अहिंसक ही हो सकता है । वह जनता की उन्नति और भलाई के लिए कुछ प्रयत्न करता है । समस्त जनता की भलाई से ही सर्वोदय संभव है । अत: प्रत्येक व्यक्ति की भलाई पर ध्यान दिया जाता है ।[1]

जिस देश में सर्वोदय दिखाई पड़ती है, वह देश सुसमृद्ध माना जाता है । सर्वोदयी देश में सारी जनता सच्ची सुखी एवं संपन्न रहती है । असंख्य ऐसी जनता के पालन- पोषण में वह देश सुसमर्थ तथा सुयोग्य होता है । एक देश के सभी निवासियों में सब की उन्नति की भावना उत्पन्न होनी चाहिए । तभी वह देश सर्वोदय की ओर अग्रसर हो सकता है ।

देश की सभी वस्तुओं को भोगने का जनता, राजा, अमीर, गरीब सबको अधिकार देना चाहिए । उसका उपभोग केवल राजा या धनी मात्र करना अनुचित माना गया है । वह तो देश की वस्तु ही है । अत: उसको भोगने का अधिकार जनता को होता है ।

गांधीजी ने ग्रामों में ऐसी आर्थिक स्थिति को पैदा किया है ताकि कोई भी व्यक्ति पैसे का शोषण या चोरी न करे । इन्होंने सबको धन को भोगने का अधिकार तो दिया ही है । अत: वहां धन का शोषण तथा दूषण नहीं होता । सब लोग अपने - अपने पैसे से संतुष्ट होते हैं । सब अपनी - अपनी संपत्ति की रक्षा करते हैं । इस प्रकार से सुखी जीवन बिताते हैं । ऐसी परिस्थिति में चोरी कहां हो सकती है और दूषण कहां हो सकता है ।

देश की जनता में इस कारण से भी भेद- भाव रहता है कि कुछ लोग बड़े - बड़े चमचमाते महलों में रहते हैं और कुछ गंदी गंदी झोंपड़ियों में रहते हैं ।

- -

१: अहिंसा का पुजारी अधिक से अधिक लोगों की अधिक से अधिक भलाई के उपयोगितावादी सूत्र को स्वीकार नहीं कर सकता । वह सब की अधिक से अधिक भलाई का प्रयत्न करेगा, और इस आदर्श की सिद्धि के प्रयत्न में प्राण भी दे देगा ।
- गांधी - विचार - रत्न - पृ० २५६

अगर जनता में एकता प्राप्त करनी है तो सबको यातो महलों में रहने नहीं तो झोंपड़ियों में रहते हैं। अगर जनता में) रहने की सुविधा प्रदान करनी चाहिए। इससे जनता के बीच के भेद- भाव मिट सकता है।

जो व्यक्ति अधिक धन कमाता है, वह उसे जनता के कल्याण के हित भी खर्च करने को तैयार होना चाहिए। तभी देश की आर्थिक स्थिति का सुधार हो सकता है। यदि वह उसका अनावश्यक दुरुपयोग करता है, तो उससे उसकी और दूसरों को कोई फायदा नहीं होगी। अगर उसे जनता के उद्धार के लिए प्रयोग करता है तो वह सब के लिए भलाई प्रदान करेगा।

असहयोग :

गांधीजी ने ही असहयोग शब्द का आविष्कार किया है। अंग्रेजी में इसे नान कोआपरेशन ` कहा जाता है। जिससे सहयोग न किया जाता है वही असहयोग है।

गांधीजी और असहयोग :

गांधीजी के सत्याग्रह का एक प्रमुख अंग असहयोग था। उन्होंने इसका प्रयोग राजनीति में अत्यंत चतुरता से किया था। देश के महान नेताओं ने उनके इस असहयोग को बहुत प्रोत्साहन भी किया था। असहयोग का प्रधान उद्देश्य यह बताया गया है कि शत्रु का स्वभाव- परिवर्तन। अर्थात् वह यदि बुरा स्वभाव वाला होता तो उससे व उसका स्वभाव बदलाना।[1] दूसरे शब्दों में कहें तो कोई शत्रु यदि कोई क्रूर कृत्य करता व रहता है तो उससे वह असहयोग ठानने से वह स्वयं अपनी इस प्रवृत्ति पर चिंता करता है और अंत में उसे छोड़ने का प्रयास भी करता है। इसके बाद उससे पुनः सहयोग से व्यवहार करने लगते हैं। यही असहयोग का रहस्य है। भारत की आज़ादी के लिए गांधीजी कितने बार अंग्रेजों से असहयोग के साथ रहे थे। यह कहना

- -

1. Non-cooperation is always undertaken with a view to co-operation after the opponent has been cured of his violence.

The Political Philosophy of Mahatma Gandhi. P.14

मुश्किल है। जो भी हो उनके असहयोगी प्रयत्न हमेशा सफल ही हुए हैं।

असहयोग का यह मार्ग अत्यंत सरल और सच्चा है। साधारण लोग व बाले भी उसका प्रयोग न कर सकते हैं। इसमें एक प्रकार से देखने पर स्वभाव-परिवर्तन ही दिखाई पड़ता है। इस मार्ग में कोई अनिष्ट घटना नहीं हो सकती। सीधा परिवर्तन ही होता है।

गांधीजी की मान्यताएं

असहयोग के बारे में गांधीजी ने इस आग्रह को प्रकट किया है कि शत्रुओं अथवा विरोधियों की निकृष्टता को समझने तथा उसके अनुसार उनसे व्यवहार करने की चतुराई जनता की ही होनी चाहिए।[1] असहयोगी को अपने विरोधी की क्रूरता की गहराई एवं स्वभाव का सच्चा ज्ञान होना चाहिए तभी वह ठीक तरह से असहयोग का व्यवहार कर सकता है। विरोधी को साथी तथा शत्रु को मित्र बनाने के लिए यही सच्चा मार्ग है। विरोधी से असहयोग करने से उसे अपने किये पर सोचने और उसकी गलती को समझने का अवसर मिलता है। अंत में वह उसके सहयोग करने का आग्रह प्रकट करता है जो उससे असहयोग कर चुका है। इस प्रकार होने पर वह अपने विरोधी या शत्रुता को भूल जाता है और मित्रता स्थापित कर लेता है।

असहयोग को साधारण जीवन में भी लगा सकते हैं। यह तो एक सार्वभौमिक औषध माना गया है।[2] जीवन की सारी समस्याओं का समाधान असहयोग के द्वारा संभव है। इसमें हिंसा और हत्या का कोई स्थान नहीं है। गांधीजी ने असहयोग की सहायता से बड़ी से बड़ी समस्याओं को भी सुलझाया है। किसी को हानि न पहुंचाये बिना अथवा कार्य सिद्ध किया जाता है। यही इसकी बड़ी विशेषता भी है।

---

1. Behind my co-operation, there is always the keenest desire with the worst of opponents. The Political philosophy of Mahatma Gandhi. P. 144
2. Non-cooperation is a universal remedy applicable to problems of everyday life. Ibid. P. 144

गांधीजी ने बतलाया है कि असहयोग का व्यवहार नहीं हो सकता है जहां सहयोग के समस्त विचार- वैभिन्य के कारण द्वेष - पक्ष का उद्भव होता है। व्यक्तियों के विचार कदापि एक नहीं हो सकते हैं। एक व्यक्ति का विचार एक प्रकार का है तो दूसरे का दूसरे प्रकार का और तीसरे का और एक प्रकार का ही होता है। अत: व्यक्तियों में विचारों की विभिन्नता के होने के कारण लोग दो पक्षों में विभक्त होते हैं। इनमें धीरे धीरे विरोध और शत्रुता पैदा होती है। ऐसी स्थिति में असहयोग का व्यवहार बड़ा लाभदायक होता है क्योंकि उससे विपक्षि का स्वभाव- परिवर्तन किया जाता है। अत: असहयोग की सफलता विपक्षियों के अस्तित्व से ही होती है।

असहयोग में त्याग भी स्वीकार्य है। यदि कोई उससे असहयोग करने पर भी अपनी निकृष्टता को बढ़ाता जाता है और वह सहयोग करने की इच्छा न रखता है तो, उसे त्याग देना ही श्रेयस्कर है। गांधीजी ने बताया है कि सत्याग्रह में इसी की गुंजाइश है।[१] हठ बुद्धि अनर्थ करने वाला व्यक्ति, चाहे वह कुटुंबी हो या मित्र हो या कोई हो सदैव त्याज्य है।

असहयोग जब उसकी चरम- सीमा तक पहुंचता है तब वह सत्याग्रह कहलाता है।[२] गांधीजी ने सत्याग्रह और असहयोग में बड़ा साम्य प्रस्तुत किया है। जो काम असहयोग से प्राप्त नहीं होता, वह सत्याग्रह से सिद्ध किया जाता है। ऐसी स्थिति में असहयोग बहुत उपयोगी सिद्ध होता है विरोधी या शत्रु अपने सहयोगका दुरुपयोग करता दिखाई पड़ता है। असहयोग से ही सहयोग का दुरुपयोग दूर हो जाता है। किसी भी वस्तु का दुरुपयोग निर्दोष व्यक्तियों को कष्ट प्रदान करता है। अत: उसे दूर करना ही उचित है। दुरुपयोग को जगह सदुपयोग की रक्षा है और सांत्वना भी। दुरुपयोग करने वालों का नाश हो ही सकता है। गांधीजी ने अपने असहयोग से सहयोग के दुरुपयोग को जीत लिया है।

- -

१: जहां असहयोगी की मदद के बिना दूसरे का काम चल सकने की स्थिति हो, वहां असहयोग का अर्थ दूसरे पक्ष का त्याग अथवा अपनी शुद्धि ही होगा।

- गांधीजी - विचार- दोहन - पृ० ६१

२: वही० पृ० ६१

असहयोग के लक्ष्य पर गांधीजी ने ऐसा समर्थन किया है कि विपक्षी को, यह समझाना चाहिए कि स्वपक्ष की मदद के बिना विपक्षी कुछ न कर सकता।[१] गांधीजी ने विपक्षी के तंत्र को समाप्त कर सकने तक असहयोग को बढ़ाना चाहा है। जब तक उसका स्वभाव दूर होगा तब तक उससे असहयोग बनाये रखना आवश्यक है। यह असहयोग सत्य और अहिंसा के द्वारा हो हो सकता है। असहयोगी रहकर सत्य और अहिंसा की दिव्य शक्ति का दुग्दर्शन कराते हुए विपक्षी का स्वभाव- परिवर्तन करना चाहिए। तभी वह सत्य और अहिंसा के बारे में कुछ जान सकता है।

असहयोग के बारे में समझ लेने के बाद यह बात स्पष्ट हो जाती है कि असहयोग नामक यह प्रवृत्ति हमारे नित जीवन में साधारणतः होने वाली है। लेकिन उसका कोई नाम न रखा था। इस प्रवृत्ति का सूक्ष्म ज्ञान प्रदान कराने के लिए गांधीजी ने `असहयोग' नाम दिया है। देश की राजनीतिक दृष्टि से इसका बड़ा महत्व रहा है।

सविनय अवज्ञा :

गांधीजी ने ही इसका आविष्कार किया है। अंग्रेजी में इसे `सिविल डिस ओबीडिएन्स' कहा जाता है।[२] इसके मूल में यह भावना है कि अहिंसात्मक रूप से

- -

१: असहयोग का लक्ष्य यह है कि विरोधी को इसबात का अनुभवकराया जाय कि सत्याग्रही सत्य की मदद के बिना वह अपना तंत्र चला ही नहीं सकता। इसलिए सत्य, अहिंसा आदि साधनों द्वारा उस तंत्र अथवा संगठन को ठप्प करने तक असहयोग का विस्तार किया जा सकता है। - गांधी-विचार- दोहन-पृ ४४

२: Civil means strictly non-violent. Dis-obedience to be civil must be sincere, restful, restrained, never defiant, must be based upon some well understood principle, must not b e capricious and above all, must have no ill-will or hatr ed behind it. ' - The Political Philosophy of M.Gandhi.P.239

विरोधियों के विरोध या घृणा को दूर करना ।

गांधीजी और सविनय अवज्ञा :

गांधीजी ने इसका प्रयोग भारत की राजनीति में किया था । भारत की जनता के लिए यह एक नवीन साधन ही रहा है । जिस प्रकार असहयोग के मूल में स्वभाव- परिवर्तन का सिद्धान्त रहता है वही सिद्धान्त इसके मूल में भी है । क्योंकि सविनय अवज्ञा को गांधीजी के अनुसार असहयोग आन्दोलन का प्रबल रूप है अर्थात् असहयोग जब उसकी चरम अवस्था में पहुंचता है, तब वह सविनय अवज्ञा कहलाता है ।[1] सविनय अवज्ञा के द्वारा गांधीजी ने शत्रुओं और विरोधियों का सामना करते हुए और उनका स्वभाव- परिवर्तन करते हुए सफलता पायी है ।

गांधीजी की मान्यताएं :

गांधीजी ने सविनय अवज्ञा की विशेषताओं को बताते हुए, उसका समर्थन किया है । सविनय तो बड़ी तेकि और प्रबल है और बड़ी बड़ी भयानक स्थिति का सामना भी इससे कर सकते हैं । गांधीजी ने बताया है कि देश की अनैतिक कानूनों की सविनय अवज्ञा करना मानो सत्य और नीतियुक्त कानून का पालन करना होगा ।[2] अनैतिक कानून की घोषणा और पालन पाप है । ऐसी कानून का पालन करना देश की अवनति का कारण होगा । अतः नीति और न्याय के साथ जिन कानूनों को रखा जाता उन्हीं का पालन करना ही उचित है । इसलिए ही गांधीजी ने सविनय अवज्ञा के सिद्धान्त का समर्थन किया है ।

- -

1. Civil dis-obedience is really a synthesis of civility and dis-obedience in non-violence and resistence. Dis obedienc e to immoral laws of the state really obedience to a higher moral law, the law of truth and justice.

The Political Philosophy of Mahatma Gandhi, P.298

2. Civil dis-obedience is the logical conclusion the last stage the most drastic form of non-cooperation. Gandhiji calls it a complete, effective and bloodless substitute of armed revolt.

Ibid. P. 298

इस प्रकार गांधीजी ने सविनय अवज्ञा का पालन आवश्यकताओं की उचितता के साथ करने का आदेश दिया है। इसके पालने में सबसे पहले उस कानून को ठीकतरह से समझ लेना चाहिए, जिसकी घोषणा की जाती है। इसके बाद ही यह निश्चय कर लेना चाहिए कि उसकी अवज्ञा करें या स्वीकार करें। कानून बनाने वाला क्यों उसकी अवज्ञा करने का आदेश सकारण देता है। इस समय उस कारण के औचित्य पर विचार करने के बाद उसकी अवज्ञा करने की शपथ लेनी चाहिए। गांधीजी ने अपने इस सिद्धान्त के व्यवहार से जीवन में बहुत कुछ पाया है।

ऊपर प्रतिपादित गांधीवादी मुख्य सिद्धान्तों के अलावा गांधीजीने प्रसंगानुसार कुछ अन्य सिद्धान्तों पर भी अपने विचार प्रकट कियेहैं जिनका जिक्र करना भी यहां आवश्यक तथा उचित मानती हूं।

उपवास गांधीजी के जीवन का एक प्रमुख अंग रहा है। उन्होंने अपने व्यक्तिगत तथा राजनीतिकजीवन में इसका अनुष्ठान किया है। गांधीजी ने संयम का मार्ग अपनाते हुए जब फलाहार का प्रयोग शुरू किया तभी से उपवास ने भी उनके नित्य जीवन में स्थान पा लिया।[1] उन्होंने अपने जीवन के तीन क्षेत्रों में उपवास का प्रयोग किया था - १: आरोग्य साधना के लिए नैसर्गिक उपचार के एक अंग के तौर पर, २- आत्मशुद्धि के लिए चिंतन की मदद में और ३- सत्याग्रह के तौर पर।[2] जो व्यक्ति बुरे रास्ते पर चलता है या कोई अन्याय करता है, तो उसे ठीक रास्ते पर लाने के लिए आत्म- शक्ति आवश्यक है जिसे बढ़ाने के लिए ही गांधीजी ने उपवास का अनुष्ठान किया था। गांधीजी उपवास के दिनों में बस्ती (एनिमा) लिया करते थे। उनका कहना है कि उपवास के दिनों में आहार न लेने पर भी शरीर के अंदर अन्नादि के अवशेष से शरीर पोषण प्राप्त करने का प्रयास करता है जिससे बड़ा दोष होता है जिससे बस्ती की आवश्यकता बहुत है।[3]

गांधीजी उपवास के दिनों में तेल से शरीर की मालिश करते थे और खूब पानी पीते थे। पानी में जरा सा नमक डालकर लेते थे जो शुद्धि का तत्व माना

- -

१: आत्मकथा - पृ० २८३ २: गांधीजी का जीवन- दर्शन - पृ० १८६

३: वही० पृ० १८६

जाता था। शरीर पर तेल की मालिश से स्वास्थ्य लाभ का समर्थन किया गया है।

गांधीजी ने जितने उपवास किये थे, वे सब सार्वजनिक उपवास रहे। जनता की प्रतिकार बुद्धि को अहिंसा की मर्यादा में लाने के लिए भी उन्होंने उपवास किये थे। उनका कथन यह था कि जनता की हिंसात्मक भावना को मिटाने के लिए उपवास तथा प्रार्थना ही सच्चा औषध है।[१] उपवास के बारे में गांधीजी ने बताया है कि वह नीचों के कुकृत्य को मिटाने तथा उनकी बुद्धि का परिवर्तन करने का उपाय है। उपवास प्रार्थना की चरम अभिव्यक्ति है।[२]

निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है कि गांधीजी के सिद्धान्त हिन्दू धर्म के ही पुराने तत्व होने पर भी उन्होंने इन तत्वों की अपनी नयी नयी मान्यताओं का समर्थन सप्रमाण करते हुए उनका पुनर्मूल्यांकन किया है। उससे उनका उद्देश्य यह रहा है कि जनता अपने सिद्धान्तों को खूब समझ लें और उनके सफलतापूर्ण राष्ट्रीय व्यवहार की प्रवृत्ति को आगे बढ़ाते जाएं। गांधीजी ने जो तत्व किताबों और सिर्फ बड़े बड़े ग्रंथों के भीतर उल्लिखित पड़े थे उनको जीवन में व्यवहार - योग्य बनाया है। यही उनकी विजय है।

इस अध्याय में जिन तत्वों का अध्ययन हुआ है, उन सभी तत्वों का प्रतिपादन हिन्दी काव्यों और कविताओं में उपलब्ध है।

------0000 -------

- -

१: सामान्य जनता की हिंसा वृत्ति पर अंकुश लगाने के लिए उपवास और प्रार्थना सचमुच अच्छी इलाज है। - गांधीजी का जीवन- दर्शन - पृ० १८८

२ Fasting is also a means of resisting injustice and converting the evil doer . As such it is the highest expression of the prayer of a pure and loving heart. It is an appeal to the wrong doers better nature with the object of evaking the best in him.

The Political Philosophy of Mahatma Gandhi.P. 147

अध्याय : ५

महाकाव्य

अध्याय : ५

महाकाव्य

गांधीवाद से प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से प्रभावित महाकाव्य

देश में ज्यों ज्यों भिन्न भिन्न परिस्थितियां उत्पन्न होती हैं, त्यों त्यों देश की जनता का जीवन भी बदलता रहता है। कवि इनका अनुभव अपने जीवन में करता है, बाह्य रूप से इनको व्याप्त देखता है, तब उस पर इनका प्रभाव पड़ता है और वह उसी प्रकार के काव्य की रचना करता है। डा० शम्भुनाथ सिंह ने प्रारंभिक महाकाव्य के बारे में बताते वक्त इसी तथ्य की ओर संकेत किया है - 'इस युग की परिवर्तित सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक परिस्थितियों के कारण ही महाकाव्यों का उद्भव और विकास हुआ।'[१]

महाकाव्य की परंपरा :

प्राचीन काल से ही महाकाव्य की रचना होती आयी है। उस युग में इसके लिए काफी सामग्री उपलब्ध थी।

महाकाव्य का विकास :

आरंभ में छोटे छोटे आख्यानों और गाथाओं का निर्माण भी होता था इन्हीं ने बाद में महाकाव्य का रूप धारण किया।

जब वीरयुग का उदय हुआ तब से जनता की शारीरिक शक्ति इतनी बढ़ गयी कि वह समाज की पुरानी रीति- रिवाजों और आचार -विचारों का खण्डन करने

१: हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास - पृ० १७

लगी। अपने समाज और जीवन की रक्षा की भावना उसमें जगी और अपने लिए स्वतंत्र अस्तित्व की आवश्यकता का विचार उत्पन्न हुआ। इस युग में वैयक्तिक वीरता को प्रमुखता दी जाती थी। अतः पुरातन विचारों एवं विश्वासों की जगह नये विचारों एवं विश्वासों की प्रतिष्ठा हुई। युग के वीर अपनी अपनी वीरता का परिचय देते हुए प्रसिद्धि प्राप्त करते थे। बाद में इन वीरों को महाकाव्य का नायक बनाया जाता था। इसमें धीरे धीरे दांपत्य प्रेम और गार्हस्थ जीवन का चित्रण भी होने लगा। रामायण इसका उदाहरण है।

महाकाव्य की सामग्री :

महाकाव्य की रचना के लिए जीवन और घटना की आवश्यकता पड़ती है। किसी आदर्शपूर्ण जीवन की नींव पर ही महाकाव्य का भवन - निर्माण हो सकता है। अतः महाकाव्य की रचना के लिए किसी आदर्शवान व्यक्ति का जीवन ही उपयुक्त होता है। इसके निर्माण के लिए कवि पुराणों, निबंधरी कथाओं, इतिहासों, सामयिक घटनाओं, शास्त्रों एवं लोक- तत्वों से सामग्री जमा लेते हैं। इस संदर्भ में महाकाव्य की सफलता के बारे में डा० शम्भुनाथ सिंह का यह कथन स्मरणीय है : 'महाकाव्य की जीवनी- शक्ति इस बात पर निर्भर करती है कि वह समाज को कितनी शक्ति, कितना साहस और जीवन की कितनी उमंग तथा आस्था प्रदान करती है। महाकवि जब अपनी सप्राणता को महाकाव्य में जीवन रूप में उतारता है तभी महाकाव्य में वह सशक्त सप्राणता आ पाती है जो युग - युग तक समाज को शक्ति और प्रेरणा प्रदान कर क सकतीहै।'[१]

इस कथन का सक्रिय रूप हम आधुनिक महाकाव्यों में पा सकते हैं। महाकवियों ने विविध कोटियों में आने वाले महाकाव्यों की रचना करके इस बात का पालन किया है। आधुनिक महाकाव्यों में इसका सच्चा रूप मिलता है।

महाकाव्य की परिभाषा :

अब तक महाकाव्य की एक निश्चित परिभाषा नहीं दी जा सकी है।

१: हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास - पृ० १२०

महाकाव्य की परिभाषा निश्चित करना अत्यन्त कठिन कार्य है। विभिन्न युगों में उसका स्वरूप बदलता रहा है। संस्कृत, अंग्रेजी, हिंदी आदि भाषाओं के महान विद्वानों ने महाकाव्य के लिए अपनी अपनी परिभाषाएं दी हैं और इनको मिलाकर सामान्य तथा नूतन परिभाषाएं भी दी गयी हैं जिनमें भी अनिश्चितता प्रकट होती है। जो भी हो, इन परिभाषाओं में से निम्नलिखित परिभाषा मुझे अधिक माननीय जान पड़ती है जो आधुनिक युग के प्रगतिवादी एवं मानवतावादी जीवन की ओर भी संकेतित प्रतीत होती है - " महाकाव्य वह महत् काव्य रूप है, जिसमें व्यापक कथानक, विराट चरित्र-कल्पना, गंभीर अभिव्यंजना शैली, विशिष्ट शिल्प-विधि और मानवतावादी जीवनदृष्टि से उसका रचयिता युग जीवन के उन्नत बोध को सांस्कृतिक पृष्ठभूमि पर प्रतिफलित करता है। संक्षेप में श्रेष्ठ महाकाव्य की रचना मानवता के मंगलमय आख्यान और लोक- मानस की चेतना के आकलन का सांस्कृतिक प्रयास होती है।"[१]

महाकाव्य के लक्षण :-

किसी एक काव्य के महाकाव्यत्व को सिद्ध करने के लिए उसे महाकाव्य के लक्षणों की कसौटी पर कसना होता है। महाकाव्य के अनेक लक्षण होते हैं और इन लक्षणों से पूर्ण एवं इनके आधार पर रचित काव्य को ही महाकाव्य की संज्ञा दी जा सकती है। संस्कृत के अनेक आचार्यों ने महाकाव्य के लक्षण प्रस्तुत किये हैं। पाश्चात्य आलोचकों ने भी महाकाव्य के कुछ लक्षण बताये हैं। लेकिन आचार्य विश्वनाथ के द्वारा निर्धारित लक्षण ही सर्वमान्य और सर्वसम्मत हो गये हैं। इन लक्षणों के आधार पर ही संस्कृत एवं हिन्दी के महाकाव्यों की रचना हुई है।[२]

- -

१: हिन्दी महाकाव्य : सिद्धान्त और मूल्यांकन - देवी प्रसाद गुप्त - पृ० ३०

२: विश्वनाथ ने महाकाव्य के लक्षण यों बताये हैं :-

१) महाकाव्य का नायक सद्वंश जातीय क्षत्रिय या देवता होना चाहिए। वह धीरोदात्त होना चाहिए।

२) शृंगार, शान्त, वीर आदि रसों में से एक रस अंगी हो और शेष रस इसके अंग हों।

३) महाकाव्य के लिए आठ सर्ग होने चाहिए, प्रत्येक सर्ग में एक ही छंद का प्रयोग होना और सर्गांत में छंद - परिवर्तन होना भी आवश्यक है। सर्ग बहुत बड़ा या लंबा न होना चाहिए और छोटा भी। (शेष अगले पृष्ठ में)

आधुनिक हिन्दी महाकाव्य :-

आधुनिक युग में आकर महाकाव्य की शिल्पविधि तो बहुत बदल गयी। वीरगाथाकाल और भक्तिकाल में जैसे वीररस प्रधान और भक्तिरस प्रधान महाकाव्यों का क्रमश: निर्माण हुआ था, आधुनिक युग में वैसे महाकाव्य उपलब्ध नहीं होते। आधुनिक युग का महाकाव्य मानव- चेतना प्रधान है, जिसमें महाकाव्य के क्षेत्र में एक नयी दिशा प्रस्तुत की गयी है। अत: इस युग का महाकाव्य देश की नवीन युग- चेतना से ओतप्रोत है जिसके रूप- गठन में एकदम नवता आयी है।

- -

४- इसकी कथावस्तु ऐतिहासिक होनी चाहिए। बीच में सज्जन - प्रशंसा और खल- निन्दा भी हो।

५- आरंभ में मंगलाचरण, वस्तु- निर्देश, आशीर्वाद - वचन आदि होना चाहिए।

सर्गबन्धो महाकाव्यं तत्रैको नायक: सुर: ।

-- -- -- --

एकार्थ प्रवणै: पद्यै: सन्धिसामग्र्यवर्जितम् ।।

हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास - पृ० ५६ - ५७

विश्वनाथ कविराज - साहित्य दर्पण - षष्ठ परिच्छेद

६- प्रत्येक सर्ग के अंत में अगले सर्ग की कथा की सूचना दी जानी चाहिए।

७- धर्मार्थ काम मोक्षादि फलों से किसी एक फल की प्राप्ति हो।

८- महाकाव्य में सन्ध्या, रजनी, प्रात:, मध्याह्न, मृगया, सूर्य, चन्द्रमा, पर्वत, कानन, नदी, युद्ध, मुनि, स्वर्ग, यात्रा, यज्ञ, विवाह, ऋतु आदि का वर्णन होता है।

- -

आधुनिक महाकाव्य का विकास :

आधुनिक काव्य के विकास की पृष्ठभूमि के संबंध में एक अलग अध्याय के अंतर्गत विस्तृत विवेचन किया गया है। अत: यहाँ उसके संबंध में पुनर्विवेचन की आवश्यकता नहीं जंचती। फिर भी महाकाव्य के विकास के विकास के बारे में

साहित्यिक दृष्टि से कुछ बताना यहाँ उचित मानती हूं।

हिन्दी महाकाव्य के विकास पर प्रकाश डालते हुए डा० शम्भुनाथ सिंह ने कहा है - " हिन्दी महाकाव्य का विकास वस्तुत: अपभ्रंश काव्य की ओर से हुआ है।[१] इससे स्पष्ट होता है कि हिन्दी महाकाव्य की रचना का प्रारंभ वीरगाथा-काल से हुआ है। अत: इस काल से लेकर आधुनिक काल क तक के महाकाव्य के विकास की दिशाओं को देखना - परखना आवश्यक है।

वीरगाथाकाल :

इसी युग में हिन्दी में महाकाव्य की रचना का श्रीगणेश हुआ। इस युग के कवि दरबारी जीवन बिताते थे और अपने आश्रयदाताओं एवं महान राजाओं की वीरता तथा पराक्रम को अपना काव्य- विषय बनाकर महाकाव्य रचते थे। ये कवि "जिसका खाना उसका गाना" के अनुसार काव्य- रचना में संलग्न थे। हिन्दी का प्रथम काव्य चन्द बरदाई द्वारा रचित पृथ्वीराज रासो है जो इस युग की देन है।

भक्तिकाल :

भक्तिकाल में भक्ति की दो धाराएं बही थीं - सगुण भक्ति और निर्गुण भक्ति की। इनकी भी दो-दो शाखाएं वर्तमान थीं - १) रामभक्ति शाखा और कृष्णभक्ति शाखा। २) प्रेममार्गी शाखा और ज्ञानाश्रयी शाखा। इस युग के महाकाव्यों में भक्ति और प्रेम की प्रधानता थी और ये सब भक्ति, प्रेम एवं ध्यान से ओतप्रोत थे। तुलसीदास का रामचरितमानस, सूरदास का "सूर सागर", जायसी का "पद्मावत" आदि इस युग में निर्मित महाकाव्य हैं।

रीतिकाल :

इस युग में जिन महाकाव्यों का निर्माण हुआ उनमें प्रमुख हैं आचार्य केशवदास कृत "रामचन्द्रिका"। यह आद्यन्त अलंकार प्रधान काव्य है। कवि ने इसमें अलंकारों और पाण्डित्य-प्रदर्शन को प्रमुखता दी है। इस युग तक आते आते महाकाव्य का क्षेत्र कुछ संकुचित - सा पड़ गया। आगे इसका विस्तृत विकास हमें आधुनिक युग में दृष्टव्य होता है।

१: हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास - पृ० १६७

आधुनिक युग के महाकाव्य का प्रेरणा- स्रोत :

हमने देखा कि वीरगाथा काल में वीररस प्रधान, भक्तिकाल में भक्ति, प्रेम आदि से पूर्ण, रीतिकाल में अलंकारप्रधान महाकाव्यों की रचना हुई थी। लेकिन आधुनिक युग तक आते ही महाकाव्य के स्वरूप में परिवर्तन दिखाई पड़ने लगा। महाकाव्य के ही नहीं, समस्त काव्य के क्षेत्रों में वस्तु, भावना, भाषा और शिल्प आदि सभी में परिवर्तन दीख पड़ा। इस परिवर्तन का प्रधान कारण यह है कि देश की अन्य परिस्थितियों में विद्रोह एवं क्रांति जो फूट पड़े, उनकों का प्रभाव साहित्य पर भी पड़ा। देश में आत्मिक, नैतिक एवं सांस्कृतिक बल का पतन हो रहा था। इस प्रकार की संकीर्ण मनोवृत्ति के विरुद्ध आवाज उठाना आधुनिक युग की जनता चाहती थी। इसके लिए जनता विद्रोही और विप्लवकारी बन उठी। इन कारणों से साहित्य का दृष्टिकोण भी बदल गया जिससे महाकाव्य का रूप- परिवर्तन भी संभाव्य था।

आधुनिक महाकाव्य :

आधुनिक महाकाव्य का विकास चार सोपानों से हुआ है। वे हैं - भारतेन्दु काल, द्विवेदी काल, छायावादी काल और प्रगतिवादी काल। भारतेन्दु काल में महाकाव्य की रचना असंभव थी क्योंकि यह युग मुक्तक काव्यों का था। द्विवेदी युग आधुनिक महाकाव्यों की रचना के लिए प्रतिभाशाली युग था। इस युग में अनेक महाकाव्यों का निर्माण हुआ जो आधुनिक युग की नव-चेतना से संपूर्ण हैं। ऐसे महाकाव्यों का सृजन छायावादी कवियों द्वारा भी हो सका है। इसके बाद आधुनिक महाकाव्य का धारावाहिक विकास प्रगतिवादी युग में देख सकते हैं। इस युग के महाकाव्यों में राष्ट्रीय चेतना और मानवतावादी विचारधारा को व्यापक रूप से अपनाया गया है।

कथानक सामग्री :

आधुनिक महाकाव्य की कथावस्तु के विषय-ग्रहण में भी परिवर्तन आ गया है। कवि इसमें स्वछन्द नवीनता लाये हैं। अनेक महाकाव्यों की कथावस्तु का आधार संस्कृत- ग्रंथ हैं। इस युग के कवियों ने अधिकांश रूप से रामायण, महाभारत, पुराण, इतिहास, भागवत आदि से अपने काव्य- विषय के लिए सामग्री बटोरी की है।

यद्यपि इन महाकाव्यों के लिए संस्कृत ग्रंथों से विषय चुने गये हैं फिर भी महाकवियों के राष्ट्रीय एवं मानवतावादी दृष्टिकोण के कारण ये महाकाव्य युग- चेतनामय हैं। इसके अतिरिक्त सामाजिक - सामयिक और धार्मिक घटनाओं को लेकर भी महाकाव्यों की रचना की गयी है। बड़े बड़े महान युग- पुरुषों की जीवनी और व्यक्तित्व भी महाकाव्य के विषय बन चुके हैं।

भारतेन्दु युग से लेकर हिन्दी साहित्य में राष्ट्रीय चेतना जाग उठी। उन्नीसवीं शताब्दी के आरंभ होते ही यह चेतना तीव्र हो उठी। भारत में अंग्रेजी शासन से उद्भूत विविध परिस्थितियों की ओर साहित्यकारों का ध्यान गया और उन्होंने इन पर अपनी काव्य- रचना आरंभ की। इसके बाद गांधीजी का आगमन हुआ और उन्होंने देश की दशा सुधारने के नाते अपने अहिंसात्मक - कार्यक्रम का प्रारंभ किया। उससे भारत की सारी जनता प्रभावित हुई और गांधीजी सब के लिए प्रिय भी बने। उनके अहिंसात्मक आन्दोलन से भारत स्वतंत्र हुआ और गांधीजी ने इस कारण से भारत के इतिहास में भी प्रमुख स्थान पाया।

हिन्दी के साहित्यकारों को भी गांधीजी ने अत्यंत प्रभावित किया और उन्होंने उन पर अनेक छोटी छोटी कविताएं लिखना शुरू किया। आगे उन्होंने महाकाव्य तक लिखे। यही गांधीवादी महाकाव्यों की संक्षिप्त भूमिका है।

हिन्दी में गांधीवादी महाकाव्य के क्षेत्र में गांधीवाद से प्रभावित कोई स्वतंत्र रचना अब तक नहीं हुई है ; महात्मा गांधीजी के जीवन पर रचित केवल दो महाकाव्य ही उपलब्ध हैं। शेष गांधीवादी महाकाव्य जो अब प्राप्त हैं, वे सब पौराणिक या ऐतिहासिक कथा पर आधारित काव्य-कृतियां हैं। जिस प्रकार खण्डकाव्य के नाम से मुक्ति यज्ञ, ' स्वतंत्रता की बलिवेदी ' आदि रचनाएं मिलती हैं, वैसी रचनाएं महाकाव्य के रूप में प्रायः अनुपलब्ध हैं। महाकाव्यों में भी खण्डकाव्य की भांति गांधीवाद का परोक्ष एवं प्रत्यक्ष प्रतिपादन हुआ है। प्रत्यक्ष रूप में गांधीवाद का प्रतिपादन जन-नायक और जगदालोक में ही हुआ है जो गांधीजी के जीवन और व्यक्तित्व पर आधृत हैं।

जननायक :

भारत के राष्ट्रपिता, जनता के युगद्रष्टा एवं अहिंसा के पैगंबर महात्मा गांधीजी पर रचित बृहत्काय महाकाव्य है जननायक '। इसके रचयिता श्री रघुवीर

चरण मिश्र हैं जिन्होंने गांधीजी के जीवन की संपूर्ण घटनाओं को विषय बनाकर इस काव्य की रचना का प्रयास किया है। यद्यपि गांधीजी का जीवन बड़ी ताजगी से युक्त था, फिर भी उसमें विभिन्न प्रकार की विषमताओं से जनित उलझनें दिखाई पड़ती थीं। फिर भी कवि ने वैविध्यपूर्ण प्रश्न - विशेषों से भरे इस जीवन को अपना काव्य-विषय चुनकर, गांधीजी के प्रति अपनी श्रद्धा प्रकट करते हुए, अत्यंत महत्वपूर्ण कार्य किया है। उनके जीवन को आधार बनाकर काव्य- रचना करना आसान नहीं है क्योंकि वह जीवन एक मामूली मानव का जीवन न होकर एकदम तपोमय था जिसमें अनेकानेक कठिन परिस्थितियों से उत्पन्न जटिल समस्याओं की अकथित क्रीडाएं निरंतर होती रहती थीं। फिर भी कोई भी कवि इनके जीवन से दूर नहीं रह सका। गांधीजी और उनके जीवन ने कविगणों को इतना प्रभावित किया कि उन पर काव्य रचे बिना रहना उनके लिए असंभव- सा प्रतीत होने लगा।

प्रस्तुत काव्य की रचना ३१ सर्गों में हुई है। महाकाव्य के काव्य-शास्त्रीय लक्षणों का सम्यक् पालन करते हुए कवि ने इसका सृजन किया है। महात्मा गांधीजी के पावन जीवन के पल- पल के सूक्ष्मातिसूक्ष्म प्रसंगों का विवेचन इसमें हुआ है जिससे यह ३०७ पृष्ठों का विशाल काय काव्य बना है।

प्रथम सर्ग :

इस सर्ग में कवि ने काव्यारंभ के पूर्व का मंगलाचरण रखते हुए परंपरा का पालन किया है। इस ' मंगल ज्योति ' में उन्होंने गांधीजी का ही स्तवन किया है। स्तुतिगीत के अंत में शिवजी, गणेशजी, सरस्वती आदि देवताओं की वन्दना भी की गयी है। इसके बाद भारतमाता की रक्षा एवं उसे पराधीनता से मुक्ति दिलाने के लिए एक योग्य पुरुष की कामना की है। आगे भारत की शोचनीय एवं भीषण परिस्थितियों का बहुत ही मार्मिक ढंग से चित्रण किया है। ऐसी हालत में ही पूज्य गांधीजी का जन्म हुआ और भारत की यह अवस्था उनके जन्म की पृष्ठभूमि बनकर आयी है। रामभक्ता पुतलीदेवी का ही वरफल ही था गांधीजी और उनके जन्म को दिव्य माना गया है।[1]

१: अच्छे कर्म किये ' पुतली ' ने, राम-नाम से ध्यान लगाया।
घर में करमचन्द की पाकर, दुनिया भर में दीप जलाया।। - अनासक्त,प्रथम सर्ग, पृ० ३२

उनके जन्म से देश भर में उत्सव मनाया गया जिसमें प्रकृति और जनता एकसाथ मिली थी। वह अपने माता - पिता को तरह तरह के खेल खेलकर दिखाता था। माता- पिता ने उन्हें बड़े वात्सल्य के साथ खिलाया , पिलाया और सुलाया था और इसका सुन्दर वर्णन किया है। आगे गांधीजी की शिक्षा, विवाह, फिर ससुराल गमन आदि का चित्रण किया गया है। यों जन्म से विवाह तक की घटनाओं का शृंखलाबद्ध वर्णन किया गया। बाल गांधी की बालोचित लीलाओं का मनोहारी चित्र कवि ने उपस्थित किया है।

द्वितीय सर्ग :

इस काव्य का दूसरा सर्ग है क्रीड़ा सर्ग। इसमें गांधीजी और कस्तूरी बाई के दांपत्य जीवन का चित्रण हुआ है। उसके बाद गांधीजी के पवित्र मानस को बुराई ने आकर घेर लिया और इसी को प्रतिपादित किया गया है। उनके मन में यह विचार आया कि ` अप्रिय यदि होता न जग में, कैसे प्रिय गुणवान कहाता `। दूषित मित्रों के संग में पड़ कर वे मांस खाने लगे, चोरी करने लगे और सिगरेट पीने लगे। धीरे धीरे इन बुरी आदतों ने उनके मन में एक प्रकार की अस्वस्थता पैदा कर दी और उनका मन सब कह देने के लिए तड़प उठा। अंत में उन्होंने अपने पिता से माफी मांग ली। इस सर्ग में कवि ने गांधीजी के पिता जी की मृत्यु का अत्यंत मार्मिक चित्रण प्रस्तुत किया है। सर्गान्त में रामनाम की महिमा की प्रशंसा की गयी है। साथ ही राम-पथ पर चलने का उपदेश भी दिया गया है। यहां यह बात स्मरणीय है कि गांधीजी भगवान रामचन्द्रजी के परम भक्त थे और उनके जीवन में आदि से अंत तक भगवान राम की कृपा उनपर अवश्य रही थी।

` राम-नाम वेदों का रस है, जो पीता वह अमिमत पाता।

-- -- --

जिसने रामनाम अपनाया, वह नर मुंहमांगा वर पाता।। `[१]

तृतीय सर्ग :

इसमें गांधीजी की विलायत यात्रा का वर्णन किया गया है। उसके लिए जो तैयारियां हुई थीं उन्हीं का भी वर्णन हुआ है। गांधीजी में बैरिस्टर बनने की

- -

१- जननायक - द्वितीय सर्ग - पृ० ४७ , देखिए पृ० ५३-५५

तीव्र इच्छा थी और ऊपरी शिक्षा के लिए विलायत जाना चाहते थे। उनके पिता भी यही चाहते थे कि वे पढ़कर वकील बनें। अन्त में विलायत जाने का निश्चय किया गया। विलायत पहुंचने पर उनके मन में विभिन्न समस्याओं ने उलझन पैदा किया और जब उनका सुलझन हो सकता था तब वे ईश्वर की ही कृपा समझते थे। -

क्षण - क्षण नयी समस्या आकर, मोहन को उलझा देती थी।
पर ईश्वर की अमर प्रेरणा, प्रश्न सभी सुलझा देती थी।। [1]

विलायत में उन्हें बहुत कष्ट सहने पड़ते थे। उनको किसी ने मांस खिलाने का प्रयास किया था, वहां की रीति- रिवाजों के अनुसार चलने,बोलने और करने का अनुरोध किया था। मगर गांधीजी सब का सामना करते हुए अपना कार्य करते थे। उचित एवं स्वादिष्ट भोजन न मिलने के कारण वे कभी निराहार रहते थे। यह उनके लिए बड़ी तपस्या ही थी।

<u>चतुर्थ सर्ग</u> :

इस सर्ग में भी कवि ने गांधीजी के विलायती अनुभवों का चित्रण किया है। गांधीजी बैरिस्टर बन गये। फिर भी उनके मन में एक प्रकार की अशांति फैली थी। उन्होंने बैरिस्टर के लिए कानून की जितनी पुस्तकें पढ़ीं, उनमें वे अपने देश के धर्म, न्यायादि के बारे में कोई ज्ञान प्राप्त नहीं कर सके। अपने देश के कानून को समझने के लिए फ्रेडरिक पिंकट ने उनकी मदद की। इसके बाद वे भारत लौट आये। उनके मन में अपनी स्नेहमयी माता और प्रेममयी पत्नी से मिलने का अतीव आग्रह था। मगर गांधीजी के भारत पहुंचने के पहले ही उनकी पूज्य माता की मृत्यु हो चुकी थी।

<u>पंचम सर्ग</u> :

दुनिया की नीति पर विचार किया गया है। दुनिया की अनीति को देखकर गांधीजी के नेत्रों में आंसू आ जाते हैं। राणा साहब, और गांधीजी के बीच में जो बातें हुईं और उनके बीच में गांधीजी को जैसा अनुभव हुआ, उन्हीं का चित्रण किया गया है। दुनिया में अनीति और अत्याचार की स्थिरता पर वे आंसू बहाते थे। कभी कभी इस पर सोचने पर हंसी भी आ जाती थी। मेहता साहब, रेवाशंकर जगजीवन,

- -

१: जननायक - तृतीय सर्ग - पृ० ६१

रामचन्द्र आदि महान नेताओं से गांधीजी की भेंट का वर्णन किया है। तैयब जी, पि० फिरोजशा, ममीबाई आदि व्यक्तियों से मिलने की बात बताई है। राजकोट में गांधीजी ने जाति की झगड़ा पर बताया है -

किन्तु जाति का झगड़ा अब भी - उनके सर पर चढ़ा हुआ था।
-- -- -- ।
फिर भैया ने राजकोट में - कुल जाति को भोज खिलाया ।।[1]

गांधीजी के बंबई आने और वहां नया घर बसाने का उल्लेख भी इस सर्ग में हुआ है।

षष्ठ सर्ग :

गांधीजी के अफ्रीका - गमन की तैयारियों का वर्णन किया गया है। अफ्रीका पहुंचने के पहले वे लामु, मुम्बासा, जंजीबार, नेटाल, डरबन आदि स्थलों पर उतरे। अफ्रीका जानेकी भलाई पर सेठ अब्दुल करीम ने गान्धीजी को उपदेश दिया और उन्हीं के कहने पर उन्होंने अफ्रीका जाने का निश्चय किया। यात्रा के बीच में प्रत्येक जगह पर उनका केवल मानव ही नहीं वहां की प्रकृति ने भी स्वागत किया था। वहां की प्राकृतिक सुषमा पर वे मुग्ध हो उठे। फिर भी भारत देश ही उनके लिए सब कुछ था और प्रिय भी। अत: उन्होंने यह बताते हुए अपना देश प्रेम व्यक्त किया है-

चाहे मर जाऊंगा लेकिन - पगड़ी नहीं उतरवाऊंगा।
अगर उतार धरी पगड़ी तो - मां को क्या मुंह दिखलाऊंगा ।।[2]

अफ्रीका में मेजिस्ट्रेट ने जब गांधीजी से अपने सिर धरी पगड़ी उतारने को कहा तब यही उन्होंने बताया। नेटाल में गांधीजी ने सेठ अब्दुल से इस्लाम धर्म का अध्ययन किया। आगे संसार के बारे में बताया गया है। यहां गांधीजी को 'भारत मां का भाग्य सितारा' कहा गया है।

सप्तम सर्ग :

इसमें बेकर साहब, कोट्स और गांधीजी के बीच के संवादों का वर्णन

- -

१: जननायक - पंचम सर्ग - पृ० ८३
२: वहीं० षष्ठ सर्ग - पृ० ६६

किया गया है । गोरों की ओर से ' फ्रंचाइज कानून ' और उसका विरोध करने का अनुरोध गान्धीजी ने किया है । भारतीय जनता पर अंग्रेजों ने जो अत्याचार किये थे उनके प्रति गांधीजी ने आवाज उठाई और उनकी रक्षा उन्होंने यों की -

' जन जन में चेतना जगाई, जीवन में ज्वाला दहका दी ।

-- -- --

अन्तारतम के अन्धकार में - महापुरुष ने ज्योति जलाई ।। '[1]

इसके विरुद्ध गान्धीजी ने आन्दोलन करने का निश्चय किया जिसमें सारी जनता ने भाग लेने का शपथ लिया -

' -- जो आज्ञा हों वही करें हम ।

हम सब तन मन धन से प्रस्तुत, कहो , कलेजा चीर धरें हम ।। '[2]

गान्धीजी ने अपना सत्याग्रह आन्दोलन शुरु किया जिसका वर्णन इस सर्ग में हुआ है ।[3] यही आन्दोलन बाद में ' दक्षिण अफ्रीका का आन्दोलन ' नाम से प्रसिद्ध हुआ । आन्दोलन के बाद भारत लौट आने तक का वर्णन इस सर्ग में हुआ है ।

अष्टम सर्ग :

यहां गांधीजी के राजकोट लौट आने के बाद की घटनाओं का चित्रण किया गया है । जनता के साथ प्रकृति ने भी उनका स्वागत करने की तैयारियां की थीं । जनता और प्रकृति ने मिलकर गांधीजी को दीपों की अंजलि चढ़ा दी । अफ्रीकावासी भारतीय जनता की करुणाई कहानी ' हरिपुस्तिका ' नाम से रची गयी जिसकी जनता ने मुक्त कंठ से प्रशंसा की । अफ्रीका में प्लेग का रोग फैला था जिसको दूर करने के लिए गांधीजी ने अथक परिश्रम किया । तैयब जी, गोखले, तिलक, रामकृष्ण, भण्डारकर, बालसुन्दरम, सुब्रह्मण्यम् आदि व्यक्तियों से मिलने और बंबई में कांग्रेसी - सभा बुलाने का वर्णन किया गया है । फिर सपरिवार दर्शन की यात्रा करने, बीच में तुफान आने और भगवान की कृपा से बचने का प्रतिपादन भी किया गया है ।

१: जननायक - सप्तम सर्ग - पृ० १२४
२: वही० - सप्तम सर्ग - पृ० ११७
३: वही० - सप्तम सर्ग - पृ० १२५

नवम सर्ग :

डरबन में गांधीजी पहुंचे। अपने बच्चों को रुस्तमजी के यहां भेज दिया और 'लाटन' के साथ चले। यहां गांधीजी पर गोरों ने पत्थर मारे, कंकड़ मारे, सड़ी - मांस फेंके और उनका कपड़ा फाड़ दिया। बोअर युद्ध का वर्णन भी किया गया है जो अफ्रीका में शुरू हुआ। इसमें घायल व्यक्तियों की शुश्रूषा और मरहम गांधीजी ही करते थे।

दशम सर्ग :

गान्धीजी के भारत लौटने की बात कही गयी है। अफ्रीका से लौटते वक्त गांधीजी को वहां के लोगों ने बहुत गहने और धन भेंट रूप में दिया। मगर गांधीजी और उनकी धर्मपत्नी दोनों को इतने गहनों की आवश्यकता न थी, इतना ही नहीं, उन्हें गहनों के प्रति जरा भी मोह नहीं था। अतः गांधीजी ने इन्हें जनता की उपयोगिता के लिए एक ट्रस्ट बनाकर उसमें जमा दिया। पुनः गांधीजी कलकत्ता आये और गोखले से मिले। यहां वे स्वयं झाड़ू देकर सफाई का काम करते थे। कालीचरण बनर्जी के साथ काली मन्दिर में जाने और वहां बकरी की हत्या करके उसे काली के चरणों में सौंपने की क्रिया देखकर दुःखी होने का वर्णन किया गया है। पुनः गोखले से मिलने गये। उसके बाद वे काशी गये। वहां से डरबन, ट्रांसवाल आदि स्थलों पर गये। गांधीजी ने वहां की जनता को रामनाम का पाठ पढ़ाया।

एकादश सर्ग :

गान्धीजी के भाई का तार उन्हें मिला जिसमें मृत्यु- शय्या पर पड़े अपने भाई ने गान्धीजी को देखने का आग्रह प्रकट किया था। गांधीजी के पास लघु-लेखन के लिए मिस डिक और श्लेशिना नाम की दो सुन्दरियां आयीं। पहले को अपनी पुत्री समझते हुए उन्होंने उसे पाला और पोसा और अन्त में कन्यादान भी दिया। दूसरी तो एक वीर नारी थी जिसने गान्धीजी के कैद होने पर एक बड़ा आन्दोलन ही शुरू किया था। कुली लोकेशन में रहने वालों को प्लेग लगने से उन्हें अलग बसाया। 'फीनिक्स' में एक संस्था बनी। 'ट्रान्सवाल' में आकर पोलक से मिले और 'अन्टु दि लास्ट' पढ़ा। कमीशन के बारे में जनरल स्मट्स से गान्धीजी की बातचीत का वर्णन भी किया गया है।

द्वादश सर्ग :

गांधीजी के विलायत जाने, वहां से लौटने, बंबई में जाने, जिन्ना साहब से वार्तालाप करने का वर्णन किया गया है । वे भारत आये । वहां से शान्तिनिकेतन जाकर फिर राजकोट पहुंचे । इसी बीच में गोखले के निधन की वार्ता सुनी । अत: वे पूना गये । पूना से रंगून, कलकत्ता, हरद्वार, ऋषिकेश, लक्ष्मण झूला आदि जगहों पर चले । अहमदाबाद में सत्याग्रह आश्रम की स्थापना की । मंत्री के बारे में गांधीजी ने बताया है । कुली- प्रथा, गिरमिट प्रथा को बन्द कराने का निश्चय किया । ' चंपारन में नील की खेती' को मिटाने का प्रयास किया जिसके लिए सत्याग्रह चल पड़ा ।

त्रयोदश सर्ग :

अहमदाबाद में मिल मज़दूरों की माँगें न देने के कारण गान्धीजी ने आमरण अनशन किया । -

जब तक माँगें नहीं मिलेंगी , तब तक मैं ने छोड़ा खाना ।

-- -- --

अनशन शुरू किया बापू ने - प्रण पर फिर मज़दूर अड़ गये । '[१]

खेड़े में खेती नष्ट होने की खबर मिलते ही गान्धीजी ने सत्याग्रह शुरु किया और लगान छुटाया । साबरमती आश्रम में फिर वे रहने लगे । इसके बाद ' वाइसराय नगर ' आये । वहां से वे ' नड़ियाद ', ' माथरन ' और ' अमृतसर ' गये । बंबई में सत्याग्रह कार्यालय खोला और रौलेट एक्ट के विरुद्ध सत्याग्रह शुरू किया । हड़ताल करने का अनुरोध भी किया गया -

' इन कानूनों के उत्तर में - भारत भर में हों हड़तालें ।
आत्मशुद्धि से युद्ध चले यह, चाहे जितने कोड़े खालें ।।'[२]

जालियाँ वाला बाग की घटना भी इस सर्ग में वर्णित हुई है ।

चतुर्दश सर्ग :

गान्धीजी पंजाब की सैर की । ' हंटर समिति की बहिष्कृत किया गया

१: जननायक - त्रयोदश सर्ग - पृ० २१२

२: जननायक - ,, - पृ० २१६

खिलाफत में उन्होंने असहयोग आन्दोलन किया । फिर वे अमृतसर पहुंचे । वहां की निष्ठुर दशा देखकर उन्होंने बताया -

जनता पर गोलियां चलाना - किसी राज्य का धर्म नहीं है ।
सोते हुए वीर को असना - वीर पुरुष का कर्म नहीं है ।।[1]

तिलक की मृत्यु की बात गान्धीजी ने ~~(समझनी)~~ समझी । इस सर्ग के अन्त में कवि ने गान्धीजी का स्तवन किया है -

गान्धी सत्य, सत्य गान्धी हैं, परमेश्वर के ही स्वरूप हैं ।
-- -- -- --
वही लक्ष्य तक पहुंच सका है । जो अंगारों पर है चलता ।।[2]

पंचदश सर्ग :

यहां गांधीजी के एक बालक को नंगा देखने का वर्णन है जिसमें सारे विश्व को ही नंगा देख लिया । तुरंत ही उन्होंने उसी दिन से लंगोटी मात्र पहन ली ।-

देखकर देश को नंगा, लंगोटी बांध ली तन पर ।
देश का ढांपने को तन वही तो बुन रहा खद्दर ।।[3]

इस सर्ग में विदेशी-वस्त्र के बहिष्कार की प्रवृत्ति का मुख्य प्रतिपादन हुआ है । चौरी-चौरा की घटना, बारडोली का सत्याग्रह आन्दोलन, बोअर युद्ध आदि का वर्णन किया गया है । गांधीजी ने कारावास में रहते वक्त अपनी आत्मकथा लिखना शुरु कर दिया । गांधीजी की 'अपेंडिसाइटिस' को पीड़ा थी, जिससे उन्हें कारागृह से मुक्त गया था ।

षोडश सर्ग :

हिन्दू - मुसलिम - एकता के लिए गांधीजी ने इक्कीस दिन का व्रत जो लिया, उसी का चित्रण किया गया है । गौहाटी में श्रद्धानन्द को मार डालने की बात सुनी । 'स्वराज्य सभा' की स्थापना की गयी है । 'साइमन कमीशन' के

- -

१: जननायक - चतुर्दश सर्ग - पृ० २३२
२: वही० - वही० पृ० २४३ - २४४
३: वही० - पंचदश सर्ग - पृ० २४६

बहिष्कार पर बनाया गया है। मोतीलाल ने बताया कि स्वतन्त्रता के लिए बुद्धि और बलिदान की आवश्यकता है -

" स्वतन्त्रता के लिए देश को बुद्धि और बलिदान चाहिए।
एक सूत्र में पिर जाओ सब, भारत की यह शान चाहिए ।।"[१]

सप्तदश सर्ग :

इसमें लालाजी की हत्या के बारे में बताया गया है। उनके हत्यारों से बदला लेने का निश्चय लिया गया है। लाहौर कांग्रेस के बारे में बताया गया है। स्वतंत्रता- आन्दोलन का चित्रण किया गया है। स्वतंत्रता शब्द का अर्थ गांधीजी ने यहां यों दिया है -

" स्वतन्त्रता का अर्थ यही है - ब्रिटिश राज्य से देश मुक्त हो।
बन्धन तोड़ें, पूर्ण मुक्त हों, मुक्त देश मित्रता युक्त हो ।।"[२]

साबरमती के आश्रम में गांधीजी ने स्वतंत्रता प्राप्ति की कार्यसमिति बनायी। गांधीजी की सुप्रसिद्ध दण्डी की यात्रा का विस्तृत वर्णन इस सर्ग में हुआ है।[३] नेहरू जी को कैद करने तथा यरवादा जेल में गांधीजी को कैद करने का निवेदन हुआ है। इसके विरुद्ध जनता ने हड़ताल की। विदेशी माल तथा शराब पर भारत की नारियों ने धरणा दिया। इर्विन के भारत आने का चित्रण भी यहां किया गया है।

अष्टादश सर्ग :

मोतीलाल नेहरू की मृत्यु का वर्णन किया गया है। गांधीजी-इरविन समझौते पर भी प्रकाश डाला गया है।

उन्नविंश सर्ग :

इर्विन के बाद लार्ड विलिंग्डन भारत आये जिसने देश में पुनः निरंकुश शासन प्रारंभ किया। विलिंग्डन और गांधीजी की बातचीत का उल्लेख हुआ है। कराची-कांग्रेस की कार्य-विधियों पर प्रकाश डाला गया है। गोलमेज परिषद में भाग लेने केलिए गांधीजी लंदन गये। गांधीजी जहां जहां गये थे वहां वहां उन्होंने अपनी भारतीयता छोड़ी

- -

१: जननायक - चौदहवां सर्ग - पृ० २७० २: वही०- सप्तदश सर्ग - पृ० २८०
३: वही० देखिए पृ० २८६ - २९१

नहीं थी -

" गये कहीं थो गांधीजी पर - भारतीयता कभी न त्यागी ।
लालच की नागिन सी माया - गांधीजी से कोसों भागी ।।"[1]

गान्धीजी के लन्दन से भारत लौटने और जवाहर लाल एवं अब्दुल गफ्फार खां दोनों के कैद किये जाने की बात बतायी गयी है ।

विंश सर्ग :

यहां गांधी जी, वल्लभ भाई आदि को कैद करने के कारण जनता ने सत्याग्रह किया । दलितों को जनता से दूर रखते हुए पृथक चुनाव पास किया जिसके विरोध में गांधीजी ने पूना के कारागृह में आमरण अनशन किया ।

एकविंश सर्ग :

गांधीजी सेवागांव आ रहे थे । " फैजपुर " कांग्रेस के बारे में कहा गया है । " हरिपुर " की कांग्रेस पर प्रकाश डाला गया है । " त्रिपुरी कांग्रेस " के अधिवेशन पर कवि ने बताया है । चरखा संघ की स्थापना गांधीजी ने की । कांग्रेस के दोनों - गरम और नरम - दलों पर अपना मत प्रकट किया है ।

द्वाविंश सर्ग :

हिटलर के नेतृत्व में नाजीदल का कार्यक्रम प्रारंभ हुआ । जर्मनी, पोलैंड आदि देशों पर बम की वर्षा हुई । गांधीजी से हिटलर ने महायुद्ध में सहायता मांगी । आगे कवि ने महायुद्ध का वर्णन किया है ।

त्रयोविंश सर्ग :

इस सर्ग में भारत को आजादी दिलाने का तीव्र यत्न प्रतिपादित हुआ है । मौलाना आज़ाद के सभापतित्व में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ । इसमें गांधीजी का भाषण जो हुआ, उसी का वर्णन किया गया है । देश के आर्थिक सुधार के लिए गांधीजी ने स्वयं चर्खा चलाया -

" चर्खा यह येरवादा चक्र है, इसमें हैं जीवन के धागे ।
मूर्ख नहीं में जो बात रखा , जो न जानते वे हतभागे ।। "[2]

- -

१: जननायक - उन्नविंश सर्ग - पृ० ३२२
२: वही० - त्रयोविंश सर्ग - पृ० ३७४

स्वतन्त्रता- आन्दोलन के लिए सत्याग्रह का फण्डा लेकर सर्वप्रथम विनोबा भावे चले। वर्धा जाकर वहाँ से ` पवनार ` ग्राम पहुँचते ही वे बंदी बने। इसके बाद जवाहरलाल ने फण्डा पकड़ा। उनके भी बन्दी बनाये जाने पर गांधीजी ने आगे फण्डा अपने हाथों लिया। बीच में ` सुभाष ` को कारागृह में डाला गया। इसी दीर्घ तथा अविराम यात्रा से यह सर्ग समाप्त होता है।

चतुर्विंश सर्ग :

इसमें स्वतन्त्रता- आन्दोलन का वर्णन मुख्य है। शान्तिनिकेतन में रवींद्र के साथ गांधीजी केक निवास का चित्रण हुआ है। द्वितीय महायुद्ध का वर्णन भी इसमें किया गया है। बीच में कवि ने रामचन्द्र जी से देश के कुशल - मंगल के लिए प्रार्थना की। क्रिप्स के अत्याचारों की विवेचना की है। गांधीजी का ` भारत छोड़ो ` वाला नारा गूंज उठता है।

पंचविंश सर्ग :

इसके आरंभ में गांधीजी और कस्तूरबाई का वार्तालाप वर्णित हुआ है जो आगा खां जेल में हुआ। महादेव देसाई की मृत्यु की बात गांधीजी को मिली। अनशन से गांधीजी की दशा बहुत बिगड़ गयी। जनता के अनुरोध पर इन्होंने अनशन छोड़ दिया। इसके अन्त में बा की बीमारी की अवस्था, उनकी मृत्यु एवं शवदाह आदि का अत्यंत मार्मिक एवं विषादपूर्ण चित्रण किया गया है।

षड्विंश सर्ग :

आरंभ में बंगाल के भीषण अकाल का वर्णन है। आगाखां जेल में बन्दी गांधीजी को छुड़ाने के लिए ~~कांग्रेसवालों~~ से जनता ने बड़ा प्रयत्न किया और उसका भी विवेचन यहाँ हुआ है। गांधी ने अपनी प्रिय पत्नी के बारे में मित्रों से बातें कीं। भारत की स्वतन्त्रता के हित गांधीजी जिन्ना से मिले। अन्त में जापान में बम की वर्षा होने का चित्रण है।

सप्तविंश सर्ग :

यहाँ ` सिमला सम्मेलन ` पर प्रकाश डाला गया है। आजाद हिन्द सेना, नेहरू द्वारा अस्थायी सरकार की स्थापना आदि का वर्णन किया गया है।

अष्टाविंश सर्ग :

नोआखाली के तूफान का वर्णन यहाँ हुआ है। बिहार का रक्तपात, उसे मिटाने के लिए गांधीजी का अनशन आदि का उल्लेख है। इसके बाद रामपुर गये।

उन्नविंश सर्ग :

गान्धीजी के बिहार गमन का विवरण इस सर्ग में हुआ है। को कूटनीति पर विचार किया गया है। "विधान परिषद" में भारत के विभाजन का प्रस्ताव सर्वसम्मति के साथ स्वीकृत हुआ। चौदह अगस्त की रात को भारत की स्वतंत्रता घोषित की गयी। पंद्रह अगस्त को भारत स्वतंत्र हुआ और स्वतंत्र भारत चित्रण इस सर्ग के अंत में किया गया है।

त्रिंश सर्ग :

यह सर्ग स्वतंत्र भारत के सुप्रभात के सुन्दर वर्णन से शुरू हुआ। 'बहावलपुर', 'कश्मीर' आदि जगहों के अत्याचारों का वर्णन है।

एकत्रिंश सर्ग :

यह सर्ग अत्यन्त दु:खदायक है। क्योंकि इसके आरंभ में ही सभा में गांधीजी पर गोली चलने की बात बतायी गयी है। फिर उनकी मृत्यु और अन्तिम विलाप यात्रा का मार्मिक चित्रण उपस्थित किया गया है। अत: य करुण रस प्रधान कहा जा सकता है।

गान्धीवादी तत्वों का प्रतिपादन :

गान्धीजी पर रचित काव्य होने के नाते इसमें गान्धीवादी उल्लेख भी स्वाभाविक ही है। गान्धीजी के राजनीतिक कार्यक्रमों का प्रतिपादन अधिक मात्रा में होने के कारण सत्याग्रह, अहिंसा, सत्य, अछूतोद्धार, आन्दोलन धरना आदि तत्वों का प्रतिपादन काव्य में बीच- बीच में हुआ है। काव्य के क इन तत्वों को दुहराया भी गया है। गान्धीजी अपनी किशोरावस्था से ही सत पुजारी रहे थे। इसके संबंध में उन्होंने अपनी "आत्मकथा" में जो उदाहरण(कै

वाली घटना) दिया था, उसे गांधीवादी लेखकों ने अपनी रचनाओं में उद्धृत करने में किसी तरह की भूल नहीं की है। यहां भी कवि मिश्रजी ने उसी प्रसंग का उल्लेख करते हुए सत्य पर गांधीजी के इस कथन को पुष्ट किया है -

" चोरी नहीं करूंगा गुरुजी। गलती को स्वीकार करूंगा।
चाहे मुझे जला दो जिन्दा। सच्चाई से प्यार करूंगा॥"[१]

इन पंक्तियों में कवि ने रामनाम की महिमा बतायी है और कहा है कि रामनाम का रसपान करने वाला व्यक्ति अमर बनता है और वह किसी के कूट जाल में फंसने से बच जाता है -

" रामनाम वेदों का रस है, जो पीता वह अमिमत पाता।
वह न छूटता जन्म जन्म में, जो इन जालों में फंस जाता॥"[२]

आगे भी कवि ने इसी की चर्चा की है -

" रामनाम की प्रखर रश्मि से - काले बादल फट जाते हैं।
बढ़ते चरणों की चोटों से - पथ के पत्थर हट जाते हैं॥"

-- -- --

जीवन की सारी मंझधारें, राम-कृपा से कूल बनेंगी॥"[३]

पादरी " बेकर " रंगभेद को मानने वाला नहीं था। अत: उसने बताया है कि वह सत्य को ही ईश्वर मानने वाला है -

रंग-भेद में नहीं मानता, मेरे लिए सत्य है ईश्वर॥"[४]

प्रिटोरिया के देशवासियों को गान्धीजी ने सच्चाई और प्रेम का पाठ सिखाया और सत्यको न छोड़ने पर अधिक बल दिया।

भूल दिखाई, प्रेम सिखाया, सब को सच्चाई समझाई।
चाहे कुछ भी कार्य करो पर, व्यवहारों में सत्य न छोड़ो॥।
करो बड़े व्यापार किन्तु तुम - सच्चाई से मुंह मत मोड़ो॥"[५]

१: जननायक - प्रथम सर्ग - पृ० ३५   २: वही०-द्वितीय सर्ग - पृ० ४७
३: जननायक - चतुर्थ सर्ग - पृ० ७०   ४: वही० - सप्तम सर्ग - पृ० १०६
५: वही० - वही० - पृ० १११

जाति भेद के भाव को जनता के बीच से हटाने का प्रयास करते हुए गान्धीजी ने बताया कि हिन्दू, मुसलमान, ईसाई सब एक ही मानव हैं और सब आपस में भाई- भाई हैं।

" यह हिन्दू, वह मुसलमान क्या ? कौन पारसी, क्या ईसाई ?
मानव मानव सभी एक हैं, सब आपस में भाई भाई ।। "[१]

प्रिटोरिया की जनता के सामने गान्धीजी ने जो भाषण दिया, उसने वहां की जनता का हृदय परिवर्तन कर डाला -

" जितने भी थे वहां सभा में, सब ने बात उन्हों की मानी ।
गान्धीजी के साथ बढ़ चली - हक के पथ पर बदल जवानी ।।"[२]

गान्धीजी की सेवापरायणता एवं सेवा- तत्परता पर प्रकाश डालते हुए कवि ने जनता को यह सुन्देश सुनाया है कि परसेवा से भगवान का दर्शन संभव है और वे प्रत्येक सेवक में बसते हैं।

सब की सेवाएं कर गान्धी - सेवा-सुधा पिया करते थे ।
-- -- --
सेवा में परमेश्वर मिलते, नारायण बस जाते नर में ।।"[३]

बंधनरहित प्रेम की पवित्रता का स्तवन करते हुए गान्धीजी ने जनता का हृदय परिवर्तन कर दिया -

बन्धन नहीं प्रेम में होता , किंतु प्रेम में हृदय फंस गया ।
चाहे लोहे के बन्धन हों , किंतु स्नेह से गल जाते हैं ।। "
प्रेमी के नयनों के जल से - पथ के कांटे जल जाते हैं ।। "[४]

रामनाम की महिमा पुनः गायी गयी है -

जिसे सहारा रामनाम का - वह नर कभी नहीं रोता है । "[५]

गांधीजी के जीवन में ब्रह्मचर्य- व्रत को मुख्यस्थान रहा था । अतः कवियों ने ब्रह्मचर्य का उल्लेख किये बिना काव्य की रचना की नहीं । यहां कवि ने भी ब्रह्मचर्य की महत्ता का प्रतिपादन किया है ।

- -

१: जननायक - सप्तम सर्ग - पृ० १११
२: वही० पृ० ११२
३: वही० अष्टम सर्ग- पृ० १२१
४: वही० पृ० १३७
५: वही० नवम सर्ग - पृ० १४२

"ब्रह्मचर्य व्रत बिना विश्व में - दुःखों से उद्धार नहीं है ।
संयम बिना न सुख मिलता है, जीवन का विस्तार नहीं है ।
-- -- --
ब्रह्मचर्य व्रत के साधक को - ईश्वर अमर शक्ति देता है ।।"[1]

गान्धीजी ने स्वावलंब- जीवन को अधिक महत्व दिया है और यों बताया है कि जो स्वावलंब जीवन बिताता है, उसे कदापि दुःखी होने का अवसर नहीं रहता ।

स्वावलंब से चल राही ने - मंजिल पर सुख भोगा ।
अपना ही अवलंब जिसे है - उसने कभी नहीं दुःख भोगा ।।"[2]

जब गांधीजी का पुत्र मणिलाल रोगग्रस्त हुआतब डाक्टर ने उसे मांस आदि खाने की बात बतायी । लेकिन गांधीजी ने इसका विरोध करते हुए बताया कि मांस खाना पाप है और पशुहत्या दैत्य-कर्म है ।

-- -- मांस न खाना परम-धर्म है ।
क्यों मानव भी पशु बन जाता ? यह मनुष्य का दैत्य कर्म है ?"[3]

यही बात उनके पुत्र ने भी कहा है कि प्राणी की हत्या से मानव का जीवन सफल नहीं होता ।

ईश्वर सब का भला करेगा, मेरी करो चिकित्सा जल से ।
जीवन कैसे मिल सकता है - प्राणी की हत्या के फल से ।।"[4]

भारत में वर्तमान अछूतापन पर गांधीजी ने अपना दुःख प्रकट किया है । -

भारत में समाज-सेवी को - भंगी, ढेढ़, मेहतर कहते ।
उनको कह अछूत ठुकराते, आप बड़े महलों में रहते ।।"[5]

गान्धीजी के सत्याग्रह पर कवि ने बताया है कि सत्याग्रह की आयोजना से अत्याचार के

- -

१: जननायक - नवम सर्ग - पृ० १४६ २: वही० पृ० १५२
३: वही० - दशम सर्ग - पृ० १६८ ४: वही० पृ० १६८
५: वही० एकादश सर्ग - पृ० १८१

सारे अस्त्र- शस्त्र अदृश्य होने लगे । -

" अत्याचार बढ़े जब जग में - सत्याग्रह की सृष्टि हुई तब ।
शक्ति अहिंसा बनकर आयी - समा स्वयं में अस्त्र शस्त्र तब ।। "[१]

गान्धीजी के सत्याग्रह आन्दोलन में महिलाओं के भाग लेने का सुंदर चित्रण है -

" बच्चों को गोदी में ले ले - सत्याग्रह के लिए चलीं मां ।
चलीं फातिमां, चलीं बेगमें, चलीं रुक्मिणी, चलीं सलीमां ।।
-- -- --
सत्याग्रह का अमर अस्त्र ले - देशसेवियों का दल निकला ।। "[२]

गान्धीजी की सत्य और अहिंसा की जीत पर कवि ने बताया है कि जहां कहीं सत्य और अहिंसा का व्यवहार होता था, वहां उन्हीं की जीत हुई है ।

" सत्य अहिंसा के चरणों में हिंसा की तलवार झुक गयी ।
गान्धीजी की गति के आगे चलती हुई कृपाण रुक गयी ।। "[३]

अहमदाबाद के सत्याग्रह आश्रम में छुआछूत ~~आश्रम में छुआछूत~~ या जाति-भेद का भाव नहीं था, वहां सारी जनता एक समान थी ।

" शांति,प्रेम,आदर्श,मनुजता, आश्रम में मुखरित थे सब सुख ।
छुआछूत का भेद नहीं था, एक प्राण थे और एक मुख ।। "[४]

गांधीजी से रामचन्द्र जी से समस्याओं को सुलझाने की प्रार्थना करते थे । तब भगवान से यह उत्तर मिला कि चर्खे - चर्खे से स्वतंत्रता संभव है ।

" चर्खे नंगे का कपड़ा है, चर्खा भूखों की रोटी है ।
चर्खे में स्वतन्त्रता देवी, उसकी उन्नति की चोटी है ।। "[५]

अत: उन्होंने सारी जनता को चर्खा कातने का उपदेश दिया ।

- -

१: जननायक - एकादश सर्ग - पृ० १८६ २: वही० -पृ० १९०
३: वही० पृ० १९४ ४: वही० - द्वादश सर्ग - पृ० २०२
देखिए पृ० २०४
५: जननायक - चतुर्दश सर्ग - पृ० २३६

गांधीजी ने भीख मांगकर - रुई मंगाई, सूत कताया ।

-- --- --

तार तार से खादी बुनकर - भूखों को भोजन करवाया ।।

-- -- --

घर घर घर चर्खे चलते थे, बहिनें सूत कातती गातीं ।
लंबे लंबे तार खींचतीं, तारों से मोती बरसातीं ।। "[1]

गान्धीजी के असहयोग आन्दोलन की महिमा गायी है ।

" असहयोग वह अमर अस्त्र है - जिससे बड़े बड़े यम हारे ।

-- -- --

असहयोग में आत्मबल है, आत्म-बल से दैत्य डोलता ।। "[2]

पुन: गांधीजी ने अस्पृश्यता के निवारण पर बताया है । -

" करो अछूतोद्धार भाइयो ! कहा नागपुर कांग्रेस में ।

-- -- --

कैसा हिन्दू, मुसलमान क्या, हिन्दू मुस्लिम हैं हमराही ।। "[3]

गांधीजी के सत्य और अहिंसा का प्रभाव देश पर खूब पड़ा है अत: उन्होंने इन्हीं के द्वारा देश को स्वतंत्र बनाने का निश्चय किया -

" सत्य अहिंसा का बल लेकर - सोया भारत जाग उठा है ।

-- -- --

पहले देश स्वतन्त्र करूंगा, पीछे अपना तन बदलूंगा ।। "[4]

गान्धीजी ने अस्पृश्यता निवारण पर इतना जोर देते हुए बताया है कि यदि अस्पृश्यता दूर न होगी तो उनकी लाश चलेगी ।

---------- अस्पृश्यता गरल बतलाया ।

-- -- -- --

या तो यहां एकता होगी, वर्ना मेरी चिता जलेगी ।। "[5]

- -

१: जननायक - चतुर्दश सर्ग - पृ० २३७ २: वही० पृ० २४२

३: वही० पृ० २४२ ४: वही० सप्तदश सर्ग - पृ० २८५ ५: वही० विंश सर्ग- पृष्ठ : ३२६

उपवास और व्रत की महिमा पर बताते हुए कहा गया है कि उपवास में अमर शक्ति रहती है और व्रत से मन- मांगा वर प्राप्त करता है । -

' उपवासों में अमर शक्ति है, जिससे पत्थर भी हिल जाते ।
व्रत में ईश्वर की महिमा है, व्रत से मुंहमांगा वर पाते ।।'[१]

गांधीजी ने यही बताया था कि अगर कोई हमें सताता है तो उससे उसी रूप से बदला लेने का विचार नहीं करना चाहिए; प्रत्युत उसका सामना निर्दोष ढंग से करना चाहिए । यही भाव यहां दुहराया गया है -

हिंसा से हिंसा न जीतती , विजय अहिंसा से ही होती ।
मोती हंस चुना करते हैं, काग नहीं चुनते हैं मोती ।। '[२]

सच्चे पथ पर खड़े रहना ही सत्याग्रह बताया गया है । अत: सत्याग्रह की परिभाषा यहां यों दी गयी है । -

सत्याग्रह की परिभाषा यह - सच्चे पथ पर खड़े रहो तुम ।
भालों की नोकों के आगे - महावज्र से खड़े रहो तुम ।। '[३]

गान्धीजी को आत्मा के उपदेश और निर्देशन में बड़ा विश्वास था ।[४] वे कदापि आत्मा की वंचना नहीं करते थे । अविश्वासपूर्ण बातें कहना तथा असत्य बोलना आत्मा को चोट पहुंचाने के कारण होते हैं । अत: वे इन बातों से हमेशा दूर रहना चाहते थे ।

रचना-विधि के अनुसार इस काव्य के दो खण्ड होते हैं । पहले खण्ड के अन्तर्गत प्रथम सर्ग से लेकर पंचदश सर्ग यानी मंगलज्योति से लेकर ' बहिष्कार ' तक की घटनाओं का वर्णन जो किया है, उनका आधार गांधीजी लिखित ' सत्य के प्रयोग ' अथवा 'आत्मकथा ' नामक पुस्तिका है । ऐसा प्रतीत होता है कि यह पुस्तिका ही काव्य-रूप में प्रणीत हुई है । कवि ने इससे सामग्री लेने में अपनी दृढ श्रद्धा और अतिसूक्ष्मता से कार्य किया है कि इसके वाक्य - वाक्य का प्रस्तुतीकरण इस काव्य के प्रथम पंद्रह सर्गों के अंतर्गत

- -

१: जननायक -सप्तदश सर्ग - पृ० ३३२ २: जननायक - त्रयोविंश सर्ग- पृ० ३७१

३: वही० पृ० ३७५ ४: आत्मा जो कुछ भी कहता था - गान्धी वही किया करते थे ।
करने से पहले ईश्वर से गांधी पूछ लिया करते थे ।। -सप्तम सर्ग पृ० ११४

हुआ है । दूसरे शब्दों में कहें तो ये पंद्रह सर्ग उसी ` आत्मकथा ` की नकल मात्र हैं । काव्य और ` आत्मकथा ` उपशीर्षकों के नामकरण में भेद अवश्य है । शेष सोलह भारत के राष्ट्रीय कार्य- क्रमों से संबद्ध हैं । ये हैं ` बहिष्कार ` से लेकर `प्राण दा तक के सर्ग । महाकाव्य के एक सर्ग के अंतर्गत ही ` आत्मकथा ` के अनेक सर्गों की घटनाओं को एकसाथ जुटा दिया है ।

यह काव्य ३१ सर्गों में रचित है । महात्मा गान्धीजी के जीव और व्यक्तित्व इस काव्य का विषय है । भारत में गांधीजी का आगमन उसके इति एक महत्वपूर्ण परिवर्तित युग की निशानी है । उनके साथ भारतीय राष्ट्रीयता के रं पर जितने महान नेता कार्य करते थे, उन्हें भी इस काव्य में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त हु महात्मा गांधी आधुनिक युग के सबसे बड़े एवं श्रेष्ठ जननायक थे । उनका जीवन कवियं लिए अत्यन्त प्रेरणादायक मन्त्र था । अत: रघुवीरशरण मित्र ने गान्धीजी के जीवन समसामयिक प्रवृत्तियों का बहुत बढ़ा-चढ़ाकर वर्णन करते हुए करीब ८०० पृष्ठों के प्रस्तु महाकाव्य की रचना की ।

यह काव्य पात्र की विशेषताओं को लेकर रचित काव्य है । कवि ने गान्धीजी का सीधा नाम उपस्थित न करके उनकी विशेषताओं के उद्घाटन क वाले शब्द का प्रयोग ही किया है । जैसे कि इस काव्य का नाम ` जनवायक ` रखा इसे डा० श्यामनन्दन किशोर ने छायावाद की लाक्षणिक प्रधान युगीन प्रवृत्ति माना इसमें गान्धीजी के राजनीतिक मानव-रूप का चित्रण ही मुख्य रूप से हुआ है । गांधं सिद्धान्तों का भी प्रतिपादन कवि ने स्थान-स्थान किया है । विषयों की अनावश्यक तज्जन्य सुदीर्घ अभिव्यक्ति इस काव्य में बीच बीच में हुई है । यदि पहले खण्ड को सु संक्षिप्त बनाते तो दूसरा खण्ड अर्थात् उनका राजनीतिक पक्षोद्घाटन और भी गंभीर

- -

१: पात्र की विशेषताओं के आधार पर - छायावाद के लाक्षणिक प्रधान यु नायक के आधार पर नामकरण किये गये महाकाव्यों में अनेक ऐसे हैं जिनमें पात्रों के स नाम उपस्थित न कर उनकी विशेषताओं के उद्घाटन करने वाले शब्द ही प्रयुक्त पा॰ स

- हिन्दी महाकाव्यों का शिल्प-विधान, डा०श्यामनन्दन किशोर,

पृष्ठ - ५७२

उठता । फिर भी आकार विपुलता के दृष्टिकोण से इस काव्य का मूल्यांकन करने वाले पाठकों के लिए यह मिश्रजी का महत्त्वपूर्ण प्रयास प्रतीत होगा । इसमें कोई संदेह नहीं कि कवि ने महाकाव्यगत लक्षणों की परंपरा का पालन इसके रचना-काल में अवश्य किया है ।

जगदालोक :

यह महात्मा गांधीजी पर प्रत्यक्ष रूप से लिखित महाकाव्य है । इसमें ठाकुर गोपालशरण सिंह ने गांधीजी के संपूर्ण को - जन्म से लेकर मृत्यु तक - चित्रित किया है । इस काव्य की विषय- वस्तु की ओर संकेत करते हुए श्री पुरुषोत्तमदास टंडन ने बताया है - " इसमें महात्मा गांधी के जीवन की मुख्य घटनाओं तथा उनकी साधना और उनके फलों के चित्रण में गांधीजी के समय की राजनीतिक और सामाजिक स्थितियों की रूप- रेखा है और गांधीजी ने इन स्थितियों में अपने आदर्शों की पूर्ति के लिए जिन साधनों का उपयोग किया, उसकी गाथा है । "[१]

इस काव्य का श्रीगणेश " उन्नत शीश " हिमालय के पुराण-सदृश अलौकिक वर्णन से होता है । इसका वर्णन एक ऐसे प्रसंग से किया गया है कि शिवजी से पार्वती भारत का इतिहास जानने की इच्छा प्रकट करती है और शिवजी उसे सारा इतिहास सुनाते हैं । यह घटना जब हुई थी, तब भारत परतंत्रता की बेड़ियों से जकड़ा था । अत: पार्वती के यह पूछने से कि " भारत की यह पराधीनता कब तक साथ चलेगी ", शिवजी ने जो उत्तर दिया, उसमें गांधीजी के जन्म और भारत के भविष्य- निर्माण की ओर संकेत अवश्य किया गया है और यही इस महाकाव्य की रचना की पृष्ठभूमि भी प्रस्तुत करने का साधन बन गया । जैसे

लेगा जन्म शीघ्र भारत में
कोई दिव्यात्मा नर
होगा फिर स्वाधीन देश यह
उसका सम्बल पाकर ।। "[२]

१: जगदालोक - भूमिका - पृ० १

२: जगदालोक - प्रथम सर्ग - पृ० २५

प्रथम सर्ग :

इस सर्ग में कवि ने भारत की पराधीनता के पूर्व की महिमा- मण्डित एवं गौरवान्वित और पश्चात् की करुणात्मक एवं दु:खदायक दोनों परिस्थितियों का चित्रण किया है ।

द्वितीय सर्ग :

इसमें गांधीजी के जन्म से लेकर दक्षिण अफ्रीका से भारत लौटने तक की घटनाओं का चित्रण कवि ने किया है । इसके आरंभ में ही गांधीजी के जन्म पर गौरव के साथ प्रकाश डाला गया है । -

एक नवीन प्रकाश- धारा में
आया छोड़ विमल आकाश,
अट्ठारह सौ उनहत्तर में
हुए अवतरित मोहनदास ।। "[1]

अपने माता- पिता के धार्मिक प्रभाव से बचपन से ही गांधीजी मे बौद्धिक एवं आध्यात्मिक विकास आवश्यक मात्रा में मौजूद था । -

मातृ- स्नेह से गान्धीजी के
हृदय- कमल का हुआ विकास ,
-- -- --
बाल्यकाल में हुए अंकुरित
उनके मन में धार्मिक भाव ।। "[2]

दक्षिण अफ्रीका के अपने विद्यार्थी- जीवन में कुसंगति के कारण उनमें वैयक्तिक दोषों का विष- वृक्ष उग आया था और उन्हें कई तरह की यातनाएं सहनी पड़ीं । लेकिन इससे उनका हृदय परिवर्तित हुआ, उन्हें त्याग, प्रेम, सेवा, सत्य, अहिंसा आदि में बड़ा विश्वास होने लगा ।

- -

१: जगदालोक - द्वितीय सर्ग - पृ० २६
२: वही० - पृ० २७

धीरे धीरे परिवर्तित भी

-- -- --

मन में निस्पृह सेवा भाव ।

-- -- --

त्याग भाव नि:स्वार्थ प्रेम का

-- -- --

सत्य अहिंसा में विश्वास "[1]

इस परिवर्तन ने उन्हें अत्यंत सादगी- प्रिय एवं स्वावलंबी बना दिया और बाद में उन्होंने ऐसी जिंदगी बिताई जिसमें सरलता और स्वाभाविकता दिखाई पड़ती थी । इसी मौलिक भावना से उन्होंने अपने सेवाश्रम को रूप दिया था । -

स्वावलंब का जीवन प्रिय था
गांधीजी को सदा अमोल
अत: एक एकांत स्थान में
दिया उन्होंने आश्रम खोल । "[2]

तृतीय सर्ग :

तृतीय सर्ग में दक्षिण- अफ्रीका से विजयी बनकर गांधीजी के प्रत्यागमन का चित्रण है । इसकी तुलना चौदह वर्ष का वनवास समाप्त करके राम-रावण- युद्ध में जीतकर रामचन्द्र के आगमन से की गयी है ।[3] गांधीजी का यथोचित स्वागत किया गया । -

- -

१: जगदालोक - द्वितीय सर्ग - पृ० ३२

२: वही० पृ० ३७

३: " करके चौदह वर्षों का

वनवास समाप्त यथोचित

-- -- --

खिंच गया शीघ्र स्मृति - पट पर ।।"

- जगदालोक , तृतीय सर्ग , पृ० ४८

उनका समुचित स्वागत कर
भारत ने प्रेम दिखाया,
अपनी खोई निधि पाकर
उसने अपूर्व सुख पाया ।। [1]

आगे कवि ने सर्गांत तक भारत की प्रकृति का सुंदर चित्रण किया है। बाद में भारत-वासियों पर अंग्रेजों का कुप्रभाव जो पड़ा, उसका भी वर्णन है।

चतुर्थ सर्ग :

यह सर्ग आद्यन्त साबरमती आश्रम के चित्रण और महिमा- गायन से भरा है।

" सत्य अहिंसा के स्तम्भों पर
था वह आश्रम संस्थित,
वह जीवनोपवन होता था
प्रेम - सुधा से सिंचित ।। [2]

इसी आश्रम में गांधीजी ने अपने शासन से रामराज्य की स्थापना की और उनके स्वप्न का यहीं साक्षात्कार हो गया। -

" गांधीजी के राम-राज्य का
स्वप्न अलौकिक,सुंदर,
उनके विमल शांत आश्रम में
सत्य हुआ भास्कर ।। [3]

इस सर्ग के बीच बीच में गांधीजी के व्यक्तित्व पर भी प्रकाश डाला गया है। वे बड़े ही चिंतनशील व्यक्ति थे और बड़े ज्ञानी भी। भारत को स्वतंत्र तथा स्वावलंबी बनाने की एकमात्र चिंता उनमें थी।

१: जगदालोक - तृतीय सर्ग - पृ० ४८
२: जगदालोक - चतुर्थ सर्ग - पृ० ६४ और देखिए पृ० ६४-७२
३: जगदालोक - चतुर्थ सर्ग - पृ० ६६

गांधीजी की एक चाह थी
एक साथ जीवन में
-- -- --
हो स्वाधीन सुखी समृद्ध फिर
भारत का नव- जीवन ।। "[1]

पंचम सर्ग :

यहां उन्होंने गांधीजी के चंपारन जाने और वहां की कठिनाइयां फेलने का वर्णन किया है। उनके राजनीतिक कर्तव्य का भी उल्लेख किया गया है।

षष्ठ सर्ग :

इसमें देश की बिगड़ी परिस्थितियों का वर्णन किया गया है।

सप्तम सर्ग :

यहां देश के अतीत एवं विगत वैभव का गांधीजी ने जो चिंतन किया उसी का चित्रण है। इस गत-वैभव की प्रतिष्ठा के लिए गांधीजी ने जो सुफाव प्रस्तुत किये हैं उनका विभिन्न उप-शीर्षकों के अंतर्गत विवेचन किया जायगा।

अष्टम सर्ग :

इसमें गांधीजी के गुणार्जन के बारे में कवि ने कुछ बातें बतायी है।

गोखले का वर बुद्धि विवेक
तिलक की ओजस्विता महान
सात्विकता मालवीय का सौम्य
लाजपत का साहस बलवान ।। "[2]

इस प्रकार गांधीजी में जो गुण विद्यमान थे, उनमें अन्य महान नेताओं के श्रेष्ठ गुणों का मिश्रण अवश्य रहा है। जनता पर गांधीजी का जो गहरा प्रभाव पड़ा, उसी का मूल्यांकन कवि ने यों किया है। जनता की दृष्टि में वे मृदुल तन और कोमल मन के थे।

- -

~~१: जयबालोक - चतुर्थ सर्ग - पृ० ६८~~ १: वही० पृ० ७७ और द्रष्टव्य पृ० ७३-७६
२: वही - पृ.- २३३.

मृदुला बापू का सरल स्वभाव
हृदय में भर देता था हर्ष
कराता था ईश्वर का भान
प्रेममय उनका उच्चादर्श ।। "[1]

साथ ही कवि ने भारत के विख्यात राष्ट्रीय नेताओं जैसे चित्तरंजन दास, मोतीलाल नेहरू, डा० राजेन्द्र प्रसाद, जवाहरलाल नेहरू आदि का उल्लेख करने में कोई भूल नहीं की है ।

नवम, दशम, एकादश, द्वादश, त्रयोदश, चतुर्दश - इन सर्गों में गांधीजी के राजनीतिक तथा सार्वजनिक कार्यों का विस्तृत विवेचन हुआ है । पंचदश सर्ग में भारत के स्वतंत्रता दिवस का वर्णन है । साथ ही साथ देश के उन अविस्मरणीय अगणित शहीदों का भी उल्लेख है जिन्होंने भारत को आजादी दिलाने में अपने को बलिदान कर दिया । षोडश सर्ग में देश- विभाजन और पंजाब के हत्याकाण्ड की विवेचना की गयी है । उनके लिए समाधान ढूंढने की जो कोशिश गांधीजी ने की, इसका भी चित्रण है । -

" शीघ्र ही करने लगे वे एकता की साधना,
वे सिखाते थे सभी को प्रेम की आराधना ।
वे बताते थे - विकृत मन हेतु है सन्ताप का
पाप से परिशोध होता है कदापि न पाप का ।। "[2]

सप्तदश सर्ग में गांधीजी की उपस्थिति में जो प्रार्थना- सभा हुई उसी का वर्णन किया गया है । अष्टादश सर्ग में गांधीजी की हत्या की बात बतायी है। इसके बारे में कवि का कथन है । -

" घोर पाप जो हुआ प्रार्थना के ही स्थल में ,
-- -- --
मातृभूमि की हुई रक्त से रंजित चोली ।। "[3]

गांधीजी की हत्या से देश और प्रकृति में समान रूप से जो विषादात्मक विमूढ़ता छायी, उसका चित्रणभी किया गया है ।[4]

- -

१: जगदालोक - अष्टम सर्ग - पृ० ११४ २: वही० -षोडश सर्ग-पृ०२८८
३: वही० अष्टादश सर्ग, पृ० ३०५ ४: वही० पृ० ३१०-३१२

एकोनविंश सर्ग में प्रकृति के द्वारा गांधीजी को श्रद्धांजलि अर्पित करने का वर्णन है। -

सब लता बेलि पादप हो
प्रात: समीर से कंपित
ये तुहिन अर्घ्य पत्रों से
बापू को करते अर्पित ।। '[1]

उनके वियोग से सारे संसार में व्याप्त शोकमय वातावरण का मार्मिक चित्रण है,[2] इसके अलावा गांधीजी की अर्थी की यात्रा का लंबा विवरण भी है -

' फिर राष्ट्रपिता की अर्थी
हो खादी से परिवेष्टित ,
-- -- --
गान्धी की मधुर जयध्वनि
गूंजने लग गई सत्वर ।। '[3]

गान्धीजी की मृत- देह की दाह- क्रिया का बड़ा ही हृदयस्पर्शी वर्णन किया गया है -

परिपूरित वेद- मन्त्रों से
जो थी चन्दन से निर्मित
-- -- --
तत्क्षण असंख्य हृदयों में
जल उठी अनल की ज्वाला ।।'[4]

इस वेला में भारत के एक मुख्यमन्त्री ने जनता को यही सन्देश दिया है। -

बापू के आदर्शों का
कर सदा प्रेम से पालन
-- -- --
उनके पवित्र जीवन का
अनुकरण चाहिए करना ।।'[5]

१: जगदालोक- एकोनविंश सर्ग - पृ० ३२६ २: वही० पृ० ३१७-३१८
३: वही० पृ० ३१६-३२२ ४: वही० पृ० ३२५, द्रष्टव्य ३२६-७ ५: वही० पृ० ३२७

गान्धीजी के अस्थि विसर्जन के बारे में भी बताया गया है -

फिर किया गया बापू का
शुचि अस्थि संचय सर्गुचित
-- -- --
स्वजनों द्वारा सब अंतिम
संस्कार हुए संपादित ।
-- -- --
पावन प्रयाग भी सहसा
हो गया और भी पावन ।। '[1]

विंश सर्ग अर्थात् अंतिम सर्ग में गान्धी-युगीन भारत की दशा का वर्णन किया गया है ।[2]

<u>गान्धीवादी विचारों का प्रतिपादन :</u>

गान्धीवादी विचारों का वैयक्तिक और राजनीतिक दोनों दृष्टियों से निरूपण इस काव्य में हुआ है । जीवन और राष्ट्रीयता के क्षेत्रों में ये क्रमशः मुखरित हुए हैं । सार्वजनिक तौर पर प्रयत्न करने के लिए ब्रह्मचर्य के व्रत को गान्धीजी ने अनिवार्य बताया और जीवान्त तक वे अटल व्रती रहे ।

होने लगा भान गांधी को
जब उनका मन हुआ प्रबुद्ध ,
-- -- --
ब्रह्मचर्य का आजीवन व्रत
किया उन्होंने अंगीकार ।।'[3]

गांधी के जीवन में कर्तव्यनिष्ठा तथा कृत्य- निष्ठा की अधिक प्रमुखता रहती थी । चंपारन पहुंचे गांधीजी को जिला छोड़ने की आज्ञा जो दी गयी और जिसे उन्होंने नहीं माना, तब उन पर आज्ञोल्लंघन का दोषारोपण किया गया । इस संदर्भ में उन्होंने बताया -

- -

१: जगदालोक - एकोनविंश सर्ग - पृ० ३२८ २: वही० विंश सर्ग - पृ० ३३०-३३१
३: जगदालोक - द्वितीय सर्ग - पृ० ३८

कहा उन्होंने वे आये थे
करने कृषकों का दुख दूर ,
कैसे फिर वे जा कि सकते थे
बिना प्रयत्न किये भरपूर ।। "[१]

जीवन के समस्त क्षेत्रों में उनकी सफलता और विजय जो दिखाई पड़ी, उसका प्राप्ति आत्म-बल अथवा आत्म- विश्वास ही था । इसका उल्लेख इस काव्य में यत्रतत्र मिल

" आत्मशुद्धि पर ही निर्भर है
मनुज जाति का सदाचरण,
-- -- --
दुर्भावों का निराकरण ।
-- -- --
विजित गौरव था उसके भीतर ।। "[२]

मशीनों, तोपों आदि के स्थान पर गांधीजी ने आत्मबल रूपी मिलपद्मी यन्त्र का आविष्कार किया और उसे भारत की जनता के सामने उपस्थित किया । यही उनका राष्ट्रीय यन्त्र तथा मन्त्र था ।

" गान्धी ने दिया आत्मबल का
भारत को एक विचित्र यन्त्र ।। "[३]

उन्होंने अभय का पाठ पढ़ाया था और सदा " मा भैः " का उच्चारण किया था

सबके श्रवणों में फूंक दिया
निर्भयता का सुखमूल मन्त्र
-- -- --
प्रेम अमित साहस बल से हैं
-- -- --
कर सकते हैं परिमार्जन ।। "[४]

यही उनके अनुसार लक्ष्य- प्राप्ति का मूल मन्त्र था ।

- -

१: जगदालोक - द्वितीय सर्ग - पृ० ३८   २: वही० पंचम सर्ग - पृ० ८०
३: वही० सप्तम एकादश सर्ग- पृ० १२०, १८६   ४: वही० दशम सर्ग-पृ० १७५

अहिंसा को उन्होंने सत्य के साक्षात्कार का परम साधन माना है और इसी साधन की साधनाकरने का उपदेश दिया है -

भारत को उस सत्य देव का
करना होगा आराधन ,
उसे प्राप्त करने का केवल
विमल अहिंसा है साधन ।। [१]

चरखा भारत की आर्थिक समस्या के निवारण का एक अच्छा साधन रहा जिससे अधिकांश जनता की जिन्दगी को उभारा जा सका । अत: चरखे का लौकिक जीवन में अत्यन्त महत्व है । इसका उल्लेख प्रस्तुत काव्य में यत्रतत्र किया गया है ।

गूंजने लगा चतुर्दिक् चारु
श्रुति- मधुर चर्खे का संगीत ,
हृदय - वीणा की मृदु झंकार
ध्वनित सी उसमें हुई प्रतीत ।। [२]

चर्खे की महिमा का कीर्तन किया गया है जो समस्त जनता को आकृष्ट कर सका था ।

मधुर कल्पना से स्वराज्य की
जो थी सदा अनुप्राणित ,
-- -- --
था उसमें अज्ञात रूप से
छिपा देश का आत्मिक बल ।। [३]

उपर्युक्त इन भावनाओं को व्यवहार के ढांचे में ढालकर भारत की भविष्य सृष्टि के लिए अपनी राय यों बतायी है । [४]

राजनीतिक कार्यों का चित्रण :

गान्धीजी ने राजनीति, समाज, अर्थ, धर्म आदि के क्षेत्रों में जो सुधारवादी स्तुत्य कार्य किये हैं, उन्हीं का चित्रण भी इसमें हुआ है । गान्धीजी अक्सर

- -

१: जगदालोक - अष्टम सर्ग - पृ० १४५, दे० पृ० १४६ २: वही० पृ० १४५,दे०पृ०१४६

[illegible] सर्ग पृ० १६५ ४: वही० सप्तम सर्ग - पृ० १२४-१२५,१२६

बताते थे कि देश की उन्नति ग्रामोन्नति पर निर्भर रहती है अत: उसका देशीकरण आवश्यक है। उन्होंने ग्रामोद्धार में अधिक ध्यान दिया था।

गांधीजी ने यह देखा
हो देश- दशा से परिचित,
-- -- --
था ग्रामों की उन्नति पर
उद्धार देश का निर्भर ।। [1]

इसी संदर्भ में कवि ने सेवाग्राम की महिमा का गीत गाया है जिसमें ग्रामोन्नति हिताय गांधीजी रहा करते थे।

गांधीजी ने किया दूसरा
सुंदर आश्रम स्थापित
जिसका नाम प्रसिद्ध हो गया
सेवाग्राम यथोचित ।। [2]

गांधीजी की नोआखाली यात्रा का वर्णन किया गया है। [3] ग्रामोद्धार के मूल में गांधीजी की हिन्दु - मुस्लिम एकता की भावना वर्तमान थी। इसी भावना के विकास में उन्होंने हरिजनों के विकास या उद्धार का प्रयास किया था। इसका वर्णन यों किया है। -

हिन्दु मुस्लिम घुलमिलकर
जब तक न एक हो जाते,
-- -- --
गांधीजी ने सोचा तब तक
स्वाधीन न होगा भारत ।। [4]

हिन्दु- मुस्लिम एकता स्थापित करने के लिए इक्कीस दिन का अनशन जो किया, उसी का चित्रण यों किया है। -

- -

१: जगदालोक - तृतीय सर्ग - पृ० ६१
२: वही० द्वादश सर्ग - पृ० २१४ दे० पृ० २१४-२१८
३: जगदालोक - चतुर्दश सर्ग - पृ० २५३-२५६
४: जगदालोक - तृतीय सर्ग - पृ० ६२

इक्कीस दिनों के अनशन का
सह लिया उन्होंने कठिन क्लेश,
जिससे निर्मल हो जाय पुन:
धर्मान्ध जनों का हृदय - देश [१]

उनका यह प्रयत्न सफल हुआ -

थे भारत के मुसलमान भी
असन्तुष्ट उसके कारण ,
-- -- --
बापू हुए परम आह्लादित
हुए और सब प्रोत्साहित ।। [२]

उनकी हरिजन- सेवा की प्रशंसा की है । जिसके लिए उन्होंने राष्ट्र- सभा से पूर्णत: नेतृत्व के पद का त्यागपत्र तक दे दिया ।

राष्ट्र सभा से पृथक महात्मा
धीरे धीरे होकर
हुए हरिजनों की सेवा में
पूर्ण रूप से तत्पर ।। [३]

जाति- भेद को मिटाने के सिलसिले में गान्धीजी ने हिन्दू मुसलिम एकता का समर्थन हमेशा किया है । सत्य और अहिंसा के द्वारा इसका उन्मीलन संभव है ।

सत्य अहिंसा द्वारा उसका
हो सकता है उन्मीलन
छिन्न भिन्न कर सकती है
पराधीनता का बन्धन ।। [४]

- -

१: जगदालोक - दशम सर्ग - पृ० ० १७६
२: वही० - सप्तम सर्ग - पृ० १२७
३: जगदालोक - द्वादश सर्ग - पृ० २१८, दे० पृ० २१६,२२०
४: जगदालोक - सप्तम सर्ग - पृ० ११७

गान्धीजी की सुधारवादी प्रवृत्तियों का निरूपण :

गान्धीजी ने देश की राजनीतिक , सामाजिक एवं आर्थिक समस्याओं को सुलझाने के लिए आन्दोलन, सत्याग्रह, अनशन आदि किये थे जिनका साहित्यिक महत्व भी है । उनके आन्दोलन की प्रकृति पर प्रकाश डाला गया है ।

' उनके आन्दोलन के केवल
न्याय सत्य ही थे आधार
अतिशयोक्ति होने देते थे
कभी नहीं वे किसी प्रकार ।। '[1]

सविनय अवज्ञा आन्दोलन का चित्रण कवि ने यों किया है ।

' अनुचित कानूनों की सविनय
होने लगी अवज्ञा नित्य
सत्याग्रही मनुज होते थे
बंदी हो होकर कृतकृत्य ।। '[2]

असहयोग आन्दोलन का उल्लेख इसमें किया गया है -

' अंग्रेजों के लिए भयंकर
असहयोग संग्राम हुआ ,
उनकी कुत्सित कूटनीति का
यह दुखमय परिणाम हुआ ।। '[3]

सत्याग्रह के सफल प्रयोग का वर्णन यहां किया गया है । उन्होंने अन्याय तथा अनीति के विरुद्ध लड़ने में सत्याग्रह का हथियार उठाया था । -

न्याय प्राप्त कर सकें नहीं जब
गांधी के जब वैधिक उद्योग ,

१: जगदालोक - द्वितीय सर्ग - पृ० ४० २: वही० पृ० ४१
३: जगदालोक - द्वितीय सर्ग - पृ० १२८,१२६,१३७,१३८,१३६,१४०,१४५

किया उन्होंने तब हताश हो
सत्याग्रह का दिव्य प्रयोग ।। [1]

दक्षिण- अफ्रीका में सत्याग्रह का सफलतापूर्ण प्रथम प्रयोग जो हुआ, उसी का चित्रण किया गया है ।

न्याय , अहिंसा प्रेम सत्य की
हुई अंत में विजय ललाम
सफल हो गया गांधीजी का
पावन सत्याग्रह संग्राम ।। [2]

गांधीजी के सुप्रसिद्ध खेड़ा सत्याग्रह का भी विस्तृत विवेचन कवि ने किया है । -

खेड़ा में बापू ने देखा
थे विपत्ति में दीन किसान ,
-- -- --
समझौता कर शासक गण ने
किया दूर कृषकों का क्लेश ।। [3]

उनके विस्तृत आमरण अनशन का प्रतिपादन किया गया है । हरिजनों को अछूत मानने के विरोध में इसका प्रयोग किया । -

होते थे हिन्दू समाज से
पृथक् सदा को हरिजन,
उसे रोकने को बापू ने
किया आमरण अनशन ।। [4]

आगाखान जेल में गांधीजी को बंद करने पर जनता ने घोर एवं नृशंस अत्याचार किया जिसके विरुद्ध उन्होंने इक्कीस दिन का अनशन किया । -

- -

१: जगदालोक - द्वितीय सर्ग - पृ० ४१
२: जगदालोक - द्वितीय सर्ग - पृ० ४४
३: जगदालोक - पंचम सर्ग - पृ० ८३, दे० पृ० ८७,१५३,१५२,१५४,१५८
४: जगदालोक - द्वादश सर्ग - पृ० २१०

गान्धीजी इक्कीस दिनों तक
अनशन करने लगे कठोर ,
भारत में चिन्ता - सागर की
उठी तरंगें चारों ओर ।। [1]

सत्याग्रह करने वाले सत्याग्रहियों का चारित्रिक मूल्यांकन किया गया है -

सत्याग्रही स्वयंसेवक थे
सच्चे सेवक अनुशासित
गांधीजी के अतुल तेज से
होते थे वे उत्तेजित ।। [2]

गान्धीजी के व्यक्तित्व की प्रकृति का उद्घाटन किया गया है -

बापू के प्रसन्न आनन की
मृदु स्मृति से रहकर शीतल ,
नहीं तनिक भी मुरझाती थी
उनकी हृदय कली कोमल ।। [3]

अवतार पुरुष के रूप में उनका चित्रण करके कवि ने परंपरागत प्रथा का पालन किया है -

सेवक दरिद्र - नारायण का
जो था सत्याराधक अनन्य
जिसकी निस्सीम महत्ता से
यह पुण्यभूमि थी हुई धन्य ।। [4]

गान्धीजी वैयक्तिक महिमा का, काव्य के बीच बीच में स्तवन किया गया है । [5] उनकी एक विशेषता यह थी कि वे आजीवन सोत्साहपूर्ण कर्मठ व्यक्ति थे । [6] गान्धीजी इतने

- -

१: जगदालोक - त्रयोदश सर्ग - पृ० २३८ २: वही० नवम सर्ग - पृ० १५३, दे० पृ० १५४
३: वही० पृ० १५६ ४: वही० दशम सर्ग - पृ० १७०
५: वही० दशम सर्ग - दे० पृ० १७० - १७७, १८६, २५८ - २७९, ३०६-३०६, ३१२ - ३१४, ३३२ - ३४१
६: वही० द्वादश सर्ग - पृ० २०७ - २१०

महान और सर्वप्रिय थे कि उनका स्वागत सबकहीं हुआ करता था । मानव और प्रकृति दोनों उनका स्वागत करने के लिए खड़े होते थे ।

जहां जहां जाते थे बापू

-- -- --

होता था उनका शुभ स्वागत ,

-- -- --

मधुमधु ने उनके स्वागत में

-- -- --

सजी द्रुमों की डाली डाली ।। [१]

भारत के पौराणिक ग्रंथों में कारागृह को पवित्र तथा दिव्य माना गया है । इसका कारण शायद यही हो सकता है कि भगवान श्रीकृष्ण का जन्म कारागृह में ही हुआ था । इस परंपरा का पालन गांधीवादी काव्यों में भी दिखाई पड़ता है । इन कवियों ने गांधीजी को श्रीकृष्ण के रूप में चित्रित करके वे जितने कारागृहों में बंदी रहे थे, उनको पावन एवं निर्मल बताया है । यह इन कवियों की एक विशेष प्रवृत्ति रही है । इस महाकाव्य में भी कवि उसका वर्णन करना भूले नहीं हैं । -

तीर्थस्थल की पावनता से

कारागार हुए मंडित,

हुए मनोज देशरत्नों की

विमल प्रभा से आलोकित ।। [२]

गांधीयुगीन राजनीतिक परिस्थितियों का चित्रण :

इसमें गांधीजी के समय के देश में वर्तमान हलचल का चित्रण किया गया है । खेड़ा - चंपारन - कृषक - समस्या, जालियांवाला बाग, चौरीचौरा-हत्याकाण्ड , बिहार भूकंप, नाजीदल - अत्याचार, जापान युद्ध, कांग्रेसी त्रि-दल, साइमन- कमीशन, गोलमेज- परिषद, गांधी - जिन्ना वार्तालाप, लाहौर- कांग्रेस सभा,

- -

१: जगदालोक - एकादश- पंचदश सर्ग - पृ० १६१, २६८

२: जगदालोक - नवम सर्ग - पृ० १६१, दे० पृ० १६२,१६५

जिसमें भारत की पूर्ण स्वतन्त्रता की प्रस्तावना की गयी थी, दण्डी यात्रा आदि विविध घटनाओं का विवेचन है।

निष्कर्ष :

गांधी जी के जन्म लेकर उनकी मृत्यु तक की घटनाओं को विषय बनाकर बीस सर्गों में इस महाकाव्य की रचना हुई है। उनसे संबंधित सारी वस्तुओं, स्थलों एवं उनके द्वारा मूल - कार्यों और तत्कार्य - जन्य घटनाओं का विस्तृत परिचय भी है। प्रथम सर्ग में देश की परतंत्र एवं उससे पूर्व कालीन परिस्थितियों का एक विश्लेषणात्मक प्रस्तुतीकरण जो किया गया है, वह इस काव्य के लिए पृष्ठभूमि का कार्य कर सका है।

जगदालोक एक आदर्शवादी काव्य है। गांधीजी और कस्तूर बा का दांपत्य जीवन दुनिया के समक्ष एक आदर्शवादी जीवन प्रस्तुत करता है। उनका जीवन सर्वजनहितोपकारी तथा विश्वकल्याणोन्मुखी रहा है। दोनों ने देश की भलाई के लिए अपना जीवन बिताया। इस दृष्टि से उनका जीवन रामकृष्ण परमहंस और शारदा देवी के जीवन से समता रखता है। कवि ने इस काव्य में वर्णित घटनाओं और विचारों को कल्पना के रंगों से कहीं भी रंगा नहीं है। उन्होंने इसको आंखों देखा वर्णन किया है। और इसमें काल्पनिक कृत्रिमता की बात ही नहीं उठती। इसका कारण तो यही है कि उनका संपूर्ण जीवन हमारे सामने बिखेर पड़ा है।

गांधीजी की निधन संबंधी घटनाओं के प्रतिपादन की दृष्टि से इस काव्य का "सप्तदश सर्ग" अत्यन्त महत्वपूर्ण है। बिरला मंदिर की प्रार्थना सभा में गांधीजी ने जनता को जो उपदेश वचन सुनाये, उन रत्नों को पिरोकर छोटी छोटी छन्द-मालाएं बनायी हैं। उनकी मृत्यु के पश्चात् की घटनाओं का अत्यन्त मार्मिक एवं हृदयस्पर्शी चित्रण किया गया है। उन्हें इस सर्ग में स्वतन्त्रता - दाता के रूप चित्रित किया गया है। क्योंकि उन्हीं के परिश्रम से भारत को आजादी मिली है। इस काव्य की रचना के प्रारंभ से लेकर समाप्ति तक कवि ने अत्यंत श्रद्धा तथा विवेक से काम लिया है; कदापि और कहीं भी निर्माण - पथ से अपने को विचलित होने नहीं दिया है। अत: इसके विचार और भाव पंकिलता, कृत्रिमता, कपट, नकल आदि से सदा अछूते रहे हैं।

कुछ नवीनताएं :

इस काव्य में कवि की विशिष्ट वैयक्तिकता से बनी कुछ नवीन उद्भावनाएं दृष्टव्य हैं जिनमें काव्यारंभ की बात विशेषतया उल्लेखनीय है। इस काव्य का आरंभ 'हिमालय की प्राकृतिक सुषमा से हुआ है। जहां पार्वती - परमेश्वर के वार्तालाप का प्रसंग चित्रित किया गया है। इस वार्तालाप में कवि ने भारत की कथा पर प्रकाश डालने का प्रयास किया है जिससे इस काव्य में आत्मीयता और दिव्यता का समावेश दिखाई पड़ता है। यह एक नवीन प्रवृत्ति है। यह नवीन प्रवृत्ति, देश की पौराणिक परंपरा में कवि की रुचि को स्पष्टत: प्रकट करती है। इसमें शांत, वीर, करुण, अद्भुत, भयानक, आदि रसों का प्रतिपादन भी यत्र-तत्र हुआ है। लेकिन शृंगार रस का विवेचन तो पूर्णत: त्यक्त है। कवि ने द्विवेदी युग की इतिवृत्तात्मक शैली में इसका सृजन किया है।

गांधीजी महान व्यक्ति थे। महान व्यक्तियों के जीवन को विषय बनाकर काव्यों की रचना हुई है और होती भी है। यह तो कवि- जगत में एक साधारण सी बनी है।

साकेत :

' साकेत ' रामायण- कथा के आधार पर रचित महाकाव्य है। 'साकेत 'की रचना करके गुप्तजी ने ' उपेक्षिता उर्मिला ' के प्रति अपनी श्रद्धा प्रकटकी है। राम- सीता और लक्ष्मण- उर्मिला के जीवन में घटित विविध घटनाओं का व्यापक चित्रण इसमें हुआ है। इस प्रकार यह काव्य इन युगल दम्पतियों का जीवन- काव्य अथवा चरित-काव्य है जिससे उनके जीवन और चरित्रों का परिचय हमें प्राप्त होता है।

' साकेत ' की आधुनिकता अथवा नवीन उद्भावना की विवेचना करते हुए साकेत पर पड़ा गांधीवाद का प्रभाव भी विचारणीय है। साकेत में गांधीवादी विचारों का व उल्लेख बहुत कम मिलता है। यह तो इसमें यत्तत्र ही मिलता है। अत: साकेत का रचनात्मक उद्देश्य ' उपेक्षिता उर्मिला' का उद्धार होने पर भी कवि ने इसमें गांधीवाद की जो चर्चा की है वह गांधीजी से प्रभावित प्रेरणामूलक युग धर्म ही कहा जा सकता है। साकेत पर पूर्णत: गांधीवाद का प्रभाव न पड़ने का कारण डा० कमलाकांत पाठक जी ने बताया है कि काव्य की कई सर्गों के लिख चुकने के कारण पूर्णत: उस पर

उस पर गांधीवाद का प्रभाव न पड़ सका ।[1]

गांधीवाद का प्रतिपादन :

गांधीवाद के विभिन्न विचारों को सर्ग प्रस्तुत किया गया है। जब लक्ष्मण ने बताया कि वह हमेशा उर्मिला का ही प्रणाम- सेवी है, तब उसने वासना-रहित कर्म को बताया है -

यह क्या धर्म है ?
कामना को छोड़कर ही कर्म है ।[2]

राजा दशरथ सत्य के पुजारी थे और उन्होंने विश्व का अस्तित्व सत्य पर स्थिर माना है। सत्य पर उनका यही कथन है -

सत्य से ही स्थिर है संसार ,
सत्य ही सब धर्मों का सार,
राज्य ही नहीं, प्राण - परिवार ।
सत्य पर सकता हूं सब वार ।।[3]

यहां यह बात स्मरणीय है कि गांधीजी की ' आत्मकथा ' अथवा जीवन- कथा ' सत्य का प्रयोग ही है । उन्होंने अपने जीवन में सत्य की खोज और उसके प्रयोग का प्रयास किया है । अतः उन्होंने अपनी जीवनी का सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा ' रखा है । सत्य उनके लिए साक्षात् परमेश्वर है । और उनसे साक्षात्कार करना अपना जीवन- लक्ष्य था । यह दशरथ भी इसी लक्ष्य और साक्षात्कार से प्रभावित दिखाई पड़ते हैं ।

त्याग भावना :

रामचन्द्रजी में अतुल त्याग भावना वर्तमान है । उन्होंने अपनी पितृ-आज्ञा का पालन करने के लिए वनगमनार्थ अपने राज- कांज एवं सुख- सुहाग को त्याग दिया।

- -

१: साकेत- रचना की अवधि के भीतर ही गुप्तजी पर गांधीजी का प्रभाव पड़ सका, पर काव्य की रूप-रेखा तैयार हो चुकी थी और कतिपय सर्ग लिखे भी जा चुके थे। -
- मैथिलीशरण गुप्त : व्यक्ति और काव्य,डा०कमलाकांत पाठक,पृ० ५१०

२: साकेत - प्रथम सर्ग - पृ० ३१ ३: वही० द्वितीय सर्ग - पृ० ६४

छू सकता कब पाप इन्हें ?
प्राप्त पुत्र है आप इन्हें ।
प्राप्य राज्य भी छोड़ दिया
किसने ऐसा त्याग किया ?' [1]

इनकी त्याग- भावना का समर्थन लक्ष्मण के द्वारा हुआ है । रामचन्द्रजी में गांधीजी की सर्वत्यागवृत्ता का भाव भी अंकित हुआ है ।

भरत ने राज्य को समष्टि- रूप देने और उसे सर्वजन हिताय उपस्थित करने की बात कही है और इसके लिए बलिदान की आवश्यकता पर बल दिया है । -

' तात, राज्य नहीं किसी का वित्त ,
-- -- -- --
नियत शासक लोक- सेवक मात्र ।।' [2]

वीरता का भाव :

साकेत की नायिकाओं नारियों और क्षत्रिय पुरुषों में वीरता का भाव निहित है । सुमित्रा में वीरता की भावना वर्तनीय है ।

स्वत्वों की भिक्षा कैसी ?
-- -- --
आर्य भाव उद्दीप्त रहे ।। ' [3]

सुमित्रा ने वीर - शूर पुत्र की माता होने के कारण वीरता का गुणगान किया है -

' हम पर - मान नहीं लेंगी ,
-- -- --
न वे और का लेते हैं ।। ' [4]

राम ने स्वयं अपने वीरत्व का परिचय दिया है । उन्होंने धर्म को श्रेष्ठ माना है - धन-धाम को नहीं । -

- -

१: साकेत - चतुर्थ सर्ग - पृ० ९९ २: वही० - सप्तम सर्ग - पृ० २०२ -२०३
३: वही० - चतुर्थ सर्ग - पृ० १०१ ४: वही० चतुर्थ सर्ग - पृ० १०२

प्रबल तुम्हारा राम नहीं,
विधि भी उस पर वाम नहीं ।
वृथा क्षोभ का काम नहीं
धर्म बड़ा धन- धाम नहीं ।। "[1]

रामचन्द्रजी अकारण विद्रोह नहीं करना चाहते थे । जब रामचन्द्रजी वन जाने के लिए तैयार हुए, तब जनता ने मार्ग में उनको रोकते हुए बड़ा कोलाहल मचा दिया ।[2] इसे रामचन्द्रजी ने अनावश्यक माना और उनसे उसे समाप्त करने का अनुरोध किया ।-

उठो, प्रजा- जन, उठो, तजो यह मोह तुम ,
करते हो किस हेतु विनत विद्रोह तुम ? "[3]

इसकी तुलना कवि ने गांधीजी के सविनय अवज्ञा आन्दोलन से की है, जिस पर अहिंसावादी गांधीवाद का प्रभाव स्पष्ट है । रामचन्द्रजी ने मारने की अपेक्षा मरने का समर्थन किया है । -

" आर्य, तब भी हमें कौन भय है भला ?
वह मरने भी चला, मारने जो चला ।। "[4]

भरत ने राजत्व और विद्रोह का अन्त करके रामराज्य की स्थापना करने की इच्छा प्रकट की है । गांधीजी ने भी इस प्रकार भारत देश को रामराज्य बनाने का स्वप्न देखा था, यद्यपि वह सफल नहीं हो सका है ।

अनुज, इस राजत्व का हो अन्त,
हन्त ! जिस प्रकार कैकयी के दन्त ।
किन्तु राजे राम-राज्य नितान्त -
विश्व के विद्रोह करके शान्त ।। "[5]

भरत न्याय का पक्षपाती है । रामचन्द्रजी के रहते ही वह राज्यभार अपने सिर पर लादना नहीं चाहता क्योंकि न्याय के अनुसार वेही राजा होने वाले हैं । अतः

- -

१: साकेत - चतुर्थ सर्ग - पृ० १०३ २: साकेत - चतुर्थ सर्ग - पृ० १२६
३: वही० पृ० १२६ ४: वही० - पंचम सर्ग - पृ० १५४
५: वही० सप्तम सर्ग - पृ० २०३३

उसने राज्य को स्वीकार नहीं किया । इस पर दुःखी कैकेयी ने कहा है -

> ' प्राप्त अपने आप ही यह राज्य
> कर दिया तृण- तुल्य तुमने त्याज्य ।। '[१]

रामनाम की महिमा का स्तवन इसमें हुआ है । उस पावन नाम की विश्व-व्यापकता की ओर भी संकेत किया गया है ।-

> जो नाम मात्र ही स्मरण मदीय करेंगे ,
> -- -- --
> वे औरों को भी तार, पार उतरेंगे ।। [२]

रामनाम और सत्य के बीच के तात्त्विक संबंध का उल्लेख किया गया है । -

> सत्य है स्वयं ही शिव, राम सत्य - सुन्दर है ,
> सत्य काम सत्य और रामनाम सत्य है ।। [३]

रामचन्द्रजी जन-नायक तथा जनकल्याण के रूप में चित्रित किये गये हैं, जो गांधीजी के प्रतिरूप हैं -

> निज रक्षा का अधिकार रहे जन-जन को ,
> सबकी सुविधा का भार किन्तु शासन को
> -- -- --
> सन्देश यहां मैं नहीं स्वर्ग का लाया ।
> इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आया ।। '[४]

पुण्यपथ पर चलने वाला अभय रहता है । इसका समर्थन सीताजी ने किया है -

> भय न हो उन्हें जो सदय पुण्य-पथ- गामी ।। '[५]

रामचन्द्रजी की मानवता दिखायी गयी है । वे इस पृथ्वी पर सच्चे मानव के रूप में अवतरित हुए हैं जो सत्यतः नारायण हैं । विभीषण ने ऐसे देश की चाह प्रकट की है जिसमें अन्याय, अनीति आदि नहीं रहते । -

- -

१: साकेत - सप्तम सर्ग - पृ० २११ २: वही० पृ० २३५
३: वही० पृ० २१८ ४: वही० अष्टम सर्ग -पृ० २३४,२३४,२३५
५: वही० अष्टम सर्ग - पृ० २३७

" पर वह मेरा देश नहीं जो
करे दूसरों पर अन्याय ।। "[१]

इसमें विश्वमंगल की भावना दर्शित होती है -

" एक देश क्या अखिल विश्व का
तात चाहता हूं मैं त्राण ।। "[२]

राम और रावण में जो शत्रुता थी वह मिट गयी और व वे दोनों मित्र बन गये। यहां गांधीजी द्वारा प्रतिष्ठित शत्रु- मित्र मैत्री तथा हृदय परिवर्तन का चौतन हुआ है। राम ने रावण से यों कहा -

" आ भाई, वह बैर भूलकर
हम दोनों समदु:खी मित्र
आ आ क्षण भर भेंट परस्पर ।। "
कर लें अपने नेत्र पवित्र ।। "[३]

भरत ने रामचन्द्रजी के दर्शनार्थ वन को प्रस्थान करते वक्त जो वचन कहा उसमें करो या मरो का भाव सुव्यक्त है। -

लौटूंगा तो साथ उन्हीं के, और नहीं तो -
नहीं नहीं, वे मुझे मिलेंगे भला क्यों तो ।। "[४]

भरत के इस कथन में अहिंसा की हिंसा पर विजय की घोषणा है -

असुरों पर निज विजय सुरों ने पायी जितने ,
-- -- -- --
उनके करगत अब हुए आप ऊंचे फल जितने ।। "[५]

सुमित्रा बड़ी कर्त्तव्यशील नारी है और उसने भरत को अपने कर्त्तव्य निभाने का उपदेश दिया-है

१: साकेत - एकादश सर्ग - पृ० ४३७ २: वही० पृ० ४३७
३: साकेत - एकादश सर्ग - पृ० ४४६ ४: साकेत - द्वादश सर्ग - पृ० ४५४
५: वही० पृ० ४५६

' जा भैया, आदर्श गये तेरे जिस पथ से ।,
कर अपना कर्तव्य पूर्ण तू उति तक अथ से ।। '[1]

अयोध्या की जनता में पुनुर्शक्ति और रामराज्य की भारी उमंग है -

' जाओ अपने रामराज्य की आन बढ़ाओ ,
वीरवंश की बान, देश का मान बढ़ाओ ।। '[2]

रामचन्द्रजी क पर गांधीजी का प्रभाव अवश्य खूब पड़ा है । उनका लक्ष्य अवश्य गांधीजी के लक्ष्य से कुछ संबंधित जान पड़ता है । उनके जीवन- लक्ष्य के बारे में डा० पाठक जी ने कहा है - ' आर्यादर्श की शिक्षा, त्याग का महत्व, सुख-शांति की स्थापना, पीड़ितों की रक्षा, मानव में देवत्व की प्रतिष्ठा, पृथ्वी में स्वर्ग का निर्माण, स्वार्थ- वर्जना और मानवता के चरमोत्कर्ष का चरितार्थ अवलंब राम के उद्देश्य सूत्र हैं । '[3]

इसके अष्टम सर्ग में रामचन्द्रजी की सेवा- तत्परता और विश्व- मंगल की भावना की कामना जो व्यक्त हुई है वह सचमुच गांधीजी से प्रभावित है । राम- रावण युद्ध आदि में त्याग की जो मनोवृत्ति पायी जाती है, वह गांधीवादी अहिंसा से भिन्न नहीं है । रामचन्द्रजी के चरित्र पर गांधीजी के चरित्र का प्रभाव पड़ा है । उनमें अतुल और उन्नत त्यागमयता, अनन्य पितृ- भक्ति, तीव्र स्वकुल मर्यादा, अपार विनय, अखण्ड न्याय, नीति- विधान विद्यमान हैं । -

' और देखो मातृवर की ओर
— — —
स्वकुल मर्यादा, विनय, नय - नीति ।। '[4]

सीताजी चित्रकूट में रहते वक्त वन्य- स्त्रियों को कातने - बुनने की कला सिखाती हैं जिससे कि वे अर्द्ध- नग्न न रह जाएं । -

' तुम अर्द्ध - नग्न क्यों रहो अशेष समय में ।
आओ हम कातें बुनें गान की लय में ।। '[5]

- -

१: साकेत- द्वादश सर्ग - पृ० ४५८ २: वही० पृ० ४६५ ३: मैथिलीशरण गुप्त: व्यक्ति और काव्य - डा०कमलाकान्त पाठक - पृ० ४३१ ४: साकेत-सप्तम सर्ग-पृ० २०६
५: वही० अष्टम सर्ग - पृ० २२७

इससे यह स्पष्ट होता है कि वैदिक युग से ही चरखा और खादी का प्रचार था। गांधीजी ने दरिद्र जनता को चरखा चलाने की कला समझा दी और वे स्वयं अर्द्ध-नग्न रहकर दूसरों को वस्त्र दिलाने का प्रयत्न करते थे।

उर्मिला अपने पति लक्ष्मण के वन जाने के कारण सब कुछ त्याग देती है। वह खाती नहीं, पीती नहीं, सोती नहीं, कुछ नहीं करती, एक प्रकार का हठ लेकर बैठ जाती है।

" पीऊं हा, खाऊं हा सखि पहनूं हा, सब करूं ;
जिऊं मैं जैसे हो, यह अवधि का अर्णव तरूं ।।
-- -- --
अरी कैसे भी तो पकड़ प्रिय के वे " पद मरूं ।। "[१]

उर्मिला मनुष्य मात्र को नहीं, सकल पक्षियों, प्राणियों, पशुओं को स्वतंत्रतापूर्वक रहने देना चाहती है। अतः उसने एक जगह कहा है -

" सखि, विहग उड़ा दे, हों सभी मुक्ति मानी। "[२]

उसमें अपने राष्ट्र के प्रति अपार श्रद्धा भक्ति और प्रेम है। वह बड़ी राष्ट्र-सेविका है। इसलिए वह अपने पति के कर्तव्य- पथ पर बाधा डालना नहीं चाहती। उनके साथ वन जाने की इच्छा रहने पर भी वह नहीं जा सकती। अपने को वह स्वयं संभालना चाहती है और कहती है कि अरे मन तू शांत रह। प्रिय के व कर्मपथ में कोई बाधा न उपस्थित कर। उर्मिला अपने पति से संयम का काम करने को कहती है -

" मेरी चिंता छोड़ो
मग्न रहो नाथ, आत्म-चिंतन में, ।। "[३]

वह किसानों का गुणगान करती है। उसके अनुसार सच्चा राष्ट्र किसानों के द्वारा ही स्थापित हो सकता है। उनके उद्धार से ही देश का उद्धार संभव है। -

" हम राज्य लिए मरते हैं ?
सच्चा राज्य परंतु हमारे कर्षक ही करते हैं।। "[४]

१: साकेत- नवम सर्ग - पृ० २७२ २: वही०पृ० २७८ ३: वही० पृ० २६० ४: वही०पृ० ३०७

राम-रावण के युद्ध की तैयारी होने वाली है। इसे सुनती ही उर्मिला अपना युद्ध-विरोध प्रकट करती है। वह लंका की सेना को साकेत में लाना नहीं चाहती। अत: वह तुरंत कह उठती है। -

> ' नहीं नहीं पापी का सेना ,
> यहां न लाना, भले सिन्धु में वहीं डुबोना ।। '[१]

गुप्तजी गांधीजी के इस महान तत्व - पाप से घृणा करो, पापी से नहीं - से प्रभावित हैं। इसलिए कवि ने रामचन्द्रजी के द्वारा प्रस्तुत कथन का समर्थन किया है। -

> ' मुझे जाता समझकर आज वन को,
> न यों कलुषित करो प्रेमांध मन को।
> तुम्हीं को तात यदि वनवास देते ,
> उन्हें तो क्या तुम्हीं यों त्रास देते ।। '[२]

कौसल्या धर्म-परायण और कर्तव्यशीला नारी है जो रामचन्द्रजी को वन भेजना ही चाहती है -

> जाओ, तब बेटा! वन ही
> -- -- --
> लेकर वही लौट आओ ।। '[३]

रामचन्द्रजी के चरित्र में गांधीजी की चारित्रिक विशेषताओं का दर्शन मिलता है -

> लेकर उच्च हृदय इतना,
> नहीं हिमालय भी जितना,
> तुमने मानव- जन्म लिया ,
> धरणी-तल को धन्य किया ।। '[४]

गांधीजी के हृदय- परिवर्तन संबंधी विचारों का प्रभाव कैकेयी के चरित्र पर स्पष्टत:

- -

१: साकेत - द्वादश सर्ग - पृ० ४७४ २: वही० तृतीय सर्ग - पृ० ७६
३: वही० चतुर्थ सर्ग - पृ० १०७-१०८ ४: वही० पृ० १०६

लक्षित होता है। डा० पाठक जी ने कहा है - "कैकेयी का चरित्र हृदय- परिवर्तन के प्रसंग विधान का ज्वलंत उदाहरण है।"[१] वह तो पहले आगामी आपत्तियों को सोचे बिना अनजान हो दशरथ से दो वर मांग लेती है जिससे साकेतपुर दुःख सागर में डूब जाता है। लेकिन आगत विपदाओं को देखकर वह अपने कृत्य पर पश्चाताप करती है। जब महाराज दशरथ की मृत्यु हो जाती है, तब उसका पथरीला कठिन दिल मन पिघल जाता है और उसमें बड़ा परिवर्तन आ जाता है। वह शोकाकुल हो यों रटती है। -

> क्या कहूं मैं ?
>
> -- --
>
> भरत होता यहां तो मैं बताती ।। "[२]

वह तो अपने को पति- घातिनी मानती है और अपने दुष्कर्म के लिए सुत भरत से दण्ड मांगती है। इस काव्य के अंत में आते ही कैकेयी वीरांगना बनती है और वह साकेत - सेना का अनुगमन करना चाहती है। -

> " भरत जाएगा प्रथम और मैं यह मैं जाऊंगी,
> ऐसा अवसर भला दूसरा कब पाऊंगी ?"
>
> -- -- --
>
> जाऊंगी अब पुत्र संग भी अरि संगर में ।। "[३]

इन उदाहरणों से कैकेयी के हृदय- परिवर्तन की बात स्पष्ट होती है। सीता में स्वतंत्रता और स्वावलंबन की भावना निहित है।

> " औरों के हाथों यहां नहीं पलती हूं,
> अपने पैरों पर खड़ी आप चलती हूं।
>
> -- -- --
>
> अपने अंचल से व्यंजन आप झलती हूं ।। "[४]

१: मैथिलीशरण गुप्त : व्यक्ति और काव्य - डा० कमलाकांत पाठक - पृ० ४५५
२: साकेत - तृतीय सर्ग - पृ० ७६
३: साकेत - द्वादश सर्ग - पृ० ४५८-४५६ ४: साकेत- अष्टम सर्ग- पृ० २२१

गांधीजी का रामराज्य और साकेत का रामराज्य दोनों एक ही हैं। राज्य में दायित्व का ही भार ' इस कथन में गांधीजी को ध्वनि स्पष्ट है।' प्रजा की थाती ' गांधीजी के 'ट्रस्टी ' का द्योतक रही है।

' साकेत ' में गांधीवादी विचारों को दो प्रकार से प्रस्तुत किया गया है। एक तो पात्रों के चरित्रों द्वारा उनका विवेचन हुआ है। और दूसरा साकेत-नगर की कार्य- कारिणियों के घटित होने के द्वारा हुआ है। साकेत के राम- लक्ष्मण भरत आदि पुरुष- पात्रों एवं सीता, उर्मिला, मांडवी, कैकेयी आदि नारी- पात्रों पर गांधीवाद का प्रभाव पड़ा है। इन पात्रों के विचारों और गांधीजी के विचारों में समता है। साकेतकार गुप्तजी भी गांधीवाद से प्रभावित हैं। और साकेत पर गांधी-वाद की छाप लगने का कारण बताते हुए डा० नगेन्द्र ने कहा है - ' साकेत उस युग की कृति है जो आज समाप्त-प्राय: है , जिसकी अनुभूतियां और प्रवृत्तियां आज आउट आव डेट हो चुकी हैं। जिनकी आधुनिकता पर आज प्रश्नसूचक चिह्न लगा हुआ है। वह युग तो पूर्ण सदी गांधी-युग था - अत: साकेत की संस्कृति पर गांधीयुग का प्रभाव था। अत: साकेत की संस्कृति पर गांधीवाद का रंग है।'[१] सच है कि साकेत की संस्कृति, राजनीति, समाज, धर्म आदि में गांधीवादी विचार - मद की भाव- धारा प्रवाहित हुई है।

गुप्तजी गांधीवाद के धार्मिक स्वरूप से अधिक प्रभावान्वित दिखाई पड़ते हैं। अत: साकेत में उसका व्यावहारिक रूप ही अधिक मात्रा में लक्षित होता है। साकेत में गांधीवाद की सफलता इसलिए हुई है कि इसकी राम- सीता, लक्ष्मण-उर्मिला, भरत- मांडवी आदि युगल मूर्तियां गांधीवाद और गांधीजी से दोनों से समानत: पूर्ण रूप से प्रभावित हुई हैं। अन्यथा इसकी ऐसी सफलता संभव नहीं हो सकती। यह गांधीवादी दृष्टि से साकेत की एक विशेषता मानी जा सकती है।

<u>साकेत - संत :</u>

जिस प्रकार श्री मैथिलीशरण गुप्त और श्री बालकृष्ण शर्मा नवीन ' ने उपेक्षिता उर्मिला को ' साकेत ' और उर्मिला' महाकाव्यों की नायिका बनाकर उसे

- -

१: साकेत - एक अध्ययन - डा० नगेन्द्र - पृ० १८

समाज के समक्ष प्रत्यक्ष रूप से खड़ा किया। उसी प्रकार डा० बलदेव प्रसाद मिश्र ने उपेक्षित `भरत` को अपने महाकाव्य `साकेत संत` का नायक बनाकर समाज की दृष्टि से स्तुत्य कार्य किया है। साकेत का संत भरत ही है; मगर कवि ने उसका असली नाम न देकर, परोक्ष रूप से उसे सूचित करके पाठकों को जिज्ञासु बनाया है।

इसमें कविने भरत के जीवन का चित्रण किया है। और उसके चरित्र की महत्ता का प्रतिपादन करने का प्रयास भी किया है। इसकी पृष्ठभूमि के रूप में उन्होंने रामचन्द्रजी के जीवन को भी उभारा है। इस प्रकार रामचन्द्रजी की जीवन-गंगा के साथ भरत और मांडवी की जीवन- नदियां भी चलती हैं। और अन्त में तीनों का मिलन हो जाता है जहां त्रिवेणी संगम होता है।

प्रथम सर्ग :

यहां कवि ने साकेत पुर का सुंदर चित्रण राजा दशरथ के चारों कुमारों के विवाहोपरांत के उपलक्ष्य में किया है, जिससे साकेत-पुर उत्साह और उल्लास से प्रफुल्लित हो जाता है। इसके बाद उन्होंने भरत और मांडवी के प्रेम- संलाप का चित्रण किया है जिसमें उनके मामा युधाजित के साथ केकय देश को जाने की बात प्रमुखत: उठती है। भरत और मांडवी के केकय देश पहुंचने से यह सर्ग समाप्त होता है।

दूसरा सर्ग :

केकय देश की प्रकृति- सुषमा का चित्रण किया गया है। प्रकृति ने भरत का स्वागत किया है। इसी वक्त युधाजित् और भरत दोनों हिमालय की तलहटी पर पहुंचे। भरत ने एक कस्तूरी मृग का शिकार किया; बाद में वह अत्यंत दु:खी हुआ। लेकिन युधाजित ने इसे मृगया में सफलता बताया। इस सर्ग में कवि ने उस समय के राजनीतिक, धार्मिक और सामाजिक क्षेत्रों में प्रतिदिन दिखाई पड़ने वाली हिंसा और अनीति की प्रवृत्तियों के बारे में भरत के मुंह से बहुत कुछ कहलाया है। उस समय की राजनीति में संघर्ष ही सब कुछ था और उसी पर देश की उन्नति मानी जाती थी। -

संघर्ष जगत का जय है।
संघर्ष जगत की गति है।

संघर्ष केन्द्र पर निर्भर ,
अपनी उन्नति की स्थिति है ।। '[1]

उस दिन शासक जनता से यही अनुरोध किया करते थे -

' शोषण का भय तुम छीलो ,
पोषण अपना तब होगा ।
यदि उर कोमल कर लोगे,
उत्कर्ष कहां कब होगा ? '[2]

निर्धनों का शोषण करते हुए बड़े बड़े महलों की बनावट होती थी -

शूद्रों की बलिवेदी पर,
पनपी है सदा महत्ता ।
निर्धन कुटियों को ढाकर,
निखरी महलों की सत्ता ।। '[3]

देश में तब मत्स्य - न्याय ही चलता था -

' (है मत्स्य न्या-य ही जग में,
लघु को महान खा जाते ।
जो हैं अवध्य औरों के,
बस, वे ही हैं रह पाते ।।)[4]

इतना ही नहीं, जनता के लिए अर्थ ही सर्वस्व था और अर्थ के तौल पर मान- सम्मान होता था -

' जो विविध काम के पूरक -
अर्थों का संग्रह करता ।
इस जग में धर्म वही है
जो कुछ वह है आचरता ।। '[5]

- -

१: साकेत संत - द्वितीय सर्ग - पृ० ३४ २: वही० पृ० ३४ ३: वही० ३४
४: वही० पृ० ३५ ५: वही० पृ० ३५

यहां भरत और युधाजित के बीच में जो संवाद हुआ है, उसी में ऊपर की सारी बातें आयी हैं। इस संवाद में भरत अहिंसा के पक्ष का समर्थन करता है जब युधाजित हिंसा के पक्ष का। अंत में भरत ही विजयी होता है और अहिंसा की जीत होती है। इसी समय अवध से एक दूत आकर भरत को लौट आने का संदेश सुनाता है। भरत के अयोध्या की ओर प्रस्थान होने से यह सर्ग समाप्त होता है।

तृतीय सर्ग :

भरत साकेत पहुंचा। वहां का वातावरण बहुत शोकाकुल था। बाद में कैकेयी - भरत के संवाद से भरत ने जान लिया कि राजा दशरथ स्वर्ग सिधारे, रामचन्द्र जी वन चले गये और उसको युवराज घोषित किया गया है। रामचन्द्रजी के रहते हुए उसे राजा बनाना वह नहीं चाहता था। इस सर्ग के अंत में भरत ने मंथरा के प्राण को बचाया जिसे शत्रुघ्न पीट रहा था।

चतुर्थ सर्ग :

भरत बीती घटनाओं के बारे में सोचता रहता है। उसने अपने मन को संतुष्ट कर व कर्म- पथ पर चलने का निश्चय किया।

पंचम सर्ग :

भरत पिताजी की मृत्यु और राम- वन- गमन पर अत्यंत व्याकुल और चिंतित था। उसी समय वशिष्ठ मुनि और मंत्रियों ने राज्याभिषेक की बात बतायी। भरत ने मना किया। वह राजा बनना नहीं चाहता था। उसकी दृढ़ता देखकर कैकेयी मूर्छित हो गयी और भरत ने उसे संभाल कर लिटा दिया।

षष्ठ सर्ग :

कैकेयी वशिष्ठ मुनि के पास जाती है और उसके किये पर अपना पश्चात्ताप प्रकट करती है। इस सर्ग में कवि ने दशरथ की शव- दाह - क्रिया का वर्णन किया है। कैकेयी ने अपने पति के साथ उसी आग में जलकर सती होने की इच्छा प्रकट की। मगर भरत ने उसे रोका। शव- दाह के बाद सब अयोध्या को लौटे।

सप्तम सर्ग :

इसमें अयोध्या के राज- पथ के बारे में वहां के लोगों के बीच में जो चर्चा होती है उसीका वर्णन है। भरत रामचन्द्र जी से मिलने के लिए चित्रकूट (शृंगवेरपुर) जाने का वर्णन किया गया है। भरत के चित्रकूट पहुंचने से यह सर्ग समाप्त हो जाता है।

अष्टम सर्ग :

यहां शृंगवेरपुर का वर्णन किया गया है। भरत सेना के साथ राम से मिलने जा रहा था ; शृंगवेरपुर की जनता ने सोचा कि वह राम से युद्ध करने जा रहा है। मार्ग में गुहराज भेंट होती है। और उसकी आज्ञानुसार भरत भरद्वाज आश्रम में पहुंचा।

नवम सर्ग :

भरद्वाज आश्रम का प्राकृतिक चित्रण किया गया है। भरत और भरद्वाज मुनि की भेंट, दोनों का वार्तालाप आदि का वर्णन हुआ है। अंत में भरत ने राम से मिलने की आज्ञा मांगी।

दशम सर्ग :

यहां भरत की राम- मिलन- यात्रा का वर्णन हुआ है। कवि ने यहां प्रकृति का सुंदर चित्रण किया है। अंत में भरत चित्रकूट पहुंचा।

एकादश सर्ग :

इस सर्ग के आरंभ में कवि ने भरत, गुहराज, वशिष्ठ मुनि आदि के संवाद का चित्रण किया है। ये लोग राम को अयोध्या भेजने और वे खुद वन में रहने का निश्चय कर ले चुके थे। इस सर्ग के अंत में राम और भरत का मिलन होता है। और इस अपूर्व मिलन का चित्रण किया गया है।

द्वादश सर्ग :

दूतों से यह बात सुनकर कि भरत सेना के साथ राम से मिलने गया है, जनक महराज भी सेना सहित वन पहुंचते हैं। जनक भरत के आगमन का कारण

जानने के लिए सीता, लक्ष्मण आदि से मिलते हैं, मगर कोई खबर नहीं मिलती। भरत और राम के वार्तालाप का वर्णन किया गया है। राम अपने अपने कर्तव्य को समझाते हैं। वे जीवन के अर्थ को जनता को समझाते हैं। इसके अंत में चित्रकूट के लोग रामचन्द्रजी का जयकार करते दिखाई पड़ते हैं। भरत और राम दोनों वार्तालाप के पश्चात् चित्रकूट लौटते हैं।

त्रयोदश सर्ग :

इसके आरंभ में राम को अवध ले जाने की चिंता में मग्न चित्रकूट के निवासियों का वर्णन है। मुनिवरों ने राम से जीवन के लौकिक पक्ष की चर्चा जो की उसी का वर्णन है। चौदह वर्ष की अवधि समाप्त होने के पहले ही राम को अवध ले जाने की कोशिश तो की गयी, मगर रामचन्द्रजी उसके लिए तैयार न थे। अंत में भरत राजशासन का भ ार अपने सिर पर लिये, रामचन्द्रजी की चरण- पादुका लेकर साकेत लौटा। इस सर्ग के अंत में नव-भारत के शासन-विधान की रूप- रेखा की तैयारी की बात कही गयी है।

चतुर्दश सर्ग :

यहाँ साकेत में भरत का शासन वर्णित है। रामचन्द्र जी का वन से प्रत्यागमन, राज्यभार- ग्रहण आदि का चित्रण हुआ है। यहीं यह सर्ग समाप्त भी होता है।

'साकेत- सन्त ' का महाकाव्यत्व :

हिन्दी के आलोचकों ने इसे महाकाव्य की कोटि में रखा है। फिर भी इन्होंने इसे महाकाव्य कहने में अपना मत प्रकट नहीं किया है। इसका कारण तो यह है कि इसमें महाकाव्य के लक्षणों का पूर्णत: व्यवहार नहीं हुआ है।

'साकेत - सन्त ' सर्गबद्ध काव्य है। इसकी कथा चतुर्दश (चौदह) सर्गों में विभक्त हुई है। यह कथा ' रामायण ' से ली गयी है। इसके कई सर्ग छोटे हैं और कई सर्ग लम्बे हैं। इसका नायक राजा दशरथ का द्वितीय पुत्र भरत है,जो

क्षत्रिय कुल जात, पराक्रमी, वीर, धीरोदात्त नायक है। इसमें मुख्य रस करुणा है क्योंकि इस काव्य के आद्यंत दुखद घटनाएं घटित हुई हैं। प्रथम सर्ग में जहां भरत और मांडवी के बीच प्रेमालाप होता है वहां शृंगार रस का दर्शन होता है। वशिष्ठ मुनि के उपदेश - कथन के प्रसंग में शांत रस झलकता है। यद्यपि शांत और शृंगार रसों का प्रयोग हुआ है फिर भी यह काव्य करुणा- रस - प्रधान ही है। कवि का उद्देश्य भरत का चरित्रांकन रहा है और उससे संबंधित घटनाओं का ही कवि ने चित्रण किया है, जो भरत को सदा दु:ख देती रही हैं।

इस काव्यके प्रमुख पात्र भरत और माण्डवी हैं जिनको केन्द्र बनाकर साकेत- सन्त का कथानक चलता है। इसके अतिरिक्त राम, सीता, लक्ष्मण, शत्रुघ्न, कैकेयी, वशिष्ठादि मुनिगण मंथरा आदि पात्र भी हैं जो गौण होते हैं। चरित्र-चित्रण की दृष्टि से देखें तो कवि ने भरत के चरित्र चित्रण का ही अधिक ध्यान रखा है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष में से यहां धर्म की सफलता हुई है।

महाकाव्योचित प्रकृति, नदी, पर्वत, वन, मन्दिर, प्रभात, रात्रि, संध्या आदि का वर्णन कवि ने किया है। प्रकृति का चित्रण उन्होंने अवसरानुसार किया है। इस काव्य के प्रारंभ में ` उपक्रम ` रखा गया है। इसमें कथावस्तु (भरत का चरित्र- चित्रण) निर्देश किया गया है। इसमें परंपरागत रूप का खल- निन्दा, सज्जन - प्रशंसा आदि नहीं हैं। न छन्द के प्रयोग में कवि ने किसी नियम का पालन किया है। सर्गों के अंत में छंद परिवर्तन और एक ही छन्द के प्रयोग के होने के बदले कवि ने बीच बीच में विभिन्न छन्दों का प्रयोग किया है। इतना ही नहीं अंत में छंद- परिवर्तन भी नहीं किया गया है। इसमें सर्ग के अंत में अगले सर्ग की कथा - सूचना नहीं दी गयी है। इस काव्य में सिद्धान्तों और विचारों का खूब विवेचन हुआ है। अत: इसमें कथा का सम्यक् विकास न हो सका। कथा में बीच बीच में शिथिलता भी आ पड़ी है। इसलिए इसकी कथावस्तु एक महाकाव्य के लिए काफी प्रतीत नहीं होती। साधारणत: महाकाव्य का आकार बड़ा होता है। लेकिन इस काव्य का आकार छोटा है। इसमें अलंकारों का प्रयोग अधिक मात्रा में हुआ है।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि ` साकेत - संत ` एक

पूर्ण महाकाव्य नहीं है। एक तरफ से देखें तो इसे खण्डकाव्य कहना उचित लगता है।

गांधीवाद की प्रतिष्ठा :

'साकेत - संत' वाद की दृष्टि से गांधीवाद से प्रभावित है। इस काव्य के उन मुख्य स्थलों पर गांधीवाद का स्पष्ट रूप से निरूपण हुआ है जहां इसके पात्रों के बीच में सिद्धान्तों और विचारों का तर्क - वितर्क प्रस्तुत हुआ है। हमें इस काव्य में भरत - युद्धाजित संवाद , भरत - वशिष्ठ - संवाद, भरत - राम संवाद, आदि स्थानों पर गांधीवाद का उल्लेख मिलता है।

भरत इस काव्य का नायक और उसका चरित्र- चित्रण कवि का मुख्य उद्देश्य रहा है। अत: कवि ने भरत को गांधीजी का अनुकर्ता और साक्षात् मूर्ति मानकर उसके चरित्र पर गांधीवादी विचार- तत्वों का आरोप किया है। भरत सच्चा गांधीवादी व्यक्ति है। प्रथम सर्ग में ही उसमें गांधीवाद की झलक पायी जाती है। मृगया जैसी हिंसा- वृत्ति ने किसी भी शिकारी की विजय को सफलता मानने से वह सहमत नहीं है। भरत के मृगया में एक कस्तूरी मृग को मार डालने और युद्धाजित द्वारा उसे उसकी सफलता बताने पर भरत यों कह उठता है -

'हत्या में कौन सफलता ?
हत्या इस पावन थल में।
वह कोई नयी चाह मृगया की ,
मृग की आंखों के जल में।।'-१

इसकी अंतिम पंक्तियों में भरत का हृदय- परिवर्तन स्पष्ट हुआ है। उसने कहा है कि सच्चा तापस ही शासक हो सकता है और परिश्रम ही जीवन में सब कुछ है। -

शासक है सच्चा तापस ,
-- -- --
दुर्बल - बलि जिसका बल है।
-- -- --
संघर्ष न सार जगत का ।।

जिस पर रहती स्थिति मन की । "१

प्रथम कथन में भरत ने गांधीजी की ओर संकेत किया है । भरत भी भौतिकासक्ति से विरक्ति चाहता है और उसी में शांति की प्रतिष्ठा मानता है -

" कब शान्ति किसे मिल पाई ,
कामार्थ धर्म के भ्रम में ?
सुस्थिर है लोक- व्यवस्था ,
धर्मार्थ काम के क्रम में ।। "२

भरत कर्म के प्रति उदास रहना नहीं चाहता था और कर्म को ही जीवन का ध्येय मानता था-

" यही प्रश्रय, कि जीव हो भाग्य ,
न हो ये कर्मों से वैराग्य ।
भले ही करें उपाय अपाय ,
-- -- --
कर्म को गीता सबकी गेय ।। "३

भरत न्याय का पालन करने वाला था और वह सदा अपने निश्चय पर दृढ़ रहने वाला भी था । अतः रामचन्द्रजी के रहते ही जब भरत को राजा के रूप में अभिषिक्त करने का निश्चय किया गया, तब उसने मना किया -

" मेरा निश्चय एक, राम ही अवध - नृपति हैं ।
मैं हूं सेवक एक, एक वे मेरी गति हैं ।। "४

अयोध्या के निवासियों से एक व्यक्ति के इस कथन में गांधीजी के प्रस्तुत कथन को - 'हिंसा का बदला हिंसा से न लेना चाहिए ' - स्थान मिला है ।

" मारकर चाहें न लें बदला कहीं ,
मर मिटेंगे न्याय पर हम सब वहीं ।। "५

१: साकेत - संत द्वितीय सर्ग - पृ० ३७-३८ २: वही० पृ० ३६ ३: वही० चतुर्थ सर्ग- पृ० ६१-६२
४: साकेत सर्ग - पंचम सर्ग - पृ० ७० ५: वही० सप्तम सर्ग - पृ० ८७

भरद्वाज- आश्रम की जनता गांधीयुगीन जनता के समान श्रमिक, सर्वमंगलकामी, सच्चा सेवक थी । [1] जिस प्रकार गांधीजी ने हिंसा रूपी विष का पान करके जगत् को स्वतंत्रता का अमृत पिलाया उसी प्रकार भरत ने दुःख का विष पीकर जनता को अनाथता के संकट से बचाया ।

स्वयं विष पी सुधा जन को पिलायी ,
भरत ने यों नयी गंगा बहाई ।। [2]

गान्धीजी का स्वयं विष- पान और जगत को उनका अमृत-दान दोनों के संबंध में हिन्दी के अन्य कवियों ने उल्लेख किया है । राम वनवास के संबंध में कहते हुए वशिष्ठ ने कहा कि सर्वस्व त्याग से ही भगवान प्राप्त होता है -

' सर्वस्व त्याग के बिना कहां प्रभु मिलते ,
-- -- --
तब तक क्या मुनि अनुराग अनर्पुंय सदा है ।' [3]

मुनि के इस कथन में गांधीवाद स्पष्ट है । चौदह वर्ष की अवधि समाप्त होने के पहले राम को साकेत लौटाने के लिए भरतादि ने सत्याग्रह का आयोजन किया है -

' हम सब थे समझा चुके, युक्ति थी हारी ,
सत् आग्रह में इस बार भरत की बारी ।। ' [4]

एक जगह जनक महराज ने यों कहा है जो गांधीजी के चरित्र को भी भासित करता है -

- -

१: ' श्रम का सच्चा मान वहां था,
-- -- --
रखते थे सहयोग परस्पर ।।
- साकेत - संत नवम सर्ग - पृ० १०५ - १०६

२: साकेत - संत - दशम सर्ग - पृ० १२३

३: साकेत - संत - एकादश सर्ग - पृ० १२६

४: साकेत संत - एकादश सर्ग - पृ० १२७

' महत्पुरुषों की महिमा खूब ,
कुसुम से मृदु पवि तुल्य कठोर । '[१]

रामचन्द्रजी पर भी गांधीवाद का प्रभाव स्पष्ट रूप से पड़ा है। क्योंकि रामचन्द्रजी आर्य और अनार्य संस्कृतियों को मिलाने के काम में व्यस्त हैं। गांधीजी की भांति रामचन्द्रजी ने भी ' प्रेम की महिमा ' गायी है। प्रेम और कर्तव्य में मेल कराके उसके द्वारा जनता को नव- जीवन प्रदान किया। -

' प्रेम की महिमा अकथ अपार ,
-- -- --
निरखता है ' सतीश ' स्व आप ।
-- -- --
प्रेम हो न हो जहां हो कर्म ,
-- -- --
मिला दे प्रेम और कर्तव्य ।। '[२]

गान्धीजी जनता- जनार्दन थे ; दरिद्र - नारायण थे। वे दरिद्र तथा अछूत जनता को 'हरिजन ' कहकर पुकारते थे और उन्हीं में वे भगवान का दर्शन करते थे। यहां राम-चन्द्रजी भी जनता को 'जनार्दन को जनता में लखो ' वाला धर्म- सार बताते हैं -

' न जिसने देखा भू पर स्वर्ग ,
-- -- --
मनुष्यों का समग्र संसार ।। '[३]

रामचन्द्रजी ने निडर, सुदृढ़ और सशक्त राज्य की कामना की है जिसे गांधीजी ने भी चाहा था। -

अभय हों सभी, सबल हों सभी ,
-- -- --
राज्य हो की हो पूर्ण समाप्ति ।। '[४]

- -

१: साकेत- संत - द्वादश सर्ग - पृ० १३६   २: वही० पृ० १४८-१४६
३: वही० पृ० १५१   ४: वही० पृ० १५१

रामचन्द्र जी सब के लिए सुख और शान्ति से युक्त जीवन की कामना करते हैं जिसमें गांधीजी की वही कामना भी निहित है ।

> ' विश्व में फैल जाय सुख शान्ति ,
> -- -- --
> जहां हों राम वहां से राम ।। ' [१]

राम की त्याग - भावना पर अत्रि मुनि ने यों कहा -

> ' तुमने तन या मन के सुख को ,
> कर्तव्यों का पथ दे डाला ।। ' [२]

यहां रामचन्द्रजी के इस गुण- विशेष में गान्धीजी का यही गुण प्रस्फुटित होता है । भरत ने स्वयं राज्य- शासन का भार लेकर राज्याधिपति की बड़ी समस्या को सुलझा दिया -

> ' धर्म संकट से ,
> आज भरत ने जगत उबारा ।
> सब का दुख अपने में लेकर
> सब को सुख का दिया सहारा ।। ' [३]

हमें यहां भरत गान्धीजी के समान वस्त्र-धारण किया हुआ दिखाई पड़ता है -

> ' भरत हुए ग्रामीण कुटी लघु एक बनाई ,
> मन पर संयम - डोर लंगोटी तन पर छाई ।। ' [४]

गांधीजी का वही रूप भरत में दिखाई पड़ता है जिसे हम सामाजिक क्षेत्र में देख चुके हैं ।

> ' तन से तापस मन से योगी ,
> -- -- --
> परम सहिष्णुता, मृदुता उसमें ।। ' [५]

- -

१: साकेत - सन्त - द्वादश सर्ग - पृ० २५३ २: वही त्रयोदश सर्ग - पृ० १६८
३: वही पृ० १७२ ४: वही० चतुर्दश सर्ग - पृ० १८४ ५: वही० पृ० १८७-१

कस्तूर बा के समान भरत की पत्नी भी खादी का कपड़ा पहनती है -

' तन पर दो खादी के टुकड़े, चार चूड़ियाँ प्यारी । '[1]

भरत के शासन से अवध के ग्रामीण लोग सुखी और सुसंपन्न जीवन बिताते थे -

' क्या उच्च क्या नीच अपने पराये ।

-- -- -- --

स्वायत्त स्वराज्य से थे सुहाये ।। '[2]

साकेत-सन्त ' वस्तुत: गांधीवादी विचार- धारा के सिद्धान्तों से पूर्ण है और आद्यन्त उसका निर्वहण हुआ है । कवि ने भरत के द्वारा गांधीवादी विचारों का समर्थन किया है । इसके अलावा राम, वशिष्ठ आदि के वचनों में भी गान्धीवाद के तत्व विद्यमान हैं । इस काव्य के प्रथम सर्ग में ही कवि ने भरत को अहिंसा के पक्ष में और दुर्वासा को हिंसा के पक्ष में प्रस्तुत करके भरत की दुर्वासा पर विजय- अहिंसा की हिंसा पर विजय घोषित किया है । इस काव्य में कवि ने उस समय की राजनीति और सामाजिक परिस्थितियों का चित्रण किया है जिनपर भरत ने अपनी मनोव्यथा प्रकट की है । देश की ऐसी हालत से बचाने और नव- जीवन आरंभ कराने के लिये भरत अपने कर्तव्य - मार्ग पर चलने लगा । अन्त में उसने राज- शासन का अधिकार स्वीकार करके देश की रक्षा एवं उन्नति की । रामचन्द्रजी ने चित्रकूट में रहते वक्त एक नवीन भारत के संविधान की रूपरेखा तैयार की थी जो आधुनिक ढंग से गांधीवादी विचारधारा को अपनाकर की गयी है । इस प्रकार रामचन्द्रजी ने नवीन भारत का शिलान्यास गान्धीवाद के तत्वों से किया है ।

वैदेही वनवास :

यह रामकथा पर आधारित महाकाव्य है । गान्धीवाद से परोक्ष रूप से प्रभावित है यह काव्य । रामचन्द्रजी और सीता के जीवन का वर्णन इसमें किया गया है । लेकिन सीता जी से संबंधित लौकिक घटनाओं को अधिक प्रमुखता दी है । सीता जी पर लगाये गये लोकापवाद का दमन करना ही इस काव्य का उद्देश रहा है । यही इस काव्य में उपस्थित की हुई समस्या है जिसकी सुलझन कवि ने गांधीवाद के द्वारा करने का प्रयास किया है । अत: इस काव्य का शीर्षक भी कवि ने ' वैदेही वनवास ' रखा है ।

१: साकेत सन्त - चतुर्दश सर्ग - पृ० १६० २: वही० पृ० १६४

इसमें गांधीवाद के विभिन्न सिद्धान्तों एवं तत्वों का पालन सम्यक् रूप से किया गया है। बलिदान के बारे में रामचन्द्र जी ने बताया है -

' जहाँ लाभप्रद अंश अधिक पाया जाता है।
थोड़ी क्षति का ध्यान वहाँ कम ही पाता है। '[१]
-- -- --
परम अमंगल क्रिया पुण्य कृति कहलाती है।। '[१]

रामचन्द्र जी ने सब का सुख और भलाई चाहा है -

' सब को सुख हो, कभी नहीं कोई दुख पावे।
सब का होवे भला किसी पर बला न आवे।। '[२]

सीता बड़ी व्रती और तपस्विनी थी। उसने जितने दीर्घ-कालीन व्रत किये थे, वे अनन्त थे।

' कौन कर पाता - व्रत उपवास।
गलाती रहती थी निज गात।।
बिताया जिसने संकट-काल ।
तरु तले बैठी एक दिन रात।। '[३]

राम स्वयं अपने को ' निर्बल का बल ' कहते थे।

' न्याय को सदा मानकर न्याय।
-- -- --
विपुल पुलकित होता है चित।। '[४]

छल और कपट को राम ने पसंद नहीं किया -

' मुझे है कूटनीति न पसंद ।
सरलतम है मेरा व्यवहार।। ' [५]

१: वैदेही वनवास - प्रथम सर्ग - पृ० १३   २: वही० पृ० १४
३: द्वितीय सर्ग - (वही०) - पृ० २२   ४: वही० पृ० २४
५: वही० पृ० २४

राम ने सर्वत्र अहिंसा का समर्थन किया है -

' अत: है वांछनीय यह नीति ।
हो यथाशक्ति न शोणित पात ।।
सामने रहे दृष्टि के साथ ।
रहे महि - वातावरण प्रशान्त ।। '[१]

अयोध्या के निवासियों में आतीय एकता और व्यक्ति- स्वातन्त्र्य दिखाई पड़ता है -

' भूलकर भेद- भाव की बात ।
विलसिता समता है सर्वत्र ।।
तुष्ट है प्रजामात्र बन शिष्ट ।
सति समुचित स्वतन्त्रता मन्त्र ।। '[२]

दानवों का दमन करना और अत्याचारी को दण्ड देना दोनों अहिंसात्मक माने गये हैं । लेकिन राम ने एक और इसका घोर विरोध किया है तो दूसरी ओर इसकी आवश्यकता पर भी प्रकाश डाला है । -

' दमन या दण्ड - नीति मुझको ।
-- -- --
रहे जो इसके अधिकारी ।।
-- -- --
क्यों कि वह है मय - मूलक - नीति ।। '[३]

आगे भी उन्होंने इस पर बताया है -

' -- -- दमन वांछित नहीं ।
-- -- -- --
अंगीकृत है लोकाराधन जब मुझे ।। '[४]

लोकापवाद को राम ने जन- प्रेम से दूर करना चाहा है -

- -

१: वैदेही वन वास - तृतीय सर्ग - पृ० ४२   २: वही० द्वितीय सर्ग -पृ०२४
३: वही० तृतीय सर्ग - पृ० ४१- ४२   ४: वही० चतुर्थ सर्ग -पृ० ४८

'वमन नहीं मुझको वांछित है तुम्हें भी न वह प्यारा है ।

— — —

कलुषित मानस को पावन कर मैं मन- वांछित फल लूंगा ।।'[१]

राम ने शान्ति की स्थापना करने का वादा किया है -

'पठन कर लोकाराधन - मन्त्र ।
करूंगा मैं इसका प्रतिकार ।।
साधकर जनहित - साधन सूत्र ।
करूंगा घर घर शान्ति - प्रसार ।।'[२]

संयम का पालन करते हुए त्याग के महत्व का प्रतिपादन राम द्वारा किया गया है -

'करूंगा बड़े से बड़ा त्याग ।
आत्म- निग्रह का कर उपयोग ।।
हुए आवश्यक जन- सुख हेतु ।
सहूंगा प्रिया असह्य वियोग ।।'[३]

वशिष्ठाश्रम में हिंसक अहिंसक की भावना न रही -

'काक कुटिलता वहां न था करता कभी ।

— — —

हिंसक जन भी हिंसकता था छोड़ता ।।'[४]

आश्रम में लोग हमेशा लोक - सेवा में निरत दिखाई पड़ते हैं, जिसका वर्णन कवि ने इस काव्य में किया है ।

स्वधर्म एवं सधर्म के पुण्य- पथ पर चलनेवाले का पतन कदापि नहीं हो सकता -

'परन्तु होगा न वह प्रवंचित ।
कदापि गन्तव्य पुण्य - पथ से ।।

- -

१? वैदेही वनवास - पंचम सर्ग - पृ० ५८ २: वही० - तृतीय सर्ग - पृ० ४३
३: वही० तृतीय सर्ग - पृ० ४३ ४: वही० - चतुर्थ सर्ग - पृ० ४५

कभी नहीं भ्रान्त हो गिरेगा ।
स्वधर्म - आधार दिव्य - रथ से ।। '[1]

आत्मत्याग की महिमा और उच्चता पर सीता ने बताया है जिसका समर्थन गान्धीजी अक्सर किया करते थे ।

' आत्मसुखों से आत्मत्याग ही ।
-- -- --
सुफलद अधिक गया है माना ।। '[2]

गौतम मुनि ने मानवता का समर्थन किया है -

' मानव बन करना मानवता अर्चना ।
है सत्संगति कर्म, लोक - आराधना ।। '[3]

रावण द्वारा सीता का जो हरण होता है, इस संदर्भ में कवि ने ' स्तेय ' का वर्णन किया है जिसका असतेयवाला समाधान रावण के वध से बताया गया है । -

' हरण किया था पामर - लंकाधिपति ने ।
कर सम्पू - गुण पृथ्वी तल के पाप को ।।
-- -- --
आसपास दानव - गण करते शोर थे
-- -- --
दिखा दिखा कर बहु - भयंकरी - मूर्तियां ।। '[4]

राम लोक- कल्याण - पथ के पथिक बनना ही चाहते हैं -

' अत: बनूं मैं क्यों न लोक - हित - पथ - पथिक ।
जहां सुकृति है शान्ति विलसती है वहां ।। '[5]

- -

१: वैदेही वनवास - सप्तम सर्ग - पृ० ९१ २: वही० पृ० ९२
३: वही० अष्टम सर्ग - पृ० ९७ ४: वही० पृ० ९९, १०१
५: वही० नवम सर्ग - पृ० ११५

गान्धीजी ने जिस प्रकार अपने आत्म-सुखों को त्यागकर लोक-सेवा में अपने जीवन की आहुति दी, वैसे ही रामचन्द्रजी भी आत्म-सुखों का त्याग करके लोक-कल्याण के लिए कर्तव्य-निरत बने।

' मन का नियमन प्रति-पालन शुचि नीति का।

-- -- --

आत्म-सुखों को त्याग लोक-आराधना ॥ '[१]

ब्रह्मचर्य का प्रतिपादन वाल्मीकि-आश्रम के वर्णन के संदर्भ में किया गया है -

' ब्रह्मचर्य-रत वाल्मीकाश्रम-छात्र-गण।
तपोभूमि-तापस, विद्यालय-विबुध जन ॥ '[२]

राम के राम-राज्य के बारे में बताया गया है -

' हुआ राम का राज्य, लोक-अभिरामता।

-- -- --

विमल कीर्ति का गया मनोज्ञ वितान तन ॥ '[३]

आत्रेयी ने बताया है कि महान व्यक्तियों ने यदि विजय पायी है, तो अपने-अपने आत्म-बल से ही है -

' महि में महिमामय अनेक हो गये हैं।

-- -- --

किन्तु हुए उन पर स्व आत्मबल से जयी ॥ '[४]

आध्यात्मिकता को अत्यंत महत्व देते हुए सीता ने कहा है -

' उदारता से भरी स्वाभाविकता-रता।

-- -- --

आध्यात्मिकता ही है भाव-सित-साधिका ॥ '[५]

- -

१: वैदेही वनवास - द्वादश सर्ग - पृ० १५० २: वही० त्रयोदश सर्ग - पृ० १६०
३: वही० पृ० १६६ ४: वही० पृ० १७१ ५: वही० पृ० (चतुर्दश) २०२, २०३

सीता की अनंत तपस्या से अहिंसात्मक ढंग से लोक में जो शान्ति स्थापित हुई, उसी का चित्रण राम ने किया है -

' बिना रक्त का पात प्रजा पीड़ित किये ।
-- -- --
लोक-हित - कारी - शान्ति - वालिका है पली ।। '[1]

आत्म- त्याग की महिमा पर राम ने यों बताया है -

' है प्रधानता आत्म - सुखों की विश्व में ।
-- -- --
नर नर हैं परमार्थ - पंथ के हो पथिक ।। '[2]

सीता ने समस्त दु:खों का सामना अपने आत्मबल से ही किया -

' अन्य के लिए आत्म - सुखों का त्यागना ।
-- -- --
और आत्मबल से उनपर पाना विजय ।
है मानवता की कमनीया - कामना ।। '[3]

' वैदेही वनवास ' में गांधीवादी विचारों का सम्यक् परिपालन कवि ने किया है । हरिऔध जी एक सीमा तक गांधीवादी ही थे । उनके अनुसार ' समाज का आधार अहिंसा, सत्य, सहानुभूति और सौहार्द्र होना चाहिए । परन्तु इनका उपयोग दुष्टों के लिए नहीं किया जा सकता और न इस प्रकार के प्रयोग दुर्बुद्धियों पर तत्काल विजय ही प्राप्त कर सकते हैं । यदि तत्काल दुष्टों का दमन न किया जाय तो उस समय तक तो समाज अथवा व्यक्ति उत्पीड़ित होता रहेगा जब तक कि आततायी का हृदय परिवर्तित हो जाय । '[4] गांधीजी के अहिंसावाद का अच्छा प्रभाव कवि पर पड़ा । अत: कवि ने इस काव्य में गान्धीवादी दृष्टिकोण को अपनाया है ।

- -

१: वैदेही वनवास - सप्तदश सर्ग - पृ० २३५ २: वही० पृ० २३६
३: वही० पृ० २३७ ४: हरिऔध और उनका साहित्य - मोमुकुन्द देव शर्मा- पृ० ४३१ - ४३२

इस काव्य के नायक जो रामचन्द्र हैं, उन्हें 'अहिंसा परमो धर्मः' के अनुयायी तथा प्रचारक के रूप में चित्रित किया गया है। इसमें वैदेही पर लोकापवाद जो होता है, वही एक प्रमुख समस्या बन जाती है। राम ने इसे शांति और समाधान के साथ सुलझाने का प्रयास किया है। लेकिन फिर भी उन्हें दण्ड और दमन का प्रयोग करना पड़ा है। अतः रामचन्द्र जी में अहिंसा की ही भावना मात्र न रहकर हिंसा भावना की एक धुंधली छाया भी विद्यमान थी - इसलिए श्री गिरीश जी ने बताया है - '--- यह गांधीवाद जिसकी खोज वैदेही वनवास में की गई है, कुछ निराले ढंग का गांधीवाद है, जिसके अंतर्गत सशस्त्र युद्ध करना भी मान्य है।'[1] राम में लोक-कल्याण की भावना अत्यन्त तीव्र है और इसलिए उन्होंने अहिंसा का समर्थन किया है। उन्होंने अपनी राजनीति में साम-नीति को अधिक प्रमुखता दी है क्योंकि साम नीति पर गांधीवाद एक विशेष प्रकार से आधारित है। गान्धीजी ने भी साम-नीति को बड़ी महत्ता दी थी जिसके कारण वे रामराज्य में विश्वास रखते थे। साम-नीति और गांधीवाद का अन्तर बताते हुए श्री गिरीश जी ने कहा है - 'साम-नीति का त्याग करके उचित अथवा अनुचित हिंसा का अवलंबन किसी समय भी लिया जा सकता है, वह स्वतः अपने में पूर्ण, स्वतन्त्र अथवा पर्याप्त नहीं है, किन्तु गांधीवाद अपने में पूर्ण एक ऐसे आचरण क्रम का निरूपण करता है, जिसमें किसी भी स्थिति में किसी भी प्रकार की हिंसात्मक कार्यवाही के समर्थन के लिए कोई स्थान नहीं है। विशेष अवसरों पर साम-नीति कूटनीति का प्रतिनिधित्व कर सकती है और कभी कभी दुर्बलता का भी। किंतु गांधीवाद में न कूटनीति के लिए जगह है और न दुर्बलता के लिए अवकाश ; उसके पनपने के लिए खुली भूमि, खुले आकाश और अनवरुद्ध प्रकाश की आवश्यकता है।'[2] लेकिन गांधीवाद दुष्ट-दमन और दोष - खण्डन को हिंसात्मक नहीं मानता, अहिंसात्मक ही मानता है। अतः राम ने लवणासुर का वध किया था और इससे वे दोषी नहीं ठहरते।

रामचन्द्रजी पर गांधीवाद का प्रभाव खूब पड़ा है। सचमुच वे गांधीजी का प्रतीकात्मक रूप ही कहला सकते हैं। उनकी कथनी और करनी में गांधीवादी

- -

१: महाकवि हरिऔध - गिरिजादत्त शुक्ल 'गिरीश' - पृ० २४३

२: वही० पृ० २४६

दृष्टिकोण ही रहा है। लोक- कल्याण उनका जीवन - लक्ष्य है। और उसकी प्राप्ति के लिए उन्होंने गांधीवाद का आजीवन पालन किया है। उनकी धर्मपत्नी सीता भी राम के गांधीवादी रंग में रंगी हुई सहचरी रही है। लोक- कल्याण की सकल प्रवृत्तियों में उसका भी बड़ा हाथ रहा है। वह भी आदर्श दृष्टिकोण लेकर राम की मदद करती थी।

इस काव्य का संदेश है लोकाराधन। रामचन्द्र जी हमेशा इसी आराधन की बात दुहराते थे। मानव- कर्तव्य पर इसमें अधिक बल दिया गया है। भौतिकवाद और आध्यात्मवाद पर विचार करते हुए आध्यात्मवाद को भौतिक वाद की अपेक्षा अत्यधिक महत्ता प्रदान की गयी है। इस प्रकार यह काव्य आद्यन्त गान्धीवादी विचारधारा से ओतप्रोत है। अपने गांधीवादी विचारों की पुष्टि करने में कवि सफल भी हुए हैं।

<u>उर्मिला :</u>

"उर्मिला" श्री बालकृष्ण शर्मा "नवीन" का महत्वपूर्ण महाकाव्य है। कविगण ने इसे हिन्दी के आधुनिक साहित्य का महत्वपूर्ण ग्रन्थ माना है। डा० लक्ष्मी नारायण दुबे ने तो इसे नवीन साहित्य में वही स्थान प्रदान किया है जो 'तुलसी - साहित्य' में रामचरित मानस को और प्रसाद साहित्य में कामायनी को दिया गया है। 'तुलसी - साहित्य में 'रामचरितमानस', हरिऔध काव्य में 'प्रियप्रवास', गुप्त- साहित्य में 'साकेत' प्रसाद वाङ्मय में जो स्थान 'कामायनी' का है; वही स्थान 'नवीन' साहित्य में प्राय: 'उर्मिला' का है।[१]

'वाल्मीकि रामायण,' 'साकेत', रामचरितमानस', उत्तरराम चरित आदि काव्यों के प्रणेताओं ने अपने काव्यों में राम और सीता को ही प्रधानता दी है और उर्मिला का पूर्ण परित्याग किया है। फिर भी गुप्त जी ने 'साकेत' के नवम- सर्ग में उर्मिला के विरह - वर्णन के द्वारा उसकी चारित्रिक महत्ता का मूल्य आंका है। उनके बाद अब श्री नवीन जी ने उसी 'उर्मिला' को अपने महाकाव्य में नायिका का

- -

१: बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' - व्यक्ति एवं काव्य - डा० लक्ष्मीनारायण दुबे - पृ० २६६

पद प्रदान किया है। प्रस्तुत काव्य का नामकरण भी उसी के आधार पर किया गया है।

प्रेरणा स्रोत :

'नवीन' जी ने यद्यपि रामायण की कथा को आधार मानकर इस काव्य की रचना की है, तथापि इसके लिए जो प्रेरणा उन्होंने पायी है वह मुख्यतः कविवर रवीन्द्र जी के प्रेरणादायक निबन्ध 'काव्येर उपेक्षिता' से है। अतः उन्होंने इस काव्य के आरंभ में अन्य रामभक्त कवियों द्वारा उर्मिला को उपेक्षित मानकर उसके प्रति अपनी मनोव्यथा प्रकट की है।[१] अपनी इस मनोव्यथा को दूर करने के लिए ही 'नवीन' जी ने प्रस्तुत काव्य का सृजन किया है।

रचनाकाल :

इसकी रचना १९२२ ई० में हुई, जब कि 'नवीन' जी लखनऊ कारागार में बन्दी रहते थे। बीच में अनेक बाधाओं के उपस्थित होने के कारण वे यह काव्य सन् १९३४ में ही समाप्त कर सके। यह तो स्पष्ट है कि बन्दी वातावरण में रचित होने के कारण इसमें कवि की मानसिक कारागृह पीड़ा ने उर्मिला की विरह-पीड़ा को अत्यंत तीव्र बनाया है।

कथावस्तु :

रामायण को आधार बनाकर कवि ने इसकी कथा का संचय किया है। लेकिन इसमें कथा को उतना विस्तृत न बनाकर गौण रूप में उसे चित्रित किया है। कथा के प्रमुख पात्रों के मन में उठने वाली क्रियाओं एवं प्रतिक्रियाओं का प्रतिपादन उन्होंने किया है। अतः इसमें कथा की मुख्य घटनाएं ही विस्तृत रूप से वर्णित हुई हैं।

इसमें सीता और उर्मिला की जो जनक महाराज की सुन्दरी नन्दिनियां हैं, बाल्यावस्था से लेकर उनका विवाह, उर्मिला का विरह, उर्मिला-लक्ष्मण-मिलन तक की घटनाओं का चित्रण हुआ है।

१: उर्मिला-प्रथम सर्ग - छन्द ३,४,५, - पृ० २-३

प्रथम सर्ग :

प्रथम सर्ग लिखने के पहले कवि ने अपने इस काव्य की नायिका उर्मिला की वन्दना की है और उससे यह प्रार्थना की है कि अपने इस महायत्न को निर्विघ्न सफल बना दें -

' तेरे अटल भरोसे पे यह मैं ने ओढ़ा भार ;

-- -- --

कुल औव ; यह माला हो विघ्न रहित तैयार ।। '१

उर्मिला का आशीर्वाद हो उनकी काव्य- रचना में सहायक सिद्ध हुआ और उसकी कृपा से इस काव्य का सृजन करके उसकी चरितांजुलि में निमज्जन करना कवि चाहते हैं। अत: यहां कवि ने लक्ष्मण - रानी उर्मिला को देवी ठहराकर उससे अपने मन की इच्छा- पूर्ति के लिए दया की भीख मांगी है। इसके बाद उर्मिला का ध्यान करते हुए अपनी विषय- वस्तु में प्रवेश किया है।

यहां कवि ने सर्वप्रथम जनकपुर का बाह्य और आंतरिक चित्रण किया है। जनकपुर के निवासियों की जीवन- चर्या का विस्तृत वर्णन है। जनकपुर के प्रासाद- प्रांगण में सीता और उर्मिला की बाल्यकालोचित विभिन्न कोमल क्रीड़ाओं का सुन्दर चित्रण किया है। उनके अंश - प्रबंध रूप - निर्माण का वर्णन भी किया गया है। दोनों मिलकर कूदती - दौड़ती हैं, आपस में झगड़ती हैं और कोई कथा सुनाती हैं। वास्तव में इसके एक मामूली कथा होने पर भी उससे सीता और उर्मिला के चरित्रों का परिचय हमें मिलता है। कहानी समाप्त होने के बाद दोनों उपवन जाकर फूल तोड़कर गृह चली जाती हैं। यहीं प्रथम-सर्ग समाप्त होता है। इस सर्ग के अंत में जनक महराज सीता और उर्मिला के विवाह के संबंध में रानी से कहते हैं।

द्वितीय सर्ग :

इस सर्ग के आरंभ में कवि ने विवाह के बाद राम- सीता और लक्ष्मण - उर्मिला के अयोध्या में आने के उत्सव का वर्णन किया है। उर्मिला और सीता के चरित्रों का वर्णन किया गया है। लेकिन उर्मिला के चरित्र को प्रमुख रूप से चित्रित

- -

१: उर्मिला - प्रार्थना - पृ० ६

किया है । बीच में सरयू नदी का वर्णन है जिसके किनारे पर रामचन्द्रजी का बालकाल बीता था । सीता और उर्मिला के अयोध्या- पुरि में आने के बाद के जीवन का चित्रण किया गया है । ` मुकुलित - कुसुम - दर्शन ` नामक उपशीर्षक में कवि ने विन्ध्याद्रि में भ्रमण करने के लिए गये लक्ष्मण - उर्मिला के प्रणय-संलाप का भी चित्रण किया है । सर्ग के अन्त तक यही वर्णन है । सर्ग के अन्त में उर्मिला की वियोग - कथा की सूचना दी गयी है ।

तृतीय सर्ग :

इसके प्रारंभ में कवि ने एक ध्यान - श्लोक लिखा है जिसमें उर्मिला के विरह को व्यक्त करने के लिए वाप पर कृपा करने की प्रार्थना की गयी है । साथ ही उसकी वियोग - गाथा को ` अकथित कथा ` कहा है क्योंकि वर्षों तक यह कथा कवियों की दृष्टि से अदृश्य थी और किसी ने भी इसे जनता को सुनाने का प्रयास नहीं किया था । कुछ ही वर्ष हुए हैं - यह कथा कवि की लेखनी द्वारा भाव- प्रकाश में प्रत्यक्ष रूप से दृश्य तथा व्यक्त बनी ।[1] इसके बाद कवि ने उर्मिला की आंखों के अश्रुकणों से प्रार्थना की है -

` ओ आंसु, तुम बरस पड़ो, यह -
प्यासा है आनन मेरा ,
-- -- --
अपनी बूंदें ढरकाओ ।। `[2]

लक्ष्मण और उर्मिला के बीच में दुःखद बातें होती हैं । लक्ष्मण के लिए राम-सीता के साथ वन-गमन अनिवार्य और अनिवार्य्यतः है । उर्मिला लक्ष्मण से अपने वियोग की लंबी घड़ियां बिताने के लिए कोई उपाय बताने का अनुरोध करती है । वन जाने का समय आ पहुंचा । लक्ष्मण उर्मिला से विदा मांगता है । अन्त में उर्मिला मानव- कल्याण

- -

१: ` संचित - शोक रहा है जिसके द्युति- विहीन आभरणों में ,
-- -- --
नत हो जा, नास्तिक मस्तक, उसके पुण्य भी चरणों में , ।। `
- उर्मिला - तृतीय सर्ग - पृ० १६६

२: उर्मिला - तृतीय सर्ग - पृ० १७०

अपने प्रिय पति को वन चलने की आज्ञा देती है - ' जाओ, मेरे प्राण, उर्मिला सदा तुम्हारी अविचल है ।' सीता जी उर्मिला के त्याग भावना की महिमा गाती है । रामचन्द्रजी के आगमन के बाद कवि ने उनके सद्गुणों का विवेचन किया है । रामचन्द्रजी ने उर्मिला से यों कहकर उसे सान्त्वना दी कि मानव- जीवन में जीवन, मरण, सुख और दु:ख जो भी आवें, सब का स्वागत करना ही जीवन - धर्म है ।'[१] इस सर्ग में रामचन्द्रजी और सुमित्रा के बीच के वार्तालाप का वर्णन किया गया है । सुमित्रा सीता का गुणगान करती है । इसके बाद सुमित्रा के आशीर्वादों से अभिषिक्त होकर राम लक्ष्मण और सीता वन चले जाते हैं ।

चतुर्थ सर्ग :

यह सर्ग विरहिणी - बाला उर्मिला की विरह मीमांसा है । इसमें उर्मिला का विरह वर्णन ही प्रधान विषय है । इसलिए यह सर्ग अन्य सर्गों की अपेक्षा श्रेष्ठ है । लक्ष्मण के वन-गमन के कारण उर्मिला विरह की आग में जलती रहती है । मानवता के सन्देश के प्रचारार्थ जाने के कारण उर्मिला ने इस विचार से कि उनके कार्य में कोई बाधा न उपस्थित हो, उन्हें अकेले जाने दिया और वह घर पर रहकर अपना सब कुछ तजकर विरह की आहें भरती रही ।

यह सर्ग उर्मिला की विरह - वेदना की दु:खपूर्ण कथा से परिपूर्ण है । प्रकृति में प्रतिपल होने वाले परिवर्तन के साथ ही साथ उर्मिला के जीवन में भी परिवर्तन दिखाई पड़ता है । उसे प्रकृति की प्रत्येक वस्तु में करुणा की प्रतीति होती है । जैसे सघन मेघमाला, ओसकण, कोयल की कूक, काग स्वन, विहग- कूजन, मन्द-पवन, सन्ध्या - वेला आदि में उर्मिला दु:ख और करुणा का अनुभव करती है । इस सर्ग के अन्त में कवि ने अपनी कल्पना से यह अनुरोध किया है कि उर्मिला करुणा की साक्षात् मूर्ति है और उसके चरणों पर नमन करना और उसके दु:ख को सुलझा भी देना ।

पंचम सर्ग :

यह सर्ग भी उर्मिला की विरह- गाथा गाता है । वह लक्ष्मण के नाम का स्मरण करते हुए उसकी पूजा - अर्चना कर अपना वियोग काल व्यतीत करती है ।

- -

१: ' जीवन में वरदान समझना,
मिले उसी का स्वागत है ।।' उर्मिला - तृतीय सर्ग - पृ० २६८

यही इस समय उसका एकमात्र कर्म या कर्तव्य है ।[१] उर्मिला के विरह की विभिन्न अवस्थाओं का चित्रण यहाँ किया गया है । सर्ग के अंत में उर्मिला लक्ष्मण से जनता का दुःख दूर करने का अनुरोध करती है ।[२]

षष्ठ सर्ग :

इस सर्ग में रामचन्द्र जी का विजयोत्सव मनाया जा रहा है । रामचन्द्रजी जिस कार्य की सिद्धि के लिए वन गये उसमें वे सफल हुए और साथ ही उन्होंने निष्ठुर, बलवान असुर रावण की हत्या भी की । अतः लंका- नगर में विजयोत्सव मना रहे हैं । रावण की हत्या से समस्त विश्व ने मुक्ति प्राप्त की है । विभीषण को लंकापति के रूप में अभिषिक्त किया जाता है । राम और रावण की चारित्रिक विभिन्नता का विश्लेषण किया जाता है । मरणासन्न रावण और लक्ष्मण के वार्तालाप का वर्णन किया गया है । विभीषण के राज्याभिषेक के समय रामचन्द्रजी उनको सदुपदेश देते हैं । उन्हें भौतिक वाद और साम्राज्यवाद से सदा दूर रहने का उपदेश देते हैं । रामचन्द्रजी जनता से यही अनुरोध करते हैं कि वे अपने संकुचित मन को व्यापक बनायें और जनतोद्धार की भावना करें । -

> ' हे सब जन- गण , आप त्यागिये ,
> भौगोलिक संकुचित विचार ,
> भरिये हृदयों में व्यापकता ,
> करिये आप आत्म- विस्तार ;'[३]

रामचन्द्रजी जीवन और सत्य के अमिट संबंध पर विचार करते हुए जनता से सत्य के मार्ग पर अग्रसर होने का अनुरोध करते हैं । सत्य और धर्म के बारे में अपने विचारों को उन्होंने प्रकट किया है । इसके बाद विभीषण रामचन्द्र जी के भी चरणों पर नमन करता है और सीताजी का गुण- गान भी करता है । वानरपति सुग्रीव राम की

- -

१: उर्मिला - पंचम सर्ग - पृ० ४५४
२: यही० पृ० ५२५
३: उर्मिला - षष्ठ सर्ग - पृ० ५४१

महिमा गाता है। रामलीला की विभिन्न केलियों को देख और चकित होकर उसकी अमरता का गीत गाया है।[१]

अन्त में रामचन्द्रजी, सीता और लक्ष्मण के साथ अयोध्या जाने के लिए रवाना होते हैं। यात्रा के बीच सीता - लक्ष्मण - संवाद वर्णित हुआ है। लक्ष्मण ने सीता को नारी की महत्ता बतायी। इसके बाद सर्गान्त में लक्ष्मण और उर्मिला का मिलन होता है। कवि कहते हैं कि लक्ष्मण - उर्मिला - समागम का वह क्षण अवर्णनीय है क्यों कि वह केवल व्यक्ति दर्शन न होकर, आत्म - दर्शन है।

महाकाव्य की दृष्टि से इसकी परीक्षा करने पर संपूर्ण रूप से इसे महाकाव्य कहना उचित नहीं होगा। इसमें महाकाव्य के लक्षणों में से कुछ - कुछ लक्षणों का पूर्ण निर्वाह हुआ है।

महाकाव्यत्व :

`उर्मिला` एक सर्गबद्ध काव्य है। इसकी नायिका एक सद्वंश जात क्षत्रिय युवती है - जनक महाराज की कन्या है। इसमें शृंगार शान्त, वात्सल्य, अद्भुत आदि रसों की योजना की गयी है - मगर इसमें मुख्य रस करुणा है, क्योंकि इसमें कवि का उद्देश्य उर्मिला का विरह- वर्णन रहा है। इसकी कथावस्तु मुख्यतया `वाल्मीकि रामायण` से ही गयी है। मगर इस पर अन्य पुराणों, काव्यों और गीता आदि का प्रभाव भी है। इसमें कवि ने कथा को अधिक व्यापकता से नहीं कहा है। पात्रों के जीवन में घटित होने वाली विभिन्न घटनाओं का ही विस्तृत वर्णन किया गया है। इसमें राम, सीता, लक्ष्मण और उर्मिला प्रमुख पात्र हैं और जनक, जनकरानी, विभीषण, कैकेयी, सुमित्रा, सुग्रीव आदि गौण पात्र। प्रमुख पात्रों के चरित्र-चित्रण में कवि ने अत्यधिक मदा देकर उसे व्यापक बनाया है। राम, सीता, लक्ष्मण आदि के चरित्रों का कवि ने चित्रण चतुरता से किया है। लेकिन उर्मिला के चरित्र- चित्रण में कवि ने उसके मन की गहराई में पैठकर अनेक गुण- रत्न ढूंढ निकाले हैं। धर्म,अर्थ,काम

- -

१: उर्मिला - षष्ठ सर्ग - षष्ठ सर्ग - पृ० ५६१

और मोक्ष में से जहाँ मोक्ष की प्राप्ति हुई है ।

इसमें सन्ध्या, रात्रि, प्रभात, पर्वत, वन, ऋतु, नदी, युद्ध, यज्ञ आदि का सांगोपांग वर्ण न हुआ है । इस काव्य के आरंभ में मंगलाचरण का निर्वाह किया गया है और उसमें उर्मिला की वन्दना की गयी है । उसे देवी के रूप में कल्पित किया गया है ।

उपर्युक्त तत्वों पर उर्मिला को महाकाव्य कह सकते हैं मगर कुछ तत्वों का ठीक विवेचन नहीं हुआ है जो महाकाव्यत्व के लिए अनिवार्य हैं । यह काव्य केवल छः सर्गों में रचित है । छन्द - योजना में कवि ने कोई व्यवस्था रखी है । कवि ने अपने इच्छानुसार जगह जगह पर छन्दों का परिवर्तन किया है । मगर कवि ने प्रत्येक सर्ग के अंत में अगले सर्ग में आने वाली कथा की सूचना दी है । इसमें खल - निन्दा और सज्जन प्रशंसा का उल्लेख कहीं नहीं दिखाई पड़ता । प्रस्तुत काव्य की रचना कवि ने वर्णनात्मक शैली में किया है । उन्होंने अलंकारों का खूब प्रयोग किया है । प्रथम सर्ग में उन्होंने सीता और उर्मिला के बाल्यकाल - वर्णन के अवसर बहुत अधिक मात्रा में उत्प्रेक्षाएं की हैं । इसके अतिरिक्त उन्होंने मानवीकरण भी किया है । इसके अतिरिक्त उन्होंने मानवीकरण भी किया है । कथा के बीच बीच में उन्होंने प्रकृति का सुन्दर चित्रण भी किया है ।

उपर्युक्त विवेचनों से ' उर्मिला ' को महाकाव्य की कोटि में पूर्णरूपेण नहीं रखा जा सकता । फिर भी आंशिक रूप से यह महाकाव्य कहा जा सकता है ।

'उर्मिला में गांधीवाद ' :

'उर्मिला' पर कवि की गांधीवादी विचारधारा का प्रभाव स्पष्ट है ।

बलिदान भावना : इस काव्य के प्रथम सर्ग में उर्मिला के सीता से एक कहानी सुनाने का अनुरोध - करने पर वह गांधार देश की वीरांगना, जो गांधार देश के राजा की पुत्री है- की कथा सुनाती है । उस वीरांगना के इस कथन में बलिदान की भावना स्पष्ट है -

'अपने शोणित को देकर निज देश स्वतन्त्र करें वे ।
निष्फल अरि की कुटिल नीति का यह कटु मन्त्र करें वे ।।'[१]

तृतीय सर्ग में लक्ष्मण और उर्मिला के बीच में वियोग की बातें होती हैं । बीच में लक्ष्मण राजकीय सुख की ओर विमुख होकर बलिदान और आत्म - समर्पण की बातें सोचते हैं । वे कहते हैं -

'
सुख, बलिदान, जीवनाहुति के ,
आत्मार्पण के दाँव लगे ,
राज - भोग, ऐश्वर्य छूट रहे ,
मर - मिटने के भाव जगे ।।'[२]

उर्मिला लक्ष्मण के वन- गमन को अनिवार्य मानती है क्योंकि किसी लक्ष्य की प्राप्ति के उद्देश्य से वे वन जा रहे हैं अत: उसने अपने पति से सब कुछ त्यागने का उपदेश दिया है और यों कहा है -

' राज, भोग, सुख सब अर्पित हों
-- -- --
आत्मदान की चरम वेदना -
में भी प्रिय कितनी कह है ।'[३]

उर्मिला के आत्मदान के बारे में सीताजी ने यों कहा है कि उसने अपने पति के सामने अपनी आत्मा का दान करके, गागर में सागर भर दिया है । यह कथन गान्धीजी पर भी लागू हो सकता है । गान्धीजी ने अपने प्राणदान से भारत को ही नहीं विश्व - भर को मुक्ति प्रदान की है -

' आत्मार्पण - भावना विमल को
-- -- --
तुमने गागर में सागर ।। '[४]

- -

१: उर्मिला - प्रथम सर्ग - पृ० ४० २: वही० तृतीय सर्ग - पृ० १७६
३: वही० पृ० १७६ ४: वही० पृ० १७७

रामचन्द्रजी ने जगत के कल्याणार्थ जो सेवा - यज्ञ किया जाता है उसी में आत्मदान की अनिवार्यता और महत्ता का प्रतिपादन किया है -

> ' शुद्ध यज्ञ है - सर्वभूत - हित -
> -- -- --
> अगुण - सगुण - गुण - निर्गुण में ।।'[१]

उनके इस कथन में कि -

> ' यज्ञाहुति की पुण्य भस्म ही
> से विभु ने यह सृष्टि रची । '[२]

भारत की स्वतंत्रता के लिए गांधीजी ने मुक्ति यज्ञ जो किया है और जिसमें अपने प्राण की आहुति दे दी, इसका आभास स्पष्टत: मिलता है । कवि ने उर्मिला के आत्मदान को अवर्णनीय बताया है क्योंकि उसने मानव के हित सर्वस्व त्यागकर स्वयं दु:ख झेलते हुए जीवन बिताया -

> ' अपना सर्वस्व लुटाकर,
> मानवता के चरणों में ,
> उर्मिला तो नयी सलझा ,
> दु:ख के घन आवरणों में । '[३]

स्वातन्त्र्य भावना :

स्वदेशी तथा स्वतंत्रता का विचार गांधीवाद का एक तत्त्व है । गांधीजी ने भारत के भावी निर्माण के लिए सर्वप्रथम उसे स्वतंत्र बनाने के बारे में ही कहा है । गांधीजी हमेशा स्वावलंबन का नारा बुलन्द कराते थे । गान्धार देश के राजा की कन्या के इस कथन में उसके मन में अपने देश के प्रति बड़ी श्रद्धा, ममता और प्रेम है । अत: वह अपनी मातृभूमि को शत्रु की अधीनता से स्वाधीन बनाना चाहती है और वह कहती है - 'कर दो, प्यारी मातृभूमि की व्यथा दूर तुम क्षण में' ।

- -

१: उर्मिला - तृतीय सर्ग - पृ० ३०० २: वही० पृ० २९९

३: उर्मिला - चतुर्थ सर्ग - पृ० ९ ३९१

उर्मिला आधुनिक भारतीय नारी के रूप में यहां चित्रित है। उसके मन में देश की स्वतंत्रता का भाव उमड़ उठा है। उसने देश की पूर्ण मुक्ति चाही है -

' पूर्ण मुक्ति की ओर विश्व को ले जाना है काम हमारा ,
जगती को तद्रूप बनाने में देना है हमें सहारा ।। '[१]

अहिंसा :

कवि ने रावण पर रामचन्द्रजी की विजय को सांस्कृतिक विजय माना है और उसे रावण वाद पर आत्मवाद की विजय बताकर उसे अहिंसात्मक माना है-

' नहीं शस्त्र - विजिता यह लंका -
यहां विजय है शास्त्रों की ।
यह जय है तापस आर्यों के
शुद्ध शब्द - प्रकाशों की ।। '[२]

रामचन्द्रजी के रावण के वधोपरांत इस प्रकार कहने में अहिंसा का परोक्ष रूप से प्रभावहै-

' एक खेद है यह शस्त्राकुल
होकर सत्य हुआ विजयी ,
यदि अशस्त्र जय होती,तो वह
होती पूर्ण विशुद्ध नयी । '[३]

वैयक्तिक समन्वय भावना :

रामचन्द्रजी ने जनता से मैं - मैं , तू - तू का भाव छोड़कर मैं - तू, तू - मैं का भाव अपनाने और दूसरों के सुख- दु :ख में अपना सुख- दुख बांट देने का जो अनुरोध किया है यह गांधीवाद के ही अनुकूल है -

- -

१: उर्मिला - द्वितीय सर्ग - पृ० १०६
२: उर्मिला - षष्ठ सर्ग - पृ० ५३१
३: उर्मिला - षष्ठ सर्ग - पृ० ५४१

' सब मेरा - तेरा है, तेरा -
मेरा, मैं तू, तू मैं हूं ,
तू सुख में तब मैं सुख में हूं ,
तू दुःख में, मैं दुःख में हूं ? '[१]

गान्धीजी के हृदय-परिवर्तन के सिद्धान्त का प्रभाव लक्ष्मण पर खूब पड़ा है। लक्ष्मण वनगमन को लेकर अत्यन्त दुःखी है क्योंकि वह उर्मिला को अकेली छोड़कर जा नहीं सकता। फिर भी अन्त में उसका हृदय- परिवर्तन होता है और वह यों कहता है -

' लक्ष्मण - हृदय - स्थल में सहसा
— — —
भर मिटने के भाव जगे ।। '[२]

जब राम और लक्ष्मण, सीता और उर्मिला के साथ अयोध्या में विवाहोपरान्त आते हैं, तब राजा दशरथ उनको वह उपदेश देते हैं जिसमें गान्धीजी के जीवन की ओर जागरूकता, अपंचलता, सत्यपरायणता, आत्म- चिन्तन आदि स्पष्टतः दर्शनीय हैं -

' धर्माचरण रहे सम्मुख , -
— — —
सेवा ही, प्रभु का वन्दन है। '[३]

गान्धीजी जिस प्रकार सत्य और अहिंसा के सन्देश का प्रचार करने के लिए तपस्वी का सा वेष- धारण कर गांव - गांव चलते फिरते थे उसी प्रकार यहां लक्ष्मण भी सन्यासी बनकर आर्य - संस्कृति के प्रचारार्थ वन जा रहे हैं -

' हम सन्यासी, विपिन-प्रवासी ,
— — —
सब जन - गण - उद्धारक हम ।। '[४]

- -

१: उर्मिला - षष्ठ सर्ग - पृ० ५६३ २: वही० तृतीय सर्ग - पृ० १७६
३: वही० द्वितीय सर्ग - पृ० ७६ ४: वही० तृतीय सर्ग - पृ० २२३

साम्राज्यवाद का विरोध :

कवि ने राम - वन - गमन को आर्य - संस्कृति - प्रसार - यात्रा कहकर उसे नवीनता प्रदान की है। उनकी दृष्टि में राम- वनगमन कौटुंबिक विवाद न होकर सांस्कृतिक विजय है -

'विपिन - गमन सांस्कृतिक विजय है

-- -- --

सब जन - सम्मानित होगा ।। '[1]

रामचन्द्रजी का मत यह है कि शुद्ध - आचरण और सदाचरण की दीवारों से ही संस्कृति का भवन- निर्माण संभव है -

' शुद्ध विचार प्रौढ़ता ही है

-- -- --

पोषक संस्कृति, मति, धृति की , । '[2]

अत: वे भौतिकवाद और साम्राज्यवाद में विश्वास नहीं रखते और सदा उनके नाशक रहे हैं -

' है साम्राज्यवाद का नाशक ,

-- -- --

जन - मन - रंजन राम सदा । '[3]

कवि ने राम को आत्मवाद का प्रतीक माना है और रावण को साम्राज्यवाद का ; राम- रावण संघर्ष को आत्मवाद - साम्राज्यवाद का संघर्ष सिद्ध किया है।

' महा महिम रावण का, मेरा,
नहीं व्यक्तिगत था झगड़ा ,

- -

१: उर्मिला - तृतीय सर्ग - पृ० २४३

२: वही० षष्ठ सर्ग - पृ० ५५४

३: वही० षष्ठ सर्ग - पृ० ५५५

आत्मवाद, साम्राज्यवाद का
यह था अनमिल भेद बड़ा । '[1]

कवि के राम कोरे आत्मवादी हैं और संस्कृति का मूलाधार यही बताते हैं -

' आत्मवाद में है अनन्तता
-- -- --
सुन पड़ता है कर्कश रव । '[2]

लोगों का यह एक मामूली स्वर रहा है कि वे सदा धन अर्जित करने में लगे रहते हैं । इसलिए उन्होंने कहा है कि अर्थ - संचय को इच्छा नहीं रखनी चाहिए जो कुछ समय के लिए हाथ में रहता है और नष्ट हो जाता है । यहां यह स्मरणीय है कि गांधीजी अर्थ - संचय के कट्टर विरोधी थे । धन - संचय की इच्छा बिल्कुल नहीं थी -

' अर्थ प्रगति का चिह्न नहीं है ,
वह है प्रगति - नदी का फेन ,
वह तो यों ही उतराता है ,
होने को विलीन, बेचैन ।। '[3]

गान्धी - स्वरूप रामचन्द्रजी का चित्रण :

कवि ने रामचन्द्रजी की करनी और कथनी में गान्धीवादी विचार-धारा के सिद्धान्तों को क्रियान्वित किया है और उन्हें गांधीजी के रूप में चित्रित किया है । कवि के रामचन्द्रजी गांधीवाद के समर्थक और पोषक हैं और उनके व्यक्तित्व और कर्तव्य में वह फलकता भी है । गांधीजी और गांधीवाद का प्रभाव रामचन्द्रजी पर स्पष्ट रूप से पड़ा हुआ दिखाई पड़ता है । अत: उन्होंने जनता से गांधीमार्ग पर चलने और गांधी सिद्धान्त का पालन करने का आग्रह प्रकट किया है । रामचन्द्रजी के मतानुसार कर्तव्यपालन ही जीवित रहने का उद्देश्य है । इसलिए वे वन चले जाते हैं -

- -

१: उर्मिला - षष्ठ सर्ग - पृ० ५४१ २: वही० पृ० ५४८
३: वही० पृ० ५५३

' जीवनेति कर्तव्यता यही

-- -- --

छोड़ी, शरण गही जन की ,'[1]

उनके अनुसार जागृ जीवन का चिरतत्व यह है -

प्रगति, धर्म - रति, सत्कृति, सम्मति ,

-- -- --

यही भावना है मेरा ।।'[2]

जीवन का मन्त्र बाधाओं का उल्लंघन करना है ।[3] गान्धीजी ने कितने विघ्नों को उल्लंघित किया है और इसके लिए कितने कष्ट अनुभव किया है , यह कहना असंभव है। गान्धीजी के सत्य संबंधी विचारों तथा विश्लेषणों से रामचन्द्रजी प्रभावित हैं । सत्य की महिमा उन्होंने जगह जगह पर गायी है और यही एकमात्र पुनीत साधन बताया है । -

' सदा एक ही वस्तु पूज्य है ,

यह है सत्य, असत्य नहीं ,

-- -- --

सत्य रहित कैसे स्वीकृत हो -

-- -- --

शुद्ध सत्य अनुमोदित जो ।।'[4]

उन्होंने सत्य और धर्म पर निर्भर रहने का उपदेश दिया है क्योंकि दोनों का वास्तविक संबंध रहता है -

' मत छोड़िये धर्म - क अवलंबन ,

-- -- --

हरिए सब जन की विपदा ।।'[5]

१: उर्मिला- षष्ठ सर्ग - पृ० ५५१ २: वही० पृ० ५६८

३: बाधाएं अतिलंघित करना, है जीवन का मन्त्र सदा । - वही० पृ० ५५६

४: वही० पृ० ५५६ ५: वही० पृ० ५७७

वे कहते हैं कि सन्मार्ग पर चलने वाले व्यक्ति को ही अपना बन्धु समझ लेना चाहिए -

' जो सन्मार्ग - गमन करता है -

-- -- --

हो रावण या शूर्पणखा ।। '[1]

इस प्रकार सत्य, न्याय, धर्म और अहिंसा पर आधारित रामचन्द्रजी की जीवन- लीला को विश्व-कल्याण के तौर पर सब का जीवन- सूत्र माना गया है । -

' किन्तु रामलीला अविकल है,

-- -- --

प्रभु - इच्छा अवलंबित है ।। '[2]

निष्कर्ष :

' ऊर्मिला ' के रचयिता श्री बालकृष्ण शर्मा ' नवीन ' जी ने उर्मिला पर एक अलग विस्तृत महाकाव्य लिखकर नारी के प्रति न्याय किया है । उर्मिला एक साधारण सी नारी न रहकर वर्षों तक कवियों द्वारा उपेक्षित तथा परित्यक्त रही है । व इस काव्य की एक प्रमुख तथा माननीय विशेषता यह है कि ऐसी एक नारी को लेकर ही यह काव्य रचित है । अतः इस काव्य दीपक ने हिन्दी-काव्य - क्षेत्र में एक अनूठी नवीनता का प्रकाश फैलाया है । इतना ही नहीं कवि का यह प्रयास हिंदी जगत में नूतन एवं महान है । यह भी उल्लेखनीय बात है कि 'नवीन जी ' सर्वप्रथम महाकवि हैं जिन्होंने उर्मिला पर एक महाकाव्य की ही रचना की । ' उपेक्षिता उर्मिला ' पर यही महाकाव्य है ।

अनेक कवियों ने इसे महाकाव्य कहने में अपने प्रतिकूल राय प्रकट की है क्योंकि ' नवीन ' जी ने महाकाव्य के तत्वों में से कुछ का पूर्ण निर्वाह किया है , कुछ तत्वों को पूर्ण रूप से छोड़ ही दिया है । कवि का उद्देश्य महाकाव्य व लिखना न रहकर सर्वोपेक्षिता ऊर्मिला ' को सर्व-गृहीता ऊर्मिला बनाने का रहा है । उसकी चारित्रिक विशेषताओं का आवरण - पट खोलकर उसकी गुण- राशियों को

१: उर्मिला - षष्ठ सर्ग - पृ० ५५८

२: वही० पृ० ५६१

दर्शन - युक्त करने का प्रयास ही इस काव्य का ध्येय रहा है । साथ ही उसकी उपेक्षा की गहराई को आंककर अपना दु:ख प्रकट किया है ।

मेरा भी मत यह है कि ' ऊर्मिला ' महाकाव्य के तौर पर ठीक नहीं उतरता । मैं इसे नायिका- प्रधान महाकाव्य कहना अधिक उचित समझती हूं क्योंकि इस काव्य के शीर्षक से ही यह भासित होता है कि यह ' ऊर्मिलामय ' काव्य है । कवि के उद्देश्य से भी यही भान पड़ता है कि यह नायिका प्रधान महाकाव्य हो ही सकता है । कारण यह है कि कवि ने महाकाव्य के तत्वों का निर्वाह करने में उतना ध्यान नहीं दिया है जितना ऊर्मिला के चरित्र - चित्रण में । ऊर्मिला का चरित्रांकन ही कवि का मूल उद्देश्य प्रतीत होता है । इसमें उर्मिला को ही प्रधानता दी गयी है और महाकाव्य रचने के लिए रामायण से कथा-सार को अपनाया गया है ।

<u>काव्य में कतिपय नवीनताएं :</u>

गान्धीजी के द्वारा ही नारी का सम्यक् सुधार एवं उद्धार हुआ है । इसी सुधारवादी विचार- धारा से प्रेरित होकर कवि ने भी प्रस्तुत काव्य द्वारा नारी उर्मिला का सुधार और उद्धार किया है । प्राचीन काल में नारी एक सीमित क्षेत्र के अंदर जीवित रहती थी । वह सभी प्रकार से परित्यक्त और नगण्य थी । इस प्रकार वर्षों से परित्यक्त एवं नगण्य नारी को हमारे कवियों ने अपनी रचनाओं में स्थान दिया और अधिकांश कृतियां ऐसी भी लिखी जाने लगीं जिनमें नारी को अत्यधिक महत्व दिया जाने लगा । ऐसी परिस्थिति में कवि ने जो ऐसे महाकाव्य की सृष्टि की है वह अत्यंत सराहनीय है । अन्य राम- भक्ति काव्यों में वह केवल लक्ष्मण- रानी के रूप में ही चित्रित हुई है , लेकिन अब उसे एक महाकाव्य की नायिका बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है ।

<u>गांधीवाद का निर्वहण :</u>

इसमें कवि ने आधुनिक नीति, स्वातंत्र्योत्तर युग की अस्तव्यस्त परिस्थितियों का वर्णन किया है और इसके लिए उन्होंने गांधीवाद में समाधान ढूंढने

का प्रचार प्रसार किया है । ` उर्मिला ` में इसका निर्वाह रामचन्द्रजी की बातों द्वारा किया गया है । कवि मूलत: गान्धीवादी हैं और प्रत्येक गान्धीवादी के मन में यह विचार बरबस रहता ही है -

> ` विश्व- विजय की चाह नहीं थी ,
> और न रक्त - पिपासा थी ,
> केवल कुछ सेवा करने की ,
> उत्कण्ठित अभिलाषा थी ।। `[1]

यहां रामचन्द्र जी ने यों कहा है । ऐसे कवियों के व्यक्तित्व का प्रभाव उनकी कृतियों पर पड़े बिना नहीं रह सकता । अत: उन्होंने गांधीवाद को इसमें स्थान देकर इसे एकदम अद्यातन बनाया है । ` उर्मिला ` काव्य गान्धीवादी युग-चेतना से प्रभावित है । यहां गान्धीजी से चलाये गये राष्ट्रीय आन्दोलन की झलक पायी जाती है -

> ` अधिकार पराजित, कुण्ठित ,
> — — —
> जन को निर्मल ज्ञान देना । `[2]

इस काव्य के प्रमुख पात्र - राम, लक्ष्मण, दशरथ, सीता, उर्मिला, आदि गान्धीवादी विचारों से प्रभावित हैं । गान्धीवाद के तत्वों का समर्थन प्रत्यक्ष और परोक्ष दोनों रूपों से किया गया है । लेकिन प्रत्यक्ष रूप ही अधिक मुखर है । यह अपनी आधुनिकता की दृष्टि से वर्तमान युग के लिए एक अमूल्य अपरूप वरदान है जिसमें सत्य - असत्य, नीति - अनीति, रावण वाद - आत्मवाद, साम्राज्यवाद-समाजवाद, भौतिक वाद - मानव वाद , हिंसा - अहिंसा, सगुण - दुर्गुण, जय - पराजय आदि पर विपुलता से सम्यक् चर्चा हुई है ।

रामराज्य :

यह काव्य ` साकेत पुरी ` अथवा ` रामराज्य ` पर आधारित काव्य है । इसमें कवि ने भगवान रामचन्द्र जी के ` रामराज्य ` की कल्पना अपनी भावुक दृष्टि से की है जिसमें सदा सुख और आनन्द की केली - तरंगों का उद्भव होता

- -

१: उर्मिला - पृ० ५३१ २: वही० पृ० ५४५

रहता है । सुख- संतोष संपत्ति- पूर्ण रामराज्य में जो जो कार्य जिस प्रकार होना चाहिए अथवा होता था, उसी का विस्तृत विवेचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है । गांधीजी ने भी भारत को स्वतंत्रता प्रदान करने के सिलसिले में ` रामराज्य ` की कल्पना अवश्य की थी और उससे संबंधित अनेक विचार भी उन्होंने प्रकट किये थे । उनमें एक विचार देखिए जिसमें सर्वस्वातन्त्र्य और सर्वजन-सुख की भावना निहित है । `मेरे सपनों का स्वराज्य गरीबों का स्वराज्य है । धनिकों को जीवन की जो साधारण सुविधाएं प्राप्त हैं, वे सब को मिलनी चाहिए । स्वराज्य में राजा से लेकर प्रजा तक एक भी अंग अविकसित रहे , ऐसा नहीं होना चाहिए । उसमें कोई किसी का शत्रु न हो । सब अपना-अपना काम करें । कोई निरक्षर न रहे । उत्तरोत्तर सब के ज्ञान की वृद्धि होती जाय । सारी प्रजा में कम से कम बीमारियां हों । कोई भी दरिद्र न हो । परिश्रम करने वाले को बराबर पारिश्रमिक मिलता रहे । उसमें जुआ, चोरी, मद्यपान और व्यभिचार न हो । वर्ग - विग्रह न हो । धनिक अपने धन का विवेक पूर्वक उपयोग करें - भोग- विलास की वृद्धि करने अथवा अतिशय संचय करने में नहीं । यह नहीं होना चाहिए कि मुट्ठी-भर धनिक मीनाकारी के महलों में रहें और हजारों - लाखों लोग हवा और प्रकाश से रहित कोठरियों में । `[१] यह तो एक क गांधीवादी काव्य इसलिए है कि कवि ने अपने रामराज्य की स्थापना के लिए गांधीवादी विचारों को अपनाया और उन्हीं पर उसका निर्माण करना चाहा है । कवि ने सब में सम-भावना चाही है और छोटे बड़े का भेद मिटाना चाहा है ।

` जन में न कहीं लघुता - गुरुता
सब में सबकी सुचिता - समता
निबला गरता न बसे मन में
ममता न रहे जड़ - बैभव में ।।` [२]

जीवन के अन्तिम - लक्ष्य और निष्काम कर्म का अभिलाषा प्रकट की गयी है । -

- -

१: रामराज्य - हरिशंकर शर्मा - पृ० ५
२: वही० पृ० ११

'आशा-हित जीवन - उदय बने
उपकार - सुधा - रस - स्रोत बहे
सद् कर्म करें, फल आश तजें
मदहीन रहें, भगवान भजें ।।'[1]

गो-रक्षा और बलिदान पर बल देते हुए बताया गया है -

'पशु - रक्षण का नित ध्यान रहे
कुल - गोकुल का हित - ज्ञान रहे
निज गौरव का अभिमान रहे
तन त्याग करो पर आन रहे ।।'[2]

दरिद्रता और गरीबी का सर्वनाश करना कवि ने चाहा है -

भ्रम - भाव - भरी न अनीति बढ़े
जिससे विकराल अकाल पड़े
पट - अन्न - विहीन दरिद्र मरें
सुख - भोग धनी फिरें - फिरें ।।'[3]

इस पावन धरती को ही स्वर्ग अथवा रामराज्य बनाना कवि का ध्येय रहा है ।

'सब देव बनें, सद् भक्त बनें
-- -- --
यह जीवन ही अपवर्ग बने ।।'[4]

कवि अवतारवाद के विश्वासी हैं । उन्होंने बताया है कि जब देश की दशा अत्यंत बिगड़ जाती है और निर्दयता और निष्ठुरता का व्यवहार बढ़ा हो जाता है, तब उसका अंत करने के लिए किसी महात्मा या प्रभु का अवतार होता है ।

१: रामराज्य - पृ० ११ २: रामराज्य - पृ० १३
३: वही० पृ० १३ ४: वही० पृ० १४

' जब जब जनता में धर्म - भाव घटता है
जबजब अधर्म धरणी पर आ डटता है
तब तब होते आदर्श पुरुष भय - नाशक
सच्चे सेवक शुभ- चिंतक, भाग्य - विधायक ।। '[1]

भगवान बुद्ध ने जनता को अहिंसा का पाठ पढ़ाया -

' भगवान बुद्ध थे सत्य - भाव संचालक
-- -- --
थे अटल अहिंसा-सिंधु रोह - आराधक ।। '[2]

इन्होंने अहिंसा द्वारा देश का उद्धार और रक्षा की । सत्य - अहिंसा की जन पर कवि ने यों कहा है -

' जिस सत्य - अहिंसा से स्वराज्य पाया है
जिसको बापू ने घर - घर अपनाया है
उसका प्रभाव, बल, अमर - अमर, अजय हो
प्रभु महावीर, भगवान बुद्ध की जय हो ।। '[3]

सम्राट अशोक अहिंसा के प्रचारक थे , सर्व धर्म उदारता और सहनशीलता के पा और त्यागी भी । शंकराचार्य अद्वैतवाद के पालक थे । गांधीजी के बारे में कवि यों बताया है -

' गुरु गांधीजी की सत्य - अहिंसा - धारा
-- -- --
नय - न्याय - नीति - आदर्श, सत्य - संचालक ।
-- -- --
वह न्याय - नीति का कोष महामानव था ।।
-- -- --
मिथ्या - तन्द्रा को तोड़ जगाने वाला ।। '[4]

- -

१: रामराज्य - पृ० २६ २: वही० पृ० ३२
३: वही० पृ० ३३ ४: वही० पृ० ५६ - ५७

अहिंसा की श्रेष्ठता और प्रबलता का विचार किया गया है -

> ' वह अमर - शक्ति संसार हिलाने वाली
>
> -- -- --
>
> बन्धन - विमुक्ति की वर विधि बतलाई थी ।। '[1]

यहां हिंसा पर अहिंसा, भौतिकता पर आध्यात्मिकता, साम्राज्यवाद पर समाजवाद और लौकिकता पर वैराग्य की विजय हुई है । -

> ' कट गया दासता - पाश, त्रास - युग बीता
>
> -- -- --
>
> हिंसा पर अटल अहिंसा की छवि छाई ।। '[2]

यहां कवि ने रावणत्व पर रामत्व की जीत के बारे में कहा है -

> ' प्रभु ने रावण का घोर घमण्ड घटाया
>
> -- -- --
>
> फिर न्याय - नीति के भव्य भाव विस्तारे ।। '[3]

अहिंसा, धर्म और नीति की सुदृढ़ नींव पर रामराज्य की स्थापना की है -

> ' श्री रामराज्य में सत्य- अहिंसा बल था
>
> -- -- --
>
> सद्भाव, स्नेह, संतोष, तपस्या धन था । '[4]

यहां राजा- प्रजा का भेद भाव नहीं था । राजा के समान प्रजा को भी समानाधिकार दिया गया था । -

> ' अतएव प्रजा-राजा स्वधर्म - पालक थे
>
> -- -- --

१: रामराज्य - पृ० ५६ | २: वही० पृ० ५७

३: वही० पृ० ६५ | ४: वही० पृ० ८२

द्रोही - विद्रोही नष्ट समस्त हुए थे ।

-- -- --

दुष्कर्म , पाप, अपराध न करते थे जन

-- -- --

धर्मज्ञ, वीर ही शासन - संचालक थे ।। `[1]

रामचन्द्रजी श जनवादी शासक थे और वे जन- मत को शासन में अधिक प्रमुखता देते थे ।[2] जन- सेवा और निष्काम - कर्म ही रामचन्द्रजी के शासन का उद्देश्य एवं लक्ष्य था ।[3] गांधीजी का जीवन ही जन- सेवा के लिए अर्पित था । जन- सेवा ही उनका जीवन था । जन- सेवा से उनका मतलब था जनतोद्धार । गांधीजी ने जनता के उद्धार के लिए जो कार्य किये थे, उनके लिए वे किसी प्रकार की फलेच्छा नहीं करते थे । प्रतिफल की अपेक्षा परसेवा को अधिक महत्व देते थे ।

कवि के इस कथन में गांधीजी के विदेश - गमन और भ्रमण जो वे गांव - गांव में करते थे, आभास मिलता है ।[4]

यहां कवि ने जो गुण बताये हैं, वे सब गांधीजी में भी विद्यमान थे और वे भारत- रामराज्य के नेता भी थे, शासक भी ।[5]

कवि का यह कथन गांधीजी केक मनोभाव और लौकिक जीवन से समता रखता है-[6]

- -

१: रामराज्य - पृ० ८३ - ८४ २: रामराज्य - पृ० ८५

३: जन - सेवा ---- -----

------- प्रेम रस की वर्षा करते थे । ` - रामराज्य पृ० १०१

४: पर्यटन देश का ---------

---------- ऐसी विधि करते थे वे । ` - रामराज्य पृ० ११०

५: `जो निर्मम , बुद्धिमान ------ नेता निपुण कहाता । `

- रामराज्य पृ० १११

६: `जो सुख - दुख ------- गंभीर विजय पाता है । `

- रामराज्य पृ० १४१

यह उपदेश गांधीजी के मुंह से निकलता हुआ जान पड़ता है क्योंकि गांधीजी ही ऐसे अनेक उपदेश जनता को दिया करते थे। -

' सब स्वार्थ कामनाएं संयम से रखना
-- -- --
सद् स्वाध्याय। प्रभु भक्ति हृदय में भरना ।।'[१]

अहिंसा के द्वारा मानव- कल्याण की संभावना प्रकट की गयी है। -

' जिससे मानवता का विकास होता है
-- -- --
जन- जीवन में वही कल्याण लाता है।'[२]

प्रत्येक व्यक्ति मनुष्य के जीवन का लक्ष्य भी अहिंसा ही होनी चाहिए -

' तप, त्याग तुम्हारे जीवन का संबल हो
-- -- --
बह उठे विश्व में पुनः प्रेम की धारा।'[३]

साकेत वासियों में सत्याभिन्नता एवं उच्च मानवता थी।

' सब वर्णों में सहयोग - स्नेह, समता थी
-- -- --
पार्थक्य - जन्य दुख - दैन्य नहीं सहते थे ।।'[४]

पर- सेवा का व्रत सर्वत्र सर्वग्राह्य था।[५] अपने जीवन- लक्ष्य तक पहुंचने के लिए अध्यात्मवाद को अपनाने का उपदेश दिया गया है।[६] साकेत के लोगों ने अत्यंत सादगी का जीवन बिताया था। -

- -

१: रामराज्य - पृ० १४३ २: वही० पृ० १४४

३: वही० पृ० १४६ ४: वही० पृ० १६२

५: 'जिनमें भीतर - बाहर -----व्रत लेते थे' - रामराज्य पृ० १६८

६: 'अध्यात्मवाद ---- सभी के जीवन' वही० पृ० १७५

' जीवन में आडंबर का नाम नहीं था

-- -- --

मितव्ययता की मृदु रीति सदा भाई थी ।। '[1]

गोरक्षा का प्रबन्ध अवश्य होता था । -

' गो - रक्षा परम धर्म कर्म माना जाता था

-- -- --

जीवन के साधन दान दिया करते थे । '[2]

धनी और निर्धन के बीच में एकता सुस्थिर थी -

' निर्धन - धनियों में शान्तिमयी समता थी

-- -- --

सहयोग सहित सबको सब अपनाते थे । '[3]

नारी का आदर- सम्मान सब कहीं होता था ।[4] वे नारियां पर- सेवा और आत्म-त्याग की इच्छुक थीं ।[5] सुखद एवं आदर्शयुक्त कौटुंबिक जीवन की सफलता सत्य पर ही निर्भर होती है -

' दृढ़ नियम सत्य पर सदा सुष्टि रहती है

-- -- --

दृढ़ नियम सत्य ही सद् गृहस्थ का धन है । '[6]

गांवों में जनता स्वावलंबी जीवन ही बिताती थी ।[7] सूत कातना ग्रामीण जनता का एक प्रधान काम रहा जिससे वे अपने लिए जीविकोपार्जन करते थे ।

- -

१: रामराज्य पृ० १६४ २: रामराज्य पृ० २०१

३: वही० पृ० २०६ ४:' नारी का आदर -- -- सुषमा थी ' - वही०पृ०२

५:' नारी में -- -- जन - आमी थीं । ' - रामराज्य पृ० २२०

६: रामराज्य पृ० २२५ ७: वही० पृ० २४२

' प्राय: प्रत्येक गृहस्थ रुई वह बुनता था

-- -- --

सब स्वावलंब के बल पर ही जाते थे । '[१]

मानवता को सबसे ऊँचा माना जाता था और इसलिए उसका प्रचार भी करते थे -

' मानवता सर्वोपरि समझी जाती थी

-- -- --

तो मानवता की ज्योति जगाते थे ।। '[२]

सत्याग्रह का पालन और व्यवहार के बारे में कवि ने बताया है -

' सत्याग्रह पर सर्वस्व समर्पित करते

-- -- --

जन- जन जनता में सत्य भाव भरता था ।। '[३]

आत्मबलिदान की बड़ी आवश्यकता थी -

' कर्तव्य - मार्ग में मरना ही जीवन था

-- -- --

बलि- वेदी पर निज शीश चढ़ाते थे तब । '[४]

जीवन- तपस्या के तीन व्रत माने गये हैं जो महात्मा गांधी जी के भी व्रत माने जा सकते हैं -

' काया, वाणी , मन से सब का शुभ साधन

-- -- --

थी त्रिविध तपस्या : व्रत संयम से रहना । '[५]

जनता पर छूआ - छूत का आत्म- कलंक बिल्कुल नहीं था ।

१: रामराज्य - पृ० २४३ २: वही० पृ० २५४

३: वही० पृ० २५८ ४: वही० पृ० २६१

५: वही० पृ० २६२

' अस्पृश्य भाव का क्रूर कलंक नहीं था

-- -- --

वसुधा पर सकल कुटुम्ब-सम छाये थे ।। '[१]

गांधीजी के स्वतंत्रता के दाता थे और वे जन- जन में रमते थे -

''बापू' का वैभव तुममें है

-- -- --

जन- जनता के आराध्य हो ।। '[२]

इस काव्य के अंत में कवि ने राष्ट्रीय ध्वजा का कीर्ति का गान किया है । वह तो यह संदेश ' मिलती विजय त्याग तप द्वारा ' सुनाता रहता है । वह मानव के लिए सत्य और अहिंसा का व्रती, गरीबों के लिए धनी और शहीदों की निशानी है ।

' सत्य अहिंसा का व्रत - बंधन

-- -- --

झण्डा जीवन- प्राण हमारा ।। '[३]

इन पंक्तियों में कवि ने गांधीजी का यशगान किया है ।[४]

' रामराज्य ' सचमुच गांधीवादी काव्य है । इसमें कवि ने अपने कल्पना - मण्डल से जिन भाव- विचारों को उतारा है, वे सब ० गांधीजी की विचारधारा के अनुकूल हैं । कवि ने इस काव्य में वर्द्धमान महाराजा, बुद्धदेव, हर्ष वर्द्धन, अशोक, शंकराचार्य, विवेकानंद, विक्रमादित्य, तुलसीदास, सूरदास, कबीर, गुरु गोविंद, रामकृष्ण परमहंस, राजा राममोहन राय, गोखले, तिलक, रवीन्द्रनाथ ठाकुर, सुभाष चन्द्र बोस, राजेन्द्रप्रसाद, विनोबा, जवाहरलाल नेहरू आदि वीर- शूर नेताओं का यशोगान किया है जिन्होंने भारत की स्वतन्त्रता- प्राप्ति के लिए कुछ न कुछ किया है।[५]

- -

१: रामराज्य पृ० २६६ २: वही० पृ० ३०२ ३: वही० पृ० ३१०

४:' जय जनतंत्र ---- -- प्राण हमारा ।' - रामराज्य,पृ० ३१२

५:'वीरों ने दे बलिदान -- -- स्वर्ण - अधिकारी । '- रामराज्य पृ० ५६

रामराज्य की प्रतिष्ठा के लिए जिन जिन बातों या वस्तुओं की आवश्यकता है, उन्हें साकेत के राम- शासन में हम देख सकते हैं । साकेत के रामव - राज्य का -सा राम-राज्य ही गांधीजी भारत में स्थापित करना चाहते थे । अत: वाल्मीकि - रामायण का रामराज्य ही गान्धीजी का रामराज्य है । इस कारण से ही कवि ने साकेत के राम-शासन को गान्धीवादी विचारधारा के तात्त्विक रंगों से रंगा है । इस काव्य का महत्व भी इसी दृष्टि से है ।

रामराज्य :

यह काव्य रामायण की कथा पर लिखित है। इस काव्य में राम के वनवास- गमन से लेकर रामराज्य - प्रतिष्ठा तक की कथा वर्णित है । कथा की अनुक्रमणिका का चयन कवि ने तुलसीदासजी के रामचरितमानस के आधार पर किया है। इस काव्य की रचना के उद्देश्य के बारे में कवि ने स्वयं कहा है - " कथा का उद्देश्य केवल कथा नहीं, किन्तु राष्ट्रीय एकीकरण और सुराज्य स्थापना से संबंधित राम के प्रयत्नों पर अपनी मति के अनुसार प्रकाश डालना है ।"[1]

उन्होंने इस दृष्टि से इस काव्य की रचना की कि यह देश की वर्तमान शोषण और भयानक परिस्थितियों के चित्रण और उसके गान्धीवादी विचारोचित परिवर्तन के द्वारा भविष्य के निर्माण में सहायक सिद्ध हो । इस बात पर उनका मत भी यह था - " इतिहास में यदि वर्तमान का प्रतिबिंब न हो और भविष्य के लिए व प्रेरणा न हो तो उसे प्राय: काव्य का विषय नहीं बनाया जाता ।"[2] अत: कवि ने प्रस्तुत काव्य के नायक रामचन्द्रजी की करनी और कथनी का, गान्धीवादी दृष्टिकोण से विश्लेषण करके उन्हें देश की दुर्दशा का सुधारवान साधन के रूप में जनता के सम्मुख रखा है । कवि ने निष्काम कर्म कर्म की महत्ता पर बताया है ।[3] उन्होंने एकता का सन्देश दिया है ।[4] सत्य और प्रेम (पारस्परिक) की अभिन्नता का समर्थन रामचन्द्रजी ने किया है -

- -

१: रामराज्य - भूमिका - पृ० ६

२: रामराज्य - भूमिका - पृ० ६

३: "मानव का धर्म --- वह तजे न ध्यान" - रामराज्य-प्रथम सर्ग-पृ० १६

४: "एक प्राण हो -- मूल पायें हम" - रामराज्य-प्रथम सर्ग- पृ० २३

५: रामराज्य - द्वितीय सर्ग - पृ० २६

' महा महिम है स्नेह , जगत का संचालक है वह

-- -- --

भवाटवी का एक , विषम भ्रामक पन्था है । '[1]

सत्या का समर्थन रामचन्द्रजी ने किया है जो रघुकुल का व्रत माना जाता था -

' सत्य सुकृत का मूल, सत्य रघुकुल का व्रत है

-- -- --

अनायास पा गया, कि जो लेना था मुझको ।। '[2]

रामचन्द्रजी के तपस्वी रूप का चित्रण कवि ने किया है जिसमें अहिंसक का भाव प्रकट हुआ है ।[3] त्याग में ही जीवन को पुष्पित और पल्लवित माना गया है -

' नहीं भोग में, किन्तु त्याग में खिलता जीवन
तप - रघुकुल था, मुझे मिला वर ही सा कानन ।। '[4]

. देश में शान्ति और समाधान लाने के लिए हिंसा का अन्त करना चाहिए ।

' हिंसा छोड़ो किन्तु दण्ड से मुंह मत मोड़ो

-- -- --

नर भक्षण तब आप तिरोहित हो जायेगा । '[5]

यहां इस उक्ति का समर्थन किया गया है कि यदि हिंसक अहिंसक पर टूट पड़ता तो उसी का नाश होता है । अहिंसक विजयी होता है -

' जो कि अहिंसक पर हिंसक जब करता है आक्रमण कठोर

-- -- --

और उसे हो प्रभु पर निष्ठा, न्याय पक्ष पर पूरा ध्यान ।'[6]

१: रामराज्य - द्वितीय सर्ग - पृ० २६ २: रामराज्य - द्वितीय सर्ग - पृ० ३०
३: ' साथ धनुष था -- सेवा व्रत धारी । ' - वही०- पंचम सर्ग - पृ० ५६
४: राम राज्य-द्वितीय सर्ग - पृ० ३० ५: वही० - पंचम सर्ग - पृ० ५६
६: रामराज्य - षष्ठ सर्ग - पृ० ७१

जिस प्रकार गांधीजी ने जन- सेवा अथवा लोक- सेवा को ईश्वर- सेवा- तुल्य माना था वैसे ही यहां भी उसी विचार का समर्थन किया गया है । -

> ' लोक- सेवा ईश- सेवा को महत्त्व समान
> दे रहा है यह नवांगी भक्ति पन्थ महान ।। '[१]

जिसमें सत्य का आग्रह नहीं रहता, वह मनुष्य से भी अधम तथा निकृष्ट माना जाता है-

> ' सत्य का आग्रह न जिसमें , न कुछ मैत्री ध्यान
> वह मनुज है मृतक से भी अधम पाप- स्थान ।। '[२]

शत्रुओं को प्रेम-वाणी से जीतना अहिंसा माना गया है । अतः रामचन्द्रजी और रावण में अपनी उक्ति द्वारा मित्रता लाना कवि ने चाहा है -

> ' स्नेह- निर्भर सन्धि हो या स्वार्थ - निर्भर सन्धि
> -- -- --
> नीति पथ पर उसे ले आना सुबन्धु सुजान ।। '[३]

विभीषण में सार्वभौम की चिन्ता थी, उसने जनता में स्वदेशी- विदेशी - विचार को बनाये रखने और चपने को दूर करने का प्रयास क किया है । -

> ' कौन स्वदेशी कौन विदेशी , सर्वत्र मानव का प्यारा
> वह अन्तर्राष्ट्रीय हो नहीं हो नहीं सार्वभौम वह विश्व- दुलारा ।'[४]

राम- रावण युद्ध में रामत्व अर्थात् अहिंसा की विजय की घोषणा कवि ने की है -

> ' क्या बाहुबल ----- वीर रहे रण - खेत । '[५]

रामचन्द्रजी ने विरथ एवं निःशस्त्र होकर विजय प्राप्त की ।

> ' ---- विजय का रथ -- -- विरति की ढाल ।'[६]

- -

१: रामराज्य - सप्तम सर्ग - पृ० ७७ — २: वही० पृ० ८६
३: वही० पृ० ८६ — ४: वही० अष्टम सर्ग- पृ० ६५
५: वही० नवम सर्ग - पृ० १०१ — ६: वही० पृ० १०३-१०४

वात्सल्य की महिमा पर बताया गया है कि इस समस्त संसार को देदीप्यमान करने वाले विद्युत की अपेक्षा मानस - विद्युत की महिमा अतिशय अद्भुत - बनी है -

चमत्कार भौतिक विद्युत -- -- अद्भुत बात । [1]

रावण पर रामचन्द्रजी की विजय जो हुई, उसे पाप पर पुण्य की जीत मानी गयी है-

जहां समुद्र -- -- कटा विश्व - संकट गतिमान । [2]

कूटनीति और कुमार्ग के द्वारा रावण ने जो संपत्ति प्राप्त की थी,(वह तो परिग्रह है) उससे जनता का आर्थिक क्लेश मिटाने का (अपरिग्रह) अनुरोध रामचन्द्रजी ने किया है-

' और अर्थ यह ? -- -- उस पद्धति को मान । [3]

असली अर्थ या संपत्ति पर उन्होंने बताया है -

' असली अर्थ -- -- हो जाये विश्व - कल्याण । [4]

कवि ने समस्त विजातीय जनता में एक ही संस्कृति का होना चाहा और वह थी हिंदू - संस्कृति ।

' स्वदेशी राष्ट्र का -- -- संस्कृति- साम्य हो । [5]

यहां सर्वोदय सिद्धान्त को अपनाने का अनुरोध किया गया है -

' मनुष्यों का यही धर्म, अविरोधी प्रकार से
सच्चिदानन्द - विध्यर्थ सर्वोदय हुआ करे । [6]

मनुष्यों द्वारा अनादि काल से होकर प्रचारित एवं प्रचलित धर्म के पंच स्तरों का अनुकरण अनेक महान व्यक्तियों ने किया है जिनमें गान्धीजी का नाम भी स्मरणीय है, जिनका प्रतिपादन इस काव्य में प्रसंगानुसार हुआ है -

- -

१: रामराज्य - नवम सर्ग - पृ० १०५ २: वही० -नवम सर्ग - पृ० १०५

३: वही० - नवम सर्ग - पृ० १०७ ५:७: वही० -एकादश सर्ग- पृ० ११६

४: वही० - नवम सर्ग - पृ० १०७ ६: वही० एकादश सर्ग - पृ० १२०

मुनियों ने इसी धर्म के पंच स्तर हैं कहे
अहिंसा सत्य अस्तेय ब्रह्मचर्यापरिग्रह ।। "[1]

जातीय धर्म का पालन करना चाहिए जो लोक- मंगल में सहायक हो सकता है। गांधीजी ने बताया था कि प्रत्येक जाति के लोगों को अपने अपने धर्म का पालन करना चाहिए और उसका अधिकार भी है कि -

" है पालन अत: श्रेष्ठ निज जातीय धर्म ही
तपस्या यह है शुभ लोक- कल्याण दृष्टि से ।। "[2]

रामराज्य का ध्येय यही रहा है ।[3] और वहां प्रजा और राजा में अभेदता वर्तमान थी।[4] रामराज्य की एक विशेषता यही थी कि सब कहीं वहां समत्व भावना दृष्टव्य थी -

" ब्राह्मण, क्षत्रिय --- -- ऐसी बात कान्ड रामायण । "[5]

राम-राज्य को लेकर अनेक राष्ट्रीय कवियों ने काव्य लिखे हैं । जिन कवियों ने रामायणीय कथाओं के आधार पर काव्य अथवा कविता लिखी है, उनमें वे रामराज्य पर प्रकाश डाले बिना नहीं रह सके क्योंकि रामायण में रामराज्य का प्रतिपादन तो अवश्य हुआ ही है । उन्होंने राम-राज्य को विषय बनाकर काव्य की रचना इसलिए की है कि इससे देश की जनता एवं शासक को कुछ प्रेरणा मिल जाये । कलियुग के भारत में अगर शांति और समाधान लाना है तो यही एक तरीका है कि रामराज्य के शासन संबंधी बातों को जान लेना और उन्हें व्यवहार में लाना । इस काव्य के अंत में कवि ने रामराज्य को कलियुगीन भारतदेश के लिए प्रकाश-पुंज माना है ।[6]

- -

१: रामराज्य - एकादश सर्ग - पृ० १२१ २: वही० - पृ० १२१
३: वही० - द्वादश सर्ग - पृ० १३६ ४: " महाराज --- भेद न यह कोई लख पाया । " - वही० पृ० १४७
५: वही० पृ० १४७
६: " त्रेता युग का रामराज्य -- -- रवे विश्वेश्वर । " - रामराज्य - द्वादश सर्ग - पृ० १४८

अतः रामराज्य पर काव्य रचना का यही उद्देश्य होता है। यह तो सर्वविदित है कि गान्धीजी ने भी रामराज्य की कल्पना की थी और भारत को रामराज्य बनाने का स्वप्न भी देखा था। उन्होंने रामराज्य का जप हमेशा किया था और जनता के मन में इस विशिष्ट अवस्था की बड़ी उत्सुकता पैदा की थी। अतैव महात्मा गांधी ने ' रामराज्य ' और ' सुराज्य ' को समानार्थक बताते हुए इस नाम के प्रति भारतीयों में पर्याप्त उत्सुकता जागृत कर दी है।'[1]

गांधीजी के शासन संबंधी विचार रामचन्द्रजी की शासन - नीति के विचारों के अनुकूल थे। अतः कवियों ने रामायणीय कथा पर आधारित काव्य अथवा कविता में गांधीवादी विचार-धारा को बहाया। इस प्रकार इस काव्य में गांधीवादी विचारधारा का विवेचन स्पष्टतः लक्षित होता है। इसमें संदेह अथवा शंका की कोई बात नहीं कि रामराज्य को रामायणीय एवं गांधीय काव्यों में अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त हुआ है और वह भारत के भविष्य- निर्माण के लिए एक अद्भुत प्रेरणा- स्रोत बन जाता।

दमयन्ती :

यह काव्य महाभारत के ' नलोपाख्यान ' की कथा के आधार पर रचित है। कवि ने दमयन्ती को इसकी व नायिका बनाया है जिसके लिए उन्हें 'साकेत' 'यशोधरा' आदि महाकाव्यों से प्रेरणा मिली थी। दमयन्ती ऐसी नारियों की कोटि में ही आती है जिन्होंने अपने व्यक्तित्व - वैशिष्ट्य से मात्र संसार को ही गौरव प्रदान किया है। कवि ने इस काव्य में नल- दमयन्ती के जीवन में प्रस्तुत होने वाली विविध समस्याओं का चित्रण किया है और उनको गांधीवादी विचारों और तत्वों से सुलझाने का प्रयास किया है।

इस काव्य के आरंभ में कवि ने निषध देश की समाजवादी राजनीति का चित्रण किया है जो गांधीयुगीन राजनीति का प्रतिरूप मानी जा सकती है। इस देश की)राजनीति में) के समाज में उच्च- नीच अथवा अंध - पंगु का भेद नहीं था, सब को समान रूप से पाल- पोसा जाता था।

१: रामराज्य - भूमिका - पृ० ६

' पंगु विधवा अथवा कुलहीन ,
कर्म के हैं अयोग्य, जो दीन ,
सभी का करता राज्य प्रबन्ध , '[१]

गोरक्षा और गोसेवा का प्रबन्ध राजा नल ने किया था जिस पर गान्धीजी ने अत्यधिक बल दिया था और वह उनके लिए परम आवश्यक भी था ।

' धर्म - द्विज, गो - सेवा सविशेष
मुदित हो करते, सदा नरेश ।। '[२]

पुष्करवन्त ने इस कथन में कि वह दमयन्ती को उसके पिता का नाश करके छीन लेगा, स्तेय की बात कही गयी है जिसका विरोध गांधीजी ने किया था ।[३] इसी प्रसंग पर मुनि ने अहिंसा का समर्थन परोक्ष रूप से किया है । -

वत्स, होता यों कृत्य दुरन्त ,
चिताकर पशुबल राजकुमार । '[४]

लेकिन मुनि ने बताया कि नारी शक्ति का अवतार है और प्रेम देकर ही मिलता है, पुष्कर का हृदय - परिवर्तन हुआ । मानवता का परिचय नल ने दिया है :-

' उपकारी मानव ही , मानव हो सकता है
वही धरा - पर जीव- दुःखों को खो सकता है ।'[५]

वन- वृन्दों की स्वतन्त्रता और प्रफुल्लता भरी जिन्दगी देखकर नल का हृदय- परिवर्तन होता है और उसने किसी भी पक्षी का शिकार न करने का निश्चय किया है -

' नहीं, आज से निरपराध को मैं मारूंगा
अहिंसकों को सता, न मानवता हरूंगा ।।'[६]

- -

१: दमयन्ती - द्वितीय सर्ग - पृ० २२ २: वही० पृ० २४
३: साथ - मैं लेकर सैन्य समूह , करूंगा नष्ट, भीम का व्यूह
और भैमी को, नल से छीन ।' - दमयन्ती - द्वितीय सर्ग - पृ० ३८
४: वही० पृ० ३८ ५: वही० तृतीय सर्ग - पृ० ४३ ६: वही० पृ० ४३

नल ने प्रेम और अहिंसा का समर्थन किया है -

> ' यह न प्राण का दान, मद्र ! यह मानवता है ,
> हिंसा से परिपूर्ण भाव भी दानवता है । '[1]

पुष्कर तो राज्य को प्राप्त करने के लिए युद्ध करना चाहता था लेकिन नल ने इसका विरोध करते हुए बताया -

> ' -- -- हीन वस्तु यदि राज्य है
> -- -- -- --
> बन्ता उसके लिए उसके लिए रण क्यों व्यर्थ ही । '[2]

नल की बातों से पुष्कर का हृदय - परिवर्तन हो गया और उसने द्यूत- क्रीड़ा का प्रबन्ध किया जिसकी हार - जीत पर राज- शासन का निर्णय हो सकता था । उसने इस अहिंसात्मक योजना को इसलिए प्रस्तुत किया कि किसी की हत्या या मार-पीट न हो । अत: उसने यों कहा -

> ' तनिक न शोणित बहे, राज्य आ - जायेगा
> मित्र ! शांति से पूर्ण क्रांति ही चाहते । '
> जो कि तुम्हारा दास्य - मात्र भी चाहेगी । '[3]

इस काव्य पर गांधीवादी का प्रभाव बहुत कम ही पड़ा है । इसमें मुख्यत: अहिंसा और हृदय- परिवर्तन की बातें आयी हैं । नल में कुछ व्यक्तिगत त्रुटियां होने पर भी वह गांधीवाद के पक्ष में था । नल तो अपने देश की प्रजाओं का सुख और शांति चाहता था । उसने प्रजा-हितार्थ समाज में जो सुधार किये थे, उस देश की जनता जितने सुख और समाधान से जीती थी, उसका विशद वर्णन कवि ने इस काव्य के प्रारंभमें किया है । यहां राजा नल का समाजवादी - साम्यवादी दृष्टिकोण मिलता है । अत: हम इस काव्य में साम्यवाद- समाजवाद और गांधीवाद का त्रिवेणी संगम देख सकते हैं । कई विद्वानों ने इस काव्य की दर्शन- भित्ति माना है । श्री गोपालदास 'नीरज' के शब्दों में ' यद्यपि साम्यवाद, समाजवाद, सभी की यत्किंचित अनुगूंज उनकी कृति में

1: दमयन्ती - तृतीय सर्ग - पृ० ५१ 2: वही० - नवम सर्ग - पृ० १७३
3: वही० - पृ० १७८

है, फिर भी गांधीवादी विचारधारा विशेष रूप से अहिंसा , सहकारिता, अस्पृश्यता और मानवतावाद का प्रभाव उन पर विशेष रूप से है । और यही वस्तुत: इस प्रबन्ध काव्य की दर्शन - विधि है ।[१]

इस काव्य के अध्ययन के पश्चात् यदि इसके गांधीवादी प्रभाव के बारे में कहें तो यही बताया जा सकता है कि इसमें गांधीवादी विचारों का सम्यक् विवेचन पूर्णत: हो सकता था, लेकिन घटनाओं और संवादों की सीमातीत वर्णनात्मकता के कारण असंभव पड़ गया है । नल का अनुज पुष्करदन्त तो पहले साम्राज्यवाद को प्रोत्साहन देता था,बाद में वह समाजवादी बन गया । इसमें कवि ने ज गांधीवाद के तत्वों को जो स्थान दिया है, वह आधुनिक युग का कवि- कर्म माना जा सकता है ।

प्रिय प्रवास :

अयोध्यासिंह उपाध्याय ` हरिऔध ` ने स्वयं बताया है - `--- निदान इसी विचार के वशीभूत होकर मैं ने ` प्रियप्रवास` नामक इस काव्य की रचना की है । `[२] वह विचार यह है - कवि ने इसे महाकाव्य कहने के लिए स्वयं अपनी सम्मति नहीं दी है । इसे महाकाव्य का आभास- मात्र माना है । उन्होंने बताया है कि इस काव्य की रचना इस उद्देश्य से की गयी है जिससे अन्य श्रेष्ठ कवि व इससे प्रेरणा पाकर श्रेष्ठ महाकाव्यों की रचना करें । अत: इसका ध्येय दूसरे कवियों का ध्यान की महाकाव्य - निर्माण की ओर खींचना माना गया है । लेकिन अन्य आचार्यों ने इसे ऐसे महाकाव्यों की कोटि में रखा है जिनके अंतर्गत आभासपूर्ण महाकाव्यों को स्थान दिया है ।

इसमें श्रीकृष्ण को मथुरा- यात्रा का वर्णन किया गया है । बीच बीच में उनके जीवन पर भी प्रकाश डाला गया है । इस काव्यों में गांधीवादी सिद्धान्तों का भी प्रतिपादन भी किया गया है । श्रीकृष्ण ने परोपकार को धर्म का एक प्रमुख अंग मानते हुए बताया है -

- -

१: दमयन्ती - प्रस्तावना - पृ० च

२: प्रियप्रवास - भूमिका - पृ० १

" सदा करूँगा अपमृत्यु-सामना ।

-- -- --

प्रधान - धर्मांग - परोपकार की । "[1]

स्वदेश और स्वजाति का उद्धार करना महान धर्म माना है और उसका उपदेश दिया है -

" अत: सबों से यह श्याम ने कहा ।

-- -- --

स - हेतु लेवें निज - जाति को बचा ।। "[2]

जनता की रक्षा और जाति का उद्धार मानव धर्म बताया है -

" विपत्ति से रक्षण सर्व - भूत का

-- -- --

मनुष्य का सर्व - प्रधान धर्म है । "[3]

देश- कल्याण में त्याग की महिमा को निरूपित करते हुए कहा गया है -

" बिना न त्यागे ममता स्व - प्राण की ।
न सिद्ध होता भव - जन्म - हेतु है । "[4]

श्रीकृष्ण बड़े देश - सेवक थे और उनके प्रतिनिधित्व से ब्रज का उद्धार हुआ -

" स्व - जातियों की यह देख दुर्दशा ।

-- -- --

बनातुला सी बन- भूमि को बना ।। "[5]

कर्तव्य की आवश्यकता पर कृष्ण ने यों बताया है -

- -

१: प्रिय प्रवास - एकादश सर्ग - पृ० २४० २: वही० पृ० १५०
३: वही० पृ० १५० ४: वही० पृ० १५०
५: प्रियप्रवास - एकादश सर्ग - पृ० १५०

‘ इसलिए निज नित्य - विमूढ़ता ।

-- -- --

बहु - सहायक बाल ब्रजेश की । ’[1]

श्रीकृष्ण जनता की उन्नति के करने के लिए गांव - गांव में घूमते रहते थे और पथ-भ्रष्ट जनता को सुपथ का निर्देशन देते थे । यहां गान्धीजी की इस प्रवृत्ति का आभास मिलता है कि वे भी गांव - गांव में घूमते - फिरते जनता का कुशल - क्षेम पूछते थे -

‘ यदि दिखा पड़ती जनता कहीं ।

-- -- --

तुरत ही उस ठौर ब्रजेन्द्र था । ’[2]

श्रीकृष्ण सब का मंगल चाहते थे और दुःख वेला में दुःखियों का सहारा थे वे ।

‘ बातें बड़ी सरस थे करते बिहारी ।

-- -- --

वे थे सहायक बड़े दुख के दिनों में । ’[3]

कृष्ण के चारित्रिक गुणों की विवेचना की गयी है जिसमें गान्धीजी के चारित्रिक गुणों का आभास मिलता है ।[4] मानवादर्श का उपदेश देकर उन्होंने पशुता को मनुष्यता का रूप दिया है -

‘ अपूर्व आदर्श दिखा नरत्व का ।

-- -- --

बना दिया मानव गोप - वृन्द को ।। ’[5]

व्योम नामक वाटिक के अत्याचारों से दुःखी होकर श्रीकृष्ण ने हिंसा का विरोध किया-

- -

१: प्रियप्रवास - द्वादश सर्ग - पृ० १५१ २: वही० पृ० १५२

३: वही० - द्वादश सर्ग - पृ० १५५

४: वही० - द्वादश सर्ग - पृ० १५६ - १५७

५: वही० - त्रयोदश सर्ग - पृ० १७४

' अवश्य हिंसा अति - निंद्य - कर्म है ।
तथापि कर्तव्य - प्रधान है यही ।
न सद्म हो पूरित सर्प आदि से ।
वसुन्धरा में पनपें न पातकी ।। '[1]

कवि ने व्योम पर श्रीकृष्ण की विजय को हिंसा पर अहिंसा की विजय बतायी है, क्योंकि गांधीजी ने अत्याचारियों की हत्या करना हिंसा या पाप नहीं माना है। श्रीकृष्ण के समय में भी देश में जनता को कभी काफी भोजन न मिलने से भूखी रहती थी और कवि ने इसे एक प्रकार का अनशन बताया है। ऐसे समय में भगवान ने इनकी सहायता की थी -

' यदि अनशन होता अन्न और द्रव्य देते ।
— — —
वर मृदु - वचनों से तो उसे भी मनाते । '[2]

इस काव्य के नायक श्रीकृष्ण और नायिका राधा दोनों देश- सेवा के क्षेत्र में उतर पड़े हैं और वे दोनों दरिद्र-नारायण की सेवा करते थे।

' पहुँचते अकुला उस ग्राम में
— — —
गिरि श्रृंग गह्वर में कर यत्न से । '[3]

कृष्ण को यहां मानव का रूप देकर एक महापुरुष के समान चित्रित किया गया है और अवतारवाद का परंपरागत पालन किया गया है। श्रीकृष्ण इस काव्य में ब्रज-वासियों के जन-नायक माने गये हैं और उन्होंने यही आह्वान दिया है -

' बढ़ो करो और स्वजाति का भला ।
— — —
सु- कीर्ति पाई यदि भस्म हो गये ।। '[4]

---

१ : प्रिय- प्रवास - त्रयोदश सर्ग - पृ० १८३
२ : वही० - त्रयोदश सर्ग - पृ० १८८ - १८९
३ : वही० द्वादश सर्ग - पृ० १९२ ४ : वही० एकादश सर्ग - पृ० १७०

में कृष्ण के बड़ा राजकुमार होने पर भी उनमें अपने उच्च- कुल का दंभ नहीं था और वे दीन दु:खियों की झोंपड़ियों में हमेशा जाते थे और उनकी सेवा- शुश्रूषा करते थे। -

' थे राज - पुत्र उनमें मद था न तो भी ।

— — —

कोई कहां दुखित हो पर वे न होवें ।। '[1]

कृष्ण की दृष्टि में सच्चा आत्मत्यागी वही कहा जा सकता है जिसमें बलिदान की अनंत भावना निहित है। अत: उन्होंने राधा के प्रति के अपने व्यक्तिगत प्रेम को देश प्रेम के रूप में बदलना चाहा। इसलिए वे राधा के पास उद्धव द्वारा यही आत्म-बलिदान का सन्देश भेजते थे -

' जो होता है निरत तप में मुक्ति की कामना से ।

— — —

प्यारी सच्चा अवनि - तल में आत्मत्यागी वही है ।। '[2]

यह सन्देश सुनकर राधा का हृदय - परिवर्तन हो जाता है और वैयक्तिक प्रेम लोक- सेवा में बदल गया -

' हो जाने से हृदय तल का भाव ऐसा निराला ।

— — —

मैं ने देखा परम प्रभु को स्वीय प्राणेश ही में ।। '[3]

बाद में वह विख्यात समाज- सेविका और देश - रक्षिका बन गयी। -

' वे छाया थीं सु-जन शिर की शासिका थीं खलों की ।

— — —

आराध्या थीं व्रज - अवनि की प्रेमिका विश्व की थीं ।। '[4]

इस काव्य में गांधीवाद का सम्यक् विवेचन हुआ है। डा० मुकुन्ददेव शर्मा ने यों बताया है-

- -

१: प्रिय प्रवास - द्वादश सर्ग - पृ०१९७ २: वही० चौदश सर्ग-पृ० २४

३: वही० - चौदश सर्ग - पृ० २५४ ४: वही०सप्तदश सर्ग-पृ० २९८

यह सत्य है कि हरिऔध जी गान्धीवाद की सब बातों को नहीं मानते थे परन्तु गान्धीजी को वे एक महापुरुष तथा भारतीय संस्कृति को अमर अविच्छिन्न अहिंसात्मक विचारधारा का महान पोषक मानते थे।[१] उन्होंने गांधीजी से प्रभावित होने के पहले से ही अहिंसा को परम- धर्म माना था। यही कारण होगा कि कवि ने इस काव्य में अन्याय और अनीति के विरुद्ध आवाज उठायी है। इस काव्य में आद्यन्त सत्य और नीति का ही प्रतिपादन किया गया है। आत्मबलिदान पर, जो गान्धीवाद का एक तत्व माना जाता है, कवि ने अंकित और दिया है। यही इस काव्य का सन्देश भी है जिसे श्रीकृष्ण और राधा के मुंह से कहलाया है। इसके बारे में डा० शर्मा ने कहा है - " समाज और देशहित के लिए अपने वैयक्तिक स्वार्थ और सुख की बलि देना प्रिय-प्रवास का एक प्रमुख सन्देश है।"[२]

कवि ने श्रीकृष्ण को महात्मा गांधी के रूप में चित्रित किया है। श्रीकृष्ण और महात्मागांधी के व्यक्तिगत चारित्रिक गुणों में अपार समता पायी जाती है। श्री धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी ने बताया है - " प्रियप्रवास के कृष्णका चित्रण हमें बरबस महात्मा गांधी की याद दिला देता है। ऐसा दीखता है मानो इस काव्य के लिखते समय कवि की मानस रंगभूमि के नेपथ्य में महात्मा गांधीजी की मूर्ति झिल-मिल-झिलमिल झांकती रही हो, और महात्मा श्रीकृष्ण के वाङ्मय चित्र के रूप में प्रतिमूर्त हो उठी हो।"[३] श्रीकृष्ण पर गांधीवाद का प्रभाव इतना पड़ा है कि पाठकों को यह शंका शायद ही उठती है कि श्रीकृष्ण गान्धीजी ही है।

पुरुष के समान नारी भी गांधीजी और गांधीवाद से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकी है। उदाहरण के लिए " प्रियप्रवास " की राधा को ले सकते हैं। वह पहले एक अतुल प्रेमिका थी। लेकिन बाद में वही अनन्य देश- सेविका बन गयी। श्रीकृष्ण के गान्धीवादी सन्देश में उसका मन बदला दिया और वह सामाजिक

१: हरिऔध : जीवन और कृतित्व - डा० मुकुन्ददेव शर्मा - पृ० ३५०

२: वही० पृ० ३५०

३: वही० पृ० ३५०

क्षेत्र में उतर पड़ी ।

यद्यपि कवि ने इसमें श्रीकृष्ण और राधा की करुण कथा का चित्रण किया है फिर भी वह काव्यांत में उनकी वीरगाथा बन गयी है । जो पहले प्रेमी और प्रेमिका बनकर लता - कुंजों, सागर - तटों में विचरण करते फिरते थे वे अब दु:ख- कांटों से भरे कर्तव्य - क्षेत्र में बड़े गौरव के साथ सेवक- सेविका बनकर कार्य कर रहे हैं । कवि ने इसका प्रारंभ प्रेम और वियोग से किया था, लेकिन अंत में वह एक आदर्शपूर्ण जीवन का सुन्दर संदेश प्रस्तुत करने में सफल हुआ है ।

एकलव्य :

यह काव्य वर्माजी की नवीनतम कृति है । इसमें कवि ने एकलव्य नामक एक निषाद- पुत्र का चरित्रोद्घाटन किया है । इस काव्य का नायक जो एकलव्य है, एक उपेक्षित पात्र रहा है जिस पर इस महाकाव्य की रचना करके जनता के दृष्टिपथ प्रकाश में लाने का प्रयास किया गया है । शायद ये ही प्रथम आधुनिक कवि हैं जिन्होंने ऐसे विचार पर महान काव्य लिखा है । जिस प्रकार मैथिलीशरण गुप्त जी ने उपेक्षिता नारी उर्मिला का उद्धार करते हुए ` साकेत ` की रचना की, बलदेवप्रसाद मिश्र ने उपेक्षित पुरुष लक्ष्मण को उज्वल बनाते हुए ` साकेत सन्त ` का सृजन किया, वैसे ही वर्माजी ने एकलव्य की सृष्टि की है - जिसमें उसे श्रेष्ठ एवं आदर्श पुरुष माना गया है ।

इस दृष्टि से एकलव्य पर गांधीवाद का प्रभाव स्पष्टत: लक्षित होता है । कवि ने गांधीवाद के कुछ तत्वों का निवेश इसमें किया है । भीष्म के संबंध में कहते वक्त तपोव्रत और ब्रह्मचर्य का उल्लेख किया है ।[१] अंगिरस मुनि ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन करते थे -

` मैं ने गुरु-सेवा महान ब्रह्मचर्य से ,
जटाजूट धारण कर धनुर्वेद सीखा ।।`[२]

१: एकलव्य - द्वितीय सर्ग - पृ० २६ - ३०

२: वही० पृ० ३५

पांचाल देश में जनता आपसी प्रेम से व्यवहार करती थी जिसके द्वारा ही समाज का कल्याण गान्धीजी ने संभव बताया था -

> ' यहां सब अपने हैं, कौन यहां दूसरे ।
> अति प्रिय दीखते हैं, वासी इस राज्य के ।। '[१]

द्रोण ने अपनी आत्म- शक्ति का परिचय यों दिया है ।

> ' प्राण - मय विप्र की कमी नहीं ।
> प्राण - दण्ड दे मुझे तू । मारो और शिशु को
> होमकर दे तू राजनीति - यज्ञ-कुण्ड में ।[२]

एकलव्य की गुरुभक्ति इतनी अगाध थी कि वह उनका चित्र खींचने में अपना भोजन तक छोड़कर उपवास करता रहा -

> मां ! नहीं मैं भोजन करूंगा आज । '[३]

एकलव्य के बाण- विद्या - अभ्यास में वर्ण - भेद ही प्रतिबन्ध के रूप में उपस्थित रहा । द्रोण और एकलव्य के आर्य - शूद्र के वर्ण - भेद पर एकलव्य की माता ने बताया है -

> ठीक तू अवश्य ही है किन्तु यह संभव ,
> कैसा होगा ? लाल ! यह वर्ण - भेद टेढ़ा है ।
> -- -- --
> कैसे एक शूद्र-पुत्र को वे शिष्य मानेंगे ? '[४]

एकलव्य ने बाण- विद्या सीखने का व्रत लिया जिसके मूल में सज्जनों तथा शिष्यों का उद्धार - कर्म निहित था -

> ' मैं तो प्रण पूर्ण करने का व्रत ले चुका । '[५]

भीष्म में प्रजा- वात्सल्य का कोमल भाव था और यों बताते थे कि प्रजा- पूजा से ही

- -

१: एकलव्य - द्वितीय सर्ग - ४५ २: वही० पृ० ५१
३: वही० - चतुर्थ सर्ग - पृ० ७६ ४: वही० पृ० ८५-८६
५: वही० - चतुर्थ सर्ग - पृ० ६१

राज्य का मंगल हो सकता है -

' आततायी रूप लेके राज्य नहीं चलते ।
राज्य तो सदैव चलते हैं प्रजा - पुजा से ।। '[1]

आत्म-बलिदान की शक्ति पर एकलव्य ने बताया है -

' आत्म बलिदान में अमोघ शक्ति होती है । '[2]

निषाद- पुत्र होने के कारण एकलव्य अछूत माना जाता है और द्रोणाचार्य ने उसे शिष्य बनाने में संकोच प्रकट किया । अत: उन्होंने कहा -

' जाओ, हे निषाद-पुत्र । तुम हो अस्वीकृत । '[3]

एकलव्य ने संयम की बात बतायी है -

' जिसको न संयम है वाणी के प्रवाह में,
उसको क्या ध्यान होगा अति और न्यून का ? '[4]

अपने व्रत के बारे में एकलव्य ने बताया है । उसका व्रत अटूट और गतिशील है ।

' मेरा व्रत अपनी दिशा में गतिशील है ।
गुरु की सत्य शक्ति उसके समीप है । '[5]

एकलव्य ने अपनी कार्य-सिद्धि के लिए घर से निकल कर साधना का मार्ग स्वीकार किया -

' इसलिए मैं ले रहा हूं तुम से भी विदा ,
-- -- --
तो क्या है गौरव इस मानव की देह में ? '[6]

स्वावलंबन की भावना को मन में रखते हुए एकलव्य ने बताया है -

' --------- वीर पुरुष को हो तुम जननी ,
-- -- --
अपने ही पैरों पर पुत्र खड़ा होता है । '[7]

- -

१: एकलव्य - पृ० ११३ २: वही०पृ० १२० ३:वही०पृ० १२७ ४: वही० पृ० १३३
५: वही० पृ० १३४ ६: वही० पृ० १४०-१४१ ७: वही० पृ० १४२

एकलव्य की उक्ति यहो रही थी -

> ' निर्बल प्राणों को न कभी,
> कोई बलवान सताय । '[1]

वणिकों ने एकलव्य से घर लौटने को जब कहा, तब उसने अपने साधना- पथ पर दृढ़ रहते हुए यों बताया है -

> ' साधना है मेरा सम्मान ।।
> — — —
> स्वीकृत करा वंश - सम्मान ।।'[2]

एकलव्य में गुरुसेवा के लिए बड़ी उत्सुकता और तत्परता थी । उसने वन में द्रोणाचार्य की मूर्ति मिट्टी से बनाकर उसकी सेवा - उपासना की थी -

> ' कन्दमूल - फल जो मिलेंगे इस वन में ,
> — — —
> सेवा - परिचर्या कर धनुर्वेद सीखूंगा ।। '[3]

वन में वह जीव - जन्तुओं की रक्षा करना चाहता था -

> ' हिंस्र पशुओं से प्रताड़ित हुए जीव को
> — — —
> शिक्षा का प्रयोग इस भांति होगा नित्य ही ।।'[4]

जाति- भेद के वर्तमान पर एकलव्य दुखी हो गया -

> मैं ने सुना, विद्या - दान कुछ हेतु है नहीं ,
> सत्य है क्या वेद ! यह सामाजिक मान्यता ? '[5]

मानव- शक्ति की सार्थकता पर एकलव्य ने बताया है -

- -

१: एकलव्य - अष्टम सर्ग - पृ० १५५ २: वही० - पृ० १६६-१७०
३: वही० नवम सर्ग - पृ० १८२ ४: वही० पृ० १८१
५: वही० - दशम सर्ग - पृ० १९६

' किंतु शक्ति मानव की, देव ! दानवी नहीं ,

-- -- --

और सब मानवों में साम्य की हो स्थापना । '[१]

अपनी अस्पृश्यता के बारे में वह यों प्रश्न करता था -

' हम हैं अछूत, तो हमारे अंग - स्पर्श से ,

आर्यों के सु- अंग क्या कु - अंग बन जायेंगे ?

-- -- --

किंतु शूद्र और ब्राह्मणों में भेद कैसा है ?

जब कि संपूर्ण अंग मानवों के सब में ? '[२]

अछूत की समस्या का समाधान एकलव्य ने यों बताया है -

' अत: विषाक्त राजनीति से सुदूर यहां ,

-- -- --

आप की पुनीत सेवा में रहूंगा नित्य हरे । '[३]

द्रोणाचार्य को भी जाति- भेद से होने वाला कुफल खलता था । अत: उन्होंने कहा है-

' जाति - भेद नहीं, वर्ण - वंश भेद भी नहीं,

शिक्षा प्राप्त करने के सभी अधिकारी हैं । '[४]

एकलव्य ने अर्जुन के श्वान की मुंह में सात बाणों का प्रयोग किया जिससे वह मूक बन गया । लेकिन उसको मुंह से एक बूंद भी न गिरी । इसके बारे में एकलव्य के इस कथन में अहिंसा की इस भावना का स्फुरण है -

' किंतु एक बूंद रक्त निकल न पायेगा

-- -- --

बन जाये मेरा शर - तूण पूर्ण सज्जा से । '

-- -- --

इसी लक्ष्य से किये थे प्रेरित विशिख ये ।। '[५]

- -

१: एकलव्य - पृ० १६८ २: वही० पृ० १६८ ३: वही० पृ० १९९ ४: वही०पृ०२२२
५: एकलव्य - द्वादश सर्ग - पृ० २४८,२५३

द्रोणाचार्य ने अर्जुन को स्वार्थता और अविवेकता को त्यागने और संयमशील बनने का उपदेश दिया है -

> ' स्वार्थ - त्याग करो वीर ! साधना में व्यस्त हो,
> छोड़ो अविवेक, शांत चित्त बनो ज्ञान से ।। '[1]

एकलव्य ने द्रोणाचार्य को दक्षिणा के रूप में अपना दक्षिणांगुष्ठ काटकर दिया और उस समय रक्त की धारा धरती पर पड़ी तो कवि उससे जन- मानस में जाति- ऐक्य की भावना अंकुरित होने की प्रार्थना की गयी है -

> ' धारा वर्ण - भेद धुल गया रक्त - धारा से
>
> -- -- --
>
> रक्त - रंगमयी दक्षिणा ,
> जन- जन मानस को एकरूप कर दे । '[2]

' एकलव्य ' गांधीवाद से अभिभूत काव्य है । इसमें निरूपित मुख्य समस्या है अछूत समस्या । अस्पृश्यता के मौजूद होने के कारण एकलव्य को द्रोणाचार्य ने अपने शिष्य बनाने से इन्कार कर दिया । लेकिन अंत में एकलव्य के गुरु- दक्षिणा के रूप में अंगुष्ठ- छेदन से गिरे रुधिर में यह जाति - भेद धुल गया । इस काव्य के बीच में कवि ने तपस्या, ब्रह्मचर्य- व्रत, गुरु - भक्ति, प्रजा- वत्सलता और सेवा, आत्म- बलिदान, साधना, स्वावलंबन, स्वार्थ- त्याग आदि विविध तत्वों पर विचार किया गया है । यह भी बताया गया है कि विद्या- अभ्यास करने के लिए इस धरती पर सब का समान अधिकार रहता है । अतः यह जाति - भेद की व्यवस्था को हमारा पाप है । इस प्रकार यह काव्य गांधीवाद के एक महत्वपूर्ण तत्व को प्रस्तुत करता है ।

__कुरुक्षेत्र :__

यह काव्य महाभारत की कथा के आधार पर रचित है । इसकी रचना द्वितीय महायुद्ध की समाप्ति के बाद हुई है । इसका प्रारंभ कवि ने युद्ध के बाद की युधिष्ठिर - ग्लानि से किया है । युधिष्ठिर युद्ध के परिणाम का पर अत्यंत दुखी

- -

१: एकलव्य - त्रयोदश सर्ग - पृ० २७१ २: वही० - चतुर्दश सर्ग - पृ० २९७-३०५

हुए और अत्यन्त विह्वल भी हो उठे । अतः भीष्म ने उन्हें कर्तव्य - मार्ग पर चलते हुए जनता की सेवा करने का उपदेश दिया है । उनका हृदय- परिवर्तन करने का प्रयास किया है । वे अत्यन्त दुःखी होने के कारण सन्यासी बनना और वन में रहना चाहते थे । इसी कारण भीष्म ने उनका मन बहलाना चाहा ।

हृदय - परिवर्तन - क्रिया के प्रसंग में कवि ने भीष्म के मुंह से गांधीवादी विचारों और तत्वों का समर्थन कराया है । महाभारत युद्ध के भयानक परिणाम से युधिष्ठिर अत्यंत विकल हुए और उनके इस कथन में अहिंसा की झलक पायी जाती है । -

' जानता कहीं जो परिणाम महाभारत का ,

-- -- --

भाइयों के संग कहीं भीख मांग मरता । '[1]

युधिष्ठिर हिंसा के द्वारा प्राप्त विजय का आनन्द मनाना नहीं चाहते थे और उसे पाप की दृष्टि से देखते थे -

' जानता हूं, लड़ना पड़ा था हो विवश, किन्तु
लोहू सनी जीत मुझे दीखती अशुद्ध है । '[2]

गीता में बताया गया है कर्म - योग के बारे में - ' कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन ।' लेकिन यहां निष्काम काम की भावना के रहते हुए भी भीष्म ने युद्ध को कभीकभी अवांछनीय बताया है । -

' जो ' समर तो और भी अपवाद है ,

-- -- --

आ गया हो द्वार पर ललकारता । '[3]

दुष्ट- दमन के लिए प्रतिशोध के रूप में जो युद्ध किया जाता है, उसे अहिंसक माना गया है-

- -

१: कुरुक्षेत्र - द्वितीय सर्ग - पृ० ११ - १२ २: वही० - पृ० १३
३: वही० - द्वितीय सर्ग - पृ० २०

' पाप हो सकता नहीं वह युद्ध है
जो खड़ा होता ज्वलित प्रतिशोध पर ।
-- -- --
युद्ध को तुम निन्द्य कहते हो मगर,
-- -- --
युद्ध तब तक विश्व में अनिवार्य है । '[1]

स्तैय का विवेचन करते हुए उसका अन्त करने का समर्थन भीष्म ने किया है -

' छीनता हो स्वत्व कोई, और तू
त्याग - तप से काम ले, यह पाप है ।
पुण्य है विच्छिन्न कर देना उसे, बढ़ रहा
बढ़ रहा तेरी तरफ जो हाथ हो । '[2]

युधिष्ठिर ने अपने को कर्मवीर और त्यागी बताया है -

' है रहा आदर्श मेरा वीरता, बलिदान करके ही
शांति - मंदिर में जलाकर शूरता की आरती ,
जा रहा हूं विश्व से चढ़ युद्ध के ही यान पर ।। '[3]

भीष्म आत्मिक बल के साथ ही शारीरिक बल पर भी जोर देते थे । उनका कथन है कि त्याग, तप, आदि से आत्मा की शक्ति बढ़ा सकते हैं, शरीर के बल को नहीं ।

' त्याग, तप, करुणा, क्षमा से भींग कर
-- -- --
काम आता है बलिष्ठ शरीर ही ।। '[4]

भीष्म ने शांति की स्थापना के बारे में बताया है -

शांति नहीं तब तक जब तक
-- -- --

- -

१: कुरुक्षेत्र - द्वितीय सर्ग - पृ० २१ २: वही० पृ० २१ ३: वही० पृ० २३
४: वही० पृ० २४

नहीं किसी को कष्ट हो । '[१]

न्याय की अनिवार्यता पर बताया गया है -

' न्याय शांति का प्रथम न्यास है ,

-- -- --

युद्ध नहीं रह पाता । '[२]

महाभारत के युद्ध के होने से युधिष्ठिर का मन परिवर्तित हुआ । उन्होंने प्रेम और अहिंसा की प्रतिष्ठा करने का उपाय सोचा था -

' मैं भी हूं, सोचता, जगत से

-- -- --

बीज प्रेम के बोये ।। '[३]

शान्ति के बारे में बताया गया है -

' जब होती अवतीर्ण शांति यह ,

-- -- --

नहीं द्वेष रह जाता । '[४]

ब्रह्मचर्य-व्रती भीष्म के बारे में कहा गया है -

' ब्रह्मचर्य के व्रती, धर्म के

-- -- --

पाकर भी पा न सका संसार ।। '[५]

किसी से लड़ना या किसी को मार डालना कोई नहीं चाहता है -

सहज ही चाहता कोई नहीं लड़ना किसी से ,

-- -- --

जहां तक हो सके, निज शान्ति प्रेम निभाहता है । '[६]

- -

१: कुरुक्षेत्र - तृतीय सर्ग - पृ० ३१ २: वही- पृ० ३१ ३: वही - पृ० ४१-४२

४: वही - पृ० ५: कुरुक्षेत्र - चतुर्थ सर्ग - पृ० ४७

६: वही - पृ० ४८

व्यास मुनि ने जनता को संयम का उपदेश दिया है -

भरी सभा के बीच उन्होंने

-- -- --

उपदेश दिया था सबको ।[१]

भीष्म ने युधिष्ठिर को क्षात्र धर्म की महिमा बतायी है -

क्षात्र धर्म है अभय दहकते

-- -- --

बलि का पाठ पढ़ाना ।[२]

भीष्म ने अपने व्रत का परिचय दिया है -

जीवन के अरुणाभ प्रहर में

-- -- --

करता रहा निवारण ।[३]

कवि ने मानव- समूह को यह उपदेश दिया है कि न्याय पर ही मानव का कल्याण निर्भर है, पारस्परिक आत्म- विश्वास, संग्राम, शोषणा, छल आदि से हीन देश ही मंगलमय होता है ।

कवि ने मुक्ति की कामना के अपने भावों को व्यक्त किया है -

युद्ध की ज्वर भीति से हो मुक्त ,

-- -- --

मनुज जोड़ेगा मनुज से जब उचित संबन्ध ।[४]

कवि ने कहा है कि मानवता की आशा जिस व्यक्ति में है वही सच्चा मानव, धर्मनिष्ठ और समाज- नेता कहलाया जाता है -

जब तक है अवशिष्ट पुण्य-बल की नर में अभिलाषा,

-- -- --

सत्सेवक - मानव - समाज का सखा, अग्रणी , नेता ।[५]

१: कुरुक्षेत्र - चतुर्थ सेन - पृ० ५८ २: वही० पृ० ६४-६५ ३: वही० पृ० ७६
४: वही० प० ११६ ५: वही० पृ० १२१-१२२

मनुष्यता को सबसे ऊँचा बताया गया है -

> ' ऊँचा उठ देखो तो किरीट, राज, धन, तप
> जप, याग, योग से मनुष्यता महान है । '[1]

मानवता की परिधि में भीष्म ने सबको मानव के रूप में सब को समान रूप से देखने की बात कही है चाहे वे धनी हों या गरीब ।

> धर्मयुद्ध रूप नहीं भेद-भिन्नता का यहाँ ,
> -- -- --
> उसमें दीनता कहीं भी व्यवधान है ।। '[2]

भीष्म ने युधिष्ठिर से जनता को बलिदान - पथ दिखा देने का अनुरोध किया है -

> ' आगे बढ़ो वीर, कुरुक्षेत्र के श्मशान से ,
> -- -- --
> दर्प की दुराग्नि करो दूर बलवान से । '[3]

इन पंक्तियों में भीष्म ने समान अधिकार की विवेचना की है । उनका कहना है कि यह धरती जो है इसके निवासियों की अपनी है और उन्हें इसका पूरा अधिकार रहता है । अत: यहाँ उच्चता - नीचता की भावना नहीं रह सकती ।

> ' धर्मराज, यह भूमि किसी की
> नहीं क्रीत है दासी ,
> है जन्मना समान परस्पर
> इसके सभी निवासी ।
> -- --
> नर जग में जीने का । '[4]

भीष्म ने स्वतन्त्रता-पूर्ण जीवन की अनिवार्यता एवं आवश्यकता पर अपना मत प्रकट किया

- -

१: कुरुक्षेत्र - सप्तम सर्ग - पृ० १२४ २: वही० पृ० १२४
३: वही० पृ० १२५ ४: वही० पृ० १२६

' सबको मुक्त प्रकाश चाहिए ,

-- --

किसी प्रकार भुवन में । '[1]

साम्यवादी सामाजिक अवस्था का प्रतिपादन भीष्म द्वारा हुआ है -

' न्यायोचित सुख सुलभ नहीं

-- -- --

शांति कहां इस भव को ? '[2]

भीष्म के इस कथन में ' रामराज्य ' की स्थापना की कामना का आभास मिलता है -

' सब हो सकते तुष्ट, एक सा

-- -- --

स्वर्ग बना सकते हैं । '[3]

धरती की सारी चीजों का अधिकारी मानव- मात्र बताया गया है । -

' जो कुछ न्यस्त प्रकृति में है,

-- --

अधिकारी जन- जन है । '[4]

अपरिग्रह (जो आवश्यकता से अधिक ग्रहण न करने की वृत्ति) पर बताया गया है -

' नर नर का प्रेमी था मानव
मानव का विश्वासी
अपरिग्रह था नियम, लोभ थे
कर्मलीन सन्यासी । '[5]

आत्मीय अभेद और ' वसुधैवकुटुंबकम् ' की भावना समाज में वर्तमान थी -

- -

१: कुरुक्षेत्र - सप्तम सर्ग - पृ० १२६ - १२७ २: वही० पृ० १२७
३: वही० पृ० १३१ ४: वही० पृ० १३४ ५: वही० पृ० १३६

' उच्च - नीच का भेद नहीं था
जन - जन में समता थी ,
था कुटुंब - सा जन - समाज ,
सब पर सब की ममता थी । '[१]

उस समय जब महाभारत युद्ध का आरंभ न हुआ हो, समाज में प्रजा-तंत्रीय व शासन की प्रथा चलती थी । -

' राजा - प्रजा नहीं था कोई ,
-- -- --
मन - मन पर अनुशासन था । '[२]

समाज में जनता के बीच में साम्यवादी समिष्टि भावना निहित थी -

' सब थे बद्ध समष्टि सूत्र में,
-- --
सुख से भिन्न नहीं था । '[३]

अस्तेय की भावना पर प्रकाश डाला गया है -

' चिन्ता न थी किसी को कुछ
-- -- --
अपना घर भरने की । '[४]

दण्ड-नीति की निंदा और धर्म - नीति की प्रशंसा की गयी है -

' अब जो व्यक्ति- स्वत्व रक्षित है
-- -- --
धर्म - निरत नर नर से । '[५]

१: कुरुक्षेत्र - सप्तम सर्ग - पृ० १३६ २: वही० पृ० १३७
३: वही० पृ० १३७ ४: वही० पृ० १३७ ५: वही० पृ० १३८

कहने का तात्पर्य यह है कि उस समय सामाजिक अधिकारों के साथ साथ व्यक्तिगत अधिकारों का भी मूल्य रहता था। अधिकारों का आदान- प्रदान होता था।

स्वार्थ - त्याग के बारे में कहा गया है -

' जब तक स्वार्थ - शैल मानव के

-- -- --

पृथ्वी दूर न होगा। '[१]

युधिष्ठिर से अपनी अखण्ड जीवन- तपस्या से जनता का दु:ख- निवारण करने का उपदेश दिया गया है -

' जिस तप से तुम चाह रहे

-- --

अमित नरों के दु:ख को ।।'[२]

भीष्म ने बताया है कि जीवन उसी व्यक्ति के लिए है जो निर्भय रह कर उससे जूझता है-

' जीवन उनका नहीं युधिष्ठिर,

-- -- --

निर्भय होकर जूझते हैं। '[३]

भीष्म ने कहा है जब तक मानव- मन में प्राण रहते हैं, तब तक उसका धर्म कर्तव्य है -

' कर्म भूमि है निखिल महीतल,

-- -- --

में कर्तव्य समाया ।।'[४]

युधिष्ठिर से भीष्म के इस कथन में शत्रु के हृदय- परिवर्तन की बात आयी है -

' हठयोगी जिसका वध करता

-- -- --

कर सकते संयम से। '[५]

- -

१: कुरुक्षेत्र - सप्तम सर्ग - पृ० १४७ २: वही० पृ० १४६ ३: वही० पृ० १४२
४: वही० पृ० १४७ ५: वही० पृ० १३१

यहाँ भीष्म ने युधिष्ठिर को सन्यास का त्याग करके कर्तव्य और जन- सेवा को अपनाने का उपदेश दिया है ।

' और जिये या कभी न सकता

-- --

और दुःख में रोकर । '[1]

युधिष्ठिर को निष्काम कर्म की याद दिलाते हुए भीष्म ने यह बात बतायी है -

' झुका रहा निष्काम कर्म वह ,

-- --

भले समर - संभौता । '[2]

गान्धीजी चारित्रिक बल पर अधिक बल देते थे । अत: भीष्म ने युधिष्ठिर को यों बतया है कि उनके सच्चे चरित्र से भी सुधारना चाहिए ।

' प्रेरित करो इतर प्राणों को

-- --

अपने लघ निर्मल से । '[3]

गांधीजी अहिंसक होने के कारण युद्ध के विरोधी थे अत: वे युद्ध - जन्य हिंसा वृत्ति नहीं चाहते थे । लेकिन दिनकर ने बताया है कि स्वत्व की सुरक्षाके लिए जो युद्ध किया जाता है, वह न हिंसा है और न पाप ।

' किसने कहा, पाप है समुचित

-- --

अभय मारना - मरना ? '[4]

' कुरुक्षेत्र ' पर गांधीवाद का जो प्रभाव पड़ा है, उसका मुल्यांकन करने के लिए भीष्म और युधिष्ठिर के चरित्रों का विवेचन करना पर्याप्त है । काव्य के

- -

१: कुरुक्षेत्र - सप्तम सर्ग - पृ० १७१ २: वही० पृ० १७५

३: वही० - पृ० १७९ ४: वही० पृ० ३३

आरंभ में कवि ने युधिष्ठिर को एक उत्साहहीन भीरू के रूप में चित्रित किया है। साथ ही उन्होंने भीष्म को समाजवाद और युधिष्ठिर को गान्धीवाद का प्रतिनिधि स्वीकृत किया है। लेकिन यह तो पलायनवादी गांधीवाद है क्योंकि कुरुक्षेत्र युद्ध में वही मानव- हत्या की रक्त धारा को देखकर वे बहुत दुःखी हुए और इस धरती से भागकर वनवास करना चाहते थे। भीष्म ने इस पलायनवादी विचार से उनका हृदय-परिवर्तन करने की कोशिश की और इस दृष्टि से कई उपदेश भी दिये। फलतः वे गांधीवादी हो गये। युधिष्ठिर की विचारधारा पर गांधीवाद का प्रभाव गंभीर है-

' यह होगा महारण राग के साथ ,

-- -- --

नव धर्म - प्रदीप अवश्य जलेगा। '[१]

इस प्रकार भीष्म के उपदेश ने युधिष्ठिर का हृदय- परिवर्तन जो कर डाला,उसने भीष्म और युधिष्ठिर के आपसी विरोध को मिटाकर उनमें समानता की प्रतिष्ठा की।

भीष्म कोरे समाजवादी थे जो गान्धीवाद की विचारधारा से परिपूर्ण थे। उनका चरित्र खुद ही आदर्शपूर्ण है। उन्होंने निवृत्ति मार्ग का खण्डन और प्रवृत्ति मार्ग का प्रतिपादन किया है। वस्तुतः वे गान्धीवादी समाजवाद के उपदेशक रहे हैं। उन्हीं के द्वारा ही पलायनवाद का विरोध और कर्मवाद का समर्थन हुआ है और जन- सेवा का सन्देश गुंजाया है -

' हरना होगा अश्रु - ताप हृत - बन्धु अनेक नरों का
लौटना होगा सुहास अगणित - विषण्ण अधरों का। '[२]

भीष्म हर कहीं पर गान्धीवाद में विश्वास रखते थे। युधिष्ठिर की पलायनवादी कायरता का भीष्म ने घोर विरोध किया है। गान्धीजी कायरता के इतने बड़े विरोधी (शत्रु भी माने जाते हैं) थे कि ऐसा अन्य कोई विरोधी मिलना असंभव है।

- -

१: कुरुक्षेत्र - पंचम सर्ग - पृ० १०१

२: कुरुक्षेत्र - सप्तम सर्ग - पृ० १७५

'कुरुक्षेत्र' में बाहु बल पर अधिक विश्वास दिखाया गया है और अधिक महत्व दिया गया है। कवि ने भीष्म और युधिष्ठिर को मानव के रूप में चित्रित करने का प्रयास किया है। दिनकर ने अहिंसा की जो व्याख्या की है, वह गांधीजी की ही व्याख्या ही है और वह है 'अहिंसा शक्तिमान का ही अस्त्र है।' इस काव्य के पंचम सर्ग के उपरांत शेष सर्गों में भीष्म- युधिष्ठिर के हृदय- परिवर्तन करने में तल्लीन रहे हैं और यह गांधीजी के हृदय- परिवर्तन से मिलता - जुलता है। भीष्म का सारा उपदेश गांधीवाद के सिद्धान्तों से परिपूर्ण है।

'कुरुक्षेत्र' में गांधीवाद का विवेचन होने पर भी युद्ध की आवश्यकता पर बल दिया गया है। युद्ध को अनिवार्य तभी बताया गया है जब हमें दुष्टोंका नाश और स्वाधिकार - प्राप्ति का अवसर उपलब्ध होता है। इसी प्रकार स्वत्व की रक्षा के लिए हिंसा को भी वरेण्य बताया गया है। लेकिन गांधीजी ने हिंसा शब्द को अपने विचार मंडल में लाने की चिंता तक कदापि नहीं की है। गांधीजी भी पहले युद्ध में बड़ी आस्था रखने वाले थे और उसके लिए प्रेरणा भी देते थे। फिर युद्ध के प्रति अनास्था तभी उत्पन्न हुई जब प्रथम महायुद्ध के परिणाम - फल से भारत की दयनीय दशा को अपने खुले नेत्रों से देख लिया।

श्री कान्ति मोहन शर्मा ने कुरुक्षेत्र पर गांधीवाद के प्रभाव की अनिवार्यता को बताते हुए कहा है - "सन् १९४६ ई० में एक भारतीय कवि द्वारा विरचित इस चिन्तन- प्रधान - काव्य पर यदि गांधीवाद का प्रभाव न होता तभी आश्चर्य की बात होती।"[1] आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने बताया है - "युधिष्ठिर एक निराश और अकर्मण्य व्यक्ति के रूप में आये हैं, उनके समक्ष कोई निर्दिष्ट लक्ष्य या मार्ग नहीं है, अतएव उनके उद्गारों में गांधी- विचार- धारा और उसूलों को ढूंढना व्यर्थ श्रम होगा। ---- युद्ध - निवारण संबंधी गांधीजी की अहिंसा - प्रक्रिया की स्थापना तो कदाचित कवि का लक्ष्य भी नहीं है। ऐसी अवस्था में 'कुरुक्षेत्र' में गांधी - मत का प्रभाव देखना तो असंगत है।"[2] इस कथन से मैं सहमत नहीं हूं क्योंकि युधिष्ठिर को पहले निराश

- -

१: कुरुक्षेत्र - मीमांसा - कान्ति मोहन शर्मा - पृ० ६७
२: आधुनिक साहित्य - नन्ददुलारे वाजपेयी - पृ० १४१ - १४२

एवं उत्साहहीन व्यक्ति थे, बाद में वे गांधीवादी बनते हैं। उसी प्रकार कवि का लक्ष्य चाहे अहिंसा - प्रक्रिया रहा हो या न रहा हो, द्वितीय सर्ग में युधिष्ठिर ने स्पष्टत: बताया है कि अगर, युद्ध का परिणाम इतना भयानक होगा, यह पहले ही जानता तो मैं तन- बल छोड़कर मनोबल से लड़ता। अत: वाजपेयी जी के उपर्युक्त कथन को पूर्णत: मानने के लिए मैं तैयार नहीं हूं।

यह काव्य प्रधानत: गान्धीवाद के हृदय - परिवर्तन- संबंधी तत्व को लेकर रचा गया है, ऐसा प्रतीत होता है। इसके षष्ठ एवं सप्तम सर्ग के उपदेशात्मक छंद जो हैं वे सब इसी तत्व के समर्थक हैं। पंचम सर्गान्त तक की बातें गांधीवाद की विवेचना की पृष्ठभूमि बनकर आती हैं।

रश्मिरथी :

यह काव्य महाभारत के महारथी कर्ण पर लिखित है जिसमें चिरकाल से उपेक्षित पात्र कर्ण के महच्चरित्र को गौरवान्वित करने का प्रयास किया गया है। आधुनिक युग तो दीन- दलितों के प्रति सहानुभूति और उपेक्षित - तिरस्कृतों के प्रति उदारता एवं करुणा उपजने का युग माना गया है। अत: इस युग के अधिकांश कवि ऐसी काव्य - रचनाओं में अत्यंत रुचि दिखाने लगे हैं जिन काव्य - दीपकों से इन्हें प्रकाश का दर्शन करा सके। यह युग तो मानवता-वादी विचार-धारा को लेकर चलता रहता है। अत: संसार की निम्न-स्तरीय जनता के उद्धार के हेतु उपर्युक्त पात्रों का चरित्रोद्घाटन कवियों को अत्यधिक उचित तथा स्वीकार्य सिद्ध हुआ। ऐसी परिस्थिति में कविगण युगानुकूल काव्य- रचना करने के लिए बाध्य हुए।

इसी योग्यता और स्वीकृति से प्रभावित होकर, दिनकरजी ने इस काव्य की रचना की है। अत: मानवतावादी विचारों का एक बड़ा ही संग्रह इस काव्य में उपलब्ध है। कवि ने इन विचारों को गान्धीवादी दृष्टिकोण से प्रस्तुत किया है।

कवि ने काव्यारंभ में उच्च - नीच के भेद और निर्ममता पर प्रकाश डाला है -

' ऊँच - नीच का भेद न माने, वही श्रेष्ठ ज्ञानी है ,

-- -- --

सबसे श्रेष्ठ वही ब्राह्मण है, हो जिसमें तप - त्याग । '[1]

कर्ण के चरित्र पर बताया गया है -

' तन से समर शूर , मन से भावुक, स्वभाव से दानी ,

-- -- --

वन्य - कुसुम सा खिला कर्ण जग की आँखों से दूर ।। '[2]

जब द्रोणाचार्य ने कर्ण से उसकी जाति के बारे में पूछा, तो वह अत्यन्त कुपित हुआ और इस जाति- भेद की कुवासना का घोर विरोध किया गया -

' जाति जाति रटते, जिनकी पूंजी केवल पाषंड ,
मैं क्या जानूं जाति ? जाति हैं ये मेरे भुजदण्ड । '[3]

-- -- --

छल से मांग लिया करते हो अंगूठे का दान । '[3]

सुयोधन ने बताया है कि संसार में वीर तपस्या की अमोघ शक्ति से ही आदर - सम्मान पाता है, कुल या शरीर बल से नहीं -

' पाते हैं सम्मान तपोबल से भूतल पर शूर ,

-- -- --

मानवता की इस विभूति का, धरती के इस धन का ? '[4]

कर्ण के शूद्र होने के कारण परशुराम ने उसे धनुर्विद्या सिखाने से इनकार किया । इससे दुःखित बनकर उसने अपने पूज्य गुरु के चरणों पर ही अपने को बलिदान कर देना चाहा और इसके लिए उनसे आज्ञा मांगी ।
कर्ण की इस प्रार्थना ने गुरु का हृदय - परिवर्तन कर डाला और उन्होंने बताया -

---

१: रश्मिरथी - प्रथम सर्ग - पृ० १ २: वही० पृ० २
३: वही० पृ० ४ ४: वही० पृ० ५ - ६

००५

' हाय, कर्ण तू -- -- नहीं मैं ने पाया । '[1]

भगवान श्रीकृष्ण ने कुरुक्षेत्र युद्ध को रोकने का प्रयास किया है। अत: उन्होंने कर्ण से प्रार्थना की -

' कौरव को तज रण रोक सके ,
भू का हर भावी शोक सके । '[2]

कर्ण ने अपने पौरुष का परिचय दिया है -

' कुल - जाति नहीं साधन मेरा ,
-- -- --
मैं ने हिम्मत से काम लिया । '[3]

कर्ण ने मित्रता को धन के सामने अतुलनीय बताया है -

' मित्रता बड़ा अनमोल रतन,
कब उसे तोल सकता है धन ? '[4]

कर्ण को साम्राज्य, संपत्ति आदि की कोई इच्छा नहीं है -

' कुरुराज्य चाहता मैं कब हूं ?
-- --
तृष्णा तू भी न छुवी मन को । '[5]

कर्ण को सब कुछ दान देने में आनन्द आता है -

' वैभव विलास की चाह नहीं,
-- -- --
निर्धन को भरती रहे सदा । '[6]

१: रश्मिरथी - द्वितीय सर्ग - पृ० २२
२: वही० तृतीय सर्ग - पृ० ४०
३: वही० पृ० ५०
४: वही० पृ० ५१
५: वही० पृ० ५२ - ५३
६: वही० पृ० ५३

सांसारिक सुख- भोग के प्रति कर्ण के मन में घृणा की भावना है । अत: उसने बताया है-

' होकर समृद्धि - सुख के अधीन ,

-- -- --

पर वही मनुज को खाता है । '[१]

मानवता का आदर्श कवि ने यों बताया है -

' नरता का आदर्श तपस्या के भीतर पलता है ,

-- -- --

हो पाते तब कहीं अमरता के पद के अधिकारी । '[२]

आत्मदानी के बारे में कहा गया है -

' आत्मदान के साथ जगज्जीवन का ऋजु नाता है ,
जो देता जितना बदले में उतना ही पाता है । '[३]

कर्ण की दान- महिमा की प्रशंसा की गयी है -

' वीर कर्ण, विक्रमी, दान का अति अमोघ व्रत धारी,

-- -- --

मुंहमांगा वह दान कर्ण से अनायास पाता था । '[४]

परदु:ख निवारण कर्ण का मुख्य कर्म था -

' पर का दु:ख हरण करने में ही अपना सुख माना ,

-- -- --

उपकृत करो मुझे, अपनी संचित निधि मुझ से लेकर । '[५]

कर्ण ने स्वयं बताया है कि वह एक नया सन्देश जगत के लिए लाया है -

- -

१: रश्मिरथी - तृतीय सर्ग - पृ० ५४   २: वही० पृ० ५६

३: वही० - चतुर्थ सर्ग - पृ० ६०   ४: वही० पृ० ६२,देखिये छं० २०,२२,२३,३०

५: वही० पृ० ६४

' फिर कहता हूं, नहीं व्यर्थ राधेय यहां आया है ,

-- -- --

पूर्ण जीवन - जग के लिए कहीं कुछ करतब दिखलाना है ।'[1]

पूर्व विवेचित करतब के बारे में बताया गया है ।जो जन-हित के लिए उपयोगी सिद्ध हुए हैं । साथ ही कर्ण ने कुछ आदर्शों को भी प्रस्तुत किया है ।[2] युग पुरुषके बारे में बताया गया है -

' युगपुरुष वही सारे समाज का
विहित धर्मगुरु होता है,
सबके मन का जो अन्धकार
अपने प्रकाश से धोता है ।'[3]

कर्ण ने प्रसंग - प्रसंग पर अपने बलिदान - भाव को व्यक्त किया है -

' कुरुपति को विजय दिलाऊं मैं,
या स्वयं वीरगति पाऊं मैं ।'[4]

अर्जुन ने जब भूरिश्रवा की दाहिनी भुजा काट डाली, तब उसने अनशन किया -

' हां, यह भी हुआ कि सात्यकि से
जब था वह निश्छल, योग - निरत ।'[5]

इस काव्य के पात्रों पर गान्धीवाद का असर स्पष्टत: पड़ा है । कर्ण बड़ा धन- दानी और बलिदानी सिद्ध किया गया है । कर्ण के अज्ञात चरित्र के उद्घाटन के प्रसंग में कवि ने जाति- भेद की समस्या को प्रस्तुत करके, उसे गुरु के हृदय परिवर्तन के द्वारा, गान्धीवादी दृष्टिकोण से सुलझाने का प्रयास किया है । कर्ण को परम व्रती पूर्ण - विरागी, निडर आत्मदानी, एवं अपार दानी के रूप में चित्रित किया गया है । इसमें आमरण अनशन, तपोबल,आदर्श जीवन, मानवतावाद आदि पर

- -

१: रश्मिरथी - चतुर्थ सर्ग - पृ० ७२   २: वही० पृ० ७३, ७४
३: वही० षष्ठ सर्ग - पृ० ११७   ४: वही० पृ० १२३
५: वही० पृ० १३७

भी विचार किया गया है। कवि ने कर्ण के चरित्र को आधुनिक युग के नये साँचे में ढालने का प्रयास किया है और उसी के मुंह से गान्धीवादी विचारों का समर्थन भी किया है।

तारक वध :

गांधीवाद के प्रमुख तत्व ' हृदय - परिवर्तन ' को मुख्य तत्व बनाकर कवि ने इस महाकाव्य की रचना की है और इसकी कथा को उन्नीस सर्गों में अत्यन्त विपुलता के साथ प्रस्तुत किया है। इन सर्गों के अतिरिक्त ' प्रवेश ' और ' विश्राम ' शीर्षक दो खण्डों को भी आदि और अन्त में यथाक्रम जोड़ दिया गया है। इसकी कथा अत्यन्त पौराणिक है जिसका युगानुकूल परिवर्तन - संशोधन करना कवि ने अपनी उद्देश्य - पूर्ति के लिए आवश्यक माना है। अत: इस काव्य की, तारकासुर वध से संबंधित कथा को आधुनिक युग की प्रगतिवादी विचारधारा का नूतन रूप प्रदान करने का प्रयास किया गया है। वस्तुत: यह काव्य अपने कथाधार की लंबाई - चौड़ाई और गान्धीवादी गहराई - महानता की दृष्टि से अन्य महाकाव्यों से सचमुच महत्वपूर्ण है। इस काव्य की एक ऐसी विशेषता रही है जो अन्यत्र कहीं भी पायी नहीं जाती। वह यह है कि कवि ने यहां देव, दानव और मनुष्य को एक ही सत्य रूपी भगवान के त्रिगुणात्मक रूप बताया है और इनके समन्वय द्वारा मानव- जीवन की पूर्णता एवं शुभ परिणाम की संभावना का समर्थन किया है। यही कवि का उद्देश्य भी है। अत: कवि ने यों बताया है- यहां अब अगति में भी निश्चित रूप से किसी निषेधात्मक तत्व का समावेश नहीं मानता। काल चक्र में अगति भी उतनी ही रचनात्मक हो सकती है जितनी प्रगति है, प्रकट रूप में विरोधी होने पर भी वास्तव में दोनों एक दूसरे की पूरक हैं और दोनों ही मिलकर संपूर्ण अविभाजित ऐक्य का निर्माण करती हैं।¹

इसी कारण कवि ने प्रगति- अगति, रुद्र- शंकर, दानवता- मानवता, दोष- गुण आदि विरोधी तत्वों का आवश्य प्रतिपादन किया है जिनके अस्तित्व से ही मानव- ऐक्य संपन्न हो सकता है। डॉ० गोविन्दराम शर्मा ने भी कवि के स्वर में स्वर मिलाते हुए यों बताया है -" मानव- जीवन में दानव सर्वथा निन्दनीय या त्याज्य नहीं है, अपितु जीवन के समुचित विकास में उसका अस्तित्व आवश्यक है।"²

१: तारकवध - लेखक के दो शब्द - पृ० २

२: हिन्दी के आधुनिक महाकाव्य - परंपरा और विकास - पृ० ४४६

अब इस काव्य के गान्धीवादी तत्वों पर प्रकाश डाला जायेगा जो इसमें विचारणीय है। समाज में अहिंसा- व्रत का पालन सदैव होता था और ऐसे व्रती ही वहां आदर- सम्मान पा सकते थे। -

प्रभुत-अहिंसा के व्रतधारी महाशक्ति- आराधक।
सम्मानित हों वे समाज में प्रखर तपस्वी साधक।[1]

वशिष्ट मुनि के आश्रम में हर कहीं अहिंसा का व्यवहार ही दिखायी पड़ता है। सकल चराचर में अहिंसा- भावनाएं दृश्यमान थी -

सहज शत्रुता सकल भुलाये वहि हिंसादिक जीव।
दिखे वहां अनुराग- मूर्ति से प्रेमोन्मत्त अतीव।
-- -- -- --
उसमें प्रीति- समेत विराजे मुनिवर करुणापुंज।[2]

आश्रम में प्रेम और अहिंसा का मन्त्र ही गूंजता था -

हिंसक और अहिंसक सबको दिया प्रेम का मन्त्र।
परतन्त्रता गयी दोनों की दासों को स्वतन्त्र।[3]

अपनी कन्या शान्ता को मानव- कल्याण के लिए वन भेजती हुई माता कौशल्या ने सत्य पर अपने विश्वास और त्याग की महिमा बतायी है जिसपर गान्धीजी अपनी जान तक दिया करते थे।

प्रेम- धर्म- निबाहि करेंगी हम सदा।
सत्य, त्याग के सब महत्व को मानकर।[4]

कौशल्या ने देश- हित पर मरमिटने पर बल दिया है। उसने अपने बेटी- बेटों से ही नहीं, अयोध्या की सारी तरुण- तरुणियों से आत्म बलिदान का अनुरोध किया है -

बेटे कितने और बेटियाँ भी कई।
है लीये बलिदान जहां ही चाहिए।[5]

१: तारक- वध- तृतीय सर्ग - पृ० ७२ २: वही- चतुर्थ सर्ग-पृ०१०७ ३: वही-पृ०१०८
४: वही- पंचम सर्ग - पृ० १५६ ५: वही- पृ० १५७

कौशल्या ने शान्ता को निःस्वार्थ नारी बताया है -

तुम कल्याणी दयामयी आदर्श हो ।
स्वार्थ-नाश ही लक्ष्य तुम्हारा तो रहा ।[1]

शान्ता के अवतार को गान्धीजी के अवतार की भाँति जगत कल्याण के लिए माना गया है -

रूप प्रेम का प्रकृत दिखाने के लिए ।
-- -- --
जगकर पुत प्रकाश बहाने के लिए ।[2]

इन पंक्तियों में शान्ता की चित्तवृत्ति के बारे में जो बताया गया है उसमें हृदय- परिवर्तन का सा आभास मिलता है ।

करुणा ही के हेतु बनी अकरुणा महा ।
-- -- -- --
आज बनी जन- नयन- हेतु की चाँदिनी ।[3]

शान्ता को अपने राजमहल का सुख- भोग जरा भी भाता नहीं था । वह दुःखी जनों के साथ अपना जीवन बिताना चाहती थी, जैसा कि गान्धीजी दाम्पत्य- जीवन सूत्र में बन्धे जाने पर भी उससे सुदूर हरिजनों के बीच में अपना जीवन बिताने में सन्तोष पाते थे ।

राजमहल का भोग कहाँ तुमको भाता ?
-- -- -- --
तुम दुःखियों की खोज- खबर फिरती लेती हो ।[4]

शृंगी ऋषि ने नदियों में भी अहिंसा की कल्पना की है और तुंगभद्रा के बारे में स्पष्ट बताया है -

---

१: तारक- वध - पंचम सर्ग - पृ० १७१
२: वही- षष्ठ सर्ग- पृ० १७५ ३: वही- पृ० १७५
४: वही- पृ० १८०

हिंसा का न कहीं तु   में दशित।
देना सबको प्रगति मात्र ही उसने सीखा ।[1]

इसीप्रकार मुंगी मुनि ने विपिन- सौन्दर्य पर बताते समय अहिंसा का प्रतिपादन किया है -

हिंसा यहां न लेश प्रणाम सब काल प्रवर्तित ।
एक परम अद्वैत, उसी प्रति रत-उत्साहित ।[2]

तारकासुर के तीन पुत्रों में ज्येष्ठ पुत्र तारकाक्ष बड़ा संयम शील एवं कल्याणकांक्षी था और उसने बताया है कि देव, सुर, मानव में कोई भेद न रखना चाहिए, सबको उच्च- नीचभावना के बिना जीवन की सुविधाएं प्रदान करनी चाहिए ।

दानव, मानव, देव किसी को विलग न जाना ।
-- -- -- --
पायें औषधि दान महाजन भी, निर्धन भी ।[3]

तारकाक्ष समस्त देशों को स्वतन्त्रता और स्वावलंब के झूले में झूलते देखना चाहता था । अत: उसने यों प्रश्न किया है ।

दानव ही का राज्य जगत में क्यों हम चाहें ?
-- -- -- --
क्यों कोई दिनारात दुर्गों से वीर बढ़ावे ?[4]

तारकाक्ष ने साम्यवाद का समर्थन करते हुए बताया है -

साम्यवाद का पंथ सकल जन को दिखलाया ।
अन्यायी का दमन करो उसने बतलाया ।[5]

तारकाक्ष की पत्नी भी अहिंसा की पोषिका थी -
अमल अहिंसा मन हृदय में विकासिका थी ।
हिंसा- प्रति मति- प्रीति- निरन्तर विनाशिका थी ।[6]

१: तारकवध- अष्टम सर्ग- पृ०२४२   २: वही० पृ० २२७   ३: वही- नवम सर्ग पृ० २६६

४: वही- पृ० २६६   ५: वही- पृ० २७०   ६: वही- पृ० २७१

पिता तारक के अत्याचारों और अन्यायों के विरुद्ध उस नगर के (शोणितपुर) नवयुवकों ने क्रान्ति करने का निश्चय किया -

' नवयुवकों का एक वर्ग होकर अनुचारी ।
क्रान्ति प्रचारक भाव - वृन्द का बना प्रसारी । '[1]

तारक की वधू भी क्रान्ति का प्रचार करती थी । उसके चारित्रिक गुणों में भी गान्धी गुण का दर्शन पाया जाता है ।[2] दानव और मानव में जीवन - समता लाने के लिए तारकाक्ष ने आन्दोलन का प्रबन्ध किया ।

' समारोह का समय लोक- परिषद - जुत आया ।
-- -- --
जीवन- समता - भाव - मान्यता समझाऊंगा ।।'[3]

मुनि ने तारक के वध हिंसा का मार्ग स्वीकार करना नहीं चाहा । वे शुद्ध अहिंसा पन्थी थे ।

' शान्त अहिंसक रण शैली से ही यदि कार्य हमारा ।
-- -- -- --
रक्त पात की बात करें क्यों ? पन्थ त्याज्य वह सारा ।'[4]

मुनि कवि ने भगवान कार्तिकेय को सत्याग्रह स्वरूप बताया है । उनका वर्णन एक सत्याग्रही के रूप में भी किया है ।

' सत्याग्रह - स्वरूप हम प्रभु से होगा भाग्य तुम्हारा ।
भक्ति - मुक्ति पायेगा दोनों कर्म प्राण हमारा ।। '[5]

मुनि ने तारक - वध के लिए हिंसा का मार्ग न अपनाने का उपदेश यों दिया है -

---

१: तारक वध - नवम सर्ग - पृ० २७०
२: 'साम्य - प्रचारण -------- चंचला- वर्धिणी । ' - वही० पृ० २७०
३: वही० पृ० २७२
४: वही० - द्वादश सर्ग - पृ० ३३४
५: वही० - पृ० ३३७

'ध्यान प्रमुख हिंसा प्रयोग की ओर कभी मत दौड़े ।
लाभ न एक लाख आयेगा होगी हानि भयंकर ।।'[1]

वशिष्ठ ने अपना परिचय यों दिया है जिसमें सत्य और त्याग की महत्ता थी -

'नहीं आक्रमण किया किसी पर हिंसा - वृत्ति न धारी ।
सत्य, त्याग ही को अपनाया शिव के बने पुजारी ।।'[2]

वशिष्ठ ने जनता में युद्ध की चिंता तक न करने और देश- प्रेम की भावना भर देने का उपदेश दिया -

'कायर को भी वीर बनाओ दे हुंकार निराला ।
ज्वलित करो उसके मन में भी देश - प्रेम की ज्वाला ।।'[3]

तारकाक्ष को अहिंसा का पाठ पढ़ाने का उपदेश मुनि ने दिया है । उन्होंने बताया है कि अहिंसा का प्रचार और प्रसार करना ही मानव - धर्म है -

'मानवता का धर्म अहिंसामय सिखलाओ ।
जिसकी जो आकांक्षा पुलकित उसे बनाओ ।।'[4]

शोणितपुर में मानवता की प्रतिष्ठा की घोषणा की है -

'मानवता का धर्म धर्म इस युग का होगा ।
-- -- --
मानवत्व की शरण आयेगी महिमा खोकर ।।'[5]

दानवता का अन्त करने के लिए कार्तिकेय के जन्म को अनिवार्य माना गया है - ।[6] कार्तिकेय के इस कथन में अहिंसा का स्फुरण है । -.

'तूणीरों में बाण प्रेम ही के लाया हूं ।'[7]

१: तारक वध - द्वादश सर्ग - पृ० ३३८
२: वही० - त्रयोदश सर्ग - पृ० ३४२
३: वही- पृ० ३४३
४: वही० - चतुर्दश सर्ग - पृ० ३६०
५: वही० - पृ० ३६१
६:
६: 'महासत्य यह --- अमर लोक को जायें ।' - वही० चतुर्दशसर्ग - पृ०४०३
७: तारक वध - षोडश सर्ग - पृ० ४३८

कार्तिकेय में अपार शक्ति निहित है और उन्होंने अहिंसात्मक संग्राम करने की घोषणा की है -

> ' लिये प्रेम का बाण समर करने आता हूं ।
>
> -- -- --
>
> कर मुक्त मैं संग्राम आपदा - ग्रस्त धरा को ने । '[1]

कार्तिकेय महात्म्यावास्त्र लेकर नि:शस्त्र सेनानी के रूप में आये जिस प्रकार गान्धीजी ने सत्य - अहिंसा का शस्त्र धारण कर नि:शस्त्र सेनानी होकर दर्शन दिया था -

> ' शस्त्रहीन वे तदपि शस्त्र से हीन न जानो ।
> उनका शस्त्र महान अचल जयकारी मानो ।
>
> -- -- --
>
> तुमको बिना प्रयास वहीं से मारे जाते । '[2]

समस्त शोणितपुर में मानवता का मन्त्र गूंजता रहता था -

> ' दानवता को नष्ट विकसिता मानवता हो ।
> पाये व्यक्ति विकास शक्ति, बल पावनता हो ।। '[3]

कुंभी मुनि ने अपनी प्रेम वाणी से तारकासुर का हृदय- परिवर्तन कर दिया -

> ' मिली दया भी, आज राज निज मैं ने त्यागा ।
> प्रेम पंथ की ओर हृदय मेरा अनुरागा ।। '[4]

कुंभी मुनि ने शोषितों को आराधना और नीराजना करने और राज्य का भार उन्हें सौंप देने का वादा किया है -

> ' शोषित जो जन आज वही होवें अधिकारी ।
>
> -- -- --
>
> शोषित ही आराध्य महत्ता अब पायेगा ।। '[5]

- -

१: तारक वध - चौदह सर्ग - पृ० ४३८ ४४१०० २: वही० पृ० ४५१

३: वही० पृ० ४५७ ४: वही० सप्तदश सर्ग- पृ० ४६६

५: वही० -

गान्धीजी के शारीरिक परिश्रम और स्वावलंब पर बल देते हुए यहां बताया गया है -

' श्रम करके सब कार्य, नियम परिपालित हो यह ।'[1]

गान्धीजी ने साध्य की प्राप्ति के लिए साधन को सबसे महत्वपूर्ण एवं अनिवार्य माना है। उसी पर मुनि कुंती ने भी इसको दुहराया है -

' साधन को ही साध्य मानकर चलना जग में -
होगा बाधक किन्तु प्रगति- पथ के पग पग में ।'[2]

कुंती के इस कथन में अहिंसा, आत्मबल, सत्य, साम्यवाद आदि की ओर संकेत किया गया है -

' क्यों सशस्त्र ही क्रान्ति ? शस्त्र से रहित नहीं क्यों ?
-- -- --
समता के सिद्धान्त मध्य वैषम्य न भर दो ।'[3]

तारकासुर ने अपने पुत्र तारकाक्ष को अपना राज्य सौंप दिया और मुनि ने तारकाक्ष को प्रेमतत्व पर समाज का निर्माण करने का उपदेश दिया -

' साम्य भाव की छाप जन - सम्बन्धों पर हो ।
-- -- --
नव समाज - निर्माण प्रेम पर हो अवलंबित ।।'[4]

मुनि ने राज्य - शासन तथा समाज- सुधार संबंधी जो निर्देश तारकाक्ष को दिये हैं, उनमें गान्धीवादी मानवतावाद का दृष्टिकोण स्पष्ट लक्षित होता है ।

' दानवता का रूप असुर हो कभी
-- -- --
तारकाक्ष ! पुरुषार्थ तुम्हारा हो अमर ।
-- -- --
तब हिंसा का मोह सत्य के बल से जीतो ।।'[5]

१: तारकवध - सप्तदश सर्ग - पृ० ४७३ २: वही० पृ० ४७५ ३: वही०पृ० ४७८
४: वही० अष्टादश सर्ग - पृ० ४६४ ५: वही० पृ० ५०१ - ५०६

मुनि ने इस कथन में गान्धीवादी अपरिग्रह की व्यंजना की है -

' जनता का धन धान, दान जनता को जो दे जो ।
आवश्यक परिमाण मात्र अपने हित ले जो ।
-- -- --
श्रमिक करें सब लोगा करें सच्चाई से श्रम ।
पर श्रम फल का हरण त्याग दें होकर निर्मम ।'[1]

इन पंक्तियों में गांधीजी के स्वावलंबन, विदेशी वस्तुओं का तिरस्कार, पर-शासन के प्रति निर्मोह आदि विचारों पर प्रकाश डाला गया है -

' निज उपयोजन - हेतु वस्तु का उत्पादन हो ।
-- -- --
स्वावलंब का सरल मंत्र पढ़ाना हम सीखें ।'[2]

रामचन्द्र जी के रामराज्य की प्रशंसा की गयी है जिसके नमूने में भारत को रूप देने की गान्धीजी ने कल्पना की थी -

' रामचन्द्र का राज्य शान्ति कारक था ।
-- -- --
नहीं कहीं था शेष एक मन मैला ।'[3]

इस प्रकार 'तारकवध' में गांधीवाद के विभिन्न तत्वों का निर्वाह आधुनिक ढंग से किया गया है । इसके बीच - बीच में कवि ने मानवतावाद या मानववाद के विकास पर भी प्रकाश डाला है । इसके लिए उन्होंने प्रतीकात्मक शैली को अपनाया है । इस काव्य में कुंभी ऋषि मानवता के प्रतीक माने गये हैं, उनकी पत्नी शान्ता मानव- प्रेम और करुणा की प्रतीक बतायी गयी है और तारकासुर आसुरी वृत्तियों का प्रतीक । कुंभी ऋषि और शांता दोनों अब तक काव्य-जगत में अपरिचित ही रहे थे । लेकिन कवि ने उनको इस काव्य के नायक - नायिका बनाकर पाठकों के लिए सुपरिचित बनाया है । उन्होंने इस काव्य के कथानक को गांधीयुग के अनुकूल प्रस्तुत किया है ।

- -

१: तारकवध.- अष्टादश सर्ग - पृ० ५०५ २: वही० पृ० ५०७ ३: वही०पृ० ५१७- ५१६

मुनी ऋषि और शान्ता का राजमहल छोड़कर मानव- कल्याण-हित वन को प्रस्थान करना , अपने सांसारिक सुख- भोगों को त्यागकर अनेक कष्ट झेलना, दीन- दलितों की सुश्रूषा करना, मानवतावादी समाज- निर्माण की घोषणा करना, गान्धीवादी- समाज- सुधार का समर्थन करना, दानवों को मानवत्व की शिक्षा देना आदि बातें उपर्युक्त कथन का स्पष्टीकरण करती हैं। डा० गोविन्दराम शर्मा का यह कथन यहां उल्लेखनीय है - " गिरीश जी ने तारकवध के प्राचीन निष्क्रिय कथानक को गान्धीयुग के जीवन- दर्शन का सुदृढ़ आधार देकर उसे नव- चेतना से अनुप्राणित किया है।"[१]

इस काव्य के नायक, नायिका और कार्तिकेय, कौशल्या, दशरथ आदि पात्रों पर गांधीवाद का प्रभाव अच्छी तरह पड़ा है। शान्ता और कौशल्या प्रगतिवादी नारियों के रूप में चित्रित की गयी हैं। शृंगी मुनि ने भी प्रगतिवाद का समर्थन किया है एक जगह पर। -

" हमें प्रगति से प्रीति प्रगति से ही सब नाता।
प्रगति गयी तो काल हमारा भाग्य- विधाता। "[२]

तारक की क्रूर एवं आसुरी प्रवृत्तियों से बरबाद शोणितपुर को मुक्त करना ही कवि का उद्देश्य था। इसके सिलसिले में अनेक क्रान्ति, आन्दोलन रचे गये। यहां एक विशेषता यह थी कि जिस प्रकार गांधीजी के राजनीतिक आन्दोलनों में बूढ़ा- बूढ़ी, युवा- युवती, बालक- बालिका, बच्चा- बच्ची सब ने भाग लिया था उसी प्रकार अयोध्या और शोणितपुर की सारी जनता इन संग्रामों में शामिल हुई थी। इस काव्य में और एक उल्लेखनीय बात यह है कि शत्रु- मित्रों में एकता लाने के लिए दानवों के मस्तिष्कों में मानवत्व के गुणों को उंडेलनेवाले अहिंसात्मक तरीके को अपनाया गया है। धर्म पर भी अधिक बल दिया गया है। अहिंसा का प्रतिपादन प्रसंगानुकूल कहीं कहीं हुआ है। कवि ने अहिंसा के चार रूपों को - प्रकृत अहिंसा, प्रकृत हिंसा और विकृत अहिंसा और विकृत हिंसा बताया है। इनमें अंतिम दोनों रूप त्याज्य हैं, इसलिए कि वे हानिकारक हैं। प्रथम दोनों में प्रकृत अहिंसा शुद्ध तथा सच्ची अहिंसा है। प्रकृत हिंसा, हिंसा होने पर भी अहिंसा की विरोधिनी नहीं बनती।

- -

१: हिन्दी के आधुनिक महाकाव्य : परंपरा और विकास - पृ० ४४७
२: तारकवध - अष्टम सर्ग - पृ० २३७

इस काव्य में हम साम्यवाद, गान्धीवाद और प्रगतिवाद का त्रिवेणी संगम देख सकते हैं। आधुनिक कवि काव्य - रचना करते समय उसके कथानक की, चाहे प्राचीन हो या नवीन - की परवाह नहीं करते। कहने का तात्पर्य यह है कि कथानक जो भी हो, उसमें आवश्यक परिवर्तन करके और न करके भी उसे गान्धीवादी या अन्य वादी दर्शन के आधार पर प्रस्तुत करने में रुचि लेते हैं। वर्तमान युग में यही रीति चलती आयी है। अत: श्री सुमित्रानन्दनजी पन्त का यह कथन यहां उचित जान पड़ता है। उन्होंने इस काव्य के प्राक्कथन में बताया है - ' प्राचीन कथानक के भीतर से, उसकी सीमाओं का अतिक्रम कर आधुनिकतम गान्धीयुग का दर्शन मूर्तिमान रूप में चलता फिरता प्रतीत होता है।'[१] तारकवध का अध्ययन करने पर भी यही उपर्युक्त भाव हर पाठक के मन में उठ सकता है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि 'तारकवध' उपर्युक्त कथन को सार्थक करता है।

जयभारत :

गुप्तजी ने महाभारत की कथा के आधार पर 'जय भारत' की रचना की है जिस में महाभारत कथा के कुरुवंश की कहानी का वर्णन ही कवि का प्रधान उद्देश्य है। राजा नहुष के जीवनारंभ से लेकर युधिष्ठिर के स्वर्गारोहण तक की कथागत घटनाओं का इतिहास पाया जाता है। जब जयभारत की रचना हुई, तब कवि का युग-धर्म मानवतावाद रहा। अत: उन्होंने प्रस्तुत काव्य के द्वारा मानवतावाद और गान्धीवाद की प्रतिष्ठा करने का प्रयास किया है।

गान्धीवाद :

कर्म की महत्ता पर वरुण का कथन -

' काटा नहीं जा सकता वज्र से भी कर्म तो।
व्यर्थ यह भी है यहां, अघात है वर्म तो।

-- -- --

देव पक्षपाती नहीं, समदर्शी, न्यायी हैं।।'[२]

तपस्वी के अनुसार दूसरों के सुख से ही स्वसुख संभव है -

१: तारकवध - प्राक्कथन - पृ० २ २: जयभारत - पृ० ११

' बैर करो तो बैरी होंगे प्रिय न बनो क्यों करके प्रेम ?
अपना क्षेम तभी संभव है, जब हो औरों का भी क्षेम ।।'[१]

भीमसेन ने शत्रुओं को मित्रों के समान मानकर उनका आदर- सम्मान किया था -

' जीत शत्रुओं को मित्रों - सा दिया उन्होंने मान ,
अपना भाग्य बनाना सबका पौरुष - आप बखान ।।'[२]

जाति- भेद की भावना भी उस समय नहीं रहती थी - युधिष्ठिर का कथन है यह -

' चतुर्वर्ण क्या, आये मख में मित्र तुल्य ही म्लेच्छ
स्वागतपूर्वक पाया सबने उच्चातिथ्य यथेच्छ ।'[३]

व्यास देव ने यह उपदेश दिया कि कर्तव्य का पालन करना अनिवार्य है, उसके बुरे या अच्छे फल की चिंता को छोड़ देना चाहिए । अर्थात् निष्काम कर्तव्य कर्तव्य ही योग्य एवं शुभ माना जाता है -

' जो हो सो हो, करो स्वयं तुम निर्भय निज कर्तव्य,
भोगो भद्र, यथोचित भव में मिले जहां जो भव्य ।'[४]

द्रौपदी में स्वतंत्रता की भावना निहित है । वह अपने पिता द्रुपदसे अपने पतियों को पराधीनता से मुक्त कराने की बात कहती है -

' फिर भी यदि कुछ देना ही है तो बस मुझे यही दीजे -
पराधीनता के बन्धन से मुक्त स्वामियों को कीजे ।'[५]

युधिष्ठिर ने युद्ध करने से कोई भलाई नहीं देखी । अत: वह कहता है -

' नहीं युद्ध भी भला, किंतु करना होगा,
स्वत्व धर्म पर हमें जूझ मरना होगा ।'[६]

१: जयभारत पृ० ६७ — २: वही० पृ० १४१
३: वही० पृ० १४२ — ४: वही० पृ० १४४
५: वही० पृ० १५० — ६: वही० पृ० १५६

युधिष्ठिर ने आत्मबल की महत्ता बताते हुए अपने - अपने धर्म का पालन करने के लिए स्वबल को बढ़ाने का अनुरोध किया है -

' स्वबल से ही धर्म पलता है स्वजनों में ,
एक रस है शोक भवनों में - वनों में । '[1]

युधिष्ठिर बड़ा कर्मठ व्यक्ति था और उसे सर्वदा कर्तव्य की ही चिन्ता थी -

' किन्तु मां यों ही नहीं यह जन मरेगा ,
प्रथम, जो कर्तव्य है, उसको करेगा । '[2]

तब उसकी माता कुन्ती ने कहा देश के प्रति श्रद्धा, भक्ति और प्रेम के बारे में -

' तब वत्स, बकी तु सी के अर्थ का में ,
बन्धनों की मुक्ति तो है एक क्षण में । '[3]

युधिष्ठिर धर्मनिष्ठ व्यक्ति है -

' है युधिष्ठिर की सुलोपरि धर्म-निष्ठा ,
पा सका राजत्व ही उनसे प्रतिष्ठा । '[4]

धर्मराज युधिष्ठिर किसी को भी दासत्व प्रदान नहीं करना चाहता ; सब को स्वच्छन्दत विहार करने का अधिकार देना चाहता है -

' आप बन्धुवर, नहीं किसी को दास बनाते हैं हम ,
अपनी - सी सबकी स्वतन्त्रता सदा मनाते हैं हम । '[5]

युधिष्ठिर का सत्य पर बड़ा विश्वास है । वह स्वयं कहता है कि उसमें सरल सत्य वर्तमान है, कला नहीं -

' अंब, मुझ में सरल सत्य, कला नहीं है ।
-- -- --
अमृत लगता है मुझे जीना जगत में ,
मैं समाना चाहता हूं शुद्ध सत में ।।'[6]

१: जयभारत पृ० २६७ २: वही० पृ० २७५ ३: वही० पृ० २७५
४: वही० पृ० २८० ५: वही० पृ० २२६ ६: वही० पृ० २७५

वह लोभ रहित सत्संग बुद्धि पर बल देते हुए कहता है -

' लोभ हानि ही लाभ - वृद्धि है ,
सत्संगति ही लोक- सिद्धि है । '[१]

वह यहां आस्तिक रहता, सत्य अहिंसा आदि का समर्थन करता है ।[२] द्रौपदी के इस कथन में गान्धीजी के ' निर्बल के बल राम ' वाले वचन का समर्थन हुआ है -

' मैं अबला हूं तो क्या हुआ ? अबलों का बल राम है ,
कर्मानुसार भी अन्त में शुभ सब का परिणाम है । '[३]

विदुर के इस कथन में गांधीजी की मनोदृढ़ता एवं मृत्यु- निर्भयता का आभास मिलता है-

' हुआ जैसा भी हो सुदृढ़ मन का निश्चय जहां,
नहीं होता जो मैं फिर मरण का भी भय वहां । '[४]

श्रीकृष्ण के इस वचन में अहिंसा की भावना लक्षित होती है -

' दूंगा तुम नारायणी निज एक ओर सशस्त्र मैं ,
केवल अकेला ही रहूंगा एक ओर निरस्त्र मैं ।
-- -- --
पर युद्ध की तो बात क्या, मैं शस्त्र भी लूंगा नहीं । '[५]

युधिष्ठिर कहता है कि अधिकार - रक्षा के लिए संघर्ष करने में भय की आवश्यकता नहीं-

' अधिकार - रक्षा हेतु हम संघर्ष से डरते नहीं,
क्षत्रिय समर में काल से भी भय कभी करते नहीं ।। '[६]

श्रीकृष्ण कहते हैं कि वही आत्मबल पर भरोसा रख सकता है जो काम-क्रोधादि तमोगुणों से दूर रहता है -

---

१: जयभारत - पृ० २३५
२: क्या है भिन्न गुणों की भिन्नता-- सत्य- अहिंसा । धर्म धरें हम ---- जयभारत, पृ० २३५
३: वही० पृ० २६२
४: वही० पृ० २६६
५: वही० पृ० ३००
६: वही० पृ० ३११

' काम - क्रोध - मद - लोभ - मोह से पड़े न कच्चा,
निज बल का विश्वास नहीं कर सकता सच्चा । '[१]

श्रीकृष्ण यहां शांति- वाहक बनकर आये हैं । वे देश में शांति चाहते हैं -

' उभय पक्ष -- -- वह रण के रक्त प्रवाह में । '[२]

श्रीकृष्ण युद्ध करना नहीं चाहते । वे कौरवों और पाण्डवों के बीच की शत्रुता को मिटाने और उनमें मित्रता की स्थापना करना चाहते हैं -

' आया हूं मैं, दोष न फिर कोई दे पावे ,
-- -- --
अपने अपने अधिकार में आकर सब संतुष्ट हों । '[३]

राम को यह भाई - बन्धु का युद्ध असह्य जान पड़ता है और वह इससे असहयोग ठानकर बैठना ही उचित मानता है -

' बन्धु - रुधिर से बन्धु ही रंगते हो जब तुम हाथ ,
असहयोग हो उचित है मुझे तुम्हारे साथ । '[४]

अर्जुन अहिंसक होने के कारण युद्ध नहीं करना चाहता -

' सदय हो मुझ पर दया - निधान
बचूं मैं हिंसा से भगवान,
अहिंसा ही हो मेरा धर्म ,
इसी में है हम सब का शर्म । '[५]

कृष्ण फलेच्छा के बिना अपना कर्तव्य निभाने का उपदेश देते हैं -

' विगुण - सा भी स्वधर्म वरणीय ,
-- -- --
न कर तू फल का सोच - विचार । '[६]

- -

१: जय भारत - पृ० ३२१ २: वही० पृ० ३२४ ३: वही० पृ० ३२४ ४: वही० पृ० ३५५
५: वही० पृ० २६२ ६: वही० पृ० ३६३

कार्य की सिद्धि के लिए कर्म ही उचित है -

' सिद्धि के अर्थ कर्म ही इष्ट,

-- -- --

कर्म कर होगा सिद्ध समर्थ । '[1]

श्रीकृष्ण ज्ञान, कर्म, त्याग आदि त्रिगुणों की महिमा बताते हैं जिनसे शांति की स्थापना हो सकती है -

' बड़ा अभ्यासापेक्षा ज्ञान,

-- --

काम का त्याग शांति का धाम ।'[2]

युधिष्ठिर चाहे अपने पर दुर्गति हो जाय, दूसरों पर वैसा न पड़ना चाहता है -

' दुर्गति हो मेरी भले, सब की सुगति हो ।'[3]

यह कथन गांधीजी द्वारा भी समर्थित है अवश्य । प्रजा से युधिष्ठिर को बड़ा प्रेम और अपार श्रद्धा है । अत: वह उनकी चिंता बार बार करता है -

' दुःख है यह दास सब मेरा ।

-- -- --

-------- क्षीण भी होते । '[4]

कवि ने युधिष्ठिर का यशगान गाया है ।[5]

'जयभारत' में गांधीवाद मुखर हो उठा है । इस दृष्टि से यह एक नवीन रचना बन गया है । 'जयभारत' की कथा महाभारतीय कथा है । लेकिन कवि ने उसे गांधीवाद और मानवता वाद की दृष्टि से परखा है और नव-युगीन विचार-धारा का वेश पहनाकर आदर्शवाद की पृष्ठभूमि पर प्रस्तुत किया है । डा० नगेन्द्र जी ने कहा है - ' आज का युग-धर्म है मानवतावाद और गुप्तजी ने महाभारत के पात्रों का पुनर्निर्माण इसी के आधार पर किया है ।[6]

१: जयभारत - पृ० ३६४ २: वही० पृ० ३६५ ३: वही० पृ० ३८६ ४: वही० पृ० ४३३

५: ' आप दुःख अनुभवी -- -- जयजयकार मनाया ।' - वही० पृ० ४३३

६: 'जयभारत : समीक्षा, विचार और विश्लेषण - पृ० १२७ मैथिलीशरणगुप्त : व्यक्ति और काव्य-पृ० २३४

इसका मुख्य पात्र है युधिष्ठिर और उस पर गांधीवाद का प्रभाव खूब पड़ा है। श्रीकृष्ण, द्रौपदी, विदुर आदि भी गांधीवाद से प्रभावित हुए हैं। युधिष्ठिर गांधीजी का प्रतीक माना जा सकता है। श्रीकृष्ण अर्जुन को उपदेशात्मक जो वचन बताते हैं, उन्हीं का व्यावहारिक रूप हो है गांधीजी। कारण यह है कि श्रीकृष्ण के वचनों का वैसा ही विचारात्मक रूप गांधीजी में भी स्पष्टत: मौजूद है जो उनके कर्तव्यों एवं भाषणों द्वारा व्यक्त हुआ है। उन्हीं उपदेशात्मक वचनों को ही गीता में संग्रहीत किया गया है। गांधीजी के जीवन का एक प्रमुख अंग रही है गीता और उसीसे गांधीजी ने सत्य और अहिंसा का पाठ सीखा है। इस प्रकार गांधीवादी मानवतावाद से परिपूर्ण ' जयभारत ' एक आधुनिक काव्य बना है, चाहे उसकी कथा पौराणिक हो या वेद- युगीन।

विक्रमादित्य :

गुरु भक्त सिंह का यह काव्य ऐतिहासिक है। गुप्त - शासन की पृष्ठभूमि पर इस काव्य को रचना हुई है जो स्वर्ण युग माना जाता है। इस काव्य में भारत सम्राट विक्रमादित्य चन्द्रगुप्त द्वितीय का जीवन चित्रित किया गया है। विक्रमादि एक आदर्शवान सम्राट थे और उनके शासनकाल में गुप्त- साम्राज्य में समुचित सुधार हुए।

इस प्रकार के सुधार के दृष्टिकोण को कवि ने गान्धीवादी की दृष्टि से विचारा है और इस काव्य में गान्धीवाद के सिद्धान्तों का विवेचन भी किया है। चन्द्रगुप्त ने बताया है कि सच्चे धर्म - पथ पर चलने से ही मानव का कल्याण हो सकता है -

' उचित धर्म पथ पर चलना है, धारण करो समाज - विधान,
धैर्य सहित मनको समझा लो, इसमें ही होगा कल्याण। '[१]

भूधर अहिंसात्मक युद्ध करना चाहता था। अत: उसने बताया है -

' कूटनीति की विजय हुई तो, फिर मेरी पौबारा है,
बिना रक्त की बूंद गिराये, बनता खेल हमारा है। '[२]

- -

१: विक्रमादित्य - प्रथम सर्ग - पृ० ५ २: वही०-अष्टम सर्ग-पृ० ३७

चन्द्रगुप्त ने तो मानव- जीवन की दशा को जांचने के लिए देश का पर्यटन किया था। वे स्वयं बताते थे -

' पर्यटन हेतु मैं ----   -- शिविर मेरे मन में,'[१]

चन्द्रगुप्त सदा स्वतंत्र रहना चाहते थे। -

' क्यों बनूं किसी का दास, 'सदा स्वाधीन रहूं मैं ' की टेक मुझे।'[२]

रामगुप्त ने अहिंसा का समर्थन किया है -

' मुझे अहिंसा ही भाती है बुद्ध देव का सद् उपदेश,

-- -- -- --

विग्रह मिटा, लड़ाई तजकर, सतयुग फिर से लाना है।'[३]

कवि वीरसेन भी युद्ध करना नहीं चाहते थे -

' नहीं प्रेम है मुझे समर से पर आज्ञा का कर पालन ,

-- -- -- --

अपनी ही विचार- धारा में मुझे मोद से बहने दो।'[४]

दुष्टों का दमन जो शिष्टों की रक्षा के लिए किया जाता है, वह अहिंसात्मक माना जाता है। चन्द्रगुप्त को कारागृह से मुक्त करने के लिए ध्रुवदेवी ने अपने तन को बलिदान करने का निश्चय किया। -

' कापालिक दुष्ट की क्षति कर, तुम्हें छुड़ाने की कर युक्ति,

-- -- -- --

तो स्वतन्त्र सहयोग मुझे दे बन जाओ भारत सम्राट।'[५]

ध्रुवदेवी ने बताया है कि देश - जाति के लिए कोई काम किये बिना त्याग और बलिदान का कोई मूल्य नहीं रहता। -

- -

१: विक्रमादित्य - दशम सर्ग - पृ० ४७   २: वही० पृ० ४७   ३: वही० द्वादश-सर्ग - पृ० ६०   ४: वही० पृ० ६२   ५: वही०-इक्कीसवां सर्ग - पृ० ११६

` करे न हित जो देश - जाति का, त्याग व्यर्थ, बलिदान नहीं,
कारागृह में शान्ति टटोले, कायर है बलवान नहीं । `[१]

अत: उसने कर्तव्य निरतता पर बल देते हुए कहा है -

` है कर्तव्य-परायणता ही सबसे उत्तम जीवन फल ,
बाधाएं हैं पोस डालतीं, दृढ़ मन के निश्चय का बल ।`[२]

चन्द्रगुप्त ने रामगुप्त को सच्चे पथ को ग्रहण करने का उपदेश दिया है -

` गहो सतपंथ निकाल विकार,
अहिंसा व्रत मन में दृढ़ धार ; `[३]

गुप्तकाल में भी चरखे का प्रयोग किया जाता ज था -

` चरखे के पूनी सूतों में बनी हुई हूं चरखा । `[४]

बिहार में किसानों से कर मांगना तथा उसके विरुद्ध अनशन करना आदि का उल्लेख किया गया है -

` फिर भी कर उगाहने वाले, गये हमारे सर आ ,
-- -- --
जीवन यों ही भार मुझे था नई विपद आई सर । `[५]

लेकिन वहां के भूपति ने उसे मिटाने की आज्ञा दी । -

` -------- यद्यपि ` पंचायत ` है स्वतंत्र संस्था,

बुरे भाव से नहीं किसी का बुरा चाह हे सकती । `[६]

चन्द्रगुप्त ने रामराज्य की स्थापना करना चाहा -

` करके अंत लुटेरों का उनके अड्डों पर जाना है,
-- -- --
दस्यु दमन, उत्पात शमन कर, रामराज्य फिर लाना है । `[७]

- -

१: विक्रमादित्य - पृ० ११७ २: वही० पृ० ११७ ३: वही० पृ० १३८ ४: वही० पृ० १४०
५: वही० पृ० १४० ६: वही० पृ० १४१ ७: वही० पृ० १७०

ध्रुवदेवी द्वीपों की जनता की रक्षा करते हुए उनका उद्धार करती है -

` तुम सब में, अपनी शिक्षा से नवल भाव भरती हूं,

-- -- --

रहो सुखी, सात्विक जीवन रख, भगवत् के गुण गाकर ।`[1]

चन्द्रगुप्त ने विदेशी आक्रमणों से देश को मुक्त किया -

` जो भारत का है भक्त, प्रभु का उपासक,

-- -- --

अखिल विश्व में उसकी जय हो रही है । `[2]

चन्द्रगुप्त ने उज्जयिनी को मुक्ति प्रदान की और वह अब स्वतंत्र बन गई । अब वहां सारी सुविधाएं लायी गयी हैं । इसमें स्वतंत्र भारत की झांकी हम देख सकते हैं ।

` नहीं देश में कहीं चोर डाकू की नाम-निशानी,

-- -- --

कौड़ी मोल नाज मिलती है, नहीं पेट का रोना ।`[3]

गुप्तकाल में जो आश्रमों की स्थापना हुआ करती थी वो गुप्त काल के विद्यापीठ माने जाते थे ।

` वन आश्रम हैं फूल सरोवर, विद्याओं के उद्गम ,

-- -- --

गई लहलहा देश देश में ज्ञान धर्म की खेती ; `[4]

चन्द्रगुप्त बड़े ही कठोर मन के व्यक्ति थे और उनमें अहंभाव की मात्रा अधिक थी । लेकिन जब एक बार उनका देश के किसानों के पालन - पोषण किया गया, तब वे अपनी कठोरता और अहंकार पर दु:खी हुए और उनका हृदय परिवर्तन भी यहीं हो गया । -

` मानव आज हुआ हूं मैं तो - हरा भरा समतल मैदान ,

-- -- --

- -

१: विक्रमादित्य - तेंतीसवां सर्ग - पृ० १७६ २: विक्रमादित्य- छत्तीसवां सर्ग- पृ० १६२
३: विक्रमादित्य- उनचालीसवां सर्ग - पृ० २०१-२०२ ४: वही० पृ० २०१

कर दो ऊंचा, कस एक सूत्र में, पूर्ण देश को अपनाकर ; '[1]

इस काव्य में वैसे गांधीवाद का विवेचन बहुत कम ही हो पाया है। तथापि इसके नायक चन्द्रगुप्त एक देशोद्धारक के रूप में चित्रित किये गये हैं । ध्रुवदेवी ने चन्द्रगुप्त से प्रणय की याचना करने और उनसे न माने जाने पर उन्हें अत्यंत नीच बताना चाहा । उन्हें देश से भगाना चाहा । इसके फलस्वरूप वे अपने देश से पलायन कर गये । लेकिन देश से दूर होने पर उनके मन में सेवा और कर्तव्य की भावना जाग उठी और वे देश का कल्याण चाहने लगे । बाद में जब वे सम्राट हुए, तब उन्होंने देश में जीवन की सारी सुविधाएं प्रस्तुत कीं। उन्होंने देश से निकल कर गांव गांव में घूमते फिरते हुए जनता की दुःख - कथा जान ली । इस प्रकार उनकी यह यात्रा तो गांधीजी की गांव- गांव की पद-यात्रा का द्योतन कराती है ।

<u>नूरजहां</u> :

यह एक ऐतिहासिक रचना है । और इसमें बादशाह जहांगीर और उसकी बेगम नूरजहां की कथा का वर्णन किया गया है । इस पर गांधीवाद का प्रभाव प्रच्छन्न अवश्य पड़ा है । नूरजहां की बेगम ने किसी को भी कर्तव्य के पथ से विचलित न होने का उपदेश देते हुए कहा है -

' च्युत कर्तव्य न हो विलासिता में न कराना तुम उपहास । '[2]

जिस प्रकार गांधीजी ने बारिस्टरी पढ़ने के लिए विदेश जाने से वहां रहने वाली भारतीय जनता की दयनीय दशा समझ ली वैसा नूरजहां ने भी विदेश जाने का निश्चय किया जिसका कारण तो यह था कि मुगलों [illegible] भारत में बहुत ही सताया जाता था ।[3] अपने स्वदेश भारत को अफगानी गुलामी से स्वतन्त्र बनाने का निश्चय करते हुए नूरजहां ने बताया -

' तेरा पट्टा आज तोड़कर करूं गुलामी से आजाद,
अब स्वतन्त्र वन वन में फिरना कभी कभी कर लेना याद । '[4]

१: विक्रमादित्य - चौदहवां सर्ग - पृ० ७२   २: नूरजहां- पहला सर्ग - पृ० ६
३: 'पलने का ऋण भर डाला है अब विदेश चाहे हो जो ' - नूरजहां-पहला सर्ग-पृ० ६
४: वही० पृ० १०

यहां प्रकृति में चरखा चलाने का आभास कवि ने व्यक्त किया है -

' चरखे नक्षत्रों के चलते ये सूत्र कातते जाते ।
जिनको लपेट रवि, कर से, ये ताना सा फैलाते । '[१]

शेर अफगन जो एक सम्राट था, साम्राज्यवाद का पालन करता रहता था । उसकी इस अनीति पर दु:खी विमल राय ने ऐसे उपदेश दिये जिसमें गांधीवाद की झलक पायी जाती है -

' मत सुनो किसी का कहना तुम देखो दशा प्रजा की ।
— — —
है खुदा सभी दुनिया का फिर उसमें अपनापन क्या । '[२]

मेहरुन्नीसा अहिंसा की बात कहती है । वह विमल को मारना नहीं चाहती, अत: वह यों कहती है -

' है मस्त हुआ मौला में मत उस गरीब को मारो । '[३]

नाहरसिंह की पत्नी ने जाति- धर्म की रक्षा के लिए मर मिटने का अनुरोध किया है-

' मरना ही तो मरो देश पर पराधीनता काटो ।
— — —
और विधर्मी अत्याचारों से स्वधर्म बचाओ । '[४]

' नूरजहां ' में हमें गांधीवादी तत्व बहुत कम ही प्राप्त होते हैं । कवि ने कथा का विस्तार ही अधिक किया है । गांधीवाद के सिद्धान्तों का प्रतिपादन काव्य में यत्र तत्र ही मिलता है । कवि ने इस काव्य की रचना गांधीवाद की दृष्टि से नहीं की है । फिर भी गांधीवाद का तत्व इसमें समयवश आया है । इसमें कवि का गांधीवादी प्रतिपादन केवल युगधर्म ही माना जा सकता है ।

कैकेयी :

यह काव्य रामायण की कथा पर आधारित है । रामायण की कैकेयी को नायिका बनाकर इस काव्य की रचना की गयी है । रामायण में कैकेयी को

- -

१: नूरजहां - दूसरा सर्ग - पृ० १८ २: वही० बारहवां सर्ग - पृ० ६५
३: वही० पृ० ६५ ४: वही० तेरहवां सर्ग - पृ० १०१

कुटिला और निन्द्या माना गया है । परन्तु इस काव्य में वह आदर्शवादी नारी के रूप में चित्रित है । यदि यही इस काव्य की विशेषता है । कैकेयी द्वारा अपने पति दशरथ महाराज से जो दो वर मांगे गये उन्हें अब तक अभिशाप ही माना गया है । लेकिन प्रस्तुत कवि ने उन्हें उदात्त एवं शुभ माना है । डा० बलदेवप्रसाद मिश्र ने इस काव्य की भूमिका में कहा है - ' अतएव इस युग के कवियों और चिन्तकों ने कैकेयी के राम-वन-गमन विषयक कृत्य का अपनी कल्पना के नेत्रों से उज्ज्वल पक्ष, उदात्त कारण देखने का प्रयत्न किया है । उनके अनुसार कैकेयी का यह वरदान मांगना उसकी कर्तव्य-परायणता का, उसकी ' शठे शाठ्यम् ' वाली नीतिमत्ता का, उसकी दूरदर्शिता का और उसकी राष्ट्रहितचिंतिता का द्योतक है । '[1] राष्ट्र - संरक्षण- विषयक विचारों की पृष्ठभूमि में रचित इस काव्य में गांधीवाद का सम्यक् परिपालन हुआ है ।

रघुवंश की रीति पर बताया गया है जो गांधीयुग की रीति को रूप देने में सहायक हुआ है ।

' रही रीति रघुवंश की नित यही,
कि शरणागतों को अभयदान दे ।
भला अन्य कैसे कि देवेन्द्र की
विनय - और दशरथ बधिर कान दे । '[2]

देवासुर संग्राम जो हुआ था, वह गांधीजी के अहिंसा - आंदोलन से समता रखता है क्योंकि यह संग्राम हिंसा पर अहिंसा की विजय ही माना जा सकता है । इसमें देवासुर द्वन्द्व युद्ध का जो विवेचन किया गया है, वह बलिदान- भावना से अनुप्राणित है । अतः यह बताया गया है कि जिसे बलिदान की इच्छा है, वही युद्ध कर सकता है-

' करे रण वही, प्रिय मरण ही जिसे
पराजय सदा शत्रु को क पुकारती । '[3]

राज- शासन के बारे में दशरथ का कथन है यह जिससे प्रेरणा पाकर गांधीजी ने भारत के शासन की रूप-रेखा तैयार की थी ।

- -

१? कैकेयी - भूमिका - पृ० ल

२: कैकेयी - तृतीय सर्ग - पृ० २४
३: वही० पृ० २४

राज्य फिर जाती प्रजा की सर्वदा,
नृपति उसका एक प्रतिनिधि- मात्र ही ।
प्राण तो होती प्रजा, नृप गात्र ही,
जन- मनोरथ देखना होगा सदा ।[१]

कवि ने स्नेह, परिग्रह आदि का चित्रण किया है जिसकी पुलकन असुर- निग्रह के द्वारा की गयी है -

असुर कुछ पाशविक बल से बने उन्मद

नहीं कुछ शील की मानो रही कीमत ।

शान्ति की प्रतिष्ठा के लिए दशरथ ने निडरता और अहिंसा को आवश्यक माना है -

न रहती शान्ति हो यदि भावना डर की ।
न तो रहती अहिंसा के सहारे ही ।।
सदा असि-धार पर, शर नोक पर शर को ।
रहा करता सुरम्य निवास उसका तो ।[२]

मित्रता से अत्याचारियों का हृदय- परिवर्तन करने का समर्थन दशरथ ने किया है -

कहीं यह प्रश्न उठ सकता, न क्यों उनको-
-- -- --
न कोई अर्थ रखते पास दुष्टों के ।[३]

किसी से शत्रुता रखने या झगड़ा करने का स्वभाव मिटाने का अनुरोध दशरथ से किया गया है -

नहीं कुछ व्यक्तिगत भी बैर उनसे मन ।
-- -- -- --
उपस्थित प्रश्न मानवता व पशुता का ।[४]

१: कैकेयी - तृतीय सर्ग- पृ० २४ २: वही- पंचम सर्ग- पृ०४१
३: वही- पृ० ४३ ४: वही- पृ० ४४

आत्मबल की महत्ता पर बताया गया है -

आत्मबल युत शक्ति से कर क्या न सकता
नर अकेला भी, करे निश्चय अगर तो ? [1]

देश की स्वतन्त्रता- प्राप्ति के लिए त्याग और बलिदान की आवश्यकता है -

त्याग और बलिदान रहती मांगती स्वाधीनता भी। [2]

कर्तव्य से विमुख होना राम नहीं चाहते हैं-

तुम- सी माँ का सुत होकर,
जो होऊं कर्तव्य- विमुख ? [3]

कायरता दिखाना और अन्याय सहना महापाप बताया गया है -

कायरता-चुप रहना, निज
अधिकारों को खो देना।
पाप, महापाप चुप रहकर,
अन्याय सहन कर लेना ।। [4]

राम ने दुर्विचारों और अधर्मों के प्रचार को मिटाना चाहा है -

मानव- कल्याणार्थ बनें,
अविचार छोड़ सुविचारी।
व्यवहार अधर्मयुक्त ज्यों,
वर्जित त्यों अनर्थकारी। [5]

बलिदान के बारे में राम ने बताया है -
एक त्याग से मेरे यदि,
राष्ट्र-विपत्ति टले दुगनी।

१: कैकेयी- नवम सर्ग - पृ० ८०   २: वही- पृ० ८४
३: वही- द्वादश सर्ग- पृ० १२१   ४: वही- पृ० १२४
५: कैकेयी- द्वादश सर्ग- पृ० १२७

जन- हित में फिर क्यों न करूं ?
बलिदान बपौती अपनी ।[१]

प्रजा की प्रवृत्ति में गान्धीजी के सविनय अवज्ञा आन्दोलन का रूप द्रष्टव्य है -

वस्त्र बदल कर जब तक होवें,
-- -- --
जन- मत का क्या अर्थ ?[२]

विश्व शान्ति पर राम का कथन द्रष्टव्य है -

मुझको भी तो देवि । रही नित,
--- --- ---
पशुता समझ न पाती
-- --- --
मैं ने तो नित चाहा मारक,
नर- संहार बचाना ।[३]

शासक के कर्तव्य के बारे में राम ने बताया है -

शासक का कर्तव्य प्रथम यह,
--- -- --
दण्ड-नीति अपनाना ।[४]

सीता को राष्ट्र- सेविका के रूप में भी कवि ने चित्रित किया है -

नारी- गौरव का सर्वाधिक,
-- -- --
एक राष्ट्र की रानी ।[५]

कवि ने रामचन्द्रजी का गुण-गान किया है जिसमें महात्मा गान्धीजी के ही गुण विद्यमान हैं -

---

१: कैकेयी- द्वादश सर्ग- पृ० १२७ २: वही- त्रयोदश सर्ग- पृ० १३७
३: वही- पृ० १८२ ४: वही- पृ० १८३ ५: वही- पृ० १८७

'ज्येष्ठ भी प्रिय राम, सद्गुण धाम भी ।

-- -- --

धर्म - रत वह, सत्यकाम, निष्काम भी ।'[१]

दशरथ ने प्रजा को जो उपदेश दिया है, वह उन्हें निर्लोभी, हित - कांक्षी बताता है-

'किसी पर आक्रमण चाहें न करना हम ।

-- -- --

कुचल डालें उन्हें, कर्तव्य समुचित यह ।'[२]

दशरथ में त्याग, करुणा, अहिंसा की आग जल उठती है -

'मत हों व्यक्ति शोभा त्याग, करुणा, तप ।

-- -- --

उबलते रक्त से हों धमनियां फटतीं ।'[३]

रघुकुल की परंपरागत कर्तव्य - शीलता है प्रजा सेवा -

'पूर्वजों की कीर्ति का मैं ने रखा नित ध्यान ।

-- -- --

आप के सत्योग का पर नित रहा आधार ।।'[४]

दशरथ ने रामचन्द्र को भी प्रजा- सेवन का उपदेश दिया है -

'पर न होने राज्य का तुमको कदापि प्रमाद ।

-- -- --

हो भरे भण्डार, शस्त्रागार, समुचित न्याय ।'[५]

शूर- वीरों की सारी उलझनों को कर्तव्य से जूझना है -

- -

१: कैकेयी - चतुर्थ सर्ग - पृ० ३१ २: वही० - पंचम सर्ग - पृ० ४१

३: वही० - पंचम सर्ग - पृ० ४१ ४: वही० - षष्ठ सर्ग - ४७

५: वही० - षष्ठ सर्ग - पृ० ५२ - ५३

‘ सुर को शोभा न देता ,

-- -- --

‘शान्ति’ जीवन - अंत उसका । ’[1]

रामचन्द्रजी के मानव- पुरुष के रूप में अवतरित होने के बारे में बताया गया है -

‘ सुत - पुरुष का जन्म होता -

-- --

स्वर्ग उस भूलोक को ही तो बनाते । ’[2]

राम- वनवास से कैकेयी ने आर्य - संस्कृति का प्रसार और दुष्टों का दमन चाहा है -

‘ यदि कल्पना वह मंथरा मन की गिरी ,

-- -- --

आज या कल अग्रसर होना पड़ेगा । ’[3]

लोक- मंगल के लिए राम को वन भेजने का निश्चय करते हुए दशरथ ने राम के प्रति में अपने अपार एवं निर्मल प्रेम को लोक- मंगल कर्तव्य पर बलि कर दिया -

‘ शक्ति , साहस दो, करूं भगवान ,

-- -- --

विश्व - मानवता रहे निर्द्वन्द्व । ’[4]

गान्धीवादी विचार - धारा की दृष्टि से यह काव्य अत्यंत महत्वपूर्ण है। इसमें कवि ने अहिंसा को समष्टि - धर्म के रूप में अपनाने का प्रयास किया है। कैकेयी के वरदान की विश्व-कल्याणकारी भावना पर ही गांधीवाद का समर्थन किया गया है।

निष्कर्ष :

हिन्दी के महाकाव्यों में गांधीवादी महाकाव्य भी काफी उपलब्ध हैं। यह तो आश्चर्य की बात प्रतीत होती है कि गान्धीजी के पहले ही

१: कैकेयी - नवम सर्ग - पृ० ८० २: वही० पृ० ८३ ३: वही० पृ० ८५
४: वही० पृ० ८७

गान्धीवाद का अस्तित्व रहा है। ऐसा इसलिए संभव हुआ कि गान्धीजी ने हिन्दू धर्म के तत्वों को ही अपनाकर अपने दृष्टिकोण के सहारे उसे देखा-परखा है।

हिन्दी के कवियों ने स्फुट काव्य लिखने के साथ साथ गान्धीवादी महाकाव्य भी लिखे जो संख्या में भी बहुत कम नहीं हैं। गांधीवादी महाकाव्यों की रचना, प्रत्यक्ष - प्रतिपादित और परोक्ष प्रतिपादित दोनों प्रकार से हुई है। गान्धीवाद के प्रतिपादन के लिए कवियों ने पौराणिक, ऐतिहासिक, राजनीतिक, विषयों को अपनाया है। प्रत्यक्ष रूप में रचित दो ही महाकाव्य उपलब्ध हैं और वे हैं -` जननायक ` और ` जगदालोक `। इन महाकाव्यों में कवि ने महात्मा गान्धी के संपूर्ण जीवन का चित्रण किया है। परोक्ष रूप में प्रणीत महाकाव्यों में विभिन्न कथाओं को आधार बनाया है। साकेत - सन्त, उर्मिला, वैदेही वनवास, प्रिय प्रवास, एकलव्य, कुरुक्षेत्र, रश्मिरथी, तारक - वध, दमयन्ती, रामराज्य, साकेत, जयभारत, प्रदक्षिणा आदि का विषय पौराणिक (रामायणीय तथा महाभारतीय) कथाओं से सीधे रूप से ग्राह्य है। नूरजहां और विक्रमादित्य दोनों ऐतिहासिक कथा के आधार पर रचित हैं। काल्पनिक कथा को लेकर किसी महाकाव्य की रचना नहीं हुई है।

गान्धीवादी महाकाव्य की विशेषताएं :

गान्धीवादी महाकाव्य की विशेषताओं में प्रमुख यह है कि उनकी कथाओं में पौराणिकता के होने पर भी गान्धीवाद की दृष्टि से उसमें आवश्यक परिवर्तन करने का प्रयास किया गया है। ` जगदालोक ` काव्य के प्रारंभ में कवि ने एक विशेष रूप से शिव- पार्वती - संवाद को जुटाया है। ` साकेत ` की रचना `उपेक्षिता उर्मिला` को दृष्टि में रखते हुए हुई है और वह गान्धीवादी काव्य भी है। कवि ने ` साकेत ` में कैकेयी का हृदय - परिवर्तन कराया है। जब वह अपने पति दशरथ से दो वर मांगती थी तब एक पैर पर खड़े होकर अपना कार्य साधित किया। दशरथ की मृत्यु होने से उसका मन बदल गया और तभी वह अपने किये पर पछताने लगी थी।

`साकेत संत ` में एक उपेक्षित पात्र ` भरत ` को कवि ने गांधीवाद का नायक बनाया है। वैसा ही ` उर्मिला` भी एक उपेक्षित पात्र पर रचित काव्य है

भी गांधीवाद की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। कवि ने यहां उर्मिला का उद्धार एवं सुधार करके गांधीवादी - सुधारवादी - दृष्टिकोण को और भी पुष्ट किया है। गांधीवादी कवियों ने साकेत-पुरी को भी अपने काव्य का विषय बनाया है। अयोध्या नगरी के महाराज दशरथ तथा उनका पुत्र रामचन्द्र जी द्वारा शासित वह नगरी, जिसे रामराज्य कहा जाता है, संसार-भर के लिए एक सुंदर निशान है। गांधीजी भी इसी रामराज्य से प्रभावित हुए थे और भारत को भी ` रामराज्य ` कहलाने का आग्रह प्रकट करते थे। अब तो रामराज्य पर दो महाकाव्य प्राप्त हैं। दोनों में गांधीजी का उपर्युक्त यही भाव स्पष्टतः निरूपित किया गया है। एक रामराज्य की प्रतिष्ठा के लिए आवश्यक सभी विचारों, वस्तुओं एवं उपादानों पर दोनों कवियों ने अपने रामराज्य वाले महाकाव्यों में विचार किया है। उन्होंने ऐसा इसलिए किया है कि जो अपने देश को रामराज्य बनाना चाहता है, तो वह इन काव्यों से प्रेरणा प्राप्त करे।

` दमयन्ती ` में नारी - उद्धार की चिंता प्रमुख रही है। इसमें अस्तेय और हृदय-परिवर्तन के तत्वों का विवेचन किया गया है। अस्तेय का उल्लेख बहुतकम काव्यों में ही देखा जाता है। यहां पुष्करदन्त नाम एक दुष्ट व्यक्ति का हृदय-परिवर्तन कवि ने दिखाया है। उसी प्रकार राजा नल पहले बड़ा शिकारी था और उसने असंख्य पक्षियों का शिकार किया था। लेकिन पक्षियों के स्वतंत्रतापूर्ण जीवन से मुग्ध होकर वह अपना चिन्तन चित्त बदल लेता है। ` प्रिय प्रवास ` में आत्म-बलिदान की भावना से प्रेरित होकर राधा का हृदय परिवर्तन होता है और वह लोक-सेवा में निरत रहने की इच्छा प्रकट करती है। इस काव्य के श्रीकृष्ण पर भी गांधीवाद का प्रभाव खूब ही पड़ता है।

` एकलव्य ` भी एक उपेक्षित पात्र पर रचित काव्य है। इसमें एकलव्य के निषाद-जाति का होना, अछूत - समस्या का रूप धारण करता है। अतः वह जीवन के सभी क्षेत्रों से परित्यक्त होकर रहता है। अंत में अपनी गुरुभक्ति का परिचय देने के सिलसिले में एकलव्य के अंगुष्ठ - दान की अद्भुत प्रवृत्ति में वह जाति-भेद हमेशा के लिए मिट जाता है। ` कुरुक्षेत्र ` में कवि ने युधिष्ठिर का हृदय-परिवर्तन दिखाया है जो पहले अत्यंत दुःखी और निराश था। इसमें अस्तेय का विवेचन हुआ है। इस काव्य का प्रधान तत्व ` हृदय-परिवर्तन ` रहा है।

' रश्मिरथी ' भी उपेक्षितपात्र कर्ण पर प्रणीत काव्य है । इसमें भी जाति- समस्या उठ खड़ी होती है । कर्ण की जाति पर दूसरे सब संदेहास्पद दृष्टि से विचार- विमर्श करते हैं । कर्ण शूद्र होने के कारण उसे समस्या - भरी इस दुनिया में न रहने देते हैं लोग । अंत में कर्ण के आत्म- बलिदान की प्रार्थनाही गुरु का हृदय - परिवर्तन कर देती है । ' तारक वध ' में हृदय - परिवर्तन वाले सिद्धान्त के अतिरिक्त एक नया दृष्टिकोण भी प्रस्तुत हुआ है और वह है देव- दानव- मनुष्य की समन्वय भावना । यहां कवि ने तारकासुर का वध न करके उसका हृदय- परिवर्तन कार्तिकेय के सत्याग्रह के द्वारा कराया है । लेकिन मूल कथा में भगवान कार्तिकेय द्वारा अस्त्र प्रयोग से तारक का वध किया हुआ वर्णित है ।

'जयभारत ' में कवि ने गांधीवादी विचारों से मानववाद की प्रतिष्ठा की है । युधिष्ठिर को गांधीजी का प्रतीक माना है । इसमें अहिंसा, निष्काम कर्म, मित्रता आदि गांधीवादी तत्वों का प्रतिपादन किया है । गांधीवाद पर रचित ऐतिहासिक महाकाव्य बहुत कम ही मिलते हैं । ' विक्रमादित्य ' एक गांधीवादी महाकाव्य है जिसमें चन्द्रगुप्त द्वितीय का जीवन चित्रित किया गया है । इस काव्य के अध्ययन से एक बात स्पष्ट हो जाती है कि गांधीजी ने चरखा को अपनाया था, उसका व्यवहार गुप्तकाल में भी होता था । इसमें चन्द्रगुप्त के हृदय- परिवर्तन की बात बतायी गयी है । ' नूरजहां ' काव्य से भी उपर्युक्त चरखा वाली बात स्पष्ट होती है । इसमें अहिंसा, नीति आदि पर विचार किया गया है । 'नूरजहां ' में गांधीवाद केवल गुणधर्म ही है ।

'कैकेयी ' में नायिका कैकेयी को एक आदर्श नारी के रूप में चित्रित किया गया है । गांधीवाद की दृष्टि से इस काव्य में कुछ विशेषताएं पायीजाती हैं । एक तो कैकेयी को आदर्श नारी बतायागया ह है और दूसरा कैकेयी की वर- मांग को इस काव्य में कल्याण-दायक एवं शुभ माना गया है । इसमें देवासुर- संग्राम, बलिदान भावना से प्रेरित होकर हुआ है । अत्याचारियों का हृदय- परिवर्तन कराने में कवि ने अत्यंत श्रद्धा से काम लिया है ।

हिंदी में प्रणीत गांधीवादी महाकाव्यों का बड़ा स्थान रहा है । गांधीवाद की. दृष्टि से उनमें आवश्यक परिवर्तन करना कवियों की एक विशेषता है ।

काव्यों की कथावस्तु चाहे जो भी हो, गांधीवाद के सिद्धान्त का प्रतिपादन तथा उसका परिणत- फल दोनों की विवेचना में कवि सफल हुए हैं। इन कवियों का प्रधान उद्देश्य मानव- धरातल पर जो अस्वस्थ एवं अशांत रहा है, शांति और समाधान की पुलक- धारा प्रवाहित करने का रहा है - इसमें कोई संदेह नहीं।

अध्याय :: ६

खण्डकाव्य

अध्याय ६ :: खण्ड काव्य

महाकाव्य के संबंध में हिन्दी साहित्य में जितना विस्तृत एवं आलोचनात्मक अध्ययन हुआ है, उतना खण्डकाव्य के संबंध में नहीं हुआ है। अत: खण्डकाव्य का अध्ययन करने के लिए हमें संस्कृत के साहित्यिक ग्रन्थों को परखना पड़ता है। वस्तुत: हिन्दी के खण्डकाव्यों का अध्ययन संस्कृत के साहित्यिक ग्रंथों के आधार पर ही होता है। ` खण्डकाव्य ` शब्द की उत्पत्ति के पहले हिन्दी में इस श्रेणी के काव्यों को सूचित करने के लिए ` काव्य ` शब्द का ही प्रयोग होता था। बाद में आचार्य आनन्दवर्द्धन ने ` खण्डकाव्य ` नामक शब्द - भेद का उल्लेख किया है।[१]

खण्डकाव्य की परिभाषा भी हिन्दी के साहित्यकारों ने नहीं दी है। हिन्दी में खण्डकाव्य की परिभाषा जो अब तक प्राप्त हुई है, वह भी संस्कृत के ग्रन्थों के आधार पर ही है। साहित्यदर्पणकार विश्वनाथ ने खण्डकाव्य की जो परिभाषा दी है उसी का अनुकरण हिन्दी के साहित्यकार भी करते आये हैं। उनकी परिभाषा यही है -

` खण्डकाव्यं भवेत्काव्यस्यैकदेशानुसारि च ।। `[२]

इसी का अनुवाद करते हुए पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने हिन्दी में उसकी परिभाषा यों दी है - ` महाकाव्य के ही ढंग पर जिस काव्य की रचना होती है पर जिसमें पूर्ण जीवन का ग्रहण न करके खण्ड जीवन ही ग्रहण किया जाता है उसे खण्डकाव्य कहते हैं।[३]

- -

१: ` आचार्य आनन्दवर्द्धन ने काव्यरूपों का विवेचन करते हुए सर्वप्रथम ` खण्डकाव्य ` नामक काव्य-भेद का पृथक नामोल्लेख किया है ` - आधुनिक हिन्दी काव्य में रूप-विधाएं, डा० निर्मला जैन, पृ० २०३

२: साहित्य दर्पण- विश्वनाथ- षष्ठ: परिच्छेद: - पृ० ५५५

३: वाङ्मय विमर्श - चतुर्थ संस्करण - पृ० ५१

खण्डकाव्य का स्वरूप :

खण्डकाव्य के स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए साहित्यदर्पणकार ने बताया है कि ' काव्य ' पद्य- प्रबन्ध का वह प्रकार है जो संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश आदि भाषाओं में निबद्ध किया जाता है । इसमें सर्गों का बन्धन आवश्यक नहीं है। इसके लिए सन्धि की अनिवार्यता आवश्यक नहीं । इसकी रूप- रेखा एक ही छंद में होती है ।[1] खण्डकाव्य प्रसंग कालजयी क्षणों की अनुभूति की अभिव्यंजना है । इसमें जीवन का एक खण्ड लिया जाता है जो अपने में स्वत:पूर्ण है ।

प्रबन्ध काव्य के दो भेद होते हैं - महाकाव्य और खण्डकाव्य । हिन्दी साहित्य में खण्डकाव्यों की जो रचना की गयी है उसका स्वरूपाधार विश्वनाथ का सूत्र ही माना गया है । खण्डकाव्य किसी अन्य काव्य का खण्ड नहीं होता । किसी असफल महाकाव्य के खण्ड को खण्डकाव्य की संज्ञा नहीं दी जा सकती । खण्डकाव्य काव्य का एक स्वतंत्र भेद या रूप है । उसके अपने स्वतंत्र रूप, विधा, आत्मा और सौन्दर्य रहते हैं ।

खण्डकाव्य के लक्षण :

खण्डकाव्य के लक्षण डा० सियाराम तिवारी ने यों बताये हैं-

१- खण्डकाव्य का नायक सुर, असुर, मनुष्य, इतिहास-प्रसिद्ध अथवा कल्पित या शान्त, ललित, उदात्त और उद्धत में से किसी भी प्रकार का हो सकता है।
२- खण्डकाव्य में नायक के जीवन की एक ही घटना का वर्णन होता है जो उसके जीवन के किसी एक ही पक्ष की झलक प्रस्तुत करता है ।
३- खण्डकाव्य में कथा- संगठन आवश्यक है । कथा- विन्यास में क्रम, आरंभ, विकास, चरम सीमा और उद्देश्य हों ।

- -

१: भाषा विभाषानियमात्काव्यं सर्गसमुत्थितम् ।
एकार्थ प्रवणै: पद्यै: सन्धिसामग्र्यवर्जितम् ।।
- साहित्य दर्पण - षष्ठ : परिच्छेद: - पृ० ५५४

४- सर्ग-बद्धता अनिवार्य नहीं है ।

५- खण्डकाव्य की कथा का ख्यात अथवा इतिहास प्रसिद्ध होना अनिवार्य नहीं है ।

६- खण्डकाव्य में प्रासंगिक कथाओं का अभाव होता है ।

७- खण्डकाव्य अपने छोटे आकार में ही पूर्ण होता है ।

८- खण्डकाव्य, जैसे किसी अन्य काव्य - रूप का खण्ड नहीं है वैसे ही जिस अनुभूति की अभिव्यक्ति उसमें होती है, वह भी खण्डित न होकर पूर्ण होती है जिसका प्रभाव अवश्य ही कवि पर आंशिक पड़ता है ।

९- खण्डकाव्य महाकाव्य के गुणों से शून्य नहीं होता ।

१०- खण्डकाव्य में महाकाव्य की भांति युग को कोई महान सन्देश नहीं दिया जाता । उसमें व्यक्ति को कोई सन्देश दिया जाता है ।

११- खण्डकाव्य का चतुर्वर्ग - फल - प्राप्ति में से किसी एक की प्राप्ति उद्देश्य होता है।

१२- खण्डकाव्य में एक रस समग्र अथवा अनेक रस अनुसार रूप में रहते हैं ।

१३- खण्डकाव्य में सभी सन्धियां नहीं होतीं ।

१४- खण्डकाव्य की रचना भाषा या विभाषा में हो सकती है ।[१]

खण्डकाव्य का विकास :

खण्डकाव्य की रचना आदिकाल से ही प्रारंभ हुई थी । अपभ्रंश का पहला खण्डकाव्य अब्दुल रहमाण का सन्देश रासक है । बीसलदेव रासो प्राचीन हिंदी का खण्डकाव्य है । आदिकाल से खण्डकाव्य की जो रचना हुई है उसका मुख्य लक्ष्य लोकरंजन रहा है । रूप की दृष्टि से डा० शकुन्तला दुबे ने खण्डकाव्य के दो भेद माने हैं- लोक- दृष्टि प्रधान और व्यक्तित्व प्रधान । लोक-दृष्टि प्रधान काव्यों में कवि का व्यक्तित्व गौण रहता है । इसमें मन को रंजित बनाने के लिए सहायक वस्तुओं और भावों की अभिव्यक्ति प्रमुख होती है । अत: कवि का ध्यान काव्य के विषय पर अधिक रहता है । लोक- प्रचलित कथाओं से उसके लिए प्रेरणा प्राप्त करता है । लोक-दृष्टि प्रधान खण्डकाव्य के दो भेद होते हैं - १: वीरभावात्मक और २- प्रेम-भावात्मक । वीर-भावात्मक खण्डकाव्यों में वीरता और शृंगार की अभिव्यक्ति होती है।

१: हिन्दी के मध्यकालीन खण्डकाव्य - डा० सियाराम तिवारी - पृ० ५२

ये प्राय: वर्णनात्मक ही होते हैं। किसी वीर को काव्य का नायक बनाकर, उसके जीवन के एक पक्ष की विविध घटना या घटनाओं का चित्रण ऐसे काव्यों में किया जाता है। युद्ध के साथ प्रेम- लीलाओं का वर्णन भी मिलता है। इस प्रकार का पहला खण्डकाव्य बीसलदेव रासो है।

प्रेम- प्रधान खण्डकाव्यों की रचना लोक- प्रचलित दन्त-कथाओं के आधार पर होती है। उनका प्रणयन अनेक गीतों के रूप में ही होता है। प्रेम-प्रधान काव्य के दो भेद हैं - लौकिक प्रेम मूलक और भक्ति मूलक। इस काल में प्रेम-प्रधान कथाओं की अत्यधिक प्रचुरता के कारण ऐसे काव्यों की रचना होती थी। इस प्रकार का पहला खण्डकाव्य है कवि कल्लोल का `ढोला मारवणी चउपई`। भक्ति-मूलक खण्डकाव्यों की रचना, इस युग की पौराणिक कथाओं से प्रेरणा पाकर हुई है। इसके अतिरिक्त रामायण और महाभारत की कथाओं से भी प्रेरणा प्राप्त होती थी। श्रीकृष्ण की बाल- लीलाओं और केलियों को लेकर छोटे छोटे खण्डकाव्यों का प्रणयन हुआ। कभी कभी इनकी रचना में कल्पना से भी काम लिया जाता था। व्यक्ति- प्रधान काव्यों में कवि के व्यक्तित्व को प्रधानता दी जाती है।

खण्डकाव्य की रचना की दृष्टि से मध्यकाल अत्यन्त महत्वपूर्ण रहा है। इस युग के प्रथम चरण में सूफी - प्रेम - भावना से ओत-प्रोत खण्डकाव्यों की रचना होती थी। सूफी धर्म को लेकर मुसलमान कवि भारत में आये और अपनी मसनवी शैली का प्रचार भी किया। इनके काव्य `प्रेम की पीर` मात्र थे। ऐसे काव्यों की प्रथम उपलब्धि कुतबन की `मृगावती` है। इसके पश्चात् मंझन का `मधुमालती` उसमान का `चित्रावली` नूर मुहम्मद का `इन्द्रावती` आदि अन्य काव्यों की सृजना हुई। इसके बाद स्वच्छन्द प्रेम प्रधान खण्डकाव्यों की रचना हुई। इस वर्ग में `ढोला मारूरा दोहा` प्राप्त है।

इस युग के दूसरे चरण में भी खण्डकाव्यों की रचना होती थी। इनका विषय प्राय: या तो राम- कथा से संबंधित कोई घटना होता था, नहीं तो कृष्ण कथा से संबंधित। ये सब वैष्णव खण्डकाव्य थे। इसके बाद शैव खण्डकाव्य रचे गये, जैसे `शिव विवाह`, `पार्वती मंगल` आदि। जैन खण्डकाव्यों की रचना भी

इस युग में विरल नहीं थी । कवियों ने वीरता- मूलक खण्डकाव्यों का सृजन किया है जिनमें युद्धों का वर्णन था, जिनके लिए महाभारत और इतिहास से सामग्री संग्रह किया जाता था । इसके अंतर्गत पौराणिक और ऐतिहासिक खण्डकाव्यों को स्थान दिया जाता है । इस युग के अंतिम चरण में प्रेम - रस - भरे खण्डकाव्यों का निर्माण होता था ।

आधुनिक युग के खण्डकाव्य भाषा, भाव, शैली, विषय आदि की दृष्टि से एकदम नवीन हैं । इस समय जितने काव्यों की सर्जना हुई है, वे उनकी भाषा खड़ी बोली है । आधुनिक युग तक आते आते हिन्दी साहित्यकारों के समान कवियों की दर्शन - दृष्टि मानवता की ओर झुक गयी है । आधुनिक युग की साहित्यिक रचनाओं में यह बात स्पष्टत: लक्षित होती है । कवियों ने अपनी नवीन भावनाओं के अनुकूल काव्य - विषय को भी परिवर्तित कर दिया । उन्होंने शृंगार, प्रेम आदि से हटकर मानव- जीवन की दीन - दशा एवं दरिद्रता का करुणा-जनक चित्रण आरंभ किया । इस युग के खण्ड-काव्यों की रचना के लिए कवियों ने दो प्रकार के स्रोतों से विषय ग्रहण किया है । एक तो है, महाभारत और रामायण दूसरा आधुनिक युगीन जीवन से संबंधित है । पहले प्रकार के खण्डकाव्यों के विषय में स्रोत की दृष्टि से प्राचीनता होने पर भी अभिव्यक्ति की दृष्टि से उसमें नवीनता अवश्य आयी है । इसके लिए उन्होंने मूल- प्रवृत्तियों से आवश्यक परिवर्तन भी किया है जैसे मूल ग्रंथ में किसी शत्रु या दुष्ट की हत्या हिंसा की ढंग से की हुई वर्णित है तो आधुनिक कवि ने अपने वर्तमान काल में उसकी हत्या करने की बात ही छोड़ कर उसका हृदय- परिवर्तन कराने का प्रयास किया है जो शुद्ध रूप से अहिंसा कहा जा सकता है । इतना ही नहीं, आधुनिक युग के अधिकांश कवि गांधीवादी बने र
व उनका मन गांधीवादी विचार- धारा में बहता रहा । अत: ऐसे कवि अप
में कथा को उतनी प्रमुखता नहीं देते । प्रत्युत रचना के गांधीवादी पक्ष को स्पष्टता के साथ प्रस्फुटित तथा प्रकाशित कराने में संलग्न रहते हैं । कथा
अप्रधानता के कारण कभी कभी काल्पनिक कथाओं को भी अपनाते हैं । गांधीवादी
होने पर भी कथा सार युक्त एवं उपदेशात्मक होती है ।
भारत के राष्ट्र- पिता महात्मा गांधी पर भी परोक्षत: और प्रत्य

रचना की है। इस प्रकार की कई नवीनताएं आधुनिक युग के खण्डकाव्यों में उपलब्ध हैं।

आधुनिक युग के खण्डकाव्यों को रूप- विधान की दृष्टि से दो मुख्य वर्गों में विभक्त किया गया है - १: महाकाव्यात्मक खण्डकाव्य और २: लघु-प्रबन्धात्मक खण्डकाव्य।[१] पहले प्रकार के खण्डकाव्य में काव्य का रूप- निर्माण महाकाव्य के ढंग पर किया जाता है। इसमें अन्य विषयों की परिसीमा नहीं होती, जो महाकाव्य के लिए अनिवार्य हैं। दूसरे प्रकार के खण्डकाव्यों में काव्य का रूप महाकाव्य के समान नहीं होता, किसी प्रबन्धात्मक कविता से भिन्न, मध्यम आकार की प्रबन्ध रचनाएं होती हैं। महाकाव्यात्मक खण्डकाव्य संख्या में बहुत कम हैं।

लघु- प्रबन्धात्मक खण्डकाव्यों की रचना दो प्रकार की होती है- सर्ग बद्ध और सर्ग- विहीन। सर्गबद्ध काव्यों में आवश्यकतानुसार कथा का सर्गों में विभाजन किया गया है। सर्ग विहीन में कथा को सर्गों में विभाजित न करके उसे आद्यन्त प्रवाहित किया जाता है। ` पथिक `, ` सिद्धराज `, ` किसान `, ` अजित `; `आत्मोत्सर्ग `, ` अनाथ ` आदि सर्गबद्ध खण्डकाव्य हैं। इनमें जहां एक ओर प्रख्यात कथानक को लेकर काव्य की रचना हुई है वहां दूसरी ओर काल्पनिक कथा को लेकर खण्डकाव्य की रचना भी हुई है। किसान, अजित, पथिक, अनाथ आदि काव्यों की कथाएं कल्पना- जगत की हैं। प्रख्यात कथात्मक खण्डकाव्य में वस्तु- विन्यास सुनिश्चित है। कथा के आदि, मध्य और अन्त रहते हैं। काल्पनिक कथा से लिखित काव्यों में राजनीतिक, सामाजिक आदि समस्याओं को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। इन काव्यों में दांपत्य प्रेम और राष्ट्रीय भावना का युगल चित्रण हुआ है। पं० रामनरेश त्रिपाठी का इस दृष्टि से बड़ा महत्व रहा है। वास्तव में उनका ` पथिक ` उपर्युक्त युगल - चित्रण के भेद को खोल देता है। ऐसे काव्यों में कवि कथा कहना नहीं चाहता, वह अपनी बात ही कहना चाहता है। इसलिए वे काल्पनिक पात्रों की सृष्टि करते हैं। समाज की विभिन्न समस्याओं को भी उचित स्थान प्राप्त होता है। ऐसे काव्यों के पात्र (नारी और पुरुष) काल्पनिक होने पर अपने रचयिताओं के उद्देश्य को व्यक्त करने में सक्षम हैं। इन काव्यों में भारतीय कृषकों की दरिद्रता

- -

१: आधुनिक हिन्दी काव्य में रूप- विधाएं - पृ० २०८

तथा दीनता- भरी गाथाओं का कारुण्य चित्रित किया जाता है जो पथरीले मन वाले पाठक को भी आर्द्र बना सकता है। ' किसान ' और ' अनाथ ' इसके उत्तम उदाहरण हैं।

आधुनिक युग के गान्धीवादी युग होने के कारण इसमें गान्धीवादी खण्डकाव्यों की रचना भी होती रहती है। भारत जब अंग्रेजों की परतंत्रता की शृंखलाओं में आबद्ध था, तब देश को स्वतंत्र बनाने के लिए अहिंसात्मक प्रवृत्तियों का समर्थन करते हुए काव्यों का सृजन हुआ था। भारत के स्वतंत्रता प्राप्त करने के बाद शांति की शाश्वतता और चिर- स्थायित्व के लिए भी ऐसे अहिंसा और सत्य से ओत-प्रोत काव्यों की रचना हुई है। गान्धीजी ने अहिंसा और सत्य के द्वारा प्राप्त होने वाली स्वाधीनता और समाधान को ही चाहा था। अत: स्वतंत्रता के पूर्व और पश्चात् के खण्डकाव्यों में गान्धीवादी विचार-धारा लक्षित होती है।

हिन्दी साहित्य में गांधीवादी खण्डकाव्यों की संख्या कम नहीं है। अब तक जितने खण्डकाव्य उपलब्ध हैं, उनमें अधिकांश काव्य गांधीवाद से प्रभावित हैं। अब खण्डकाव्यों की जो रचना हो रही है, उनमें भी गांधीवाद और गांधीजी का · प्रतिपादन यत्रतत्र ही मिलता है। अब गान्धीजी और गांधीवाद से प्रभावित खण्डकाव्यों पर विचार किया जायगा। गान्धीजी और गान्धीवाद से संबंधित खण्डकाव्यों को उसकी प्रतिपादित विचारों के अनुसार दो रूपों में विभाजित किया जा सकता है। वे हैं - १: प्रत्यक्ष और २: परोक्ष रूप से गांधीवाद का विवेचन।

प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप में गान्धीवाद का जो विवेचन हुआ है, उनमें प्रत्यक्ष रूप का ' गांधी- गौरव ' एक उदाहरण है।

१: गान्धी गौरव :

पूज्य महात्मागांधीजी के जीवन को आधार बनाकर इस काव्य की रचना की गयी है। उनके जीवन के राजनीतिक पक्ष को इसमें प्रमुखता दी गयी है। फिर भी उनके जीवन का बहुत ही संक्षिप्त रूप से आद्यन्त वर्णन किया गया है। खण्डकाव्य होने के कारण इसमें गान्धीजी के संपूर्ण जीवन का विस्तृत वर्णन तो नहीं हो सका है, तो भी प्रत्येक प्रधान- अप्रधान घटना की सूचना देने का प्रयास किया गया है।

सर्गों के आधार पर विवेचन :

पहला सर्ग : इस सर्ग के आरंभ में कवि ने निम्न पंक्तियों में कवि ने गांधीजी की वंदना की है और यहां उन्होंने उनको कृष्ण - गोपाल के रूप में चित्रित किया है -

'गोपाल ! खोले कंस - कारागार के पट तम हटा,
ब्रज की धरा पर गूंजती थी मधुर मुरली की छटा ।
मिल ग्वाल- बालों में जगा जन- शक्ति साहस भर दिया ,
फिर अन्त अत्याचारियों का रच महाभारत किया ।
-- -- --
मोहन ! सिखाकर कर्मयोग हरा हमारे भार को ,
भव का हरण अब भी किया था वेष मोहनदास को ।'[१]

गान्धीजी का प्रभाव कवि पर इतना अधिक पड़ा है कि उन्होंने इस सर्ग के अन्त में पाठकों से यह प्रतिज्ञा लेने का अनुरोध किया है कि वृढ़ रहकर जन्म- स्वत्वाधिकार स्वाधीनता के लिए सब कष्ट सहें और कर्म- युवका ग्रहण करें ।

दूसरा सर्ग :

इसके प्रारंभ में कवि ने पोरबंदर का लघु वर्णन किया है जो गांधीजी का जन्मस्थल है और जिसका पुराना नाम सुदामापुरी था । गांधीजी का जन्म सन् १८६९ को हुआ जिससे शरद् की प्रकृति भी विशेष मुदित हो उठी ।[२] गांधीजी की प्रारंभिक शिक्षा, विवाह, हाई स्कूल की पढ़ाई, कसंग - सहवास, हृदय- परिवर्तन, विलायत- गमन की तैयारी आदि का इस सर्ग में वर्णन हुआ है । यह वर्णन इतना संक्षिप्त हुआ कि इन सारी बातों का दो- तीन पंक्तियों में कह दिया है ।

तीसरा सर्ग :

यहां गांधीजी की विलायत- यात्रा का वर्णन रहता है । उनके

- -

१: गान्धी गौरव - पहला सर्ग - पृ० ३ २: वही०- दूसरा सर्ग - पृ० ७

विलायत जाकर भारत देश को लौटने तक का वर्णन किया गया है । बीच में उन्होंने विलायत की रीति- रिवाज, आचार- विचार, वेश- भूषा आदि का भी चित्रण किया है । भारत आने पर गांधीजी ने अपने पूज्य- माता की मृत्यु की खबर सुनी थी ।

चौथा सर्ग :

इसमें कवि ने मानव- समाज के रूप का वर्णन किया है जो सत्संग- प्रिय और विश्व- कल्याण-कामी है । लेकिन विदेश में जाति- भेद की तीव्र - भावना चल रही थी । अतः गांधीजी जब प्रिटोरिया गये तब उन्हें वहां अनेक मुसीबतों का सामना करना पड़ा । गांधीजी ने स्वदेश लौटकर विदेश में हिन्दुओं के प्रति किये जाने वाले अत्याचारों की बातों को भारतीय जनता को सुनाया । इसके फल-स्वरूप जनके मन में क्रोधाग्नि प्रज्वलित होने लगी ।

पांचवां सर्ग :

यहां गोरों और बोअरों के बीच में युद्ध छिड़ गया जो बाद में 'बोअर युद्ध' के नाम से प्रसिद्ध हुआ । उसकी का वर्णन है । इस युद्ध में घायल व्यक्तियों की सेवा- शुश्रूषा गांधीजी ने की ।

छठा सर्ग :

ट्रांसवाल में गांधीजी का आगमन, वहां प्रिटोरिया नगर जहां प्लेग से जनता पीड़ित थी, आदि का वर्णन किया गया है । फीनिक्स में गान्धीजी गये और वहां उन्होंने शान्ति- सदनों की स्थापना की ।

सातवां सर्ग :

ट्रान्सवाल में जाति- भेद की तीव्रता मनुष- मनुष में घृणा पैदा करने कारण बनी । कालों और गोरों ने अपना अपना कानून बनाया था । इसके विरुद्ध गांधीजी ने सत्याग्रह किया ।

आठवां सर्ग :

इस सर्ग के आरंभ में कस्तूरबा के बारे में कुछ कहा गया है, जो रोग से पीड़ित होने के कारण अत्यंत परवश थीं । गांधीजी तो अपने कर्म- मार्ग पर

अग्रसर होते रहे । सत्याग्रह संग्राम का वर्णन किया गया है । गान्धीजी ने नेटाल जोहांसबर्ग, ट्रान्सवाल आदि देशों में अपने सत्याग्रह का प्रयोग किया है ।

नवां सर्ग :

साबरमती आश्रम का वर्णन कवि ने किया है जहां गांधीजी अक्सर रहा करते थे । आश्रम के लोग बड़े कर्मठ व्यक्ति थे । हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच में भिन्नता पैदा हुई और लखनऊ कांग्रेस में उनमें एकता स्थापित हुई । हिन्दी प्रचार के प्रवर्तक थे गांधीजी । रौलट बिल के प्रचार के बारे में भी कुछ कहा गया है ।

दसवां सर्ग :

इसमें भी रौलट बिल के बलवान प्रचार का समर्थन है । अमृतसर की गोली - वर्षा, जालियांवाला बाग का हत्याकाण्ड आदि पर विचार किया गया है । अमृतसर में हुए कांग्रेस अधिवेशन का भी वर्णन है ।

ग्यारहवां सर्ग :

यहां चौरी - चौरा काण्ड की हत्या का वर्णन किया गया है । गांधीजी ने स्वतंत्रता का प्रण लिया । इसमें सविनय अवज्ञा आन्दोलन, नमक कानून का भंग, डण्डी यात्रा, गांधी - इरविन समझौता और संधि आदि पर प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है ।

बारहवां सर्ग :

गांधीजी के आमरण अनशन का प्रसंग इसमें चित्रित है । भारत छोड़ो आन्दोलन से लेकर भारत की आजादी और गांधीजी की मृत्यु की बातों का प्रतिपादन कवि ने किया है ।

गान्धीजी का चरित्र- चित्रण :

इस काव्य के आधार पर गांधीजी के चरित्र- चित्रण का मूल्यांकन करना उचित होगा । गांधीजी के चरित्र में कहीं कोई उलट- फेर नहीं हुआ

उनका चरित्र जैसा पहला था अन्त तक वैसा ही रहा। वह चिर अपरिवर्तनशील रहा है। गांधीजी ने जब विलायत जाने का निश्चय किया, तब उनके बन्धुओं ने कड़ी आपत्ति उठाई। लेकिन वे अपने निश्चय पर अटल रहे।[1]

गान्धीजी बड़े जन-सेवक थे और विरोधियों की सेवा करने में भी तनिक शरमाते नहीं थे। गोरों और बोअरों के बीच युद्ध छिड़ने पर अनेकों घायलों की सेवा करके गान्धीजी ने अपनी विलक्षित वीरता का परिचय दिया।

'करना विरोधी शासकों को विचित सेवा, प्रीति से,
था निपुण नेता ने झुकाया मन्युओं को रीति से।
आहत - सहायक - दल बना थे वीर भारत के चले,
जाकर रण- स्थल में दिखाये कृत्य सेवा के भले।'[2]

गान्धीजी की वीरता का चमत्कार वहां भी दर्शनीय है जब काले और गोरों ने अपना कानून बनाया तब उन्होंने उसे रोकने की शक्ति जनता को दी।[3] कर्मठ व्यक्ति होने के कारण गान्धीजी अपने कर्म- मार्ग पर अग्रसर होते रहे। उन्होंने इसके लिए अपना पत्नी - प्रेम भी त्याग दिया -

'बलिदान पत्नी - प्रेम को भी कर्म- वेदी पर किया,
सन्तोष से सत्याग्रही ने मोह - बल भी जय किया।'[4]

उन्होंने आत्मबलिदान को अमरता - प्राप्ति का साधन समझाया है। वे कहते थे कि जो रण- क्षेत्र में अपने तन का बलिदान करता है वह अमरता प्राप्त करता है -

'दे देह का बलिदान प्यारे देश पर वे अमर हैं,
पड़कर पलंगों पर न होते प्राप्त वे पद प्रवर हैं।

- -

१: गान्धी गौरव - दूसरा सर्ग - पृ० १२ २: वही०-पांचवा सर्ग- पृ० २३
३: वही० - सातवां सर्ग - पृ० ३५
४: वही० - आठवां सर्ग - पृ० ४६

लोकमयी का ताज वह निज राष्ट्र का रोकड़ है,
जिसके मरण से कीर्ति करता प्राप्त प्यारा देश है ।'[1]

कवि ने गांधीजी को सत्य का अवतार माना है जिसमें कर्मण्य - कुशलता तथा योग्यता निहित है -

' वह सत्य का अवतार, मन की तोलना था जानता,
है कौन कितना वीर उसको तोलना था जानता ।
कैसा सरल, मन - मुग्धकारी बोलना था जानता ,
रस भूमिका के अंत में भी घोलना था जानता ।'[2]

प्रस्तुत योग्यता और कुशलता के कारण वे जनता को भी कर्मठ एवं चिन्तनशील बना सके दूसरे शब्दों में कहें तो ऐसी जनता की सृष्टि गान्धीजी ने ही की है -

' जो आलसी थे, भ्रष्ट थे, कर्मण्य उनको कर दिया,
अपने निज दृष्टान्त से, या जोश उनमें भर दिया ।
नव- युवक, बालक, वृद्ध, महिला गर्व के कारण बने,
वे उठ रहे ऊंचे स्वयं थे, जो रहे थे तृण बने ।'[3]

इसकी अन्तिम पंक्तियों में नारी - उद्धार की झलक पायी जाती है ।

गान्धीवाद का सैद्धान्तिक विवेचन :

गान्धीजी के समय का मानव- समाज तो गांधीवाद के विचारों के अनुकूल था । उसके रूप का चित्रण कवि ने इस काव्य में किया है । -

' मानव समाज स्वभाव से ही संघ- प्रिय है सर्वदा,
सब विश्व जातियों का मिलन है सुखमय सदा ।
इस सम्मिलन का सृष्टि में जो प्रौढ़तम आधार है
वह सभ्य उन्नत जातियों का विश्व में व्यापार है ।'[4]

१: गान्धी गौरव - आठवां सर्ग - पृ० ५५ २: वही० - दसवां सर्ग - पृ० ७५
३: वही - ग्यारहवां सर्ग - पृ० ८४ ४: वही० चौदहवां सर्ग - पृ० १७

गान्धीजी ने फ़ीनिक्स में शान्ति- सदनों की स्थापना की और यह भी गान्धीवाद से प्रेरित था।[१]

गान्धीकालीन सब नर- नारी वीर, उत्साही, सत्याग्रहीऔर अहिंसावादी थे -

' जो रमणियां उत्साह ही देती रही थीं दूर से,
वे आ डटीं अब क्षेत्र में कण्ठीय बल भरपूर से,'

और भी

' इनमें सभीमें देश-हित- त्यागी, तपस्वी , वीर हैं,
हैं जो अहिंसा से सुसज्जित, सत्य - व्रत में धीर हैं।
गिरतीं उदय- गिरि से धरा पर रश्मियां रवि की यथा,
गान्धी विचार विकीर्ण हैं इस धाम से होते तथा।'[२]

विधवा उद्धार :

गान्धीजी विधवा नारियों की स्थिति को सुधारना चाहते थे। इस काव्य में भी इस उद्धार से संबंधित बातें कही गयी हैं।[३]

सत्याग्रह :

गान्धीजी अपनी कार्य- सिद्धि के लिए सत्याग्रह का आश्रय लिया करते थे। अत: उनके जीवन में सत्याग्रह का बड़ा ही महत्वपूर्ण स्थान है। कवि ने उनके सत्याग्रह की महिमा के बारे में यों बताया है -

---

१: गान्धी गौरव - छठा सर्ग - पृ० ३८
२: वही० - आठवां सर्ग - पृ० ४६, नवां सर्ग - पृ० ६१
३: ' संसार के अन्याय को आजन्म करता चूर्ण मैं,
मात: ! ममता मोद से कर्तव्य करके पूर्ण मैं।'
- गान्धी गौरव - आठवां सर्ग - पृ० ४४
४: गान्धी गौरव - नवां सर्ग - पृ० ६२

' है शक्ति सत्याग्रह अमोघ, अजेय है, अविवाद है,
इस विश्व में विश्रुत रहा इसका महा जयनाद है ।
श्रीराम है, ध्रुव है, यही निर्भय हठी प्रह्लाद है,
सुख, शान्ति और स्वतन्त्रता, सब सत्य - शक्ति - प्रसाद है ।'[1]

समानाधिकार की अनुज्ञापना :

गान्धीजी ने नारी और पुरुष को समान रूप से अधिकार देने और छूत - अछूत को मिटाने पर जोर दिया । उच्च- नीच, धनी - निर्धनी के भाव को त्यागकर सब 'एक' हो जाना चाहिए । यही उनका मत था ।[2] कवि ने इस काव्य में दो जगहों पर गान्धीवाद का रूप - चित्रण किया है जिसमें उनके चरित्र का आभास मिलता है ।[3]

खण्डकाव्यत्व :

गान्धी गौरव, गान्धीजी और गान्धीवाद से प्रभावित सामान्य कोटि का खण्डकाव्य है । इसमें गान्धीजी के जीवन के राजनीतिक पक्ष को महत्व दिया गया है और उनके राजनीतिक कार्य- कलापों का चित्रण भी है । इसके द्वारा उनके चरित्र पर प्रकाश डाला गया है । मगर ये सब अत्यंत संक्षिप्त रूप में ही प्रस्तुत किये गये हैं । इनके वर्णन में इतनी संक्षिप्तता आ गयी है कि दो- तीन पंक्तियों में इन बातों को कहा गया है । सच कहें तो इस काव्य में उपर्युक्त बातों की केवल सूचना दी गयी है, ऐसा प्रतीत होता है ।

गान्धी-गौरव के खण्डकाव्यत्व को जानने के लिए उसे उसके लक्षणों की कसौटी पर कसना होगा । इस काव्य में गान्धीजी का जीवन चित्रित हुआ है; विशेष रूप से जीवन का राजनीतिक पक्ष प्रस्तुत हुआ है जो उनके जीवन का एक प्रमुख पक्ष है । इसकी कथावस्तु में आदि मध्य और अन्त उपस्थित हैं । इसका कथानक

- -

१: गान्धी गौरव - नवां सर्ग - पृ० ५५ २: वही० - दसवां सर्ग - पृ० ७६
३: वही - छठा सर्ग - पृ० २६, नवां सर्ग - पृ० ६१

सानुबद्ध है। यह बारह सर्ग का खण्डकाव्य है और प्रत्येक सर्ग का पृथक नामकरण नहीं हुआ है। इसकी रचना में एक ही छन्द का प्रयोग हुआ है और अन्त में छन्द-परिवर्तन नहीं है। रसाभिव्यंजना पर कोई विशेष बल तो कवि ने नहीं दिया। तथापि प्रासंगिक रूप में कई एक रसों की झलक इसमें आई है जैसे जहां कवि ने अत्याचार और नर- हत्या का वर्णन किया है वहां करुण रस का प्रतिपादन किया है। गान्धीजी की माताजी के उपदेश के प्रसंग पर वात्सल्य रस उमड़ पड़ा है। गान्धीजी की मृत्यु के प्रसंग पर तो शांत रस का निर्वाह हुआ है। खण्डकाव्य के लिए मंगलाचरण, छन्द- परिवर्तन, सर्ग के अन्त में अगली कथा की सूचना आदि की आवश्यकता न रहने के कारण इनका निर्वाह यहां नहीं किया गया है।

२- पथिक :

यह काव्य वस्तुतः गांधीजी को ही लक्ष्य करके लिखा गया है। इसमें कवि ने देश की तत्कालीन राजनीतिक समस्याओं का समाधान गांधीजीवादी दृष्टि से पाने का प्रयास किया गया है। इसमें राजा और प्रजा के बीच में - साम्राज्यवाद और साम्यवाद के बीच में द्वन्द्व का चित्रण किया गया है। अन्त में कवि गान्धीवाद के समर्थन से सर्वत्र समानता दिखाई है। इस काव्य का नायक है पथिक। पथिक शब्द गांधीजी के लिए प्रयुक्त हुआ है। यहां गांधीजी मार्गदर्शक के रूप में चित्रित किये गये हैं। अतः इस शब्द का प्रयोग अत्यन्त उचित ही हुआ है।

काव्य के प्रारंभ में कवि ने पथिक का रूप- चित्रण बहुत सुन्दरता के साथ हुआ [किया] है। पथिक समुद्र के विशाल तटों पर बड़ी ही स्वच्छन्दता के साथ प्रकृति की विभूति के विभिन्न नाटक देख रहे थे और उनका हृदय भी समुद्र सा विशाल था।

पथिक को बचपन से ही देश की करुण एवं विकृत दशा का ज्ञान था इस लिए वे इस संसार से ऊब गये और सत्य एवं समाधान की खोज में निकल पड़े। इस जगत को देखकर उन्हें यही कहना पड़ा कि जिस संसार में लोग स्वार्थी बनते हैं और

- -

१: पथिक - पहला सर्ग - पृ० १७

अन्यायी को प्यार करते हैं। वैसे ही स्वार्थता के मूर्छित होने से अपने भाई को भी शत्रु मानने लगते हैं, वहां शान्ति और कल्याण कैसे हो सकती है।[१] इसी दृष्टि से पथिक ने संसार को पाप का कारखाना कहा है।[२]

पथिक का चरित्र- चित्रण :

पथिक के चारित्रिक गुणों का यों उद्‌घाटन किया गया है। सद्‌गुण, साहस, सत्य, शूरता, लोकोत्तर उत्तमता। पौरुष, प्रतिभा, प्रीति, प्राण, प्रभुत - पर- पालन क्षमता। क्षमा, शांति, करुणा, उदारता, श्रद्धा, भक्ति, विनय। सज्जनता, शुचिता, मनस्विता, मेधा, मन - निर्मलता।[३]

उनका चरित्र इतना शुद्ध एवं विशाल इसलिए हुआ कि उन्होंने एक साधु से कर्तव्य का उपदेश सुना और साधु ने उन्हें यही बताया था कि लोक- कल्याण में निरत होकर जीवन को सफल बनाओ। -

' यह संसार मनुष्य के लिए एक परीक्षा स्थल है।

-- -- --

सदा लोक- कल्याण- निरत हो जीवन सफल बनाओ।'[४]

मुनि के उपदेश ने पथिक के मन में बड़ा परिवर्तन डाल दिया जो पहले इस दु:खपूर्ण संसार से अलग रहना चाहते थे। पथिक का हृदय - परिवर्तन हुआ और उन्होंने संसार के कल्याण के लिए सेवा- निरत होने का दृढ़- निश्चय किया।

' एक बार संपूर्ण देश का भ्रमण प्रथम मैं कर लूं।
सुख- दुख का सब हेतु समझकर ध्येय ध्यान में धर लूं।
तब मैं करूं कर्मपथ - निश्चित जो ध्रुव सत्य - विहित हो।
धर्म- नीति के संरक्षण से जीव मात्र का हित हो।'[५]

- -

१: पथिक - पहला सर्ग - पृ० २५ २: वही० - पृ० २५ - २६

३: पथिक - दूसरा सर्ग - पृ० १२ ४: वही० पृ० १४

५: पथिक - तीसरा सर्ग - पृ० १६

उन्होंने देश देश का भ्रमण किया और अमुक देश की परिस्थितियों को देखकर वे अत्यन्त कुण्ठित हुए।[१] पथिक में कर्तव्यनिष्ठा थी; वे एक पल भी व्यर्थ नहीं गंवाते थे। वे सब का आशा - केन्द्र रहे थे। पथिक को अपने काम- काज में सहायकता देने के लिए जनता ने अपने तन- मन- धन को अर्पित किया था।[२] पथिक ने इसी में संसार का कल्याण माना और जनता को समझाया।-

' दुखदायी शासन से अपनी सारी शक्ति हटा लो।
निज सुख दुख का अपने ऊपर सारा भार संभालो।
अपना शासन आप करो तुम यही शान्ति है सुख है।
पराधीनता से बढ़ जग में नहीं दूसरा दुख है।'[३]

न्याय, धर्म और कर्म पर बल देते हुए पथिक ने बताया कि धर्म और कर्म का उचित निर्वाह हो।

' जब तक धर्म, तभी तक सुख है, सुख में कर्म न भूलो।
कर्म - भूमि में न्याय- मार्ग पर छाया बनकर फूलो।
जहां स्वतन्त्र विचार न बदलें मन से आकर मुख में।
बने न बाधक शक्ति मान जन जहां निबल के सुख में।।'[४]

पथिक ने जनता को आत्म-बलिदान का सन्देश भी सुनाया। देश - सेवा के लिए अपने को अर्पण कर देना प्रत्येक- देशवासी का का कर्तव्य माना जाता है। अपने मान- अभिमान को कदापि नष्ट नहीं करना चाहिए।[५]

' वे बोलते थे कि शत्रु को भी मित्र के समान
समझने की क्षमता जनता में रखनी चाहिए। -
' रक्तपात करना पशुता है, कायरता है मन की।
अरि को वश करना चरित्र से शोभा है सज्जन की।'[६]

यहां अहिंसा की ओर भी संकेत किया गया है।

- -

१: पथिक - तीसरा सर्ग - पृ० ४४
२: वही० - तीसरा सर्ग - पृ० ४८
३: वही० - तीसरा सर्ग - पृ० ५०
४: वही० पृ० ५०
५: वही० - चौथा सर्ग - पृ० ६१
६: वही - पृ. ६२.

पथिक बड़े ही सत्यव्रती थे। उन्होंने सत्य की महिमा गायी और उससे विचलित न होना परम आवश्यक बताया है -

' पर - पीड़न में विमुख और सम्मुख पर - हित - साधन में।
पर- निन्दा में मूक बधिर रहना नित निर्मल मन में।
आत्मा का अपमान न करना सत्य मार्ग पर चलना।
है वह सत्य, तुम्हें न उचित है छल से कभी निकलना। '[1]

जिस प्रकार पथिक के चरित्र का प्रभाव जनता पर पड़ा उसी प्रकार उनके उपदेशों का प्रभाव भी जन पर पड़ा। फलतः प्रजा- गण का हृदय- परिवर्तन हुआ और यहां तक कि उन्होंने राजा की सेवा करना भी छोड़ दिया -

' राज - कर्मचारी - गण ऐसे हुए विरक्त नृपति से।
तथा उन्होंने एक साथ दासत्व सर्वसम्मति से।
किसी अदृश्य शक्ति से प्रेरित दासी, दास, सिपाही।
नृप की सेवा छो गये निज - निज घर के राही। '[2]

' पथिक ' के अन्तर्गत राजनीतिक कार्यों का भी उल्लेख किया गया है। देश की प्रजा ने राजा को सपरिवार देश से भगा दिया और देश - शासन को अपने हाथ में ले लिया।[3] यह वैसा ही है जिस प्रकार देश के शासन को ईस्ट इंडिया कंपनी के हाथों से छीनकर इंडियन नेशनल कांग्रेस के हाथों में सौंपा गया था। प्रजा ने इसके लिए जो आन्दोलन किया था वह अहिंसात्मक ही था। प्रजा पर पथिक के व्यक्तित्व और प्रवृत्तियों का इतना पड़ा कि उन्होंने उनकी मृत्यु के पश्चात् उनकी एक प्रतिमा बनाकर मन्दिर में प्रतिष्ठित किया। जिस प्रकार गांधी के निधन के पश्चात् गांधीजी की प्रतिमा संसार के विभिन्न राज्यों में प्रतिष्ठित पायी जाती है। उस युग के कवियों ने पथिक की जीवन- कथा को राग- ताल- लय युक्त गीत- सूत्रों में पिरो दिया और प्रजा उसे प्रतिदिन गाया करती थी। नर- नारी, बाल- बच्ची, युवा- युवती, बूढ़ा- बूढ़ी सब उनका कीर्तिगान करते थे। पथिक का प्रभाव देश पर इतना

- -

१: पथिक - चौथा सर्ग - पृ० ६२ २: वही० - पांचवा सर्ग - पृ० ७०
३: वही० - पांचवा- पृ० ७१ ४: वही० - पांचवा सर्ग - पृ० ७३

अधिक पड़ा कि उनके तत्वोपदेशों ने संपूर्ण देश को राज- शासन की दासता से मुक्त कर दिया ।[१]

'पथिक' का अध्ययन करने से ऐसा अनुमान किया जा सकता है कि इस काव्य का नायक पथिक जो है, वह गान्धीजी ही है। पथिक के आदर्शवान जीवन के कर्म-पक्ष का चित्रण इस काव्य में हुआ है। काव्य के अन्य पात्र इनके जीवन से प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से प्रभावित हुए हैं। कवि ने पथिक शब्द से गांधीजी की ओर संकेत किया है। फिर भी उन्होंने संपूर्ण काव्य में कहीं भी पथिक को गांधीजी बनाने का प्रयास नहीं किया है। इसका कारण शायद यही होगा कि 'पथिक' की कथा एकदम काल्पनिक है और इसलिए उन्होंने अपने किसी भी पात्र को कोई विशेष नाम नहीं दिया है। 'पथिक' की बात पाठकों के लिए जिज्ञासावश छोड़ दी है। 'पथिक' पूर्णतः गान्धीजी के सिद्धान्तों से प्रभावित है। उपर्युक्त अनुमान इस दृष्टान्त पर कर सकते हैं कि पथिक के जीवन और कर्तव्य के अणु - अणु में गान्धीवाद का समर्थन दिखायी पड़ता है। 'पथिक' में गांधीजी का सा सादगी-पूर्ण जीवन- सरलता, चारित्रिक गुण, देश- प्रेम, त्याग- मनोवृत्ति, अहिंसा, करुणा आदि विद्यमान हैं। वे बड़े तत्वोपदेशक थे और उनके उपदेश समाज में अत्यन्त मान्य थे। पथिक की पत्नी भी आत्म- बलिदान की महत्ता जानती थी। जब राजा ने पथिक की हत्या के लिए हालाहल विष का प्याला उनके सामने रखा, जिसे पीकर वे मर सकते थे, तब उसे देखकर उनकी पत्नी ने दौड़ आकर वह विष पी लिया और इस प्रकार अपने को बलिदान कर दिया। इस बलिदान ने नारी - वर्ग में अत्यन्त उत्साह भरा दिया और उनमें भी बलिदान की भावना उत्पन्न हुई।

देश की सुधारवादी दृष्टि से रचित काव्य होने के कारण 'पथिक' एक गान्धीवादी खण्डकाव्य है। इसके पात्र काल्पनिक होने पर भी, गांधीवाद से खूब प्रभावित है और उसकी अभिव्यक्ति में समर्थ हुए हैं। इस काव्य के 'साधु' पर भी गान्धीवादी आदर्शों का प्रभाव विद्यमान है। साधु ने ही पलायनवादी पथिक का हृदय- परिवर्तन किया था और उन्हें कर्मवादी बनाया था। साधु को पथिक ही देश- सुधार के लिए योग्य जान पड़ा और उसकी संभावना का समर्थन भी किया।[२]

- -

१: पथिक - पांचवा सर्ग - पृ० ७७   २: वही० - चौथा सर्ग - पृ० ६२

कवि ने इस काव्य में राजनीतिक आन्दोलन का चित्र चित्रण करके उसमें हमारे देश के स्वाधीनता - आन्दोलन को चित्रित किया है। इसमें जिस अत्याचारी एवं निष्ठुर राजा का प्रतिपादन किया गया है, वह अंग्रेज-शासन का प्रतीक है। ` पथिक ` काव्य के तीसरे सर्ग में कवि ने देश की जिस दशा का वर्णन किया है, वह पराधीन भारत की दुर्दशा ही है। इस काव्य की रचना भी तब हुई जब भारत परतन्त्र था।

निष्कर्ष के रूप में यही कहा जा सकता है कि यह काव्य गांधीवाद की भाव-भूमि पर निर्मित हुआ है। पथिक के राष्ट्रीय जीवन के प्रत्येक कदम पर गान्धीजी के जीवन से समता दिखाई पड़ती है। यहां सत्य, कर्म, धर्म, अहिंसा, शत्रु - मित्र - भावना, असहयोग आन्दोलन, आत्म-बलिदान आदि गान्धीवाद के विविध आदर्शों का सुन्दर एवं सोद्देश्य चित्रण किया गया है।

२- किसान :

इसमें गुप्तजी ने एक किसान युवक की जीवनी द्वारा गान्धीवादी विचारधारा का विवेचन प्रस्तुत किया है। उसकी कथा को कवि ने आठ खण्डों में विभाजित किया है और वे सब बहुत छोटे हैं। घटनाओं के आधार पर ही खण्डों का नामकरण किया गया है। इसमें कवि ने एक किसान की दारुण जीवन- कथा प्रस्तुत की है। यह काव्य किसान युवक कल्लू और उसकी पत्नी कुलवन्ती की जीवन-कथा है। दोनों का जीवन आरंभ में अत्यंत सुखमय था। मगर बाद में उनके जीवन पर असंतोष और अत्याचार के काले बादल मंडराने लगे। पहले उसकी पत्नी की मृत्यु हो गयी है और बाद में उसकी भी।

कवि ने इस किसान युवक के जीवन के विविध अंशों का चित्रण करके उस समय किसानों पर होने वाले अन्यायों और अनीतियों का प्रतिपादन किया है। युवक कल्लू को जमींदार, पुलीस, अनावृष्टि, महामारी आदि ने घेर लिया जिससे उसका जीवन बरबाद हो गया। इतना ही नहीं, उसे कुली बनाया गया और फिजी में भेजा गया जहां मजदूरों के प्रति पाशविक व्यवहार किया जाता था।

देश के प्राकृतिक, राजनीतिक, सामाजिक एवं व्यावहारिक वातावरण ने उसे अनेक कष्ट पहुंचाये ।

कल्लू सारे कष्टों - दुष्टों को स्वयं झेलते हुए अपने भाग्य को कोसते हुए दूसरों के सामने सदा मुस्काते रहने वाला एक आदर्श किसान था । वह स्वस्थ, सशक्त, परिश्रमी, सरल स्वभाव का वीर किसान था । उसमें जातीय गुणों की विशेषता विद्यमान थी । उसमें वीरता की अप्रतिहत प्रतिमा थी, जो पहले किसान था, बाद में मजदूर, सैनिक आदि हुआ । जातीय गुणों के रहने तथा कवि के गांधीवादी होने के कारण उस पर गान्धीवाद का प्रभाव पड़ा है । कल्लू के चरित्र चित्रण के द्वारा यह बात स्पष्ट होती है ।

चरित्र - चित्रण :

कल्लू आर्थिक दृष्टि से देखने पर निर्लोभी एवं मितव्ययी था । धन के प्रति आसक्ति और नर- हत्या के बारे में कल्लू ने बताया है कि धन - संपत्ति पर मानव अपने को न्योछावर करता है और उसको पाने के लिए जन- जन की हत्या तक की जाती है ।

> ' धन जो हो, परन्तु क्यों उस पर मानव ऐसे मरते हैं ?
> क्यों वे उसके लिए निरन्तर पुण्य - पाप सब करते हैं ?
>
> — — —
>
> धन से धन बढ़ गया कि जिससे धन ही धन को मार रहा ।।
> महाजनों को हम लोगों का है धन कष्ट- विचार महा ।। '[1]

कल्लू की दान-शीलता तथा पर - सेवा - भावना इन पंक्तियों में निरूपित हुई है-

> ' प्रभुवर धन के लिए किसी का मैं न कभी अपकार करूं,
> धन ही मिले मुझे तो उससे जनता का उपकार करूं । '[2]

१: किसान - गुप्तजी - पृ० १२
२: वही० - पृ० १२

अपने जीवन की सारी सुख- सुविधाएं नष्ट होने पर कल्लु अत्यंत दुखी हुआ और यहां तक कि उसने लूट- मार करने का निश्चय किया। तब उसकी पत्नी ने यों कह कर उसका हृदय- परिवर्तन कर डाला -

' न लो लूट का नाम, पाप है पाप ही,
फल पावेंगे सभी किये का आप ही।
छोड़ो बुरे विचार पाप- प्रतिकार के,
न्यायालय हैं खुले हुए सरकार के। '[1]

विदेशी लोगों के द्वारा भारतीय जनता पर किये जाने वाले अत्याचारों पर कल्लु ने अपना दु:ख प्रकट किया है। वैसा अनुभव महात्मा गांधीजी को दक्षिण अफ्रीका में हुआ था।[2] कल्लु में अपने स्वदेश भारत के प्रति अपार श्रद्धा और असीम प्रेम था। वह अपने प्यारे देश को भूल नहीं सकता था जिसमें जन्म लेकर अनेक कष्ट सहता था। विदेश में रहते वक्त भी वह अपनी प्राण- तुल्य भारत- भूमि की प्रशंसा करता था। अब तो वह भारत लौटने वाला है और उसमें भारत और आप के बीच में एकत्व तथा अपनत्व का भाव भर उठा है -

' तू मेरा है, यह भाव रहेगा मन में,
जब तक हैं मेरे प्राण रहेंगे तन में। '[3]

बाद में कल्लु ने प्रथम महायुद्ध में भाग लिया और वीरगति पायी, फलत: उसने विक्टोरिया क्रास प्राप्त किया। इस काव्य के अंत में उसने भारतीय जनता को यह संदेश दिया है =

' भारतीय मेरे बांधव हैं, घर है मेरा सारा देश,
बस यह मेरा आत्म- चरित ही है मेरा अंतिम संदेश।'[4]

- -

१: किसान - गुप्तजी - पृ० २६
२: अब भी गांधी - कैसे सुत की जननी भारत- माता,
तुझ से यह दुर्दशा निरन्तर कैसे देखा जाता ?
देकर अन्न दूसरों को भी मां, तू पालन करती,
पर तेरी संतति उसके हित परदेशों में मरती।' - वही० -पृ० ३८
३: वही० पृ० ४४ ४: वही० पृ० ४७

। तौर पर जो कुछ होने वाला है, उसमें सहर्ष अपना बलिदान करना वह था। उसकी यह भी आशा थी कि उसके साथ देश के समस्त दुःखों का भी हो जायगा। अतः उसने कहा है -" मेरे साथ देश के सारे दुःखों का भी हो न।"[१] कल्लू ईश्वर का अनन्य विश्वासी था और सदा वह राम- नाम की में मग्न रहता था। वह राम और कृष्ण का भक्त था।

कुलवन्ती का चरित्र- चित्रण :

कुलवन्ती पर भी गांधीवाद का हलका सा प्रभाव पड़ा है। उसमें अपने स्वदेश के प्रति प्रेम और श्रद्धा है। उसकी मृत्यु स्वदेश में न होने के कारण उसने अपने मृतदेह को स्वदेश ले जाने का अनुरोध किया है -

" हो बस अब मैं चली सदा को मन में मत घबराना,
मेरे कुछ ले जा सको तुम तो, भारत की ले जाना।"[१]

जब कल्लू ने उस अत्याचारी की हत्या करने की बात कही जिसने कुलवन्ती को मारा था, तब उसने उसे हिंसा का बदला लेने से रोकते हुए यों कहा -

" नादानी रहने दो,
मेरा ही शोणित मुझ के आसपास बहने दो।"[२]

उसकी आशा तो यही कि कुली प्रथा का अंत भी उसकी मृत्यु से हो जाय -

" यही नहीं यह कुली - प्रथा भी उसमें बह जायगी।
भावी भारत में बस इसकी स्मृति ही रह जावेगी।"[३]

" किसान " एक समस्या- प्रधान खण्डकाव्य है जिसमें जीवन के विविध क्षेत्रों की विभिन्न समस्याओं का निरूपण किया गया है। देश की राजनीतिक, सामाजिक क्षेत्रों में समस्या ही समस्या है। मानव- जीवन प्रधानतः कृषक- जीवन की भिन्न भिन्न पहलुओं पर प्रकाश डाला गया है। ये सारी समस्याएं सुलझायी नहीं जातीं।

१: किसान - गुप्तजी - पृ० ४० २: वही० पृ० ४० ३: वही०-पृ०-४०

कुलवन्ती की मृत्यु से कुली - प्रथा की एकमात्र समस्या ही सुलझायी जाती है। उसके मरण के साथ कुली- प्रथा भी बंद हो जाती है। यहां कवि ने गांधीवादी विचारों का प्रतिपादन किया है। उन्होंने समस्याओं को सुलझाने के लिए उन्हें अपना नहीं, प्रत्युत उसके पात्रों के चरित्र- चित्रण के अवसर पर उनका उल्लेख किया है। कल्लू और कुलवन्ती के चरित्र पर गांधीवाद का प्रभाव खूब पड़ा है। कल्लू ने देश में शांति और समाधान की प्रतिष्ठा कराने की अभिलाषा प्रकट की है। अत: यह गांधीवाद से प्रभावित काव्य है।

इस काव्य की रचना सन् १९१५ में हुई है। इसमें कुली- प्रथा आदि का चित्रण देश के तत्कालीन वातावरण के प्रभाव के कारण आया है। डा० कमलाकांत पाठक जी का कथन है - ` सन् १९१५ की बंबई कांग्रेस के दसवें प्रस्ताव में अफ्रीका में प्रचलित उन कानूनों के लिए जो प्रवासी भारतीयों से संबंध रखते थे, दु:ख प्रकट किया गया था।`[1] इसी कारण से ही गुप्तजी ने प्रस्तुत काव्य की रचना एक किसान युवक की दु:ख- कथा के आधार पर की है। अत: इसमें आद्यन्त करुण रस प्रवाहित है।

इस काव्य में किसानों की दुर्दशा, फिजी की कुली- प्रथा और महायुद्ध में सैनिकों का हताहत होना इस प्रकार की वस्तु-स्थितियों का चित्रण है। निम्न तथा पीड़ित वर्ग की ओर इस काव्य में कवि अपनी दृष्टि डालकर एक नवीनता लाते हैं। इसके दो कारण थे। - मानवतावाद की प्रतिष्ठा और शोषण-पद्धति की समाप्ति जिसका आदेश गांधीजी ने दिया था।

` `किसान ` काव्य शीर्षक एक खास वर्ग पर रखा गया है। इसके नायक के आधार पर ही काव्य का नामकरण हुआ है। इस कथा का विभिन्न शीर्षकों द्वारा सर्ग - विभाजन किया गया है। इस प्रकार कवि ने ` किसान ` काव्य की रचना करके आधुनिक युग के कवि- गुरुओं की मशा निम्न- जाति की जनता के जीवन की ओर आकर्षित करने का प्रयास किया है।

- -

१: मैथिलीशरण गुप्त : व्यक्ति और काव्य - डा० कमलाकांत पाठक, - पृ० १७६

- कांग्रेस का इतिहास, भाग २ - पृ० १०१

४- अजित :

गुप्तजी ने सन् १९४१ में अपने कारावास के स्मरण के रूप में 'अजित' काव्य की रचना की। इसका प्रकाशन सन् १९४६ में हुआ। यह तो पंद्रह परिच्छेदों का लघुकाव्य है जिसमें अपने युग की वास्तविकता का यथार्थ चित्रण किया गया है। 'अजित' नामक इस काव्य के नायक के द्वारा अपनी आत्मकथात्मक शैली में इसे लिखा गया है। उन्होंने जेल- जीवन के वास्तविक स्वरूप का उद्घाटन किया और जेल- अधिकारियों के द्वारा की जाने वाली आतंकपूर्ण प्रवृत्तियों का आँखों देखा वर्णन किया है।

इस काव्य का नायक ही अजित है। आरंभ में वह गांधीवाद, हिंदु - मुस्लिम एकता, मार्क्सवाद आदि पर ऊहापोह करता था। लेकिन धीरे-धीरे इनके बारे में वह अधिकाधिक सोचने- विचारने लगा और बाद में वह गांधीवादी बन गया। कवि ने इस काव्य की रचना करने का कारण बताते हुए कहा है - 'मेरे एक गुरुजन मुझे अपना प्रिय पुराण- पंथ छोड़ नोचनी और दम्भियों के साथ न जाते देखकर चिंतित हुए थे। फिर भी कौतूहल मुझे खींच ही ले गया।'[1] यह कौतूहल दूसरा कोई न था, वह सचमुच सत्याग्रह और अहिंसा के प्रति की झुकाव ही था। यही इस काव्य के निर्माण के मूल में है।

इस कारण अजित पर गांधीवाद का प्रभाव खूब पड़ा। उनका उद्देश्य भी अपने को अथवा अजित को मानवीय गुणों से युक्त बनाना रहा है। उनके उद्देश्य की सफलता तभी होती है जब अजित पूर्ण रूप से गांधीवादी बन जाता है। डा० पाठक जी ने कहा है - 'अजित की मानवता आतंकवादी नीति और पद्धति के प्रति विद्रोह करती है और यहीं से काव्योद्देश्य का स्पष्ट संकेत मिलता है।'[2] देश के शासित वर्गों की पाखण्ड और भयानक प्रवृत्तियों ने इसके मन को बदल डाला। उसमें भगवान के प्रति विश्वास पैदा हुआ; दीन दलितों के प्रति दु:खजन्य सहानुभूति प्रकट हुई और उनके उद्धार की चिंता फूट पड़ी।

- -

१: अजित - निवेदन - पृ० ३

२: मैथिलीशरण गुप्त: व्यक्ति और काव्य- - डा० पाठक - पृ० २२५

अजित का चरित्र- चित्रण :

अजित पर गांधीवाद का प्रभाव स्पष्ट पड़ा है। देश की दयनीय एवं भीषण परिस्थितियों को निरखकर अजित के मन में दुखी और निरालंब जनता के प्रति सहानुभूति उत्पन्न हुई और उसने उनका उद्धार करके उन्हें देवत्व प्रदान करना चाहा -

' यदि मेरा नर आज क्यों नारायण होता,
देश न सकता कभी किसी को यह यों रोता।'[1]

देश की उन्नति के लिए वह सब कुछ करने को तैयार था। वह बड़ा सहिष्णु था और वह देश के लिए कुछ कर सकता तो बस यही कर सकता था -

' मरना है तो यहां मृत्यु भी भोग सकूंगा,
मैं ने ऐसा न तो किया कुछ न मैं करूंगा।'[2]

वह भगवान रामचन्द्रजी का अनन्य भक्त था, वह उन्हें अपना रक्षक मानता था। -

' कोई हो य न हो, बसे रहे बस राम हमारा
रक्षित उसके हाथ उचित परिणाम हमारा।'[3]

परतंत्रता के विरुद्ध विद्रोह करने में वह कोई दोष नहीं मानता। वह तो स्वतंत्रता की लड़ाई है जो अहिंसक और शांत स्वरूप है।[3] अजित ने गांधीजी द्वारा की गयी गो-हत्या की समाप्ति की प्रशंसा की है - ' बापू ने गो का कष्ट हरा विष शोक मिटाकर।' (अजित)

- -

१: अजित - गुप्तजी - पृ० १६
२: अजित- गुप्तजी - पृ० २६
३: वही० - पृ० ३५
४: जो हो, मैं सम्मिलित हो गया, क्रांति समिति में,
मुक्ति हमारी किसी अन्य शासन की क्षति में
दस्यु विदेशी कहे हठी चाहे हत्यारा,
हम को अपना देश- धर्म प्राणों से प्यारा।' -वही० पृ० ४२

उसमें आत्मबलिदान की भावना निहित है। -

' भर दे, अपना अभय भाव हम सब में भर दे ,
मैं क्या मांगूं , मुझे आत्म-बलि का अवसर दे । '[१]

भारत में जब रौलट एक्ट पास हुआ तब जनता और भी वंचित हुई और उन्हें बड़ा कष्ट सहना पड़ा। फिर भी वे जन अपनी दृढ़ता पर अटल रहीं-

' रहे अहिंसक और अनाकुल विद्रोही दल ,
न्यायोचित था जिन्हें सहज स्वत्वों का बल । '[२]

अजित जातीय एकता का समर्थक एवं आग्रही था। अतः उसने कहा है - '

' वर्ण वर्ण के लोग जोड़ दल जुड़ा हमारा,
पर सब में था एक अनोखा भाई-चारा । '[३]

अजित ने स्वातन्त्र्य , स्वावलंब, समत्वपूर्ण राज्य की प्रतिष्ठा की कामना की है।[४] यहां अजित की स्वराज्य- भावना गांधीजी की राम- राज्य भावना से मिलती जुलती है। गांधीजी की वन्दना आज सारी जनता करती है। -

' दलितों को बल मिला, दम्भ का मद टूटा है ,
कोटि जनों का कष्ट आज उनमें फूटा है । '[५]

अजित को गांधीजी की अहिंसा में विश्वास है और उसकी महत्ता का प्रतिपादन करता है।-

' स्वयं अहिंसा- धर्म मानता हूं मैं दादा !
पर होती है एक धर्म की भी मर्यादा । '[६]

१: अजित - गुप्तजी - पृ० ४५   २: वही० - पृ० ५६

३: वही० पृ० ८७

४: ' साम्य राज्य ही इष्ट, जहाँ साम्राज्य भ्रम है ,
सच्चा वही स्वराज्य और सब स्वाम्य भ्रम है । '
- अजित - गुप्तजी - पृ० ६१

५: वही० - पृ० १००   ६: वही० पृ० १०१

अजित धन-सम्पत्ति जमाकर रखना नहीं चाहता, वह उसे पीड़ितों को सहायता में खर्च करना चाहता है। इसके संबंध में उसका कथन यही है -

' उत्ताधिक दे गया मुझे पापी पन्थी धन,
मैं रचनात्मक कार्य करूंगा लेकर वह धन ।
सौ भागों में बांट उसे मैं सौ कर दूंगा,
सौ भागियों को यों समान स्वामी कर दूंगा । '[१]

अजित के हृदय - परिवर्तन में गांधीजी के हृदय - परिवर्तन के विचार - तत्व का काम चला है। गान्धीजी के प्रभाव से ही यह परिवर्तन हुआ है -

' मत- परिवर्तन नहीं, - हृदय - परिवर्तन अब तो ,
अधिकारी भी नहीं कदाचित कर सकते हैं । '[२]

इसके फल-स्वरूप उसकी हिंसा - वृत्ति भी समाप्त हो गयी । -

' आज मारने नहीं, जा रहा हूं मैं मरने,
कहीं कीच जो बने, उसे धोने से करने । '[३]

अन्त में वह सत्य का आश्रय लेकर भव के कल्याणार्थ चल पड़ता है -

' जाता हूं मैं आज सत्य का आश्रय लेकर,
अपनी भव- निधि रक्षणार्थ शिव विधि को देकर । '[४]

कवि ने अपने उद्देश्य की पूर्ति में सफलता पायी है। एक ओर उन्होंने उस समय के शोषण वातावरण का चित्रण किया है तो दूसरी ओर अजित को गांधीवादी बनाने का प्रयास किया है। प्रस्तुत काव्य वस्तुतः हृदय- परिवर्तन वादी विचारों पर लिखित जान पड़ता है क्योंकि अजित का चरित्र आद्यंत परिवर्तित होता रहता है। फलतः वह अंत में पक्का गांधीवादी बनता है। परिस्थितिवश उसका

- -

१: अजित - गुप्त जी - पृ० ११२ २: वही० - पृ० - ११४
३: वही० - पृ० १२० ४: वही० -पृ० - १२१

मन भगवान ही बदलता रहता है और आखिर देश- सेवक बनकर राष्ट्र- सेवा के लिए कर्म - क्षेत्र में उतरता है । गांधीजी के भी बचपन में चोरी करने और सिगरेट पीने की आदतों का परिवर्तन होने और अंत में महापुरुष बनने की बात यहां स्मरणीय है। इस काव्य की एक विशेषता यह है कि गांधीवाद के एक दार्शनिक तत्व हृदय- परिवर्तन पर लिखित प्रथम खण्डकाव्य है यह । इसमें अन्य तत्वों का भी समर्थन हुआ है, लेकिन मुख्यतया इस तत्व पर अधिक विचार किया गया है ।

५- अनाथ :

यह काव्य भी सियाराम शरण जी की द्विवेदी युगीन कृति है । यह एक लघु- आख्यानक काव्य है । इसमें कवि ने एक दम्पति- की जीवन- कथा के द्वारा जिनके दो पुत्र भी थे, उस काल की सामाजिक तथा राजनीतिक विलक्षण, अव्यवस्थित परिस्थितियों का सुंदर चित्रण किया है । साथ ही इस दम्पति के जीवन का अत्यंत मार्मिक तथा हृदय- वेधी वर्णन भी हुआ है । यहां कवि अत्यंत स्निग्ध बन पड़ते हैं और उनके मन की वेदना की गहराई यहां व्यक्त हुई है ।

चरित्र - चित्रण :

इस काव्य का नायक मोहन नामक युवक है और यमुना उसकी पत्नी है । मोहन पर गांधीवाद का प्रभाव हुआ पड़ा है और उसको गांधीवादी पात्र के रूप में चित्रित किया गया है । मोहन बड़ा ईश्वर - भक्त था । उसका ज्येष्ठ पुत्र मुरलीधर जब रुग्णावस्था में पड़ा था, तब उसकी मदद करने वाला कोई नहीं था । वह अपने दुर्भाग्य को कोसता था और खूब रोता था । उसकी मनोवेदना की चरम- अवस्था ` यमुना के युग- युग्म हो गये युग- निर्झर से ` में दर्शनीय है । उसने भगवान का शरण मांगते हुए यों प्रार्थना की । -

` हम हैं यहां, हे राम यहां दुख ही सहने को ?
नहीं दीखता और कहीं जग में रहने को ,
नहीं चाहिए द्रव्य हमें या ऊंचे घर ही
दो हमको भगवान अन्न बस मुट्ठी भर ही । `[1]

- -

१: अनाथ - सियारामशरण गुप्त - पृ० ८

मोहन ने घर की अवस्था से व्याकुल होकर भिक्षा मांगने का निश्चय किया और वह घर से चल पड़ा । लेकिन उस काल में लोग इतने दयामय नहीं थे जो उसकी मदद करें । उसने अपने पास केवल एक ही लोटे को, जो शेष बचा था, बेचने का प्रयास किया, मगर वह निराश होकर घर लौटा । ऐसे अवसर पर भगवान ने उस पर कृपा की ।[१] यहां गान्धीजी की ' निर्बल के बल राम ' वाली उक्ति चरितार्थ हुई है ।

मोहन को चौकीदार ने बेगार जो दी उसे अस्वीकार करने पर अनेक लातें सहनी पड़ीं । फिर उसे पुलिस - थाने में कान्स्टेबल के लिए पंखा खींचने का काम दिया गया । कितनी पीड़ाएं उसे सहनी पड़ीं फिर भी उसके मन में कदापि प्रतिकार का भाव नहीं फूटा था । वह अपने अभाग्य पर दुखी होता था। -

' कर रहा रोष वह निज अभाग्य ही पर था । '[२]

उसे अपने तन की चिन्ता बिलकुल नहीं थी । अपना काम चलाता रहा । -

घर की चिन्ता से और भूख से मारे -
थे यद्यपि उसके अंग शिथिल - से सारे ।
वह सब प्रकार था विकल और अस्थिर भी,
पर डोर खींचने लगा शक्ति भर फिर भी । '[३]

गांधीजी भी ऐसे एक व्यक्ति थे जो अपने तन- मन, बन्धु- परिवार आदि की सुध बुध किये बिना जन- सेवा मात्र को अपना जीवन- लक्ष्य मानते थे । मोहन को भी गांधीजी के समान राम- नाम की पुकार से ही कुछ सांत्वना मिलती थी ।

' जब सभी भांति हो गया क्लान्त बेचार ;
तब राम- राम कर मिला उसे छुटकारा । '[४]

~~(हेतु:सौ तथा वाक्य मोहन के सामने वहीं एक प्रश्न उठाया । ४))~~

- -

१: ' जब मृत- प्राय - सा लौट चला वह घर को -
गया बचा हुआ तब बचा सिन्धु प्रभुवर को ?
लोटे के बदले पुन मिल गया उसको,
माना जीवन मिल गया फिर नया उसको । ' - अनाथ- पृ० १०
२- वही० पृ० १६ ३: वही० पृ० १७ ४: वही- पृ० १८

दु:खी तथा क्षीण जीवन के सामने यही एक प्रश्न उठता था ।[1]

इस काव्य में कवि ने दो ग्रामीण दम्पति के अत्यंत व्यथापूर्ण जीवन का बहुत ही मार्मिक एवं हृदय- स्पर्शी चित्र उपस्थित किया है । उस समय के निम्न वर्ग के लोग निराश्रय, निस्सहाय, निर्धन एवं लाचार थे तथा धनी लोग घमण्डी, अत्याचारी एवं निष्ठुर थे । एक ही सब देश की जनता होने पर भी वे आपस में झगड़ा करते थे, मारते- पीटते थे और हत्या- नाश करते थे । नारी के प्रति भी वे निष्ठुरता से बर्ताव करने में नहीं हिचकते थे ।

इस काव्य का नायक बड़ा गरीब होने पर भी बहुत ही शांत, साधु, सहृदय व्यक्ति था । उसके मन में दूसरों के प्रति दया का भाव निहित था । अत्यंत शांत स्वभाव के होने के कारण वह अपने शत्रुओं से भी प्रतिकार या प्रतिहिंसा लेना नहीं चाहता था । दूसरों को वेदना पहुंचाना उसे पसंद न था । वह अहिंसा की मूर्ति माना गया है । डा० बी० पट्टाभि सीतारामय्या का यह कथन यहां उचित जान पड़ता है क्योंकि अहिंसा के जो गुण यहां वर्णित हैं, उनका समावेश मोहन में पाया जाता है । " अहिंसा के सिद्धान्त का अन्तर्निहित भाव यह है कि कोई बदले की भावना नहीं होती, कोई क्षुब्ध होने की भावना नहीं होती, और कोई षड्यंत्र नहीं, कोई प्रतीकार नहीं, कोई संगठित युद्ध या गुप्त हत्या नहीं - एक शब्द में मनसा, वाचा, कर्मणा हिंसा नहीं होती और अंत तक क्रोध का सर्वथा अभाव होता है ।[2] वह हमेशा सत्य और अहिंसा के मार्ग पर चलने वाला था ।

कवि ने इस काव्य को गांधीवादी बनाने के लिए पृष्ठभूमि के रूप में इसमें राजनीतिक , सामाजिक तथा अन्य परिस्थितियों का वर्णन जो किया है उन पर

- -

१: अन्याय अत्याचार क्या यह बंद अब होगा नहीं,
क्या दूर भूतल से कभी, छल - छन्द यह होगा नहीं ?
जो एक मुट्ठी अन्न को था हाय ! तरसाया हमें ,
देकर सुधाधिक उचित था क्या नरक दिखलाना हमें ?

- अनाथ - पृ० २९

२: गान्धी और गान्धीवाद- डा० बी० पट्टाभि सीतारामैय्या - भाग १ -
- सियारामशरण गुप्त - व्यक्तित्व और कृतित्व - डा० शिवप्रसाद मिश्र -पृ० ८१

विचार करना अनुचित न होगा जिसको सुधारने के लिए गान्धीवाद की विवेचना की गयी है। उस समय की देशीय हालत का अत्यन्त करुणा-जनक चित्रण प्रस्तुत किया गया है, जैसे मोहन के रोगी बालक की दयनीय स्थिति का वर्णन देखिये -

' बड़े कष्ट से पड़ा हुआ है उस पर रोगी,
उसे देखकर हाय! वेदना किसे न होगी।
फटी हुई है एक लंगोटी उसके तन पर -
पीड़ा से छा रही विकलता है आनन पर।'[1]

उस रोगी की दशा अत्यन्त दीन हीन थी और यह स्पष्ट होता है कि वे अत्यन्त दरिद्र थे और उनकी सहायता करने वाला उस काल में कोई नहीं था -

' हड्डी हड्डी निकल रही है सारे तन की,
है नितान्त ही क्षीण ज्योति उसके जीवन की।
मच्छर भी, जो उसे काटते हैं आ आकर
जाते वे भी नहीं उड़ाये हाथ उठाकर।'[2]

मोहन की पत्नी यमुना ने स्वयं यही बताया है कि उस समय के लोगों में दीन-दुखियों के प्रति दया व सहानुभूति बिल्कुल नहीं थी।[3] नारी के प्रति निष्ठुर तथा निर्दय व्यवहार भी कहीं-कहीं होता था। ऐसी दशा का सुधार होना आवश्यक था और इसीलिए ही कवि ने गान्धीवाद का रास्ता बताया है। गान्धीजी की राय यह थी कि अन्यायी के प्रति हिंसा करना उसके साथ अपनी आध्यात्मिक एकता को भुला देना है।[4] इस उक्ति को मोहन ने अपने चरित्र के द्वारा सार्थक बनाया है। वह अपने जीवन में आपन्न अनाथ रहने पर भी किसी की हिंसा नहीं करना चाहता था। शीर्षक से ही मोहन की निस्सहायता का बोतन होता है।

- -

१: अनाथ - सि० गुप्त - पृ० ५ २: वही० पृ० ५

३: ' न था कोई ऐसा जन पास,
कि जो देता उसको आश्वास।' - अनाथ - सि० गुप्त - पृ० २४

४: सर्वोदय तत्व दर्शन - डा० गोपीनाथ धावन - पृ० ६२ - सियारामशरण गुप्त: व्यक्तित्व और कृतित्व - डा० शिवप्रसाद मिश्र - पृ० १०२

यह केवल चार सर्गों का खण्डकाव्य है। मोहन और यमुना की काल्पनिक जीवन- कथा को लेकर इसकी रचना हुई है। कल्पना - जगत से निकले कथा- पात्र होने पर भी कवि के उद्देश्य को भी पूर्णत: सफल बनाने में समर्थ हैं। अत: गांधीवाद का प्रतिपादन खूब हुआ है।

६- पंचवटी :

कवि ने रामायणीय कथा के आधार पर इस काव्य की रचना की है। इसमें राम- कथा की वनवास संबंधी घटनाएं कथा के रूप में वर्णित हुई हैं। इतना ही नहीं, उन्होंने लक्ष्मण द्वारा शूर्पणखा को विकलांग करने को भी अधिक महत्व दिया है। पंचवटी में राम लक्ष्मण और सीता समेत होकर सानन्द जीवन को बिताते थे, उसका सम्यक् चित्रण किया गया है।

इसके साथ कवि ने यहां गांधीवादी विचारों का प्रतिपादन भी किया है और इन्हें राम, लक्ष्मण और सीता आदि पात्रों द्वारा प्रकट करने का प्रयास हुआ है। तीनों ने अपने स्वावलम्बी जीवन के द्वारा मानवतावादी आदर्श प्रस्तुत किया है। पाप-पूर्ण कृत्यों का दूरीकरण तथा सात्विक कृत्यों का स्थिरीकरण कवि का उद्देश्य रहा है। दूसरे प्रकार की प्रवृत्तियों के प्रसंग पर गांधीवाद का विवेचन हुआ है।

गांधीवाद के उदाहरण :

लक्ष्मण स्वभाव से सर्व-हितैषी हैं और वह कहता है कि अगर रामचन्द्रजी लोक- सेवा में तल्लीन रहें तो भी उसे कोई दु:ख नहीं।

' कर विचार लोकोपकार का .
हमें न इससे होगा शोक।
पर अपना हित आप नहीं क्या
कर सकता है यह नर- लोक।'[१]

- -

१: पंचवटी - गुप्तजी - पृ० १०

अन्तिम कथन में स्वावलंबन का द्योतन है । लक्ष्मण के मन में पतितों के प्रति करुणा एवं श्रद्धा है, उन्हें वह अपना - तुल्य मानना चाहता है ।

'मैं मनुष्यता को सुरत्व की
जननी भी कह सकता हूं,
किंतु पतित को पशु कहना भी
कभी नहीं सह सकता हूं ।'[१]

उस का कथन है कि रामचन्द्रजी के वन- राज्य में भी शत्रुता में मित्रता का भाव दृश्य है।

'अहा ! आर्य के विपिन राज्य में
सुख-पूर्वक सब जीते हैं,
सिंह और मृग एक घाट पर
आकर पानी पीते हैं ।'[२]

यहां सिंह और मृग की मित्र- भावना में अहिंसा का द्योतन है । लक्ष्मण के इस कथन में उच्च- नीच की अभेद भावना व्यंजित है -

'गुह, निषाद, शबरों तक का मन
-- -- --
इन्हें समाज नीच कहता है,
पर हैं ये भी तो प्राणी ।
इन्हें भी मन और भाव है,
किन्तु नहीं वैसी वाणी ।'[३]

पंचवटी में राम, लक्ष्मण और जनक सीता तीनों एकदम स्वतंत्रतापूर्ण जीवन बिताते हैं । सीता के दैनिक कृत्यों में यह और अधिक प्रकट हुआ है -

- -

१- पंचवटी - गुप्तजी - पृ० १२
२: पंचवटी - गुप्तजी - पृ० १५
३: पंचवटी - गुप्तजी - पृ० १६

' अपने पौधों में जब भाभी
भर भर पानी देती है,
-- --
स्वावलंब की एक झलक पर
न्योछावर कुबेर का कोष । '[१]

लक्ष्मण धर्म- परायण व्यक्ति है। अतः वह विवाहित होने पर भी पर नारी से बातचीत नहीं करना चाहता-

' पर मैं ही यदि परनारी से
पहले संभाषण करता,
तो छिन जाती आज कदाचित्
पुरुषों की सुधर्मपरता । '[२]

लक्ष्मण सत्य के नाम पर असत्य, वंचना, छल, धोखा आदि किन्हीं का कुप्रभाव जमाना नहीं चाहता है। शूर्पणखा और लक्ष्मण की बातचीत से यह स्पष्ट हो जाता है। उसके आत्म-विश्वास, अकलुष मनो-भावना, सुदृढ़ता आदि व्यक्त होती हैं।

रामचन्द्र जी एक-पत्नीव्रत का पालन करने वाले हैं। अतः वे यों कहते हैं -

' गृहत्याग करके भी वन में
सपत्नीक मैं रहता हूं। '[३]

रामचन्द्रजी भी अपनी वीरता का परिचय यों देते हैं -

' यह सत्य है,
सुख- दुख सब हैं समयाधीन,
सुख में कभी न गर्वित होवे
और न दुख में होवे दीन ।
-- --
जब वे आ जावें तब उनसे
डटकर हुए समर ठानें । '[४]

१: पंचवटी - पृ० १७ २: वही०-पृ० २४ ३: वही०पृ० ५४ ४: वही०पृ० ६५

लक्ष्मण ने भी अपनी वीरता का परिचय दिया है -

' नहीं विघ्न -बाधाओं को हम
स्वयं बुलाने जाते हैं,
फिर भी वे यदि आ जावें तो
कभी नहीं घबराते हैं।
-- --
उनसे वही डरें कच्ची हो
जिनकी शिक्षा दीक्षाएं। '[1]

सीता सात्विक से युक्त जीवन का समर्थन करती है। उस विभव- पूर्ण जीवन का तिरस्कार करती है। दूसरों को तंग करने की मनोवृत्ति का विरोध करती है।

' नहीं चाहिए हमें विभव - बल
अब न किसी की डाह रहे,
बस, अपनी जीवन- धारा का
यों ही निभृत प्रवाह बहे। '[2]

' पंचवटी ' में गान्धीवाद का बहुत कम मात्रा में निरूपण हो सका है। फिर भी गान्धीवाद की दृष्टि से यह सफल हुआ है। राम,लक्ष्मण।, सीता आदि पंचवटी में रहकर जो स्वावलंबी सुंदर जीवन बिताते हैं, वही इसमें प्रस्तुत गांधीवाद का स्पष्ट सप्रमाण उदाहरण है। अत: यद्यपि इस काव्य के पात्र वैदिक काल के रामायणीय पात्र ही हैं, फिर भी उन्हें आधुनिक आदर्श पात्रों के रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। डा० कमलाकांत पाठक ने कहा है -' पंचवटी के रामायणीय पात्र अतीत काल के प्राणी ही नहीं हैं, वे आधुनिक विचार-धारा और राष्ट्र के विकासोन्मुख जीवन से संपृक्त भी हैं। '[3]

कवि ने इसमें गांधीवाद को केवल युग- धर्म के रूप में ही अपनाया है। राम, सीता और लक्ष्मण तीनों पर गान्धीवाद का विस्तृत प्रभाव पड़ा है।

- -

१: पंचवटी - पृ० ६५ २: वही० - पृ० ६७
३: मैथिलीशरण गुप्त : व्यक्तित्व और काव्य - डा० कमलाकांत पाठक- पृ० १०६

इन पात्रों के चरित्रों और व्यवहारों द्वारा कवि ने सत्य, प्रेम, त्याग, अहिंसा आदि का मूल्यांकन किया है। राम और लक्ष्मण यहां गांधीजी के प्रतिरूप बन कर आये हैं। सीता की चारित्रिक विशेषता और निष्काम सेवा-शुश्रूषा में गांधीवाद परिलक्षित होता है। पंचवटी के मानव-पशु-पक्षी सब उच्च-नीच का भाव छोड़कर सम-भावना के साथ जीते हैं। यहां जातीय एवं वर्गीय एकता स्पष्ट है। इसमें सद्-वृत्तियों को मान्यता दी गयी है, साथ ही दुर्वृत्तियों को तिरस्कृत माना गया है। जैसा कि शूर्पणखा की छलपूर्ण कामार्त प्रेम-वृत्ति पर लक्ष्मण की सत्य-निष्ठा, सद्वृत्ति ने विजय प्राप्त की है। ` पंचवटी ` का दर्शन इस काव्य के द्वारा करते वक्त गांधीजी का ` साबरमती ` आश्रम याद आ जाता है जहां बुनाई, कताई आदि द्वारा जनता की सेवा की जाती थी।

७- शक्ति ?

इसकी कथा ` दुर्गा - सप्तशती ` का एक विशेष कथांश है जिसमें कवि ने देवी दुर्गा की महिमा का वर्णन किया है। इसमें देवी दुर्गा की अमोघ शक्ति से महिषासुर का जो दमन होता है, उसी का वर्णन किया गया है। दुर्गा की शक्ति की महत्ता का स्तवन करना कवि का उद्देश्य रहा है। फिर भी कवि ने अपने राष्ट्रीय व्यक्तित्व के कारण इसमें धार्मिक समन्वय को गांधीवाद के दृष्टिकोण से देखा है और उसका समर्थन भी किया है। यही इसका गांधीवादी महत्व है।

जब देव - समाज में अत्याचार और अनीति का नाच होता रहा, तब देवों ने मिलकर भगवान विष्णु की प्रार्थना की। तब भगवान ने यों कहा -

` संघ शक्ति ही करे - दैत्यों का भैरवी आतंक।`[१]

यही इस काव्य द्वारा प्रतिपादित हुआ है। इसमें धार्मिक एवं जातीय एकता की भावना लक्षित होती है। यहीं कवि ने अपना गांधीवादी दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है। संघ-शक्ति अर्थात् दुर्गा - शक्ति से देवों ने असुरों की अनीतियों एवं अत्याचारों से मुक्ति पायी और इस प्रकार वहां शांति की स्थापना भी हुई। अतः कवि का कथन है

१: शक्ति - गुप्तजी - पृ० ८

कि भारत की परतंत्रता से मुक्ति इस प्रकार की संगठित जन- शक्ति के द्वारा ही हो सकती है। गांधीजी ने भी कहा है कि जब भारतीय जनता अपनी जाति- भेद मत भावना भूलकर एकता के सूत्र में बंध सकती है, तभी देश की मुक्ति संभव है। कवि ने अपनी उपर्युक्त भावना को ही गांधीवाद का रूप दिया है।

महिषासुर आदि असंख्य असुरों और दुर्गा के बीच में जो युद्ध छिड़ गया वह सत् - असत् वृत्तियों का द्वन्द्व - युद्ध था। अंत में सत् - वृत्ति की ही विजय होती है -

'कामरूप घन पर बिजली सी साहस - सिंहारूढ़;
टूट पड़ी दैत्यों पर दुर्गा अपने बल से दृढ़ ।
कुण्ठित हुई असुरों की आँखें उनके निकट निहार,
आँख मूंदकर तब वे मानो करने लगे प्रहार।'[1]

यहां हिंसा पर अहिंसा की जीत स्पष्टतः व्यक्त होती है।

कवि ने यहां अवतारवाद का समर्थन किया है। जब जब असुरों की बाधा उपस्थित होती है तब तब देवी विभिन्न नाम लेकर जन्म लेती है और दैत्यों का नाश करती है।[2] कवि ने इसमें देवी पात्रों को लेकर अपना लक्ष्य पूरा किया है; उन्हें मानवीय रूप देने का भी प्रयास किया गया है। इसमें गांधीवाद का उतना प्रतिपादन नहीं हुआ। व इसमें केवल एक ही जगह पर गान्धीवाद का प्रभाव दिखाई पड़ता है जहां संघ- शक्ति के बारे में कहा गया है।

<u>८- कर्ण :</u>

यह महाभारत के महारथी कर्ण पर रचित खण्डकाव्य है। इसमें कवि ने कर्ण के जन्म से लेकर मृत्यु तक की कथा का वर्णन किया है जो अत्यंत संक्षिप्त है। कथा के वर्णन में कोई क्रम भी नहीं रहा है। खण्डकाव्य होने के कारण इसमें

- -

१: शक्ति-गुप्तजी - पृ० १२

२: 'होती है जब जब दैत्यों की बाधा इसी प्रकार,
करती है तब तब कल्याणी अपनों का उद्धार,
कभी कालिका कभी सुन्दरी नाना रूप गुण धार,
मर्दिनी होकर करती है महाशक्ति मद भार।' - शक्ति - पृ० १८

कथानक क्रमबद्ध वर्णन भी संभव नहीं । कवि ने कर्ण के नाम पर ही इस काव्य की रचना की है और उसके चरित्र के विभिन्न गुण- पक्षों पर प्रकाश डालते हुए उसे ऊंचा उठाने का प्रयास किया है, जो कई युगों तक उपेक्षित तथा अपमानित रहा था ।

आधुनिक युग तो उपेक्षितों और दलितों के उद्धार का युग है और कवि गण अपने काव्य- निर्माण के लिए ऐसे पात्रों को अपनाकर उन्हें काव्य के नायक- नायिका के पदों पर प्रतिष्ठित करने में दत्तचित्त दिखाई पड़ते हैं । ` कर्ण ` ऐसे कवि- कर्म में ढाला हुआ काव्य- रूप है । इस युग के कवि- कर्म के अनुसार ` कर्ण ` पर गांधीवाद का प्रभाव स्पष्ट दिखाई पड़ता है । इस युग के कवि काव्य में वर्णित विविधतापूर्ण समस्याओं का समाधान गांधीवाद के सहारे ढूंढने का प्रयास करते आये हैं । आगे कर्ण पर जो गांधीवादी प्रभाव लक्षित होता है उस पर विचार करना चाहिए । अधिकांश गांधीवादी कवियों ने बताया है कि गांधीजी के जन्म से देश की परतंत्रता की बेड़ियां टूट जाने और मुक्ति प्राप्त होने की संभावना है । यही बात कर्ण के जन्म के बारे में भी कवि ने बतायी है । -

` वर्तमान को मिला सिसकता
हुआ एक इतिहास
मिला अनागत अखण्ड
गौरव का दिव्य प्रकाश
मिला विश्व को नया तेज
धरती को ज्योति महान । `[१]

<u>चरित्र चित्रण</u> :

कर्ण को कर्मवीर बताया गया है जो देश का अस्वस्थता-जन्य विष- पान करने वाला है । जैसे कि गान्धीजी ने देश की रक्षा - हेतु विष-पान किया था-

` आखिर यह क्या ज्ञात कि आया
कर्मवीर मस्ताना
आया कालकूट पीने को
दानवीर दीवाना । `[२]

१: कर्ण - पृ० ३ २: वही० - पृ० ५

कर्ण को ' सूत पुत्र ' बताकर उसे अछूत माना गया । उसे प्यार और सम्मान से तिरस्कृत किया गया । अतः उसका अपमान ही अपमान होता था -

' सूत - पुत्र मत प्यार उसे दो
मत सम्मान उसे दो
ठौर - ठौर दो तिरस्कार
पग पग अपमान उसे दो
-- --
दो, संताप उसे दो । '[1]

दुर्योधन ने इस सूत- पुत्र गत अस्पृश्यता का विरोध करते हुए कहा है कि कर्ण को सूत- पुत्र कहने वाले व्यक्ति का नाश तक करने को वह तैयार है ।

' सूत - पुत्र अब तुम्हें कहे जो
उससे युद्ध करूंगा
उसके अभिमानी मस्तक पर
अपना चरण धरूंगा । '[2]

कर्ण के चरित्र पर प्रकाश डालते हुए कवि ने बताया है कि उनमें पौरुष, युद्ध - कुशलता और बाण विद्या की चतुरता थी, वह महावीर भी था ।[3] कर्ण की बलिदान- भावना यहां स्फुरित होती है, कुण्डल या कवच ही क्या वह अपने प्राण देने को भी तैयार था । -

' कुंडल और कवच क्या , मांगे
तो दे दूंगा प्राण
प्राण - दान उससे भी बढ़कर
है कोई कल्याण । '[4]

- -

१: कर्ण - प्रथम सर्ग - पृ० ६ २: कर्ण - प्रथम सर्ग - पृ० ६
३: कर्ण - तीसरा सर्ग - पृ० २६ , देखिये छंद : ६,१०, ११
४: कर्ण - तीसरा सर्ग - पृ० ३५

कर्ण मृत्यु - भीत नहीं था और उसने बताया है कि वह अपनी प्रतिज्ञा का भंग कदापि नहीं कर सकता । लेकिन उससे बढ़कर मृत्यु को उसने नैमस्कार माना । गांधीजी भी सदा दृढ़ प्रतिज्ञ तथा मृत्युंजय रहे । -

` नैमस्कार है मृत्यु तुम्हारा
किंतु न मैं प्रण - भंग
-- --
चाहे पलट जाय पल - भर में
महाकाल की धारा
और कर्ण का किंतु न झूठा
हो सकता प्रण प्यारा । `[1]

गांधीजी के समान वह भी दानवीर था । गांधीजी अपनी दान-शीलता के कारण `अर्द्ध - नग्न - फकीर ` कहलाये । जब इन्द्र ने कर्ण से कवच और कुण्डल दान के रूप में मांगा तब उसने यह सोचकर कि अपनी दानशीलता की कोई हानि या निंदा न हो जाय उसी से अपने शरीर को स्वयं ही छेद कर इन्द्र को दे दिया ।

युधिष्ठिर युद्ध करना नहीं चाहता । कौरवों और पाण्डवों के बीच में युद्ध होने वाला है । लेकिन युधिष्ठिर ने संधि के द्वारा युद्ध को हटाना चाहा और भगवान कृष्ण से उसके लिए प्रार्थना की ।

` दयासिंधु !
तुम संधि - दूत बन जाओ
कौरव - पाण्डव कुल को अब
मिटने से हाय, बचाओ । `[2]

यहां युधिष्ठिर ने अहिंसा का समर्थन किया है ।

कृष्ण ने कर्ण का हृदय - परिवर्तन करना चाहा है जिससे वे कौरव - पाण्डव युद्ध रोक सकते हैं ।

---

[1]: कर्ण - तीसरा सर्ग - पृ० ३५
[2]: वही० - चौथा सर्ग - पृ० ४४

' रोको इस विध्वंस यज्ञ को
अपने को पहचानो
चलो, इसी रथ पर मत उतरो
मेरी बातें मानो । '[1]

कुन्ती ने भी भाई - भाई के बीच में होने वाले युद्ध का विरोध किया है और अपने भाइयों से आ मिलने का अनुरोध कर्ण से भी किया है ।[2]

' कर्ण ' पर गान्धीवाद का पूर्णत: प्रभाव पड़ा है - यह कहना संभव नहीं । इसमें अहिंसा, हृदय - परिवर्तन, आत्म- बलिदान, निर्भय - व्यवहार, दृढ़ प्रतिज्ञा आदि सिद्धान्तों का विवेचन किया गया है । लेकिन कुछ बातें ऐसी भी हैं जो गान्धीवाद के विरोधी तत्व माने जाते हैं । इस प्रसंग पर कर्ण के चरित्र पर प्रकाश डालना उचित जान पड़ता है । कर्ण की कथनी में तो गान्धीवादी तत्वों की कोमलता फलकती है लेकिन उसकी करनी में कटुटरता दिखाई पड़ती । कर्ण युद्ध अवश्य चाहता है और वह अर्जुन की हत्या में ही शान्ति और समाधान पाना चाहता है । इतना ही नहीं, कृष्ण द्वारा उसके हृदय - परिवर्तन करने का प्रयत्न किये जाने पर भी उसका मन नहीं बदलता, वह प्रयत्न तक सीमित रह जाता है । कर्ण तो अपने युद्ध करने की दृढ़-प्रतिज्ञा से अणु मात्र भी विचलित नहीं होना चाहता । गान्धीजी ने तो युद्ध का नाम तक नहीं लिया है और वह भी प्रथम महायुद्ध के बाद ही । युद्ध गान्धीवाद का विरोधी तत्व ही है ।

कर्ण पर अस्पृश्यता का जो आरोप किया गया है उससे यह ज्ञात होता है कि वैदिक युग में भी अछूत - समस्या वर्तमान थी । इस प्रकार इसमें गान्धीवाद के साथ साम्राज्यवाद का भी विवेचन पाया जाता है । फिर भी कवि का लक्ष्य गान्धीवादी समाधान ही जान पड़ता है । कर्ण की मृत्यु के साथ सारी समस्याओं की सुलझन हो जाती है । यह तो वास्तव में कहा जा सकता है कि इसमें गांधीवाद का गंभीर अध्ययन तो नहीं हुआ है । फिर भी प्रसंगानुसार उसकी आवश्यकता पर भी प्रकाश डाला गया है ।

- -

१: कर्ण - चौथा सर्ग - पृ० ४८ २: वही० - पांचवा सर्ग - पृ० ६५, छं० २४

६ - नकुल :

यह एक आख्यानक काव्य है जिसकी रचना सन् १९४६ में हुई। महाभारत के वन-पर्व की कथा के आधार पर इसकी रचना हुई है। संपूर्ण कथा का कथन इसमें नहीं हुआ है ; उसके कथांश मात्र को इसमें लिया गया है। फिर भी कवि सियारामशरण गुप्त जी ने अपनी कल्पना एवं इच्छा के अनुकूल कुछ परिवर्तन कथा में लाने का प्रयास किया है।[१] अब तक जिन कवियों ने महाभारत की कथा को लेकर काव्य लिखे हैं नकुल या अन्य पाण्डवों को प्रमुख स्थान देने का प्रयास नहीं किया है। लेकिन गुप्तजी ने प्रस्तुत काव्य की रचना नकुल के नाम पर की है और उसे महत्वपूर्ण स्थान दिया है।

'नकुल' के पात्रों पर गांधीवाद का प्रभाव :

नकुल : नकुल इस काव्य का प्रमुख पात्र है। महाभारत में एक साधारण पात्र के रूप में प्रत्यक्ष होने वाले इस पात्र में कवि सियारामशरण जी ने असाधारणता का दर्शन कराया है जो उनकी मौलिकता का परिचय देता है। नकुल का अर्थ यहां कुलहीन, लघु तथा नीच माना गया है जिसके कारण उसे महाभारत में उपेक्षित मानने का समर्थन कवि ने किया है। आधुनिक युग में उपेक्षितों के प्रति जो नीचता पूर्ण व्यवहार होता है, उसी को समाप्त करने के उद्देश्य से ही कवि ने प्रस्तुत काव्य की रचना की है। अतः नकुल यहां निम्न वर्ग के लोगों के प्रतिनिधि के रूप में चित्रित किया गया है। नकुल के चरित्र चित्रण द्वारा समाज के उपेक्षित वर्गों को संकेतित किया है। कवि ने गांधीवादी होने के कारण इस नवीन प्रयोग का प्रयास किया है। नकुल के विविधार्थ वाले शब्दों का प्रयोग जो यहां किया गया है वह कवि के गांधीवादी विचारों का ही परिणाम है। यद्यपि कवि ने इस काव्य का नामकरण नकुल के आधार पर किया है, फिर भी उसके चरित्र - विकास का वर्णन करने का प्रयास नहीं किया है।

- -

१: कथा में जो प्रमुख परिवर्तन गुप्त जी ने किये हैं उसका एक कारण यह भी है कि नकुल को इस काव्य का प्रमुख चरित्र घोषित करना है, नहीं तो शीर्षक की सार्थकता खण्डित हो जाएगी -" सियारामशरण गुप्त : व्यक्तित्व और कृतित्व- पृष्ठ - १३४

२:

कवि का उद्देश्य भी नकुल का चरित्र - चित्रण नहीं रहा है ।[1] काव्य मंच पर आवन्त नकुल अपना दर्शन देता है ।

युधिष्ठिर :

युधिष्ठिर बड़े ही चिंतनशील तथा उज्ज्वल चरित्रवान व्यक्ति के रूप में चित्रित हुआ है । प्रारंभ सेही सामाजिक तथा पारिवारिक परिस्थितियों की चिंता उसमें रहती है । वह देश में आवश्यक परिवर्तन और सुधार लाने के लिए चिंतित दिखाई पड़ता है । युधिष्ठिर अहिंसक व्यक्ति था । जब वह किसी भी मृग की हत्या की बात सुनता था तो व्यथित होता था । यहां एक ब्राह्मण की अरणि और मथनिका किसी एक हिरण के सींगों में उलझ गयीं और हिरण उन्हें लेकर भाग गया । धनुष - बाण लेकर युधिष्ठिर हिरण का अनुसन्धान करने चला और वह कार्य छोड़ देता है और मनुष्य की हिंसात्मक प्रवृत्तियों पर अपनी विरोधी - भावना प्रकट करता है।

' नर वीरत्व विनाश - क्रिया में हो क्या केवल ?
तब नर - बल कुछ और नहीं है, वह है पशुबल ।'[2]

युधिष्ठिर समाज में शांति की स्थापना के लिए शांतिमय साधनों के उपयोग करने का समर्थन करता है -

' करना है यदि हमें यहां .. .. निवारण ,
हो अभीष्ट सर्वत्र प्रेम का पूर्ण प्रसारण
करना होगा बड़ा त्याग निज सुख जीवी को ,
होना होगा स्वयं समर्पित गाण्डीवी को । '[3]

वह प्रेम और शान्ति का समर्थक एवं पथिक है । वह बड़ा त्यागी है और छोटों के प्रति उसके मन में दया एवं सहानुभूति है ; उनके लिए सब कुछ त्यागने वह तैयार है जिसमें वह सन्तोष पाता है । -

- -

१: --- ' इस आख्यानक काव्य का नामकरण यद्यपि नकुल के नाम पर हुआ है, किन्तु इस पात्र का चरित्र विकसित करना काव्य का अभिप्राय नहीं है ' -
सियारामशरण गुप्त : व्यक्तित्व और कृतित्व - पृ० १३०

२: नकुल - प्रथम सर्ग - पृ० १३   ३: नकुल - पांचवा सर्ग - पृ० १०१

' छोटों का प्रतिपाल, यही उनका जीवन - प्रण ।
छोटे के भी लिये बड़े से बड़ा समर्पण -
किया जाए जब , तभी धर्म - धन का संरक्षण ।'[1]

वह लोभ, अहंकार, हिंसा आदि से परे धार्मिक और मानवतावादी व्यक्ति है । 'वसुधैव कुटुम्बकम्' उसका प्रधान सिद्धान्त है । संसार के जड़ और चेतन सभी को एक ही कुटुम्ब या परिवार मानता है जैसे -

' यह मिट्टी का लोक । यहां मिट्टी ही मिट्टी ,
एक तुल्य हैं सभी राजमणि, कंकड़ - मिट्टी ।'[2]

युधिष्ठिर हृदय - परिवर्तन,अहिंसा, चिरशान्ति, मानव - प्रेम आदि का समर्थन करने वाला है जिसका प्रतिपादन गांधीजी ने किया है । अत: जब मणिभद्र अर्जुन के गांडीव के प्रहार से सामाजिक शान्ति की बात बताता है तब युधिष्ठिर उससे सहमत न होते हुए बताता है -

' मुझ को तो विश्वास नहीं है रंचक इसमें ।
देंगे अमृत कैसे अमृत, मुझे स्वयमपि जो विष में ।
धरना होगा आत्मदान के पावन प्रण को,
नवजीवन परिपूर्ण जिन्हें करना है जन को ।'[3]

अर्जुन, नकुल, सहदेव, भीम , द्रौपदी आदि अमृत- हृद का जल पीकर मूर्छित होकर गिर पड़े जिसे दुर्जय और वज्रबाहु ने विषाक्त किया था । मणिभद्र अपने पास के संजीवन-कणा से किसी एक को जीवित करने की बात बताते हुए युधिष्ठिर से पूछने पर वह नकुल का नाम कहता है कि लघु को अपनी लघुता का बोझ नहीं होना चाहिए और उसके लिए बड़ों को त्याग करने की आवश्यकता है, यही उनका धर्म है ।[4] नकुल छोटा

- -

१: नकुल - पांचवा सर्ग - पृ० १०२ २: वही० - पृ० ६४
३: वही० पृ० १०२
४: ' लेना होगा निखिल क्षोभ व्रत निर्मम हम को,
देना होगा बड़ा भाग लघु से लघुतम को ।
- नकुल - पांचवां सर्ग - पृ० १०३

होने के कारण उसकी अवहेलना कहीं न हो जाय, इस विचार से युधिष्ठिर ने यों बताया कि पाण्डवों में सब से छोटा होने के कारण वह किसी प्रकार के अधिकार सुख से वंचित न हो सकता है ।[१]

मणिभद्र :

मणिभद्र को कवि ने यहां त्यागी, धर्म - स्वरूप एवं मानवतावादी के रूप में चित्रित किया है । उसमें स्वर्ग की अपेक्षा पृथ्वी के प्रति अधिक आदर और प्रेम निहित थे । वह तो पहले युद्ध - कांक्षी, हिंसक आदि था लेकिन बाद में हृदय-परिवर्तन होने से वह गांधीवादी बनता है । युधिष्ठिर के सदुपदेशों से उसका हृदय परिवर्तित हो जाता है और तभी वह नकुल को जीवित बनाने का निश्चय करते हुए कहता है -

' अब संजीवन दान करूंगा मैं अविलंबित ,
मिला मुझे भी सार तत्व यह सुधा - समन्वित ,'[२]

अर्जुन :

अर्जुन यहां मानव- जाति के प्रतिनिधि का रूप धारणकर आया है। वह साधारण वेश- भूषा में ही रहता है । जब वह इन्द्र का निमन्त्रण पाकर अमरपुरी में गया था, तब वह साधारण वेश में ही गया था । इन्द्रलोक के आडंबरपूर्ण जीवन से वह तनिक भी प्रभावित नहीं हुआ । कवि का गांधीवादी दृष्टिकोण यहां इस तरह प्रकट हुआ है कि अर्जुन की देव-लोक यात्रा में गांधीजी की इंग्लैंड यात्रा का दृश्य झलकने लगता है । गान्धीजी भी साधारण भारतीय वेश- भूषा में ही इंग्लैंड गये थे । अर्जुन को नारी की निन्दा तथा शोषण खूब खटकता है और वह उसे उद्धरित करने में तत्पर दिखाई पड़ता है जैसे -

' नारी जन की पुण्य प्रतिष्ठा करूं - बल पूर्वक ,
लख दु:शासन के अशोक वन में है अब तक
करना है उद्धार वहां से उस विकला का । '[३]

- -

१: ' छोटा जितना, बड़ा भाग उतना ही तेरा, तुझ में आगे बढ़े स्रोत जीवन का मेरा
' नकुल - तीसरा सर्ग - पृ० ५५

२: वही० - पांचवा सर्ग - पृ० १०५

३: नकुल - तीसरा सर्ग - पृ० ६६

अन्त में यह कहा जा सकता है कि ` नकुल ` काव्य गान्धीवाद से अत्यधिक संपूर्ण है। महाभारत का अप्रधान पात्र नकुल को कवि ने यहां प्रधान पात्र के रूप में प्रस्तुत किया है। नकुल शब्द के हीनार्थ का विवेचन करके उन्होंने अपनी गान्धीवादिता का परिचय दिया है। कवि का उद्देश्य उपेक्षितों तथा निम्न- स्तर वालों का उद्धार रहा है। इसकी और एक विशेषता यह है कि इसमें पृथ्वी के साधारण मानव में देवत्व यानी नर में नारायणत्व के भाव को दर्शाया गया है। अर्जुन के नाते कवि ने इस भाव को अभिव्यक्त किया है। गांधीजी भी हरिजनों में नारायण का दर्शन किया करते थे और यही कारण है कि उन्होंने दीन- दलितों को हरिजन बताया भी है। यहां मानव की जीत हो हुई है। युधिष्ठिर को कवि ने गांधीवाद का साक्षात् मूर्ति बनाकर उपस्थित किया है। वास्तव में युधिष्ठिर के शब्दों में कवि ही बोल रहे हैं। यौवन काल में ही रुग्ण बन जाने तथा जीवन की विपरीत परिस्थितियों से आकुल हो जाने के कारण उन्होंने सुख और भोग की अपेक्षा त्याग और विरक्ति के मार्ग को अपना जीवनादर्श बना लिया था। इसी आदर्श का परिपाक ही प्रस्तुत काव्य में युधिष्ठिर के त्यागमय जीवन द्वारा हुआ है। कवि के गांधीवादी व्यक्तित्व की झलक युधिष्ठिर के प्रस्तुत काव्यगत व्यक्तित्व में पायी जाती है। अतः `महाभारत ` के युधिष्ठिर और नकुल के युधिष्ठिर में अंतर अवश्य है क्योंकि कवि ने गांधीवाद की प्रतिष्ठा करने के लिए प्रस्तुत काव्य को कथा में मूल - कथा से आवश्यकतानुसार परिवर्तन किया है।

१० - वनवास :

रामचन्द्रजी के लौकिक जीवन के ` वनवास ` वाला अंश को लेकर कवि ने इस खण्डकाव्य की रचना की है। राम- वन - गमन, चित्रकूट - निवास, अहल्या उद्धार, आदि घटनाओं का सुंदर चित्रण आदि इसमें मिलता है। राम बड़े त्यागी एवं तपस्वी थे। उनका सारा काम जनोद्धारोन्मुख था। इसका वर्णन जहां भी वास्तव जी करते हैं, वहां ध्वनित रूप से गांधीवादी विचार ही प्रस्तुत करते हैं। जैसे राम के शब्दों में सेवा का समर्थन कवि ने जो किया है, वह आधुनिक युग की गांधीवादी सेवा का ही समर्थन है।

' सेवा ही जीवन का गौरव
सेवा ही तन का आभूषण,
मन की प्रवृत्ति सेवा ही है
सेवा ही अभिरुचि आकर्षण । '[१]

आगे भी राम कहते हैं कि सेवा में आनंद सदा मग्न रहता है । सेवा मानव- शरीर का सच्चा धर्म है । वही पुरुषार्थ का कर्म है और उसी से ही जीवन में सुख मिलता है ।[२]

यद्यपि राम- कथा और गांधीवाद का परस्पर प्रत्यक्ष संबंध नहीं है, फिर भी युग के प्रभाव से इस कवि ने स्पष्ट रूप में गांधीजी के बताये कुछ सिद्धान्तों का उल्लेख किया है । लक्ष्मण बड़ा कर्मठ तथा कृत्य-निष्ठ व्यक्ति है और उसकी कर्तव्य- निष्ठा का समर्थन राम ने किया है -

' कर्तव्य - निष्ठ लक्ष्मण प्रहरी
से थे सतर्क आसनासीन ।
वन - प्रभावलोकनरत थे पर
साथे दश दिशि थे दृग प्रवीण । '[३]

लक्ष्मण को राम अपने भरत - स्नेह और भरत के निःस्वार्थ स्नेह का परिचय देते हैं -

' तुम भूल रहे हो, प्रिय लक्ष्मण !
मुझ पर कितना भरतानुराग ।
कितनी अंत उसकी सीमा
उसका कितना निःस्वार्थ त्याग । [४]

- -

१: वनवास - भरत मिलन - पृ० ४८
२: सेवा आत्मा का सत्य धर्म
सेवा पौरुष का सुकृति कर्म
— -- --
सेवा ही में सेवावतार
रहता पल छिन आनन्द मग्न । ' - वही० - पृ० ४८
३: वही० पृ० ४६ ४: वही० - पृ० ५२

राम से मिलने के लिए भरत जब ससैन्य वन में आता है तो लक्ष्मण यह समझकर कि वह राम से लड़ने आ रहा है, अपना धनु लेकर सेना का संहार करने का अट्टहास करता है, तब राम अहिंसा का समर्थन करते हुए लक्ष्मण से यों कहते हैं -

' लक्ष्मण! लक्ष्मण । हो शांत वत्स
रोषभरी नयनों के रक्त शांत !
गाण्डीव शान्त ! भुजदण्ड शान्त !
लक्ष्मण की हिंसावृत्ति शांत । '[१]

यहां लक्ष्मण का हृदय - परिवर्तन करने का प्रयास जो राम करते हैं वह भी व्यंजित है । राम एक जगह भरत को ' क्षत्रिय निरायुध ' कहकर विशेषित करता है जिसमें अहिंसा का द्योतन स्पष्ट है । राम लक्ष्मण से अपरिग्रह की चर्चा करते हुए स्पष्ट कहते हैं -

' अपने ही स्वत्वों को लेता
मानव है मानव से लक्ष्मण
है कभी नहीं कोई जग में जग में
कर सकता पर - स्वत्वापहरण । '[२]

सीता कीमहिमा का वर्णन करते समय चित्रकूट के निवासियों की प्रशंसा की गयी है जो साधु- संत तपस्वी एवं व्रती थे । -

' कुटी में साधु - संत गृहस्थ भोगी ,
यति, त्यागी, व्रती अस्वस्थ रोगी ।
लिये नाना सद् इच्छाएं हृदय में
हुए एकत्र शान्ति - प्रद निलय में । '[३]

रा म चित्रकूट से अयोध्या जाना चाहते हैं जहां अशांति थी और अधर्म चल रहा था । गांधीजी ने भी अपने युग के अधर्म, असत्य और अशांति को दूर करने का व्रत लिया था ।

१: वनवास - भरत मिलन - पृ० ५२
२: वही० - पृ० ५४
३: वनवास - रामवास - पृ० ८३

'चले तजि चित्रकूट कहां किधर को
-- -- --
उधर ही सत्य धर्मांकुर जगाने
दिये बल मानवी क्रीडा दिखाने ।'[१]

इस काव्य में कई प्रसंगों पर कवि गान्धीवाद से बहुत कुछ प्रभावित दिखाई हैं। इसके राम, लक्ष्मण, भरत, सीता आदि पात्रों पर गान्धीवादी विचारों का प्रभाव पड़ा है। अहिंसा, सत्य, त्याग, बलिदान, व्रत - उपवास, पारस्परिक प्रेम, आदि पर विचार किया गया है। सीता की आदर्शमय सेवा से नारियों की उन्नति होती ही है। इसमें युग- प्रभाव से जो गांधीवादी प्रभाव का पुट है, उसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता है। यहां सीता के रूप में आधुनिक - समाज - सेवा की धनी किसी भद्र महिला को भी हम देखते हैं जो सचमुच त्यागमयी है। गांधीवादी कवि चाहते हैं कि इस युग की अभिजात व नारियां ग्रामीण दुःख - ताप को दूर करें। यह काव्य गान्धीवादी विचार-धारा से अनुप्राणित है ही ; पुराणाश्रित खण्डकाव्य होने के कारण इसमें गांधीवाद के सभी तत्वों का निर्वाह नहीं हो सका है।

११- सिद्धराज :

सिद्धराज जयसिंह के जीवन का चित्रण इसमें किया गया है। उसके जीवन की पांच फांकियां ही इसमें प्रतिपादित हुई हैं। खण्डकाव्य होने के कारण उसके जीवन का संपूर्ण चित्रण नहीं हो सकता था। उसके जीवन की प्रमुख घटनाओं का चित्रण करते हुए कवि ने उसके चरित्र को प्रस्तुत किया है और उसे गांधीवाद से प्रभावित दिखाया गया है। वह राजा होने पर भी एक मामूली व्यक्ति है।

जयसिंह पर गांधीवाद का प्रभाव :

जयसिंह मनुष्यत्व को सर्वश्रेष्ठ मानता है।

१: वनवास - रामचास - पृ० ६०

' पृथिवी पृथुल, और पार्थिव अनेक हैं ,
कोई देव और कोई दैत्य होंगे उनमें ;
किंतु मनुष्यत्व मेरे पुत्र का ही भाग है । '[१]

जयसिंह सबसे पहले तीर्थयात्रा के लिए जाने वाले भक्त- जनों से कर मांगता था ; बाद में वही उसे बन्द करता है -

' पंचकुल लोगों से मंगवाया वहां उसने
कर का निवेदन-पत्र और लेखा उसका
देखा, उससे होते है प्रतिवर्ष लाभ लाखों का ।
फाड़ फेंका तो भी वह पत्र मातृभक्त ने,
मां के चरणों पर चढ़ाया पत्र - पुष्प - सा । '[२]

जयसिंह के मन में अपनी प्रजा की उन्नति और सुख की चिंता रहती है -

' राजकोष रिक्त हो, तो चिन्ता नहीं मुझ को,
राज्य में प्रजा की सुख- सिद्धि, निधि - वृद्धि हो ,
पुष्ट प्रजा - जन ही हैं सच्चे धन राजा के । '[३]

उसमें शत्रु और मित्र में भिन्नता तथा एकता लाने की अद्भुत क्षमता है -

' -- -- निज शत्रु तथा मित्र से
योग्य व्यवहार करने में वे समर्थ हैं । '[४]

जयसिंह बड़ा वीर शूर योद्धा है और योद्धा रण-भूमि से हारकर लौटना नहीं चाहता अत: जयसिंह ' करेंगे या मरेंगे ' वाली उक्ति का समर्थन करता है -

' टूट पड़ा यम - सम दक्षिण के द्वार से ,
लौटने से मुझ मरना ही ठीक जानके ।

१: सिद्ध राज - गुप्त जी - पृ० १६ २: वही० - पृ० २७
३: वही० पृ० २७ ४: वही० पृ० ३१

' विजय करेंगे या मरेंगे यह ठान के
बढ़ते हैं जो जन, वे रुक सकते हैं क्या ?
होता है निराशों का प्रकाश नाशकारी ही । '[१]

जयसिंह में सहानुभूति एवं करुणा की भावना विद्यमान है। जब वे जगदेव को युद्धभूमि पर अचेत देखते हैं, तब तुरन्त अपनी तलवार फेंक देता है और युद्ध बन्द करता है -

' साथ ही हताश हुए मालव विलोक के
वीर जगदेव को अचेत । वे तुरन्त ही
युद्ध छोड़, घेर उसे बाढ़कर अपनी
बैठ गये शत्रुओं से मरने को पहले ।
हत्या - मात्र जान तब ऐसे स्वामी भक्तों का
रोक दिया सैनिकों को वीर जयसिंह ने । '[२]

गान्धीजी भी पहले युद्ध का समर्थन करते थे और प्रथम महायुद्ध के बाद ही उन्होंने युद्ध करने और उसमें भाग लेने का निश्चय ही छोड़ दिया। यहां जयसिंह का हृदय-परिवर्तन अंकित होता है।

जयसिंह आहत शत्रुओं की सेवा शुश्रूषा करने की आज्ञा देता है -

' वार करने से, घेर बन्दी कर सब को
मुगल अचेतों के उचित उपचार की आज्ञा दी । '[३]

जयसिंह शूर - वीर का गुण ' विनय ' बताता है। गान्धीजी में भी यही गुण विद्यमान है।

वह एकदम अहिंसक हो गया और अपने परम शत्रु जगदेव से मित्रता स्थापित करना चाहता है -

' अब रक्त-पात व्यर्थ है ।
-- --
आप निज बन्धुओं से सावधान रहना । '[४]

- -

१: सिद्धराज - पृ० ४३ २: वही० - पृ० ४५-४६ ३: वही० पृ० ४६ ४:वही०पृ० ५०

आगे भी वह अहिंसा का समर्थन करता है -

> ' हिंसा मिटे, बुद्ध महावीर की दया बढ़े,
> किन्तु आत्म-रक्षा हमें करनी पड़ेगी ही ; '[१]

जयसिंह देश की सारी जनता को एकता के साथ रहने का सन्देश देता है -

> ' मैं तो चाहता हूं एक राज्य, एक छत्र ही । '[२]

मीनलदे जो जयसिंह की माता है, प्रजाहितैषिणी एवं सामान्य्य कांक्षी है । अतः वह अपने पुत्र को यह उपदेश देती है कि शत्रु - मित्र से एकता का व्यवहार करते हुए जनता की भीति को हटाते हुए प्रजा को प्रीति से पालते हुए अपने राज्य का शासन वह करे ।[३]

जब जयसिंह तीर्थयात्रियों से कर मांगता है तब उसकी माता उपवास शुरू करती है-

> ' आत्मघातिनी न हूंगी मैं ,
> जानो उपवास को । चारों ओर चित्त के
> कूड़ा और कर्कट इकट्ठा जब होता है,
> तब जठराग्नि की सहायता से उसको
> दग्ध कर आत्म-शुद्धि पाता उपवासी है । '[४]

सिद्धराज का मन्त्री अहिंसक है । अतः नरवर्मा और सिद्धराज के बीच में जो युद्ध होने वाला है उसे वह नहीं होने देता -

> 'बिना ही रक्तपात के
> काम यदि हो गया , तो मैं ने क्या बुरा किया ? '[५]

- -

१: सिद्धराज - पृ० १३२ २: वही० पृ० १२८

३: ' निज राज्य जो
आप ही संभाले और पाले प्रजा प्रीति से -
नीति से, उचित रीति रक्खे भीति छोड़के
कर सके योग्य व्यवहार शत्रु - मित्र से । ' - वही० पृ० ६

४: वही० पृ० २२ ५: वही० पृ० २६

इस काव्य के नायक जयसिंह पर ही गान्धीवाद का अधिक प्रभाव पड़ा है। उसकी माता पर इसका हलका प्रभाव पड़ा है। मन्त्री भी सच्चा गान्धीवादी है। जयसिंह की व्यक्तिगत प्रवृत्तियों में अनेक दुर्बलताएं होने पर भी वह गान्धीवाद से अत्यन्त प्रभावित है। पहले वह युद्ध करना चाहता था। मगर जब जगदेव को आहत देखा, तब उसका हृदय - परिवर्तन हुआ और उसने तत्काल युद्ध बंद करदिया। यहां उसपर अशोक और गान्धीजी का तद्वत प्रभाव स्पष्ट है। वह शान्ति और समाधान से पूर्ण राज्य की कामना करनेवाला था। जयसिंह के राजनीतिक व्यक्तित्व को इसमें अधिक प्रधानता मिली है। गान्धीवादी विचारों के अलावा भारत की तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक परिस्थितियों का भी चित्रण यत्र- तत्र किया है। नायक के चारित्रिक गुणों के द्वारा गान्धीवादी आदर्श प्रस्तुत करना ही कवि का उद्देश्य रहा है।

१२ - गुरुकुल :

'गुरुकुल' मुसलमानों और सिक्खों बीच के द्वन्द्व की कथा है। इसमें कवि ने दोनों से अपना भेद - भाव छोड़कर एक साथ मिलकर भारत की स्वतंत्रता-के संग्राम में प्रयत्न करने का अनुरोध किया है। अतः उन्होंने मुसलमानों के द्वारा किये गये अत्याचारों का वर्णन इसकी पृष्ठभूमि के रूप में किया है और सिक्खों की आत्म-शक्ति और बलिदान - भावना की महिमा गाते हुए उनका हृदय - परिवर्तन करने का प्रयास किया है। हिन्दू, मुसलमान और सिक्खों के बीच में जातीय एवं मानवीय एकता स्थापित करने का प्रयत्न भी किया गया है।

'गुरुकुल' गांधीवाद से प्रभावित काव्य है। इसमें सिक्ख गुरुओं की जीवन- कथा वर्णित है। उसमें गांधीजी और गांधीवाद का सम्यक् विवेचन हुआ है। कवि ने इसके मंगलाचरण में धार्मिक समन्वय के लिए आत्म-शुद्धि की शुचि का मार्ग बताया है।[१]

१- शुचि मानस में ही प्रतिबिंबित
होता है प्रभु का रस - रूप ;
घट की डोर लगी जब हरि से
पानी क्यों न भरे भव - कूप ?' - गुरुकुल - पृ० ११

इसके बाद कवि ने यवनों का भारत पर आक्रमण आदि का वर्णन किया है। इसी समय गुरु नानक का जन्म हुआ था। यवनों के आक्रमण से भारत की दशा बहुत बिगड़ गयी। जनता भोग - विलास में डूब गयी। काम- क्रोधादि वृत्तियों की प्रबलता के कारण वे धर्म - भ्रष्ट होकर आडंबरतापूर्ण जीवन बिताते थे। पूंजीवाद और दरिद्रता का जन्म हुआ। मंदिरों - मठों का नाश होने लगा। पशु-बलि एवं नर - बलि का प्रचार हो चुका था। नारी ही क्या, नर भी अशिक्षित रहा करते थे। गो- वध की प्रवृत्ति भी प्रचुर मात्रा में प्रचलित हो रही थी।

कवि ने इन समस्त अत्याचारों एवं आतंकों से उत्पन्न विभिन्न समस्याओं को गान्धीजी के दृष्टिकोण से देखा और इनको सुलझाने के लिए गान्धीवादी विचारों एवं सिद्धान्तों को अपनाया।[१] सच है कि कवि ने प्रस्तुत काव्य के द्वारा अपनी इसी विचार- धारा को पुष्ट किया है।

गुरु नानक लोक- कल्याणार्थ अपना घर - बार छोड़कर शान्ति की खोज में निकल पड़े -

' पुत्रवान होकर भी गुरु ने,
दिखलाकर आदर्श उदार,
— — —
बड़े लोक को अपनाने से
करके क्षुद्र गेह का त्याग।'[२]

- -

१: वस्तुत: कवि ने सांप्रदायिक समस्या को गान्धीजी के दृष्टिकोण से देखा था। वह समझता था कि सत्याग्रही वृत्ति से ही आत्म- शक्ति का विकास हो सकता है तथा पाप- कर्म करने वालों की चित्त- शुद्धि भी संभव है। गांधीजी सर्व- धर्म - समन्वय के पक्षपाती थे और समस्त जीवन को उसी के अधीन रखना चाहते थे।' -
- मैथिलीशरण गुप्त : व्यक्ति और काव्य, डा० कमलाकान्त पाठक, पृ० २०४

२: गुरुकुल - पृ० ४० - ४१

उनका कथन यह है कि संसार के सारे लोग एक ही पिता की सन्तान हैं। अत: उनसे किसी को भी घृणा नहीं करनी चाहिए -

' परम पिता के पुत्र सभी सम,
कोई नहीं घृणा के योग्य,
भ्रातृभाव पूर्वक रहकर सब
पाओ सौख्य - शान्ति - आरोग्य। '[१]

वे लूट - मार तथा परिग्रह की निन्दा करते हुए कहते हैं -

' औरों की छीना - झपटी कर
भरता है खल अपना पेट। '[२]

गुरु अंगद के आश्रम में अमीर - गरीब, उच्च - नीच तथा शिक्षित - अशिक्षित सब अपने अपने जाति - भेद को भूलकर रहते हैं -

' एक पंक्ति में, एक संग सब
यहां बैठते राजा- रंक,
ऐक्य भाव से यों सिक्खों का
एक राष्ट्र बन गया अशंक। '[३]

गान्धीजी स्वावलंबी जीवन बिताने तथा अपने आप कमाने पर अधिक प्रमुखता देते थे। यहां अंगद भी अपने पुत्रों को यही उपदेश देते हैं -

' सावधान, परधन है पाप,
भिक्षुक न हो, बनो व्यवसायी।
करो कमाई अपने आप। '[४]

यहां अपरिग्रह पर भी परोक्ष रूप से प्रकाश डाला गया है। गान्धीजी धार्मिक व्यक्ति बहुत थे और उन्होंने भारत के सभी धर्मों का अध्ययन किया है। उन्होंने मानव-जीवन में

१: गुरुकुल - पृ० ४३ २: वही० पृ० ४३ ३: वही० पृ० ४६ ४: वही० पृ० ४७

धर्म को एक अनिवार्य तत्व बताया है । गुरु अमरदास ने भी यह बताया है कि धर्म का पालन करने वाले को कदापि भय का नहीं अनुभव होता और फलतः वह दुःखित या खिन्न नहीं होता -

' पालन करें धर्म हम अपना
फिर हम को क्या भय ? क्या शोक ? '[१]

गांधीजी अपने सुख- सन्तोष की अपेक्षा जनता के सुख- सन्तोष की कामना करने वाले थे जिसका समर्थन यहां हुआ है -

' औरों के सुख में ही मानो रहता है गुरुओं का हर्ष '

गुरु रामदास दीन - पीड़ितों की सहायता करने वाले थे । उन्हें आडंबरपूर्ण साधनों में कोई प्रेम नहीं था । अतः उन्होंने एक मणिमय हार को उतारकर एक भिक्षुक को दिया जो उन्हें उपहार के रूप में मिला था ।

' किसी धनी सज्जन ने उनको
मणिमय हार दिया उपहार,
एक साधु याचक को गुरु ने
दिया उसी क्षण वही उतार । '[२]

गांधीजी के आत्मबल का समर्थन यहां गुरु हरगोविंद करते हैं । वे शारीरिक बल की अपेक्षा आत्मबल को अधिक प्रधान एवं आवश्यक मानते हैं -

' क्या जीतेंगे अंतरंग अरि
जो न जीत पाये बहिरंग ? '[३]

गान्धीजी ने भारत की स्वतन्त्रता - प्राप्ति के संग्राम में कई बार जेल जीवन का अनुभव किया है जो उनके लिए नामुश्किल - सा था । हरगोविंद ने भी अपने कारागृह-वा

- -

१: गुरुकुल - पृ० ४१ २: वही० पृ० ५८ ३: वही० पृ० ६२ ४00वही० पृ०

को अहिंसात्मक सत्याग्रह ही बताया है । -

' बन्धन भी अपना साधन हो -
यथा बोध के लिए शरीर ।
-- --
शारीरिक संघर्ष सहज है ,
कर हूं प्रथम मनोबल बोध । '[१]

गुरु तेगबहादुर ने बलिदान को अनिवार्य माना है ।

' होता नहीं बड़ा परिवर्तन
दिये बिना बलिदान विशाल । '[२]

आगे वे बताते हैं कि उनके आत्म- बलि दान से शत्रुओं का दिल बदल जाएगा और सारी जनता एक साथ मिलकर नव समाज का निर्माण करेगी ।

' व्यर्थ न होगी यह मेरी बलि ,
जाग उठेगा सुप्त समाज । '[३]

वे हिन्दू और मुसलमानों को एकता के सूत्र में एकसाथ विरोध देखना चाहते हैं -

' तेगबहादर , मुसलमान हो
तो यह मत फैले सर्वत्र ।
वही अग्रणी आज हमारा
हम सब हिन्दू उसके संग । '[४]

तेगबहादर सत्य के आग्रही और समर्थक हैं ।

' मुझे सत्य का ही आग्रह है । '[५]

१: गुरुकुल - पृ० ७३ २: वही० पृ० ९९ ३: वही० पृ० १००
४: वही० पृ० ९९ ५: वही० पृ० १०४

उन्होंने जाति और मत से बढ़कर मानव - धर्म का विवेचन किया है और रामचन्द्रजी रामराज्य की महिमा भी गायी है -

' शाही मजहब के भी ऊपर
मानव - धर्म न भूलें शाह,
-- --
पाते हैं उसमें जन - चाह । '[१]

आर्य जाति का उद्धार करने के लिए गुरु गोविंदसिंह ने अपना सर्वस्व त्याग दिया ।

' वेदव्रत पर ही अर्पित है
मेरा तन, मन, धन सर्वस्व ,
आर्य जाति की जागृति में ही
है मेरा जीवन - सर्वस्व । '[२]

गोविंद सिंह ने उच्च - नीचता और अस्पृश्यता को मना किया और सभी को समान स्तर पर देखना चाहा है -

' पाप - पुण्य निज कर्मों पर हैं
शूद्र - विप्र का एक शरीर ,
नाली में अस्पृश्य, नदी में
पावन होता है जन - नीर । '[३]

वे अपने को बलिदान देने की इच्छा खुद ही प्रकट करते हैं -

' मां, बलिदान चाहती हो तो
जाने दो तुम उसका योग,
चाहूं एक जन से क्या होगा
दूंगा मैं सौ सौ बलि - योग । '[४]

१: गुरुकुल - पृ० १०६ २: वही० पृ० ११८
३: वही० पृ० १२३ ४: वही० पृ० १३०

उन्होंने अपने प्रिय जनों को आत्म- विश्वास को कायम् रखने का आदेश दिया है -

' जो है आप सहायक अपना
हैं उसके ही देव सहाय,
रहे आत्म - विश्वास हृदय में
और न छूटे अध्यवसाय । '[1]

वे अपने शिष्य गणों को लेकर भारत की धार्मिक स्वतन्त्रता के लिए मर - मिटने को सन्नद्ध हुए -

' एक देश का, एक जाति का ,
एक राम का लेकर नाम,
आओ, जागें एक साथ हम,
मागें दस्यु , बचें धन - धाम । '[2]

हिन्दू मुसलिम एकता के बारे में बताया गया है -

' खुदा करें कि मिलें यों ही सब
हिन्दू - मुसल्मान जी खोल ।
राम - रहीम एक हैं , खाली
जुदे जुदे हैं उसके नाम । '[3]

आगे भी इसी का समर्थन किया गया है -

' मैं अस्त्र इसी का
करता हूं प्राणों पर खेल ।
-- --
बने रहेंगे सदा न यों ही
हिन्दू विजित और वे जिष्णु । '[4]

१: गुरुकुल - पृ० १३१ २: वही० पृ० १४५
३: वही० पृ० १५० ४: वही० पृ० १५१

गान्धीजी हमेशा निष्काम कर्म की चर्चा करते थे। यहां सिक्ख गुरुजन निष्काम - कर्म करने वाले थे।

' अपनी हार - जीत तुम जानो
कर्म हमारे हैं निष्काम। '[१]

गोविंद सिंह का आश्रम इतना पावन और अपंकिल था जहां शत्रुता का भाव तनिक भी दिखायी नहीं पड़ता था -

' हिंस्र जन्तु भी तपोवनों में
रहते हैं निज हिंसा भूल। '[२]

सन्त बन्दा बैरागी पैशाचिक कृत्यों के विरुद्ध आवाज़ उठाते थे और मनुष्यत्व का कीर्तन करते थे -

' मेरा राम रमा है मुझ में,
मैं चाहे मणि हूं या कांच,
जो मनुष्यता के नाशक हैं
मैं हूं उनके लिए पिशाच। '[३]

रणजीत सिंह ने अपने शूर - वीर शिष्यों से सत्याग्रह के बारे में बताया है -

' शूरो अब भी रखते हो तुम
सत्याग्रह करने की शक्ति
गुरुकुल - सम समयानुसार बल
दिखलाओ सच्ची गुरु भक्ति। '[४]

गुरु बन्दा हिन्दू और सिक्खों में मत- ऐक्य चाहते हैं और वे बताते हैं -

' किन्तु हिन्दुओं से सिक्खों का
मुझे विरोध नहीं इष्ट,
संप्रदाय है एक उन्हीं का
तत्व खालसा वीर विशिष्ट '[५]

१: गुरुकुल - पृ० १७४ २: वही०पृ० २२६ ३: वही० पृ० २३८ ४: वही०पृ० २६० ५: गुरुकुल - पृ० २४५

' गुरुकुल ' आद्यन्त बलिदान की भावना से ओतप्रोत काव्य है। गुरुकुल में जितने सिक्ख रहते थे वे सब जाति - धर्म के नाम पर बली हो गये। ये सब सिक्ख होने पर भी हिन्दू धर्म के विश्वासी एवं अनुयायी थे क्योंकि हिन्दू, सिक्ख, इस्लाम आदि धर्मों में इन्हें कोई भेद न था। ये जातीय एवं धार्मिक एकता को स्थापित करने के लिए जीवन्त अनवरत प्रयत्न करते थे और अन्त में अपने को भारतमाता के श्री चरणों पर समर्पित करते थे।

' गुरुकुल ' की रचना का उद्देश्य धार्मिक समन्वय के द्वारा आत्म-शुद्धि करना रहा है। इसके लिए कवि ने गान्धीवादी विचारों को इन सिक्ख-गुरुओं के चरित्रों द्वारा प्रस्तुत किया है। 'गुरुकुल ' देशीय साम्राज्यवाद एवं आतंकवाद के प्रति गांधीवादी मानवतावाद की प्रतिक्रिया है। यवनों के आक्रमण से भारत की दुर्दशा देखकर कवि का मन प्रतिक्रिया की आग भभक उठी और इसी प्रतिक्रिया जन्य अपने मानसिक भावों को इसमें व्यक्त करने का प्रयास किया है। इसकी पृष्ठभूमि में कवि ने सिक्ख गुरुओं की जीवनी का चित्रण करते हुए उनकी वीरता एवं संघर्षमय जीवन की महानता का गुणगान किया है।

१३ : अर्जन और विसर्जन :

इसकी कथा एक न होकर दो हैं। इसमें कवि ने अरबों के आक्रमण का चित्रण किया है। 'अर्जन ' में कवि ने दमिश्क के युवक जोनुस और यहां की राजपुत्री रुडोसिया की प्रेम कथा का वर्णन किया है जिसमें रुडोसिया पर गांधीवाद के प्रभाव को स्पष्ट किया है।' अर्जन ' की कथा को जोनस और रुडोसिया दव की प्रेम-कथा कहने के बदले रुडोसिया के त्याग और बलिदान की कथा कहना अधिक उचित होगा। ' विसर्जन ' में अफ्रीका के मूरों के द्वारा अरबों का पराजय हुआ। तब अरबों की रानी काहिना ने अपनी जनता को स्वतन्त्रता के लिए प्रयत्न करने की आज्ञा दी है। काहिना पर भी गांधीवाद का प्रभाव कुछ कुछ पड़ा है।

रुडोसिया के मन में अपने देश के प्रति बड़ी श्रद्धा और प्रेम था और

उसने अपने पति से देश - कल्याण के लिए बलिदान देने की प्रार्थना की - (भावी पति से)

' चाहती हूं, मेरे भावी पति भी स्वदेश के
संकट - निवारण में, वीरोचित भाग लें। '[१]

एक विधर्मी का कथन है कि विभिन्न धर्म के लोगों को समता की दृष्टि से देखने और उनसे नीति का व्यवहार करना चाहिए -

' एक ईश्वर की सृष्टि में
रहते सभी हैं। हमें भिन्न धर्मियों से भी
रखना पड़ेगा व्यवहार एक न्याय का। '[२]

इउडोसिया कामासक्त नारी होने पर भी अन्त में उसका मन बदल गया और उसने अपने को बलिदान कर दिया।

' -- -- तथापि मैं निराश तुम्हें सर्वथा
कैसे करूं ? अर्पित है देह यह लो, यहीं।
आओ वीर, पूरी करो तुम निज वासना। '[३]

कालिमा का कथन है -

' स्वतन्त्रता के अर्थ हमारे
निकट कौन सा मूल्य महान ?
-- -- --
जब तक जाती में अपने को
मान सकें हम स्वाधीन। '[४]

त्याग की इ महत्ता के बारे में कहा गया है -

- -

१: अर्जन और विसर्जन - पृ० ७
२: वही० पृ० १२ ३: वही० पृ० १८
४: वही० पृ० २८

' यह मत समझो, छोड़ रहे हो
यों ही अपना सब सुख - भोग
वहां सौगुना संग्रह होगा,
यहां करोगे तुम जो त्याग । '[1]

स्वतंत्र, निष्काम, सादगी से पूर्ण शांतिमय जीवन की ओर संकेत किया गया है -

' तपस्वियों - से रहे यहां हम
लेकर एक मुक्ति की चाह ,
माने बिना भूमि जो कुछ दे,
करें उसी पर निज निर्वाह । '[2]

सारे संसार की स्वतंत्रता की मांग है कालिमा के इन शब्दों में -

' नहीं चाहते हम धन - वैभव,
नहीं चाहते हम अधिकार,
बस स्वतन्त्र रहने दे हमको,
और स्वतंत्र रहे संसार । '[3]

इलोसिया और कालिमा दोनों वीर नारियां थीं । इलोसिया धर्म - निष्ठा एवं स्वराज्य - प्रेमी थी । उसने अपने प्रेमी जोनस का अस्वीकार करते हुए अपने कुल की मर्यादा को उचित ही रखा था क्यों कि बाद में वह भीरु एवं देश-द्रोही बन गया था । उसने अपनी कुल - रक्षा आत्म-बलि से की है । कालिमा भी बड़ी देश-प्रेमी नारी थी । उसने शस्त्रों से अपने देश को स्वतंत्रता प्राप्त करने का प्रयत्न किया है । यह काव्य ' भारत छोड़ो ' आन्दोलन की पृष्ठभूमि पर रचा गया है । इस दृष्टि से इसमें गान्धीवाद का प्रतिपादन हुआ है ।

१४- सिन्धु :

यह गुप्तजी द्वारा रचित निरास्थानक वृहत् निबन्ध - काव्य है ।

१: अर्जन और विसर्जन - पृ० ३० २: वही० पृ० ३०
३: वही० पृ० ३१

इसमें कवि ने धार्मिक एकता , सांस्कृतिक समन्वय, हिंदु-जातीय - समता, देशोद्धार, शांति - स्थापना आदि के महान उद्देश्य से हिन्दू जनता को नैतिक उपदेश देने का प्रयास किया है। इसकी विषय - वस्तु को अनेकों छोटे छोटे उप- शीर्षकों में विभक्त किया गया है और उन सब का अलग अलग नाम भी दिया गया है। इसकी रचना सन् १६२५ के निकट हुई जब भारत में राष्ट्रीय उत्थान की हलचल हो रही थी। पराधीन भारत की शिथिल एवं करुणा-जनक दशा को देखकर कवि अत्यंत दुःखी तथा विकल हुए और इस दशा का सुधार करने के लिए उन्होंने इसमें जनता को नव- जागृति का नव- संदेश दिया है।

इस काव्य के आरंभ में ही भारत की परतंत्रता पर दुख प्रकट किया गया है। कवि ने आर्य - हिन्दुओं का गुणगान किया है जो जन्म से ही अहिंसक थे और अपनी संस्कृति और धर्म का भारतभर में प्रचार किया। उन्हें यही अभिलाषा थी-

'यहां न दुःख न मोह न शोक,
आवें सुख पावें सब लोक ।'[१]

हिन्दू और उनके अवतारवाद की महिमा गायी गयी है -

'हिन्दू धन्य तुम्हारा धर्म ,
-- --
हुए तुम्हीं में बारंबार ।'[२]

त्याग, तपस्या और बलिदान आदि हिन्दुओं की देन माने गये हैं -

'आर्य वंश की है क्या बान ?
-- --
जिसका अब भी प्रकट प्रताप ।'[३]

गांधीवाद का प्रभाव :

इस काव्य में कवि ने देश की उन्नति और जागृति के लिए गांधीवादी

- -

१: हिन्दू -- गुप्त जी - पृ० ३७ २: वही० पृ० ४० ३: वही० पृ० ४४

विचारों का प्रचलन एवं प्रसरण को उचित मानकर उन्हें अपनाया है। इस काव्य में इन्हीं के द्वारा अपने उद्देश्य को पूरा करना चाहा है। ' हिंदू ' में कही गयी प्रत्येक बात पर गांधीवाद का असर दिखाई पड़ता है। इस काव्य पर कवि के गांधीवादी व्यक्तित्व का प्रभाव पूर्णतः लक्षित होता है।

कवि ने यहां भेद - भाव को मिटाकर एकता की स्थापना करने का स्वर स्वर मुखरित करते हुए जातीय एकता के लिए आमंत्रित किया है -

' छोड़ परस्पर वैर - विवाद,
करो आर्य - गण अपनी याद। '[1]

उच्च- नीच और जाति- विशेष का भाव दूर करने का आदेश कवि ने किया है -

' अपना चातुर्वर्ण्य विधान,
है गुण - कर्म - स्वभाव - प्रधान।
छोड़ो ऊंच- नीच का दंभ ,
सम है हम सब का आरंभ। '[2]

कवि ने आगे बताया है कि हिंदू और मुसलमान सब एक ही प्रभु की संतान है और मनुष्यत्व ही मत से भी श्रेष्ठ है। यहां समन्वय - भावना की झलक मिलती है।

' हिंदू मुसलमान क्रिस्तान ,
परम पिता की सब संतान।
सभी बंधु हैं लघु या ज्येष्ठ ,
मत से मनुष्यत्व है श्रेष्ठ। '[3]

और एक जगह पर कवि ने जाति- भेद को मिटाने की इच्छा प्रकट की है -

' मेटो वर्णों के उपभेद,
बढ़े मेल मिट जावे खेद।'[4]

आगे भी कवि ने यही बात करते हुए कहा है कि मुसलमानों को अपना बैराग्य तजकर

१: हिंदू - गुप्त जी - पृ० ४७ २: वही० पृ० ६१ ३: वही० पृ० १०४
४: वही० पृ० १५२

हिन्दुओं से प्रेमपूर्ण व्यवहार करना चाहिए ।[1]

कवि सत्याग्रह को स्वीकार करने के पक्षपाती थे और स्वाभिमान की रक्षा के लिए निरुपद्रव एवं निर्दोष सत्याग्रह को स्वीकार करने का अनुरोध किया है -

' अब भी चेतो, न हो उदास,
देता रहा तुम्हें इतिहास ।
बुरी बात की भी क्या टेक ?
समुचित है सत्याग्रह एक । '[2]

नारी का उद्धार कवि चाहते थे । उनके कर्तव्य के क्षेत्र में उतरने की आवश्यकता पर पर प्रकाश डाला गया है । उन्होंने बे- जोड़ विवाह को समाप्त करने और विधवा- नारी का उद्धार करने की बात बतायी है -

' यही तुम्हारा है स्वामित्व
कि तुम करो ब्याहों पर ब्याह ,
पर विधवाएं करें न आह ;
-- -- --
छोड़ो ये बे जोड़ विवाह,
होता है जिससे गृह - दाह । '[3]

बलिदान को देश की उन्नति के लिए अनिवार्य मानते हुए उसकी महिमा गायी गयी है।-

' मातृभूमि की वेदी मान,
करो धर्म - संगत बलिदान ।
-- --
करो, करो कुछ आत्मत्याग,
जिस पर है मां० का अनुराग । '[4]

- -

१: ' हिन्दू मुसलमान की प्रीति, मेटें मातृभूमि की प्र भीति । ' - हिन्दू - पृ० २०१
२: वही० पृ० ५४ ३: वही० पृ० ६२- ६४ ४: वही० पृ० ७५

अवतारवाद में कवि विश्वास रखते थे । अत: उन्होंने प्रस्तुत काव्य में विजयदशमी, राम नवमी, जन्माष्टमी, नवरात्रि, होली, दीवाली आदि हिन्दव - उत्सवों का चित्रण करके भगवान के विविध अवतारवादी रूपों का वर्णन किया है जिनके द्वारा देश का कल्याण संभव माना गया है । भगवान अत्याचार और अनीति से देश की रक्षा तथा उन्नति के हेतु युग - युग में अवतार लेकर आते हैं और ' गीता ' के इस कथन की पुष्टि की गयी है ।[1]

मारत में अनेक दीन- दलित किसान रहते हैं जो अकाल और दरिद्रता के गर्त में पड़कर, बुरे अन्ध-विश्वासों के जाल में जकड़कर ऐसी स्थिति को भोगते रहे हैं । अत: इनका उद्धार करने का आदेश कवि ने की है ताकि उससे ही देश की उन्नति हो सकती है -

' अपना राष्ट्र जाति निज जीर्ण
है ग्रामों में ही विस्तीर्ण ।
जाकर वहां जलद सम आप
मेटो तुम उसका उत्ताप । '[2]

देश की प्रगति के हित देश - सेवक में त्याग- मनोवृत्ति का होना आवश्यक है । अत: कवि ने उसकी प्रशंसा की है जिसमें आवश्यकता से अधिक धन प्रत्येक देशवासी के पास न रखने का उपदेश भी दिया गया है ।

' करके थोड़े में निर्वाह,
छोड़ो बहु वेतन की चाह ।
करना है यदि देशोद्धार
तो कुछ त्याग करो स्वीकार । '[3]

यहां अपरिग्रह और निर्लोभता पर परोक्षत: प्रकाश डाला गया है ।

- -

१: ' यदा यदाहि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत :
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहं ।
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृतां
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे । ' - गीता- सर्ग ४ - श्लोक ७,८

२: हिन्दू - पृ० ८५ ३: वही० पृ० ८५

गान्धीजी के विचार में मानव- जीवन का मूल मन्त्र था स्वावलंबन एवं स्वाधीनता । स्वतन्त्र अस्तित्व को ही कवि ने देश के लिए श्रेय माना है और स्वदेशी शासन की अनिवार्यता पर भी बल दिया है -

' स्वावलंब ही तो है स्वर्ण
उस पर सब कुछ हो उत्सर्ग ।
-- --
सुनो, स्वदेशी शासन मात्र
कर सकता है तुम्हें सुपात्र ।
-- --
वही बच सकता है अन्न
कर सकता है फिर संपन्न । '[1]

गान्धीयुग के प्रारंभ तक देश में अछूतों का अनादर हो रहा था । लेकिन गांधीजी ने इसे देश के कल्याण के लिए अनुचित माना और उसका समूल निवारण आवश्यक बताया । यही प्रार्थना कवि ने भी यहां की है -

' करो अछूतों का उद्धार,
उन्हें सिखाओ शुद्धाचार ।
वे समाज के रक्षक अंग,
होने पावें विकृत न भंग । '[2]

निःसहाय, अनाथ, एवं शोषित जनता की सेवा करना देश के कल्याण की सुधारवादी पद्धति का एक प्रमुख अंग है । गान्धीजी ने इसका समर्थन प्रसंगानुसार किया भी है -

' जो जन हों असहाय अनाथ,
रक्खो उनके सिर पर हाथ ।
शिक्षित बनें अकिंचन बाल,
निकलें वे गुदड़ी के लाल । '[3]

१: हिन्दू - पृ० ८६, १४० - १४१ २: वही० पृ० १११ ३:वही० पृ० १२२-१२३

अहिंसा का विवेचन करते हुए कवि ने एक जगह छुरी - तलवार की जगह सुई - सलाई का हार चाहा है जिसमें अहिंसा और चरखा संबंधी कवि का विचार प्रकट हुआ है -

' घर घर हो नव-कला - प्रचार,
मिटे कलह - कुल का संहार ।
चले न कहीं छुरी तलवार,
रहें न सुई - सलाई हार । '[१]

गान्धीजी ने गो - हत्या को महापाप बताते हुए देश में गो - रक्षा के ही प्रचार को पुण्य माना है । इसका समर्थन कवि ने इन पंक्तियों में किया है -

' भारत का धन गोधन मात्र,
है पहले रक्षा का पात्र ।
-- --
छोड़ो उस शोणित की चाह ,
बहने दो फिर पय: प्रवाह । '[२]

देश की आर्थिक अवनति होने के कारण जनता प्रतिदिन दरिद्र बनती जाती है जिसे सुलझाने के लिए कृषि - सुधार पर ध्यान देना आवश्यक समझा गया है -

' कृषि - सुधार में करो प्रयत्न ,
उपजें अन्न - तुल्य ही रत्न । '[३]

गान्धीजी आत्म-विश्वास और आत्मबल के समर्थक थे और दोनों अपनी योग्यता के कारण उनके राजनीतिक कार्यक्रम में उज्ज्वल होकर चमकते रहते थे । उनकी असाधारण जीत के कारण भी ये दोनों रहे हैं । कवि में भी गहरा आत्म- विश्वास वर्तमान है और उन्होंने भी इसका उपदेश दिया है -

---

१: हिन्दू - पृ० १२३   २: वही० पृ० १६८   ३: वही० पृ० १२५

'करो न अटल मृत्यु-भय व्यर्थ
रहो समुद्यत उसके अर्थ ।
बनो आत्म - साक्षी तुम आप,
स्वयं मिटेंगे सारे पाप ।'[१]

कवि अहिंसा और सत्याग्रह में दृढ़ विश्वास रखते थे । उन्होंने समस्त जनता की श्रद्धा को इस ओर आकृष्ट किया है । कवि का साधु - सन्तों से कहना है -

'झेल सकें वे सारे कष्ट ,
न हो अहिंसाव्रत से भ्रष्ट ।
रखें सत्याग्रह, सौजन्य,
रहें राष्ट्र के रक्षक धन्य ।'[२]

कवि ने गांधीवादी विचारों के प्रस्तुतीकरण के बीच में गान्धीजी के बारे में भी कुछ कहे बिना नहीं रहना चाहा है । उन्होंने हिन्दुओं के पूर्वजों की महिमा गाते वक्त गान्धीजी की महिमा गायी है -

'जगती भर में सबसे ज्येष्ठ
रहे तुम्हारे पूर्वज श्रेष्ठ ।
अब भी कहां मिलेगा अन्य
गान्धी - तुल्य वीर कुल - धन्य ।'[३]

गान्धीजी निर्भीक व्यक्ति थे, अत: वे सत्याग्रह का पालन कर सके अर्थात् निर्भीकता का दूसरा नाम ही है सत्याग्रह ।

'जिन्हें नहीं है भय का नाम,
सत्याग्रह है उनका काम ।'[४]

जातीय सुधारवादी दृष्टि से देखने पर भी यह एक सफल काव्य है ।

१: हिन्दू - पृ० १२७ २: वही० पृ० १४२ ३: वही० पृ० ६० ४:वही०पृ० १३५

सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों के परिपार्श्व में जातीयता के विनाश के द्वारा जनता का उद्धार कवि का प्रधान उद्देश्य माना गया है। अत: इसमें मानवतावादी दृष्टिकोण से काम लिया गया है। डा० कमलाकान्त पाठक ने जातीय काव्य कहा है।[१] इसमें जातीय - ऐक्य - भावना मुखरित हो उठी है। जाति-भेद का उल्लेख हर जगह किया गया है और उसे दूर करने की इच्छा भी प्रकट की गयी है। इस विचार से कवि ने भारतीय उत्सवों को सांस्कृतिक रूप प्रदान किया है। हिंदू लोग आरंभ से ही अहिंसावादी रहे हैं ; उनमें बलिदान, त्याग, तपस्या, एकता, प्रेम आदि जो भावनाएं विद्यमान हैं, उन्हीं का उल्लेख करते हुए उनकी प्रशंसा की गयी है।

काव्य के बीच बीच में नैतिक उक्तियों और सात्विक उपदेशों का विवेचन हुआ है। गान्धीजी से प्रभावित होने के कारण सुधारवादी कार्यों के लिए उन्होंने गांधीवादी विचारों को अपनाकर उनका उल्लेख किया है। देश में सर्वत्र समन्वय की स्थापना वे चाहते थे। गान्धीवाद में उन्होंने समन्वय का दर्शन किया है। गान्धीवाद, साम्राज्यवाद जैसी बुरी क्रियाओं के प्रति अहिंसात्मक तथा निर्दोष प्रति-क्रिया है जिसके कारण वह सर्वमान्य एवं सर्वग्राह्य बना है।

कवि मैथिलीशरण गुप्त गान्धीजी के विचारों और सिद्धान्तों को रचनात्मक स्वरूप देने में इतना दत्तचित्त रहे हैं कि उनके प्रत्येक काव्य में अवसरों- अनवसरों पर इनका उल्लेख किया गया है। ' हिन्दू ' इसका सप्रमाण उदाहरण है। हिन्दू-जनता वास्तव में पुरान- पंथी है, मगर उन्होंने इनको आधुनिक विचारवाले के रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। फिर भी बीच बीच में खादी चरखा आदि गान्धीय चीजों का भी प्रस्तुतीकरण हुआ है; हिन्दू और मुसलमानों का स्वतन्त्र अस्तित्व रहने पर भी उन दोनों की एकता की आवश्यकता पर ज़ोर दिया गया है।

संक्षेप में कहें तो वह एक राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक सुधारवादी मानव- काव्य है जिसमें जातीय सुधार के द्वारा भारत की उन्नति का समर्थन किया गया है। इसके द्वारा भारत में शांति और समाधान की चिर- प्रतिष्ठा

- -

१: हिन्दू विषय - प्रधान जातीय काव्य है - मैथिलीशरण गुप्त : व्यक्तित्व और काव्य - डा० पाठक - पृ० २८२

का आग्रह कवि ने प्रकट किया है ।

१५ - काबा और कर्बला :

यह एक स्वतन्त्र खण्डकाव्य है । इसके नायक मुहम्मद साहब हैं । इमाम हुसैन के बलिदान का चित्रण किया गया है । उन्होंने अपने इस्लाम धर्म की निष्ठा की ओर अपने परिजनों और अनुयायियों को भी बलिदान के पथ पर बढ़ने का अनुरोध किया । कवि ने इसमें, अपने देश में सुख - शांति की स्थापना को अपना उद्देश्य मानकर, उसके लिए मैत्री भावना की प्रतिष्ठा करने का प्रयास किया है । अत: कवि ने कहा है - ` अपने देश में आन्तरिक सुख - शान्ति के लिए हमको हिल-मिल कर ही रहना होगा । समान दु:ख ही हमारी पारस्परिक सहानुभूति का आधार नहीं होना चाहिए । यह तो एक विवशता का विषय है । हमें एक दूसरे के प्रति उदार और सहिष्णु होना होगा । एक दूसरे से परिचय और प्रेम बढ़ाना होगा । हमारी मैत्री - भावना ` प्रेम एवं परोधर्म: ` पर ही प्रतिष्ठित हो सकती है ।`[1]

इस्लाम के वीरों के बलिदानों को देखकर कवि के मन में उनके प्रति सहानुभूति एवं श्रद्धा पैदा हुई । इससे प्रेरित होकर ही कवि ने इस काव्य का सृजन किया है ।[2] कवि ने गान्धीजी की इस बात से कि जब अंग्रेज लोग भारत से जाएंगे, तब भारत के जन सोचेंगे कि सब के मिलकर रहने में ही देश की भलाई होगी । इसी विचार का समर्थन कवि ने प्रस्तुत काव्य में किया है । अत: इस काव्य पर गांधीवादी प्रभाव लक्षित है ।

इस्लाम के प्रभु मुहम्मद नबी ने जनता को उच्च - नीच तथा छूत - अछूत की भावना को हटाने का उपदेश दिया है -

- -

१: काबा और कर्बला - आवेदन - पृ० ५

२:` कवि ने स्वयं सहानुभूति और सम्मान के वश होकर इस्लाम -विषयक `काबा और कर्बला ` की रचना क सन् १९४२ में की । `
- मैथिलीशरण गुप्त : व्यक्ति और काव्य -
डा० कमलाकान्त पाठक - पृ० २२१

' प्रभु समक्ष, सोचो टुक मौन,
बड़ा कौन, छोटा है कौन ?
तने न भौंह, न खिंचे कमान,
उसके जन हम सभी समान । '१

हजरत सत्य पर दृढ़ रहने वाला है और सत्य का पालन करने वाला है -

' मैं न सत्य से मुंह मोड़ूंगा ,
और न अपना पथ छोड़ूंगा । '२

धन - मद का विरोध प्रकट किया गया है -

' जब तक कन्धों पर चढ़ा धन के मद का भार,
सकल स्वर्ग की सीढ़ियां कैसे होंगी पार ? '३

धर्मनिष्ठ मुसलमानों को इन दुर्गुणों का हामी न होना चाहिए -

' पर - धन - हारी, मद्यपी, व्यभिचारी, ठग, चोर,
' मोमिन ' हो सकते नहीं कामी, कुटिल, कठोर । '४

स्वार्थ का त्याग करना परम आवश्यक माना गया है -

' चाहे जो अपने लिए, वही और के अर्थ,
केवल स्वार्थ विचारना है अत्यन्त अनर्थ । '५

गान्धीजी द्वारा विवेचित स्वावलंब - जीवन की महत्ता का प्रतिपादन कवि ने किया है-

' प्रभु ने दो दो कर दिये करो कमाई आप,
पराधीनता - सम नहीं और दूसरा पाप । '६

१: काबा और कर्बला - पृ० १५ २: वही० पृ० २४
३: वही० पृ० ३६ ४: वही० पृ० ३६
५: वही० पृ० ० ४० ६: वही० पृ० ४०

गान्धीजी सर्व- धर्म पालक थे; उन्होंने किसी धर्म की अवहेलना नहीं की है। उन्होंने बताया है कि प्रत्येक धार्मिक को अपने अपने धर्म का पालन करने का अधिकार रहता है और इस कार्य में सब स्वतंत्र हैं।

> ' धर्म हैं सो धर्म हैं, जो पन्थ हैं सो पन्थ हैं,
>
> -- -- --
>
> स्वमत के संबंध में हम सब समान स्वतंत्र हैं। '[१]

सन्तों का यह कथन गान्धीजी पर लागू होता है -

> ' शुद्ध होकर तुम जहां विचरो वहीं कल्याण,
> स्थान से बनते नहीं जन, आप जन से स्थान। '[२]

हिन्दु मुसलिम एकता पर अकबर यों बताते थे -

> ' प्रकट त्रिवेटी - तट के मन में
> एक और संगम की चाह,
> हिंदू - मुसलमान का मानस -
> मिलनतीर्थ वह महा प्रवाह।
>
> -- --
>
> स्वयं सिद्ध तू अकबर शाह। '[३]

गान्धीजी भगवान रामचन्द्र जी के अनन्य भक्त थे और वे इस प्रकार हमेशा कहते थे कि जिसे भगवान में अगाध भक्ति है उसे कोई भय नहीं लगता। यहां भी यही कहा गया है कि जो सच्चा राम भक्त है उसे माया का स्पर्श तक नहीं होता -

> ' राम जिसे मिल जाय, उसे मोहे क्या माया ?
> पाकर ऐसा पुरुष क्या नहीं किसने पाया ? '[४]

१: काबा और कर्बला - पृ० ४१ २: वही० पृ० ५१
३: वही० पृ० ५६ ४: वही० पृ० ६५

शत्रुतावाली वैर भावना को मिटाकर शत्रु तथा मित्र में एकता लाने का प्रयत्न किया गया है-

' वैरी हो या बन्धु, विचारो तुम विवेक से
एक ईश के अखिल जीव आत्मीय एक से । '[१]

जिस प्रकार गान्धीजी बड़े ईश्वर विश्वास के साथ अपना जीवन बिताते थे उसी प्रकार ईश्वर भक्ति में अपना तन - मन अर्पित कर प्रयत्न करने से ही जन- जीवन सफल होगा ।

' तन प्रभुवर के लोक कार्य में, मन प्रभुवर में,
जन का जीवन तभी सफल है सचराचर में । '[२]

मुसलमानों के त्याग और बलिदान - भावना का गुण- कीर्तन करते हुए कहा गया है-

' यही कर्बला दीख रहा । देखो वह आगे ,
-- -- --
स्वेद बहाना आप मरुस्थल ताप - विकल है । '[३]

जातीय एकता का समर्थन किया गया है -

' बन्धु, बिछुड़ कर आज मिलेंगे हम सब फिर भी,
होगा अपना यही मिलन चिर और रुचिर भी । '[४]

मातृभूमि के कवि के मन में श्रद्धा और प्रेम है, भारत की स्वतन्त्रता के लिए मरना भी - मंगल माना गया है । -

' क्या विपत्ति में कर्मभूमि से हम मुंह मोड़ें ?
-- -- --
जन्मभूमि के लिए मरण भी मंगल जन का । '[५]

१: काबा और कर्बला - पृ० ६५ २: वही० पृ० ७२
३: वही० पृ० ८१ ४: वही० पृ० ९१
५: वही० पृ० ९४

इस कथन में अहिंसा का प्रतिपादन किया गया है -

> " रखना होगा हमें रुधिर देकर भी पानी,
> हिंसा हमने नहीं, उन्होंने हमसे मानी । "[1]

विधवा नारी भी बलिदान की भावना से उत्तेजित हो उठती थी । इसलिए वह अपने पुत्र से भी बलि होने की प्रार्थना करती दिखाई पड़ती है -

> " बेटा, बलि जाऊं,
> दे तू शोणित - दान, दुग्ध निज मैं भर पाऊं । "[2]

हिन्दू - मुसलमानों के बीच में मित्रता स्थापित करने के उद्देश्य से प्रस्तुत काव्य की रचना की है । उन्होंने हिन्दू धर्म और इस्लाम धर्म के सिद्धान्तों तथा विचारों में समानता दिखाई है । क्षत्रियों के समान मुसलमान भी शूर - वीर थे, अहिंसक थे और बलिदानी भी ।

" बाबा और कर्बला " एक सांस्कृतिक समन्वयात्मक खण्डकाव्य है । इस धार्मिक समन्वय के द्वारा कवि ने मानवता का आदर्श प्रस्तुत करने का प्रयास किया है । यह एक गान्धीवादी काव्य है ।

१६- आत्मोत्सर्ग :

यह काव्य भी सियारामशरण जी की छठी कृति है । यह एक खण्डकाव्य है जो अमर शहीद श्री गणेशशंकर विद्यार्थी जी पर लिखा गया है । इसकी कथावस्तु को तीन खण्डों में विभाजित किया गया है । विद्यार्थी जी की जीवन- कथा और आत्म बलिदान ही इसका विषय है । इस काव्य की रचना कानपुर नगर में हुई है । जहां हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच में झगड़ा हो रही थी और विद्यार्थी इस झगड़े का अन्त कर उनमें एकता प्रतिष्ठित करने के कार्य में व्यस्त थे । विद्यार्थी जी ने अपने जीवन के अधिकांश क्षण हिन्दु - मुसलिम - ऐक्य के लिए बिताये और अन्त में बहुत ही अप्रतीक्षित रूप में उनकी आत्मा का उत्सर्ग भी हो गया । उनके ऐसे आत्मोत्सर्ग

१: बाबा और कर्बला - पृ० ६५ २: वही० पृ० ६८

की व्यंजना ही इस काव्य में हुई है। उनकी जीवन - कथा के साथ कानपुर की साम्प्रदायिक झगड़े का भी विस्तृत रूप से वर्णन किया गया है। उनके आत्म-बलिदान से प्रेरणा पाकर ही कवि ने प्रस्तुत काव्य रचा है और यह उनकी श्रद्धांजलि के रूप में उनके चरणों पर समर्पित है।

इस काव्य में उनकी जीवन- कथा के चित्रण के लिये हिन्दू - मुसलिम झगड़ा ही पृष्ठभूमि तैयार करती है। इस घटना का चित्रण बड़े विस्तार के साथ हुआ है। हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच में भीषण झगड़ा हो रहा था। इसे देखकर विद्यार्थी जी चुपचाप रह न सके और वे उस स्थान पर दौड़ चले जहां झगड़ा हो रहा था। इस काव्य में विद्यार्थी जी के चरित्र पर गान्धीवाद का प्रभाव दिखायी पड़ता है।

<u>चरित्र चित्रण</u> :

विद्यार्थी जी स्वभावतः शान्ति और एकता के पुजारी थे। किसी में भी कोई झगड़ा अथवा नीरसता का पैदा होना वे नहीं चाहते थे। वैसा ही हिन्दू - मुसलिम - वैमनस्य को वे नहीं चाहते थे जिसका अन्त करना उनका परम- लक्ष्य था। अतः इस दृष्टि से वे शत्रुओं के साथ मित्रता तथा शान्त रूप से व्यवहार करते हुए शत्रुओं का दिल बहलाने का अनुरोध करते थे -

' अरे भाइयो, कुछ तो सोचो,
यह क्या करने जाते हो ;
शत्रु नहीं सम्मुख हैं भाई ;
किन पर हाथ उठाते हो। '[१]

विद्यार्थी जी राम और रहीम में अभेदता स्थापित करते हुए बताते थे कि नाम अनेक होने पर भी नामी एक ही है। -

' नहीं दूसरा है वह कोई,
उसे रहीम कहो या राम ',

१: आत्मोत्सर्ग - सियाराम शरण - पृ० ११

भिन्न उसे कर सकते हो क्या ,
देकर भिन्न भिन्न कुछ नाम । '[1]

गान्धीजी का मत यह था कि जिस व्यक्ति से जैसा व्यवहार करते हैं, वैसा ही व्यवहार वह हम से भी करेगा । गान्धीजी को दूसरों से प्रेमपूर्ण व्यवहार का सुफल ही प्राप्त हुआ है । इसका कारण तो यही है कि गांधीजी दूसरों से अत्यंत कोमलता और स्नेह के साथ ही व्यवहार करते थे । इसी का समर्थन यहां विद्यार्थी जी ने भी किया है -

' प्रेम करोगे प्रेम मिलेगा,
द्वेष करोगे तो विद्वेष,
उसी एक के बन्दे हैं सब ,
मन से दूर करो यह त्वेष । '[2]

विद्यार्थी जी के मतानुसार किसी का बदला या प्रतीकार लेना अपने ही गौरव को नष्ट करना होता है -

' जैसे को तैसा होना,
इसके लिए गर्व करते हो ?
यह तो है गौरव खोना । '[3]

उन्होंने वीर युवकों को वीरता और अहिंसा की महिमा बताते हुए कहा है कि किसी की हत्या करने में वीरत्व चमकता नहीं, निराघात रूप से उसकी रक्षा करने में ही अहिंसा झलक उठती है -

' हत्या में वीरत्व नहीं है ,
यह तो है क्रूरों का कर्म ,
निधन नहीं, रक्षा करना ही
है सच्चे शूरों का धर्म । '[4]

न्याय के मार्ग पर चलने और सच्चे विचारों को पालने का उपदेश दिया गया है -

---

१: आत्मोत्सर्ग - पृ० २१ २: वही० पृ० २२ ३: वही० ४४
४: वही० पृ० ४५

' न्याय- विचार न छोड़ो भाई,
दूर करो यह दारुण रोष,
वही स्वयं तुम करो न
जिसके लिए दूसरों को दो दोष । '[१]

विद्यार्थी जी हिंसा के कट्टर विरोधी थे और हिंसात्मक मारकाटों और अस्त्र - शस्त्रों की निंदा करते हुए अहिंसा की प्रतिष्ठा की है -

' हिंस्र भाव पर भस्मासुर-से
होते हैं सब अस्त्र विफल
भस्मीभूत बना सकता है
उसे उसी का पापानल । '[२]

उन्होंने जनता को बुद्ध और बापू की प्रभुता पाकर अहिंसा का भक्त बनाने का उपदेश दिया है । उनका पूर्ण विश्वास यह था कि हिंदुओं और मुसलमानों के बीच के द्वन्द्व को समाप्त कर उनमें ऐक्य की प्रतिष्ठा वे कर सकेंगे । अतः उन्होंने जनता पर मधु-मिश्रित करुणा की दृष्टि डालकर, उनको इतनी अधिक सांत्वना प्रदान की कि उनके सुमन से प्रफुल्लित नेत्रों से आनंदाश्रु टपकने लगे । उस समय जनता के लिए एकमात्र रक्षक वे ही थे । हिंदू मुस्लिम एकता की इसी आशा से वे यों कह उठे -

' हिंदू - मुसलमान दोनों ही एक डाल के हैं दो फूल
और एक ही है दोनों का, बड़ा बनाने वाला मूल ।। '[३]

विद्यार्थी जी किसी के निरुत्साहित करने की भीषण चेतावनी को नहीं मानते थे । जातीय एकता की प्रतिष्ठा के तीव्र यत्न में निरत रहने वाले विद्यार्थी को अपने प्रयत्न से पीछे हटाने का प्रयास करने वाले एक व्यक्ति से उनका कथन यह था कि अगर इसमें पराजय मिले या जय मिले, आगे ही बढ़ेंगे । -

---

१: आत्मोत्सर्ग - पृ० ५०
२: वही० पृ० ५१
३: वही० पृ० ५६

' बढ़ते हुए धर्म के पथ में
प्रकट पराजय भी जय है ।'[1]

कुछ लोगों ने उनको बांधने का प्रयत्न किया । मगर उनकी वाणी की प्रगल्भता ने इन लोगों को पराजित किया । वे अपने साथ चार स्वयं सेवकों लेकर चले जिनमें दो हिन्दू और दो मुसलमान थे जो मारने केलिए नहीं बल्कि मरने केलिए तैयार थे । यह तो हुई दो हिन्दुओं और दो मुसलमानों के बीच की एकता । इसी प्रकार उन्हें अन्य असंख्य जनता को एकता के सूत्र में बांधना चाहिए था । आगे वे अपना प्रयत्न करते ही रहे। इसी समय कुछ मुसलमानों ने उन्हें घेरकर उनकी हत्या की । गान्धीजी की हत्या भी इसी प्रकार किसी पाखण्डी के गोली मारने से हुई थी । उन्होंने ससन्तोष मृत्यु को स्वीकार किया विद्यार्थी जी ने गान्धीजी के समान भयभीत होकर भागना नहीं चाहा । वे सधैर्य उनके सामने खड़े हुए और यों कहा -

' मुझे खून की प्यास तुम्हारी
लो तैयार खड़ा हूं मैं ।'[2]

विद्यार्थी जी ने गान्धी जी की ' जीने की राह ' की लीक पर चलते हुए अपना जीवन बिताया था । अत: उनकी चारित्रिक विशेषताओं, सिद्धान्तों और और विचारों से विद्यार्थी जी खूब प्रभावित हुए थे । गान्धी जी के अनुसार विद्यार्थी जी ने भी बलिदान व भावना को महत्व दिया था । गान्धी जी का अहं - शून्य व्यक्तित्व ही समस्त कार्य- व्यवहारों में सहायक बना था । विद्यार्थी जी भी अहिंसा के उपासक थे और उनका व्यक्तित्व अहंभाव- हीन था । इसीसे प्रभावित होकर ही सियारामशरण गुप्त ने उनके निर्लोभ और निर्मल व्यक्तित्व का चित्रण इस काव्य में किया है । विद्यार्थी जी जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में स्वतन्त्रता चाहते थे । इसीलिए उन्होंने हिन्दु- मुसलिम एकता की स्थापना के लिए कठिन प्रयत्न किया ।

यह काव्य गांधीवादी विचारधारा से पूर्णत: ओतप्रोत है । विद्यार्थी जी का अहिंसात्मक व्यक्तित्व ही इसका सबसे पहला उदाहरण माना जा सकता है । जिस प्रकार गांधीजी ने प्रेम की महत्ता के गीत गाये थे, शत्रुओं को भी

- -

१: आत्मोत्सर्ग - पृ० ६२ २: वही० पृ० ७४

मित्र के रूप में अपनाने का उपदेश दिया था, बलिदान भावना की प्रशंसा की थी, अन्त में अपनी आत्मा की आहुति दी थी उसी प्रकार विद्यार्थी जी में भी हम इन सभी व कार्यों का दर्शन पा सकते हैं। यह तो स्पष्ट है कि विद्यार्थी जी गांधीजी से पूर्णतः प्रभावित थे।

गान्धीजी की हृदय - परिवर्तन - संबंधी बातों का समस्त कवियों ने प्रतिपादन किया है। सियारामशरण गुप्त जी ने अपने अधिकांश काव्यों में `हृदय-परिवर्तन` की बातों पर विचार किया है। यह तो गान्धीवादी विचारधारा का एक अभिन्न एवं प्रधान अंग है। मिश्रजी कहते हैं - " गांधीजी का हृदय- परिवर्तन सिद्धान्त यही था - इन संपत्तिशालियों में दया, सहानुभूति, संवेदना और परोपकार के भाव जागृत हों जिससे वे अपनी संचित संपत्ति गरीबों के हितार्थ व्यय कर सकें और उस संपत्ति पर एकाधिकार की भावना उनमें न हो।[1] प्रस्तुत काव्य में भी हृदय- परिवर्तन संबंधी बात वर्णनीय है। जब किसी हिन्दू ने विद्यार्थी से जलपान करने का अनुरोध किया तब उन्होंने उससे मना किया और निःसंकोच यों कहा -

` भिक्षण किया है निर्दयता से
कितने दीन - अनाथों का ,
कैसे पिऊं यहां यह जल मैं
रक्त भरे इन हाथों का ? `[2]

विद्यार्थी के इस कथन का असर उस हिन्दू पर अच्छी तरह पड़ा और उसका हृदय - परिवर्तन हो गया। गान्धीजी ने अहिंसा के व्यावहारिक रूप को सत्याग्रह कहा है और इसे चलाने के लिए आत्म शक्ति की आवश्यकता अनिवार्य है। ऐसे सत्याग्रह का रूप गुप्तजी को इस कृति में मिलता है। विद्यार्थी जी अपने आत्मबल से ही हिन्दू और मुसलमानों के बीच के द्वन्द्व को मिटाने में सफल हुए।

इस काव्य में विद्यार्थी के अहिंसा-मूलक सद्व्यवहारों का मूल्यांकन किया गया है। विद्यार्थी जी अहिंसा के उपासक एवं पालक थे। उन्होंने जनता से अहिंसा के मार्ग पर चलने का अनुरोध किया है। उन्होंने इस काव्य की एक जगह पर

- -

१: सियारामशरण गुप्त : व्यक्तित्व और कृतित्व - डा० शिवप्रसाद मिश्र, पृ० ६५

२: आत्मोत्सर्ग - पृ० ५१

अहिंसा - शक्ति के बल पर धर्मान्धताको चुनौती दी है -

> ' हाजिर मेरा खून, तुम्हारा
> फूले - फले अगर इस्लाम,
> जिसकी खुबी बतलाते हो
> भाई - चारे का पैगाम । '१

यहां वे स्वयं अपने को बलिवेदी पर अर्पित करने के लिए तैयार हुए दिखाई पड़ते हैं । अत: हम देखते हैं कि विद्यार्थी जी अपने जीवन - काल के आद्यन्त गान्धीवादी विचार-धारा के सिद्धान्तों का पालन करते आये थे ।

उनका निधन हिन्दी के अन्य अनेक कवियों का काव्य- विषय बन गया है । लेकिन सियारामशरण गुप्त ने ही इस विषय पर एक खण्डकाव्य की रचना करने का प्रयास किया है । इस काव्य का शीर्षक ही उनके आत्मोत्सर्ग की महत्ता को स्पष्ट करता है । कवि की यही आशा थी कि उनके आत्म-बलिदान की प्रशंसा गाना और इसीलिए इस शीर्षक का नाम यह रखा गया है ।

भारत में हिन्दू और मुसलमानों के ऐक्य के बल से एक शक्तिशाली राष्ट्र की स्थापना करना ही कवि का उद्देश्य था । इस उद्देश्य की पूर्ति के रूप में ही कवि ने प्रस्तुत काव्य की रचना की । ऐसे एक राष्ट्र की निर्माण की संभावना में कवि को पूर्ण भरोसा था । अत: वे कहते थे -

> ' हिन्दू - मुसलमान दोनों का
> यह संयुक्त राष्ट्र होगा । '२

इस काव्य में जातीय एकता की प्रधानता दी गयी है क्योंकि इसमें हिन्दू - मुसलिम मैत्री के द्वन्द्व को वर्णित किया गया है । डा० शिवप्रसाद मिश्र जी ने इसे ' हिन्दू - मुसलिम एकता से संबंधित काव्य कहा है । इन दोनों विभिन्न जातियों के बीच में एकता लाने का महान कार्य किया है । विद्यार्थी जी ने समस्त धर्मों में, चाहे वे विभिन्न जाति के लिए भिन्न हैं, समभाव का दर्शन किया है । इस काव्य में

- -

१: आत्मोत्सर्ग - पृ० ६६   २: वही० पृ० ७१

हिन्दू और मुसलमानों को भाई - भाई कहा है ।[१]

इस काव्य के अंत में कवि ने विद्यार्थी जी के मृत-देह के अंतिम संस्कार का बड़ा ही मार्मिक तथा हृदय-स्पर्शी वर्णन किया है ।

१७ - स्वतंत्रता की बलिवेदी :

राष्ट्रीय आन्दोलन की पार्श्व- भूमि पर लिखे गये अनेक खण्डकाव्य प्रत्यक्ष रूप से न सही, परोक्ष रूप से राष्ट्रीय जागरण की अंतर्ध्वनि ही सुनाते हैं । किसी किसी काव्य में राष्ट्रीय भावना बिलकुल स्पष्ट और मुखरित है । इसमें सोद्देश्यता और प्रचारात्मकता की त्रुटि के होने पर भी भाव की गरिमा में कोई कमी अनुभव नहीं होती । `स्वतन्त्रता की बलिवेदी` इसी कोटि की रचना है । इसके लेखक वयोवृद्ध मिलिन्दजी स्वाधीनता आन्दोलन के प्रारंभिक दिनों से ही सक्रिय राष्ट्रीय- सेवा में लगे रहे हैं । आधुनिकतम नाटककारों के नाटक जिन दिनों नहीं थे, उन दिनों में मिलिन्दजी का प्रताप- प्रतिज्ञा नाटक अत्यन्त प्रसिद्ध रहा । इसकी प्रतिष्ठा का श्रेय इस रूपक में अभिव्यंजित राष्ट्र-प्रेम की उज्ज्वल भावना को है । अत: `स्वतंत्रता की बलिवेदी` काव्य का मूल्यांकन भी उसके भावतत्व के आधार पर करना होगा, न कि कलातत्व के आधार पर ।

यह रचना उन्नीस सौ बासठ में रची गयी है। लेखक ने बताया है `हिन्दी में अनेक खण्डकाव्य लिखे गए, किन्तु उनमें ऐसे खण्डकाव्यों की संख्या प्राय: नगण्य के समान ही है, जिनमें भारतीय जनता के स्वतन्त्रता - प्राप्ति के उक्त संघर्षों और उनकी पृष्ठभूमि को ललित- साहित्य - रचना का विषय बनाया गया हो । -- -- फिर भी जब मेरी उक्त प्रतीक्षा अब तक प्राय: असफल ही सिद्ध हुई और मैं भी ५५ वर्ष का हो गया, तब मैं ने इस सरस विषय पर स्वयं ही एक खण्डकाव्य की रचना करने का

- -

१: `धर्म संबंधी बातों में वे गान्धीजी के विचारों से पूर्णतया सहमत थे और हिन्दू तथा मुसलमान को भाई के रूप में ही चित्रित करते हैं ।` - सियारामशरण गुप्त : व्यक्तित्व और कृतित्व - डा० शिवप्रसाद मिश्र - पृ० ३१६

निश्चय किया ।'[१] इस कथन से हमें पता चलता है कि कवि ने देश की स्वतन्त्रता - प्राप्ति के साथ उन वीरों का यश गाया है जिन्होंने स्वतंत्रता की बलिवेदी पर अपना सर्वस्व निछावर किया था । इस बलिवेदी पर लाखों स्त्री - पुरुष शहीद हो गये और उनकी शहादत की पुण्य-गाथा कवि ने गायी है ।

इस काव्य का नाम स्वयं घोषणा करता है कि स्वतन्त्रता की बलिवेदी पर किये गए दान का वर्णन इसमें है । स्वतन्त्रता आन्दोलन गांधीजी के नेतृत्व में हुआ था । अतः महात्मा गांधीजी के राजनैतिक जीवन से इसका प्रत्यक्ष संबंध है । कवि का निम्नलिखित कथन इस सम्मति की विशेष पुष्टि करता है - ' मैं यह समझने में असमर्थ हूं कि यदि धार्मिक, ऐतिहासिक और पौराणिक विषयों का समावेश काव्यों में निषिद्ध नहीं माना जाता, तो सामाजिक और ऐतिहासिक स्तर तक पहुंचे हुए राजनीतिक विषयों का प्रवेश क्यों माना जाना चाहिए, विशेषतः ऐसी स्थिति में जब महात्मा गांधीने अपने युग की राजनीति को पवित्र बनाने का जीवन-भर इतना अधिक प्रयास किया था ।'[२] कवि का यह कथन इस शंका का समाधान है कि राष्ट्रीय संग्राम, हरिजन समस्या आदि जैसे विषयों पर कल्पनापूर्ण काव्य की रचना नहीं हो सकती ।

यह काव्य कवि ने एक नयी विषय- वस्तु को लेकर रचा है । अब तक जितने खण्डकाव्यों की रचना हुई है, उनसे यह काव्य बिल्कुल भिन्न है । उनके मन में साधारण जनता के प्रति सहानुभूति और श्रद्धा का भाव अधिक रहा है । वे उनकी आराधना और पूजा करते आये हैं । उन्होंने बताया है - ' --- साहित्य- रचना में मेरे प्रथम आराध्य तो, सदा से, पीड़ित, दलित, उपेक्षित तथा सामान्य जन ही रहते आये हैं ।'[३] यही दृष्टिकोण प्रस्तुत काव्य में देखने को मिलता है ।

कवि ने भारत की स्वतंत्रता के आन्दोलन में आदि से अंत तक सराहनीय कार्य किया है । यह काव्य उसी कर्मण्यता का फल है, जिसमें कवि ने उसी स्वतन्त्रता- वेदी पर अपना बलिदान किये हुए साधारण जनों के प्रति अपनी श्रद्धांजलि प्रस्तुत की है । कवि का कथन है कि देश की संपूर्ण साधारण जनता के सहयोग और

- -

१: स्वतन्त्रता की बलिवेदी - भूमिका - पृ० २

२: वही ० - पृ० ५ ३: वही० पृ० १

परिश्रम के बिना महान नेताओं के प्रयत्न-मात्र से देश स्वतंत्र नहीं हो सकता । अतः उनके अनुसार स्वतंत्रता- प्राप्ति के संग्राम में जनता ने जो यत्न किया है, वह सर्वदा माननीय एवं प्रशंसनीय है । इसलिए उन्होंने अपने मन में जन-गण को बड़ा महत्व प्रदान किया है । इस महत्व को प्रतिपादित करने के लिए कवि ने खण्डकाव्य में अपने कल्पना-लोक से सामान्य जनता को उतारकर दिखाया है । वस्तुतः इसके सभी पात्र काल्पनिक हैं । कवि ने उपर्युक्त विचार को अपना लक्ष्य स्वीकार किया है और इसके बारे में उन्होंने स्वयं बताया है - मेरे इस खण्डकाव्य में मेरे प्रमुख लक्ष्य वही आंचलिक क्रांतिकारी रहे हैं और उन्हीं के प्रतीक के रूप में मैं ने कुछ काल्पनिक स्त्री- पुरुषों को इसका प्रमुख पात्र बनाया है । उनके रूप में मैं ने स्वतंत्रता के लिए संघर्ष रत भारतीय जनता ही को अपने हृदय की भावात्मक श्रद्धांजलि अर्पित की है ।'[1]

कवि तिलक और गांधीजी से अत्यधिक प्रभावित दिखाई पड़ते हैं । सन् १९१९ - २० में गांधीजी के आह्वान से प्रेरित होकर, कवि ने विद्यालय छोड़कर राष्ट्रीय- मंच पर पदार्पण किया । बाद में उनका चिंतन, जीवन, कार्य - प्रवृत्ति, अनुभूति सब भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन से ओतप्रोत थे । यही कारण है कि प्रस्तुत काव्य की रचना ऐसे एक स्वतंत्र विषय पर हुई है । भारतीय स्वतंत्रता - संग्राम और उसके नेता गांधीजी से प्रेरणा पाने के कारण इसमें गांधीवाद का आद्यन्त समर्थन बड़ी ही गंभीरता के साथ हुआ है ।

कथावस्तु :

मोहन और रमा हरिपुर ग्राम के निवासी थे और वे किसान भी थे । उनके घर में उस दम्पति को चन्दन नामक एक बालक पैदा हुआ । उसके जन्म से मोहन और रमा ही नहीं, उस गांव की सारी जनता खुश हुई । चन्दन उस गांव में एक सुंदर और नवीन भावि का संदेश लेकर पैदा हुआ था । माता और पिता ने उसे देखकर समाज- सुधार की आशा बान्धी । उसकी श्यामा दीदी ने चन्दन के पालन-पोषण शिक्षा- दीक्षा, चरित्र - विकास आदि का भार अपने सिर पर लाद लिया । श्यामा चन्दन को एक बार देखने के लिए मोहन के जीर्ण - शीर्ण कुटी में पहुंची । श्यामा ने ही उसका नाम चन्दन रखने की सुझाव दी । मोहन ने चन्दन के जन्म- दिन का उत्सव मनाने के लिए उस गांव के गरीब - अमीर सारी जनता को आमन्त्रित किया । सारे लोग

१: स्वतन्त्रता की बलिवेदी - भूमिका - पृ० ३-४

इस उत्सव में शामिल हुए ।

उस गांव में भोलाराम नामक एक गुरु एक विद्यालय चलाता था जहां निर्धन बच्चे खूब पीटे - मारे जाते थे और उनकी बच्चों की लालन - पालन ही होता था । चन्दन भी यहीं पढ़ता था । गुरु के निर्दयतापूर्ण व्यवहार से दु:खी होकर श्यामा जी ने एक नया विद्यालय खोला जहां उच्च- नीच बालक- बालिकाओं को बिना किसी भेद- भाव के, शिक्षा दी जाती थी । माधव नामक एक महा सहृदय ने विद्यालय की स्थापना के लिए आवश्यक जमीन मुफ्त में दे दी ।

माधव के घर में एक कन्या ने जन्म लिया जिसका नाम रखा गया मृदुला । वह भी श्यामा जी के विद्यालय में पढ़ने चली । बाद में चन्दन और मृदुला दोनों उच्च शिक्षा के लिए अपने अपने मां- बाप के साथ कृष्णापुर नगर चले।/ वे धीर- धीरे समाज- सेवा के क्षेत्र में उतर पड़े । चन्दन के चारित्रिक गुणों का प्रभाव मृदुला पर पड़ा और उसका चन्दन पर भी । फलत: दोनों में आपसी प्रेम फूट पड़ा जिसके मूल में देश- सेवा, देश- स्वातन्त्र्य, आत्म- बलिदान आदि भावनाएं प्रबल थीं । चन्दन और मृदुला तिलक और गांधीजी के राजनीतिक विचारों एवं सुधारवादी प्रबन्धों से अत्यधिक प्रभावित हुए थे । दोनों ने देश की विविध समस्याओं को सुलझाने और उसे मुक्ति प्रदान करने के लिए प्रयत्न करने का निश्चय कर लिया ।

इतने में मृदुला की माता दुर्गा अपनी बेटी के विवाह की बातें सुनाने के लिए श्यामाजी के पास आयी । चन्दन और मृदुला दोनों श्यामा जी को ही अपनी माता समझते थे और उन्हीं के साथ रहते भी थे । मृदुला विवाह के लिए सहमत नहीं थी । तब दुर्गा ने कहा कि अगर मृदुला को समझाते नहीं तो वह `धरणा` देगी । उसी समय चन्दन की माता रमा भी वहां पहुंची और उसने भी चन्दन के विवाह के लिए तैयार न होने पर आमरण अनशन की बात बतायी । तब मृदुला ने कहा कि वह या तो अविवाहित रहकर देश-सेवा में अपने प्राण दे देगी नहीं तो चन्दन को ही अपना पति बना लेगी । इसे सुनकर रमा और दुर्गा चकित हो उठीं । चन्दन और मृदुला ने अपने दांपत्य जीवन के सपने देखना शुरू किया । साथ ही दोनों ने यह महान प्रतिज्ञा भी ली थी कि उनका विवाह देश की स्वतन्त्रता के बाद ही संपन्न हो सकेगा ।

इसी बीच अचानक श्यामाजी की मृत्यु हो चुकी । उस शहर की समस्त जनता ने उसे श्रद्धांजलि अर्पित की । देश में स्वतन्त्रता - आन्दोलन तीव्रतम हो गया । मृदुला कर - बन्दी आन्दोलन चला रही थी । तब किसी राष्ट्रीय - विरोधी ने उसे मार डाला और यों उसका देहान्त हो गया । मृदुला की मृत्यु ने, जो आकस्मिक और अप्रत्याशित थी, चन्दन को खूब सताया । उसने विजय - प्राप्ति तक आन्दोलन करने का निश्चय किया । आन्दोलन शुरू हुआ । आन्दोलन में कर्म- निरत चन्दन के प्राणों को शत्रुओं की गोलियों ने हर लिया । अन्त में शत्रु देश छोड़कर भाग गये । देश स्वतन्त्र हुआ । वहां इन अमर शहीदों के स्मारक बनाये गये । यही इस काव्य की कथावस्तु है ।

गान्धीवाद :

श्यामा दीदी युवावस्था में ही विधवा बन गयी और तब से वह देश सेवा के लिए निकल पड़ी । उनका जन्म ब्राह्मण कुल में हुआ था । मगर विधि ने उसे जीवन का सुख अनुभव करने न देकर, शोषितों की सेवा के पथ पर चलकर कष्ट सहने का कर्तव्य दिया ।[१]

जिस प्रकार गांधीजी ने प्रभु का दर्शन हरिजनों अथवा दरिद्र-नारायणों में किया था, उसी प्रकार श्यामा जी ने भी भगवान को दरिद्रों के बीच देखा था -

' किन्तु कहीं भी उन्हें न पाया , पाया उन्हें अन्तत: मैं ने
वहां, जहां मानव श्रम करते, दु:ख सहते नीरव जीकर- मर,
-- -- --
दीन, दलित,शोषित,पीड़ित जन जहां घृणा की चोटें खाकर ।'[२]

श्यामा दीदी ने देश की दयनीय और शोषित दशा का चित्रण करते हुए उसे बदलने के

- -

१: मिला जन्म द्विज- कुल में उनको, पर कोमलता उनके उर की ।
-- -- -- --
उनके लेखे जीवन का हर क्षण सेवार्पित हुआ, गांव की ,
बहन बनी हर दुखिया नारी, हर पीड़ित नर उनका भाई ।
- स्वतन्त्रता की बलिवेदी-प्रथम सर्ग-पृ०१४

२: वही० पृ०.१५

लिए क्रान्ति का आह्वान किया । उसने बताया है देश के वर्तमान रूप को बदलने के लिए जनता को अपनी सुप्त आत्म- चेतना को जगाना चाहिए और क्रान्ति करनी चाहिए । दलित लोग ही इसके लिए कुछ कर सकते हैं । क्रांति की अपेक्षा दूसरा कोई उपाय ही नहीं है । अत: जब जनता जब जागृत होकर क्रांति का शंख बजायेगी तभी देश में चिर- मुक्ति का सुप्रभात उदित होगा ।[१]

उच्च - नीच का भाव जोजो पसंद नहीं करती थी । उसने बताया है कि निम्न- जाति का हृदय कोमल, सरस होता है, उनको भी जीने का अधिकार प्राप्त है । ये लोग भगवान के लिए प्रियतर हैं जो हमेशा सेवा, व्रत,तपस्या आदि में निरन्तर लगे रहते हैं ।[२]

जातीय एकता की प्रतिष्ठा के परीक्षणार्थ सारी विजातीय जनता को शिशु चन्दन के दर्शनार्थ निमन्त्रण करने का जोजो ने प्रयास किया । उसने चन्दन के पिता मोहन से कहा कि इस गांव में विभिन्न जाति के लोग रहते हैं ।(इसे अभेदता का नमूना माना जा सकता है) और बड़े प्रेम से उन सबको यहां बुलाकर लाना चाहिए । मोहन ने इस आयोजना में सफलता प्राप्त की और मोहन के घर में उस गांव की सारी जनता प्रवाहित हुई । वहां उसने अपनी प्रेमपूर्ण मधुर वाणी से

- -

१: जागृत करनी होगी अपनी मूर्छित आत्म चेतना, प्रतिभा,

-- -- -- --

तभी विश्व- मानवता का उर, नव प्रभात का सुमन, खिलेगा ।
(स्वतन्त्रता की बलिवेदी - प्रथम सर्ग - पृ० २० - २२)

२: नहीं, निर्धनों के भी कोमल हृदय सरस, निर्मल होते हैं ,

-- -- --

वे ईश्वर के प्रियतर, सेवा- व्रत- तप - रत हैं सतत, संयमित ।

- स्वतन्त्रता की बलिवेदी - प्रथम सर्ग - पृ० २१

सारी जनता का हृदय - परिवर्तन कर डाला । गान्धीजी ने भी इस प्रकार अपनी बोली की सुन्दरता और कोमलता से भारत के सारे लोगों को मोहित कर दिया जिससे सबका दिल बदल गया ।

शिक्षा - क्षेत्र में देश में हिन्दू और मुसलमान का भेद तीव्र था और हिन्दू शिष्यों को खूब फटकारा जाता था । इसको समाप्त करने के विचार से जोशी ने एक नयी पाठशाला खोलने का निश्चय करते हुए बताया है -

' स्वतन्त्रता के दृष्टिकोण से नई नीति अब शिक्षा की

-- -- --

निस्पृह शिक्षक हों जीवन - तरु स्वतन्त्रता की छाया दें वे ।'[१]

बालकों को साधना और कर्तव्य की शिक्षा देने का श्यामा जी ने माधव ने निश्चय किया-

' अध्यापन निःशुल्क करेंगे हम दोनों, फिर क्या होगा

-- -- --

स्वतन्त्रता की बलिवेदी पर प्राणों का भी दे अर्पण ।'[२]

श्यामाजी अहिंसक थीं । उसने यही प्रश्न किया है कि पराधीनता की जंजीरों से जकड़ी हुई जनता को अहिंसात्मक क्रांति करने का मार्ग प्रदान करने वाला कोई वीर अब पैदा होगा । उसके इस कथन में अहिंसा का चौतन है -

' कोटि कोटि ये भारतवासी, पराधीनता के बन्धन में

-- -- --

शस्त्रहीन जनता ये सक्रिय हों संघर्षों में, हो न अधीर ?'[३]

श्यामाजी ने जनता से अहिंसात्मक क्रांति का आह्वान करते हुए बताया है कि जनता आत्मबल की शक्ति से निःशस्त्र होकर अलौकिक वीरता से लड़े और देश की मुक्ति प्राप्त करें । -

' आवश्यक है बल - बल दे कोटि - कोटि जनता को बल बल ,

-- -- -- --

और प्राप्त कर सके देश के मुक्ति - समर में, निश्चय ही जय ।'[४]

१: स्वतन्त्रता की बलिवेदी - पृ० ३० २: वही० पृ० ३४ ३: वही०पृ० ४६ ४: वही०पृ० ६३

सत्य, अहिंसा, आत्मबल के अस्त्रों को लेकर गान्धीजी के समान श्यामाजी आन्दोलन की आग में कूद पड़ी। उसके साथ देश की सारी जनता भी जुटी हुई थी -

' पृष्ठभूमि यह लेकर यह श्यामा कूद पड़ी थीं आन्दोलन के

-- -- -- --

जुटी अहर्निश क्रान्ति - संगठन में, उनका उत्साह अपार। '[1]

जिस प्रकार गांधीजी अपने युग में निःशस्त्र सेनानी थे वैसे ही इस अहद आन्दोलन में श्यामाजी निःशस्त्र सेनानी थी और इसी भाव से वह आगे बढ़ी।

' ले यह भाव आत्म - गौरव का मन में, कष्ट- सहन श्यामा ने

-- -- -- --

स्वतन्त्रता की बलिवेदी पर चढ़ने को होकर तैयार। '[2]

गान्धीजी अपने आन्दोलन- संचालन के बीच में बीमार हुए थे और वे उसकी चिन्ता न करके अपने कार्य - क्षेत्र में आगे बढ़ते रहे, यहाँ श्यामाजी की शारीरिक दशा जब खराब होने लगी, फिर भी वह उससे चिन्तित न हुई।

' पर वह विरत न हुआ चाहती थीं, क्षण- भर भी आन्दोलन से
क्योंकि क्षेत्र में उनके स्थिति थी आन्दोलन की अति- गंभीर।'[3]

श्यामाजी की बुद्धि- विपुलता और कार्य-कुशलता पर मृदुला आदि ने महत्त्वपूर्ण कार्य बताये हैं।[4]

चन्दन के माता - पिता भी गांधीवाद से सुप्रभावित थे। पराधीन भारत की गुलामी दशा के समय में गान्धीजी का, भारत के राष्ट्रीय मंच पर पदार्पण जो हुआ, उसे भारत के लोगों ने समाधान और शान्ति की दृष्टि से महाभाग्य बताया था। वैसा ही यहाँ शिशु चन्दन के जन्म पर इसी दृष्टि से प्रकाश डाला गया है।

- -

१: स्वतन्त्रता की बलिवेदी - पाँचवा सर्ग - पृ० ८०

२: वही० पृ० ८१ ३:वही० पृ० ८१

४: वही० - पांचवा सर्ग - छं० सं० ४२, ४३, ४४, ४५

' होकर अन्तर्ज्योति व्यथित थी पराधीन भारत की आत्मा,

-- -- --

घर शिशु चन्दन भारत के लघु एक ग्राम में आया । '[१]

उसके माता - पिता ने चन्दन को देश-सेवा की कर्म-वेदी पर चढ़ाने की इच्छा प्रकट की है-

' पर, जब होगा बड़ा लाल यह , यह जग, यह समाज बदलेगा ।

-- -- --

दमन, प्रलोभन के आगे नत होकर जीने से मुख मोड़ो । '[२]

चन्दन की माता रमा और मृदुला की माता दुर्गा बड़ी गान्धीवादी थीं । मामूली बातों पर भी वे बड़े बड़े सत्याग्रह करती थीं । जब चन्दन ने अपने विवाह का इनकार किया, तब उनकी माता ने आमरण अनशन की सूचना दी और कहा कि चन्दन को विवाह के लिए सहमत बनाओ -

' उसका तुम तैयार करो अब उसे व्याह करने को, घर के
आगे मैं, अन्यथा तुम्हारे अनशन हूं कर रही आमरण । '[३]

जब मृदुला भी शादी के लिए राजी न हुई तब उसकी मां ने भी श्यामाजी के घर के सामने धरणा देने की घोषणा की है और बताया कि वह देश की स्वतंत्रता संबंधी सारे आन्दोलनों को बन्द करेगी, अगर श्यामाजी मृदुला को शादी के लिए जबरदस्त नियंत्रित न बनाती तो ।

' आप उसे अब करें नियंत्रित, मैं, अन्यथा आपके घर के
आगे धरणा दूंगी, करवा दूंगी बन्द सभी आन्दोलन ।'[४]

मृदुला भारत को स्वतन्त्र बनाने के प्रयास में जुड़ चित रही । भारत-मुक्ति के सामने उसके लिए विवाह किसी मूल्य का नहीं था । उसने पुन: बताया कि

- -

१: स्वतन्त्रता की बलिवेदी - प्रथम सर्ग - पृ० ६ २: वही० पृ० ११
३: वही० - चौथा सर्ग - पृ० ७१ ३: वही० पृ० ७१

स्वतन्त्रता संग्राम में भाग लेने के लिए गान्धीजी आह्वान कर रहे हैं और उसमें भाग लेना अवश्य चाहिए ।

` जिसमें तुम्हें भाग लेना है, मेरे साथ, शीघ्र गान्धीजी
हैं आह्वान कर रहे सबका करने को स्वतन्त्र भारत को ।
मृदुला बोली आन्दोलन में भाग हमारा लेना निश्चित ,
कोई शक्ति बदलवा सकती नहीं सुनिश्चित इस अभिमत को । `[१]

मृदुला ने बताया है कि विवाहित होने पर नारी की स्वतन्त्रता नष्ट हो जाती है । अत: वह अविवाहित रहना चाहती है और गान्धीजी के आन्दोलन में भाग लेना चाहती है -

` अविवाहित ही, गान्धीजी के आन्दोलन में लगने, चाहर ;
उनका क्षेत्र बहुत व्यापक है, आन्दोलित होगा भारत - भर ।`[२]

चन्दन पर भी गांधीवाद का छाप दृष्टव्य है । उसने अपना विवाह मृदुला के साथ होने के लिए गुरुजनों का हृदय - परिवर्तन करने का निश्चय किया -

` अपने त्याग और तप से हम उनका हृदय करें परिवर्तित ।
यदि हम यह भी कर न सके, तो व्यर्थ दंभ है यह कि करेंगे ।`[३]
-- -- -- --
दंभी बनकर तो हम जग में असफलता की मौत मरेंगे । `[३]

चन्दन ने शुद्ध अहिंसक ढंग से आन्दोलन को किया, उससे जनता और देश ने अपनी स्वतंत्रता- सत्ता प्राप्त की । उन्होंने शत्रु- दल के लोगों के शरीर से बिना रक्त का एक बूंद भी गिराये देश को स्वतन्त्रता प्रदान की -

` चन्दन ने निज क्षेत्र संगठित किया कुशलता से, उसमें तो
-- -- -- --
हुआ व्यवस्थित भी शुद्ध उसमें उसका आत्म - प्रबन्ध सशक्त ।`[४]

१: स्वतन्त्रता की बलिवेदी - चौथा सर्ग - पृ० ७२   २: वही० पृ० ७२
३: वही० पृ० ७५   ४: वही० पृ० ६२

अपरिग्रह का उल्लेख इस बात में किया गया है कि दूसरों की संपत्ति पर इच्छा रखना उसी पर निर्भर रहकर अपना जीवन बिताना आदि अनुचित एवं अवांछनीय है -

' वह सेवा अनुचित,
जिसके पीछे, श्रम के बदले, पर - धन का आधार सुनिश्चित ,
-- -- --
उनके जीवन का संबल हो धन उनके श्रम ही उसे अर्जित । '[1]

अस्पृश्यता :

श्यामाजी के विद्यालय ने देश में शिक्षा - क्षेत्र में प्रचलित वर्तमान अस्पृश्यता का अन्त कर दिया ।

' श्यामा का विद्यालय खुलते ही सहसा वे बन्धन टूटे ,
-- -- --
पिंजर - मुक्त पक्षियों - जैसा कन्याओं ने पाया त्राण । '[2]

देश की स्वतन्त्रता के मूल में तिलकजी का यह नारा - जन्मसिद्ध अधिकार हमारा है स्वराज्य व गुंजायमान था था जो स्वतंत्रता- संग्राम की पृष्ठभूमि के रूप में इसमें स्वीकार किया गया है -

' पृष्ठभूमि बन चुकी उचित थी, तूर्य - नाद कर चुके तिलक थे -
जन्म - सिद्ध अधिकार हमारा है स्वराज्य, वह लेंगे ही हम ।'[3]

गान्धीजी की महिमा गायी गयी है जिन्होंने जनता को अहिंसा का बल दिया, सत्याग्रह का अस्त्र प्रदान किया और आत्मबल के प्रकाश से भारत की राजनीति को अत्यन्त प्रकाशमान बना दिया -

' उधर युग की प्रबल मांग का दिया शीघ्र हो गान्धीजी ने,
-- -- -- --
आत्म - तेज की विमल ज्योति से राजनीति का क्षितिज भर दिया

१: स्वतन्त्रता की बलिवेदी - प्रथम सर्ग - पृ० १७ २: वही०- तृतीय सर्ग- पृ० ४३
३: वही० - चौथा सर्ग - पृ० ६० ४: वही० पृ० ७०,छन्द ६०

चन्दन, मृदुला, और श्यामाजी के द्वारा संचालित स्वतन्त्रता-आन्दोलन की जो उत्सुकता थी, वह गान्धीजी की प्रेरणा थी -

' भारत की जनता की आत्मा, हृदय और तन मन से जिसे

--   --   --

आकर उनका राजनीति में क्रमशः हुआ उच्चतम स्थान । '[१]

श्यामाजी के आह्वान पर सारे व्यक्ति असहयोग आन्दोलन में भाग लेने के लिए तैयार हुए ।

' श्यामा का आह्वान त्याग की ज्योति जगाता जन- मानस में ,

--   --   --

न्यायालय का त्याग साक्षी करता अभिभावक प्रत्येक । '[२]

देश की समस्त नारियाँ गांधीजी की प्रेरणा से कार्य- क्षेत्र में उतर आयीं । यह तो गांधीजी के समय की उस घटना की याद दिलाता है जिस आन्दोलन में उस युग की नारी अपना घर - बार खान- पान, सुख - प्यास त्यागकर उनके आन्दोलनों में भाग लेती थी । -

' थे रचनात्मक कार्य और भी, जिनमें देश - भक्त नर - नारी,

--   --   --

धर्मों और संप्रदायों में , दलित - वर्ग का अभ्युत्थान । '[३]

दूसरी बार गांधीजी के आदेश पाकर चन्दन और मृदुला ने आन्दोलन रचने का निश्चय किया और इस बार पूर्ण स्वतंत्रता की माँग की । -

' नहीं विदेशी शासन को, कर शोषण, जनता की आत्मा का,

--   --   --

सविनय शांत अवज्ञा से, सब ओरों से कर प्रबल प्रहार । '[४]

- -

१: स्वतन्त्रता की बलिवेदी - पांचवां सर्ग - पृ० ७७   २: वही० पृ० ७८

३: वही० पृ० ७९   ४: वही० पृ० ८७

सत्याग्रह के साथ देश में कर - बन्दी आन्दोलन भी शुरू हुआ था । -

' छेड़ा, तोड़ा कानूनों को, शासन-चक्र किया निःशक्त ;

-- -- -- --

सत्य - अहिंसा से ललकारा, दिया क्रांति को अपना रक्त । '[१]

गांधी जी अब करो या मरो वाली घोषणा से प्रेरित होकर अंतिम बार आन्दोलन में कूदने का निश्चय कर आगे बढ़ा । उन्होंने निर्भय बलिदान का व्रत लिया-

' कि हम किसी के प्राण न लेंगे, पर देने में अपने प्राण

-- -- -- --

विदेशियों के प्रति - पद प्रति - क्षण चाहे हो सब कुछ बलिदान ।'[२]

इस काव्य के पात्रों एवं घटनाओं पर गांधीवादी विचारों का प्रभाव द्रष्टव्य है । इसके सभी पात्र काल्पनिक होने पर भी सजीव हैं । ये पात्र मानवता का अनन्य रूप प्रस्तुत करने में सफल हो सके हैं । इसका प्रमुख नारी- पात्र है श्यामाजी जिसने महान नेता के रूप में अपना काम किया है । वही दूसरों को भी प्रेरणा और आदेश देती थीं । श्यामा इस काव्य में गांधीजी का प्रतीकात्मक प्रतिरूप ही है । श्यामा के प्रत्येक वचन, बात, कार्य सब गांधीजी के विचारों और प्रवृत्तियों का अनुकरण करते हैं । श्यामा जी को देखते ही ऐसा प्रतीत होता है कि गांधीजीही पुनरवतार लेकर आये हैं । इसके समान मृदुला और चन्दन भी गांधीजी और गांधीवाद से बहुत ही प्रभावित हैं । यह तो स्पष्टतः माननीय बात है कि गांधी-युग में नारियां भी राष्ट्रीय - क्षेत्र में कर्तव्य निरत थीं और यही बात मृदुला और श्यामाजी में पायी जाती है । अतः तीनों ने आद्यन्त गान्धीजी की शासन- पद्धति की लीक पर ही चलने का प्रयास किया है ; इसमें कोई सन्देह नहीं ।

' महाज्योति थे गान्धीजी, वह मूल प्रेरणा आन्दोलन की ;

-- -- --

अनासक्त निष्ठा थी जिनकी, जिनका कर्मयोग निष्काम । '[३]

१: स्वतन्त्रता की बलिवेदी - पांचवा सर्ग - पृ० ८८

२: वही० पृ० ६२ ३: वही० पृ० ७६

अन्त में मृदुला, चन्दन, श्यामाजी सब भारतीय स्वतंत्रता - संग्राम की बलिवेदी पर शहीद हुए ।

यह काव्य भारत की स्वतंत्रता- प्राप्ति की पृष्ठभूमि पर रची गयी है । इसमें स्वातन्त्र्य संग्राम से संबंधित घटनाओं का चित्रण हुआ है । कवि गांधीजी से जितना प्रभावित हुए हैं यह पहले ही कहा जा सकता है । यह कवि की अपनी स्वतंत्र मौलिक रचना है । इसकी कथावस्तु भी एकदम विलक्षण और गंभीर है। यह स्वतंत्रता - संग्राम पर रचित पहला खण्डकाव्य है ।

गान्धीजी के एक उपेक्षित तत्व हरिजन- सेवा और हरिजनोद्धार पर ही इस काव्य की रचना हुई है । गांधीजी को श्रमिक वर्ग के लोग अत्यंत प्रिय थे । उन्होंने गांव- गांव में पैदल भ्रमण कर उनकी जीवन- दशा की पूछ- ताछ की थी और उनकी मदद की थी । इसी घटना से प्रेरित होकर ही कवि ने इस काव्य में श्रमिक वर्ग के लोगों का चित्रण किया है । इस दृष्टि से अन्य खण्डकाव्यों की अपेक्षा यह काव्य अत्यंत महत्वपूर्ण है ।

: १८ - मुक्ति यज्ञ :

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम पर रचित खण्डकाव्य है यह जिसके रचयिता हैं श्री सुमित्रानन्दन पंत । गांधीजी और पंत जी की प्रथम भेंट सन् १९२१ में हुई । इन दोनों महापुरुषों का मिलन रोचक एवं मजेदार था । जिस समय इलाहाबाद में असहयोग आन्दोलन हो रहा था, उस समय गांधीजी का भाषण भी था । पंत जी उस वक्त इलाहाबाद के म्योर कालेज में इंटरमीडिएट में पढ़ रहे थे । गांधीजी ने एक विद्यार्थी - सभा में भाषण देते हुए पूछा कि कोई भी विद्यार्थी देश- सेवा के लिए तैयार है ? पंत जी और उनके भाई दोनों सभा में सम्मिलित थे । गांधीजी काप्रश्न सुनकर उनके भाई ने पंत जी का हाथ जबरदस्ती उठाया । बाद में वे बड़े देशभक्त एवं राष्ट्र- सेवक बने । फिर इनका दुबारा मिलन जो हुआ तब पंत जी गांधीजी से प्रभावित हुए और उनके परम भक्त बने । इस प्रभाव ने उन्हें गांधीजी पर कविताएं लिखने की प्रेरणा दी । पहले वे छोटी छोटी कविताएं लिखते थे, बाद में खण्डकाव्य आदि लिखने लगे ।

प्रस्तुत खण्डकाव्य पन्तजी के प्रसिद्ध महाकाव्य ` लोकायतन ` का एक अंश है। वस्तुतः यह एक स्वतंत्र कृति नहीं है। फिर भी इसका अपना एक अलग अस्तित्व है ही। ` मुक्ति यज्ञ ` से मतलब है गांधीजी द्वारा भारत को विदेशियों की पराधीनता से मुक्त करने के लिए किया गया यज्ञ। अतः इस यज्ञ के मुख्य संचालन-कर्ता अथवा पुरोहित गांधीजी ही हैं। अन्त में इस महायज्ञ की सफल- समाप्ति से भारत मुक्त हो चुका। यह एक खण्डकाव्य होने के कारण इसमें सन् १९२१ से १९४७ तक के स्वतंत्रता- संग्राम की घटनाओं का चित्रण भी किया गया है। इस काव्य की पृष्ठभूमि के रूप में साइमन कमीशन का बहिष्कार, पूर्ण स्वतंत्रता की मांग, नमक - आंदोलन, आतंकवादी आन्दोलन, मैकडोनाल्ड अवार्ड, कांग्रेस मंत्रि- मंडलों की स्थापना, द्वितीय विश्व- युद्ध, आजाद हिन्द सेना आदि महा- घटनाएं वर्णित हुई हैं। यह काव्य समष्टि- प्रधान है जिसके नायक गांधीजी के व्यक्तित्व के उस अंश को प्रतिपादित किया है जिससे जनता को शक्ति एवं प्रेरणा मिल जाता है। गांधीजी का चरित्र- चित्रण या कथा का विस्तृत विवेचन कवि का ध्येय नहीं रहा है। कवि का ध्येय यही रहा है कि परतंत्र भारत की दयनीय विभिन्न परिस्थितियों का चित्रण करते हुए गांधीजी के नेतृत्व में रचित स्वतंत्रता संग्राम का एक विस्तृत वर्णन करके जनता को उसकी महत्ता और प्रमुखता को समझाना। स्वतंत्रता - संग्राम के विविध कार्यक्रमों में कवि ने गांधीवादी दर्शन को उभारा है। उन्होंने गांधी - युग की गांधीवादी प्रतिक्रियाओं के सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक पक्ष को लेकर ` मुक्ति यज्ञ ` की रचना की है। और उसे ऐतिहासिक और सामाजिक पृष्ठभूमि में प्रस्तुत किया है। इसमें गांधी - युग का स्वर्णिम - इतिहास काव्यात्मक ढंग से प्रस्तुत किया गया है।

` मुक्तियज्ञ ` स्वतंत्रता संग्राम पर रचित दूसरा खण्डकाव्य है जिसके पूर्व ` स्वतंत्रता की बलिवेदी ` का प्रकाशन हुआ है। फिर भी इसकी और एक खण्डकाव्य की रचना होने को आवश्यक मानते हुए इस काव्य में लेखक के आरंभ में यह बताया है कि भारत की स्वाधीनता के दिन की आनंददायी कथा जो नव- युग के श्री गणेश की सूचना देने वाली है, निष्प्रभ होकर रह जाएगी।[1]

१: अलिखित ही रह जाएगी तब , नवयुग की गाथा निः संशय
जो भारत की मुक्तिकथा तुम , गाओ नहीं, फिर रस तन्मय ।। `
- मुक्तियज्ञ - पन्तजी - पृ० २५

गान्धीजी ने यह महायज्ञ जो प्रारंभ किया, बड़ा कठिन था। यह तो साधारण व्यक्तियों के लिए असाध्य ठहरेगा क्योंकि आत्मिक व्यक्ति हो इसे कर सकता है। उनके यज्ञ की शुभ समाप्ति गान्धीवाद के सत्य और अहिंसा की विजय ही है। इसे मंगलमय तथा सफल बनाने वाली दो शक्तियां थीं सत्य और अहिंसा। असीम आत्माहुति से मुक्ति-यज्ञ की आग उज्ज्वल होकर धधक रही थी और उसी से भारत की स्वतन्त्रता का धवल प्रकाश उदित हुआ। इस काव्य में कवि ने मुख्यतया परतन्त्र भारत की विविध दशाओं दशाओं का चित्रण ही अधिकांश रूप में किया है। बीच - बीच में गांधीवाद के सिद्धान्तों का प्रतिपादन प्रसंगवश मात्र किया है। फिर भी उनके असहयोग आन्दोलन, आमरण अनशन, भारत छोड़ो आन्दोलन, सत्याग्रह, हड़ताल आदि क्रिया- प्रतिक्रियाओं का उल्लेख अवश्य हुआ है।

गान्धीवाद :

' मुक्ति यज्ञ ' में गांधीजी और उनके सिद्धान्तों को इतनी प्रधानता मिलने के कई कारण रहे थे। पहला कारण यह था कि साइमन कमीशन का बहिष्कार सन् १९१९ के एक्ट में एक आयोग की नियुक्ति के लिए अनुमति दी थी। लेकिन बाल्डिवन की प्रतिक्रियावादी सरकार ने इसे स्थगित कर दिया था। उसके सम्मेलनों में भारतीयों को शामिल नहीं करते थे। वे भारत की नीति को निरंकुश बनाने लगे जिससे कुपित होकर कांग्रेस में इस कमीशन के विरुद्ध प्रस्ताव पास किया गया। फलत: अंग्रेजों ने भारत की जनता पर लाठियां बरसाईं और लाला लाजपतिराय जी को बड़ी चोट पहुंची। अत: अपने प्रिय नेता के अपमान का बदला लेने के लिए भारत की जनता ने निश्चय कर लिया।

दूसरा कारण पूर्ण स्वतंत्रता की मांग था। सन् १९३० को लाहोर - कांग्रेस सभा में जवाहरलाल जी ने पूर्ण स्वतंत्रता की मांग की। उन्होंने ब्रिटिश सत्ता पर भारतीय जनता के जीवन के पतन और ध्वंस करने का आरोप लगाया। अंग्रेजों के साम्राज्यवाद पर कड़ी चोट की और गान्धीजी की अहिंसा नीति की प्रशंसा की। भारतीय सरकार ने भी ब्रिटिश शासन का दमन करने का कार्य शुरू किया। भारत के बड़े - बड़े नेताओं को कारावास का कष्ट भोगना पड़ा।

नमक आन्दोलन तो उसका तीसरा कारण था। अंग्रेजों ने नमक पर जो कानून रखा था उससे भारत की जनता आवश्यकतानुसार नमक इकट्ठा करने में असमर्थ थी

गान्धीजी ने इसे तोड़ने के लिए दण्डी - ग्राम की यात्रा की और वहां समुद्र से नमक तैयार करते हुए उस कानून को तोड़ा । साथ ही विदेशी वस्त्र - वस्त्र बहिष्कार का नियम भी चल पड़ा । ब्रिटिश सरकार के दमन- चक्र का नाश करने के लिए कांग्रेस ने प्रान्त - प्रान्त में मंत्रि- मण्डलों की स्थापना की ।

द्वितीय विश्वयुद्ध तो इसका चौथा कारण बना । कांग्रेस ने इसमें ब्रिटिशों से सहयोग देने के का वादा किया था , मगर उसका इनकार किया गया । तब कांग्रेस ने इनके विरुद्ध सविनय अवज्ञा आन्दोलन शुरू किया । भारत की समस्याओं को सुलझाने के लिए ' क्रिप्स ' मिशन को अंग्रेजों ने भेजा और वह असफल निकला । फलत: 'भारत छोड़ो ' आन्दोलन शुरू हुआ । सन् १९४२ में भयानक विद्रोह फूट पड़ा । ब्रिटिश सरकार ने भारतीय जनता को दमन की भट्टी में भून डालने का निश्चय किया । भारत के कोन- कोने में अत्याचार ही अत्याचार हो रहे थे । व्यापारी पूंजीपतियों के भ्रष्टाचार के कारण बंगाल में भयंकर अकाल पड़ा ।

उपर्युक्त कारणों से देश की दशा अत्यन्त खराब हो गयी जिसे सुधारने के लिए एकमात्र सहारा गान्धीजी की आध्यात्मिक शक्ति और निर्भय व्यक्तित्व ही था । उन्होंने देश को स्वतन्त्रता प्रदान की । ' मुक्ति यज्ञ ' में ऊपर वर्णित घटनाओं और उनके प्रेरणा- स्रोतों का उल्लेख ही हुआ है ।

काव्य के प्रारंभ में कवि ने गांधीजी की ओर संकेत करते हुए कहा है कि भारत के जीवन- वैषम्य के विष पीते हुए अगस्त्य मुनि के समान अपने ऊर्ध्व चरणों से चलता वह व्यक्ति कौन है -

' कौन चल रहा वह नर पुंगव
जन धरणी पर ऊर्ध्व चरण धर ?
ऋषि - अगस्त्य - सा लवण- सिंधु को
पी हंस - हंस, अंजलि - पुट में भर । '[१]

गान्धीजी ने नमक - कर बन्द करने के लिए दण्डी ग्राम की ओर पैदल - यात्रा की जो बाद में भारतीय इतिहास में प्रमुख स्थान पा सका, उसी का वर्णन कवि ने किया है ।[२]

- -

१: मुक्ति-यज्ञ - पंतजी - पृ० २५

२: वही० छं० ३६,५६,६०,७६ - पृ० ७ २६ - २९

नमक - कर को तोड़े बिना न लौटने का शपथ उन्होंने लिया था -

' प्राण त्याग दूंगा पथ पर ही
उठा सका मैं यदि न नमक- कर ,
लौट न आश्रम में आऊंगा ,
जो स्वराज्य ला सका नहीं घर । '[१]

दक्षिण अफ्रीका में भारत के जन रहते थे जिन्हें वहां के गोरों ने खूब सताया था । गांधीजी ने वहां जाकर गोरों की क्रूर एवं निष्ठुर प्रवृत्तियों के विरुद्ध अपने सत्याग्रह का प्रथम प्रयोग किया जो सफल हुआ ।

' वहीं प्रथम सत्याग्रह असि को
युग नायक ने धरा सान पर
नम्र अवज्ञा से जय पायी
अन्यायी का क्रूर मान हर । '[२]

गांधीजी ने भारत की विकट परिस्थिति में सत्य - अहिंसात्मक नीति को लेकर राष्ट्रीय मंच पर पदार्पण किया -

' राजनीति के कृमि कर्दम में
संस्कृति का केतन कर स्थापित
बोने आया वह प्रभु किल्विष
सत्य अहिंसा पावक से सित । '[३]

गान्धीजी के आगमन से देश में नयी चेतना का अध्याय खुला और भयभीत जनता ने आत्म-बल का परिचय पाया । -

' नया चेतना पृष्ठ खुला हो,
मिट भेद भय, मन का संशय

- -

१: मुक्ति यज्ञ - छं० ६८ , पृ० २८ २: वही० छं० ९६, पृ० २९
३: वही० छं० १०४, पृ० २९

हिंस्र शक्ति से मत जगत को
मिला प्रेम बल का नव परिचय । '[1]

उनके आत्मबल की चेतना से प्रेरणा पाकर मानवता का उदय हुआ, अहिंसा की क्षमता से विजय प्राप्त हुई, मनुष्यत्व का जन्म और पाशवता का मरण हुआ ।[2] उनके अहिंसात्मक रक्तहीन रण को देखकर जनता चकित हो उठी और उसी का स्वागत करते हुए आत्मबलिदान करती रही -

' सोच रहे थे जग के बौद्धिक
कैसा अद्भुत, रक्तहीन रण ,
अस्त्रहीन जन हंस हंस करते
प्रतिपक्षी को आत्म- समर्पण । '[3]

कवि ने देश के कल्याण के लिए भारत की जनता से यह अनुरोध किया है कि वे चरखा चलावें, सूत, तकली आदि कातें, अस्पृश्यता का निवारण करें, चरना करें, विदेशी कपड़ों को त्यागकर देशी वस्त्र धारण करें । और दरिद्रता को दूर करें । कवि पर गांधीवाद के प्रभाव का सच्चा उदाहरण प्रस्तुत है -

' शुद्ध अहिंसा का प्रतीक शुचि
--   --   --
त्याग विदेशी वस्त्र, कात चिर
हों संपन्न दरिद्र नारायण ।'[4]

गान्धीजी के आह्वान को शिरोधार्य मानकर भारत के लोगों ने बड़े गौरव और अभिमान के साथ उनके निरस्त्र आन्दोलन में अपने को बलिदान किया था -

' हुए गौरवान्वित निरस्त्र जन,
मुक्ति यज्ञ हित आत्म-दान कर । '[5]

- -

१: मुक्ति यज्ञ - छं० १३२,पृ० ३१   २: वही० छं० १३६,१४०,१४४,१४८,१५२ ,पृ० ३१
३: वही० छं० १५६, पृ० ३२ ४: वही० छं० २६०, २६४ - पृ० ३६ ५: वही०छं० ३६४ पृ० ४०

देश के पुरुष ही नहीं, नारियां भी गान्धीजी की अहिंसा के पीछे दौड़ रही थी और उनके आत्म - त्याग में अहिंसा मूर्तिमती बनती जाती थी -

' सच्चे साहस, शौर्य त्याग से
दीप्ति, युवतियां थीं उन्मेषित,
बनी अहिंसा मूर्त रूप धर
भारत लक्ष्मी में अभिषेकित । '१

भौतिकता के विरोध में किया जाने वाला आध्यात्मिकता का युद्ध मानव का हृदय-परिवर्तन करने में सफल हुआ ।

' भौतिकता के प्रतीकार में
आध्यात्मिकता का सक्रिय रण
मनुज हृदय परिवर्तन करता
प्रेम स्पर्श से पुष घृणा व्रण । '२

गान्धीजी देश की अस्पृश्यता को दूर करने में अतीव तत्पर तथा उत्सुक थे । इसके लिए उन्होंने आमरण अनशन तक किया था ।

' भारत आत्मा एक अखण्डित,
रहें हिन्दुओं में ही हरिजन
जाति वर्ण अब पौंछ, चाहते
वे संयुक्त रहें यु अगणण । '३

प्रस्तुत मुक्तिपद्म का उद्देश्य कवि ने यों बताया है कि सब से पहले देश स्वतन्त्र होना चाहिए और देश में नव-युग के जागरण के शंख को ध्वनि गुंजरित होनी चाहिए -

' प्रथम देश स्वाधीन बन सके
यही परम हो लक्ष्य हमारा ,
फूंके युग - जागरण शंख स्व
जन- स्वतंत्रता का दे नारा । '४

१: मुक्तिपद्म - छं० १७२ ,पृ० ४१ २: वही० छं० ४००,पृ० ४२ ३: वही० छं० ४०८,पृ० ४२
४: वही० छं० ४४४, पृ० ४४

भारत की स्वतंत्रता - प्राप्ति के बारे में कहा है -

' मुक्त हुए कारा से बापू,
मुक्त वीर बन्दी नेता गण
सफल हुआ युग - स्वप्न - पुरुष का
भारत ने पाया स्वराज्य धन । '[१]

अहिंसात्मक स्वतंत्रता- संग्राम की महिमा गायी गयी है -

' धन्य, अहिंसक भारत के रण ,
सत्य, सिद्ध, जय जन रण नायक
युग पशु-बल को प्रीति प्रणत कर
मानवता के बने विधायक । '[२]

कवि ने यही उपदेश दिया है -

' भारत की अध्यात्म ज्योति में
भुवन शांति हो विश्व- संघटित
अमृत- अहिंसा बने अस्त्र नव
सत्य करे जन- भू पथ दीपित । '[३]

स्वतन्त्रता - संग्राम को विषय बनाकर लिखने के कारण 'मुक्तियज्ञ' काव्य अत्यंत महत्वपूर्ण है । इसमें कवि का ध्यान गांधीवादी विचारधारा को प्रस्तुत करने के लिए पृष्ठभूमि तैयार करने में अधिक लगा है । अत: गांधीवाद के सारे सिद्धान्तों का विवेचन इसमें नहीं हुआ है । फिर भी अपने युग- धर्म का पालन उन्होंने किया है।

११ - पुरुषोत्तम राम :

यह भी सुमित्रानन्दन पंत जी का आत्मपरक खण्डकाव्य है । यह काव्य रामायण के भगवान श्रीरामचन्द्र जी को संबोधित करते हुए लिखा गया है ।

- -

१: मुक्तियज्ञ - छं० ९८०, पृ० ६७ २: वही० छं० १०३२, पृ० ७०
३: वही० छं० १०४८, पृ० ७०

गान्धीजी भगवान रामचन्द्रजी के बड़े भक्त थे और वे ही उनका सब कुछ रहे थे। लेकिन कवि ने यहाँ नारायण राम को नर पुरुषोत्तम के रूप में चित्रित किया है जिसके मूल में गान्धीवादी विचारधारा को निरूपित करने का उद्देश्य रहा है। इस काव्य की एक विशेषता यह है कि कवि ने अपने को राम बताते हुए अपने मन के गान्धीवादी विचारों को राम की जिह्वा से प्रकट करने का प्रयास किया है। बीच बीच में उन्होंने देश की समसामयिक परिस्थितियों और तज्जन्य विभिन्न समस्याओं एवं आन्दोलनों का प्रतिपादन भी किया है जो प्रस्तुत काव्य की रचना के लिए पृष्ठभूमि तैयार करने में सफल हुआ है।

काव्य के प्रारंभ में कविवर पंत जी ने अपने जन्म, बाल्यावस्था, बाल्य- शिक्षा, उच्च - शिक्षा, कौसानी, काशी, प्रयाग आदि देशों की प्राकृतिक सुन्दरता इत्यादि का चित्रण किया है। पन्तजी ने गांधीजी से तभी प्रेरणा पायी जब वे प्रयाग में अपनी उच्च शिक्षा पा रहे थे। उन्होंने इसी समय गांधीजी के असहयोग आन्दोलन में योगदान देने का आग्रह प्रकट करते हुए अपना विद्याभ्यास समाप्त कर दिया।

> ' ऐसा सब को विदित तिलांजलि दे दी मैं ने
> विद्यालय को, असहयोग में योगदान दे।'[१]

राम स्वयं अपने को गांधीजी मानते हैं और भारत को नवयुग की मानवता का परिचय देते हुए सत्य, अहिंसा और मानव- प्रेम का मंत्र देना चाहते हैं -

> ' भारत मेरे अन्तर्मन का रण-क्षेत्र है।
> उसको नवयुग मानवता का बना निदर्शन।'[२]
> -- --
> लोक- प्रेम ही सत्य, अहिंसा शिव, सुन्दरप्रद। '[२]

पन्तजी गोवध या गोहत्या का प्रतिरोधात्मक आन्दोलन के सिलसिले में अनशन करना चाहते हैं -

> ' अनशन का ले अस्त्र, अनुर्वर लक्ष्य - सिद्धि हित,
> मूक गायों की हत्या को रोकने एक स्वर।'[३]

१: पुरुषोत्तम राम - पन्तजी - पृ० १६ २: वही० पृ० ३४ ३: वही० पृ० ४१

गो - हत्या को पन्त जी ने आत्मा - की हत्या बतायी है, अत: उसे रोकने का प्रयत्न होना ही चाहिए -

' गो हत्या भी नहीं, हमें गर्दभ हत्या भी
स्वीकृत नहीं अकारण, - यह आत्मा की हत्या । '[१]

पन्तजी अथवा रामचन्द्रजी ने बताया है कि देश में यदि कोई सच्चा शासक रहता है तो उसे मांसहीन शोषित भारत को मांसल बनाना है ; अतीत के अर्थहीन विश्वासों और रूढ़ियों के अन्धानुकरण का अन्त करना चाहिए ; राग-द्वेषादि को हटाकर अस्पृश्यता के संप्रदायों को मिटाना है । तभी देश का कल्याण होगा ।

' कोई भी हो शासक, - उसको मध्ययुगों के
-- -- --
भरा व्रणों पर लेप लगा नव मनुष्यत्व का । '[२]

पन्त जी ने देश में नई चेतना के युग का स्थापन करने का उपदेश दिया है जिसके न होने से देश का महानाश होने की संभावना है ।

' नयी चेतना का युग लाना होगा भू पर
-- -- --
कर्तव्यच्युत होगा । -- -- । '[३]

रामचन्द्रजी ने कवि से बताया है कि उन्हें रामायण या महाभारत, गीता या भागवतमें खोजने से नहीं मिलेंगे । अगर उनसे मिलना है तो भारत की जनता में खोजना । गान्धीजी ने भी देश की दरिद्र से दरिद्र जनता में हो भगवान का दर्शन किया था जिससे वे दरिद्र नारायण कहलाये ।

' कहां खोजते मुझको गीता रामायण में
वृहद् भागवत तथा महाभारत पन्थों में ? -
जनगण में देखो मुझको, जो शोषित भारत,
जन - भू जीव - पदार्थ - पृथक मुझ से युग - युग से । '[४]

- -

१: पुरुषोत्तम राम - पन्तजी - पृ० ४३ २: वही० पृ० ४६ ३: वही०पृ० ४९
४: वही० पृ० ५५

उनका उदय भारत के राजनीतिक क्षेत्र में आध्यात्मीकरण की प्रवृत्ति रहा था जैसा गान्धीजी ने किया था -

' राजनीति ही मेरा युग का प्रमुख क्षेत्र है,
जिसको देना मुझे अभी सांस्कृतिक धरातल
आध्यात्मिक किरणें बखेर जन- भू की रज में ।'[१]

यह काव्य पन्त जी के वैयक्तिक एवं गान्धीवादी विचारों का युगल - रूप है । कवि ने एक ओर गान्धीवाद के सिद्धान्तों का व्याख्यान किया है तो दूसरी ओर अपने जीवन की सुख- दु:ख - मिश्रित घटनाओं का चित्रण भी किया है। यहां उन्होंने देश की समस्याओं को सुलझाने की एक सहायक पद्धति के रूप में उन्होंने गान्धीवाद को अपनाया है । कवि पन्तजी को रामचन्द्रजी गान्धीवाद का उपदेश देने की भान्ति यह काव्य रचित है । रामचन्द्रजी को उन्होंने अपनी आत्मा मानी है । काव्य के अन्त में कवि ने यह दु:ख भी प्रकट किया है कि आधुनिक युग में मानव पशु से भी निर्दय और नृशंस बनता जाता है । अत: गान्धीवादी विचारधारा के नष्ट होने की संभावना की ओर भी अपनी दृष्टि डाली है ।

इस काव्य को तीन खण्डों में विभक्त किया जा सकता है । प्रथम खण्ड में कवि ने अपने जीवन और प्रकृति संबंधी काव्यों की रचना पर प्रकाश डाला है जहां ' वीणा', ' पल्लव ' , ज्योत्स्ना आदि कविताओं के सृजन की प्रेरणादायी घटनाओं का चित्रण किया गया है । दूसरे खण्ड में गांधीजी की प्रेरणा पाकर अपनी शिक्षा को समाप्त करके उनके राजनीतिक कार्य- क्रम में शामिल होने का वर्णन है और यहां देश की विविध परिस्थितियों का प्रतिपादन किया गया है । तीसरे खण्ड में रामचन्द्रजी के द्वारा गांधीवाद का उपदेश और आधुनिक युग में गांधीवाद की प्रगति के प्रति कवि- मानस में उठने वाली आशंका आदि वर्णित हैं । गांधीवाद से प्रभावित प्रथम आत्म-परक खण्डकाव्य है यह ।

निष्कर्ष ::

हिन्दी में खण्डकाव्यों की रचना कम ही हुई है ; तो भी गान्धीवाद से प्रभावित खण्डकाव्यों की संख्या कम नहीं है । अब तक जितने खण्डकाव्य

१: पुरुषोत्तम राम - पन्तजी - पृ० ५६

उपलब्ध हैं उनमें अधिकांश गांधीवादी काव्य ही हैं। भारत के राष्ट्रीय मंच पर गान्धीजी बीसवीं शताब्दी में ही आये। लेकिन गांधीवाद की दृष्टि से हिन्दी साहित्य का अध्ययन करने से यह स्पष्ट होता है कि गान्धीजी के आगमन के पूर्व ही गान्धीवाद का विवेचन हुआ है। इसका कारण तो यह कह सकते हैं कि गान्धीजी भारतीय हिन्दू धर्म के विश्वासी तथा उसके अध्येता रहे हैं। अन्य धर्मों की तुलना में वे हिन्दू धर्म को ही श्रेष्ठ मानते थे। हिन्दू धर्म में प्रतिपादित तत्वों का ही अध्ययन वे करते थे और उन्हीं को संगृहीत करके अपने सिद्धान्तों को नींव के रूप में उनका उपयोग करते थे। गान्धीवाद के नाम से अभिहित होने के पहले ये तत्व हिन्दू धर्म के तत्व मात्र रहे हैं। उन्होंने सत्य, अहिंसा, अपरिग्रह आदि सिद्धान्तों को व्याख्यात्मक समर्थन जो दिया है वे वैदिक युग की देन हैं। अत: रामायणीय - महाभारतीय तथा पौराणिक- ऐतिहासिक खण्डकाव्यों में भी गान्धीवाद के तत्वों को प्रतिपादित देखा जा सकता है।

गान्धीवादी खण्डकाव्यों की रचना मुख्यत: काल्पनिक, पौराणिक, ऐतिहासिक तथा राजनीतिक विषय - वस्तुओं के आधार पर हुई है। इनमें कवियों ने गान्धीवाद को प्रत्यक्ष तथा परोक्ष रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। प्रत्यक्ष रूप से दो ही काव्य प्राप्त हैं - ` गांधी गौरव ` और ` पथिक `। दोनों गांधीजी के जीवन पर रचित हैं जिनमें उनके जीवन से संबंधित विभिन्न घटनाओं का वर्णन किया गया है। परोक्ष रूप से लिखित गान्धीवादी खण्डकाव्य भी कम नहीं हैं। यहां कवि ने काल्पनिक कथा को लेकर ` किसान`,` वंचित `, अनाथ ` आदि काव्यों की रचना करके उनमें गान्धीवाद का प्रतिपादन किया है। ` पंचवटी `,` शक्ति `,` कर्ण `, `नकुल`,` वनवास ` आदि काव्य पौराणिक कथा के आधार पर रचित हैं। ऐतिहासिक कथा को केन्द्र बनाकर ` सिद्धराज `,` अर्जन - विसर्जन `,` बाबा और कमला`, लिखे गये हैं। `गुरुकुल `,` हिन्दू `,` आत्मोत्सर्ग ` ,` स्वतन्त्रता की बलिवेदी``मुक्तियज्ञ` `पुरुषोत्तम राम ` आदि में राजनीतिक विषय का विवेचन हुआ है।

काव्यों का संक्षिप्त मूल्यांकन :

किसी काव्य की रचना के मूल में उसके कारणार्थ कोई न कोई पृष्ठभूमि अथवा भूमिका आवश्यक है। वैसा ही गान्धीवादी खण्डकाव्यों की रचनाओं में०ऐस

में देश की तत्कालीन सम- सामयिक परिस्थितियां ही पृष्ठभूमि का कार्य करती हैं । वे भी परतन्त्र कालीन देश की होती हैं । इन सारे काव्यों में किसी न किसी परिस्थिति का वर्णन अवश्य हुआ है । ` गांधी गौरव ` में जाति- भेद की प्रथा की व्यापकता, चौरी - चौरा हत्याकाण्ड, जलियांवाला बाग की नर-हत्या, बोअर युद्ध, रोलट एक्ट , पैक्ट आदि विविध घटनाओं का चित्रण किया गया है जिनके विरुद्ध गांधीजी ने अपना अहिंसात्मक आन्दोलन चलाया था । ` पथिक ` में उस समय की परिस्थितियों का चित्रण है जब भारत अंग्रेजों की ईस्ट इंडिया कंपनी के हाथों में था ।

`किसान ` में गान्धीयुग के पूर्व किसानों के प्रति किये गये अत्याचारों तथा नृशंसतापूर्ण प्रवृत्तियों का वर्णन किया गया है । इसमें पुलिस की निर्दयतापूर्ण हालतें, जमींदारों का निष्ठुर व्यवहार, कुली - प्रथा, दक्षिण अफ्रीका में भारतीय जनता पर किये जानेवाले अत्याचार प्रथम महायुद्ध आदि का वर्णन किया गया है । यह एक समस्या-प्रधान काव्य है । ` अंजलि ` में कारावास के जीवन के दुखपरिचायक अनुभवों का चित्रण हुआ है । गोहत्या, जातिभेद, रोलट एक्ट, परिग्रह, हिंसा, अधर्म आदि दोषपूर्ण परिस्थितियों का वर्णन हुआ है । ` अनाथ ` में पुलीस का अत्याचार, मनुष्य सहायता का अभाव, दरिद्रता आदि को प्रतिपादित किया गया है। `शक्ति ` में असुरों के अत्याचारों ब से पीड़ित देव- लोक का चित्रण किया गया है । `कर्ण ` में अस्पृश्यता की समस्या ही प्रमुख रूप से आयी है ।

`गुरुकुल ` में सिक्खों और मुसलमानों के बीच का द्वन्द्व युद्ध चित्रित हुआ है । भारत पर यवनों का आक्रमण, पूंजीवाद, शोषण, परिग्रह आदि समस्याओं का उल्लेख हुआ है । हिन्दू - मुसलमानों का झगड़ा ही ` आत्मोत्सर्ग ` की विशेष परिस्थिति है । ` अर्जन और विसर्जन ` में कवि ने अरबों का आक्रमण तथा अफ्रीका के मूरों के द्वारा अरबों का पराजय आदि का वर्णन किया गया है । `हिन्दू ` में कवि ने परतन्त्र भारत की दीन दशा का चित्रण किया है । ` काबा और कर्बला` में इस्लाम राज्य में जनता के बीच फैली अशांति का चित्रण किया गया है ।`आत्मोत्सर्ग` में हिन्दू - मुस्लिम - झगड़ा वर्णित है । ` स्वतन्त्रता की बलिवेदी ` में भारत का स्वतंत्रता संग्राम चित्रित किया गया है ।`मुक्तिबोध यज्ञ ` का भी यही विषय रहा है ।

उपर्युक्त घटनाओं ने ही इन खण्डकाव्यों की रचना के लिए पृष्ठभूमि तैयार की है।

गान्धीवादी खण्डकाव्यों की विशेषताएं :

गान्धीवादी खण्डकाव्यों की कथाएं यथार्थ तथा काल्पनिक दोनों हो सकती हैं। इनमें कथा को उतनी प्रधानता एवं महत्ता नहीं दी जा सकती जितनी एक साधारण खण्डकाव्य में। इनकी कथाएं रामायण और महाभारत तथा अन्य पुराणों से संबंधित होने पर भी कवियों की आवश्यकता के अनुसार उन्हें बदलते हैं। उदाहरण के लिए सियारामशरण जी कृत `नकुल` में युधिष्ठिर जिस रूप में चित्रित हुए हैं, महाभारत में वैसे नहीं हैं। यहां उन्हें समाज- सुधारक के रूप में चित्रित किया गया है। उन्हें गांधीवाद से अत्यधिक प्रभावित दर्शाने के लिए मूलकथा में यथोचित परिवर्तन भी किये गये हैं। गान्धीजी का हृदय - परिवर्तन वाला सिद्धान्त, जो इसमें निरूपित है, काव्य के प्रस्तावित परिवर्तन का उदाहरण है।

: वैसा ही मूल - कथाओं में शत्रु - दमन के लिए प्राय: अस्त्र- शस्त्र- प्रयोग ही स्वीकृत हुआ है। लेकिन गांधीवादी काव्यों में शत्रुता - दमन सीधा हृदय- परिवर्तन द्वारा ही संभाव्य सिद्ध किया गया है और यहां एक विशेषता यह पायी जाती है कि इस नवीन प्रयोग में शत्रु का दमन कदापि नहीं होता। `शक्ति` में यही बात पायी जाती है। यहां महिषासुर की हत्या न करके, देवासुरों की एकता की अमोघ संघ - शक्ति से दोनों की आपसी शत्रुता मिट जाती है। चोरी, हिंसा, छल, कपट, आदि कुकर्मों से मानव को हटाने में हृदय - परिवर्तन का सिद्धान्त अत्यन्त उपयोगी है। `अंगिरा` में अंगिरा ने दरिद्रता की पीड़ा से व्यथित होकर अन्त में चोरी करने की बात बतायी तो उसकी पत्नी ने उसे इससे हटाया जिसके कारण उसने चोरी करना छोड़ दिया था।

गान्धीवादी खण्डकाव्यों की और एक विशेषता यह है कि इनमें उपेक्षित एवं अप्रधान पात्रों को प्रधानता देते हुए ऊंचा उठाने का प्रयास किया जाता है। इस उद्देश्य से ही पौराणिक ग्रन्थों का आश्रय लिया गया है। ऐसे पात्रों को ऊंचा उठाकर इस आधारभूत अनुमान से जनता के सम्मुख प्रस्तुत किया जाता है कि ये ही वास्तव में समाज- सेवी बन सकते हैं और इन्हीं के द्वारा ही समाज का कल्याण भी हो

सकता है। ` नकुल ` काव्य का नायक नकुल इसका उदाहरण है। यह महाभारत में एक उपेक्षित और अप्रधान पात्र रहा है। मगर सियारामशरण गुप्तजी ने उसे अपने काव्यका नायक बनाकर उपेक्षितों के प्रति बड़ा न्याय किया है।

कथा को प्रमुख न मानने वाले गान्धीवादी कवियों ने अपने उद्देश्य की पूर्ति अथवा गान्धीवाद के प्रतिपादन के लिए काल्पनिक कथा का सहारा लिया है। काल्पनिक होने से काव्य का कोई दोष नहीं है। काव्य की कथा एवं पात्र चाहे कल्पना जगत के हों, सब अपनी अपनी कथनी और करनी द्वारा अपने गान्धीवादी नवीन चपरत्र को उभारने में सफल और समर्थ निकले हैं। गान्धीवादी खण्डकाव्यों में मानवतावाद अत्यधिक ऊँचा उठकर असीम बनता है। ऐसे मानवतावाद की प्रतिष्ठा के लिए इनमें छूत - अछूत, उच्च - नीच, धनी - निर्धन, शत्रु - मित्र, पाप- पुण्य, दुष्ट - शिष्ट सभी के अस्तित्व की आवश्यकता पर बल दिया जाता है। इन विरोधी तत्वों में एकता स्थापित करने पर ही मानवतावाद की प्रतिष्ठा होती है।

कुछ कवियों ने गांधीवाद के प्रतिपादन को केवल गुणधर्म के रूप में अपनाया है। यहां गांधीवाद का विस्तृत विवेचन न होकर उस पर किंचित प्रकाश डाला जाता है। ` पंचवटी ` इसका उदाहरण है। कवि मैथिलीशरण गुप्त जी ने इसमें गान्धीवाद का यत्र- तत्र समर्थन ही किया है। इसमें गांधीवादी तत्व बहुत कम ही पाये जाते हैं। कवियों पर अपने समय की युगीन प्रवृत्तियों का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक ही है और ` पंचवटी ` की रचनात्मक दृष्टि से गुप्तजी पर यही हुआ है।

अन्त में यही कहा जा सकता है कि हिन्दी में गान्धीवादी खण्डकाव्य कम होने पर भी उपलब्ध काव्यों का महत्व अत्यन्त सराहनीय है।

अध्याय :: ९

मुक्तक काव्य

अध्याय : ७

मुक्तक काव्य

-०-

काव्य के महाकाव्य, खण्डकाव्य आदि रूपों के नियमों से मुक्त स्वतन्त्र रचना मुक्तक कहलाती है। मुक्तक शब्द की व्युत्पत्ति यों दी गयी है -

' मुच्यते स्मेति मुक्तम् ।
मुक्तं ह्रस्वं द्रव्यं मुक्तकम् । '[१]

अर्थात् मुक्तक उस द्रव्य का नाम है जो छोड़ा जा चुका हो और जिसका कलेवर छोटा हो। केशव ने अपने ' शब्दकल्पद्रुम कोश ' में बताया है कि जो काव्य अर्थ - परिज्ञान के लिए परमुखापेक्षी न हो, वह मुक्तक कहलाता है।[२] मुक्तक का अर्थ और एक जगह पर इस प्रकार दिया गया है - ' ऐसा पद्य जो निरपेक्ष रहते हुए पूर्ण अर्थ की अभिव्यक्ति में समर्थ हो, जिसका गुम्फन अत्यन्त रमणीय हो, काव्य के लिए अपेक्षित चमत्कृति ' इत्यादि विशेषताओं से युक्त हो; अपनी काव्यगत विशेषताओं के कारण जो आनन्द देने में समर्थ हो और जिसका परिशीलन ब्रह्मानन्द सहोदर रस चर्वण के प्रभाव से हृदय की मुक्तावस्था को प्रदान करने वाला हो।'[३] अग्निपुराण में कहा गया है -

' मुक्तकं श्लोक एवैकश्चमत्कार क्षमः सतां । '[४]

यहां अग्निपुराणकार ने मुक्तक में अलंकारों की प्रधानता को अवश्य माना है। 'ध्वन्यालोक' में आनन्दवर्धन ने मुक्तक की व्याख्या की है -

- -

१: मुक्तक काव्य की परंपरा और बिहारी - डा० रामसागर त्रिपाठी - पृ० १

२: ' क्रियाकुलं विरहितं व्यवच्छिन्नं विशेषितम् ।
भिन्नं स्यादथनिर्व्यूढे मुक्तं यो वाति शोभनः ।।'

३: मुक्तक काव्य की परंपरा और बिहारी - पृ० १-२

४: अग्निपुराण - ३३७ वां अध्याय - ३६ वां श्लोक - पृ० ४६०

मुक्तमन्येना - नालिंगितम् । तस्य संज्ञायां कन् ।
तेन स्वतन्त्रतया परिसमाप्त निराकांक्षार्थमपि
प्रबन्ध मध्य वर्ती मुक्तकमित्युच्यते । - - - -
पूर्वापरनिरपेक्षेणापि हि येन रसचर्वणा
क्रियते तदेव मुक्तकम् । '[१]

अर्थात् पूर्वापर पद्यों का जिसमें संबंध न हो, अपने विषय को प्रकट करने में स्वयं समर्थ हो उसे मुक्तक कहते हैं । रस की दृष्टि से मुक्तक की परिभाषा 'ध्वन्यालोक' में की गयी है -

' मुक्तकेषु प्रबन्धेष्विव रसबन्धाभि निवेशिन: कवयो दृश्यन्ते । '[२]

'काव्यानुशासन' में हेमचन्द्र ने मुक्तक को अनिबद्ध काव्य के अन्तर्गत रखा है और कहा है- अनिबद्धं मुक्तकादि ।[३] कविराज विश्वनाथ ने छन्दोबद्ध पूर्वापर बन्धनहीन पद्यों को मुक्तक बताया है -

' छन्दोबद्धपदं पद्यं तेन मुक्तेन मुक्तकम् ।
द्वाभ्यां तु युग्मकं सांदानितकं त्रिभिरिष्यते ।। '[४]

हिन्दी में मुक्तक काव्यों को परिभाषा इन्हीं संस्कृत परिभाषाओं के आधार पर ही की जाती है । हिन्दी में डा० निर्मला जैन ने मुक्तक की परिभाषा यों दी है - ' मुक्तक से हमारा आशय ऐसी रचना से है जो स्व- अर्थ - प्रकाशन में समर्थ और पूर्वापरक्रम से निरपेक्ष हो, व जिसके अर्थ की अन्विति व रसास्वादन के लिए पाठक को अन्य पद्यों का संबल ग्रहण न करना पड़े । '[५]

- -

१: ध्वन्यालोक - तृतीय उद्योत - पृ० ७५६
२: वही० - तृतीय उद्योत - पृ० ७६१
३: मुक्तक काव्य की परंपरा और बिहारी - पृ० ४४६
४: साहित्य दर्पण - पृ० ५४७
५: आधुनिक हिन्दी काव्य में रूप- विधाएं - पृ० ३८७

मुक्तक का स्वरूप :

मुक्तक का स्वरूप छोटे छोटे पद्यों का संग्रह है। इसका प्रत्येक पद्य या छंद स्वतंत्र होता है, अलग रहता है। प्रत्येक छंद अपने में पूर्ण और सार्थक रहता है। मुक्तक में कलापक्ष का और भावपक्ष दोनों की प्रमुखता रहती है, परन्तु कलापक्ष अपेक्षाकृत मुखर रहता है। अतिबौद्धिकता के कारण ही कलापक्ष भावपक्ष की अपेक्षा ऊंचा स्थान ग्रहण करता है। छन्द और अलंकार का युगल गठन अन्य काव्य- रूपों की अपेक्षा इसमें अत्यन्त सुन्दर हुआ है। इसमें भाव और अर्थ की अपेक्षा विषय और उक्ति का चमत्कार ही प्रधान है।

मुक्तकों का स्वरूप प्रारंभिक युग में रचना- विधा की दृष्टि से प्राय: उपदेशात्मक एवं नीति-परक था। उसके बाद उसका रूप सुभाषितों के रूप में प्रकट होने लगा। आगे स्वतंत्र मुक्तक छन्दों में मुक्तकों का सृजन होने लगा। मुक्तक की प्रधानत: कई विशेषताएं होती हैं और वे हैं - १: संक्षिप्तता, २- सरसता, ३- निरपेक्षता, ४- कलापक्ष की प्रमुखता, ५- बौद्धिकता ६- रसात्मकता, ७- दृश्य-विधान, ८- संगीतात्मकता।

मुक्तक का वर्गीकरण :

काव्य - रूप की दृष्टि से मुक्तक के दो भेद होते हैं - स्फुट मुक्तक और संयुक्त मुक्तक। विषय की दृष्टि से मुक्तक के गीत, प्रगीत, उद्बोधन गीति, संबोधन गीति , शोक गीति, राष्ट्रीय गीत आदि भेद होते हैं। कला और छंद की दृष्टि से इसके कई भेद माने जाते हैं। प्रकार की दृष्टि से मुक्तक के दो रूप - गेय और पाठ्य विद्यमान हैं।

स्फुट मुक्तक का वर्गीकरण :

स्फुट मुक्तक एक ही विषय पर लिखे गये अनेक छन्दों को कहा जाता है, जो परस्पर निरपेक्ष हों। इसके दो भेद होते हैं - आत्मपरक और वस्तुपरक। आत्म परक दो प्रकार के होते हैं - भावात्मक और विचारात्मक। वैसे ही वस्तु परक के वर्णनात्मक और कथाश्रित भेद हैं। आत्मपरक मुक्तक काव्यों की रचना

वस्तुपरक मुक्तक काव्यों की अपेक्षा बहुत कम होती है। आत्म-परक मुक्तकों का दृष्टिकोण हमेशा अन्तर्मुखी होता है। जब कवि बाह्य विषय को लेकर भी उसका वर्णन न करके अपनी भावना या विचार का वर्णन करता है, जो उस विशेष विषय के प्रति उद्भुत होता है, तो वह व्यक्तिगत होता है। भावात्मक मुक्तक कभी विनय के रूप में कभी प्रार्थना के रूप में और कभी देशोद्धारादि की मांग के रूप में प्रणीत होते हैं। तत्कालीन राष्ट्रीय चेतना तथा देश समसामयिक अवस्था को लेकर भाव-प्रधान मुक्तक रचे जाते हैं। विचार-प्रधान मुक्तक तीन रूपों में रचे जाते थे - उपदेशात्मक, आलोचनात्मक और विवेचनात्मक। नीति और उपदेश-प्रधान मुक्त क की रचना ही अधिक होती है। आलोचात्मक में मार्ग- निर्देशन या कर्म निर्देशनकी प्रवृत्ति होती है। विवेचनात्मक में दर्शन, धर्म, भक्ति इत्यादि के स्वरूप और महत्व को विवेचित किया जाता है।

वर्णनात्मक मुक्तक वे हैं जिनमें मानव, प्रकृति, उत्सव, दृश्य आदि का वर्णन हो। कथात्मक या कथाश्रित मुक्तक में घटना, कथा या आख्यान का विवरण होता है। इसमें कथा का विस्तृत वर्णन असंभव है। केवल कथा का स्पर्श या आश्रय मात्र लिया जाता है। इनका चयन प्राय: भक्त कवियों द्वारा अपने आराध्य-देवताओं के गुण- कीर्तन के लिए होता है।

संयुक्त मुक्तक :

संयुक्त मुक्तक में व्यक्त अनुभूति क्षणिक होते हुए भी एक से अधिक छंदों में प्रवाहित होती है। आधुनिक युग में ऐसे मुक्तक कम ही मिलते हैं। संयुक्त मुक्त क का उल्लेख सर्वप्रथम अग्निपुराण में मिलता है -

'महाकाव्यं कलापश्च पर्याबन्धो विशेषकम्।
कलकं मुक्तकं कोष इति पद्य कुटुंबकम् । '[१]

आगे 'साहित्य दर्पण' में कहा गया है -

१: अग्नि पुराण - ३३७ वां अध्याय - २३ वां श्लोक - पृ० ४६०

' द्वाभ्यां तु युग्मकं संदानितकं त्रिभिरिष्यते ।
कलापकं चतुर्भिश्च पंचभिः कुलकं मतम् । '[१]

संयुक्त मुक्तक के वर्णनात्मक और भावात्मक - दो भेद होते हैं । प्रगतिवाद के प्रारंभ के पूर्व कवियों ने जिन वर्णनात्मक संयुक्त मुक्तक काव्यों की रचना की थी, वे सब चेतन प्राणियों का रूप - वर्णन और और अचेतन वस्तुओं के सौन्दर्य - वर्णन से ओतप्रोत थे । लेकिन प्रगतिवाद के आगमन से कवियों ने वर्ग- वैषम्य और दीन- दलितों की समस्याओं का चित्रण ही किया था । राष्ट्रीय भावनाओं से ओतप्रोत कविताओं का प्रणयन हुआ था तो वे दो प्रकार की थीं - राष्ट्र के गौरव- व गान के उद्देश्य से प्रकृति आदि का वर्णन- २: देश प्रेम की भावना से अभिभूत किसी स्थल का वर्णन । ऐसी रचनाएं स्वतंत्रता संग्राम के क्रियाशील समय में बहुत होती थीं। देश-प्रेम के प्रसंग पर कवियों ने असहयोग, सत्याग्रह- आन्दोलन , अत्याचार - दमन आदि का वर्णन किया ।

<u>भावात्मक संयुक्त मुक्तक :</u>

:

व्यक्ति या देश के प्रति श्रद्धांजलि - अर्पण या स्तवन को इसमें महत्व दिया गया है । इसका दूसरा रूप संबोधन- गीत है जिसमें प्राकृतिक तथा भौतिक तत्वों का महत्व दिया जाता है । इन संबोधन गीतों में और एक रूप का उद्भव हुआ जो ' प्रगीत ' माना जाता है । ' प्रगीत ' में प्रतिपादित होने वाला विषय प्रायः उद्दीपन रूप में ग्रहण किया जाता है । प्रगीतों की रचना उत्सव, मांगलिक अवसर, स्तवन- वन्दन, विनय - प्रार्थना, वैयक्तिक भावना, व्यक्ति एवं प्रसंगोद्दीप्त भावना आदि विषयों एवं विकारों पर की जाती है । आधुनिक युग में उत्सवों का उल्लास और राग- रंग की अपेक्षा समस्याओं की प्रमुखता, आपत्तियों से संघर्ष आदि विषयों को ही मुख्यतया दी गयी । ऐसी रचनाएं द्विवेदी युग में अधिक हुईं ।

- -

१: साहित्य दर्पण - पृ० ५४७

प्रगीत :

प्राचीन काल से ही प्रगीतों की रचना होती आयी है। प्रगीत स्वभावत: गेय होते हैं। प्रगीत में भावना और अनुभूति दोनों प्रधान होती हैं। प्रगीत की परिभाषा कवियों ने यों दी है - `वह कविता जिसमें सरल अथवा अमिश्र भाव- स्थिति का समावेश होता है, वह कविता जिसमें सरल अथवा अमिश्र भाव-स्थिति का समावेश होता है, वह कविता जिसमें किसी अबाधित चित्तवृत्ति अथवा प्रेरणा की प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति होती है।`[१] यह वस्तुतया संक्षिप्त एवं लघुकाय होता है। किसी अल्प- क्षणिक अनुभूति को लेकर ही प्रगीत की रचना हो सकती है। प्रगीत के मूलतत्व ये होते हैं - १: आत्मपरक दृष्टिकोण या वैयक्तिकता, २: अन्त: स्फूर्ति अभिव्यक्ति, ३: हार्दिकता या भाव- मयता, ४: अखण्ड अनुभूति , ५: अन्विति, ६: संक्षिप्त आकार , ७- गति- प्रवाह, ८- संगीतात्मकता, ९- कलात्मक शैली । प्रगीत के ये भेद होते हैं - १: संबोधन गीति (ओड), २: शोक गीति (एलिजी), ३: पत्र गीति (एपिजिल) , ४: गीति (सांग) , ५: चतुर्दश पदी (सानेट) ।

मुक्तकों का विकास :

मुक्तकों की रचना वैदिक युग से ही होती आयी है। `रामायण`, `महाभारत` आदि पौराणिक ग्रंथों में नीति- उपदेश मिश्र के मुक्तक मिलते हैं। बताया जाता है कि मुक्तक परंपरा लोक- भाषा प्राकृत से प्रारंभ हुई है। गोवर्द्धनाचार्य, अमरुक, भर्तृहरि आदि कवियों ने मुक्तकों की रचना की है। संस्कृत में इहलोक परक और आमुष्मिकता परक मुक्तकों की रचना हुई। कालिदासकृत `शृंगार तिलक`, भर्तृहरि कृत `वैराग्य शतक`, `शृंगार शतक`, और `नीति शतक`, अमरुक कृत `शृंगार शतक`, गोवर्द्धनाचार्य कृत `आर्या सप्तशती` आदि इस युग की मुक्तक कृतियां हैं। आमुष्मिकता परक मुक्तकों में ईश्वरोपासनागत स्तुति एवं प्रार्थना की जाती है। ऐसे मुक्तकों की रचना सर्वप्रथम कवि बाण ने `चण्डी शतक` में की।

१: आधुनिक हिन्दी काव्य में रूप विधाएं - पृ० ४७४

अपभ्रंश काल में दोहा, चौपाई आदि छन्दों में मुक्तकों का चयन होता था । मुनिराम सिंह का ' पाहुड़ दोहा ' मुक्तक रचना है । इस काल में दार्शनिक परक एवं शृंगार परक मुक्तकों की अधिक मात्रा में होती थी । हिन्दी साहित्य के आदिकाल में राजनीतिक और सामाजिक परिवर्तनों का आरंभ हुआ था । फलत: वीररसपूर्ण मुक्तकों की रचना प्रारंभ हुई थी । इस युग के कवि अमीर खुसरो ने सर्वप्रथम खड़ीबोली में मुक्तक रचना शुरू की । भक्तिकाल में निर्गुण सगुण धाराओं के कवियों ने भी ऐसी कविताओं की भी रचना की है । कबीरदास की ' साखी ' तुलसीदास की ' कवितावली ', ' दोहावली ', हनुमान बाहुक ', ' विनय पत्रिका ' ' वैराग्य संदीपनी ', ' बरवै रामायण ', ' , रामाज्ञा प्रश्न ' आदि इसके उदाहरण हैं । रीतिकाल की मुक्तक रचनाएं लक्षण एवं लक्ष्य ग्रंथों में पायी जाती हैं । बिहारीलाल ने ' सतसई ' की रचना की । देव, घनानन्द आदि रीतिकालीन कवियों ने भी मुक्तकों की रचना की ।

द्विवेदी युग में आते ही मुक्तकों की रचना के लिए विभिन्न शैलियों को अपनाया गया । अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध ' ने चोखे चौपदे ' की रचना की जो:उक्ति-वैचित्र्य पूर्ण शैली में थी । इसी प्रकार गोपालशरण सिंह, नाथूराम शंकर शर्मा, जगन्नाथ दास ' रत्नाकर ' आदि कवियों ने भी मुक्तकों का विभिन्न शैलियों में प्रणयन किया । स्फुट मुक्तकों का विवेचन द्विवेदी युग से करना ही ठीक है क्योंकि इस युग के पूर्व जिन मुक्तकों का सृजन हुआ है, उनमें किसी भी दृष्टि से कोई मौलिकता, चमत्कार, नवीनता आदि दृष्टव्य न थीं । इस युग में कवियों के सामने सामाजिक, सार्वजनिक तथा जातिगत समस्याएं बहुत थीं । और इन्हीं के प्रति एक सुधारवादी दृष्टिकोण रखते हुए वे अपनी आत्माभिव्यक्ति करते थे । इन समस्याओं को जन्म देने वाली प्राचीन रूढ़ियों, रीति- रिवाजों तथा अंध विश्वासों के प्रति ये कविगण प्रति-क्रिया का रूप धारण करते थे ।

सुधारवादी दृष्टिकोण द्विवेदी युग की कविताओं का युग-धर्म था । इस युग के कवि स्वभावत: सुधारवादी थे और इन्होंने सामाजिक चेतना को आधार मानकर मुक्तकों की रचना की । इसके लिए सत्य - मौतिक वास्तविकता, शिव - जन-कल्याण और सुंदर - स्वाभाविक व स्वस्थ व [illegible]

भावात्मक, विचारात्मक, वर्णनात्मक तथा कथाश्रित मुक्तक रचनाएं प्राप्त होती हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि कवियों ने मुक्तक के उपर्युक्त भेदों और उप-भेदों में ऐसी कविताओं का सृजन करके मुक्तक- काव्य के कलेवर को मोटा बनाया है। भारत की दयनीय एवं पराधीन दशा से व्यथित जन- मानस एवं कवि- मानस का विलाप, भारत को आजादी का लोभ की सफलता के लिए कविजन का उद्बोधन, उत्तेजना-प्रेरित कर्तव्य प्रतिज्ञा, स्वतंत्रता - प्राप्ति की घोषणा, स्वतंत्र भारत की प्रशंसा एवं महिमा-गान आदि विभिन्न विचारों से रचित मुक्तक विशेषत: अध्ययन - युक्त हैं। एक ओर ऐसे विषयों के मुक्तकों की रचना होती रही है तो दूसरी ओर गांधीजी की विजय महिमा, प्रशंसा, धन्यवाद और उनकी मृत्यु तथा तज्जन्य शोक, श्रद्धांजलि आदि की मुक्तकों का सृजन होता रहा है। अत: गांधीवादी मुक्तक भी बहुत कम नहीं हैं, जो इस अध्याय का प्रतिपाद्य विषय है।

हिन्दी साहित्य के अधिकांश कवियों ने महात्मा गांधीजी से प्रभावित एवं प्रेरित होकर कतिपय मुक्तक - कविताओं की रचना की है। इन्होंने विविध विषयक छोटी छोटी कविताओं को एक एक पुस्तक के अंतर्गत संगृहीत करके काव्य संग्रहों का प्रणयन किया है। एक ही कवि के कई संग्रह मिलते हैं। आधुनिक युग में इन कवियों ने विविध विषयों के भीतर गांधीजी और उनके विभिन्न सिद्धान्तों को भी स्थान दिया है। यह प्रवृत्ति गांधीजी के भारतीय राष्ट्रीय मंच पर पदार्पण से शुरू हुई। इन संग्रहों में संकलित गांधीय तथा गांधीवादी कविताओं की कोई निश्चित संख्या नहीं है। यदि एक संग्रह से दो या चार कविताएं मिलतीं तो दूसरे में केवल एक ही मिलती है। इससे यह स्पष्ट होता है कि कवि अपनी कविता रचना करते वक्त गांधीजी और उनके सिद्धान्तों से अछूता नहीं रह सका। किसी न किसी न प्रकार उनका संकलन करता ही है। यह तो कवि का युगधर्म मात्र रहता है। पल- पल में परिवर्तित होने वाली प्राकृतिक एवं विन्ध्यादिक परिस्थितियों से प्रभावित होना कवि के लिए स्वाभाविक ही है। यही बात गांधीजी और गांधीवादी प्रभाव से प्रणीत कविताओं में परिलक्षित होती है।

हिन्दी में अनेक कवि ऐसे हुए हैं जिन्होंने गांधीजी और उनके सिद्धान्तों को लेकर मुक्तकों का सृजन किया है। उनमें सोहनलाल द्विवेदी, माखनलाल

चतुर्वेदी, सियारामशरण गुप्त, बालकृष्ण शर्मा ` नवीन `, शिवमंगलसिंह ` सुमन `, सुभद्राकुमारी चौहान, सुमित्रानन्दन पंत, रामधारी सिंह ` दिनकर `, नरेन्द्र शर्मा, हरिकृष्ण प्रेमी आदि के नाम मुख्य रूप से लिये जा सकते हैं। पहले सोहनलाल द्विवेदी जी की कविताओं पर विचार किया जाएगा। द्विवेदी जी ने अपनी कविताओं को ` युगाधार `, ` भैरवी `, ` प्रभाती `, ` चेतना `, आदि काव्य-संग्रहों के रूप में संकलित किया है। इनमें गांधीय तथा गांधीवादी कविताओं के अतिरिक्त अन्य विविध विषयक कविताएं भी पायी जाती हैं। यहां पहले प्रकार की कविताओं का विवेचन ही मुख्य ध्येय है।

` युगाधार की कविताएं :-

इसमें गांधीजी पर लिखित दो- चार कविताएं पायी जाती हैं। गांधी नामक कविता में उनकी कीर्ति गायी गयी है। गांधीजी एक ही महान व्यक्ति थे जिन्होंने गाढ़ सुषुप्ति में लीन भारत को जगाया, देश में मुक्ति का जोश उत्पन्न किया। गांधीजी जितनी बाधाएं अपने सामने आ पड़ीं, उनका सामना करने में चतुर थे। वे रण- क्षेत्र में अकेले जाने के लिए भी नहीं हिचकते थे। -

` नीली सागर की लहरों को
यह कौन अकेले चीर चला ?
लड़ने को सुभट लहरों से
यह कौन अकेले वीर चला ? `[१]

गांधीजी को भारत का ` नंगा फकीर ` माना है। इस देश के सारे लोग उन पर ही अपने जीने की आशा को निर्भर रखते थे और उनसे मिलने वाले फल की प्रतीक्षा करते थे। भारत माता ` यशोदा ` का पुत्र मन मोहन गांधी भारत देश का प्यारा रहा है और आगे भी रहेगा यही कवि का विश्वास है। अतः कवि ने कहा -

- -

१: गांधी - युगाधार - सोहनलाल द्विवेदी - पृ० ६

' आत्माहुति के अनुपम प्रयोग,
नूतन दधीचि के नवल योग । '[१]

' बापू ' में कवि ने गान्धीजी के आगमन से देश में जो परिवर्तन दिखाई पड़े उन्हीं को प्रस्तुत किया है । कवि ने सर्वप्रथम गांधीजी के आगमन का चित्रण किया है -

' मन में नूतन बल संचारता ,
-- -- --
गाता जो भी राग मनस्वी । '[२]

गान्धीजी वृद्ध होने पर भी व र थे । उनके चलते वक्त पृथ्वी डोलने लगती थी । यह उनकी शक्ति या बल को व्यक्त करता है । देश के समस्त सेनानी विनम्रता सूचित करते हुए अपने सिर नत करते हुए निरस्त्र हाथ से बड़े अभिमान के साथ चलते थे । गांधीजी ने जनता के मन से गुलामी के अन्धकार को दूर कर स्वतंत्रता के प्रकाश को भर दिया । उनके प्रभाव से सुप्त भारत जागृत हुआ और गान्धीजी के चरण- पट के नीचे निर्भीकता का भाव उत्पन्न हो गया । गांधीजी ने पद से विचलित एवं दलित लोगों को अपनी दया, ममता और वाणी से जीवन मार्ग बताया । राष्ट्र में नव- जीवन के फूल के रस को छलका दिया । राष्ट्र में व्याप्त माया जाल कट गया और सत्य की प्रतिष्ठा हुई ।

गांधीजी के आगमन से राष्ट्र में जो विशेष परिवर्तन हुआ वह है वैराग्य की ओर जनता का झुकाव । पहले भारत में या राष्ट्र में विलासिता उच्च शिखर तक पहुंच चुकी थी । मगर गांधीजी के आने के बाद विलासिता एवं वैभव का अंत हो गया । भौतिकता से एक प्रकार की विरक्ति राष्ट्र - भर में दिखाई पड़ी ।

१: बापू - सुधाधार - पृ० ५
२: बापू - सुधाधार - पृ० २

' वैभव ' से विराग उठ बोला -
चलो बढ़ो पावन चरणों में
मानव - जीवन सफल बना लो
चढ़ पूजा के उपकरणों में । '[१]

भारतमाता की बन्धन- शृंखला को तोड़ - फोड़ कर स्वतन्त्रता का नया स्वर गूंज उठा-

' जननी की कड़ियां तड़काता
स्वतन्त्रता के नव स्वर भरता । '[२]

इस कविता में बापूजी की महिमा गायी गयी है । उनके द्वारा राष्ट्र में नव-जीवन का श्री गणेश जो हुआ, उसका चित्रण है । उनकी आज्ञा के अनुसार प्राचीन रूढ़ियों एवं परंपराओं का खण्डन करके नयी दिशा की ओर उन्मुख हुई है ।

' रेखा चित्र ' में कवि ने महात्मा गांधीजी का रेखाचित्र खींचा है। यह चित्र हमारे सामने उनका असली रूप प्रस्तुत करता है । इसमें कवि ने उनके अंग - प्रत्यंग का वर्णन करने का प्रयास किया है । रेखाचित्र होने पर भी उनका साक्षात् रूप चित्रित हुआ है ।

- उन्नत ललाट पर चिन्ता की
-- -- --
करुणामय विनय - निकेत बने । '[३]

आगे भी उनका रूप चित्रण किया गया है -

' आजानुबाहु फैली दोनों
-- --
मलयज के संग लहरते से । '[४]

- -

१: बापू - गुलाधार - पृ० ७ २: वही० पृ० ९
३: रेखाचित्र - गुलाधार - पृ० ३ ४: वही० पृ० ४

उनके रूप का चित्रण करते हुए कवि ने उनके व्यक्तित्वकी विशेषताओं का भी विश्लेषण किया है। उनकी चिन्तनशीलता, नम्रता, कट्टर बुद्धि- विवेक, करुणा, सादगी, गतिशीलता आदि का विवेचन किया गया है। इसमें उनके के बाल को एक छोटी चोटी की हवा में उड़ने के समान फैलता हुआ कहा गया है।

गांधीजी की शारीरिक गठन को कवि ने प्रभु की अनमोल सृष्टि माना है। ` बापू ` इन दो अक्षरों में समस्त संसार का भेद समाया हुआ है और सारा संसार इन दो अक्षरों के भीतर निहित है -

` बापू ` के लघु संबोधन में
सारा रहस्य युग का निबद्ध। `[१]

इसमें कवि गांधीजी का एक सुन्दर चित्र खींच लाये हैं। इस रेखा-चित्र में उनका जो चित्र चित्रित है, वह सजीव एवं सफल हुआ है। कबीर की भांति कवि ने भी इस कविता में ` गागर में सागर ` भरने का प्रयास किया है। सारे विश्व का समावेश यहां गान्धीजी में हुआ है।

: `सेवाग्राम ` में सेवाग्राम की महिमा गायी गयी है। यह गांव तो वर्धा से थोड़ी दूर बसा है। इसमें अनेक छोटे छोटे गांव हैं। सेवाग्राम को देश का हृदय कहा है जिससे नये नये विचार उत्पन्न होते हैं। गान्धीजी साधारणत: सेवाग्राम जाते थे और वहां जनता का दर्शन करते थे। बाद में यह गांधीजी का निवास- स्थल बन गया। अत: कवि ने उसे ` नवयुग के नये विधाता की छोटी बस्ती ` कहा है। सेवाग्राम की महिमा इन पंक्तियों में गायी गयी है।

` यह तपोभूमि, यह कर्मभूमि,
यह धर्मभूमि है तेजमयी,
जिसमें सुलझाई जाती हैं
सब जटिल ग्रंथियां नई - नई। `[२]

- -

१: रेखाचित्र - युगाधार - पृ० ४
२: सेवाग्राम - युगाधार - पृ० २१

'सेवाग्राम ' को हिमालय पहाड़ कहा गया है जिससे करुणा की गंगा निकलकर बहती है और जनता के मन को हरा- भरा करती है। कवि ने इसे सोच- विचार का केन्द्र स्थल कहा है । सेवाग्राम में अनेक क्रान्त पुरुष - तारों का उदय हुआ है । राजा और प्रजा सब सेवाग्राम की वन्दना तथा आराधना करते थे ।

' यह शक्ति केन्द्र, प्रेरणा - केन्द्र ,
अर्चना - केन्द्र, साधना - केन्द्र ,
वंदन अभिनन्दन करते हैं
जिसमें आकर नर औ' नरेन्द्र । '[१]

इस कविता के अन्त में कवि ने गान्धीजी पर प्रकाश डाला है । उनको स्फूर्ति-दायक और तपस्वी कहा गया है । सेवाग्राम गांधीजी का मुख्य कर्म-स्थल रहा है । वहां के छोटे - छोटे गावों में आकर गांधीजी दीन दु:खी जनता की रक्षा करते थे । अत: गान्धीजी और सेवाग्राम के बीच में जो व्यावहारिक संबंध है वह अटूट है ।

'सेवाग्राम की आत्मकथा ' में सेवाग्राम की कथा सुनायी गयी है । इसमें सेवाग्राम की आत्मकथा वर्णित है जो गांधीजी की ही आत्मकथा हो सकती है । जब गांधी जी वर्धा गये थे उसी समय सेवाग्राम की जो दशा थी उसी का वर्णन है ।

कवि ने सबसे पहले इसमें गान्धीजी और प्रकृति की समान दशा का चित्रण किया है । गांधीजी बड़े चिन्तनशील दिखाई पड़ते थे । तब प्रकृति भी उनका विषाद और मूकता देखकर चिन्तामग्न दिखाई पड़ती है ।

' घन विकल घूमते अंबर में
कैसे बरसायें वे जीवन ?
-- --
हैं बापू के हृदय स्थल में । '[२]

१: सेवाग्राम - मूलाधार - पृ० २२
२: सेवाग्राम की आत्मकथा - मूलाधार - पृ० १७

गान्धीजी हमेशा वैभव - विलास से दूर रहना चाहते थे। यहां भी गान्धीजी ने नगर के विलास- जन्य वैभवों के प्रति अपनी घृणा प्रकट की है। ग्राम में गांधीजी का बड़ा स्वागत हुआ। नगर और गांव में जो विभिन्न प्रकार के अन्तर होते हैं उन्हीं को कवि ने यहां स्पष्ट किया है -

' आओ तुम पुरई - पालों में

-- -- --

जामुन महुआ के थालों में। '[१]

आगे की कुछ पंक्तियों में गांव और नगर के लोगों की विभिन्न दशा का वर्णन है। नगर के लोग सुख- सन्तोष के साथ जीवन बिताते हैं, जब गांव के लोग दु:ख और क्लेश क से मर मिटते हैं। देश में क्यों ऐसी भी दशा होती है कि निर्धनों की धनवानों के द्वारा हत्या होती है। अत: सेवाग्राम के किसान लोग गान्धीजी से वहां आने और उनकी करुण- कथा सुनने की प्रार्थना करते हैं। गान्धीजी ग्राम की करुण हालत पर सोचकर उनकी रक्षा करने क चले गये। इसी का वर्णन यहां किया गया है -

' बापू कटिबद्ध चले आश्रम
को त्याग, व्यग्र आश्रमवासी। '[२]

गान्धीजी की दान-शीलता के बारे में कहना तो असंभव सा है। जब उन्होंने सेवा-ग्राम की जनता की करुण दशा देखी तब वे अपना सब कुछ उनको देने को तैयार हुए।

' कर में लेकर अपनी लकुटी
तन में मोटा उजला कंबल,
दृढ़ दृष्टि, सुदृढ़ प्रगति पुष्ट
देने को ग्रामों को संबल। '[३]

१: सेवाग्राम की आत्मकथा - कुमाधार - पृ० ११
२: वही० पृ० १४ ३: वही० पृ० १५

जब गांधीजी सेवाग्राम पहुंचने लगे थे तब गांव के लोगों ने ही नहीं प्रकृति ने भी उनका स्वागत किया -

> ' पथ की लतिकाएं फूल रहीं
>
> -- -- --
>
> निज भाग्य - पुष्प ये बांच रहे । '[१]

गांधीजी जब सेवाग्राम पधारे तब उनके पदार्पण से वह एक पुण्यस्थल बन गया । कवि ने गान्धीजी को नव-जीवन के प्रभात, आत्म-साधना के यात्री, ग्राम-देवता, नवयुग के निर्माता आदि विशेषणों से विशेषित किया है । इसमें प्रकृति भी गान्धीजी को विभिन्न परिस्थितियों के अनुसार कार्य करती हुई दिखाई पड़ती है ।

'भ्रमण ' में गान्धीजी की जीवन- यात्रा का वर्णन है । उनकी इस यात्रा का वर्णन करने के लिए कवि ने सन्ध्या- वेला को अपनाया है । गोधूलि को उड़ाती हुई मन्द- मन्द चलने वाली हवा से मंडित सन्ध्या की पृष्ठभूमि में कवि ने गांधीजी की यात्रा का चित्रण किया है । इसी समय बापू जी बाहर घूमने चलते थे । उनके साथ आश्रम के नर- नारी, बच्चे, बूढ़े- बूढ़ी, सब चलने तैयार होते थे । कवि ने गांधीजी के हंस -मुख का चित्रण किया है । -

> ' आंसू आते हैं नहीं कभी,
> है हंसी खेलती अधरों पर,
> वह जादू बापू कर देते
> बच्चों से बातें कर मनहर । '[२]

नन्हें नन्हें बच्चों के कोमल हृदय में भी गान्धीजी का रूप बस गया । वे भी उनके बताये मार्ग पर चलना चाहते थे ।

गान्धीजी एक ऐसे वीर थे जिन्होंने जीवन- यात्रा आरंभ करने पर हमेशा आगे ही बढ़ने का प्रयास किया है, पीछे को ओर मुड़ने का नहीं । अपनी जीवन- यात्रा के पथ पर जो बाधाएं और विघ्न आ पड़ते हैं उनका सामना करने के लिए

- -

१: सेवाग्राम की आत्मकथा - कुणाधार - पृ० १७ २: भ्रमण- कुणाधार- पृ० २१

उनमें काफी ताकत रहती थी। अत: वे उनको न मानते थे। उनकी यात्रा अनन्त रही।

> ' जितनी गति उनकी तीव्र
>
> -- -- --
>
> हिम, विघ्न, कहाँ पर वे रुकते ?'[1]

कवि कहते हैं कि हमारे भारत - देश को भी गान्धीजी के पद- चिह्नों का अनुकरण करना है।

> ' उनके चरणों में ही चल चल
>
> -- -- --
>
> घाटी पर्वत पर चढ़ना है।'[2]

मगर गान्धीजी की इस साधना- पूर्ण जीवन यात्रा के मार्ग पर चलने के लिए भारत की जनता अक्सर असमर्थ बन जाती थी और कवि ने उनसे ऐसे एक जीवन-पथ को स्वीकार करने की प्रार्थना की है जो जनता के लिए भी आसान प्रतीत हो। अन्त में कवि कहते हैं कि गान्धीजी जैसे यात्री के अनुगामी बनकर उनके मार्ग पर चलने से कोई असफल नहीं बनता। ऐसी यात्रा का अन्त सफल ही होता है -

> ' है जिनका निश्चत ध्येय,
>
> -- -- --
>
> होंगे यात्रा में क्यों न सफल ?'[3]

इस कविता में कवि ने पूज्य गान्धीजी की जीवन- यात्रा को चित्रित किया है। इसमें आद्यन्त गान्धीजी ही चित्रित हुए हैं। कवि ने उनकी अनूत एवं असीम कठिन जीवन - यात्रा को इस छोटी सी कविता के अन्तर समाहित किया है। यह कवि की बड़ी अद्भुत शक्ति की योग्यता जान पड़ती है। इसमें गान्धीजी अलक्षण-नायक के रूप में चित्रित हैं।

१: भ्रमण - मुलाधार - पृ० २८

२: वही० पृ० २९ ३: वही० पृ० २९

' उगता राष्ट्र ' में कवि ने अपनी दृष्टि नवीन जागृति पर डाली है। भारत का नव- जागरण हो रहा है। वर्षों पूर्व के भयंकर और अशान्त संघर्षों के बाद भारत के इतिहास में एक नये पन्ने को खोल रहे हैं। इस कविता में कवि ने ऐसे भारत का चित्रण किया है जैसा कि एक अंकुर धरती के अन्तर्भाग से उगता आ रहा हो। अत: कवि ने इसका शीर्षक ' उगता राष्ट्र ' रखा है। इसमें राजनीतिक तथा सामाजिक संघर्षों की उलझनों में पड़े परतन्त्र भारत की दशा का चित्रण करते हुए हमारा ध्यान ' उगते राष्ट्र ' की ओर ले चले हैं। किसी भी राष्ट्र के निर्माण के मूल में विजय और पराजय का द्वन्द्व युद्ध होता ही है।

भारत के निर्माण के वक्त भी विजयऔर पराजय दोनों दिखाई पड़ते हैं। दो विभागों के भीतर विजय - पराजय का युद्ध होता है और अगर एक विभाग दूसरे को पराजित करता था, वह सचमुच विजय प्राप्त करता है। इस युद्ध के फलों के परिमाण-स्वरूप राष्ट्र का निर्माण होता है, न भी होता है। हमारे वीरों के लिए युद्ध करना बहुत प्रिय लगता है और इतना ही नहीं, उसी में मृत्यु को वरना उनके लिए त्योहार - सा है। हमारे वीर बड़े ही पराक्रमी एवं सशक्त हैं। अत: द्विवेदी जी ने ऐसे वीरों की महिमा गायी है :

' वीर व्रती हैं डटे समर में
-- -- --
बल विक्रम का जिन्हें गर्व है। '[1]

भारत में वर्ण- भेद, जाति- भेद, स्वार्थ आदि थे।[2] इस समय भारत में साम्यवाद की प्रधानता रही है। अमीरों के द्वारा देश के गरीबों के प्रति जो अत्याचार और अन्याय चलते थे उन्हीं का वर्णन इसमें मिलता है। इसके बाद बड़े बड़े महान नेताओं की प्रेरणा से जनता के मन में नव जागरण - ज्योति आविर्भूत हुई, तब देश की विलासिता

- -

१: उगता राष्ट्र - युगाधार - पृ० ३१
२: वर्ण - वर्ण में छिड़ा द्वन्द्व है
जाति जाति से जूझ रही है।'
- उगता राष्ट्र, युगाधार - पृ० ३१

एवं आडंबर का नाश होने लगा । बाद में गान्धीजी रूपी तपस्वी की कर्म - साधना के फल-स्वरूप भारत की स्वतन्त्रता का मुख्य कपाट खुल गया -

' सिंह द्वार खुल गए सदा को
किसी तपस्वी के स्पर्शों में । '१

हमारे राष्ट्रीय कवियों ने बलिदान की महिमा गायी है । 'शीश - दान ' को ही उन्होंने भारत माता के चरण- कमलों पर अर्पित करने योग्य 'सुमन ' कहा है । अतः भारत के वीरगण बलि- पथ के पागल बनकर अपने शिरो-दान के लिए भटकते फिरते हैं । वे कहते हैं -

' हम तो हैं उनके मतवाले
बलि- पथ पर जो रक्त बहाते
विजय मिले, या मिले पराजय
अपने शीश दान कर जाते । '२

ये वीर गान्धीजी के भी मतवाले हैं जिन्होंने स्वाधीनता के समस्त कार्यों का भार अपने सिर पर लेकर, भारत को स्वतन्त्रता प्रदान करके, जनता की रक्षा की । यहां कवि ने गांधीजी को भगवान श्रीकृष्ण के रूप में चित्रित किया है जिन्होंने गोपियों को वर्षा से बचाने के लिए गोवर्धन पहाड़ को अपनी उंगली पर उठाया । अधर्म का नाश और सद्धर्म का जागरण हो रहा है । भारत में कितने वीर लोग अपने को बलिदान कर चुके हैं । उनकी गणना असंभव है । उन्हीं के खण्डहरों पर आज भारतमाता के अनेक मंदिर बनाये गये हैं और इन सब के ऊपर हमारी त्रिवर्ण - पताका, स्वतंत्रता-प्राप्ति के विजय- सूचनार्थ लहरा रही है ।

इसमें कवि ने भारतांकुर के धीरे धीरे उग आने का सुंदर ढंग से कोमल शब्दों से चित्रण किया है । अभी अभी उगने वाले भारत का वर्णन होने के कारण इसमें कोमलता आ गयी है । राजनीतिक तथा सामाजिक क्षेत्रों के अतिरिक्त

- -

१- उगता राष्ट्र व सुधाधार - पृ० ३३
२: वही० पृ० ३३

आन्तरिक एवं बाह्य द्वन्द्वों के बीच से होकर नया और सुंदर भारत देश जागृत हो उठा है, ऐसा लगता है कि मलिनता से युक्त कीचड़ से सुंदर एवं नवल कमल पुष्प खिल उठा है। कवि ने इस कविता में एक ऐसे भारत- नव भारत को चित्रित किया है जो पराजय से विजय की ओर, अपकर्ष से उत्कर्षकी ओर , संघर्ष से शांति की ओर अधर्म से धर्म की ओर, भिन्नता से एकता की ओर, आसक्ति से विरक्ति की ओर, भीरुता से धीरता की ओर तथा प्राचीनता से नवीनता की ओर बढ़ रहा है।

'हमको ऐसे युवक चाहिए ' में कवि ने ऐसे युवक की प्रतीक्षा की है जिसमें वीरोचित गुणों का दर्शन हो सकता है। यहां कवि ने वीर युवकों के लिए उन गुणों की आवश्यकता पर प्रकाश डाला है जो गांधीजी में दृष्टिगोचर होते थे। कवि ने भारत राष्ट्र के लिए गान्धीजी जैसे वीर युवकों की कामना की है। अत: उन्होंने आज के वीरों के लिए गान्धीवादी सिद्धान्तों एवं तत्वों से युक्त गुणों को चाहा है। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए कवि ने इनका विवेचन किया है। उन्होंने सर्वप्रथम ब्रह्मचर्य - व्रत की आवश्यकता पर बल दिया है -

' ब्रह्मचर्य से मुखमण्डल पर
चमक रहा हो तेज अपरिमित,
जिनका हो सुगठित शरीर
दृढ़ भुज दण्डों में बल हो शोभित। '[1]

वीरों को उत्साही रहना चाहिए क्योंकि युवक सदा वीर ही हो सकता है और उत्साह को वीररस का स्थायी भाव कहा गया है। वीरों से संबंधित और उनके द्वारा प्रवर्तित समस्त कार्यों में वीररस ही प्रधान रहता है। अत: कवि भी चाहते हैं -

' उर में हो उत्साह उल्लसित
साहस शक्ति शौर्य हो संचित ।। '[2]

- -

१: हमको ऐसे युवक चाहिए - युगाधार - पृ० ४४
२: वही० पृ० ४४

वीर युवकों में अपने देश के प्रति दया, ममता, प्रेम आदि के भाव होने चाहिए। उनके मन में देश प्रेम की भावना उमड़ - उमड़कर लहराना चाहिए और उनकी वाणी में सदा विजय की ध्वनि गूंजनी चाहिए। त्याग और वैराग्य की भावना उनके लिए अत्यंत आवश्यक है। वीर - युवकों को पर- सेवा में निरत रहना चाहिए। दूसरों के दुख को दूर करने के लिए अपने सारे सुख को खो देने को उनको तैयार होना चाहिए। अत: कवि भी कहते हैं -

> ' सेवा व्रत में जो दीक्षित हो
>
> -- --
>
> ललक रहा हो जिसका अंतर। '[१]

वीर युवक सदा सत्य के पथ पर चलने वाले हों। उनमें शारीरिक एवं आत्मिक बल पर्याप्त मात्रा में होनवा चाहिए। उनमें भारत- जननी के बन्धन की चिन्ता अवश्य बनी रहनी चाहिए। वे हमेशा स्वाधीनता की धुन गुंजरित कर सकें तो बड़ी बात होगी।

> : ' जिन्हें देश के बन्धन खटकार
>
> -- --
>
> आज़ादी जिसका आराधन। '[२]

यह कविता सचमुच गांधीवाद से ओतप्रोत दिखाई पड़ती है। इसमें गांधीवाद के कुछ तत्वों का सुंदर विवेचन हुआ है। गांधीजी में ब्रह्मचर्य, देशप्रेम, भौतिकता से विरक्ति त्याग भावना, सत्य-निष्ठा, पर-दुख चिन्ता आदि जो अमूल्य गुण थे उन्हीं का समर्थन करते हुए वीर - युवकों में इन्हीं गुणों के बीजों को बोकर सच्ची वीरता को उपजाने का प्रयास कवि ने किया है। भारत के लिए गांधीजी जैसे महान, वीर युवक अत्यंता-पेक्षित है, यह बात स्पष्ट कही जा सकती है। इस कविता का अध्ययन आज के युवकों के लिए जो वीर बनना चाहते हैं, अत्यंत उपयोगी जान पड़ेगा। कविने इस कविता का शीर्षक रखा है ' हम को ऐसे युवक चाहिए ' और जैसे युवक इसका उत्तर हमें इस कविता के पाठ से मिलेगा।

१: हम को ऐसे युवक चाहिए - युगाधार- पृ० ४५

२: वही० पृ० ४६

' बेतवा का सत्याग्रह ' का विषय वही है जो शीर्षक से स्पष्ट होता है, जिसे गांधीजी ने चलाया था। गंगा और यमुना - इन दोनों नदियों के बीच के संवादों के द्वारा कवि ने अपना विचार प्रकट किया है। यमुना गंगा से कुछ नई बातें कहने की प्रार्थना करती है, जिससे नव- जागरण की ज्योति मिल सके। तब गंगा इस सत्याग्रह की कथा कहने का प्रारंभ करती है। गंगा ने सबसे पहले बुंदेल खण्ड का देश का वर्णन किया जिसमें बेतवा नदी पृथ्वी को सींचती हुई बहती है। वहां के लोग बड़े वीर और महान होते हैं। इस नदी के किनारे हम्मीर पुर - जिला बसा है जो बड़ा गौरवयुक्त स्थल माना जाता है। एक दिन कुछ कृषक जनों ने इस नदी को पारकर इसी के० किनारे अपना घर बनाया था। जब वहां के मठिया ने यह देखा तो इनसे ' कर ' मांगा। मगर इन कृषकों ने कर देने से इनकार किया। इससे वहां के मालिक, नौकर आदि नाराज हो गये और उसने इनको खूब मारा- पीटा इस करुण दृश्य को कुछ सज्जनों ने देख लिया और उन्होंने अत्यंत व्याकुल होकर कहा -

' सोचा - यह तो है अनाचार
अपने उन दीन किसानों पर
हम फलते और फूलते हैं
बलि पर, जिनके एहसानों पर। '[१]

जब वहां के मालिक आदि ने इन कृषकों का सारा माल लूट लिया तब इनके नैनों में अश्रुजल भर आये और वे अंगारे बनकर सुलगने लगे। इस अवस्था को निहारते ही दर्शकों के मन में भी प्रतीकार की ज्वाला धधक उठी। यह बात जब गांधी जी ने सुनी तब उन्होंने इस कर के नियम को तोड़ने का निश्चय किया और वहीं अपना सत्याग्रह शुरू किया। ' कर ' को कायम किया जाय या मिटा जाय इस पर न्यायालय में व चर्चा हो गयी और कर को मिटा देने का जज ने आदेश दिया। गांधीजी और अनुयायियों को कारागृह से मुक्त कर दिया गया। भारत के सारे लोगों ने इन वीरों और गांधीजी का जयकार किया। -

---

१: बेतवा का सत्याग्रह - गुलाबरा - पृ० ७४

` भारत माँ की जयकार हुई,

-- -- --

लहरों में और कगारों में । `[१]

इस प्रकार वर्णन किया गया । इस सत्याग्रह में वस्तुत: नीति और अनीति, न्याय और अन्याय के बीच का द्वन्द्व था । न्याय अथवा नीति कदापि कहीं और किसी समय पर भी पराजित नहीं हो सकते । यहीं पर नीति का पक्ष ही की जीत हुई । हाथ में बिना कोई हथियार लिये, केवल सत्य और न्याय पर ही यहां द्वन्द्व चला था ।-

` कुछ अस्त्र नहीं० , कुछ शस्त्र नहीं
कुछ सेना साथी, साथ नहीं ,
वे चले युद्ध करने केवल
था सत्य न्याय ही शक्ति यही । `[२]

अन्त में सत्य और न्याय की विजय हुई । यहां यह बात स्मरणीय है कि गान्धीजी हमेशा सत्य औरन्याय की नीति पर ही चलते थे । कवि ने बलिदान का समर्थन करते हुए यों बताया है कि जिसके प्राण बलि के प्यास से तड़प उठे उनको ही धन्य वीर कहा जा सकता है ।

वे धन्य वीर । अन्याय देखकर

-- -- --

आत्माहुति हो जिनका वैभव । `[३]

वीरों की निर्भयता या निडरता पर ही जन- जीवन की विभूति अवलंबित रहती है । गांधीजी ने हमेशा अभय का ही उपदेश दिया था -

` यदि होते सत्याग्रही सत्य के
लिए अभय आगे बढ़ते,
तो होता जीवन - जन्म सफल
हम भी सब उन्नत शिखर चढ़ते । `[४]

- -

१: खेतों का सत्याग्रह - गुणाधार- पृ० ८३ २: वही० पृ० ८७
३: वही० पृ० ७९ - ८० ४: वही० पृ० ८२

वीरों में दुःख नामक एक अवस्था होती ही नहीं। कठिन से कठिन परिस्थितियों में भी वे सुख का ही अनुभव करते हैं। अतः उनके लिए कारागार का वास बड़ा दुःखजनक प्रतीत नहीं होता। वे सहर्ष उसे भोगते हैं -

` कारागृह भेजे हुए वीर

-- -- --

वे दुःख नहीं मन में लाते। `[1]

अन्त में यह कहा जा सकता है कि यह कविता मुख्यतः उन भारतीय वीरों के साहसिक कृत्यों से भरी पड़ी है जो गांधीजी के बेतवा सत्याग्रह में सक्रिय रूप से भाग लेते थे।

` आत्मबोध ` कविता में जनता के मन में ~~जनता के मन में~~ आत्मबोध को जगाने का प्रयास किया गया है। कवि ने गांधीजी से प्रभावित होने के कारण शारीरिक बल की अपेक्षा आत्मिक बल को प्रधानता दी है। इस कवितामें आत्मबोध के द्वारा हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच में एकता स्थापित करने का यत्न भी किया गया है। कवि ने मंदिर और मस्जिद में कोई भेद नहीं रखा। `कुरान,` `गीता` तथा ` इतिहास ` में विभिन्न बातों का विवेचन हुआ है। मगर उन्हें पढ़ने के बदले स्वयं खुद को समझने की कोशिश करनी ही आज की जनता को चाहिए। यही कवि का कथन है। `यथा राजा तथा प्रजा ` की भांति जैसा मानव कहता है, करता है और कहलाता है वैसा ही इतिहास लिखा भी जाता है। जो जिसके ~~व~~ संबंध में जैसा कहता है, उसी भांति इतिहास में उसकी अक्षरशः अनुकृति होती है। इसलिए कवि यह उपदेश देते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति को स्वबोध की चिंता रखनी चाहिए। उसको मंदिर - मस्जिद, गीता - कुरान, इतिहास - आलोचना आदि से ऊपर उठकर अपनी आत्मा को पहचानना चाहिए। आत्मबल से निर्भय और अहिंसक कृत्यों के द्वारा विजय- शिखर पर पहुंच सकते हैं। यही कवि का उपदेश है। ~~यह कविता~~

यह कविता गांधीवाद से प्रभावित दिखाई पड़ती है। इसमें कवि ने आत्मबोध के जागरण की बात कही जिसमें गांधीजी ने बड़ा जोर दिया था।

- -

१: बेतवा का सत्याग्रह - पृ० ८३

गांधीजी सर्वदा शारीरिक बल की अपेक्षा आत्मिक बल की प्रधानता पर दृढ़ रहते थे। उन्होंने जनता में आत्मा को उद्बोधित कराने का बड़ा कार्य किया है। यह भी सच है कि गान्धीजी अपने जीवन- लक्ष्य तक पहुंच सके तो केवल आत्मबल के सहारे ही। उनमें शारीरिक बल मुक्तः कम था, अस्थिशेषकाया थी। इस कविता में उस आत्म-बोध की विवेचना की गयी है जो गान्धीजी की प्रेरणा से कवि ने प्राप्त की थी। आत्मबल गांधीवाद के तत्वों में से एक है।

'हथकड़ियां' कविता की रचना की गयी है हथकड़ियों पर। भारतीय राष्ट्रीय वीरों के लिए हथकड़ियां एक आभूषण सी थीं। वे इन आभूषणों को पहनकर कारागृह में नर्तन करते थे। वे हमेशा इन हथकड़ियों का स्वागत करते आये थे। ये हथ-कड़ियां मातृभूमि की स्वतन्त्रता के लिए की गयी सेवाओं की जयमालाएं हैं -

' मातृभूमि की सेवाओं की

— — —

पावन मंजुल मधुर लड़ी।'[1]

अपने हाथों में बेड़ियां पहनकर कारागृह में निवास करना वीरों के लिए मधुर अनुभव होता है। अतः ये हथकड़ियां भी उनके लिए मधुर कड़ियां हैं। इनसे वीरों की प्रार्थना है कि उनमें आत्मशक्ति को जगाना और बलि होने का भाव उत्पन्न करना -

' कर में बांधो, विजय - कंकण - सी
उर में आत्म शक्ति लाओ,
जन्म - भूमि के लिए शलभ - सा
मर जाना, हां, सिखलाओ,'[2]

इस छोटी सी कविता में कवि की राष्ट्रीय भावना पूर्ण निखरी जा सकती है। भारत के

१: हथकड़ियां - पृ० ८७
२: वही० पृ० ८७

वीर युवक हथकड़ियों से डरते नहीं थे, प्रत्युत उनकी पूजा करते थे। उनके लिए वे मणियों की लड़ियां जैसी थीं। कवि ने एक राष्ट्रीय कवि होने के कारण इन हथ-कड़ियों को स्वीकार किया है और इनको जीवन की मधुमय घड़ियां, ' स्वतन्त्रता की फुलझड़ियां ' आदि कहा है।

इस कविता में हथकड़ियों के प्रति भारतीय वीर- युवकों के मन में जागृत जिन भावों का चित्रण कवि ने किया है, वही भाव हम गांधीजी में भी प्राय: देख सकते हैं। अत: यह कविता गांधीजी से संबंध अवश्य रखती है। गांधीजी ने भी कारागृह वास के समय में कितनी बार इन कुछ हथ-कड़ियों का सुखद अनुभव प्राप्त किया है यह कहना असंभव है। उनके युग में केवल ही नहीं महिलाएं भी हथ-कड़ियों का स्वागत करती थीं।

' सत्याग्रही ' कविता सत्याग्रहियों के स्वतन्त्रता - आन्दोलन के लिए वर्धा के आंगन में एकत्रित होने के लिए जाने का वर्णन करती है। यह उस समय की बात है जब कि गान्धीजी वर्धा में सेवाश्रम में रहते थे। जीवन की प्रत्येक दिशा में जनता-स्वतन्त्रता चाहती थी। अत: गांधीजी जहां जहां चलते और रहते वहां वहां किसी प्रकार का सत्याग्रह हुआ करता था। यहां वर्धा के सत्याग्रह के बारे में कहा गया है। इसमें कवि ने सत्याग्रह के लिए सत्याग्रही लोगों की तैयारियों का वर्णन किया है -

' आज चली है सेना फिर से
वीर धीर मस्तकों की
आजादी के दीपक पर है
भीड़ लगी परवानों की। '[१]

इस सत्याग्रह के प्रधान नेता गांधीजी ही थे। वे ही शंख बजाकर अपने दल को सूचना दे रहे थे।

' मन मोहन है शंख बजाता
कुरुक्षेत्र में हलचल है,

- -

१. सत्याग्रही - पृ० ५६

वर्षा के आंगन में सजता
फिर शूरों का दल बल है । '[१]

भारत की जनता के झुण्ड - झुण्ड यात्रा की तैयारियों में व्यस्त थे । कुछ लोग चले गये, कुछ लोग आज चलने वाले हैं और कल तो कुछ की बारी है । इस क्रम से सारे लोग उनके सत्याग्रह - समर में भाग लेते थे । भारत- जननी के पद- कमलों पर असंख्य वीरों का बलिदान हो चुका । अनन्त विशाल गगन में उसकी विजय का जयकार मुखरित हो उठा है । कवि के मत में वही सत्याग्रही बन सकता है जिसके मने में देश के प्रति अपार प्रेम और अपनी जन्म- भूमि से जान से भी बढ़कर प्यार रहे । -

' सत्याग्रही बने वह जिसका
-- --
जिसकी भारत - माता हो । '[२]

इस कविता में भी कवि ने गांधीजी और गांधीवाद से संबंधित कुछ विषयों पर प्रकाश डाला है । गांधीवाद के तत्वों में एक है बलिदान । इस भावना को प्रस्तुत कविता में बड़ा महत्वपूर्ण स्थान मिला है । कवि ने इस कविता के अंत में कहा है कि बलिवेदी पर बलिदानियों की बहुत बड़ी भीड़ दिखाई पड़ती है -

' बलिवेदी पर भीड़ लगी है
आज अमर बलिदानों की । '[३]

यह कविता सत्याग्रह और बलिदान की भावनाओं से ओतप्रोत है ।

'अनुरोध ' कविता द्विवेदी जी ने तब लिखी जब गान्धीजी ने कांग्रेस से सन्यास ग्रहण किया । इसमें कवि ने गांधीजी से सन्यास ग्रहण कर लेने के विषय में अपना अनुरोध अथवा अपनी प्रतिकूल भावना प्रकट की है । कवि ने साबरमती निवासियों से यह प्रश्न किया है -

' साबरमती आश्रम वाले !
ओ दण्डी यात्रा वाले !

- -

१: सत्याग्रही - पृ० ५६   २: वही० पृ० ५८   ३: वही० पृ० ५८

' यह वर्षा में कौन मौन व्रत
ले बैठे ओ मतवाले ! '[1]

कवि ने कहा है कि गान्धीजी अपने आश्रमवालों को छोड़कर बड़ा तप कर रहे हैं। इससे आश्रमवालों को बड़ा दु:ख होता है। अत: कवि ने उनको सान्त्वना देने की प्रार्थना की है।

' धीरज दो संतप्त हृदय को
आओ तपो निधान ! '[2]

इस कविता के अन्त में कवि ने गान्धीजी से क्रान्ति मचाने का आग्रह किया है जिससे वे बलिदान कर सकें।

' एक बार फिर, जगे समर
-- -- --
कहे जग - जयजय हिन्दुस्तान ? '[3]

कवि ने बलिदान की भावना को प्रकट करने के उद्देश्य से इस कविता की रचना की है। अत: इसकी अन्तिम पंक्तियों में गांधीजी से क्रांति का अनुरोध किया है। उनकी बलिदान - भावना इसकी अंतिम पंक्तियों में स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर हुई है।

'जागरण' एक जागरण- गीत है जिसमें भारत की स्वतंत्रता - प्राप्ति के बाद देश में नव- युग के आरंभ की नव- चेतना का वर्णन किया गया है।-

' आज जागरण है स्वदेश में
पलट रही है अपनी काया ,
नव युग ने नव तन नव मन दे
नव चेतना है लहराया ! '[4]

१: अनुरोध - पृ० ६६ २: वही० पृ० १०१
३: वही० पृ० १०१
४: जागरण - पृ० ५६

कारागृहों का लौह द्वार लौह-- द्वार टूट गया और अगणित बलिदानों से जंजीरों की कड़ियां टूट पड़ीं । कवि ने आत्मबलि की प्रधानता की ओर ध्यान दिया है । आज तो यह पशु-बल और आत्म- बल के बीच के द्वन्द्व युद्ध में आत्म- बल की विजय हुई । -

> ' आज आत्मबल ऊपर उठता
> पशु- बल पद- तल पर झुक आता । '१

यहां यह स्मरणीय है कि देश में आत्मबल की प्रतिष्ठा गांधीजी ने ही की है । गांधीजी त्याग के बड़े तपस्वी थे । अपने जीवन के सुख- भोग को त्यागकर वे भारत की जनता की उन्नति के लिए घर- बार छोड़कर चल पड़े । गांधीजी की इस त्याग भावना से भारत भर में यह भावना व्याप्त हो गयी । विदेशी लोग भारत छोड़कर चले गये । जनता के मन में स्वतंत्रता के उत्साह की लहरें उमड़ पड़ीं । असंख्य बलिदानों के खंडहरों पर स्वतंत्र भारत का निर्माणहो चुका है । आत्मत्याग और बलिदान की दिव्यभावना से मृत - लोगों को अमृत प्रदान किया गया है । द्विवेदीजी के दूसरे काव्य - संग्रह ' भैरवी ' का अध्ययन आगे होगा ।

' भैरवी ' की कविताएं :

इस काव्य - संग्रह में केवल दो ही कविताएं गान्धीजी पर लिखित मिलती हैं और शेष कविताएं गान्धीवाद से प्रभावित हैं ।

' युगावतार गांधी ' में द्विवेदी जी ने गान्धीजी को अवतार पुरुष मान लिया है है और उनकी महिमा गायी है । यह गान्धीजी पर प्रणीत कविता है जिसमें कवि की अनुकरणवादी भावना स्पष्ट हुई है ।

> ' चल पड़े जिधर दो डग, मग में
> चल पड़े कोटि पग उसी ओर
> पड़ गई जिधर भी एक दृष्टि
> पड़ गये कोटि दृग उसी ओर । '२

१: जागरण - पृ० ४०
२: युगावतार गांधी - पृ० २

गान्धीजी स्वभावत: अत्यन्त विनम्र व्यक्ति थे और सभी से विनम्रता-पूर्ण बातचीत करते थे। फलत: उनसे भी सारे लोग विनम्रता का ही व्यवहार करते हैं -

' जिस पर निज मस्तक झुका दिया
झुक गये उसी पर कोटि माथ ; '[१]

गान्धीजी गामी एक हैं पर नाम अनेक होते हैं। जिस प्रकार भगवान अनेक रूपों में अवतरित होते हैं उसी प्रकार गान्धीजी भी अनेक रूपों में अवतरित हुए थे। यहां अद्वैतवाद का प्रभाव पड़ा हुआ सा दीखता है। गान्धीजी के युग में उनका बड़ा आदर सम्मान होता था और उनके कहने के अनुसार लोग सब कुछ करते थे। उन्होंने भारत देश की सीमा बनकर विश्व के काल पट पर स्वतन्त्रता की अमिट रेखा खींची थी जब तक गांधीजी जीवित थे तब तक जनता बहुत सन्तुष्ट थी। मगर जब उनकी मृत्यु हुई तब जनता मूक रह गयी।

प्राचीन परंपरा तथा रूढ़ियों के प्रति विराग और नवीनता के प्रति रुचि का आभास मिलता है। गान्धीजी पुराने नियमों और सिद्धान्तों का खण्डन:करते थे। आधुनिक विचारों और विश्वासों की नींव पर उन्होंने नव- चेतना युक्त जीवन का मण्डन किया। गान्धीजी वस्तुत: आडंबरों और आभूषणों के विषय में अरुचि रखते थे। अत: यहां धर्माडंबर का खण्डहर कहा गया है। राष्ट्रीयता के युग में इनको महत्ता कोई नहीं दी जाती।

गांधीजी ऐसे वीर सैनिक के समान थे जो रण- क्षेत्र में जाने पर विजयी बनकर लौटता है नहीं तो वहीं पर अपना अन्त कर डालता है। गांधीजी भी अपनी सुदीर्घ जीवन- यात्रा में कभी पीछे की ओर हटे नहीं। आगे ही अपने चरण बढ़ाते जाते थे। गांधीजी की आत्माहुति को ' मणिमाणिक्य ' कहा ह गया है जिससे भारतमाता के स्वर्ण मुकुट का निर्माण होता है। यहां गांधीजी और भगवान श्रीकृष्ण की प्रवृत्ति में समता दिखाई पड़ती है। जिस प्रकार श्रीकृष्ण ने

- -

१: युगावतार गान्धी - पृ० २

काल- सर्प का दमन करके ब्रज के लोगों को बचाया, उसी प्रकार गांधीजी ने अंग्रेजों के अत्याचारों से भारत की जनता को भी बचाया। गांधीजी ने अपनी कुशलता से देश की रक्षा की और जब उनकी मृत्यु हुई तब से उनके प्रति करुणात्मक श्रद्धांजलियों की रचना होने लगी।

गांधी के सत्य, अहिंसा, अमरता आदि के आगे असत्य, हिंसा और मिथ्या थर थर कांपती थीं। विलास-प्रिय राजाओं और महान राज- दरबारों का सत्यानाश हो गया। अस्त्र - शस्त्रादि सारे हथियार बेकाम के हो गये। गांधीजी के अहिंसास्त्र की ध्वनि गूंजती रही। भारत का झण्डा जो है वह गांधीजी का निशान बनकर वह आज भी फहरा रहा है। -

' हे अस्त्र शस्त्र कुंठित लुंठित

-- -- --

उड़ता है तेरा ध्वज निशान । '[१]

: कवि ने गांधीजी को ही युग- द्रष्टा और युग स्रष्टा कहा है। अंग्रेजों के शासन का अन्त हुआ और भारत स्वतंत्र हो गया। कवि ने कहा है कि टूटे- फूटे और भग्न विदेशी शासन के अवशिष्ट पर नूतन स्वतंत्र भारत का भवन- निर्माण हुआ है। -

' उस राजतंत्र के खंडहर में

उगता अभिनव भारत स्वतंत्र । '[२]

इस कविता में अवतारवाद कीपरंपरा का पालन किया गया है। गांधीजी को अवतार- पुरुष के रूप में चित्रित किया गया है। इसमें उनकी महिमा गायी गयी है और गुण- गान किया गया है।

सेगांव का सन्त में महात्मा गांधी का यशोगान किया गया है। महात्मा जी ने एशिया खण्ड के सेगांव में जो सुधारवादी प्रयत्न जो किये हैं उन्हीं का चित्रण यहां हुआ है। सेगांव में गांधीजी के आगमन से प्रकाश की नई रोशनी फूट

- -

१: युगावतार गान्धी - पृ० ५   २: वही० पृ० ५

निकली । उन्होंने सेगांव में प्रत्येक जगह घूमते हुए लोगों के कार्य का अन्वेक्षण किया । गांधीजी को दु:खी जनता के प्रति अपने मन में विशेष सहानुभूति थी और उनको देखते ही उनकी करुणा फूट निकलती थी । गांधीजी हमेशा पैदल ही चलते थे । वे गांव - गांव में नगर - नगर में नव-जीवन के संदेश का प्रचार करते हुए चलते थे । गांधीजी पूर्णत: सत्याग्रही थे और उन्होंने अनेक बार जेल- जीवन भी बिताये हैं । ऐसे सत्याग्रहियों के लिए जेल वैकुण्ठ के समान था और गांधीजी का भी यही अनुभव था-

' वैकुण्ठ बन गया बन्दी गृह
जो था रौरव के क्लेश लिये । '[१]

स्वतन्त्रता की आग को देशभर में गांधीजी ने ही जला दिया और व्यापक रूप से संसार - भर में वह फैल गयी । बलिदान- भावना को जनता के मन में उन्हों ने जगाया और सारी जनता ने उसे स्वीकार भी किया । साम्राज्यवाद का धरती पर पतन हो गया है और विदेशी लोगों के घमण्ड को चकनाचूर कर दिया । गांधीजी ने स्वतंत्रता की प्राप्ति के लिए बड़ा यज्ञ किया और उसी में उन्होंने अपनी आत्मा की आहुति कर डाली । -

' यह आत्माहुति का महायज्ञ
प्रण पूर्ण कर रहा कौन प्रज्ञ ? '[२]

भारत की स्वतंत्र पताका पवन के झोंकों से टकराकर फहरा रही है । इन कार्यों के होने का मुख्य कारण गांधीजी ही हैं । हिमालय पहाड़ जिसके आगे प्रकृति की समस्त वस्तुएं झुक जाती हैं- आज वह स्वयं गांधीजी के सामने नतमस्तक हो खड़ा होता है । -

' झुकता हिमाद्रि जिसके पद- तल
-- -- --
नव युग का नव संदेश लिए ? '[३]

१: सेगांव का संत - पृ० ४५ २: वही० पृ० ४६
३: वही० पृ० ४६

इसमें कवि ने गान्धीजी का कीर्तिगान किया है। उनको करुणा-वतार, नवयुग का नव-सन्देश वाहक कहा है। इस में एक जगह रण-कंकण हथ-कड़ियों को माणिक - मणियां कहा गया है।

'दण्डी यात्रा' में कवि ने गान्धीजी की सुप्रसिद्ध दण्डी यात्रा का सुन्दर एवं सरल ढंग से वर्णन किया है। इसके लिए कवि ने सागर और लहर की सहायता ली है। सागर और लहरों के बीच में दण्डी - यात्रा को लेकर बातचीत होती है। सागर जब इस यात्रा के कोलाहल का स्वर सुनता है तब इसके बारे में लहरों से पूछता है। तब लहरों ने इस प्रश्न का जो उत्तर दिया है, उसी का वर्णन इस कविता में किया गया है।

यात्रा में सबसे पहले भारत की त्रिवर्णी - पताका फहर रही थी। इसके पीछे सितार का स्वर गूंज रहा था। गान्धीजी के, जब रवाना होने का प्रधान कारण यह था -

' जब ब्रिटिश राज्य के दूतों ने
कुछ भी न न्याय का मत माना,
अन्याय भंग करने को तब
बापू ने यह रण - प्रण ठाना। '[1]

एक सुप्रभात को गांधीजी ने अपने दल के साथ अपनी यात्रा शुरू की। उनकी इस बड़ी यात्रा में सारे भाई, बहन, बन्धु, नारी, नर, बूढ़ा, बूढ़ी, स शामिल हुए थे -

' चल पड़ी बहन, चल पड़े बन्धु,
-- -- --
बापू के प्यार भरे होने, '[2]

अपनी यात्रा के पग - पग में हर गांव के लोगों ने उनका स्वागत किया।

१: दण्डी यात्रा - पृ० ७०
२: वही० - पृ० ७१

'ले कुछ वही, ले पुष्प - पत्र
ले फल आहार, जुटा आई,
बापू के चरणों में सम्पत्ति
की राशि झुकी, बलि हो आई।'[1]

गांधीजी का जीवन- लक्ष्य था भारत की स्वतंत्रता। अत: वे कहा करते थे -

'या तो होगा भारत स्वतंत्र
कुछ दिवस रात के प्रहरों पर
या, शव बन लहरेगा शरीर
मेरा समुद्र की लहरों पर।'[2]

गान्धीजी ने अपनी इसी कष्टतापूर्ण यात्रा से बहुत ही बड़ा कार्य किया। उनका नमक सत्याग्रह सफल बन उठा। नमक के टुकड़ों पर नव-युग की नींव पड़ी और स्वतंत्रता का इतिहास भी इन्हीं पर लिखा गया -

'नवयुग का नव आरंभ हुआ
कुछ नये नमक के टुकड़ों पर
आज़ादी का इतिहास लिखा
दण्डी के कंकड़- पत्थरों पर।'[3]

यह कविता गांधीजी की दण्डी यात्रा का जीता जागता चित्र प्रस्तुत करती है। उनके ब्रह्मचर्य - पालन की ओर इस कविता में एक जगह पर ध्यान दिया है -

'स्वाहा कर सुख - वैभव विलास
ले ब्रह्मचर्य का व्रत अमंग।'[4]

भारत के इतिहास में इस यात्रा का बड़ा ही महत्त्वपूर्ण स्थान है। भारत की आज़ादी के सिलसिले में गांधीजी के नेतृत्व में जितनी ही उद्देश्यपूर्ण विषम घटनाएं

१: दण्डी यात्रा - पृ० ७५   २: वही० पृ० ७६
३: वही० पृ० ७६   ४: वही० पृ० ७२

घटी थीं, उनमें यह चण्डी यात्रा जो है, अत्यन्त महत्व की है। कवि ने इस पर एक लंबी तथा सुंदर कविता लिखकर उसकी महत्ता को और भी बढ़ा दिया है।

'त्रिपुरी कांग्रेस' में गांधीजी के नेतृत्व में त्रिपुरा में कांग्रेस की जो सभा बुलायी गयी, उसी का वर्णन है। इस में सभा के आयोजन की तैयारियों का सुन्दर रूप से चित्रण हुआ है। ग्राम-ग्राम के नगर-नगर के विभिन्न वय के लोग शामिल थे। इस यात्रा में जितने लोग थे उन्होंने सिर पर गांधी-टोपी और शरीर पर खादी का वस्त्र पहने थे। -

' सिर पर मंडके विशुद्ध गांधी टोपी
तन पर खादी के शुभ्र वस्त्र,
वे शुद्ध चले करने योधा
जिनके न हाथ में एक शस्त्र। '[१]

ऐसी पृष्ठभूमि पर कवि ने भारत - देश की महिमा गायी है जिसमें अमर शहीदों के प्रति अपने मन की श्रद्धांजलि भी अर्पित की गयी है -

: ' यह धन्य देश, जिसमें उतरे
पद - दलित गाय भर निज गौरव,
बलिवेदी पर चढ़ते शहीद
लाने को फिर स्वदेश वैभव। '[२]

वे वीर लोग रथ में ही चलते थे। विभिन्न प्रकार के बाजे बजते थे। वह यात्रा त्रिपुरी में जाकर रुकी और वे लोग झण्डा - मण्डप के नीचे जाकर खड़े हो गये। इस कविता के अन्त में कवि ने भारत की स्वतंत्रता- प्राप्ति के बारे में अपनी इच्छा प्रकट की है। अतः उन्होंने कहा -

' टूटेंगी अपनी कर- कड़ियाँ
ढह जायेगा यह राजतन्त्र

- -

१: त्रिपुरी कांग्रेस - पृ० ६८
२: वही० पृ० १००

होगी भारत - जननी स्वतंत्र
होंगे भारतवासी स्वतंत्र । '[1]

इस कविता में कवि ने सुप्रसिद्ध त्रिपुरी - कांग्रेस का एक सुंदर चित्र खींचा है। भारत के ये वीर लोग इस सभा के आयोजन के लिए नर्मदा- नदी के तट पर इकट्ठे हुए थे जो विंध्याचल से होकर बहती है।

'खादी गीत ' में कवि ने खादी की महिमा गाई है। खादी गांधीजी के जीवन का एक अतिप्रधान अंग थी और इस दृष्टि से दोनों का संबंध अव्यक्त है। कविगण जिस प्रकार गांधीजी से प्रभावित हुए उसी प्रकार चरखा और खादी दोनों से भी प्रभावित हुए। अत: इन पर भी इन्होंने कविताएं करना अपना कर्तव्य समझा। द्विवेदी जी भी खादी को अपना रचना- विषय ही बनाये बिना न रह सके।

खादी में भारत के अपनत्व का अभिमान और विदेशियों के लोभत्व का अपमान निहित है। कवि ने इन चार पंक्तियों में खादी की मातृ-भक्ति, सहोदर - स्नेह, शिशु - वात्सल्य आदि को समाहित किया है -

' खादी के रेशे रेशे में
अपने भाई का प्यार भरा
मां - बहनों का सत्कार भरा
बच्चों का मधुर दुलार भरा । '[2]

खादी के सूर्योदय से ही जगत का दरिद्रांधकार दूर हो चुका। अत: कवि ने कहा है कि खादी के प्रकाश में नव- जीवन की ज्योति जगी। खादी में दीन दुखियों के प्रति जो सहानुभूति निहित है वह श्वास के द्वारा प्रकट होती है। और उससे पत्थर का हृदय भी पिघल जाता है। खादी के प्रकाश में असंख्य दलितों की हृदय - दाह, कृषक- कराह, बालक- चाह, नंगों - भिक्षुकों की आस, भूख- प्यास की आग आदि का दु:स्वर अप्रत्यक्ष हो गया। [3]

१: त्रिपुरी कांग्रेस - पृ० १०५ २: खादी गीत - पृ० ६
३: ' खादी में कितने ही --------- प्यास छिपी । ' - खादीगीत - पृ० ७

खादी को कवि ने युद्ध की सामग्री नहीं मानी है। उसे देखते ही शत्रुगण कांपने लगते हैं। खादी की गंगा निरन्तर निर्बाध - रूप से बहते रहने के कारण, जीवन की मलिनता एवं कलुषता दूर हो जाती है -

'खादी की गंगा जब सिर से पैरों तक बह लहराती है,
जीवन के कोने कोने की तब सब कालिख धुल जाती है।'[1]

यह मानव- जीवन को पवित्र एवं सरल बनाती है। उसे सिर का ताज कहा गया है जिससे अत्याचारों से व्यथित जनता का दुःख मिट सकता है। उससे जनता के हृदय में देश- प्रेम की भावना उत्पन्न होती है। कवि का विश्वास है कि खादी मृत लोगों को पुनः जन्म देती है। खादी ही जनता के बीच में आपसी संबंध को बढ़ा देती है और जनता के बीच में एकता स्थापितकरने का एकमात्र साधन है चरखा। अतः कवि ने बताया है -

'खादी ही बढ़ चरणों पर पड़
नूपुर - सी लिपट मनाएगी,
खादी ही भारत से रूठी
आजादी को घर लायेगी।'[2]

इसमें कवि ने खादीकी महिमा तथा उसके गुणों को गाते हुए उसकी प्रशंसा की है। उसे पवित्र, निर्मल, सीधी कहा गया है। कवि का कथन है कि खादी के डोरी में सुख और दुःख दोनों मिले रहते हैं। अर्थात् उसके गीत में शोक और संतोष की वाणी एकसाथ सुनायी पड़ती है। खादी के द्वारा कवि ने जीवन के सुखद एवं दुःखद पक्षों पर प्रकाश डालने का प्रयास किया है। गांधीजी के युग में खादी जनता के लिए अत्यंत उपयोगी और अनिवार्य सिद्ध हुई थी।

इस कविता को पढ़ने से ऐसा मालूम होती है कि खादी में समस्त भारत - खण्ड समा गया है। भारत की जनता का जीवन ही उसमें प्रतिबिंबित होता दिखाई पड़ता है। खादी के गीत में खादी के ये दृष्टिगत होने वाले अभिमान,

- -

१: २ : खादी- गीत : पृ० ८

पारिवारिक प्रेम, दरिद्रता- निवारण, सहानुभूति, करुणा - भावना, पवित्रता, अनश्वरता, देश- प्रेम, स्वातन्त्र्य भावना आदि गुणों का संक्षिप्त विवेचन किया गया है। खादी, जो पहले गांधीजी का मात्र जीवन- साधन थी, बाद में समस्त भारत- खण्ड का जीवन- साधन बन गयी। कवि ने सरल से सरल शब्दों के सहारे खादी के गीत जो रचे हैं वे गेय भी हैं।

'आजादी के फूलों पे ' में वीरों से यह प्रार्थना की गयी कि वे बलिदान की वेदी पर हंसते हंसते चलें और आजादी प्राप्त करने के लिए रण- वेदी भेरी बजावें। स्वतंत्रता- आन्दोलन की तैयारी के बारे में कवि का कथन है जिसके नेता गांधीजी रहे। उन्होंने यहां वीरों के मन को बलिदान की ओर मोड़ दिया है और कहा है कि वीरों को सिंहासन पर नहीं बलि वेदी पर चलना चाहिए। -

' सिंहासन पर नहीं वीर !
बलिवेदी पर मुसकाते चल !
ओ वीरों के नये पेशवा
जीवन- ज्योति जगाते चल। '[1]

:

स्वतन्त्रता आन्दोलन भारत- जननी को पराधीनता की लौह- कड़ियों से मुक्त करना यहां कवि का उद्देश्य है। कवि ने विलासिता जन्य समस्त वस्तुओं का विरोध किया है और शूलों जैसी दुःखजन्य वस्तुओं को अपनाने को कहा है-

' फूलों की मालाओं को
पद की ठोकर से दलते चल
शूलों की मखमली सेज को
हुलसा हुलसा मलते चल। '[2]

इस कविता के अंत में कवि ने भारत की मुक्ति की ओर ध्यान दिया है। यह कविता लिखते समय कवि भारत की आजादी - प्राप्ति की निकटता की कल्पना करते। अतः उन्होंने भारत माता के मुक्त होने की भावना प्रकट की है। -

- -

१: आजादी के फूलों के पर - पृ० ६५
२: वही० पृ०

' बढ़ जायें चालिस करोड़ फिर
बलि के मधुमय फूलों पर,
मेरी माँ भी चले थिरकती
आजादी के फूलों पर ।। '[1]

प्रस्तुत कविता में कवि ने भारत माता की मुक्ति के बारे में कहा है । जब भारत स्वतन्त्र हुआ तब कवि बड़ा सन्तुष्ट हुए । इसी से प्रेरित होकर कवि ने प्रस्तुत कविता की रचना की है । मुक्तवीरों के अन्तहरों के उपवन में आजादी के सुन्दर फूल खिले हैं और इनकी सुरभि समस्त संसार में व्याप्त होकर अपना महत्व अवश्य रखेगी ।

'प्रयाण गीत ' एक छोटी कविता है और इसमें भारत की स्वतन्त्रता का स्वागत करने का अनुरोध करते हुए अपनी गान्धी - कुलीन राष्ट्रीय भावना प्रकट की है । भारत की स्वतन्त्रता तो हस्तगत हुई है और उसका स्वागत सम्मान हमें करना चाहिए -

: ' उठो, बढ़ो, आगे, स्वतन्त्रता का
स्वागत सम्मान करो । '[2]

हमारे युवक शरीर पर खादी का वस्त्र धारे, मन में देशभक्ति का भाव भरे, हाथ में राष्ट्रीय झण्डा पकड़े, दिल में भारतमाता का ध्यान धरे चलते थे । उनके पास सत्य और अहिंसा के हथियार थे । कवि कहते हैं कि बलिवेदी तक चलकर लौटकर आजाना वीर का लक्षण नहीं । अत: इसकी अंतिम पंक्तियों में कवि ने बलिदान भावना स्पष्ट की है -

' विजय - मुकुट है हाथ तुम्हारे ,
बढ़ो जीवन- दान करो , '[3]

' जय जय जय '- यह भी एक प्रयाण गीत है जिसमें आजादी का जयकार गूंजता है । भारत को आजादी प्राप्त होने के बाद भारत के वीर- गणों ने

- -

१: आज़ादी के फूलों पर - पृ० ४८ २: प्रयाण गीत - पृ० ११६
३: वही०पृ० १२०

उसका जयकार करते हुए एक लंबी यात्रा की थी। जयकार का शंख फूंकते हुए विजय पताका फहराते हुए वीर युवक अपनी यात्रा करते थे -

' फूंको शंख, ध्वजायें फहरें
चले कोटि सेना घन घहरें।'[१]

भारत - जननी के बन्धन को जनता सह नहीं सकती। अतः चाहे बलिदान के द्वारा हो तो भी वीर युवक इसके लिए तैयार थे। कवि ने अपनी बलिदान - भावना यहां प्रकट की है -

' बलि पर ले चलो निरन्तर,
हो भारत में आज युगान्तर।'[२]

कवि ने गांधीजी के समान वीरों को भी सदैव आगे बढ़ने का आह्वान दिया है -

' बढ़ो प्रभंजन आंधी बनकर,
चढ़ो दुर्ग पर गन्धी बनकर।'[३]

राजतन्त्र के अवशेषों पर प्रजातंत्र का भवन निर्माण कर, भारत-मन्दिर में स्वतन्त्रता का दीपक जलाना कवि का उद्देश्य प्रतीत होता है। इसमें भारत का जयघोष ध्वनित होता है।

' पथगीत ' कविता भारत के वीर - युवकों की प्रशंसा करती है। वे सैनिक हैं और आज़ादी के मतवाले हैं जो बलिवेदी पर अपना सिर चढ़ाने की आशा रखते हैं। गान्धीजी के ब्रह्मचर्य - व्रत की एक झांकी इस कविता में मिलती है -

' केसरिया बाना पहन लिया,
तब फिर प्राणों का मोह कहां ?'

- -

१: जय जय जय - पृ० ११४ २: जय जय जय - पृ० ११५
३: वहीं० पृ० ११५

जब बने देश के सन्यासी,
नारी - बच्चों का छोह कहां ? `[1]

यहां एक बात तो स्मरणीय है कि गान्धीजी जिस दिन से राष्ट्रीय मंच पर आये उसी दिन से उन्होंने अपनी पत्नी और पुत्रों की चिन्ता को छोड़ दिया था। उनकी एकमात्र चिन्ता रही भारत की स्वतन्त्रता। भारत के उन वीरों की समर्पण-भावना यहां व्यक्त हुई है -

` अब देश प्रेम की रंगत में,
रंग गया हमारा यह जीवन।
उसके लिए ही समर्पित है,
सब कुछ अपना यह तन- मन - धन। `[2]

इन वीरों में इतनी दृढ़ता निहित है जो एक बार रणवेदी पर चढ़ने पर पीछे की ओर नहीं हटते। गान्धीजी में भी यह भाव दिखाई पड़ता था। इन वीरों का जीवन- लक्ष्य या तो भारत को स्वतन्त्रता प्रदान कराना या रणवेदी पर मर- मिटना रहा है। गांधीजी के बलिदान- भावना, सुदृढ़ता, वीरता आदि गुणों को इस कविता में प्रतिपादित वीरों में देख सकते हैं।

` प्रभाती ` की कविताएं :

इसकी गान्धीवादी कविताओं में प्रथम कविता है `गान्धी`। यह तो केवल बारह पंक्तियों की छोटी - सी कविता है और इसमें कवि ने गान्धीजी के प्रति अपना आदर प्रकट किया है। गान्धीजी के आगमन से हिन्दू और मुस्लिम दोनों फूले न समाये। यहां हम दो विभिन्न मतों के बीच में धार्मिक मित्रता देख सकते हैं। हिन्दुओं ने अपने ` मनमोहन ` को और मुसलमानों ने अपने ` पैगंबर ` को पाया। गान्धीजी ने भक्तों के रक्षणार्थ बुद्धदेव के रूप में पुन: अवतार लिया है।

- -

१: पथगीत - पृ० १२१
२: वही० - पृ० १२१

' करुणामय भक्तों की आंखों
में सुख की गंगा उमड़ी ,
शुद्धोधन के लाल लाड़ले
की सुन्दर छवि दीख पड़ी । '[१]

गान्धीजी को विभिन्न रूपों में जनता ने देख लिया और उनके स्वरूप की विराटता की प्रशंसा की । वे हिन्दुओं के ' मनमोहन ' थे और मुसलमानों के ' पैगंबर ' भी थे और उनमें जाति-भेद की भावना बिल्कुल नहीं थी ।

' अभिनन्दन ' कवि ता कलकत्ता राष्ट्रभाषा सम्मेलन के गान्धीजी के स्वागत में लिखित है । इसमें कवि ने गांधीजी का अभिनन्दन किया है । कवि ने गान्धीजी को वृन्दावन के श्रीकृष्ण के रूप में चित्रित करते हुए अपनी ओर से उनका अभिनन्दन किया है -

' पथ पर मृदु पलक बिछाकर
मैं करता हूं अभिनन्दन ।
तेरी पदरज बनती है
मेरे मस्तक का चन्दन । '[२]

कवि खुद सागर बनकर उनका पद- प्रक्षालन करते हैं और पवन बनकर स्वागत के गीत गाते हैं । गांधीजी के आगमन से कवि का मन प्रफुल्लित होता है । गांधीजी के का जीवन तपोमय है । यह तो स्पष्ट ही बताया गया है । कवि ने सम्मेलन सभा को तपोवन और गांधीजी को वहां तपस्वी मुनि माना है । गान्धीजी की कठिन जीवन - तपस्या से देश की अनेक समस्याओं का सुलझन - कार्य संपन्न हुआ -

' सम्मेलन एक तपोवन ,
करते ऋषि जहां तपस्या .

- -

१- गान्धी - पृ० १७
२- अभिनन्दन - पृ० ७३

बस, यहीं राष्ट्र जीवन की
सुलझे सब कठिन समस्या । `१

`ऐतिहासिक उपवास ` में कवि ने गान्धीजी के द्वारा किये गये ऐतिहासिक उपवासों पर प्रकाश डाला है । गान्धीजी का जीवन ही एक उपवास समझा जाय तो कोई गलत बात नहीं । उन्होंने अपने जीवन में अनेक बार उपवास किये हैं । श्री गोपालप्रसाद व्यास जी ने अपनी पुस्तक ` हमारे राष्ट्रपिता ` में गान्धीजी के उपवास के बारे में उनका क्रमानुसार विवरण दिया है ।[२] व्यासजी ने प्रस्तुत उपवास को गान्धीजी का पन्द्रहवां उपवास बताया है । यह ऐतिहासिक उपवास गांधीजी ने १० फरवरी १९४३ ई० में किया था और यह इक्कीस दिन तक चला । यह उपवास आगा खां महल में ` सर्वोच्च अदालत से न्याय को अपील ` के लिए हुआ । इस उपवास का अन्त में सफल परिणाम भी निकला था ।

जब गांधीजी ने प्रस्तुत उपवास आरंभ किया तब समस्त राष्ट्र भि चिन्तनशील बन मूक रह गया । वे तो भोजन किये बिना अपने आत्मबल पर उपवास कर रहे थे । यह देखकर कवि का कथन है -

` तुम हो उपवासरत, निराहार
निखिल राष्ट्र निराहार ।
तुम उदास, हम उदास ,
इस पद विक्षेप में
रुद्ध आज राष्ट्रश्वास । `२

उनके उपवास के कारण देश की जनता उनकी अनुपस्थिति में आकुल होकर स्थिर-मूक बनी है । उनके इस उपवास के अग्नि- कुण्ड से विश्व- भर में प्रचण्ड ज्वालाएं उठ रही हैं-

यों ही विश्व - प्रांगण में
आज महा अग्निकाण्ड
पश्चिम से प्राची तक

-१: अभिनन्दन - पृ०-७४ -
२:०

१: गान्धीजी ने कुल मिलाकर १७ बार उपवास किये । इनमें २ दिनसे लेकर २१ दिन तक के उपवास सम्मिलित हैं । गांधीजी ने अपने जीवन में १,४०५ घंटों का उपवास किया । हमारे राष्ट्र पिता- पृ० १०१ २:

ज्वालाएं हैं प्रकाण्ड ।
आज लगता है ध्वंसमान
विश्वमाण्ड । `१

प्रस्तुत कविता में महात्मा जी के उपवास पर कवि ने अपना दु:ख प्रकट किया है क्योंकि अगर वे उपवास करते न रहते तो देश का सारा काम बिल्कुल बिगड़ जाता । इसलिए कवि ने इस प्रकार कहा है कि देश की बिगड़ी एवं भीषण दशा में गान्धीजी का यह उपवास भी उचित नहीं जान पड़ता । उन्होंने यहां गांधीजी को महादेव, सूत्रधार, दधीचि आदि के रूप में चित्रित किया है । गान्धीजी जनता के हृदय प्राण के रूप में चित्रित हुए हैं ।

यह उपवास तो मुख्यत: भारत की आजादी के नाम पर हुआ था । गान्धीजी ने एक बार ` भारत छोड़ो ` का अगस्त - प्रस्ताव किया । इसी समय उनको आगाखां महल में गिरफ्तार करके रखा गया । इसी कारण उन्होंने यहीं रहकर प्रस्तुत उपवास आरंभ किया ।

: इस उपवास की सफल समाप्ति पर भी कवि ने कविता लिखी है। १५ अगस्त को भारत स्वतन्त्र हुआ और व अंग्रेज लोग भारत छोड़कर चले गये । अत: कवि ने कहा है -

` आज दिवस है व्रत समाप्ति का,
महाशान्ति का पर्व,
आज सुखद संवाद देश को,
आज हमें है गर्व , `२

अन्त में कवि ने यही कामना की है कि गांधीजी के अमर रहने से संसार की सारी गतिविधियां सम्भल चलती रहें ।

` बापू बने रहे तुम, बन जायेंगी विधियां सर्व ।
आज दिवस है व्रत समाप्ति का, महाशांति का पर्व । `३

१: ऐतिहासिक उपवास - पृ० ३८ २: व्रत समाप्ति पृ० ४०
३: वही० पृ० ४१

यह कविता विषय की दृष्टि से बड़ी महत्त्वपूर्ण है। इसकी विषय - वस्तु गान्धीजी से संबंध रखती है। उनके सारे उपवास सराहनीय एवं महत्त्वपूर्ण हैं। अतः उनके उपवासों पर कविताओं का सृजन करना उचित ही जान पड़ता है। उन्होंने अपने जीवन में जितने उपवास किये हैं, वे सब किसी न किसी दृष्टि से महत्त्व रखते हैं। उनके उपवास में ऐतिहासिक, वैयक्तिक उपवास भी हमें मिलते हैं।

' सेवाग्राम ' कविता में कवि ने सेवाग्राम की महिमा का गुणगान किया है जहां गांधीजी अक्सर रहा करते थे। जनता के कल्याणार्थ लोक-सेवा करने के लिये वे यहां बसे थे। सेवाग्राम में विभिन्न प्रकार की कार्य- वृत्तियां चलती थीं। यहां विषय - चर्चा, अतिथि - सत्कार, भोजन- दान, विरागी - जीवन-वृत्ति, कृषक - जीवन, सन्देश - प्रचारण आदि कार्य प्रतिदिन होते थे।

कवि ने इसके आरंभ में सेवाग्राम की महिमा को प्रतिपादित करने के लिए अनेक विशेषणों का प्रयोग किया है। उन्होंने सेवाग्राम को हिमालय के रूप में चित्रित किया है जिसे सेवा की पावन गंगा बहती है। यह गंगा स्वच्छ राष्ट्र के तन- मन को सदा हरा - भरा रखती है और उसके दुःख ताप को हरती है -

' सेवाग्राम
यह है हिमगिरि अभिराम
जहां से प्रवाहित प्रवाहमान
सेवा की सुरसरी छविमान
बहती ही रहती
-- -- --
राष्ट्र के तन मन प्राण। '[१]

यहां रहने वाले लोग एकता का संदेश लेकर चरखे के तार से, प्रेम- वाणी से, मृदु मुस्कान से और आत्म-बलिदान की भावना से एक सूत्र में जनता को बांधने के लिए जाते हैं। सेवाग्राम एक प्रकार की याग- शाला है जहां भारत की स्वतन्त्रता का मुक्ति - यज्ञ दिन- रात प्रतिदिन होता रहता है।

१: सेवाग्राम - पृ० २२

कवि ने गांधीजी को ईश्वर का अंश कहा है। उन्होंने सत्य और करुणा की ज्योति से भरे आत्मबल के प्रकाश से सेवाग्राम का विकास किया है -

' ईश्वर के अंश ने किया है यहां विकास ,

-- -- --

करुणा का यहां निवास । '[1]

सेवाग्राम में विभिन्न प्रकार के लोगों के लिए स्थान दिया गया है। यहां सुरूप एवं कुरूप दोनों रहते हैं। यहां उच्चता- नीचता या सुन्दरता - विरूपता का भेद नहीं रहता। विविध तरह के लोगों का आवास होने के कारण गान्धीजी ने इसको ' अजुमेला ' कहा है -

' कुष्टी कोई, कोई बधिर ,

-- -- --

कौन है महोत्सव आज , कैसा यह मेला है। '[2]

यहां के लोगों में जाति भेद का भाव बिल्कुल नहीं है। उनके अनुसार सभी मानव ईश्वर की सन्तान हैं, अत: सब मानव समान हैं -

' जाति पांत का है यहां कोई नहीं विचार

-- -- --

गूंजता रहता महान। '[3]

सारी जनता एक ही जगह एक साथ रहकर खाती है, सोती है और काम करती है। यहीं नव- संस्कृति की पैदाइश होती है। अछूतोद्धार का सच्चा उदाहरण है सेवाग्राम।

' यहां नहीं कोई अछूत
मानव हैं सभी पूत ।। '[4]

१: सेवाग्राम - पृ० २३ २: वही० पृ० २४
३: वही० पृ० २५ ४: वही० पृ० २६

सेवाग्राम तो सेवा का ग्राम- निलय है और इसका रहस्य - मर्म सेवा धर्म या सेवा कर्म है

> ' सेवा - कर्म
> सेवा - धर्म ,
> सेवाग्राम का यही है रहस्य - मर्म । '[1]

इस प्रकार हम देखते हैं कि गान्धीजी का सेवाग्राम जो एक तपोवन सा है, सदा भेद-भावहीन, जन-सेवारत और मंगलदायक होकर विराजमान है ।

'गान्धीमन्दिर ' में कवि ने उस गान्धी - मन्दिर की महिमा गायी है जिसे गान्धीजी के परम भक्त मंशु भगत ने बनवाया था और गान्धीजी को देवता के रूप में प्रतिष्ठित करके उनकी पूजा की थी । उनको केवल मानव की ही नहीं देवता की दृष्टि से भी लोगों ने देखा है ; लेकिन उनका मंदिर बनाने का प्रयास अब तक किसी ने किया नहीं । कवियों ने भी उनको देवता मानकर उनकी पूजा की है । किसी भी कवि ने उनके लिए मंदिर बनाने की बात कही नहीं है, वैसा ही उसकी निन्दा भी नहीं की । कवियों में मंदिर की स्थापना करने की इच्छा तक नहीं दिखाई पड़ी है, तब निन्दा का प्रश्न भी कैसे उठ सकता है ?

इसमें किसी एक भक्त के द्वारा बनाये हुए मंदिर के बारे में कवि ने कहा है । यह भक्त उनकी सुंदर मूर्ति का रूप देकर उसे मंदिर में बिठाकर पूजा-अर्चना करके अपनी इच्छा की पूर्ति करता था -

> ' आराध्य देवता को देकर
> -- -- --
> निज इच्छा की कर ली पूर्ति । '[2]

वह कहता है कि गान्धीजी ने कहा है कि केवल अर्चना और पूजा करने से मुक्ति नहीं मिल सकती । फिर अपने मन की अपार भक्ति के कारण वह पूजा - पाठ करना चाहता था -

- -

१: सेवाग्राम - पृ० २६
२: गान्धी मंदिर - पृ० ८६

' केवल पूजन से अर्चन से

-- -- --

पर भक्ति कह रही है पुकार । '[1]

लेकिन वह कहता है कि भक्ति के द्वारा ही मुक्ति मिल सकती है ; भक्ति ही मुक्ति का द्वारा है और पूजा- अर्चना से निरति पातक है, पाप है । अन्त में भक्त अपनी इच्छा प्रकट करता है कि घर - घर गान्धी जी का मंदिर होना चाहिए और ' जय गान्धी ' का शंख-नाद सुनाई देना चाहिए ।

' हम देख रहे तुम में भविष्य का

-- -- --

जय गान्धी गूंजेगी आवाज़ । '[2]

गान्धी मंदिर पर अब किसी भी कवि की कविता प्राप्त नहीं है । केवल सोहनलाल द्विवेदी जी ने ऐसी एक कविता का सृजन किया है ।

' गांधी तीर्थ ' या ' भंगी बस्ती ' - कविता दिल्ली के भंग-बंगला के बारे में लिखी गयी है जहां गांधीजी दिल्ली जाते वक्त साधारणत: रहा करते थे । गांधीजी की महानता के कारण इस बंगला को भी महत्ता प्रदान करते हुए 'गांधी तीर्थ ' की संज्ञा दी गयी है । यहां कवि ने गान्धीजी की उपस्थिति में उस तीर्थ की सजीवता का चित्रण किया है । उनके आने से वहां तिरंगी - ध्वजा फहराने लगा, चरखा घूमने लगती, और राम- नाम की ध्वनि लहरें उठने लगतीं ।

' है तरल तिरंगा लहराता

चर्खे का उठने लगा राग

उठ रही राम धुन की हिलोर

फिर लगी सुलगने मुक्ति - आग । '[3]

गान्धीजी के दर्शनों के लिए लाखों जनता दौड़कर आती है । उनके पवित्र तथा निर्मल व्यक्तित्व से वह जगह तीर्थ बन गयी ।

- -

१: गान्धी मन्दिर - पृ० ८७ २: वही० पृ० ८८ ३: वही०० ३: गांधी तीर्थ - पृ० ८४

' तुम जहां बसे बस गया वहीं पर
तीर्थ, खड़ी जनता घेरे । '१

गान्धी तीर्थ भी हमारे देश में बहुत कम हैं । अब तक उसके अस्तित्व का कोई पता नहीं चलता । फिर भी हमें द्विवेदी जी की प्रस्तुत कविता में यह ज्ञात हुआ है ।

' अहिंसा अवतरण ' कविता में कवि ने अहिंसा को अवतरित किया है । यहां अहिंसा स्वयं अपने बारे में कहती है । वह यहां सजीव बनकर अपनी बातें बता रही है । अहिंसा का अवतार एक विशेष परिस्थिति में होता है , अर्थात् जब उसकी आवश्यकता पड़ती है तब वह जन्म लेती है । संसार में जब मानव अपने बुद्धि-भ्रम से जनता की हत्या करके रक्त की नदी बहाता है तब उसके निवारणार्थ अहिंसा आवश्यक प्रतीत होती है, वह जन्म लेती है ।

' महाक्रांति हुंकार लिये जब
-- -- --
तभी मैं लेती हूं अवतार ।। '२

अहिंसा की परंपरा प्राचीन काल से ही चली आयी है । जब कलिंग राज्य की प्राप्ति के लिए मुगल सम्राट अशोक ने युद्ध किया और अन्त में विजय पा ली, फिर भी उसका मन युद्ध के भीषण दृश्यों से शोकाकुल बन गया । तब उसने यह प्रतिज्ञा ली कि आगे कभी युद्ध नहीं करूंगा । इस प्रकार अशोक बाद में अहिंसक बने । अहिंसा के अवतार से संसार में दर्पभीम हुंकार का अन्त होता है । अहिंसा अपने शीतल अंचल में दु:ख से जलते लोक को लेकर चन्दन का लेप करती है और उसके विषाद को दूर करती है -

' मैं अपने शीतल अंचल में
-- -- --
कि जब मैं लेती हूं अवतार । '३

- -

१: गान्धी तीर्थ - पृ० ८५ २: अहिंसा अवतरण- पृ० ४८
३: वही० पृ० ४६

यहाँ अहिंसा जनता के दु:ख को दूर करने के लिए अवतार लेकर आयी है। संसार में शांति और समाधान स्थापित करना अहिंसा का परम उद्देश्य जान पड़ता है।

'प्रभात फेरी' कविता वास्तव में राष्ट्रीयता की कविता होने पर भी इस पर गांधीवाद का किंचित ही प्रभाव व दिखाई पड़ता है। भारत के लोग स्वतंत्रता संग्राम में भाग लेने घ व के के लिए इस प्रकार कहते हुए आते हैं -

' खादी का बाना पहन लिया ,

-- -- --

हम बलिवेदी पर जायेंगे।'[१]

भारत के युवक वीर जनक की संतान हैं। अत: वे दासता नहीं चाहते। उनकी प्रतिज्ञा का नारा यह है कि ' या तो जीत नहीं तो मौत '।

' संतान शूर वीरों की है
हम दास नहीं कह लायेंगे ,
या तो स्वतंत्र हो जायेंगे,
या तो हम पर मिट जायेंगे।'[२]

इसमें भारत के युवकों ने खादी का वस्त्र धारण किया है और बलिदान का गीत गाया है। यहाँ यह भी स्मरणीय है कि गांधीजी ने भी इस नारे पर हठ की थी। उनका जीवन- मंत्र यही था। लेकिन अब तो जीत और हार दोनों उपस्थित हुए ; भारत स्वतंत्र हुआ मगर गांधीजी की मृत्यु हो गयी।

इस कविता में भारत के वीर युवकों की आवेश- भरी यात्रा का वर्णन है। वे आजादी प्राप्त करने के लिए युद्ध करने जा रहे हैं। खादी, बलिदान आदि बातों का उल्लेख किये जाने के कारण इसमें गांधीवाद आ गया है। इसमें आजादी की घोषणा की गयी है।

- -

१: प्रभात फेरी - पृ० ३५
२: वही० पृ० ३६

`बेतन ` की कविताएं :-

इन कविताओं में गांधीजी पर कुछ कविताएं उपलब्ध हैं और गांधीवाद पर भी कम नहीं हैं। ` अर्द्ध नग्न ` कविता गान्धीजी पर लिखी गयी है। इसमें गांधीजी का अर्ध- नग्न चित्र प्रस्तुत किया गया है। इस कविता की रचना के मूल में एक घटना घटित हुई है।

गांधीजी मद्रास के एक गांव में गये थे। वहां उन्होंने एक ऐसी नारी को देखा जिसने मैला - कुचला वस्त्र पहना था। गान्धीजी ने यह देख लिया और उससे इसका कारण पूछा। तब उसने कहा कि उसके पास एक ही पास धोती है और पानी के अभाव में उसे साफ करना मुश्किल हो जाता है। यह सुनते ही गांधीजी ने यह प्रतिज्ञा ले ली कि जब तक देश के सभी भाई बहन पूरे कपड़े नहीं पहनेंगे तब तक वे भी शरीर में वह आधे कपड़े पहनेंगे, एक लंगोटी भर लगायेंगे। फिर गांधीजी ने उससे यह भी कहा कि अगर वह चरखा कातने लगे तो देश की गरीबी गायब हो जायेगी।

इस कविता का विषय प्रस्तुत घटना है। इस घटना को प्रस्तुत करके कवि ने गांधीजी के ` दरिद्र नारायण ` पद का समर्थन किया है। इस कविता में उपर्युक्त कविता वर्णित है। देश की दरिद्रता को दूर करने के लिए महात्मा जी ने उस नारी को खादी का कपड़ा स्वयं कातने का उपदेश दिया। -

` कातो सूत मेरी बहन
व्रत यह करो ग्रहण
होगा सभी कष्ट दूर
होगी सुख से भी भरपूर। `[१]

इस प्रकार कहकर गांधीजी आगे चलने लगे। अंत में उन्होंने यह प्रतिज्ञा की -

- -

१: अर्द्ध नग्न - पृ० ५ - ६

जब तक कोटि भाई, बहन
रहते हैं यों अ - वसन
उनका रहूँगा मैं भी
सुख दु:ख सहूँगा मैं भी । `[1]

ऐसे महान सेवा-व्रत व्यक्ति का गुण- गान आज संसार भर में किया जा सकता है। -

` सेवा ग्राम का यह यति, तन से अर्द्ध-नग्न व्रती ,
जिसकी नित्य जनता उतारती है आरती ।। `
गाती गीत नहीं कभी थकती है भारती ।। `[2]

गांधीजी दूसरों के सुख में अपने को सुखी और उनके दु:ख में अपने को दु:खी मानते थे। दु:ख और कष्ट का अनुभव करने वालों के प्रति उनके मन में अपार सहानुभूति है। यह इस कविता में स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ता है। इस घटना के द्वारा कवि ने गांधीजी के निर्मल व्यक्तित्व पर प्रकाश डाला है।

`राष्ट्र देवता ` में गान्धीजी को राष्ट्र का देवता मानकर उनकी वन्दना की गयी है। वन्दना के लिए उनके पास शब्दों का अभाव है। गांधीजी के पावन करतल से भारत- भूमि नन्दन वन बन गयी है।

` कल की रौरव भूमि बन गयी ,
आज स्वर्ग का नन्दन । `[3]

गान्धीजी के आगमन से भारत में बड़ा भारी परिवर्तन हुआ है। सत्य और अहिंसा के सामने सारा जगत पराजित हो गया ; गान्धीजी विजयी बने। सत्य और अहिंसा उनके जीवन- रथ के दो चक्र माने गये हैं। यह रात- दिन सारी जगत में अबाध गति से चलता रहा है -

- -

१: राष्ट्र देवता - पृ० ६ २: वही० पृ० १०
३: वही० पृ० ८

' सत्य अहिंसा के शस्त्रों में
-- -- --
तुम जीते, जग हारा । '[1]

गांधीजी यहां भारत के शासक हैं । -

' आज धरा अपनी, नभ
अपना, और राज है अपना । '[2]

गांधीजी का जन्म भारत- माता और उसकी जनता के लिए धन्यकारी हुआ -

' धन्य धरा वह आज की जिसमें
-- -- --
तुम ने शीश लिया है । '[3]

इस कविता में गांधीजी के व्यक्तित्व के एक रूप - राष्ट्र देवता का रूप -.को प्रस्तुत किया गया है । वास्तव में वे राष्ट्र के ही नहीं जगत् के ही देवता थे । अत: कवियों ने उन्हें राष्ट्र- देवता, जन- नायक, विश्व - विधाता, राष्ट्र - पिता, युग पुरुष आदि विभिन्न वैयक्तिक रूपों में चित्रित किया है । इन विभिन्न रूपों को प्रमुखता देकर कवियों ने उन पर अलग अलग से छोटी एवं लंबी कविताएं रची हैं। इस प्रकार उनके व्यक्तित्व के विविध रूपों के दर्शन हम कर सकते हैं । ऐसी कविताएं ह उनकी व्यक्तिगत और विचारों के प्रदर्शन में सहायक हैं ।

' नीराजना ' - इस छोटी सी कविता में कवि ने अपने प्रेम- दीपक से गान्धीजी की आराधना की है । उनको नवराष्ट्र के देवता के रूप में यहां भी चित्रित किया गया है । वे विश्व में वन्द्य एवं वरेण्य थे । उनके मानव- प्रेम ने संसार की जनता को जागृत किया और नवराष्ट्र में जागरण हुआ । उन्होंने उन्होंने बलिदान के नाम पर बड़ी तपस्या की जिससे देश की सुव्यवस्था की समस्या सुलझ गयी ।

- -

१: राष्ट्र देवता - पृ० ८ २: वही० पृ० ६
३: वही० पृ० १०

'यह तुम्हारी ही तपस्या,
युगों की सुलझी समस्या ,
कोटि शीशों की अयाचित नव- समर्पण की साधना लो । '[१]

उन्हें अहिंसा का पुजारी कहा गया है । भारत की स्वतंत्रता के चिह्न के रूप में ऊपर विशाल गगन में तिरंगा झंडा फहरता है और नीचे अनन्त भूमि पर मुक्ति- गंगा बहती है । भारत को आजादी गांधीजी के हाथों प्राप्त हुई है । यह सदा सर्वदा स्मरणीय है । अत: स्वतंत्रता - प्राप्ति की कार्य-परिपाटी के प्रतिपादन में गांधीजी के व्यावहारिक मूल्य को भी आंका जाता है । यह गांधीजी पर लिखित स्तुति - गीत है ।

'वज्रपात ' कविता गांधीजी की मृत्यु पर लिखी गयी है । गान्धीजी की मृत्यु से देश पर बड़ा वज्रपात हुआ है । उनके जाने से देश की शक्ति नष्ट हो चुकी । इस घटना ने देश को अगाध चोट पहुंचायी है । देश की शांति का प्रकाश- दीपक बुझ गया । कवि ने भी यही कहा है -

: ' घिर गया महान अंधकार आज देश में ,

— — —

लड़खड़ा रही जबान, आ रहा कहा नहीं । '[२]

गान्धीजी की मृत्यु से दु:खित बनकर प्रकृति और देश दोनों रो रहे हैं । -

' लाल रक्त से रंगा निकल रहा विहान है ,
आसमान रो रहा तड़प रहा जहान है ,
है समस्त देश बन गया महा मशान है ,
आह ! आज राष्ट्रपिता राष्ट्र से चला गया । '[३]

- -

१: नीराजना - चेतना - पृ० १३ २: वज्रपात - चेतना- पृ०
३: वही० पृ० ३६

गांधीजी के मरण से कवि का मन शोक से अत्यन्त घायल हुआ और उन्होंने अपने मन की वेदना के उद्गारों को प्रकट किया है। इस कविता में प्रकृति का जो चित्रण हुआ है, उस सारी प्रकृति पर गांधीजी की मृत्यु का प्रभाव दिखाई पड़ता है। यह कवि- समय का उपचार व कल्पना मानी जा सकती है।

' महानिर्वाण ' यह भी गांधीजी के महानिर्वाण पर लिखी गयी कविता है। कवि ने इसमें श्रीरामचन्द्रजी, श्रीकृष्ण, युधिष्ठिर, ईसा, सुकरात के रूप में चित्रित किया है।

रामचन्द्रजी के रूप में कवि ने उनका चित्रण यों किया है -

' चले त्याग तन राम, अयोध्या
में है हाहाकार मचा।
शोक सिन्धु में डूब रही है धरा
सके अब कौन बचा ? '[१]

श्रीकृष्ण के रूप में वे यों चित्रित हुए हैं -

' वृन्दावन, गोकुल अनाथ है
है अनाथ भारत सारा
मोहन छोड़ चला ब्रज मण्डल ,
रोके कौन अश्रु - धारा ? '[२]

जब श्रीरामचन्द्र जी वनवास के लिए अयोध्या छोड़कर गये और श्रीकृष्ण वृन्दावन छोड़कर मथुरा गये तब अयोध्या और वृन्दावन के निवासी सब दुःख सागर में डूब गये थे। उसी प्रकार अब गान्धीजी के अन्तर्धान से भारत की जनता भी शोक से आकुल बन गयी है। महात्माजी को भारत के सुहाग व सूरज के रूप में चित्रित किया गया है।

- -

१: महानिर्वाण - चेतना - पृ० ४०
२: वही० पृ० ४०

' भारत का सौभाग्य सूर्य हो गया
अस्त, जाते गान्धी । '[१]

गान्धीजी के मरने पर भी उनकी मूर्ति का प्रतिबिंब हर जगह दिखाई पड़ता है ।

' देख, उसीकी मूर्ति रमी है ,
-- -- --
कोटि - कोटि जनगण मन में । '[२]

अन्त में कवि ने संसार की जनता को यही उपदेश दिया है कि स्वयं बलिदानी बन कर दूसरों को भी बलिदान का पाठ सिखावें ।

' बलि हो जाओ स्वयं, यहीं
-- -- --
के पथ पर प्रस्थान करो । '[३]

कवि ने मानव को महात्मा जी की आत्मा कहा है । ' तुम भी मृत्युंजय हो मानव, तुम महात्मा की आत्मा ।'

यह कविता आद्यन्त करुण- प्रधान है । जब कोई आकस्मिक दु:खद घटना घटती है, तब मानव- जीवन में एक प्रकार का विषाद छा जाता है । यह स्वाभाविक तो है ही । इस कविता में कवि ने एक नया भाव प्रस्तुत किया है और वह यह है कि प्रत्येक जाति के लोगों ने गांधीजी को अपने अपने मतानुकूल देवता के रूप में समझने और अपनाने का प्रयास किया है । उनकी विश्व प्रकीर्तित महिमा का यह भी एक कारण रहा है ।

'श्रद्धांजलि ' - यह कविता गांधीजी के प्रति गांधीजी के प्रति श्रद्धांजलि के रूप में कर्मश्री के कवि ने लिखी है । इस कविता में कवि ने गांधीवाद के अहिंसा पक्ष को प्रमुखता दी है । कवि ने कहा है कि अगर गांधीजी जन्म न लेते और

- -

१- महानिर्वाण - चेतना - पृ० ४१ २: वही० पृ० ४२
३: वही० पृ० ४२

अहिंसास्त्र की परीक्षा न करते तो देश की दशा बिगड़ जाती थी । जनता एक दूसरे को हत्या करके अपने को सुखी मानती है -

' यदि न अहिंसा के द्वारा
होती स्वतन्त्रता प्राप्त
तो न राष्ट्र के प्राणों में
होती सहिष्णुता व्याप्त
-- -- --
वादों के निष्कर्ष । '[1]

देश में शांति का वातावरण जो फैल गया है वह गान्धीजी की अहिंसा के द्वारा ही है । उनके द्वारा प्रवर्तित आत्मबल से सदा विजय पाने का अनुरोध किया गया है । -

' ओ मानव ! गान्धी का सबसे
-- -- --
नित करो विजय सम्पादन ! '[2]

अन्त में कवि ने कहा है कि राष्ट्र के लिए उनकी अमूल्य देन है अहिंसा । उन्होंने अपनी यह आशा भी प्रकट की है कि जनता के मन में कदापि हिंसा का भाव न जाग उठे ।

' राष्ट्रपिता की देन राष्ट्र को
-- -- --
जागे न कभी भी हिंसा । '[3]

अहिंसा को महत्त्व प्रदान करते हुए उसकी व्यावहारिक आलोचना की गयी है । साथ ही गांधीजी के प्रति अपनी श्रद्धा-भावना प्रकट की है । उनके

- -

१: श्रद्धांजलि - चेतना - पृ० ५२ २: वही० पृ० ५३
३: वही० पृ० ५३

अहिंसास्त्र की गरिमा सराहनीय है ।

' राजर्षि राष्ट्रपति ' में गांधीजी का जयगान गाया गया है । उनकी प्रशंसा का जयरव ऊपर नील गगन तक गुंजित रहता है ।

' आज युगों के बाद, राष्ट्र में
जनता की हुंकार उठी
जय भारत की, जय गांधीजी की
अंबर तक झंकार उठी । '[१]

गांधीजी संसार की सजीव एवं निर्जीव वस्तुओंके लिए भी प्रिय थे -

' गंगा - यमुना अमृत दुग्ध दे,
-- -- --
तुझ को आज गुहार उठी, । '[२]

उनकी सराहना भक्त भी करते हैं और विभक्त भी । गांधीजी की दृढ़ता से देश में बड़ी भारती आंधी चली । फिर भी वे एक पग तक विचलित न हुए -

' तू सुमेरु सा रहा अचल ही
-- -- --
तेरे प्रण पर मेरा गांधी । '[३]

गांधीजी को राष्ट्रपति के रूप में चित्रित किया है । वे राजर्षि भी हैं । राजर्षि वह ऋषि है जिसने क्षत्रिय कुल में जन्म लिया है । गांधीजी को कवियों ने राजा और ऋषि के रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया है ।

' हर हर महादेव जय जय ' - इस कविता में गांधीजी को स्वतंत्रता का उज्ज्वल दिनकर कहकर उनका जयकार किया गया है । इस कविता द्वारा कवि ने

- -

१: राजर्षि राष्ट्रपति - चेतना- पृ० ६१
२: वही० पृ० ६२ ३: वही० पृ० ६२

भारत में नवीनता लाने का अपना परिश्रम किया है । वे कहते हैं कि कभी कोई निर्बल न हो -

' पग पग में छाया कोलाहल,
डग मग पग न कहीं हो निर्बल । '[१]

कवि ने मन की दुर्बलता को दूर करके सबलता लाने का उपदेश दिया है । इसमें गांधीजी को महादेव कहा गया है । महादेव जी वस्तुतः संहारमूर्ति माने जाते हैं । उसी प्रकार गांधीजी भी वस्तुओं का संहार किया जो प्रयोग - योग्य नहीं हैं । कवि ने उनको ईश्वरत्व के विभिन्न रूप प्रदान किये हैं ।

' उपवास ' में कवि ने नीति और न्याय की स्थापना के लिये जो उपवास किया उसी का प्रतिपादन है । वह उपवास साधारण सा उपवास नहीं था । इस उपवास ने भारत के इतिहास में भी परिवर्तन करा दिया ।

' किया जब जब तुमने उपवास
बल से नहीं, किंतु निज बलि से
बदल दिया इतिहास । '[२]

जिस प्रकार तीनों लोकों के रक्षक हैं । गान्धीजी भी अखण्ड भारत के पालक थे । शिव जी ने जब एक बार कामदेव को जलाने के लिए अपनी तीसरी आंख खोली तब समस्त जनता कांप उठी । इसी प्रकार गांधीजी के उपवास की तेजोमय रश्मि से भारत की जनता कांपने लगी । शिवजी तो नीलकण्ठ कहे जाते हैं, उन्होंने एक बार विष पी लिया । गांधीजी ने सारी कठिनाइयों को अपने में चुपचाप सहते हुए संसार को प्रेमामृत प्रदान किया । गांधीजी के इस उपवास का हिंसा के महाताण्डव पर अच्छा प्रभाव पड़ा -

---

१- हर हर महादेव जय जय - चेतना- पृ० ६०
२: उपवास - चेतना - पृ० ११

' हिंसा के प्रकांड तांडव पर

-- --

देख वज्र संघात । '१

गान्धीजी के उपवास से अनीति और अत्याचार के काले बादलों को हटाकर प्रेम भरी नव-जीवन की चांदनी बिखेर गयी। देश- भर में शान्ति की स्थापना हुई।

' छिटकी शुभ चांदनी जीवन

-- -- --

किया तुमने जब जब उपवास। '२

अन्त में कवि ने गान्धीजी को आत्मपुत्र कहा है। उन्होंने बलिदान की शिक्षा दी और जगत का संकट मिटा दिया।

' आत्म - पुत्र, तुम धन्य ! धन्य तव

-- -- --

तुम्हारा यह पावन उपवास ! '३

इसमें कवि ने महात्मा जी को पशुपति कहा है क्योंकि शिवजी ने एक बार अपने पाशुपतास्त्र का प्रयोग किया था जिस प्रकार गान्धीजी ने आज अपने उपवासास्त्र का प्रयोग किया।

'स्वतन्त्रता के पुण्य पर्व पर ' - इस कविता में भारत की स्वतंत्रता के उदय पर जयगीत गाने के लिये सितार सजाने का आदेश दिया गया है। सारा राष्ट्र आजादी की प्रतीक्षा में है। लोग राष्ट्र की प्रत्येक वस्तु में नवीनता का दर्शन करने लगते हैं। अतः वह कहता है -

- -

१: उपवास - चेतना - पृ० १२ २: वही० पृ० १२

३: वही० पृ० १२

' आज की उषा नवीन, आज की दिशा नवीन ,

-- -- --

प्राण - प्राण में पराग, सौरभ, स्पन्दन नवीन । '[1]

भारत स्वतन्त्र होने के कारण अपने आप संपूर्ण रूप से सब जगह परिवर्तन हुआ है -

' बदल रही आज धरा, बदल रहा आसमान ,

-- -- --

खुल रहा स्वतन्त्र राष्ट्र का नवीन पट महान । '[2]

सारे देश के बन्धन की कड़ियां टूट गयीं और वह बन्धनमुक्त हो गया -

' दिन है बन्धन-विहीन, रजनी बन्धनविहीन,

-- -- --

बह रही स्वतन्त्रता समीर देश में नवीन । '[3]

यहां कवि ने आजादी की प्रतीक्षा करने वाले परिवर्तित एवं बन्धनमुक्त भारत का चित्रण किया है। इसके सिलसिले में उन्होंने भारत को अत्यन्त नवीनता का पट पहनाया है। पुरानी रूढ़ियों एवं रीतियों से हटते हुएभारतदेश नवीन जागरण को पा रहा है। अत: कवि ने स्वतन्त्रता को भारत का पुण्य- पर्व माना है। दासता से स्वतन्त्रता की ओर भारत के परिवर्तन - पथ की कथा सुनायी गयी है।

'यह स्वतंत्रता की अरुण उषा' में स्वतन्त्रता- प्राप्ति के दिवस के उस पावन और पुनीत प्रात: काल की अरुणाभ वेला का चित्रण है। भारत को स्वतन्त्र करके उसे रामराज्य बनाना गान्धीजी के लिए पहले केवल सपना ही था। मगर बाद में वह सत्य सिद्ध हुआ।

१: स्वतन्त्रता के पुण्य पर्व पर - चेतना - पृ० २७
२: वही० पृ० २८
३: वही० पृ० २८

' यह स्वतन्त्रता की अरुण उषा
है लगी क्षितिज पर मुसकाने ,
जो सपने थे इस जीवन के
वे लगे सत्य बन कहलाने । '[१]

यहां गांधीजी की कल्पना के भारत के रूप - चित्र का आभास मिलता है । इस भारत में जाति- मत - भेद- हीन सुसमाज की स्थापना हुई । -

' यह वर्गहीन नव स्वर्ग आज
-- -- --
लगे आज फिर ललचाने । '[२]

भारत की जनता में अधिकांश लोग कृषक हैं जो खेती का काम करने वाले हैं । जब विदेशी शासकों के अधीन भारत था, तब इन लोगों का जीवन बड़ा दुःखमय था और इन पर अत्याचार और अनीति का अनाचार - वार चलता था। जब भारत को आजादी मिली तब इन लोगों का जीवन सुधर गया ; इन पर सौभाग्य - देवता की कृपा - दृष्टि पड़ गयी । इन को भूमि का दान दिया गया जिससे वे अपने अपने खेतों में खेती का काम कर सकें । धरती उसकी कही गयी जो खूब परिश्रम करता था ।

' जिसका श्रम है उनकी धरती,
जिसका हल है उनकी धरती
इतने दिन बाद अभागों को
सौभाग्य चला अपनाने ।। '[३]

यहां कवि ने स्वतन्त्रता के दिवस देश व एवं प्रकृति में जो जो परिवर्तन दिखाई पड़े उन्हीं का विवेचन किया है । इसमें कवि के आशाओं और अभिलाषाओं से भरे विचारों का विश्लेषण भी हुआ है ।

- -

१: यह स्वतन्त्र ता की अरुण उषा - चेतना- पृ० २९
२: वही० पृ० ३०　　　३: वही० पृ० ३१

' आज राष्ट्र के कण कण को गान्धी की मूर्ति करेंगे हम ' में गांधीजी की मृत्यु के बाद भारत की जनता उनके स्मरणार्थ राष्ट्र के कण कण को उनका मूर्तरूप देने की प्रतिज्ञा लेती है और उनके प्रति अपनी श्रद्धांजलि प्रकट करती है। जिन महात्मा के आत्मबल पर अहिंसात्मक आन्दोलनों द्वारा भारत को स्वतंत्रता प्राप्त हुई, उनकी आज मृत्यु हो गयी ; वे इस जगत से चले गये -

' वही शान्ति की मूर्ति प्राण की
स्फूर्ति, राष्ट्र कर्णधार गया ।
गया सत्य का तेज, अहिंसा का
उज्ज्वल अवतार गया । '[१]

गांधीजी अमर हैं और जनता के मन- मन पर, वस्तुओं के कण-कण पर सब कहीं अपना सिंहासन जमाकर उस पर विराजित हैं। जिस प्रकार ईश्वर सर्वत्र व्याप्त हैं और उन्हें सर्वव्यापी कहा जाता है उसी प्रकार भी गांधी भी सर्वव्यापी कहे जा सकते हैं। -

' मरकर भी है अमर महात्मा,
जननी के जन जन मन में
अक्षय सिंहासन है उसका
प्राण प्राण में कण कण में । '[२]

यहां उनकी अनश्वरता की महिमा गायी गयी है।

उनके द्वारा बताये हुए मार्ग पर चलने और उनके सामने ही हुई प्रतिज्ञा का पालन करने का निश्चय करके जनता ने यों कहा -

' खड़े रहेंगे आज अडिग हो
जिस पथ पर हम डटे हुए
खड़े रहेंगे आज अचल हो
जिस प्रण पर हम डटे हुए ।।'[३]

१: आज ---- करेंगे हम - चेतना- पृ० ४४ २: वही० पृ० ४४ ३:वही०पृ० ४५

गान्धीजी ने जो जो कार्य करने का उपदेश दिया है उन्हीं की पूर्ति करना वर्तमान जनता का कर्तव्य है। -

' जो गांधी ने कहा, उसी की

-- --

गान्धी की मूर्ति करेंगे हम । '[१]

इस कविता में कवि ने जनता की दृढ़ प्रतिज्ञा का विवेचन किया है। इसमें गांधीजी क को ईश्वरत्व प्रदान किया गया है। उन्हें अमर कलकर जनता के मन मन में बसने वाले भी कहा गया है। उपर्युक्त कवि - प्रतिज्ञा भारतीयों के लिए एक संदेश है।

'उद्बोधन ' तो एक राष्ट्रीय कविता है जो उद्बोधनात्मक शैली में लिखी गयी है। इसमें कवि ने गांधीजी का स्मरण भी किया है। उनकी अमरता और सर्व व्यापकता का उल्लेख किया है ।

' प्राण - प्राण में किन्तु ,
उसीकी प्रतिमा सजी अशेष । '[२]

देश के दु:खान्धकार को दूर करने के लिए गान्धीजी का उपदेश रूपी प्रकाश सहायक बनता है। जिस प्रकार निशान्धकार को दूर करने के लिए सूर्य को प्रकाश सहायक होता है -

' सच है यह घन अन्धकार है ,
नहीं सूझता आर पार है ,
पर सम्मुख पावन प्रकाश है बापू का उपदेश । '[३]

गान्धीजी अजर एवं अमर होकर मुक्ति के अमृत-सेज पर सो रहे हैं। अत: वे मृत्युंजय कहे गये। कवि कहते हैं कि जनता के जीवन का उद्देश्य जननी - जन्मभूमि की विजय होना चाहिए।

- -

१: जय ब आज राष्ट्र -- -- करेंगे हम - चेतना - पृ० ४५
२: उद्बोधन - चेतना - पृ० ४६ ३: उद्बोधन - चेतना-पृ० ४७

' हम सब ऐसी करें साधना
जन जन में हो प्रेम भावना
जननी जन्मभूमि की जय हो
जीवन का उद्देश्य । '[१]

कवि ने यहां भी जनता से गान्धीजी के जीवन - मार्ग पर चलने का अनुरोध किया है । गान्धीजी के महत्व का उल्लेख करते हुए जनता के मन में नवजागरण को जागृत किया गया है ।

' पन्द्रह अगस्त ' में भारत को स्वतन्त्रता प्राप्त हुए प्रथम वर्षगांठ अर्थात् पहले उत्सव का वर्णन किया गया है । फिर भी कवि का मन इस भ्रम में पड़ गया है कि वे किस प्रकार इसे मना सकते हैं । कारण यह कि भारत स्वतन्त्र हुआ ; मगर असंख्य वीर- युवकों की मृत्यु हो चुकी । इतना ही नहीं, हमारे राष्ट्रपिता महात्मा गांधीजी की हत्या भी हुई । कवि के हृदय में आनन्द और विषाद दोनों की लहरें एक साथ उमड़ रही हैं ।

' आनन्द लहर यदि एक ओर है आ जाती,
वेदना विपुल दूसरी ओर तो छा जाती । '[२]

कवि को हर कहीं दु:ख प्रतीत होता है । भारत की मुक्ति के अंचल में दु:ख का कलंक लग गया है ।

' मल्लार मेघ में बजने लगता है विहाग,
मेरी आजादी के अंचल में लगा दाग ।। '[३]

कवि कहते हैं कि वीरों को दु:ख के समय पर भी हंसना है ।

' आंसू पीकर मुसकाना है वीरों का क्रम ' [४]

फिर भी उन वीरों के महान त्याग की महिमा की याद जनता में सदा रहे - इस विचार से कवि ने इस दिन का उत्सव मनाना चाहा । अत: वे कहते हैं -

- -

१: उद्बोधन - चेतना- पृ० ४७ २: पन्द्रह अगस्त - चेतना- पृ० ५४
३: वही० पृ० ५५ ४: वही० पृ० ५५

' तुम इसे मनाओ दे प्राणों का मधु कुंकुम ।
यह स्वतन्त्रता की वर्षगांठ है प्रथम प्रथम । '[1]

पन्द्रह अगस्त का दिन भारत के इतिहास में बड़ा ही महत्वपूर्ण है । पंद्रह अगस्त के दिन हमारा भारत देश स्वतन्त्र हुआ । अत: हर साल इस दिन की उत्सव घोषणा होती है । अब तो भारत स्वतंत्र होकर लगभग पच्चीस साल हो चुके हैं । आज के वर्तमान युग में यह दिन बड़ी धूमधाम से मनाया जाता है ।

' विजय पर्व ' - यहां कवि ने भारतवर्ष की स्वतन्त्रता के विजयोत्सव के बारे में कहा है । गान्धीजी के अहिंसात्मक आन्दोलन का प्रतिपादन करते हुए विजय का उत्सव मनाया है । कवि ने गान्धीजी को रघुपति के रूप में चित्रित किया है । भारत की स्वाधीनता प्राप्ति के लिये ही महात्माजी ने आन्दोलन खड़ा किया, जनता का दु:ख दूर किया, अन्त में इस दुनिया से अमर प्रयाण ली ।

' इसी पुण्य वेला में रघुपति ने
-- -- --
जनगण का त्राण किया था । '[2]

कवि ने अंग्रेजों को रावण और विलायत को लंका कहा है । जिस प्रकार श्रीरामचन्द्र ने रावण को युद्ध में मार डाला और लंका की रक्षा की उसी प्रकार गान्धीजी ने अंग्रेजों के आक्रमण से भारत - देश की रक्षा की । आजादी की वेला मंगलदायिनी थी-

यह वह मंगल घड़ी, अमंगल
-- -- --
जब हम ने थे प्राण चढ़ाये । '[3]

स्वतन्त्रता के इस पुण्य प्रभात में कवि ने सारी जनता को जागने का आह्वान किया है-

' जागो वीर जाति के गौरव
-- -- --
जागो प्राणों के बलिदानी ।'[4]

१: पन्द्रह अगस्त - चेतना- पृ० ५५ २: विजय पर्व- चेतना- पृ० ५६
३: वही० पृ० ५७ ४: वही० पृ० ५७

' मुक्ति पर्व ' कविता भारत की स्वतंत्रता की प्राप्ति पर लिखी
इसलिए इसका शीर्षक ' मुक्तिपर्व ' रखा गया है। पन्द्रह अगस्त पर
भाव पड़ता है। यह दिन मुक्ति का नया दिन है क्योंकि भारतमाता
शृंखला टूट गयी और वह स्वतन्त्र हुई। अतः लोग इसकी वन्दना और

' मुक्ति के मंगल - दिवस की
-- -- --
बनी बंधन - हीन जननी। '[१]

कि शहीदों की कठिन जीवन- तपस्या से युग युग की समस्याओं को

' युगों की उलझी समस्या
यह शहीदों की तपस्या ,'[२]

गान्धीजी ने भारत की स्वतंत्रता के हित अनेक देशों की यात्रा की
न किया है। सारी दुनिया में मुक्ति के इस दिन का उत्सव

सियारामशरण गुप्त जी ने अपनी गान्धीवादी कविताओं का
ये ', ' नोआखाली में ', ' मृण्मयी ' आदि काव्य-संग्रहों

रीक्षा ' कवि ने इस कविता में हिन्दुओं और मुसलमानों
हिन्दू नारी को त्याग- भावना का मूल्यांकन किया है।
व का विद्वेष उसकी चरमसीमा तक पहुंच गया था।

र्व - चेतना- पृ० ३४
पृ० ३५

ऐसी परिस्थिति में यह घटना
एक दल भजन- कीर्तन करते हुए
उनकी और प्रजाओं

त हुई जो इस कविता में वर्णित है। हिन्दुओं का
ते से होकर चल रहा था। तब मुसलमानों ने
र यह तो उनके आपसी झगड़े का कारण बन गया।
को खूब सताते थे। मुसलमान लोग एक घर में घुसकर वहां के
क व्यक्ति की पत्नी सुभद्रा को उठा ले गये। कुछ समय के बाद उनके
रह पर सुभद्रा दिखाई पड़ी। मगर उसका पति नाराज हो गया और उस
र कहा -

> ' छूना तू न मुझ को;
> हरके मुसलमान ले गये थे तुझको। '[१]

यह सुनते ही वह अत्यन्त व्याकुल हो गयी और अपने को त्याग देने का निश्चय किया। वह इस प्रकार कह उठी -

> ' अच्छी बात! वैसी - ही परीक्षा अभी दूंगी मैं,
> पीछे नहीं हूंगी मैं। '[२]

जब उसे पति ने छोड़ दिया तब उसने जनक- पुत्री सीता के समान अग्नि में कूदकर सती बनी।

इस कविता से तत्कालीन धर्म - संकट एवं सांप्रदायिक झगड़ों पर प्रकाश पड़ता है। मुसलमान लोग नारी के प्रति अत्याचार करने में चतुर थे। वे नारियों का बलात् अपहरण करते थे। यहां भी सुभद्रा का अपहरण वर्णित है।

प्रस्तुत कविता में कवि ने नारी समस्या का चित्रण किया है। गान्धीजी ने नारी की उन्नति और सुरक्षा के लिए खूब प्रयत्न किया था। उन्होंने नारी को श्रद्धा की प्रतिमूर्ति कहा है। वे कहते हैं -' स्त्री जाति में छिपी हुई अपार- शक्ति, उसकी विद्वता अथवा शरीर बल की बदौलत नहीं है, उसका कारण उसके भीतर भरी हुई उत्कट श्रद्धा - भावना का तेज और अत्यन्त त्याग शक्ति है। '[३]

- -

१: अग्नि परीक्षा - आर्द्रा - पृ० ७० २: वही० पृ० ७२

३: गान्धी विचार दोहन - पृ० ४०

इसमें कवि ने सुभद्रा के सतीत्व की प्रशंसा की है। गान्धीजी ने हिन्दू नारियों के समक्ष सीता, सावित्री, दमयन्ती, आदि की आदर्श- भावना को रखा और इससे प्रेरित होकर भारत की हिन्दू नारियों में भी त्याग की भावना फूट पड़ी। यहां सुभद्रा भी सीता जी की प्रतिमूर्ति बनकर आयी है। उसके पति ने धर्म के नाम पर उसे स्वीकार करने से इनकार किया। तब सुभद्रा पूछती है -

> ' किन्तु क्या यही है धर्म ?
>
> -- --
>
> तो भी नहीं राम ने उन्हें तजा। '[1]

तब पति ने कहा कि यदि वह सीता हो तो उसे पाप कैसे छू सकता ? सीता जी को तो कोई पाप छू नहीं सका और अग्नि ने स्वयं उसकी पवित्रता को दिखाया है।[2] अन्त में वह अपनी पवित्रता को दिखाने के लिए अग्नि में कूदकर अपनी परीक्षा देती है।

कवि के मन में नारी के प्रति सहानुभूति सदा रही है। नारी की विवशता, पीड़ा और दुःख को कवि खूब जानते थे और इन्हीं से उसे मुक्त कराना उनका लक्ष्य था। उनके अनुसार नारी का तिरस्कार नहीं हो सकता, उसे समाज में उच्च पद पर प्रतिष्ठित करना चाहते थे। गान्धीजी का समाज - सुधारवादी दृष्टिकोण यहां स्पष्ट हुआ है। कवि ने इसी दृष्टिकोण को अपनाया है।

'चोर' - प्रस्तुत कविता में एक हिन्दू विधवा की करुण- कथा वर्णित है। एक धनी आदमी के घर में एक विधवा नारी, जिसका नाम था दमयन्ती नौकरी करती थी। उसके यहां दूसरे अनेक नौकर थे और वे हमेशा बिना किसी कारण के इससे लड़ते थे। एक दिन इस आदमी ने अपनी पत्नी को ' गिन्नियों की गड्डी '

१: अग्नि परीक्षा - आर्द्रा - पृ० ७२

२: आग में भी आंच उन्हें नेक नहीं आई थी ,
वह्नि ने विशुद्धता बताई थी। ' - अग्नि परीक्षा-पृ० ७२

दी और पत्नी ने देखा कि उनमें एक गिन्नी कम थी। पति, पत्नी और अन्य नौकर सब उस बेचारी विधवा पर शंकित हुए और उसे नौकरी से निकाल दिया। कुछ दिनों के बाद उस आदमी के पुराने वस्त्र की जेब से वह खोयी गिन्नी मिली और उसे अत्यन्त पश्चाताप हुआ। उसने तुरन्त दमयन्ती को बुलाने और नौकरी में पुन: प्रतिष्ठित करने के विचार से आदमी भेजा। मगर दमयंती कहीं भी दिखाई नहीं पड़ी। किसी को भी कोई पता न था कि वह कहां रहती थी।

इस कविता में विधवा समस्या का निरूपण हुआ है। निम्न-वर्ग की निर्धन, सत्यवती और निष्कपट विधवा दमयन्ती पर घर के मालिक की जल्दी के कारण 'चोर' का कलंक लगाया जाता है। सचमुच वह तो निरपराधी है, फिर भी उसे बड़ी वेदना हुई। इतना ही नहीं, विधवा होने के कारण उस पर दूसरों ने घृणा की दृष्टि डाली थी।

इसमें गान्धीवादी विचारधारा स्पष्ट है। गांधीजी के अनुसार 'मजदूरी का ऋण तो परस्पर प्रेम - सेवा से चुकता है, धन आदि से नहीं।'[१] इस कविता में प्रस्तुत घर के मालिक ने पहले दमयन्ती को चोर मानकर वहां से निकाल दिया। मगर जब उसे ज्ञात हुआ कि वह निरपराध है, तब उसके मन में पश्चाताप का सागर उमड़ आया। उसने तुरंत उसके घर आदमी भेजा -

' मन को न दे सका मैं तोष आप ।

— — —

काम पर फेर उसे लाने को । '[२]

गांधीजी का संदेश था कि धनी अपने धन को निर्धनों के हित में व्यय करें तथा उनके प्रति मानवतावादी दृष्टिकोण अपनायें।[३] जिस व्यक्ति में मानवता के भाव का अभाव रहता है वह सदा नीच कार्य करता है, दूसरों की चिन्ता उसे नहीं रहती। मगर यहां का मालिक वैसा नहीं। उसमें मनुष्यत्व की भावना मौजूद है। इसी कारण

- -

१: सियारामशरण गुप्त : व्यक्तित्व और कृतित्व - डा० शिवप्रसाद
२: चोर - आर्द्रा - पृ० ८३   मिश्र - पृ० ३०३
३: सियारामशरण गुप्त : व्यक्तित्व और कृतित्व - पृ० ३०३

अन्त में वह पश्चाताप करता है और उसे वापस बुलाने का प्रयत्न करता है। इस मानवतावादी दृष्टिकोण का समर्थन ही प्रस्तुत कविता में हुआ है। यह तो गान्धीवादी विचारधारा के अनुकूल है।

'डाकू' कविता में कवि ने एक डाकू की कथा का वर्णन किया है। मगर अन्त में वह अपनी वृत्ति छोड़ देता है। इसके पीछे निहित कारण एवं तत्संबंधी घटना का वर्णन यहां किया गया है।

एक डाकू या चोर किसी घर में चोरी करने गया था। वहां एक छोटी बच्ची सो रही थी। जब वह जागी तब उसने चोर को देख लिया। चोर ने उससे माल के बारे में पूछा। वह तो कुछ भी न कह सकती थी। उसे देखते ही चोर का मन बदल गया। उसे अपनी बेटी की याद आ गयी और यहीं उसने अपनी यह बुरी चोरी - वृत्ति छोड़ दी। यही इस कविता में कथित कहानी है।

अपनी चारों ओर की परिस्थितियों के अनुसार आदमी अच्छे भी होते हैं और बुरे भी। इसका एक सच्चा उदाहरण है - 'डाकू'। यहां एक चोर का भले आदमी के रूप में परिवर्तन होना बताया गया है। पहले जो एक चोर था वह अब एक सहृदय व्यक्ति बन गया।

यह कविता गांधीवादी विचारधारा से प्रभावित है। इसमें गांधीवाद के विभिन्न सिद्धान्तों का प्रतिपादन हुआ है। इस कविता में चोर का जो हृदय - परिवर्तन होता है वह गांधीवाद का एक प्रमुख अंग माना जा सकता है। 'गांधीजी का विश्वास था कि मनुष्य कितना ही स्वार्थान्ध हो जाय, उसके हृदय में स्थित सत्य - विषयक गुप्त निश्चय, आदर और भय रहता है। मनुष्य को अपने अन्तःकरण की आवाज़ सुनायी पड़ती है। अपने अन्याय का निश्चय हो जाना और उसके लिए पश्चाताप का होना इसका श्रेष्ठ प्रतीकार है। इसी को हृदय-परिवर्तन या दिल बदलना कहते हैं।'[१]

१: गान्धी - विचार - दोहन - पृ० ५१

जब उस चोर ने एक बच्ची को देखा तो झट से उसका दिल बदल गया और अपनी डकैती छोड़ दी । यहां उसका यह दिल - बदलाव परिस्थिति विशेष के कारण ही हुआ है । यह तो एक बड़े विस्मय की बात है कि एक छोटी सी बालिका ने एक चोर के मन को फेर दिया । उसे देखते ही चोर के मन की हालत बड़ी ही करुणाई हो उठी ।

' विकल उस बच्ची को अवलोक,

-- -- --

तुझे क्या आई मेरी याद ?

-- -- --

अभी तक है उस उर में दाह । '[1]

चोरी की वृत्ति हिंसा मानी जाती है । उसी का अहिंसा में परिवर्तन इस कविता में हम देख सकते हैं । यहां हिंसा पर अहिंसा की विजय दिखाई गयी है -

' खड़े थे जो जैसे उस काल,

-- --

दौड़कर आये मेरे पास ।

-- --

छिप गये, जल में यथा तरंग ।। '[2]

छोटी सी कविता होने पर भी कवि ने इसमें अपनी काव्य-कुशलता का परिचय दिया है । गान्धीवाद की हृदय - परिवर्तन संबंधी बातों पर प्रकाश डालना कवि का उद्देश्य जान पड़ता है । छोटी कविता होने पर भी गान्धीवाद की दृष्टि से यह बड़ी महत्वपूर्ण है ।

' एक फूल की चाह ' - सियारामशरण गुप्तजी गान्धीवादी विचारधारा के पोषक एवं प्रचारक रहे हैं । उन्होंने अपने काव्यों में गान्धीवाद के

- -

१: डाकू - आर्द्रा - पृ० २६

२: वही० पृ० ३०

सिद्धान्तों को प्रतिपादित करने का प्रयास ही किया है। उनकी कविताओं में गांधीवादी विचारधारा का एक न एक तत्व अवश्य रहता है।

प्रस्तुत कविता में कवि ने अछूतों के प्रति अन्याय का अपना विरोध प्रकट किया है और उनके उद्धार करने के लिए प्रयत्न किया है। समाज के निम्न- वर्ग के लोगों - दलित, दीन - दु:खी और अछूत आदि के प्रति उनके मन में सहानुभूति का भाव हमेशा रहा है।

इस कविता में कवि ने एक अछूत बालिका की कहानी के द्वारा अछूतों पर की जाने वाली अनीति पर विचार किया है। सुखिया नामक एक बालिका साधारणत: अपनी सहेलियों के साथ बाहर खेलती थी। उस समय गांव में प्रचण्ड महामारी फैली थी। एक दिन अचानक सुखिया भी इस बीमारी से ग्रस्त हुई। रोग-ग्रस्त होने के कारण वह अत्यंत विकल हो गयी और इस विकलता के बीच में वह यों कह उठती थी -

'मुझ को देवी के प्रसाद का
एक फूल ही दो लाकर।'[1]

मगर वह तो एक अछूत बालिका थी। उसे कैसे प्रसाद मिल सकता था ? उसके रोग की दशा तो बढ़ती जाती थी।[2]

अंत में सुखिया की माता ने मंदिर में जाकर देवी के प्रसाद का फूल लाने का निश्चय किया। वह स्नान कर, अपनी पूजा- थाली, चन्द- पुष्प- कपूर से सजाकर मंदिर गयी। मंदिर के पुजारी ने उसे प्रसाद दे भी दिया। लेकिन

१- एक फूल की चाह - आर्द्रा - पृ० ४६

२-' कोमल कुसुम समान देह था
हुई तप्त अंगार - मई,
प्रति पल बढ़ती ही जाती है
विपुल वेदना, व्यथा नई।'
- एक फूल की चाह - आर्द्रा - पृ० ५०

वह घर तक पहुंच न सकी । मार्ग में उसे विजाति के कुछ लोगों ने पकड़ लिया और न्यायालय में पहुंचाया । मंदिर में घुसकर कलुषित करने के कारण उसे सात दिन का दण्ड दिया गया । अन्त में जब वह दण्ड की अवधि पूरा कर बाहर निकली तब उसे यह पता मिला कि उसकी बेटी इस संसार से विदा हो गई । उसके मन में दुःख का सागर उमड़ - उमड़ कर आया । वह इस प्रकार कह उठी -

' हाय ! फूल सी कोमल बच्ची
-- -- --
हुई राख की थी ढेरी !
-- -- --
तुझ को दे न सका मैं हा ! '[1]

इस कविता में वर्णित कहानी अत्यंत करुणा-जनक बन गयी है । इसमें कवि ने अस्पृश्य जाति के प्रति किये गये अत्याचार का चित्रण किया है । गांधीजी भारत की स्वतंत्रता - प्राप्ति के प्रवर्तक होने के साथ साथ समाज- सुधारक भी थे । ' वस्तुतः गांधीजी का दृष्टिकोण सुधारवादी था । सामाजिक व्यवस्था में राग के समान उत्पन्न बुराइयों को दूर करना उनका उद्देश्य था ।'[2] इसी से प्रभावित होने के कारण गुप्त जी अपने काव्य में सामाजिक पक्ष को प्रमुखता दी है । उनकी इस कविता में हम अस्पृश्यता के प्रति क्षोभ देख सकते हैं ।

गांधीजी ने अछूतों के उद्धार की बातें की हैं । उन्होंने प्रस्तुत कविता में हरिजन- उद्धार के प्रयत्न में सफल हुए । हरिजन के मंदिर में प्रवेश करने की समस्या को लेकर इस कविता की रचना हुई है । कवि ने हरिजन को मंदिर में प्रवेश कराया और इस समस्या को सवारा है । इस प्रकार उन्होंने सुधारवादी दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है । सुखिया की माता को पूर्ण विश्वास था कि उसे कोई मंदिर में नहीं रोक सकेगा । अतः वह कहने लगी -

- -

१: एक फूल की चाह - पृ० ६३
२: सियारामशरण गुप्त : व्यक्तित्व और कृतित्व,
- डा० शिवप्रसादमिश्र - पृ० ६८

'तुझ पर देवी की छाया है,

-- -- --

रोक सकेगा कौन तुझे ।'[1]

यहाँ कवि का हरिजनों में जो आत्म-विश्वास है, वह स्पष्ट है । गांधीजी ने अछूतों को सर्वत्र आने- जाने की अनुमति दी थी । महात्मा गांधी ने कहा- 'अस्पृश्यता, छुआछूत हिन्दू धर्म का अंग नहीं है । इतना ही नहीं, बल्कि उसमें घुसती हुई सड़न है, वहम है, पाप है और उसका निवारण करना प्रत्येक हिन्दू का धर्म है ।'[2]

यह कविता अछूतोद्धार और अस्पृश्यता - निवारण से संबंधित है। इसमें कवि ने एक हरिजन युवती को मंदिर में प्रवेशित करके अछूतोद्धार का महान कार्य किया है । पुराने जमाने में समाज में अछूतों का तिरस्कार होता था । गान्धीजी जैसे महान व्यक्तियों ने इसके लिए खूब प्रयत्न किया है । इस छोटी सी कविता में कवि ने अपनी बड़ी समस्या को लेकर अपने सुधारवादी दृष्टिकोण का परिचय दिया । इसका शीर्षक बहुत सार्थक हो उठा है । इसका अन्त दुःखद है क्योंकि उस सुखिया नामक बच्ची की मृत्यु होती है जिसके मन में देवी के प्रसाद के ' एक फूल ' की चाह थी । लेकिन वह अपनी आशा पूरी न कर सकी । अछूतोद्धार की दृष्टि से यह कविता महत्वपूर्ण है ।

' खादी की चादर ' - इसमें एक विधवा नारी की समस्या को लेकर उसके जीवन का करुणाजनक चित्रण हुआ है । चंपा नामक स्त्री अपनी एकमात्र बेटी को लेकर घरवालों के साथ तीर्थयात्रा के लिए जाती है । घर वाले यात्रा के दौरान चंपा को कहीं छोड़कर आ जाना चाहते थे । उनकी ही इच्छा के अनुसार वहाँ वह बड़ी भीड़ में फँस गयी और वह अकेली हो गयी -

' पर काशी में बड़ी भीड़ थी , .

-- -- --

सूक्ष्म - तन्तु भी टूट गया ।'[3]

१: एक फूल की चाह - पृ० ५४
२: महात्मा गांधी - गान्धी साहित्य ५ - धर्म नीति - पृ० १५०
३: खादी की चादर - पृ० १०५

वह अपनी बेटी को लेकर इधर - उधर घूमती फिरी । मगर अपने घर वालों को वह पा नहीं सकी । अपने पास कुछ पैसे थे और उन्हीं से बेटी को दूध खरीदकर देती थी । एक दिन एक पण्डित जी जब गंगा - तट पर आये तो इस विधवा को देखा और वे अत्यन्त दुःखी हुए । उसने अपने घर में उसको आश्रय दिया । वहीं रहते वक्त उसकी बच्ची बीमार हो गयी और वह इस दुनिया से चल बसी । फिर चंपा ने अकेली रहकर भवन में अपना सारा जीवन बिताया ।

एक दिन उसने पण्डित जी के घर में एक चरखा देखा और उसे लेकर वह सूत कातने लगी -

' कोने में पड़ी रखी थी

-- -- --

ठोका लेकर गहरी श्वास ।

-- -- --

चरखा चलने लगा वहां । '[१]

उसने एक बेडौल चादर का निर्माण किया । वह अपनी बच्ची के वियोग से भोजन न करती थी, केवल गंगा का जल पीकर रहती थी । उसे ऐसा लगता था कि उसकी बेटी जो मर चुकी है, वह अब भी प्यासी है । इसलिए वह एक सकोरा भर दूध खरीदकर गंगा के तट पर जाकर खड़ी हो गयी और गंगा मैया से यों कहने लगी -

' मेरी बेटी मुझे छोड़ी मां,

-- -- --

पहुंचा दे, इतना ही कर । '[२]

इसी अंतर गंगा की लहरों ने उसे उठा लिया । फिर इस पृथ्वी पर उसका कहीं पता ही न था ।

१: [illegible] - पृ० ११८

२: वही० पृ० १२१

इसमें कवि ने एक विधवा नारी के दरिद्रतापूर्ण जीवन का चित्रण किया है। यहां विधवा- समस्या के साथ साथ आर्थिक समस्या का भी सुधारवादी दृष्टिकोण प्रस्तुत किया गया है। आर्थिक समस्या के सुधारक के रूप में इस कविता में चरखे को अपनाया गया है। उसे जब अर्थ की कमी सताने लगी तब उसने चरखे को लेकर चादर कात ली और उसे बेचकर मिले पैसे से अपना जीवन- निर्वाह किया था। यह तो गांधीवाद से प्रभावित कविता है जिसमें चरखा और खादी दोनों की महत्ता का प्रतिपादन हुआ है।

गांधीजी के विचारों के अनुसार हिन्दु विधवा त्याग और पवित्रता की मूर्ति है। पवित्र विधवा को समाज का भूषण समझकर उसके मान और प्रतिष्ठा की रक्षा करनी चाहिए। किन्तु स्त्री - जाति के लिए प्रति पोषित - प्रचारित तुच्छ भाव ने विधवा के साथ अन्याय करने में कोई कसर उठा नहीं रखी। इससे हिन्दु विधवा की स्थिति अछूतों के समान ही दयाजनक हो गयी है।'[1] इस कविता में कवि ने उपेक्षित विधवा - नारी का चित्रण किया है। -

' घर के लोग कोसते जब जब

-- -- --

सलती सबको रह रह कर।'[2]

विधवा - समस्या का समाधान इस कविता में चरखे के द्वारा किया गया है। चंपा अपनी आर्थिक दशा को सुधारने के लिए चरखा कातती है -

' देखा - आगे चरखा रखकर
चम्पा कात रही है सूत।
थी - सा दिया करुण - करुणा ने
आनन उसका पावन पूत।।'[3]

- -

१: गान्धी विचार दोहन - पृ० ५६
२: खादी की चादर - पृ० १०४
३: वही० पृ० ११६

यहाँ खादी की चादर इतना महत्वपूर्ण है कि इस पर चंपा का जीवन गुजरता था। कवि ने चादर को खादी की बनाकर गान्धीवाद से अपना प्रेम प्रकट किया है। यह कविता अत्यन्त करुणापूर्ण बनी है। इस कविता के अंत में खादी की चादर चंपा के स्वरों में यों कहती हुई जान पड़ती है - ' मो सौभाग्य अचल '। त्याग और अमरता की महिमा चादर गाती है। उसमें प्रेम और आत्मीयता का भाव छिपा रहता है। इस प्रकार इस कविता में कवि ने गान्धीवादी विचारधारा के अनुसार हिन्दू नारी के वैधव्य के प्रति अपनी सहानुभूति प्रकट की है।

' अब न करूँगी ऐसा ' में कवि ने एक आदमी के घर में नौकरी करने वाली निम्न वर्ग की एक बालिका के प्रति किये जाने वाले निर्दयतापूर्ण व्यवहार का चित्रण किया है। वह आदमी बड़े बड़े बालों वाले, सुन्दर और छोटे कद के कुत्ते को पालता था। एक दिन उसके घर पर कोई मित्र आने वाला था और वह [illegible] भी गया। कुत्ते को नहलाने का काम इस छोटी बालिका का था। उस दिन वह नौकरी पर आयी नहीं थी। आदमी अपने मित्र के साथ बातचीत में व्यस्त रहा। कुत्ता तो भूखा- प्यासा तड़पता रहा। कुत्ते की यह दशा देखकर आदमी कुपित हुआ। जब बालिका आयी तब उसे खूब फटकारा और एक थप्पड़ जमाया। वह रोती हुई यों बोली - ' अब ऐसा न करूँगी।' इस प्रकार कहने पर भी आदमी का क्रोध बढ़ता ही रहा। तब बालिका घबरा गयी और उसने यों कहा -

' आ रहे थे मुझको चक्कर से ।

-- -- --

नहीं मिली थी मुझे मजूरी कल भी। '[१]

इसे सुनते ही आदमी का दिल बदल गया और वह जैसे का तैसा खड़ा रह गया। उसका क्रोध उतर गया और वह बहुत पछताने लगा। यह तो एक प्रकार का हृदय-परिवर्तन माना जा सकता है। यह गांधीवादी हृदय- परिवर्तन के अनुकूल ही है।

- -

१: अब न करूँगी ऐसा - आर्द्रा - पृ० १२६

'गान्धीजी का विश्वास था कि मनुष्य कितना ही स्वार्थान्ध हो जाय, उसके हृदय में स्थित सत्य विषयक गुप्त निश्चय, आदर और भय रहता है। मनुष्य को अपने अन्त:करण की आवाज सुननी पड़ती है। अपने अन्याय का निश्चय हो जाना और उसके लिए पश्चात्ताप होना इसका श्रेष्ठ प्रतिकार है। इसी को हृदय- परिवर्तन या दिल बदलना कहते हैं।'[१] यहां भी वह आदमी अन्याय करता है और बाद में पश्चात्ताप करता है।

दलित वर्ग के प्रति अपनी सहानुभूति दिखाना कवि का उद्देश्य है। यहां कवि का मानवतावादी दृष्टिकोण व्यक्त हुआ है जो गान्धीवादी विचार-धारा के अनुकूल है।

' पाथेय ' की कविताएं :

इस संग्रह में केवल दो ही कविताएं प्राप्त हैं जो गान्धीवाद से संबंधित हैं। ' शुभागमन ' कविता गान्धीजी पर लिखी गयी है। इसमें कवि ने गान्धीजी को जनता के रक्षक के रूप में चित्रित किया है। गान्धीजी अपने विष्णु-रूप को तजकर कृष्ण-रूप धर कर आये हैं। देश के उस समय के जहरीले वातावरण का चित्रण कवि ने किया है। अहंताप्त, आडंबरता, घमण्ड आदि का वातावरण है। अत: जनता का विश्वास है कि गान्धीजी के आने पर देश का वातावरण बदल जायेगा।

आज फाड़ देगा निश्चय ही
तू इस जड़ता के जाले ;
आ पहुंचा तू अहा ! अचानक
विप्लव की फाड़ू वाले ।'[२]

गान्धीजी बड़े ही शान्त-स्वभाव वाले व्यक्ति थे। कवि ने कहा है कि उनकी वाणी में प्रकट होकर विप्लव का हुंकार भी मधुर बन सुनायी पड़ेगा।[३] गान्धीजी ने संसार में

- -

१: गान्धी विचार दोहन - पृ० ५३ २: शुभागमन- पाथेय-पृ० १०५
३: 'मधुर हुआ तेरी वाणी में, आकर विप्लव का हुंकार।।'
- शुभागमन- पृ० १०६

संसार में मानवता का जो अस्त हुआ था उसे पुन: प्रतिष्ठित किया और नव- जीवन का आविर्भाव किया । -

> ` दान अमरता का दे तू ने
> उसे उठाया नीचे से ,
> फिर से फलक उठी है उसमें
> जागृत जीवन की नवता । `[1]

गान्धीजी ने जनता के निकट यही संदेश भेजा था - ` हम सब एक ही पिता की संतान हैं, आपस में भाई भाई हैं और सबको समान अधिकार हैं । -

> ` तू ने हमें बताया - हम सब
> एक पिता की हैं सन्तान ,
> हैं हम सब भाई भाई ही
> हैं सब के अधिकार समान । `[2]

गांधीजी के आगमन से विश्व- प्रेम में सत्य और अहिंसा का सन्देश फैल गया ।

इसमें कवि ने गान्धीजी को ` विप्लव की फाड़ूवाले ` कहकर पुकारा है । उनकी महिमा के गीत गाये हैं । उनको विश्व - पालक के रूप में चित्रित किया है ।

`नोआखाली में ` - इसमें गुप्त जी ने कुछ ऐसी छोटी छोटी कविताओं को संगृहीत किया है जिनमें विभिन्न विषयों का प्रतिपादन हुआ है । इसमें कवि ने जातीय एवं सांस्कृतिक एकता की अनिवार्यता पर बल दिया है । इसका कारण यह बताया जा सकता है कि १६ अगस्त को कलकत्ते में जब भयंकर नर- संहार हुआ था तब नोआखाली में भी इसकी ज्वाला दिखाई पड़ने लगी । गान्धीजी ने जब यह दृश्य देखा तो चुप न रह सके । उन्होंने खुद वहां जाकर जनता को सान्त्वना

१- शुभागमन - पाथेय - पृ० १०७

२- वही० पृ० १०८

देने का निश्चय किया । गान्धीजी के लिए अपने अहिंसात्मक सिद्धान्तों को प्रायोगिक रूप देने का सुअवसर था । अत: वे पैदल चले । गांधीजी के वहां जाने पर जनता ने इतना अधिक चैन पाया कि वह फूली न समायी । ऐसी अनैतिक और क्रूरतापूर्ण दशा में गान्धीजी की उपस्थिति उनको भगवान की उपस्थिति जान पड़ी ।

इस पुस्तक की प्रथम कविता में कवि ने हिमालय पर्वत और गंगा नदी की सांस्कृतिक एकता को प्रस्तुत करते हुए भारत में इस एकता की अनिवार्यता पर बल दिया है । हिमालय पहाड़ जो हमारे देश का पहरे अथवा रक्षक माना जाता है, वह अपार , अखण्ड है । उसका खण्डन अभी तक किसी ने नहीं किया है । हिमालय स्वयं कहता है -

'किस कुठार से खण्डित कब मैं ?
वही बना हूं था जो तब मैं । '[१]

गंगा नदी में भी हम यही भावना देख सकते हैं । वह भी अनन्त, अटूट, अबाध गति से चलती रहती है । गंगा का कथन यों है -

'मेरा सलिल अटूट अमन्द,
जहां वहां मेरी धारा में,
एक प्राण - गति है निर्द्वन्द्व । '[२]

इन दोनों ने अपनी-अपनी एकता - भावना को अब तक बनाये रखने का प्रयास किया है और आगे भी प्रयास करते रहेंगे । कवि का कथन है कि भारत - देश का विशाल तथा सुदृढ़ भवन का निर्माण केवल एकता की शिला पर ही हो सकता है । यही भाव यहां व्यक्त हुआ है ।

इसकी दूसरी कविता में कवि ने भारत माता का अथवा मातृभूमि से अपने मानसिक विचारों को प्रकट किया है जो बड़े दु:खात्मक प्रतीत होते हैं ।

१: नोआखाली में - पृ० ६
२: वही० पृ० १०

नोआखाली की नर- हत्या में अनेक पुरुषों, स्त्रियों, बच्चों, अबलाओं, बूढ़ों की हत्या हुई थी। हमारी भारत जननी ने ऐसी असंख्य प्रवृत्तियों को देखा है; फिर भी उसे तनिक भी भय नहीं था और अपने मस्तक को सदा ऊंचे रखती थी। उसमें अटूट दृढ़ता वर्तमान थी। अतः कवि ने भी कहा है -

> ' मेरी मां, तू देख चुकी है बहु दुकाल - भूचाल,
> कभी किसी भी भय प्रसंग में झुका न तेरा भाल ।।'[१]

भारत माता के सिर पर आयी हुई इन विपत्तियों और उसके दुर्भाग्य के बारे में सोचकर कवि अत्यन्त दुःखी प्रतीत होते हैं। उन्होंने कहा है कि इस संसार के सारे लोग, चाहे पुरुष हों या नारी, भारत माता की सन्तान हैं। इस प्रकार एक ही माता से उत्पन्न इनके मन में अहं की भावना बड़ी मात्रा में विद्यमान है। इस भावना के बल पर वे क्या करते हैं कुछ पता नहीं चलता। यह तो ठीक है कि भारतमाता एक तरफ से संपन्न है और दूसरी तरफ से विषण्ण भी। भारत की जनता के बीच में किसी भी प्रकार की एकता नहीं रहती ; यही कवि का कथन है।

: इसकी तीसरी कविता, ' अक्षय ' में कवि ने हिंदू और मुसलमान दोनों व इस देश में एक साथ रह सकते हैं - यही भाव व्यक्त किया है - हिंदू और मुसलमान में एक के ऊपर एक का वैर भाव रहता है। लेकिन कवि इसे मानने को तैयार नहीं। कवि कहते हैं -

> ' जब तक धड़ के ऊपर सिर है किये समुन्नत भाल
> इसकी दाढ़ी, उसकी चोटी अक्षय है चिरकाल। '[२]

इसमें अक्षय शब्द व्यंग्यार्थ में प्रयुक्त किया गया है। कवि कहते हैं कि हिन्दू की चोटी और मुसलमान की दाढ़ी दोनों अक्षय हैं। हिंदू और मुसलमान दोनों देश में एकसाथ रह सकते हैं। कोई किसी का नाश नहीं कर सकता।

इस संग्रह की और एक कविता है ' ग्यारह दोहे '। इसमें कवि ने ग्यारह दोहों को संग्रहीत किया है। ' ग्यारह अंक के द्वारा उन्होंने

- -

१: नोआखाली में - पृ० ११ २: अक्षय - नोआखाली में - पृ० १२

हिन्दू और मुसलमानों के बीच का अभेद स्पष्ट किया है। जिस प्रकार 'ग्यारह संख्या को दाईं ओर से या बाईं ओर से आंका जाता है तो वह ग्यारह ही होता है, उसी प्रकार हिन्दू और मुसलमान, चाहे वे जाति से भिन्न हों, मानवीय धरातल पर वे अभिन्न हैं। सबको समाज में तुल्य अधिकार रहता है। उन्होंने पास पास में अपने भवन का निर्माण किया। कवि ने वीरों की प्रशंसा करते हुए उनमें धैर्य और सफलता की अनिवार्यता सूचित की है। -

' न हो धीर ज्यों अचल जो धीर नहीं वह वीर,
न हो वीर ज्यों विकल जो धीर नहीं वह धीर ।। '[1]

हिन्दू और मुस्लिम दोनों की एकता को देखकर भारत- माता शहीदों की रक्त- धारा में दूध की धारा को प्रवाहित करती है।[2] अन्त में कवि कहते हैं कि दोनों अगर अपने आपसी बैर को भुला दें तो यह बड़े क्षेम की बात हो-

' तुम हमको, हम भी तुम्हें सहन करें सप्रेम।
दोनों की इस जीत में दोनों का ही क्षेम। '[3]

'रमजानी' शीर्षक कविता में कवि ने तत्कालीन वातावरण को प्रस्तुत किया है। इसमें हिन्दू और मुसलमानों के बीच के ऐक्य पर विचार किया गया है। 'पाक कलाम' में भी तत्कालीन वातावरण का चित्रण है। नोआखाली में गांधीजी के पैदल घूमने की सूचना जब अखबार में अकबर पढ़ता है तब उसके पिता कासिम सेना भेजने की बात कहते हैं। तब अकबर कहता है कि उसका पाक- कलाम भेज देना। 'पाक- कलाम' का अर्थ है पवित्र वाणी।

' ध्वंस ' कविता में कवि ने किसी एक हिंदू के घर में जो ध्वंसात्मक प्रवृत्ति हुई, उसी के बारे में कहा है। हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच के बैर के कारण

- -

१: ग्यारह दोहे - नोआखाली में - पृ० १४
२: भरती है मां रक्त में पय की शुद्ध प्रतीति ,
हम उसके सुत बैर को बना सकें प्रिय प्रीति, '
- ग्यारह दोहे - नोआखाली में - पृ० १४
३: वही० पृ० १४

मुसलमानों ने हिन्दुओं को सब सताया था। वे हिन्दुओं के भवनों में आग लगाकर उसके भीतर के लोगों को जिन्दा ही जलाते थे। मुसलमानों को गुण्डा कहा गया है।

> ' गुण्डे गुण्डे ही हैं केवल ,
> नहीं धर्म के, कुल के । '[1]

मुसलमानों और हिन्दुओं के बीच में इस प्रकार को अनेक ध्वंसात्मक काण्ड होते थे। इस कविता का शीर्षक ही कवि ने ' ध्वंस' रखा है। मुसलमानों में हिन्दुओं के प्रति घोर घृणा थी। अत: वे ध्वंस ही ध्वंस करते थे। कवि ने इसमें मुसलमानों के ध्वंस के प्रति विरोध प्रकट किया है।

'नोआखाली में' कविता में किसी एक हिन्दु के घर में हुई अनीति पर प्रकाश डाला गया है। हिन्दु - मुसलमानों के द्वन्द्व के कारण गांव के कोने कोने में बहुत ही विकट परिस्थिति दिखाई पड़ती है। मुसलमानों ने हिन्दुओं के देवालयों को सत्यानाश कर दिया था। उसकी कोई गणना नहीं की जा सकती। अत: मंदिरों में शंख ध्वनि नहीं सुनायी पड़ती और न दीपों की आरती चढ़ाई जाती।[2] मुसलमानों ने अमला नामक एक हिन्दु नारी के माता- पिता, पुत्र - पौत्रों की हत्या करके अमला का अपहरण किया था। -

> ' वह अमला - वाग्दत्ता थी जो
> गृह की निष्कलंक आभा
> जाने कहां अचेत दशा में
> उठा ले गये हत्यारे । '[3]

उस समय नारी का अपहरण एक साधारण - सी आसान बात थी। अमला के साथ एक कुत्ता भी था जिसे वह पालती थी। कवि ने इन पंक्तियों में पशु की स्नेहशीलता

- -

१: ध्वंस - नोआखाली में - पृ० ३१

२: मंदिर से घंटे की मृदु मृदु
ध्वनि सुन आज नहीं पड़ती,
अमल आरती की आभा में
सुस्वर तान नहीं मढ़ती।' - वही० पृ० ३४ ३: वही० पृ० ३५

एवं मानव की अमानवता के बारे में कहते हुए पशु और मानव के बीच के अन्तर को स्पष्ट किया है। आजकल के युगों में मानव की अपेक्षा पशु ही अच्छा है।[१] कवि कहते हैं कि पशु में प्रेम की उदारता तीव्र है। यहां यह कुत्ता इसका उदाहरण है। इस कविता में कवि ने मानव के पाशविक कृत्य, नारी - अपहरण, निर्दयता एवं पशु-सम व्यवहार पर दृष्टि डाली है। इसका विरोध प्रकट करते हुए मानव को नीच बताया गया है।

इसी और एक कविता है ' निशान्त '। इसमें गान्धीजी के नोआखाली में आगमन का वर्णन किया गया है। गान्धीजी के आगमन से एक निशा का अन्त हो गया और नव- प्रभात जाग उठा। गान्धीजी को निखिल बन्धु कहा गया है। उनके तेजोमय प्रकाश से समस्त अंधकार दूर हो गया।[२] गांधीजी के इ निर्भय और अनन्त प्रकाशवान व्यक्तित्व की झलक मिलती है।

' उस अमरात्मा के लिए नहीं भय कोई,
असफल होना अवरोध - रज्जु बन्धन का। '[३]

उनको काली तमसा का निशांत एवं कालरात्रि का यात्री कहा गया है। कवि ने गांधीजी का हार्दिक स्वागत करते हुए उनका स्तवन किया है। उनसे जनता में सुंदर भविष्य के बारे में नव आशा जगाने तथा पूर्ण रूपेण आत्मविश्वास भर देने की प्रार्थना की है। गान्धीजी के पदार्पण से ही नोआखाली के तिमिराकाश में प्रकाश का सूर्योदय हो गया था। घोर निशा का अंत करने वाले एक महान व्यक्ति के रूप में उनका चित्रण करके उनकी अमरता गायी गयी है।

- -

१: अरे मूक पशु, तेरे जी में
-- -- --
मिले जुले थे जिनके गेह। '
- नोआखाली में - पृ० ३६

२: उस युग दीप में नहीं तमस की छाया,
वह निखिल बन्धु अनुराग झलकता लाया। ' - निशान्त पृ० ४६

३: निशान्त - पृ० ५०

इस काव्य संग्रह की अंतिम कविता है ` एक हमारा देश ` । इसमें देश का गुण-गान किया गया है । स्वतन्त्रता के पश्चात् के भारत के आह्लाद का चित्रण किया गया है । सब कहीं उल्लास की लहरें उठ रही हैं -

` देखा जागृति के प्रभात में एक स्वतंत्र प्रकाश ;
फैला है सब ओर एक - सा एक अतुल उल्लास । `[१]

बलिदानी वीरों की महिमा को बताया गया है - अन्त में कवि यही चाहते थे -

` मातृभूमि मानवता का जागृत जयजयकार ;
-- -- --
लहर उठे जन जन के मन में सत्य अहिंसा प्यार । `[२]

इन अंतिम पंक्तियों में कवि ने बापू की ओर संकेत किया है । डा० शिवप्रसाद मिश्री के अनुसार यह कविता मैथिलीशरण कृत है ।

मृण्मयी की कविताएं :

इसमें गांधीवाद से प्रभावित तीन कविताएं प्राप्त हैं । `मंजुघोष` कविता में कवि ने देवेन्द्र और मंजुघोष नामक बादल के बीच के संवाद का विवेचन किया है। बादल तो इन्द्र की आज्ञा के बिना बरस पड़ता है और इन्द्र बादल के अनादर के बारे में इससे पूछते हैं । अंत में उसे हिमाचल के प्रान्तों में जाकर बरसने की आज्ञा दी जाती है। बादल इस आज्ञा को शिरोधार्य मानकर इसका पालन करने का वादा करता है । इन्द्र के सदुपदेश से उसे दंड भी वर के समान प्रतीत होता है । -

` भगवन्न कृपानिवास,
-- -- --
सादर निदेश शिरोधार्य प्रभुवर का । `[३]

इसके बाद इन्द्र और वीरभद्र के बीच में वार्तालाप छिड़ जाता है । यह वीरभद्र शूरसेन का पुत्र है । आर्यखण्ड में वर्षा न होने के कारण वीरभद्र बड़ा दुःखी दिखाई पड़ता है ।

- -

१: एक हमारा देश - पृ० ५१   २: वही० पृ० ५२   ३: मंजुघोष- मृण्मयी-पृ० ३६

तब इन्द्र कहते हैं कि जगत में जो धर्म का सच्चा पालन करता है वह कदापि भ्रष्ट न होता

' वत्स तुम च्युत हो धर्मपण से,

-- -- --

च्युत हो न मानव भुवन में । '[1]

गान्धीजी ने भी धर्म के पवित्र एवं निर्विघ्न पालन पर जोर दिया है । वे बड़े धार्मिक थे और सारे धर्मों पर उनका विश्वास था भी । यहां कवि ने धर्म के प्रति गांधीवादी दृष्टिकोण अपनाया है । इन भौतिक कट्टरताओं और विषमताओं से मुक्त होने के लिए वीरभद्र ने तप करने की इच्छा प्रकट की । तब इन्द्र ने उसे मना किया और कहा-

' छोड़ यह यौवराज्य, धर्म कहां पाओगे ?

-- -- -- --

अर्थ नहीं, यह तो महा अनर्थ । '[2]

यहां गांधीजी के पक्ष में डा० शिवप्रसाद मिश्र का कथन स्मरणीय है - ' गान्धीजी कन्दराओं में जाकर तप करने के पक्षपाती नहीं थे । उनके अनुसार इस संसार में रहते हुए अपने कर्तव्य का पालन करने में ही धर्म की उपलब्धि हो सकती है ।[3] इसी कथन का समर्थन कवि ने यहां भगवान इन्द्र के द्वारा किया है ।

चंपा और वीरभद्र के वार्तालाप में हम गान्धीवादी बातों का वर्णन कर सकते हैं । वीरभद्र के इस कथन में गांधीवादी विचार स्पष्ट होता है -

' सुख तो हमारा नहीं, सब का जहां हो भाग ।'[4]

गांधीजी को सब का सुख- सन्तोष अपना सुख और सन्तोष और सब की दु:ख पीड़ा अपनी दु:ख- पीड़ा थी । उनकी जीवन- दृष्टि समष्टिमूलक थी

इस कविता में कवि ने गांधीवाद के धर्मपक्ष और समष्टिकोण की चर्चा की है । इस कविता के इन्द्र और वीरभद्र दोनों गान्धीवादी विचारों से प्रभावित

- -

१: मंजुघोष- मृण्मयी - पृ० ३७ २: वही० पृ० ३८

३: सियारामशरण गुप्त - व्यक्तित्व और कृतित्व- पृ० ३०४

४: मंजुघोष- मृण्मयी - पृ० ५२

दिखाई पड़ते हैं । न्याय और धर्म के साथ राज्य का शासन करने पर विचारा है । यहां धर्म की पवित्रता, रक्षा एवं पालन को प्रमुखता दी गयी है । अतः इसके अन्त में इन्द्र ने वीरभद्र को यही उपदेश दिया है -

' नित्य ध्रुव धर्म का विधान कर
होकर नरेन्द्र करो शासन भुवन में । '[1]

कर्षकों के प्रति सहानुभूति प्रकट करते हुए कवि ने समाज के निम्नवर्ग की ओर दृष्टि डाली है । वर्षा के अभाव में जब खेतों में अन्न स्खा- सूखा दिखाई पड़ता है तब वीरभद्र का मन दुःखित होता है । वह कहता है -

' कर्षक घरों का अन्न खेतों में झुके हैं डाल ,
-- -- --
दो ही दिन बाद जब खेत मुरझायेंगे । '[2]

इस कविता में गांधीवादी विचारधारा के एकपत्नीव्रत धर्मतत्त्व का विवेचन किया गया है । इन्द्र और वीरभद्र को गांधीजी के अनुयायियों के रूप में चित्रित किया गया है । गांधीवाद का प्रभाव उनपर खूब पड़ा है ।

' लाभालाभ '' में किसी एक देश में एक सेठ ने धन- व्यय की कोई परवाह किये बिना एक ऊंचा और सुरम्य घर बनवाया । उस घर का अपना गौरव था और अपना सिर उठा कर वह गौरव प्रकट करता रहा था -

' उठाकर नभ में उन्नत भाल ,
सौध वह अपना परम प्रकर्ष
दिखाता था दृग्गति पर्यन्त । '[3]

वह साधारण मिट्टी और चूने का घर न होकर स्वर्ण से बना घर था । सब को इसे देखकर आश्चर्य हुआ कि वह स्वर्ण से निर्मित सौरभ - सद्म था । जब आदमी अमीर

- -

१: मंजुघोष - मृण्मयी - पृ० ५३ २: वही० पृ० ३४
३: लाभालाभ - मृण्मयी - पृ० ११

बन जाता है तो उनके मन में गरीबों के प्रति घृणा और बीभत्स का भाव पैदा हो जाता है। यही बात हम यहां के सेठ में देख सकते हैं। उसने अपनी स्थिति का गर्व लिये दूसरों के बारे में इस प्रकार कहा -

'भूमि पर नीचे के सब लोग
क्षुद्रतम हैं लघु कीट - समान ।।'[१]

सेठ और उसकी पत्नी दोनों रात में इस सौध में सोने के लिए गये थे, तुरन्त ही यह वाणी सुनायी पड़ी - 'देख, मैं गिरता हूं, तुम खोल।' दोनों बड़े दुःखी हुए। बाद में सेठ ने उस राज्य के राजा के पास जाकर कहा -

'नहीं हम जैसों के उपभोग्य,
नृपालों के ही है यह योग्य।
राज्य को है उसका अधिकार,
आप ही करें उसे स्वीकार।'[२]

यह सुनते ही राजा ने उस घर को खरीदने का निश्चय किया और सेठ जी को धन तथा निधि देने की आज्ञा भी दी।

इसके बाद एक दिन राजा उस घर को देखने चले। जब वे उस घर के भीतर घुसे तो वही वाणी सुनायी दी। तुरंत ही वह घर गिर पड़ा। सेठजी और पत्नी दुःख में पड़ गये। फिर भी पत्नी लोभवश कहती थी कि राजा गिरे घर का स्वर्ण वापस देंगे। यहां उसकी लालच की सीमा नहीं रहती।

इस कविता के मूल में यही तत्व निगूढ़ रहता है कि अधिक लोभ दुःख का कारण होता है, प्रत्येक व्यक्ति के मन में त्याग की भावना आवश्यक है और इसी त्याग में ही सुख और शान्ति प्राप्त हो सकती है -

'त्याग में अतुल विभव का भोग'[३]

१: लाभालाभ - पृ० १४ २: वही० पृ० २१ ३: वही० पृ० २८

यहां गांधीवाद की त्याग- भावना की ओर संकेत है। गान्धीवाद की त्याग - भावना निवृत्ति की है। डा० राजेन्द्रप्रसाद ने कहा है - ' गान्धीवाद प्रवृत्ति के नहीं निवृत्ति के मार्ग पर चलता है। '[१]

सियारामशरण गुप्त ने इसमें गांधीवाद के अपरिग्रह सिद्धान्त का निरूपण किया है। सेठ जी बहुत बड़े धनी थे ; उनके पास असंख्य संपत्ति थी। फिर भी वे आवश्यकता से अधिक धन खर्च करते थे। यहां अपरिग्रह से मतलब यह है कि आवश्यकता से अधिक धन व्यय न करना। यह धन - व्यय यहां किसी वस्तु के निर्माण के लिए है जो जनता के अथवा अपने लिए हितकारी हो। इस कविता में सेठजी अपने लिए एक स्वर्ण महल बनवाते हैं और इसी पर अपनी सारी संपत्ति खर्च करते हैं। बाद में उस महल के गिरने के भय से सेठ जी ने उसे तज दिया था।

यह स्पष्ट है कि इस कविता में गांधीवाद का प्रतिपादन किया गया है। गांधीवाद का त्याग - पक्ष मुख्यत: निरूपित हो चुका है।

'सम्मिलित ' कविता में कवि ने स्वत्व के प्रति तीखा व्यंग्य किया है। इसके लिए कवि ने दो वैरी व्यक्तियों के बीच के द्वन्द्व को प्रस्तुत किया। रास्ते में एक अमलतास का पेड़ खड़ा है और वे पेड़ खूब फूले फले हैं। किन्हीं दोनों स्वजनों के बीच में वैर के कारण झगड़ा छिड़ जाता है क्योंकि उनमें से एक ने उस पेड़ के फल को तोड़ना चाहा। यह झगड़ा बढ़कर दोनों की मृत्यु का कारण बन जाता है। इन्हीं दोनों व्यक्तियों के प्रतीक के रूप में आज ये वृक्ष खड़े हैं। मगर अब तो उनमें वैर की भावना बिलकुल नहीं। दोनों की आपस में मेल हो चुकी है। उनमें सहोदर- भाव पैदा हो गया है। दोनों दूसरों के लिए फूल - फलादि भेंट कर रहे हैं -

' भेंट रहे हैं एक दूसरे को मिल खिल कर ;
निज निज सीमा लांघ सहोदर - से हिल मिल कर। '[२]

१: गान्धीजी की देन - डॉ राजेन्द्र प्रसाद - सियारामशरण गुप्त : व्यक्तित्व और कृतित्व - डा० शिवप्रसाद मिश्र - पृ० ३०४

२: सम्मिलित - पृ० ८०

इन युगल वृक्षों के मिलन से कवि सन्तुष्ट होकर यों कहते हैं -

' मातः वसुधे, स्वजन - स्वजन का वैर-पंक वह
-- -- --
लेकर ये फल - फूल इन्हीं पत्तों - मा फूमूं । '[१]

इन वृक्षों के मिलन में स्वत्व के त्याग और समत्व के ग्रहण की भावना द्वारा ' वसुधैव कुटुंबकम् ' को पुष्ट किया गया है । इस प्रकार यहां गांधीवाद के आदर्शवादी दृष्टिकोण को अपनाया गया है ।

' समर्पण ' की कविताएं :

इसमें विविध वस्तुओं और घटनाओं से संबंधित अनेक छोटी - छोटी कविताओं को संगृहीत किया गया है जिसके साथ गान्धीजी और गांधीवाद पर रचित कविताएं भी पायी जाती हैं । गांधीजी पर लिखित एक कविता है ' युगधनी ' । इस कविता में कवि ने हमारे राष्ट्रपिता पूज्य गांधीजी को ही चित्रित किया है । कवि ने उनको युग - धनी बताया है । युग-धनी से मतलब युग - पति से है । वास्तव में वे युग के पति ही हैं । वे ' आजादी के धुनी, रमाने वाले युग - धनी ' थे । डा० रामविलावन तिवारी ने कहा है - ' आजादी की धुनी, रमाने वाला युग-धनी हंस हंस के प्रहार सहता है और अपने राष्ट्र - देव की मांग पर सहर्ष अपने प्राण उत्सर्ग कर देता है । '[२]

भारत को स्वतंत्रता प्राप्त होने के पहले गान्धीजी ने देश की स्वतन्त्रता की बुलंद आवाज उठायी थी । अपमान, प्रहार आदि सहते हुए उन्होंने इसके लिए बड़ा प्रयत्न किया । अन्त में १५ अगस्त १९४७ को भारत स्वतंत्र हुआ । भारत की स्वतंत्रता - प्राप्ति का एकमात्र कारण गान्धीजी ही थे । और कोई नहीं । स्वतन्त्रता की प्राप्ति के लिए गान्धीजी को कितनी कठिनाइयां सहनी पड़ीं थीं व इसका अनुमान हम नहीं कर सकते । उनके अनन्त परिश्रम के फल-स्वरूप भारत यह

- -

१: समिधा (?) - ८३

२: माखनलाल चतुर्वेदी : व्यक्ति और काव्य - डा० रामविलावन तिवारी-
- पृ० २१३

यह सौभाग्य प्राप्त कर चुका । भारत को विदेशी शासन की अधीनता से मुक्त करके उसे एक स्वाधीन राष्ट्र बनाना, यही उनका परम लक्ष्य था ।

यह कविता उस समय लिखी गयी जब भारत भर में आजादी की ध्वनि गूंज रही थी । देश के सारे लोग स्वतन्त्रता - प्राप्ति की प्रतीक्षा में थे । प्रत्येक व्यक्ति के मन में यही कामना थी कि अपना देश स्वतन्त्र होने वाला है । इसलिए सारे लोग बड़े प्रयत्नशील रहे । तब कवि भी गान्धीजी से प्रयत्नशील रहने का आह्वान करते हुए कहते हैं - ' युगधनी, निश्चल खड़ा रह । ' [१]

इस कविता की प्रथम पंक्ति में यह दिखाया गया है कि युग का गान्धीजी पर गहरा प्रभाव पड़ा था -

' जब तुम्हारा मान, प्राणों
तक चढ़ा, युग - प्राण लेकर ,
यज्ञ - वेदी जल उठी जब
अग्नि के अभिमान लेकर ।
आज आगा, कोटि कण्ठों का
बटोही मान लेकर । ' [२]

युग - चेतना से प्रभावित होने के कारण गान्धीजी की प्रतिष्ठा युग में उच्च स्तर की थी । गान्धीजी जैसे कर्मठ व्यक्ति को पाकर कर्म- वेदी क्रियाशील बन उठी जिस प्रकार यज्ञ- वेदी अग्नि - ज्वाला से उज्ज्वल हो उठती है । गान्धीजी युग की परिस्थितियों को अच्छी तरह जानते थे और उन्हीं के अनुसार जीते थे, कहते थे और करते भी थे । यह तो साधारण सी बात है कि जिस युग में जो रहता है वह उस युग की परिस्थितियों से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता । इसलिए गांधीजी भी अपने युग की परिस्थितियों से खूब प्रभावित थे ।

यहां कवि भारत की आजादी के बारे में कहते हैं । गांधीजी एक पथिक के रूप में आये और राष्ट्र को मुक्ति-पथ दिखाते थे । विदेशी शासकों को भारत

- -

१: युगधनी - समर्पण - पृ० ५३
२: वही० पृ० ५३

छोड़ देना पड़ा । गांधीजी ने स्वयं मुक्ति का मार्ग ढूंढ लिया । गांधीजी के मुक्ति-मार्ग ढूंढ ने की बात कहकर कवि ने एक नये जागरण की सूचना दी है -

' ढूंढने आ गयी बन्धन- मुक्ति - पथ पहचान लेकर । '[१]

गान्धीजी का मन भारत की पराधीनता पर बहुत आकुल हुआ करता था । यहां हमें स्वतंत्रता- आन्दोलन की झांकी मिलती है । स्वतन्त्रता का आन्दोलन होने वाला है, सारा देश बेचैन हो उठा है । लेकिन जब विजय का शंखनाद फूटा तब सारे लोग जय- गीत गाने लगे । साथ ही साथ गान्धीजी की महिमा गाने लगे । गांधीजी का जयगान एवं जयकार गूंज उठा । हमारे राष्ट्रीय कवियों ने उन पर गीतों की रचना की । गांधीजी का गीत- गान कवियों के लिए अभिमान की बात थी, इतना ही नहीं गांधीजी का रूप कवियों की आंखों के लिए एक प्रकार से वरदान ही था । माखनलाल चतुर्वेदी जी ने गांधीजी पर अनेक कविताएं लिखी हैं । उनके रूप- गुण - व्यक्तित्व आदि ने कवि को प्रेरणा दी है । अत: कवि ने यों कहा है-

' गान तेरा है कि बस अभिमान मेरा ,
रूप तेरा है कि है युग- दान मेरा , '[२]

गांधीजी अनेक कष्टों और प्रहारों को सहकर भी अपने कर्तव्य-पथ से विचलित होना नहीं चाहते थे । जीवान्त तक उन्होंने अनेक प्रहार खाये और मरने के वक्त भी गोली के प्रहार से ही मर गये । अन्त में कवि ने गांधीजी से यह प्रार्थना की है कि वे अचंचल होकर दृढ़ता के साथ अपना कर्तव्य निभाते रहें ।

'युग - पुरुष ' में गांधीजी को ही युग- पुरुष के रूप में चित्रित किया गया है । गांधीजी स्वयं युग- पुरुष हैं । वे युग के युग- पुरुष एवं जनता के जन- पुरुष थे । उनमें और युग में कोई भेद नहीं । दोनों एक हैं । इस भावना को चतुर्वेदी जी ने ' समर्पण ' काव्य संग्रह की ' युग और तुम ' शीर्षक कविता में व्यक्त किया है । इस कविता में गांधीजी को युग- पुरुष के रूप में चित्रित करके उनको राष्ट्र का रूप प्रदान किया है । -

- -

१: युग धनी - समर्पण - पृ० ५३ २: वही० पृ० ५३

' तेरे कन्धों लहरायें, प्रतिमा की खेती,

-- -- --

तेरे हाथों बुने सफलता ताना - बाना । '[१]

इस कविता की प्रथम पंक्तियों में गान्धीजी को एक तपस्वी के रूप में चित्रित किया गया है और उनके द्वारा संसार के अन्धकार को मिटाकर उसमें प्रकाश फैलाने की प्रार्थना की गयी है । -

' उठ - उठ तू ओ तपी, तमोमय जग उज्ज्वल कर । '[२]

गान्धीजी द्वारा राष्ट्र की उन्नति की कामना कवि करते हैं । उनके प्रयत्न से भव-सा पार करने की इच्छा है । कवि के मन में । गांधीजी भव- सागर में नाव चलाने वाले नाविक के रूप में वर्णित हैं । उन्हें प्रतिभा की मूर्ति कहा गया है । उनसे सदा सफल का सूत बुनने का आह्वान है ।

गांधीजी को युग की हुंकार और जीवन को नश्वरता प्रदान करने वाला कहा गया है । वे युग के लिए मंगलात्मक हैं । कवि यही कहना चाहते हैं संसा की उन्नति गांधीजी पर ही निर्भर है । गांधीजी के सत्कर्मों की प्रशंसा कवि करते हैं । जिस प्रकार हिमालय- पहाड़ से बहने वाली गंगा- यमुना आदि नदियों से सूखा स्थल हरा भरा बन जाता है उसी प्रकार गांधीजी के सत्कर्मों से राष्ट्र की जनता भी अपने देश को हरा- भरा रखने की कोशिश करे । राष्ट्र की हर एक वस्तु में यहां गौरव भाव दिखाई पड़ती है । नर्मदा नदी जो भारत- भूमि को शोभित करने वाली है अब तो गां जी का या राष्ट्र का ' अमर छन्द ' बन गयी है ।

गांधीजी की जीवन- दृष्टि के अनुसार वे सृष्टि में बड़ा परिवर्तन लाये । नई जीवन- दृष्टि पाकर जगत में नया जागरण हुआ और विश्व को पहचान लिया । उनकी कीर्ति के हिमालय पहाड़ी से लेकर कन्याकुमारी तक फैल गयी है । राष्ट्र तो उनकी प्रशंसा करते हुए उनकी वंदना करता है । उनको युग की अमर सांस,

- -

१: युग - पुरूष - समर्पण - पृ० ४६

२: वही० पृ० ४६

कृति या सृष्टि की नवीन आशा, यशोविभूषित प्रेरणा की अभिलाषा आदि कहकर उनके असीम व्यक्तित्व पर प्रकाश डाला गया है। विश्व के अणु - अणु के विकास में उनका हाथ हमेशा रहा है।

वर्तमान युग को प्राण देने, जीवन को नया दृष्टिकोण प्रदान करने विश्व को सदा सुख- संपत्तिपूर्ण रखने, जनता को क्रियाशील बनाने में गांधीजी ने कुशलता से काम लिया है। वर्तमान युग की उन्नति का कारण ही उनकी व्यावहारिक कुशलता नहीं है तो क्या ? युग तो गांधीजी में और गांधीजी युग में समाहित दिखाई पड़ते हैं। अत: देश की सीमा भी गान्धीजी तक व्याप्त है। कवि आशा करते हैं कि संसार की गति भी गान्धी जी के आशानुसार ही चलती रहे।

`युग और तुम` कविता सन् १९३५ में गान्धी जयन्ती के लिए लिखी गयी और इसे बेनीपुरी जी को भेज दिया गया। इसमें कवि ने गान्धीजी का युगपुरुष के रूप में चित्रण किया है ; साथ ही उन्हें हरिजन- आन्दोलन का सूत्रधार तथा स्वातन्त्र्य - संग्राम का कर्णधार भी कहा गया है। उनके राष्ट्रीय सांस्कृतिक व्यक्तित्व का विश्लेषण भी इस कविता में हुआ है। यहां हमें इस बात का पता मिलता है कि युग और गान्धीजी में कैसा संबंध जोड़ा गया है।

युग और गांधीजी में घनिष्ट संबंध रहता है। दोनों को अलग दृष्टि से देखना असंभव है। अत: कवि कहते हैं कि युग में गान्धीजी और गांधीजी में युग परस्पर प्रतिबिंबित होते हैं। ` युग तुम में, तुम युग में कैसे झांक रहे हो बोलो ?'[1] ऐसा प्रतीत होता है कि युग ही गान्धीजी है और गान्धीजी ही युग हैं। वे नरबलि तथा पशुबलि के विरोधी थे। अत: उन्होंने कहा है कि बलि करने से पहले अपने हृदय को परखना चाहिए।[2]

गान्धीजी के कहने के अनुसार युग भी चलता रहा। वे अपने सिद्धान्तों के व्यवहार द्वारा देश में शान्ति और समाधान स्थापित करना चाहते थे।

- -

१: युग और तुम - समर्पण - पृ० २१

२: तुम कहते हो बलि से पहले अपना हृदय टटोले ,- युग और तुम --पृ० २१

आखिर उनके कठिन यत्न से शान्ति स्थापित हुई। गान्धीजी ने इसके लिए जो विप्लव मचाया, वह रक्तहीन एवं समाधानपूर्ण था। अत: उन्हें अमर- क्रांति - अवतार बताया गया है -

> ' अमर शान्ति ने अमर
> क्रान्ति अवतार तुझे पहचाना। '[1]

ऐसे समाधानपूर्ण एवं रक्तहीन आन्दोलन संसार में और कोई नहीं कर सके। गान्धीजी के द्वारा हुए आन्दोलनों में हिंसा नाम मात्र के लिए भी न थी।

गान्धीजी के जीवन में खादी को बड़ा महत्त्वपूर्ण स्थान था। उसकी ओर भी यहां संकेत है। -

> ' तू कपास के तार-तार में अपनापन जब बोता, '[2]

पहले गांधीजी के जीवन तक ही खादी सीमित थी, मगर अब तो राष्ट्र भर की जनता के जीवन में भी खादी का प्रयोग हो चुका है। इससे उन्होंने दलित वर्ग के लोगों के दु:खों को दूर किया और उनकी झोंपड़ियों में हंसी की किरणें बिछा दीं। गान्धीजी के अनुसार मुक्ति का मार्ग अर्थात् मनुष्य को भगवान तक पहुंचने का सूत्र कपास के सूत्र के समान गुणमय एवं बलवान है।

यहां दु:खित जनता के प्रति गांधीजी की जो सहानुभूति है उसका वर्णन है। गांधीजी हमेशा दु:खी जनता का साथ देते थे। उनकी उन्नति करना ही गांधीजी का उद्देश्य था। गांधीजी ऐसे लोगों के लिए जीवन- सहारा थे।[3] गांधीजी में राष्ट्र की उन्नति का खयाल सदा रहता था।

गान्धीजी के नाम पर अगणित गीत रचे गये हैं। विश्व-भर के कवियों ने गान्धीजी को अपनी रचना का विषय बनाया है। अत: उनसे संबंधित जो

- -

१: युग और तुम - समर्पण - पृ० २१   २: वही० पृ० २२

३: ' ओ गरीब - निवाज, दलित भी उठे सहारा पाना,
उनकी आंखों से गंगा का सोता बहकर आया।। ' - वही० पृ० २१

गीत होते हैं उनकी गणना असंभव है। इन कवियों ने गांधीजी के अमरत्व के गीत गाये हैं यद्यपि वे मर चुके। विश्व के सारे लोग चाहे वे गरीब हों या धनी, गांधीजी से प्यार करते थे। गांधीजी के मन में गरीबों के प्रति विशेष प्रेम और सहानुभूति थी। इसलिए उनके मन में भी गान्धीजी के प्रति भी वैसी ही भावना थी।

कवि ने गांधीजी को हरिजन- आन्दोलन का सूत्रधार और स्वातंत्र्य-संग्राम का कर्ण-धार कहा है। गान्धीजी हरिजन- सेवा और हरिजनोद्धार पर जोर देते थे। भारतवासियों के लिए अपने देश का गौरव ही महत्वपूर्ण है। गांधीजी के जन्म से भारत की हालत ही बदल गयी। वे अपनी इच्छा के अनुसार देश की उन्नति करने के लिए सब कुछ करते थे। इसमें गांधीजी के देशोद्धार संबंधी कार्यों को प्रस्तुत किया गया है। दलित वर्ग के लोगों के प्रति उनके मन में जितना प्रेम और सहानुभूति थी यह यहां व्यक्त होता है -

' जो तुमको पा सका -
गरीबों के जी में ही पाया। '[१]

' चले समर्पण आगे आगे ' में कवि ने अपनी बलिदानवादी उच्च-भावना को प्रकट किया है। यह उनकी बलिदानवादी उत्कृष्ट कविता है। इसमें बलिदान का स्वर ही गूंज उठा है। सब कहीं बलिदान ही बलिदान चाहते थे। देश में वसन्त ऋतु का आगमन होने वाला है; सारी जगह वसन्त के आगमन की सूचना दिखाई पड़ती है। तब कवि कहते हैं कि वसन्त को न आने देना क्योंकि अब देश बड़ा अभिमानी है, पल - पल में वीर अपने को समर्पित कर रहे हैं -

' यों मरमर मत करो आम्र - वन
गरबीले युग बीत न जाएं,
रहने दो वसन्त को बन्दी
कोकिल के स्वर रीत न जाएं। '[२]

भारत की जनता भी गांधीजी से प्रभावित होने के कारण अपना सब कुछ त्यागने के लिए तैयार होती है। भारत - भर में आत्मोत्सर्ग की अग्नि फैल गयी है। शत्रुओं का

- -

१: युग और तुम - समर्पण - पृ० २२ २: चले समर्पण आगे आगे - समर्पण- पृ० ७

अत्याचार देश- भर में होता रहता है । कवि कहते हैं कि भारत शोश- दान का देश रहे और इसका जल गंगा जल से भी माधुर्य से युक्त न रहे । अन्त में कवि कहते हैं कि जिस प्रकार गोपियां श्रीकृष्ण से आकृष्ट होकर उसके पीछे दौड़ - कूद कर अपने मन को अर्पित करती हैं उसी प्रकार गांधीजी की प्रेरणा से देश की जनता भी समर्पण वेदी की ओर कूद पड़े -

> ' मोहन के स्वर, मोहन के व्रत, मोहन का वृन्दावन जागे,
> सिद्धि दासियां पीछे - पीछे चले समर्पण आगे - आगे । '[१]

'हृदय' कविता की रचना उस समय हुई जब गांधीजी का दक्षिण अफ्रीका में संग्राम चल रहा था । यह कविता सन् १९१४ में लिखी गयी । इसमें चतुर्वेदी जी ने गान्धीजी के प्रति अपनी श्रद्धा- भावना प्रकट की है । कवि ने गांधीजी को राष्ट्र- वीर के रूप में चित्रित करके अपना आदर्श पुरुष मान लिया है । साथ ही महान मनुष्यता और संसार के हृदय का प्रतीक भी मान लिया है ।

प्रस्तुत कविता ' हृदय ' में कवि ने महात्मा गांधीजी को ही चित्रित किया है । ' हृदय ' से यहां मतलब यह जान पड़ता है कि वह व्यक्ति जिसका व हृदय होता है । गांधीजी का अपने तथा दूसरों के लिए एक विशाल हृदय था । उनके हृदय की विशालता एवं व्यापकता हमें इन पंक्तियों से ज्ञात होती है -

> ' कौन है, यह है महान मनुष्यता
> और, है संसार का सच्चा हृदय । '[२]

गांधीजी के हृदय- भवन में संसार के समस्त लोगों को स्थान एवं अधिकार दिया गया है । उनका हृदय इतना विशाल एवं व्यापक है कि सारा संसार उसमें समा गया है । गान्धीजी के एकमहान पुरुष होने के कारण उनका विशाल - हृदय होना अनिवार्य है । इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है ।

यह तो माना जाता है कि जिसका हृदय रहता है या जो व्यक्ति सहृदय होता है, उसकी उन्नति हमेशा होती है और इतना ही नहीं बल्कि वह दूसरों की

- -

१: चले समर्पण आगे आगे - समर्पण - पृ० ७३ २: हृदय- समर्पण - पृ० ५०

उन्नति करने में भी सफल निकलता है । उसी प्रकार गांधीजी भी एक सहृदय व्यक्ति थे और इसलिए उन्होंने भी संसार के सारे लोगों की उन्नति करने में सफलता प्राप्त की।

कवि ने गान्धीजी के बारे में जो बातें कही हैं वे सब उनके हृदय के लिए भी लागू होती हैं । ' जैसा व्यक्ति है वैसा ही हृदय ' । जो व्यक्ति महान होता है उसका हृदय भी महत्वपूर्ण होता है । गांधीजी संसार - भर में समाधान स्थापित करने के लिए सत्याग्रह आन्दोलन चला रहे थे । तब गांधीजी ने किस प्रकार अपने काम में स्थिर रह कर सफलता प्राप्त की, इसका वर्णन हमें यहां मिलता है।

गांधीजी के नेतृत्व में आन्दोलन तो चल रहा है । गांधीजी ही इसके नेता हैं । नेता में धीरता, गंभीरता, वीरता, शांतता, दान-शीलता, शक्ति या शारीरिक एवं आत्मिक बल आदि गुणों की झलक पायी जाती है -

' फूल से कोमल, अमोला रत्न से ,
-- -- --
श्वास क्या, संसार की यह स्फूर्ति है ।'[१]

गांधीजी एक वीर पुरुष के समान बड़े गांभीर्य के साथ धीरतापूर्ण मैदान में खड़े हैं -

' धीर सा, गंभीर सा जल है खड़ा ,
वीर होकर यों खड़ा मैदान में '[२]

गांधीजी देश की रक्षा के लिए अपनी जान तक देने के लिए तैयार थे । उन्हें अपने शरीर या सुख या आशा की कोई परवाह नहीं थी । अत: वे अपने शरीर, जीवन एवं जान तक छोड़ने में नहीं झिझकते थे । कवि ने उनको सर्वत्याग की साकार मूर्ति के रूप में देखा है । गांधीजी की त्याग - भावना भी यहां व्यक्त होती है ।

' देखता हूं मैं जिसे तन - दान में
जन- दान में, सानंद जीवन- दान में ।'[३]

१: हृदय - समर्पण - पृ० ५१   २: वही० पृ० ५०   ३: वही० पृ० ५०

उनके मन में जनता के प्रति जो गहरा प्रेम है, वह यहां स्पष्ट होता है। वे आदर-भावना के साथ ही लोगों को शांत करते थे। उन्होंने जनता के बीच में अहं का जो भाव रहता था उसका भी नाश कर दिया। यहां उनको व्यवहार- कुशलता की झलक मिलती है। -

> ' हट रहा है वंश आदर - प्यार से ,
> बढ़ रहा जो आप अपनों के लिए ,
> डट रहा है जो प्रहारों के लिए ,
> विश्व की भरपूर मारों के लिए। '[१]

वे जनता से शत्रुओं का भय छोड़ देने को कहते थे -

> ' देवतावों को यहां पर बलि करो
> दानवों का छोड़ दो सब दुःख भय। '[२]

उनके मन में नीच तथा दुःखित जनता के प्रति सहानुभूति थी। वे दीनों के रक्षक थे। उनको संसार का हृदय बताया गया है। जिस प्रकार हृदय के बिना एक व्यक्ति या प्राणी जीवित नहीं रह सकता उसी प्रकार गांधीजी के बिना संसार का अस्तित्व भी संभव न था।

परतन्त्र भारत की जनता हमेशा दासता का विष पीकर बेहोश पड़ी है। यहां कई तरह के लोग रहते हैं। उनमें कई लोग सशक्त हैं, कई लोग पुस्तक-कीट हैं। यहां धार्मिक लोगों की भी कमी नहीं है। पर ऐसे लोगों में सहृदयता का भाव बिलकुल नहीं रहता। फलत: उनका मानसिक बल नष्ट हो जाता है। तब वे ईश्वर की प्रार्थना करने लगते हैं। मगर ऐसे लोगों पर ईश्वर की कृपा नहीं होती। ऐसे अवसर पर कवि ने ईश्वर - प्रार्थना की अपेक्षा बलिदान को ही श्रेष्ठ तथा उचित मानते हुए कहा है -

- -

१: हृदय - समर्पण - पृ० ५०

२: वही० पृ० ५०

' हे हरे ! रक्षा करो ' - यह मत कहो
चाहते हो इस दशा पर जो विजय,
तो उठो, ढूंढ़ो, छुपा होगा यहीं,
राष्ट्र का बलि, देश का ऊंचा हृदय । '[१]

गान्धीजी के मन की विशालता के कारण उनके मन को महौषधि बताया गया है । उनकी वाणी तो अमृत - वाणी है । -

' मन महौषधि है, वचन पीयूष है
परम निर्भय है, बड़ा भारी सदय । '[२]

गान्धीजी के अवतार के पहले सृष्टि पर उनके अनेक आपत्तियां पड़ी थीं । संसार में दंड, अत्याचार, अन्याय, आदि कुकर्म होते रहे । देश में कई तरह की क्रांतियां होती थीं । ऐसी दारुण अवस्था में भारतमाता बहुत व्याकुल थी । उसे कभी शांति नहीं मिलती थी । लेकिन भारत में एक ऐसा सुदिन आया जब कि भारत में व्याप्त अंधकार का नाश हुआ और प्रकाश की किरणें फैल गयीं । वह दिन ही था वह दिन जब कि गांधीजी का जन्म हुआ । संसार के समस्त लोग सन्तुष्ट हुए और सब कहीं जयकार की ध्वनि फूट पड़ी । -

' जब उठीं संसारभर की तालियां,
गालियां पलटीं, हुई ध्वनि जयति-जय,
पर हुआ यह कब ? जहां दीखा कभी
विश्व का प्यारा कहीं कोई ' हृदय ' । '[३]

' जालियांवाला की वेदी ' - यह कविता सन् १९२० में लिखी गयी है । जब जालियांवालाकाण्ड की जांच हो रही थी तब इस कविता की रचना हुई । इसमें कवि ने भारतीय जनता की तत्कालीन एकता की भावना पर प्रकाश डाला है । इसमें हम हिन्दू और मुसलमान दोनों को एक साथ मिलकर काम करते हुए देखते ह हैं । उनकी राष्ट्रीय भावना का भी उल्लेख किया गया है । भारत के उस समय के राजनीति

- -

१: हृदय - समर्पण - पृ० ५१ २: वही० पृ० ५१
३: वही० पृ० ५२

वातावरण का परिचय भी मिलता है ।

इसमें कवि ने जालियांवाला बाग में गांधीजी के द्वारा प्रवर्तित सत्याग्रह का वर्णन किया है । मुख्यतः इस सत्याग्रह में हिंदू और मुसलमान दोनों ने मिलकर जो कार्य किये थे उनका भी विवेचन हुआ है । सत्याग्रह के सैनिक होने के कारण उनके हाथों में कोई हथियार नहीं था । समस्त कष्टों को सहते हुए, कारागार का जीवन सतंतोष बिताते हुए आत्म- विश्वास के साथ वे काम करते थे । -

' नहीं लिया हथियार हाथ में, नहीं किया कोई प्रतिकार,

-- -- --

राम बन्दियों में स्वीकृत था, सुदृढ़ - देश पर था विश्वास ।'[1]

इस कविता में जो एक विशेषबात का विवेचन हुआ है, वह है हिन्दू - मुस्लिम एकता । हिन्दुओं और मुसलमानों की एकता की भावनाका सुंदर चित्रण यहां हुआ है । -

' मंदिर में थाँव चमकता, मसजिद में मुरली की तान ,
मक्का हो चाहे वृन्दावन, होते आपस में कुर्बान । '[2]

कवि ने इसमें अपने प्राणों को अर्पित करने वाले रामचन्द्र, अब्दुल करीम आदि युवकों का स्मरण करते हुए उनके प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की है । कवि यहां अवतारवाद से प्रभावित जान पड़ते हैं । उन्होंने रामचन्द्र नामक युवक से गांधीजी का पुत्र बनकर अवतरित हो जाने को कहा है -

' रामचन्द्र तुम कर्मचन्द्र - सुत बनकर आ जाना सानन्द,
जिससे माता के संकट के बन्धन तोड़ सको स्वच्छन्द । '[3]

यह तो स्पष्ट होता है कि इस कविता की रचना का उद्देश्य हिन्दू और मुसलमानों की एकता को स्थापित करने का है । इस सत्याग्रह संग्राम में दोनों ने मिलकर आपस में मैत्री भावना स्थापित की है । इस दृष्टि से यह कविता महत्वपूर्ण है ।

१: जालियांवाला बाग की वेदी - समर्पण - पृ० ६१ २: वही० पृ० ६१
३: वही० पृ० ६२

'कुलवधू का चरखा' कविता में चतुर्वेदी की समर्पण- काव्य - संग्रह में संग्रहीत कविताओं में एक है। कवि के प्रमुख गान्धीवादी होने के कारण उनकी अधिकांश कविताएं गान्धीजी और गान्धीवाद पर रचित प्रतीत होती हैं। प्रस्तुत कविता 'कुलवधू का चरखा' पूर्ण रूप से गान्धीवादी विचारधारा से प्रभावित है। इसमें कवि ने गांधीवाद के कुछ तत्वों का विवेचन भी किया है। यह कविता गांधीजी से संबंधित है और इसमें गांधीजी का जीवन वर्णित है। उनके जीवन- तरीके की एक अच्छी झांकी हमें मिलती है।

'कुलवधू का चरखा' गांधीजी के जीवन को ही प्रस्तुत करता है। वह उनके जीवन का गीत गाता है। 'कुलवधू का चरखा 'गांधीजी के तपोपूत जीवन का गीत गाता सा प्रतीत होता है।'[१] यह भावना इस कविता की पहली पंक्ति में ही स्पष्ट हो जाती है। -

'चरखे, गा दे जी के गान।'[२]

गांधीवादी युग में चरखे का व्यावहारिक जीवन में बड़ा महत्वपूर्ण स्थान था। उस युग के समाज के प्रत्येक घर में चरखा रहता था। समाज की सारी महिलाओं का मुख्य काम चरखा चलाना था। जब गांधीजी का आगमन व्यावहारिक क्षेत्र में हुआ तब से चरखे का महत्व बढ़ने लगा। गांधीजी भी अपने जीवन में चरखा चलाते थे। चरखा उनके जीवन का एक मुख्य अंग रहा। गांधीजी के अनुसार चरखा देश एवं जनता की उन्नति का साधन था। उन्होंने चरखे का इतना खूब प्रचार किया कि वे खादी के वस्त्रों को अपनाने पर जोर देते थे। अतः खादी के प्रचार में चरखे का बड़ा हाथ रहा।

कवि ने चरखे को कुलवधू का चरखा कहा है। वह उस युग की 'कुल वधू का कुल - साधन था। साधारणतः उस युग के जीने की रीति- रिवाज यह

- -

१: माखनलाल चतुर्वेदी - व्यक्ति और काव्य : डा० रामविलास तिवारी - पृ० २१४

२: कुलवधू का चरखा - समर्पण - पृ० ६७

यह प्रतीत होती है कि प्रत्येक कुल की वधू घर पर चरखे पर सूत कातती थी जब कि प्रत्येक पुरुष बाहर जाकर काम करता था । अतः हम ऐसा अनुमान कर सकते हैं कि इसके आधार पर ही कवि ने इस कविता का शीर्षक `कुलवधू का चरखा` रखा है । कुलवधू का चरखा होने पर भी कभी कभी पुरुष भी यह काम किया करता था । इसका एक ज्वलन्त उदाहरण है गान्धीजी । चरखे पर सूत कातने में गांधीजी को बड़ा आनन्द आता था और एक तरह से वह उनके जीवन- निर्वाह का मार्ग रहा था । इतना ही नहीं, इस कार्य में उनकी देश- सेवा का भाव भी निहित था ।

इस कविता में कवि ने चरखे के द्वारा उनके जीवन का गीत गवाया है । इसमें उनके जीवन पर प्रकाश डाला गया है । कवि ने यह भी बताने का प्रयास किया है कि चरखे का जीवन से घनिष्ट संबंध रहा है । चरखा और जीवन की सम-भावना यहां व्यक्त है -

` इक डोरा - सा उठता जी पर,
इक डोरा उठता पूनी पर,
दोनों चलते चल दें, चल दें,
टूट न जाये तार बीच में,[1]

यहां गान्धीजी का जीवन और चरखा दोनों दृढ़ता चाहते हैं । दोनों के अस्तित्व के लिए दृढ़ता आवश्यक है । गान्धीजी का अपने सिद्धान्तों और आचारण विचारों पर दृढ़विश्वास था, चरखे को भी उसने स्थायी बनाये रखा । कवि ने चरखे और जीवन के अबाध- गति से चलने की कामना की है ।

आगे की पंक्तियों में कवि ने सादगी का परिचय दिया है जो गांधीवादी विचारधारा की एक विशेषता मानी जाती है । यहां हम उनके जीवन और रुई की बत्ती में सादगी देखते हैं । दोनों का रंग सफेद है । सफेद रंग सादगी का लक्षण बताया गया है । गांधीजी का जीवन बड़ी ही सादगी में बीता । जिंदगी में सादगी का होना ऐश्वर्य - विभूति का द्योतक है । वह लक्ष्य की प्राप्ति में सहायक

- -

१: कुलवधू का चरखा - समर्पण - पृ० ६७

होती है । गांधीजी सादगी - युक्त जीवन बिताने के द्वारा ही लक्ष्य- प्राप्ति तक पहुंच गये थे । उनमें जन्म से ही विलासप्रियता बिलकुल न थी और न जीवन में आडंबर प्रियता । ऐसी सादगी की भावना नीचे की पंक्तियों में व्यक्त हुई है -

' उजली पूनी, उजले जीवन,
है रंगीन यहीं उनका मन । '[१]

गान्धीजी के मत में चरखा भावी जीवन का विधायक है । यही बात कवि ने यहां कही है । चरखे के तार तार से भावी जीवन का मंगल-गान सुनायी पड़ता है । इसलिए कवि ने चरखे के तार - तार को स्वर - धन बताया है । चरखे को नित्य - भाग्य - प्रदायक कहा है । कवि के अनुसार चरखा ' सिर-सुहाग- पल्वान ' है।

यहां चरखे के कर्तव्य पर प्रकाश डाला गया है । चरखे के तार ही जीवन के तारों की उलझन हैं । वे ही जीवन का रक्षक भी हैं । उलझनों को पैदा करने और उनको सुलझाने के के लिए चरखा ही एकमात्र साधन है । चरखे की एक विशेषता यह बतायी गयी है कि चरखा चित्त और मन की रक्षा करता है ।

अब हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि ' कुलवधू का चरखा ' नामक कविता गांधीवाद से प्रभावित है । कवि ने गांधीजी के, तापस जीवन - सा जीवन का गीत गाने देने के लिए चरखे को प्राण दिया है और उनके ऐसे पवित्र एवं निर्मल जीवन का गीत हमें सुनाया है । इस कविता में सादगी, स्वाश्रयी रहने की दृढ़ता व की आशा सम- भावना आदि का - जो गांधीवाद के तत्व माने जाते हैं - सम्यक् विवेचन हुआ है । बहुत ही सरल एवं सुंदर, सीधी एवं सादी भाषा का प्रयोग करके कवि ने अपनी बातों को प्रकट किया है । अंत में इस कविता के बारे में यों कह सकते हैं कि यह कविता प्रगतिवादी शैली में लिखी गयीहै और इसमें गांधीवाद प्रबल हो उठा है ।

'युग चरण की कविताएं ' :

इस संग्रह की प्रथम गांधीवादी कविता ' मुक्त गगन है, मुक्त पवन है ', है । इसका स्थान चतुर्वेदी जी की स्वातन्त्र्योत्तर राष्ट्रीय कविताओं में है । १५ अगस्त १९४

१: कुलवधू का चरखा - चरखा - पृ० ४१
समर्पण

६- अर्जन और विसर्जन (खण्डकाव्य) , मैथिलीशरण गुप्त, साहित्य प्रेस, चिरगांव,
तृतीय संस्करण, २०१४
७- आत्माओं के घेरे (मुक्तक) , दुष्यन्त कुमार, राजपाल प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम, १९६३
८- आत्मोत्सर्ग, सियारामशरण गुप्त, साहित्य प्रेस , चिरगांव, चतुर्थ, २०१३
९- आर्द्रा , (मुक्तक), सियारामशरण गुप्त, साहित्य प्रेस, चिरगांव, प्रथम, २०१३
१०- उन्मुक्त (गीति नाट्य , सियारामशरण गुप्त, साहित्य प्रेस, चिरगांव, द्वितीय,२००६
११- उर्मिला, (महाकाव्य), बालकृष्ण शर्मा नवीन, अतरचंदकपूर एण्ड सन्स, दिल्ली,
प्रथम, १९५७
१२- एकलव्य (महाकाव्य), डा० रामकुमार वर्मा, भारती भण्डार, इलाहाबाद,प्रथम,२०१५
१३- कर्ण, (खण्डकाव्य),केदारनाथ मिश्र प्रभात , श्री अजन्ता प्रेस प्रा०लि० , पटना,-४
१४- काबा और कर्बला, मैथिलीशरण गुप्त, साहित्य प्रेस, चिरगांव, झांसी,चतुर्थ,२०१७
१५- किसान(खण्डकाव्य),मैथिलीशरण गुप्त,साहित्य प्रेस, चिरगांव, झांसी,प्रथम, २०१३
१६- कुरुक्षेत्र,(महाकाव्य),रामधारी सिंह दिनकर , उदयाचल, पटना, ग्यारहवां,१९६११९६०
१७- कैकेयी,(महाकाव्य),केदारनाथ अग्रवाल चन्द्र , राजकमल प्रकाशन,दिल्ली,प्रथम, १९६२
१८- कोयला और कवित्व (मुक्तक) रामधारी सिंह दिनकर ,उदयाचल, पटना,प्रथम, १९६४
१९- खादी के फूल,(मुक्तक),सुमित्रानन्दन पंत एवं हरिवंशराय बच्चन,राजपाल,दिल्ली,दूसरा
दूसरा, १९६१
२०- गांधी गौरव, (खण्ड काव्य), पं० गोकुलचन्द्र शर्मा,नवयुग साहित्य सदन,इंदौर,दूसरा,
१९५४
२१- गुरुकुल ,(खण्डकाव्य), मैथिलीशरण गुप्त,साहित्य प्रेस,चिरगांव,प्रथम,२०१४
२२- ग्राम्या,(मुक्तक), सुमित्रानन्दन पंत, लीडर प्रेस,प्रयाग,पांचवां, २०१३
२३- चेतना,(मुक्तक), सोहनलाल द्विवेदी,इण्डियन प्रेस,प्रयाग,प्रथम,१९५४
२४- जयभारत(महाकाव्य), ठाकुर गोपालशरण सिंह,इण्डियन प्रेस,प्रयाग,प्रथम,१९५२
२५- जननायक,(महाकाव्य),रघुवीरशरण मित्र , भारतीय साहित्य प्रकाशन,मेरठ,चतुर्थ, ६४
२६- जयभारत,(महाकाव्य),मैथिलीशरण गुप्त,साहित्य प्रेस,चिरगांव,द्वितीय,२०१४
२७- तारकवध,(महाकाव्य),गिरिजादत्त शुक्ल गिरीश ,स्मृति प्रकाशन,प्रयाग,प्रथम,१९७०
२८- दमयंती,(महाकाव्य),ताराचन्द्र हारीत , आत्माराम एण्ड सन्स,दिल्ली,प्रथम,१९५७
२९- द्वापर,(गीतिकाव्य),मैथिलीशरण गुप्त,साहित्य सदन, चिरगांव,प्रथम,१९६४
३०- धरती पर उतरो,(मुक्तक),पद्मसिंह शर्मा कमलेश ,विनोद पुस्तक मंदिर,आगरा,प्रथम,२०

३१- नकुल (खण्डकाव्य), सियारामशरण गुप्त, साहित्य प्रेस, चिरगांव, द्वितीय, २०१२

३२- नीम के पत्ते, (मुक्तक), रामधारी सिंह 'दिनकर', उदयाचल, पटना, द्वितीय, १९५६

३३- नूरजहां, गुरुभक्त सिंह 'भक्त', गुरुदास एण्ड ब्रदर्स, आजमगढ़, बारहवां

३४- नोआखाली में (मुक्तक), सियारामशरण गुप्त, साहित्य प्रेस, चिरगांव, तृतीय, २०१४

३५- पंचवटी, (खण्डकाव्य), मैथिलीशरण गुप्त, साहित्य प्रेस, चिरगांव, झांसी, तैंतालीसवां, २०१७

३६- पथिक, (खण्डकाव्य), रामनरेश त्रिपाठी, हिन्दी मंदिर, प्रयाग, तैंतालीसवां, १९५६

३७- पर आंखें नहीं भरीं, (मुक्तक), शिवमंगल सिंह 'सुमन', आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली, द्वितीय, १९६७

३८- पाथेय, (मुक्तक), सियारामशरण गुप्त, साहित्य प्रेस, चिरगांव, चतुर्थ, २०१५

३९- पारिजात, (मुक्तक), पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध', हिन्दी साहित्य कुटीर, बनारस, द्वितीय, २०१२

४०- पुरुषोत्तम राम, (खण्डकाव्य), सुमित्रानन्दन पंत, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम, १९६

४१- प्रिय प्रवास, (महाकाव्य), पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध', हिन्दी साहित्य कुटीर, वाराणसी, प्रथम, २०१७

४२- बहुत रात गये (मुक्तक), नरेन्द्र शर्मा, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम, १९६७

४३- बापू (शोकगीति), रामधारी सिंह 'दिनकर', उदयाचल, पटना, दूसरा, १९४८

४४- बापू (व्यक्तिकाव्य), सियारामशरण गुप्त, साहित्य प्रेस, चिरगांव, नवम, २०१३

४५- भैरवी (मुक्तक), सोहनलाल द्विवेदी, इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद, चतुर्थ, १९५१

४६- मरणज्वार, (मुक्तक), माखनलाल चतुर्वेदी, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी, प्रथम, १९६३

४७- माता, (मुक्तक), माखनलाल चतुर्वेदी, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, द्वितीय, २०१८

४८- मुकुल, (मुक्तक), सुभद्राकुमारी चौहान, हंस प्रकाशन, इलाहाबाद, सातवां

४९- मुक्तामणि (मुक्तक), कैलासनाथ बाजपेयी 'कुमुदेश', मधुर प्रकाशन, कानपुर, प्रथम १९६३

५०- मुक्तियज्ञ, (खण्डकाव्य), सुमित्रानन्दन पंत, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम, १९६५

५१- मृत्तितिलक, (मुक्तक), रामधारी सिंह 'दिनकर', उदयाचल प्रकाशन, प्रथम, १९६४

५२- मृत्युंजयी, (मुक्तक), सं० भवानीप्रसाद मिश्र और डा० प्रभाकर माचवे, ग्रन्थकार, दिल्ली, प्रथम, १९६६

५३- मृण्मयी, (मुक्तक), सियारामशरण गुप्त, साहित्य प्रेस, चिरगांव, द्वितीय, २००८

५४- युगचरण (मुक्तक), माखनलाल चतुर्वेदी, लीडर प्रेस, प्रयाग, प्रथम, २०१३

५५- युगपथ(मुक्तक) सुमित्रानन्दन पंत, लीडर प्रेस, प्रयाग,प्रथम,२००६

५६- युगवाणी, (मुक्तक), सुमित्रानन्दन पंत,राजकमल प्रकाशन, दिल्ली,चतुर्थ,१९५९

५७- युगांत,(मुक्तक), सुमित्रानन्दन पंत, भारती भण्डार, प्रयाग, द्वितीय,२०१५

५८- युगाधार, (मुक्तक), सोहनलाल द्विवेदी, इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद, प्रथम,२००१

५९- रंगों में मोह,(मुक्तक), भगवती चरण वर्मा, भारती भण्डार,इलाहाबाद,प्रथम,२०१९

६०- रक्तचंदन,(मुक्तक), नरेन्द्र शर्मा, लीडर प्रेस, इलाहाबाद,प्रथम,२००६

६१- रश्मिरथी, महाकाव्य), रामधारी सिंह `दिनकर`, सर्वोदय प्रेस, पटना,प्रथम,१९६०

६२- राजा प्रजा,(निबंध काव्य), मैथिलीशरण गुप्त, साहित्य प्रेस, चिरगांव,झांसी,
प्रथम, २०१३

६३- रामराज्य, (महाकाव्य), डा० बलदेव प्रसाद मिश्र, हिन्दी साहित्य भण्डार,
लखनऊ, प्रथम, २०१७

६४- रामराज्य,(महाकाव्य), डा० हरिशंकर शर्मा,शंकर सदन, आगरा,द्वितीय,१९६७

६५-रेणुका (मुक्तक), रामधारी सिंह `दिनकर`, उदयाचल, पटना,चतुर्थ, १९६०

६६- वंदना के बोल,(मुक्तक), हरिकृष्ण `प्रेमी`, आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली,१९५७

६७- वनवास,(खण्डकाव्य), राजाराम श्रीवास्तव,इण्डियन प्रेस,लि०,प्रयाग, द्वितीय,१९४६

६८- विक्रमादित्य, (महाकाव्य), गुरुभक्त सिंह,`भक्त`, विक्रम साहित्य मंडार, आजमगढ़,
प्रथम, १९५५

६९- विरामचिह्न,(मुक्तक),रामेश्वर शुक्ल, अंचल, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी,
प्रथम, १९५७ ५

७०- वैदेही वनवास,(महाकाव्य),अयोध्यासिंह उपाध्याय,हिंदी साहित्य कुटीर,बनारस,
पंचम,२०१५

७१- शक्ति(खण्डकाव्य), मैथिलीशरण गुप्त, साहित्य सदन, चिरगांव, झांसी, २०१२

७२- श्रद्धाकण,(गद्यकाव्य),वियोगीहरि,सत्साहित्य प्रकाशन,दूसरा, १९५७

७३- समर्पण,(मुक्तक),माखनलाल चतुर्वेदी,लीडर प्रेस, इलाहाबाद, प्रथम, २०१७३

७४- साकेत, मैथिलीशरण गुप्त, साहित्य सदन,चिरगांव,प्रथम,१९६२

७५- साकेत- संत,(महाकाव्य),डा० बलदेवप्रसाद मिश्र,विद्यामंदिर,नई दिल्ली,प्रथम,१९६७

७६- सामधेनी,(मुक्तक),रामधारी सिंह,`दिनकर`,उदयाचल , पटना,तृतीय,१९५५

७७- सिद्धराज,(खण्डकाव्य),मैथिलीशरण गुप्त,साहित्य प्रेस,चिरगांव,झांसी,२०२०

७८- सूत की माला,हरिवंश राय बच्चन,राजपाल एण्ड सन्ज,दिल्ली,तृतीय,१९५९

७९- स्वर्ण किरण,(मुक्तक),सुमित्रानन्दन पंत, लीडर प्रेस,इलाहाबाद,तृतीय,२०२०

८०- स्वतन्त्रता की बलिवेदी,(खण्डकाव्य),जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द,साहित्य प्रकाशन मंदिर, ग्वालियर,प्रथम, १९६२

८१- हंसमाला,(मुक्तक), नरेन्द्र शर्मा, लीडर प्रेस, प्रयाग,प्रथम,२००३

८२- हिन्दू,(मुक्तक), मैथिलीशरण गुप्त,साहित्य प्रेस, चिरगांव,चतुर्थ,२०१३

८३- हिमकिरीटिनी,(मुक्तक), माखनलाल चतुर्वेदी, लीडर प्रेस, प्रयाग,तृतीय,२०१३

८४- हिमालय ने पुकारा,(मुक्तक),गोपालसिंह नेपाली, भारतीय साहित्य प्रकाशन,दिल्ली, द्वितीय, १९६७

८५- हुंकार,(मुक्तक), रामधारी सिंह दिनकर, उदयाचल, पटना,प्रथम, १९५५

८६-

संस्कृत ग्रंथ

१- अग्नि पुराण, कृष्ण द्वैपायन:, आचार्य बलदेवोपाध्याय, चौखंभा, वाराणसी, सं० २०२३

२- अथर्व वेद, श्रीराम शर्मा आचार्य,संस्कृति संस्थान, बरेली,तृतीय,१९६५,चतुर्थ १९६७

३- १०८ उपनिषदें, श्रीराम शर्मा आचार्य, संस्कृति संस्थान, बरेली

४- उपासकाध्ययन, सोमदेव सूरि,पं० कैलाशचन्द्र शास्त्री, भारतीय ज्ञानपीठ,काशी,प्रथम,१९६४

५- ऋग्वेद,पं० श्रीरामशर्मा आचार्य,संस्कृति संस्थान,बरेली,चतुर्थ,१९६७

६- ध्वन्यालोक:,(द्वितीय खण्ड),आनन्दवर्धन,डा० रामसागर त्रिपाठी,मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली,प्रथम,१९६३ ई०

७- पद्मपुराणम्, कृष्ण द्वैपायन व्यास देव, फस्ट ५,क्लैव रो, कलकत्ता,प्रथम,१९५८

८- बीस स्मृतियां,पं० श्रीरामचन्द्र आचार्य,संस्कृति संस्थान,बरेली,प्रथम,१९६६

९-मनुस्मृति,हरगोविन्द शास्त्री,चौखंभा संस्कृत सिरीज,वाराणसी, द्वितीय,१९६४

१०- यजुर्वेद:, श्रीरामशर्मा आचार्य,संस्कृति संस्थान,बरेली, चतुर्थ, १९६७

११- श्री मद्भगवद्गीता, गीता प्रेस, गोरखपुर, छप्पनवां, १९७०

१२- श्रीमद् भागवतम्, गीता प्रेस , गोरखपुर,प्र थम, २०१४

१३- श्री मद् महाभारतम्, गीता प्रेस, गोरखपुर,प्रथम,२०१४

१४- श्री मद् वाल्मीकि रामायणम्, रामतेज शास्त्री, पंडित पुस्तकालय, काशी,प्रथम १९५९

१५- साहित्य दर्पण, श्री विश्वनाथ कविराज, डा० सत्यव्रत सिंह, चौखंभा विद्याभवन, वाराणसी., द्वितीय २०२०.वि०

कोश ग्रंथ

१ - अमर कोश , टी०सी० परमेश्वरन् मूसत्, एस०पी०सी०एस०कोट्टयम, प्रथम, १४

२- विश्व विज्ञान कोश, वही०, प्रथम, १९७०

३ - शब्द कल्प द्रुम कोश (प्रथम भाग,), राजा राधाकान्त देव, बहादुर, चौखंभा, वाराणसी, तृतीय, २०२४

४ - संक्षिप्त हिंदी शब्द सागर, रामचन्द्र वर्मा, ना० प्र० सभा०, काशी, पंचम

५ - हिन्दी साहित्य कोश, भाग - १, ज्ञानमण्डल, वाराणसी, द्वितीय, २०२०

पत्र - पत्रिकाएं

१ - कल्याण - १०७० (जून, जुलाई, नवंबर, सितंबर)

२- धर्मयुग - १९६९ , मई

३- रसवंती - १९७० (दिसंबर)

समन्वय - १९५८ - अगस्त ।

ENGLISH

(1) A Survey of Indian History
K.M. Panicker
Asia Publishing House, Bombay.
Second Edition: 1947.

(2) Caste in India
J.H. Hutton
Oxford University Press, London.
Fourth Edition: 1963.

(3) Contemporary Indian Philosophy
P. Nagaraja Rao
Bharatiya Vidya Bhavan, Bombay.
First Edition: 1970.

(4) Gandhi - A Study
Hiren Mukerjee
People's Publishing House.
Second Edition: 1960.

(5) Gandhi - His relevance for our times
G. Ramachandran & T.K. Mahadevan
Gandhi Peace Foundation, New Delhi.
Second Edition: 1967.

(6) Gandhiji - His life and thought
J.B. Kripalani
Publications Division, New Delhi-1.
First Edition: 1970.

(7) Gandhiji's view of life
Chandrashanker Sukla
Bharatiya Vidya Bhavan, Bombay-7.
Fifth Edition: 1968.

(8) Gandhism for Millions
Y.G. Krishnamurthy
Pustak Bhandar, Patna.
First Edition: 1949.

(9) History of the Freedom Movement in India
Dr. R.C. Majumdar
Firma K.L. Mukhopadhyay.
Vol. I - First Edition: 1962
Vol.II - First Edition: 1963

(10) India through the Ages
K.C. Vyas, D.R. Sardesai and S.R. Nayak
Allied Publishers Private Ltd., Bombay.
First Edition: 1965.

(11) Mahatma Gandhi - 100 Years
Dr. S. Radhakrishnan
Gandhi Peace Foundation, New Delhi.
First Edition: 1968.

(12) Profiles of Gandhi
Norman Cousins
Indian Book Company, Delhi.
First Edition: 1969.

(13) Social Background of
Indian Nationalism
A.R. Desai
Popular Prakashan, Bombay.
First Edition: 1948

(14) The complete works of the
Swami Vivekananda (Part I)
Swami Madhavananda
Advaita Ashrama, Almora.
Fourth Edition: 1923.

(15) The Mahatma - A Marxist
Symposium
M.B. Rao
People's Publishing House, New Delhi.
First Edition: 1969.

(16) The Making of Mahatma
Chandran D.S. Devanesen
Orient Longmans Ltd., Madras.
First Edition: 1969.

(17) The Political Philosophy of
Mahatma Gandhi
Gopinath Dhavan
Navjivan Publishing House, Ahmedabad-14.
First Edition: 1946.

DICTIONARIES

(1) Encyclopaedia of Religion
and Ethics - Vol.I.
Ed: James Hastings
Edinburg T & T Clark, New York.
First Edition: 1967.

(2) Malayalam Lexicon (Vol.I)
Suranad Kunjan Pillai
University of Kerala.
First Edition: 1965.

(3) Vedic Index of Names and Subjects
Vol.II
Arthur Anthony Macdonell and
Arthur Berriedale Keith
Hindi Translation by Ramkumar Rey
Chowkhamba Vidya Bhavan
First Edition: 1962.

भारत का स्वातन्त्र्य दिवस है, जो भारत के इतिहास में अविस्मरणीय एवं महत्त्वपूर्ण है। अब तक की राष्ट्रीय कविताओं में क्रांति एवं बलिदान का स्वर गूंज उठता था। मगर अब तो उस स्थान पर जय- जयकार और विजय- घोषणा है।

प्रस्तुत कविता १५ अगस्त के दिन पर लिखी गयी है। इसमें भारत की स्वतंत्रता- प्राप्ति के पश्चात् उसकी विजय- घोषणा की गयी है। कवि का स्वर जो पहले बलिदान और क्रांति का था अब विजय की प्रशंसा में बदल चुका है। इस कविता की रचना के मूल में कवि के इस उद्देश्य का उल्लेख करते हुए लिखा गया है - 'एशिया के पराधीन देश मुक्त हों, भारत स्वावलंबन के मार्ग पर प्रशस्त हो तथा भारत के पूर्व और पश्चिम दोनों से समान स्वतंत्र संबंध हों।'[१]

इसमें कवि ने आरंभ स्वाधीनता मिलने के बाद अपने मनोल्लास और आह्लाद का आनंद सागर बहाया है। और भारत के लोग इस महासागर में सर्वतोभद्र डुबकियां ले चुके हैं। भारत १५ अगस्त के बाद पूर्णत: स्वतंत्र हुआ है। कवि के मत में भारत ही नहीं, अपितु समस्त संसार स्वतंत्र है और प्रकृति में भी इसका आभास दिखाई पड़ता है। अत: कवि गाने लगे -' मुक्त गगन है, मुक्त पवन है, मुक्त सांस गर्वीली। लांघ सात लंबी सदियों की टूटी शृंखला ढीली।'[२]

कवि को आकाश और वायु में नवीनता और उन्मेष दिखाई पड़ता है। भारत की जनता स्वतन्त्रता - सौरभ युक्त वायु से श्वासोच्छ्वास करती है।

स्वातन्त्र्य प्राप्ति के पश्चात् कवि विदेशी गुलामी का भारत से निर्मूलन करना चाहते थे। स्वाधीन भारत के सागर में विदेशी जल- यानों का एक क्षण के लिए भी ठहरना कवि को अनुचित लगता है। अत: वे एकदम पूछते हैं -

' क्या लहरों में खेल रहे वे हैं जलयान तुम्हारे ?
नहीं ? अरे तो हटे न अब तक लहरों के हत्यारे ?'[३]

'यहां कवि ने ' लहरों के हत्यारे ' शब्द से अंग्रेजों की ओर संकेत किया है जो राष्ट्र की प्रगति में बाधा उपस्थित करते रहे।

१: युगचरण - माखनलाल चतुर्वेदी - पृ० ५० २:' मुक्त गगन है मुक्त पवन है - वही० पृ० ४७
३: वही० पृ० ४७

आगे की पंक्तियों में कवि ने भारत की महिमा गायी है। भारत संसार के अन्य राष्ट्रों का गुरु है, मुकुट - मणि है एवं भाग्य - विधाता है। यही भारत के लिए गरिमा की बात हुई -

' उठ पूरब के प्रहरी, पश्चिम बांध रहा घर तेरा ?
साबित कर, तेरे घर पहले होता विश्व सवेरा ?'[१]

भारत जन का पुण्य बन गया। वह उसकी विशालता एवं महानता पर सोचकर, उसको जननाद सुनाता है और उस पर पुष्प-वृष्टि होती है। भारत का तिरंगा भण्डा देश - देश में फहरता रहे, यही कवि की इच्छा है। भारत के स्वतन्त्र होने पर भी उसके बहुत से दुश्मन होंगे। कवि उन पर आक्रमण करने का आह्वान करते हैं क्योंकि भारत में रक्षा और शान्ति की प्रतिष्ठा होनी चाहिए। भारत की जनता के दु:खों एवं कष्टों के परित्राण के लिए उसकी स्वतन्त्र सत्ता की आवश्यकता थी। अत: जब भारत ने आज़ादी प्राप्त की, तब भारत से जनता के कल्याणार्थ काम करने की प्रार्थना

भारत की स्वतंत्रता के संरक्षण के लिए कवि ने बलिदान का मार्ग खोल दिया है और यह मार्ग सदा, सर्वदा सबके लिए खुला रहेगा।

' मिले रक्त से रक्त माने अपना त्योहार सलोना।
भरा रहे अपनी बलि से मां की पूजा का दोना।।'[२]

कवि रक्त- स्नान में नहीं रक्त- दान में ही वीर की महत्ता मानते हैं। यह उपर्युक्त पंक्तियों में स्पष्ट हुआ है। हर कहीं भारत की पूजा और आराधना होती है। जिन हाथों में हथकड़ियां और बेड़ियां बांधी जाती थीं, उन हाथों में असंख्य वन्दनवारों और आरती उठाकर भारत जननी की पूजा के लिए जगत के लोग तैयार होकर खड़े हैं। इन लोगों को देखकर ऐसा लगता है कि उनके मस्तक पर स्वतन्त्रता की रक्षा काउत्तरदायित्व हृदय में वीरता, और दृढ़ता और नेत्रों में क्रांति- ज्वाला आदि वीरोचित भाव निहित हैं। भारत के लोग हमेशा अपने सिर ऊंचा कर रहते हैं और उनका संकेत पाते ही अनेक वीर भारत की रक्षा के लिए आत्म-समर्पण करने को तैयार होते हैं। सच में

- -

१: मुक्त गगन है मुक्त पवन है - पृ० ४८
२: वही० युग चरण - पृ० ४९

के लिए गौरव ही की बात है ।

इस कविता में कवि शांत- प्रकृति के ही दिखाई पड़ते हैं और विजय का ललकार करते हैं । यह कविता गांधीवाद से प्रभावित है क्योंकि अगस्त से घनिष्ट संबंध है । यह तो सर्वविदित बात है कि गांधीजी के द्वार की स्वतंत्रता प्राप्त हुई है । अत: गांधीजी और १५ अगस्त के बीच अटूट सं । सत्य और अहिंसा से जो स्वाधीनता प्राप्त होती है और हो चुकी है व के दो आधारभूत स्तम्भ माने जाते हैं ।

इसमें कवि ने मुख्यत: भारत की विजय पर उत्सव मनाया है । स कविता के द्वारा भारत की स्वातन्त्र्य - रक्षा के लिए अहिंसा एक मार्ग न- मार्ग) - पर बल देते हुए उसकी घोषणा की है । इस कविता के १५ दिन लिखे जाने के कारण इसका अपना अलग महत्त्व है ।

`आज झोंपड़ियां अनंत सुहागिन हैं ` कविता स्वातन्त्र्य- लाभ के अगस्त १९४९ में लखनऊ में लिखी गयी है । १५ अगस्त का दिन जनता के लिए हर्ष और आह्लाद का दिन है । इसमें कवि झोंपड़ियों के भाग्य पर कथा गया है । भारत की आजादी के पहले देश में कितनी झोंपड़ियां थीं फूटी थीं और उनमें रहने वालों की दशा भी बहुत बिगड़ी हुई थी । लेकिन भारत स्वतंत्र हुआ उसी दिन से भारत की दशा के साथ झोंपड़ियों की दशा । स्वतंत्रता के दिनों में गांधीजी की याद की जाती है क्योंकि उनकी चरण ी काल के पट पर आजादी की स्वर्ण - रेखा खींच दी है -

` पूज्य बापू के चरण की स्मरण रेखा ,
काल- पट पर लिख रही स्वातन्त्र्य लेखा । `[१]

गांधीजी ने भारत को राम- राज्य बनाया है । वे हमेशा इसी लगाया करते थे कि ` शस्त्र में लूंगा नहीं ।` जनता के बीच के भेद- भाव उनको एकता की डोरी में बांधा दिया । गांधीजी की मृत्यु के बारे में सोच

- -

१: आज --- -- सुहागिन है - पृ० ४१

कवि का मन भी वेदना - भार से स्तब्ध सा रह गया । कवि की वेदना इन पंक्तियों में प्रत्यक्ष रूप में प्रकट हुई है । -

> ' अहह ! पापी ने हृदय में बाण मारा,
> प्रार्थना-पथ का पथी भगवान मारा
> भक्ति ने यों मुक्ति की कोमल बुलायी ,
> तब कहीं है देश ! तू ने मुक्ति पायी ।। '[१]

स्वतन्त्रता के बाद भी कवि ने बलिदान की आवश्यकता पर बल दिया है । इसका कारण यह कहा है कि स्वतन्त्रता की रक्षा और ख्याल जनता में हमेशा रखना चाहिए । अगर इसे भूलकर विलासिता में डूबे तो यह स्वतंत्रता बरबाद हो सके । अत: बलिदान की ललकार कवि ने की है -

> ' चलो, पंथी चलो, बलि के द्वारा खोलो,
> बंद है संसार ! यह संसार खोलो । '[२]

गांधीजी मर गये, फिर भी वे आज भी घर घर में , देश देश में प्राणी- प्राणों में भगवान बनकर सत्य का मार्ग बताते हुए रमते हैं । इसलिए कवि ने भी कहा है - ' आज यह घर घर रमा भगवान बनकर । '

इसमें भारत की, विशेषत: झोंपड़ियों की सुधरी दशा का सुंदर वर्णन मिलता है जिस पर भाग्य- देवता कटाक्षित हुई है । आज तो झोंपड़ियों में नव- जीवन की प्रकाश- रश्मियों को फैलाते हुए भाग्य- तारा चमकता है । टूटी- फूटी झोंपड़ियों का नव- निर्माण हुआ है ।

' उन्मूलित वृक्ष ' - माखनलाल चतुर्वेदी जी की कविताओं में कुछ कविताएं ऐसी होती हैं जिनमें प्राचीन रूढ़ियों के प्रति विरोध और नवीनता के प्रति आग्रह प्रकट किया गया है । प्रगतिवाद के सारे कवियों ने यही भावना को अपनाया है। कुछ कविताओं में उन्होंने प्राचीन रीति- रिवाजों और आचार- विचारों पर व्यंग्य भी

१: आज ---- सुहागिन है । - पृ० ४१
२: वही० पृ० ४१

किया है। प्रगतिवादी कवि सदा प्रगति ही चाहते हैं अवनति नहीं। उनकी चिन्ता और विचार भावी की ओर चलते हैं भूत की ओर नहीं।

कवि की प्रस्तुत कविता इसी भावना से ओतप्रोत है। इसमें कवि ने प्राचीनता के प्रति अपनी घृणा और नवीनता के प्रति कामना प्रकट की है। इस भावना को व्यक्त करने के लिए उन्होंने एक वृक्ष को प्रतीक बनाया है जिसका निर्मूलन हो चुका है ऐसे उन्मूलित वृक्ष के द्वारा कवि ने प्राचीन रूढ़ियों और परंपराओं के बारे में अपने मन की बात कही है। कवि भी यही चाहते थे कि प्राचीन परंपराओं का अंत होना ही चाहिए क्योंकि अब भारत में नवीनता का प्रकाश छा गया है। अत: कवि ने बड़े ही संतोष के साथ कहा है -

'भला किया, जो इस उपवन के सारे पुष्प तोड़ डाले,

-- -- --

भला किया, दुनिया पलटा दी प्रबल उमंगों के बल में।'[1]

आगे कवि ने नये वृक्षों से मिलकर काम करने की आज्ञा दी है -

'दो दिन की दुनिया में आये,
हिलो - मिलो कुछ काम करो।।'[2]

पहाड़ी वृक्षों को रोज सींचा नहीं जाता और उनकी देख- भाल भी नहीं की जाती। फिर भी वे फूलते - फलते हैं और वन्य मृग उन्हें अपना भोजन बना लेते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि भारत में जो प्राचीन परंपरा चलती थी वह आज नष्ट हो गयी, नवीन परंपरा के बल से प्राचीन परंपरा अनादृत हो गयी। फिर भी प्राचीन परंपरा का पालन भी देश में जहां तहां होता है। वृक्ष तो अपनी ऐसी करुण- दशा पर दु:खी है और भगवान से उस पर भी कभी कृपा- दृष्टि डालने की प्रार्थना करता है। अर्थात् देश में नवीनता और प्राचीनता को एक साथ चलना चाहिए। यही भाव स्पष्ट होता है।

कवि की यह कविता प्रगतिवादी दृष्टि से बड़ा महत्वपूर्ण है क्योंकि उसमें प्रगति की ओर कवि की आशा- दृष्टि लगी हुई है। प्राचीन परंपराओं

- -

1: उन्मीलित वृक्ष - गुरु चरण - पृ० २७ 2: वही० पृ० २७

अप्रथाओं को एकदम फटकारा गया है। कवि का मत यह है कि नवीन परंपरा व प्राचीन परंपरा का चलना कदापि संभव नहीं। देश की जनता एक ही परंपरा अर्थात् नवीन परंपरा का पालन ही करे। प्राचीन परंपरा के प्रति कवि में जो तीखा व्यंग्य मिलता है, वह इस 'मीठे फल वाले तरुवर' शब्द में प्रतिफलित हुआ है। कवि ने यहां देश को प्रगति की ओर ले जाने का प्रयत्न किया है और यह नवीनता के के उनके मन के अपार अभिलाषा को प्रकट करता है।

यह कविता का लिखने का कारण यों बताया गया है। कवि किसी ने अपने किसी इष्ट काम से हटा दिया और वे बहुत दु:खी हुए। अपनी इस वेदना को अप्रत्यक्ष रूप से वृक्ष के माध्यम से व्यक्त करने का प्रयास किया गया है। अपने को उन्मूलित वृक्ष और उत्तराधिकारी को नये पौधे समझ कर उनसे मिल जुलकर करने की आशा प्रकट की है।

'पुष्प की अभिलाषा' नामक कविता कवि के प्रकृति प्रेम मूलक का में राष्ट्रीय भावना से युक्त कविता है। उनकी राष्ट्रीयता 'बलिदानवादी - राष्ट्री होने के कारण उनके समस्त राष्ट्रीय काव्यों में यही भाव झलकता है। उनका काव्य बलिदान - भावना का मूल - स्रोत है। कवि के अनुसार 'देश की स्वतंत्रता के पुजा के लिए राष्ट्र- देवता की वेदी पर अपनी प्राण- पुष्प चढ़ाने को उत्सुक रहना आवश्यक है।'[1] यही बलिदान - भाव उनके राष्ट्र- भाव का केन्द्र-बिन्दु रहा है। यह एक ऐसी राष्ट्रीय कविता है जिसमें उनकी राष्ट्रीय भावना प्राणवान बन चुकी है।

'पुष्प की अभिलाषा' मातृभूमि पर शीश चढ़ाने के लिए जाने वा वीरों के मार्ग पर बिखर जाने की कामना करने वाले राष्ट्र- भक्त की हो तो उत्कृष्ट आकांक्षा है।'[2] यहां 'राष्ट्र- भक्त' स्वयं कवि होते हैं और 'पुष्प' उनकी 'आत्मा'। इस कविता में कवि ने पराधीन भारत के बड़े वीरों के प्रतिनिधि है। यहां पुष्प कवि का प्रतीक बनकर आया है जिसके द्वारा कवि अपने मन की इच्छा प्रकट चुके हैं। उनके मन में जीवन के प्रति कोई आशा या उत्साह नहीं था। उनके लिए बलिदान ही सब कुछ था। अपने जीवन का सार्थक बनाने के लिए वे अपने प्राण को

- -

१: माखनलाल चतुर्वेदी - व्यक्ति और काव्य - पृ० १२६
२: वही० पृ० १२६

थे । विलास पूर्ण एवं सुखी जीवन के वे अनभिज्ञ थे , अगर अभिज्ञ होते
और फूंकना नहीं चाहते थे । प्रतिपल वे बलिदान और आत्माहुति क
हते थे ।

उनकी इस कविता में भी यही रट मुखरित होती है ।
ता, सुन्दरता और सुख का साधन है और प्रतीक भी । लेकिन कवि ने
वेदी पर जा गिरने का आह्वान किया है । कवि ने इसकी पहली चा
- विलासता और सुख- सन्तोष के प्रति अपना विरोध और अगली पं
बलिदान- भावना को प्रकट किया है । इस बलिदानवादी पंक्ति
यता और आत्मसमर्पण की भावना, देश प्रेम, वीरों के प्रति आदर,
भावों का आभास मिलता है -

मुझे तोड़ देना वनमाली।
उस पथ में देना तुम फेंक
मातृभूमि पर शीश चढ़ाने,
जिस पथ जावें वीर अनेक ।[१]

कवि ने यहां पुष्प को जीवन-वेदी से हटाकर बलि- वेदी
दिया है । वही पुष्प वीर- योद्धा के अंग पर बलिदान का रंग चढ़ाता
में अभिलाषा दो प्रकार की होती हैं - एक तो, तिरस्कार की भि
दूसरी की, जो स्वीकार बलि का ।

कवि ने इसमें नवीन उद्भावनाएं भी की हैं । पुष्प को
दान कर, बलिदान का यथार्थ चित्रण किया है । पुष्प के द्वारा कवि
प्रेम और बलिदान-भाव को व्यक्त करने का जहां प्रयास किया है व
दर विधान हुआ है । इसके उदाहरण के रूप में यह कविता ही प्रस्तु
ते हैं । इस कविता का आकार छोटा होने पर भी इसके अन्दर अभिव

१: पुष्प की अभिलाषा - युगचरण - पृ० ३१

तो गंभीर वर्णनातीत तथा अनन्त - सा लगता है । जो भी हो, कविता के आकार या रूप की कोई चिंता नहीं रहती, उसमें भाव को ही प्रधानता है । चतुर्वेदी जी की कुछ राष्ट्रीय कविताएं इस प्रकार की ही होती हैं जिनका आकार देखने में छोटा होता है और उनमें भावाभिव्यक्ति का विस्तार और विवेचन होता है ।

उनकी राष्ट्रीय कविताओं की एक विशेषता यह है कि वे बाहरी दृष्टि से प्राकृतिक प्रतीत होती हैं, पर आंतरिक दृष्टि से बिलकुल राष्ट्रीय होती हैं । 'पुष्प की अभिलाषा' इस कोटि की ही रचना है जिसमें बाह्य रूप से केवल एक पुष्प की अभिलाषा ही जान पड़ती है, मगर इस अभिलाषा के भीतर तीव्र बलिदानवादी भावना छिपी रहती है । इसे प्रकट करना कवि का उद्देश्य था और उन्होंने प्रतीकों द्वारा इसकी पूर्ति की है ।

'विजय की स्मरण- वेला' - यह कविता भी १५ अगस्त १९५१ के दिन लिखी गयी है । भारत को १५ अगस्त १९४७ को स्वतन्त्रता प्राप्त हुई थी । इस दिन के स्मरणार्थ हर साल में आज भी इस दिन में बड़ी धूमधाम से उत्सव मनाया जाता है । हर साल यह दिन आया करता है और इस दिन का उत्सव होता आता है । अत: प्रस्तुत कविता में भी कवि ने विजय की स्मरण- वेला यानी १५ अगस्त के दिन पर विजयोत्सव मनाते हुए उसकी महिमा गायी है । इसमें भी कवि की बलिदान-वादी तथा समर्पण-वादी विचारधारा का विवेचन हुआ है । वे बलिदान और समर्पण की घोषणा सदा बुलन्द आवाज में करते थे । गान्धीजी जिन्होंने अपने प्राण का उत्सर्ग करके देश को स्वतन्त्र बनाया उनका भी यहां स्मरण किया गया है । १५ अगस्त और गान्धीजी दोनों की स्मृति एक साथ ही करनी चाहिए । कवि ने भी इस पुण्य दिवस के साथ गांधीजी की भी याद दिलायी है । भारत के स्वतंत्रता- संग्राम में असंख्य वीर मर मिटे थे । असंख्य वीर अपने सिर को बलिवेदी पर चढ़ाते थे । कवि ने गांधीजी को युग-चरण कहकर पुकारा है । यहां के युगचरण गांधीजी के युगल पद-कमल ही हैं जिनसे दिखाये गये मार्ग पर देश के वीर चलना चाहते थे । कवि भारत की इस विजय को हमेशा अमर रखना चाहते हैं और वे कहते हैं -

- -

टूटने पोने न ये कड़ियाँ,

पराजय के विजय की ? '[1]

गान्धीजी को एक चित्रकार के रूप में चित्रित किया गया है जिन्होंने भारत रूपी निर्जीव चित्र में चेतना भरकर उसे सजीव बना दिया। डा० रामविलास तिवारी ने कहा है - ' कवि ने आज के साहित्यिक चिन्तक का उत्तरदायित्व बतलाया है कि वह पुरुषार्थ को दोनों हाथों में लेकर जीने का खतरा और मरने का स्वाद अपनी पीढ़ी में बोवे। '[2] इस कविता में उस कथन का सम्यक् व्यवहार हुआ है। कवि के इस कथन की पुष्टि इन पंक्तियों में हुई है -

' सिर चढ़े, या सिर उतरें शत्रु का, सिर खेल बोकर

मुण्ड माला दो इन्हें, कवि वेदवाणी से संजोकर। '[3]

चतुर्वेदी जी ने यहां किसान मजदूरों की स्थिति का वर्णन किया है। उनका ध्यान कृषक, भिक्षुक, मजदूर आदि वर्गों की ओर भी गया है। किसान के बारे में वे कहते हैं कि किसान तो देश की जनता के लिए खेतों में परिश्रम करके अन्न के मोती उगाता है। आर्थिक दृष्टि से देखने पर वह बड़ा गरीब होता है, फिर भी किसी भी प्रकार से अपना जीवन- निर्वाह करता आता है।

इस कविता के अंत में कवि ने स्वतन्त्रता- दिवस के दिन का स्मरण करने के साथ गांधीजी पर वंदना के पुष्प चढ़ाये हैं। इस कविता का प्रधान उद्देश्य १५ अगस्त के दिन की स्मृति दिलाना है। साथ ही उन्होंने भारत की स्वतंत्रता के पहले की परिस्थिति का सामान्य चित्रण भी दिया है। कवि का ध्यान विशेषतः किसान की ओर गया है। कवि ने अपने मानस में उद्भूत मानव- रूप को पाठकों तक पहुंचाने के लिए एक बिंब को खड़ा किया है।

भारत की आजादी के दिन का स्मरण करने वाली यह कविता बड़ी महत्वपूर्ण है। इस कविता के निर्माण का उद्देश्य यह है कि भारत के सारे लोगों को

- -

१: विजय की स्मरण वेला- पृ० १

२: माखनलाल चतुर्वेदी : व्यक्ति और काव्य, पृ० २००

३: विजय की स्मरण वेला- पृ० २

प्रतिवर्ष इस दिन का ध्यान रहे । चतुर्वेदी जी ने १५ अगस्त के दिन पर दो- तीन कविताएं लिखी हैं । उनमें आजादी के दिन का उत्सव मनाया गया है । १५ अगस्त का दिन लोगों के लिए आजादी की स्मरण - वेला है । इस दिन हमें गांधीजी जैसे अन्य अनेक वीरों की श्रद्धा होनी चाहिए जिन्होंने रण- क्षेत्र में भारत की स्वतन्त्रता- प्राप्ति के लिए अपने को युद्ध बलिवेदी पर अर्पित किया था । हर साल यह दिन आया ही करता है इसलिए हम इसे भूल नहीं सकते ।

'माता ' की कविताएं :

माखनलाल जी के काव्य में आध्यात्मिक भावना का प्रतिपादन भी हुआ है । ' राम नवमी ' कविता में कवि की राष्ट्रोन्मुख आध्यात्मिकता दृष्टिगोचर होती है । कवि ने अपनी राष्ट्र- सेवा को आराध्य की उपासना के रूप में स्वीकार किया है । डा० तिवारी जी ने कहा है - ' देश- भक्ति को वे साधना मार्ग मानते हैं जिस पर चलकर वे अपने आराध्य के चरणों तक पहुंच सकते हैं । उनके लिए जो भीतर भगवान है, वही बाहर देश है । माखनलाल जी ने ही सबसे पहले राष्ट्रोन्मुख - आध्यात्मिकता को काव्य में स्थान दिया था । ' आध्यात्मिक राष्ट्रवाद का सच्चा स्वर उन्होंने ही उद्घोषित किया । '[२]

देश सेवा की यही भावना उनकी प्रारंभिक रचनाओं में बहुत मिलती है । यह कविता उनकी ऐसी रचनाओं में आती है । इसमें देश- प्रेम और भगवद्भक्ति का सुंदर सामंजस्य दिखाई पड़ता है । यह सन् १९०६ में लिखी गयी कविता है । इस कविता में कवि भगवान श्रीरामचन्द्र जी के भक्त बनकर आये हैं । कवि ने इस कविता में अपने देश का उद्धार करने के लिए ' रामचन्द्र जी से प्रार्थना की है । कवि ने उनसे कहा है कि वे पुन: अवतार लेकर इस भारत भूमि पर पधारें और देश की दुर्दशा को हटाकर देश को शांति प्रदान करें ।

' पधारो, दसों दिशा में नाथ
हुआ आर्यों का रथ पथ बन्द,
पधारो रघुकुल की यश शान -
शिलाओं - दिखलाकर स्वच्छन्द , '[३]

१: माखनलाल चतुर्वेदी : व्यक्ति और काव्य - पृ० १२१ २: वही० पृ० १२२
३: रामनवमी - माता - पृ० २२

भारत भूमि को पवित्र बनाने की प्रार्थना की है ।

> ' भरत हो तो होवें शत्रुघ्न
> करो यह भारत भूमि पवित्र । '[१]

रामनवमी का दिन भगवान रामचन्द्रजी का जन्म- दिन माना जाता है । कवि ने भी इस वक्त उस दिन का स्मरण किया है और इसी दिन उनसे पुन: अवतार लेने की प्रार्थना भी की है । कवि ने यहां मातृभूमि यानी भारतभूमि को कौसल्या के रूप में चित्रित किया है । रामचन्द्रजी के जन्म- दिवस पर नगाड़े बजे जाते हैं उनसे देश की आजादी की ध्वनि भी निकले यही कवि की कामना है । कवि कहते हैं नगाड़ों की ध्वनि से राष्ट्र की वलयित हथकड़ियाँ तथा जंजीरों की कड़ियां टूट जायं । यहां कवि की भगवद्भक्ति एकदम राष्ट्र की भक्ति में बदल गयी है । अत: वे कहते हैं -

> ' नगारों से नगरों में नाथ
> मुबारक बादी सी सुन पड़े,
> कंटीली जंजीरें कट जायें ,
> ज़रा आजादी सी सुन पड़े ; '[२]

कवि ने रामचन्द्र जी से स्वर्ग को छोड़कर इस भूमि पर आने और दु:ख की आग में जलने- वाले लोगों की रक्षा करने को कहा है । कवि ने यहां सीता और देश की पराधीनता दोनों पर विचार किया है । सीता के उस समय की जो स्थिति थी वही आज भारत की हो गयी है । देश तो अपमान छोड़कर कष्टों को सहते हुए आगे बढ़ता रहा । अन्त में भगवान श्रीरामचन्द्र जी इस धरती पर पधारे और कवि ने उनसे यों प्रार्थना की है -

> ज़रा फट पड़ने दो नव नाथ ।
> कहो आया ! आ पहुंची घड़ी । '[३]

इस कविता में कवि ने आध्यात्मिक भावना के द्वारा राष्ट्रीय भावना

१: रामनवमी - माता - पृ० २२ २: वही० पृ० २२
३: वही० पृ० २३

माखनलाल चतुर्वेदी जी के अनुसार भगवद्भक्ति ही राष्ट्र-प्रेम है, भगवद् पूजा ही राष्ट्र-पूजा है। कवि के मत में भगवान और राष्ट्र में कोई अंतर नहीं। यही भाव इस कविता में व्यक्त हुआ है। उन्होंने भगवान रामचन्द्र जी से देश का उद्धार करने की प्रार्थना की है। इस कविता के अन्त तक आते आते उनकी भगवद्- भक्ति देश- भक्ति में परिवर्तित हो जाती है। कवि का देश- प्रेम और राष्ट्रीयता की भावना की ध्वनि इस कविता में स्पष्ट मुखरित हो उठी है। यह उनकी आध्यात्मिकता से राष्ट्रीयता की ओर की पहली झुकाव है। यही पहली कृति मानी जाती है जो इस झुकाव की प्रेरणा से लिखी गयी है। जब जान पड़ता है कि यह कविता रामचन्द्रजी के जन्मोत्सव के दिन लिखी गयी होगी कि इसका शीर्षक ' राम नवमी ' रखा गया है। इस कविता में उनकी देश- भक्ति प्रमुख और भगवद्भक्ति की सहायता से देश- प्रेम - संबंधी अपने विचारों को प्रस्तुत करना कवि चाहते थे। यही उनका उद्देश्य भी रहा है। यह कविता भारतकी तत्कालीन राजनीतिक निराशा का चित्रण करती है। इसमें सकाम- भक्ति का स्वर गूंजता है।

' रामनवमी ' कवि की दूसरी कविता है जो रामनवमी पर लिखी गयी है। इसकी रचना सन् १९१६ में हुई है। इसी विषय पर लिखी उनकी पहली कविता में कवि ने अपने देश के उद्धार एवं सुधार के लिए भगवान से प्रार्थना की है। लेकिन कवि ने जान लिया कि भगवान ने उनकी प्रार्थना नहीं सुनी है, क्योंकि देश की हालत और भी बिगड़ी हुई दिखाई पड़ती है। कवि एकदम झुंझला उठे और उनकी प्रार्थना चीत्कार में बदल जाती है।

इस कविता में कवि बड़े दु:खी जान पड़ते हैं और कवि की वाणी में तीव्र व्यथा झलक पड़ती है। कवि ने इसमें भी भारत की बुरी हालत का ब मार्मिक चित्र उपस्थित किया है। कवि को दु:ख इस बात का है कि उन्होंने सारे समय भगवान को पुकार- पुकार कर अपनी व्यथा सुनायी मगर भगवान ने तो उसे सुना तक नहीं था। अत: विश्व में यह हुंकार बनकर झंकृत हो उठी है -

त्रेता से अब तक तेरी
मैं करता रहा पुकार
बन बैठी चीत्कार, विश्व में
वह मेरी हुंकार ।। (माता- पृ० ३४)

कवि ने आगे देश की दुर्दशा पर विचार किया है। कवि ने भगवान से देश की दु:स्थिति निहारने और भारत- माता की व्यथित कथा सुनने को ह कहा है -

' व्यथित नर्मदा के तीरों की
विरह तान सुन आना ।। ' [१]

कवि ने देश की जनता की जनता के समस्त जीवन की आधार - शिला अथवा केन्द्र बिन्दु ह राम को ही माना है। अत: जीवन का बिन्दु उन्हें कहा है। राम को अनेक विशेषणों से संबोधित कर उनकी महिमा को आंका है। अंत में कवि ने राम- राज्य का फण्डा भारत देश में शाश्वत होकर फैलाने की कामना प्रकट की है। -

आर्य - कीर्ति का स्तम्भ
अयोध्या में अब गड़ जाने दे,
राम- राज्य का फण्डा, नभ -
से पुन: रगड़ जाने दे। ' [२]

'रामनवमी ' पर उनकी प्रथम कविता से इसमें अंतर केवल यही है कि प्रथम कविता में कवि ने भगवान से बड़े ही आदर भाव से देशोद्धार के लिए विनती की है, मगर इसमें कवि की क्रन्दनपूर्ण वाणी बोल उठी है क्योंकि पहली बार उनकी प्रार्थना व्यर्थ हुई थी। इसमें उनकी देश- प्रेम और भक्ति की विकल- कांक्षा हुई है जिसके लिए कवि की व्यक्तिगत धर्म - भावना ने यहां प्रेरणा दी है।

'अदालत में सत्याग्रही कैदी के नाते बयान ' कविता उस समय की राजनैतिक घटनाओं के से भरपूर है जब कि कवि जीवित थे। माखनलाल चतुर्वेदी जी के राष्ट्रीय काव्यों में राजनीति का प्रमुख स्थान रहा है। कवि ने विभिन्न राजनीतिक घटनाओं को लेकर अनेक कविताएं रची हैं। इनमें यह कविता भी है। भारत की राजनीति में होने वाले समस्त परिवर्तनों को कवि ने अपनी कविता में स्थान दिया है। प्रस्तुत कविता में भी तत्कालीन किसी राजनीतिक घटना का वर्णन है। इतना ही नहीं

- -

१: रामनवमी - माता - पृ० ३४ २: वही० पृ० ३६

इसमें कवि ने घटना का स्थूल और सच्चा वर्णन न करके उससे उत्पन्न कवि- मानस की प्रतिक्रिया का वर्णन किया है । अदालत में एक सत्याग्रही कैदी ने जो भाषण दिया था उसका प्रभाव कवि पर पड़ने से उनके मन में जो प्रतिक्रिया जाग उठी, उसी का वर्णन किया गया है । माखनलालजी भी गांधीजी से खूब प्रभावित थे । गान्धीजी के सत्य और अहिंसावादी सिद्धान्तों पर कवि का पूर्ण विश्वास था । अत: उन्होंने अपने जीवन को इन्हीं सिद्धान्तों पर चलाया था । उनका जीवन गांधीजी के जीवन सा बीता । कवि ने अहिंसा को अपने जीवन का परम धर्म मान लिया है - वे कहते हैं । कवि के जीवन में ऐसे भी कुछ समय रहे हैं उनको कारागृह - जीवन भी बिताना पड़ा है ।

' आज अहिंसक असहकारिता
है मेरे जीवन का धर्म ।
मैं तेरे पिंजड़े का कैदी
असहयोग मतवाला हूं ।'[१]

कवि हिंसा और घृणा के विरोधी हैं और उन्हें वे अपना भी नहीं सकते ।

' हिंसा और घृणा दोनों ही
हैं मेरे मजहब से पाप,
दोनों मेरे साथ नहीं हैं
होते करता पश्चाताप , '[२]

फिर भी कवि पापियों के पापों को और अत्याचारियों के अत्याचारों को पसंद नहीं करना चाहते । कवि के मन में पापियों और अत्याचारियों के रहने से देश का उद्धार संभव नहीं, अत: उनकी हत्या करना आवश्यक है । जिस प्रकार गांधीजी ने आत्मबल पर जोर दिया था उसी प्रकार कवि ने भी भारत के नेताओं से आत्मबल संचय करने का आह्वान किया है । देखिये -

पापी शासन पर अप्रियता
उपजाना श्रुति - सम्मत है ,

- -

१: अदालत में --- बगान - माता - पृ० ८३
२: वही० पृ० ८३

इसीलिये ज़ालिम पर ममता
न हो, यही मेरा मत है। `[1]

गांधीजी ने भारत को आज़ादी प्रदान कराने के लिए अहिंसात्मक असहयोग आन्दोलन का मार्ग ढूंढ लिया था। कवि ने भी इसी मार्ग का वर्णन किया है।

शीघ्र अहिंसक असहयोग
से मातृभूमि होवे आज़ाद। `[2]

कवि की देश- भक्ति इन पंक्तियों में व्यक्त हुई है।

` भारत है हृदय दुलारा देश
मेरे मरने जीने का धन
प्यारा पुण्य हमारा देश! `[3]

कवि कहते हैं कि देश के स्थायी अस्तित्व के लिए, उसकी उन्नति के लिए भारत के शासकों के मन में देश के ` अपनत्व ` का ध्यान रहना चाहिए। खुले हृदय से अपने आप को बलिदान करते हुए प्रयत्न करना आवश्यक है। इन पंक्तियों में कवि ने जनता को उपदेश देते हुए गांधी - दर्शन को निहारा है -

` अपने पैरों बल पड़ना है,
असहयोग व्रत ठान चलो ;
हो जाओ आज़ाद, मर मिटो,
दो दिन के मेहमान चलो। `[4]

यह कविता राजनीति से संबंधित है। इसमें तत्कालीन एक प्रमुख घटना से अपने मन में उठी प्रतिक्रिया का कवि ने चित्रण किया है। अतः कवि की प्रतिक्रियावादी वाणी जनता के लिए सदुपयोग जान पड़ी है। कवि ने वास्तव में जनता को शासन का उपदेश ही दिया है। निराधार बनकर गिरे हुए राष्ट्रों को

- -

१: अदालत में ---- बयान - पृ० ८४   २: वही० पृ० ८४
३: वही० पृ० ८५   ४: वही० पृ० ८६

साधार खड़ा करने के लिए अपनत्व की भावना से शासन करने का मार्ग कवि ने बताया है। इस कविता के प्रारंभ में विदेशी शासकों के अत्याचारों पर भी प्रकाश डाला गया है। उनकी देश- भक्ति इस कविता में खूब निखर उठी है। इस कविता की रचना के मूल में भी यही भक्ति निहित है।

'राष्ट्रीय झण्डे की भेंट' नामक कविता झण्डा सत्याग्रही हरदेव-नारायण सिंह की मृत्यु पर लिखी हुई एक स्वतन्त्र कृति है। इसमें तत्कालीन राजनीतिक घटना का चित्रण हुआ है। कवि ने हरदेव नारायण जी की मृत्यु से उत्पन्न अपनी मानसिक प्रतिक्रिया का चित्रण किया है। इसका राजनैतिक घटना से संबंध होने पर भी घटना का चित्रण सूक्ष्म रूप से किया गया है। श्री हरदेवनारायण जी के जेल-जीवन का विस्तृत चित्रण भी किया गया है। ये बिहार के सत्याग्रही थे। सन् १६२३ के नागपुर झण्डा सत्याग्रह में उन्होंने भाग लिया था। वे नागपुर में जेल- जीवन बिता रहे थे। वे झण्डे पर अपने को समर्पित करना चाहते थे। उनका जेल- जीवन अंग्रेजों के अत्याचारी शासन का प्रमाण था -

' सजा हुई, जंजीरें पहनीं,
दुर्बल था, पर भार हुए,
गिट्टी, मोट, चक्कियां, कोल्हू
हंस हंस कर स्वीकार हुए।'[1]

उनका जेल- जीवन बहुत ही दु:खपूर्ण था। उनको असंख्य पीड़ाएं सहनी पड़ीं। जेल में उनके प्रति जो व्यवहार हुआ था, वह भी सहने योग्य नहीं था। अत: उन्होंने मृत्यु को पुकारा। अन्त में उनकी मृत्यु हो ही गयी। उन्होंने मृत्यु को सन्तोष स्वीकार किया और मरने के पहले यों कह उठे -

' जननि बिहार प्रणाम तुम्हें
तेरे गौरव का गान रहे,
मातृभूमि तेरे ध्वज की,
मेरे प्राणों से शान रहे।'[2]

- -

१: राष्ट्रीय झण्डे की भेंट - पृ० ७८

इस कविता में चतुर्वेदी जी ने हरदेव नारायण जी की मृत्यु को राष्ट्रीय झण्डे का उपहार माना है। उन्होंने भारत की पताका की विजय के लिए अपने प्राणों को उस पर समर्पित कर दिया। जेल-जीवन की यातनाओं तथा पीड़ाओं से जब वे असहाय बन गये तब उन्होंने अपने जीवन को समाप्त कर देने का निश्चय किया। उनकी कामना यह थी कि उनके प्राण-त्याग से भारत की पताका का आदर एवं महत्ता बने रहें।

' नव भारत ' कविता में गान्धीजी को चित्रित किया गया है। इसमें गान्धीजी राष्ट्रीयता के जीवित प्रतीक के रूप में चित्रित हुए हैं। इसलिए गांधीजी के व्यक्तित्व का राष्ट्रीय - पक्ष यहां प्रधान रहा है। यह सन् १९१८ में लिखी गयी कविता है। जब गांधीजी ने भारत को बिना रक्त की एक बूंद गिराये स्वतन्त्रता प्रदान की तब चतुर्वेदी ने अपना पिस्तौल उन्हें समर्पित किया। यह सन् १९१८ की बात थी। यह गान्धीजी के प्रति कवि के आत्म-समर्पण को व्यक्त करता है। इस समर्पण-भावना से प्रेरणा पाकर कवि ने उन पर कविता लिखना शुरू किया। उनकी स्वातन्त्र्योत्तर समस्त कविताओं में राष्ट्रीयता की भावना फूट निकली है। 'गांधीजी के राष्ट्रीय व्यक्तित्व की भावात्मक अभिव्यक्ति हमें सर्वप्रथम उन्हीं के काव्य में मिलती है।'[1] लेखक का यह कथन उनकी संपूर्ण राष्ट्रीय - कविताओं के लिए लागू हो सकता है। मुख्यत: उनकी वीर-पूजा, नि:शस्त्र सेनानी, बलि - पन्थी से, जीवित - जोश आदि रचनाओं में गान्धीजी के राष्ट्रीयता पूर्ण व्यक्तित्व का विश्लेषण हुआ है। नवभारत शीर्षक कविता भी इसी कोटि के अन्तर्गत आती है। नवभारत यानी स्वतन्त्र भारत का संबंध गान्धीजी से ही है क्योंकि उन्होंने ही नव-भारत का सृजन किया है। पुराने भारत से यह भारत ~~बिलकुल~~ बिलकुल भिन्न है। इसमें एकदम नवीनता आ गयी है।

प्रस्तुत कविता में गान्धीजी का जयकार किया गया है। गान्धीजी को राष्ट्रीय प्रतीक के रूप में बढ़ाकर उनकी प्रशंसा एवं जयकार करते हुए राष्ट्रीयता का महत्त्व दिखाया गया है। इस कविता की पृष्ठभूमि के रूप में कवि ने स्वतन्त्रता-प्राप्ति का लक्ष्य अहिंसात्मक आन्दोलन जुगाया व गया, उसी समय में लिखी गयी कविता होने के कारण कवि और लोग नवभारत की प्रतीक्षा कर रहे थे। इस प्रकार नव-भारत की

१: माखनलाल चतुर्वेदी : व्यक्ति और काव्य : - पृ० १२७

दृष्टि ही कर दी ।

कवि ने सर्वप्रथम उनको जीवन- ज्योति के आदर्श ज्वलित रूप कहकर उनकी महिमा गायी है । उन्होंने ही मानव- जीवन में प्रकाश की किरणें फैलायी हैं । इस जीवन प्रकाश को पाने के लिए उन्होंने कितनी कठिनाइयों और बाधाओं का सामना किया है, यह कहना संभव नहीं । इसलिए उनको ज्वलित रूप कहा गया है । उनका दर्शन पाने के लिए भारत के लोग उत्सुक हैं, वे उनके दर्शन के लिए भूखे हैं । इसलिए उनसे अपने कर्म- क्षेत्र भारतभूमि में प्रवेश करने की प्रार्थना की जाती है । इन पंक्तियों में हमें देश की अमरता, स्वाधीनता, निर्भयता, नवीनता आदि का विवेचन एक साथ मिलता है -

' आया यह अमरत्व ,
स्वत्व पाया, छूटा भय ;
नया नया कह रही
गूंजने वाली जय-जय । '[१]

नव- भारत होनेके कारण सब नव न ही हो सकते हैं । यहां गांधीजी को जगत का आधार माना गया है । सारा संसार उन पर ही निर्भर है । इस समस्त संसार की नींव वे ही हैं । उन पर ही यह सारा विश्व स्थित है । संसार में नित्य नवीनता का निर्माण हो रहा है । आगे की सारी पंक्तियों में कवि ने नवीनता का प्रतिपादन किया है । इस समय जो गीत गाये जाते थे उनमें नवीनता दिखाई पड़ने लगी ।

गान्धीजी में परहित की चिंता थी । उन्होंने अपने से भी बढ़कर दूसरों के सुख एवं दुःख का अन्वेषण किया था । उनकी एक विशेषता यह भी थी कि दूसरों को प्रसन्न करने के बाद ही वे प्रसन्न होते थे । उनको अपने सुख- दुख,हर्ष- उल्लास, पीड़ा - स्वस्थता, कष्ट - नष्ट आदि की कोई चिन्ता न थी । दूसरों की भलाई के लिए वे अपना सब कुछ छोड़ सकते थे । गांधीजी दूसरों को विलासप्रियता से दूर रखने का प्रयत्न करते थे और स्वयं विलासी न होने का ध्यान रखते थे । वह तो उनके जीवन तक बिना किसी परिवर्तन के जारी रहा है । उनके मतानुसार लोगों को

- -

१: नव-भारत - पृ० ४२

विलासी और आडंबरप्रिय नहीं बनना है। भारत माता अब सौभाग्यवती बन गयी है। उसने तो अब स्वतन्त्रता पायी है। गांधीजी को भारतमाता का पुत्र कहा गया है। एक माता के प्रति पुत्र का जैसा आदर-भाव, प्रेम, विनम्रता आदि रहते हैं वैसे ही आदर-भाव, प्रेम और विनम्रता गांधीजी के मन में भी भारतमाता के प्रति रहती हैं। आज भारतमाता गान्धीजी जैसे पुत्र को पैदा करने के कारण पूज्य है, आराध्य है और सर्वमान्य है।

गान्धीजी विश्व-स्वरूप माने गये हैं। उन्हें विश्व का रूप प्रदान किया गया है। उनको विश्व-व्यापी देवता के रूप में चित्रित किया गया है। यद्यपि वे मर गये, तो भी वे समस्त विश्व में व्याप्त दिखाई पड़ते हैं। गांधीजी की अहिंसा का तत्व यहां व्यक्त होता है। उनकी दृढ़ प्रतिज्ञा यह है कि वे कदापि हाथ में शस्त्र नहीं लेंगे। अतः उनका कवि ने एक विलक्षण सूत कहा है। यहां हमें उनके अहिंसा भाव का परिचय मिलता है। उन्होंने अहिंसा को ही शान्ति और समाधान का साधन माना है। और उसको व्यावहारिक रूप देने में वे सफल हुए। इस सूत के बारे में कवि का कथन है -

> ' जय जय विश्व - स्वरूप ,
> पार्थ के प्यारे जय जय ,
> ' शस्त्र न लूंगा ' वाले
> सारथी न्यारे जय जय । '[1]

आगे की पंक्तियों में कवि ने उनको नवीन कर्ता, जनता का पति आदि कहकर पुकारा है। वे जनता का सुख अपना सुख, जनता का दुःख अपना दुःख, जनता की उन्नति अपनी उन्नति मानते थे। जनता उनके लिए सबकुछ थी। उनका साथ देना अपने लिए आनन्द की बात थी। वे जनता को अपने ही परिवार की मानते थे। उनको गुमराहों को रास्ता दिखाने वाला कहा है। उनके कर्तव्य का उद्देश्य भी यही माना जा सकता है। वे सदा बुरे रास्ते पर चलने वाले व्यक्तियों को कुछ न कुछ उपदेश देते हैं और उनको सच्चे मार्ग पर लाने का प्रयत्न करते हैं। उनका मत यह है कि

१: नव भारत - माता - पृ० ६३

सारी जनता एक - सी होनी चाहिए । कोई भी बुरा न हो । गुमराही न हो, अनपढ़ न हो और पाखण्डी न हो ।

प्रस्तुत कविता में गांधीजी की प्रशंसा की गयी है । उनको जीवन-ज्योति का रूप, विश्व-वन - का माली, जग- आधार, विश्व को फुलाने वाले विश्व- स्वरूप, अनोखा सारथी, प्रजापति ।, आदि बताकर उनकी कुशलता और महिमा मूल्यांकन किया गया है । उनको इतने उच्च एवं महान माना गया है कि उनसे इतना उच्च एवं महान कोई दूसरा नहीं । गांधीजी ने देश के लिए जो जो कर डाले हैं, उनका विस्तृत परिचय हमें मिलता है । इसका शीर्षक ` भारत ` रखा गया है । फिर भी इसमें मुख्य रूप से गांधीजी और उनके कर्तव्य पर ही दृष्टि डाली गयी है । लेकिन उनके कर्तव्य का परिचय मिलने पर हम भारत की एक सच्ची कल्पना कर सकते हैं । यह कविता गांधीवाद और राष्ट्रीयता की भावनाओं से ओतप्रोत है । इसमें कोई संदेह नहीं है ।

`जीवित जोश ` माखनलाल चतुर्वेदी जी की एक कविता है जो गांधीजी के विलायत से भारत में लौट आने के पश्चात् लिखी गयी है । उनसे संबंधित इस कविता में कवि ने उनको ही राष्ट्रीयता का जीवित प्रतीक माना है । इसमें उनके राष्ट्रीय व्यक्तित्व की भावात्मक अभिव्यक्ति हुई है । `क्षमता के साथ शत्रुओं का हृदय - परिवर्तन कराने में गांधीवादी का बड़ा विश्वास रहता है । कवि अपने को विश्व- मंगल के लिए त्यागने में परम- भाग्य मानता है । ` तितिक्षा - भावना, श्रम की पूजा और सामाजिक समानताएं सब गांधीवाद के व्यावहारिक रूप हैं, जिन्हें ` माता ` संग्रह की `जीवित जोश` कविता में वाणी मिली है । `[१]

इस कविता में विलायत में गांधीजी की विजय की ओर संकेत करते हुए कहा है कि सारे देश में साम्राज्यवाद की शक्ति होती है और आध्यात्मिक शक्ति विकास पाती रहती है -

` शक्ति का लुटता है सर्वस्व -
न होंगे हम उसके बटमार ,

- -

१: माखनलाल चतुर्वेदी : व्यक्ति और काव्य - पृ० २१३

मक्ति का उतरा है सर्वस्व ,
न होगा भारत मां के द्वार । `[१]

गांधीजी के प्रत्यागमन से संतुष्ट होकर कवि ने बताया है कि अब सारा कष्ट दूर होने वाला है । छल - पाप - संताप हीन सद्वृत्तियों से गांधीजी जनता के दुःख को दूर करेंगे । -

` आप से आप, बिना संताप
बिना छल - पाप, हटेंगे दोष , `[२]

कवि ने हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच एकता स्थापित करने की इच्छा प्रकट की है ।

` हिन्दमाता की ` दोनों आंख `
`नाक` को रखकर बीचों बीच
अब की उज्ज्वल धारा छोड़,
प्रेम का पौधा देवें सींच । `[३]

गान्धीजी का आह्वान सुनकर सब को आत्म- बलिदान देने की प्रेरणा दी गयी है ।

` कृष्ण की सुन मुरली की तान
चलो, हों सब मिलकर बलिदान । `[४]

गान्धीजी की पापियों से नहीं पाप से घृणा करो वाली उक्ति का समर्थन कवि ने भी किया है -

` पापियों पर भी न हो प्रहार ।`[५]

राष्ट्रीय वीर नेताओं के लिए कारागार अत्यंत प्रियकर था और अपने को बंदी बनाकर रखने से बड़ा भागी मानते थे । गांधीजी ने बंदीगृह को अत्यंत पवित्र माना है जहां भगवान श्रीकृष्ण का जन्म हुआ था । कवि ने भी यहां वही बात दुहरायी है । -

- -

१: श्रीभित जोश - माता - पृ० ७५ २: वही० पृ० ७५
३: वही० पृ० ७७ ४? वही० पृ० ७७
५: वही० पृ० ७७

' जहां तुम मेरे हित तैयार ,
सजोगे कर्कश कारागार ।
वहां बस मेरा होगा धाम
गर्म का प्रियतर कारागार । '[१]

इस कविता में कवि ने जनता से निराशा होने के बदले जीवित रहने की जोश पैदा करने तथा उसे सुदृढ़ बनाये रखने का उपदेश दिया है । प्रत्येक व्यक्ति को अपने अपने हृदय- तल में जोश पैदा करना चाहिए । गांधीजी अब भारत आये हैं और वे सब का कष्ट दूर करने वाले हैं । कवि यहां पलायनवादी न होकर कर्मवादी दिखाई पड़ते हैं । इस बातों पर सबको सारा कष्ट सहते हुए जीना ही चाहिए और अपना अपना कर्तव्य निभाना चाहिए - यही कवि का भाव है ।

' मरण - ज्वार ' संग्रह में गांधीवाद से प्रभावित एक हो कविता मिलती है और वह है - ' वृक्ष की अभिलाषा ' । यह कविता चतुर्वेदी की ' पुष्प की अभिलाषा ' नामक कविता की कोटि में आती है । इसमें कवि ने वृक्ष के द्वारा अपने मन की बलिदान- भावना को खोल दिया है । यहां वृक्ष कवि की आत्मा का प्रतीक है । अत: कवि ने वृक्ष से कहा है कि उसे अपने आकार और उंचाई पर गर्व करने का समय नहीं है । उसे मिट्टी में मिल जाने का अवसर आया है । वृक्ष ने यही चाहा है कि उसे जल से सींचने के बदले गर्मी के आतप में जला डालें क्योंकि जल से सींचने पर वह और भी हरा- भरा और पुष्ट बन जाता । यहां वृक्ष ने बलिवेदी पर चढ़ना चाहा है । अत: उसने स्वयं बताया है -

' गौरव बिखरो नहीं, समय की मिट्टी में मिलजाओ । '[२]

उसने अपनी हरियाली पर गर्व करने की अपेक्षा मिट्ठी में मिलने की इच्छा प्रकट की है-

' कई गुना होकर अर्पित ।
यहां मिट्ठी में मिल जाना ।।

१: जीवित - जोश - माता - पृ० ७८

२: वृक्ष की अभिलाषा - मरण ज्वाल- पृ० १६

हरियाली मस्ताना बाना ।
कहे कि तुझ को जाना ।। '१

कवि ने वृक्ष के द्वारा अपने उत्कृष्ट राष्ट्र- प्रेम को व्यक्त किया है। राष्ट्र- प्रेमी राष्ट्र की उन्नति के लिए सब कुछ कर सकते हैं। अपने को ही बलि देने के लिए वे उत्सुक हैं, तैयार भी। कवि ने इसमें बलिदानवादी राष्ट्रीय - भावना को प्रकट किया है और इसलिए इसे राष्ट्रीय कविताओं के अन्तर्गत रखा जा सकता है।

' हिमकिरीटिनी ' की कविताएं :

इस कविता - संग्रह में भी गान्धीजी और गान्धीवाद पर लिखित कविताओं का समावेश हुआ है। इसकी एक कविता है ' निःशस्त्र सेनानी ' जिसमें गान्धीजी का राष्ट्रीय व्यक्तित्व एक भावात्मक ढंग से चित्रित हुआ है। ऐसी भावात्मक अभिव्यक्ति उन्हीं के काव्य में प्रथम बार मिलती है। यह कविता महात्मा गान्धी के दक्षिण - अफ्रीका - संग्राम पर लिखी गयी है। इसमें कवि ने अंग्रेज सरकार को दुःशासन के रूप में चित्रित किया है। साथ ही गान्धीजी ने जो प्रतिज्ञा की थी कि अंग्रेजों का साथ न देना, उसकी याद दिलाने का भी प्रयत्न किया है। इससे अफ्रीका - वासियों से उनका जो प्रेम है, वह व्यक्त हुआ है। इस कविता में गांधी-वादी विचारधारा ही है। यहां कवि ने सत्याग्रह के अहिंसात्मक रूप का चित्रण किया है। इसमें महात्मा गांधी को ही चित्रित किया गया है।

इस कविता के आरंभ में कवि ने गान्धीजी का परिचय देने का प्रयास किया है।

' सुजन, ये कौन खड़े हैं ? बन्धु !
-- -- --
काम ही है बस इनका काम । '२

कवि ने उनको जनता का बन्धु कहा है। गान्धीजी ने भारत को स्वतन्त्रता दिलाने के लिए अहिंसात्मक आन्दोलन चलाया है। अहिंसा त्मक से मतलब है शस्त्र या अस्त्र के बिना

१: वृक्ष की अभिलाषा - मरणज्वार - पृ० १६
२: निःशस्त्र सेनानी - हिमकिरीटिनी - पृ० ६४

गान्धीजी के इस आन्दोलन में शस्त्र को हाथ से छू तक नहीं लिया है। अत: यह आन्दोलन पूरा अहिंसात्मक ही है। अहिंसा के बारे में कवि का कथन यह है कि अहिंसा आत्मिक बल का दूसरा नाम है। सच है कि अहिंसा को पालने में शारीरिक बल की अपेक्षा आत्मिक बल की अधिक आवश्यकता पड़ती है। अहिंसा में आत्म-विश्वास का बड़ा स्थान होता है।

भारत को स्वतंत्रता दिलाने के लिए जनता में जोश और सहन- शक्ति की आवश्यकता अनिवार्य है। अनेकानेक कष्टों एवं यातनाओं को सहने के बाद ही किसी परम कार्य की सिद्धि होती है। इस प्रकार मानव- जीवन में ही नहीं सांसारिक जीवन में भी सुख और दु:ख हमेशा साथ देते रहते हं। यहां सिद्धि से कवि का उद्देश्य यह जान पड़ता है कि भारत की स्वतन्त्रता- प्राप्ति। इस सिद्धि के पथ पर बढ़ने के लिए हमें कई यातनाओं का सामना करना पड़ता है। इसके लिए हममें सहनशक्ति होनी चाहिए। कवि ने जोश और सहन-शक्ति को क्रमश: पुत्र- पुत्री के रूप में चित्रित किया गया है।

यहां गांधीजी की कर्मशीलता के बारे में कहा गया है। वे बचपन से ही कर्मठ थे। गान्धीजी कदापि अवसर - कुअवसर की चिंता नहीं करते थे। चाहे सवेरा हो या शाम या रात, वे हमेशा काम करते ही रहते थे। उन्हें अपने शरीर का कोई ख्याल नहीं था। देखने में दुबले- पतले होने पर भी उनमें एक प्रकार की दिव्य- शक्ति रहती थी। अपने लिए एक छोटा सा घर रहने पर भी उन्होंने विश्व-भर को कर्म - क्षेत्र माना था -

'विश्व चक्कर खाता है

-- -- --

विश्व का प्यारा कर्म क्षेत्र।'[१]

गान्धीजी के आगमन से शस्त्रधारी अंग्रेजों के हाथों से अस्त्र छूट गया और कराली तो एकदम अस्त्र हुई। -

---

१: निःशस्त्र सेनानी - पृ० ६५

' फिसलते काल - करों से शस्त्र,
सलोनी आयु हुई स्वच्छन्द । '[१]

गान्धीजी कर्मठ व्यक्ति होने के कारण वे क्लेश या कठिनाई का अनुभव नहीं करते थे ।[२] कर्मठ व्यक्ति अपनी इच्छा के अनुसार दूसरों की भलाई के लिए सब असंतोष काम करता है और प्राय: वह क्लेश या कष्ट का भी अनुभव नहीं करता । भारत देश तो गांधीजी को बहुत प्रिय था । गांधीजी के जन्म के पहले यहां कई प्रकार के अत्याचार एवं अनीति होने के कारण भारत की हालत बिगड़ी हुई थी । जब गांधीजी एक युग- पुरुष के रूप में अवतरित हुए तब भारत की हालत भी धीरे- धीरे सुधरने लगी ।

भारत में घोर युद्ध हो रहा था । सैनिकों के हाथों में तलवार चमकती रहती थी । सब लोग मरने एवं मारने को तैयार होकर खड़े थे । परंतु गांधीजी को यह घटना देखकर बड़ा दु:ख हुआ । उन्होंने यह दृढ़ निश्चय कर लिया कि अगर चाहे संसार भी पलट जायें तो भी इन हाथों में हथियार नहीं लेंगे । -

' पलट जाये चाहे संसार,
न लूंगा इन हाथों हथियार । '[२]

कवि ने बताया है कि गान्धीजी के अनुसार मज़दूरों की जाति ही श्रेष्ठ है, सत्य का मार्ग कांटों से भरा हुआ है और रंग तो श्रमिकों का क धूल भरा रंग ही है । दूसरा कोई जाति, मार्ग, या रंग इनके सामने उतना महत्त्वपूर्ण नहीं । उसी प्रकार कला में भी मानव- जीवन की दु:ख भरी ध्वनि की ही व्यंजना होनी चाहिए

जाति ? - वह मज़दूरों की जाति,
-- -- --
चढ़ाकर अपना जीवन - फूल । '[३]

- -

१: लेश भी कभी नहीं की परवाह
जानते इसे स्वर्ग सन्देश । ' - नि:शस्त्र सेनानी - पृ० ६६

२: वही० पृ० ६७ ३: वही० पृ० ६७

गांधीजी का मनोभाव सर्वदा सशस्त्र क्रांति के विरुद्ध था । अगर वे क्रांतिकारी होते तो प्राय: संसार में उनका कोई स्थान ही न होता । उन्होंने कारागार को पवित्र तथा श्रेष्ठ माना है और हथकड़ियों को हार बनाया है ।

' प्यार ? - उन हथकड़ियों से और
कृष्णा के जन्म - स्थल से प्यार ।
हार ! - कन्धों पर झुमती हुई
अनोखी जंजीरें हैं हार ! '[1]

भारत की उन्नति करने का काम ही अब शेष रह गया है । मुक्ति का द्वार ही श्रेष्ठ है । भारत मुक्ति प्राप्त करने के लिए डट कर खड़ा हो गया है । -

' भार ? - कुछ नहीं रहा अब शेष,
-- -- --
विश्व की परम मुक्ति का द्वार । '[2]

इस कविता में कवि ने गान्धीजी को नि:शस्त्र - सेनानी के रूप में चित्रित किया है । गान्धीजी राजनीति- क्षेत्र में नि:शस्त्र- सेनानी ही रहे थे । उनकी एक विशेषता यह भी थी कि वे सेनानी थे अवश्य, मगर नि:शस्त्र थे, निरस्त्र थे । इस कविता में कवि ने गांधीजी के अहिंसात्मक रूप का चित्रण किया है । इसके द्वारा गांधीजी की कुछ चारित्रिक विशेषताओं का विवेचन किया गया है । अहिंसा- आन्दोलन अविराम- परिश्रम, नि:शस्त्र संग्राम आदि प्रवृत्तियों पर प्रकाश डाला गया है ।

'बलि पंथी से ' - यह कविता सन् १९२१ को बिलासपुर सेंट्रल जेल में लिखी गयी है । इसमें राष्ट्रीय भावनाओं का सम्यक् निरूपण हुआ है । गांधीजी को ही राष्ट्रीयता का जीवित प्रतीक माना गया है । कवि ने उनके द्वारा संचालित अहिंसात्मक आन्दोलन को आधार बनाकर प्रस्तुत कविता का सृजन किया है । यहां बलिपंथी स्वयं गांधीजी ही हैं ।

१: नि:शस्त्र सेनानी : पृ० १८ २: वही० पृ० १८

माखनलाल चतुर्वेदी वास्तव में बलिदान के गायक थे। अत: इस भावना से प्रभावित होकर उन्होंने अनेक कविताएं लिखी हैं। उनकी राष्ट्रीय कविताओं में से अधिकांश कविताएं बलिदान - भावना से ओतप्रोत दिखायी पड़ती हैं। "माखनलाल चतुर्वेदी जी के काव्य में राष्ट्र- पूजा की इस रहस्य भावना के साथ ही भक्तजनोचित आत्मत्याग और बलिदान की भावना भी बड़ी तीव्र है।"[1] कवि ने इस कविता में बलि- पथ का अनुसरण करने वाले गान्धीजी से बलिदान की महिमा पर बताया है। इसमें संसार के सारे कष्टों, यातनाओं और बाधाओं को सहन करने की क्षमता की आवश्यकता पर प्रकाश डाला गया है। "देश के लिए यातना- सहन की प्रक्रिया उनकी दृष्टि में धर्म का सबसे उज्ज्वल रूप है।"[2]

यही भाव प्रस्तुत कविता में स्पष्ट रूप से प्रतिपादित किया गया है। कवि को यह कविता लिखने की प्रेरणा सन् १९२१ में 'प्रताप' को दिये गये उनके सन्देश से मिली है। कवि की उपर्युक्त भावना की सुन्दर अभिव्यक्ति इन सन्देश-युक्त पंक्तियों में मिलती है -

"पहनना बेड़ियां, मजबूर होना मार खाना पर,
नहीं आंसू बहाना यह हमारी साधना होगी।
जहां जंजीर झंकारी, कि सुर में सुर मिला देंगे,
विजयिनी आर्य माता की, यही आराधना होगी।"[3]

इसी भावना से प्रेरित होकर लिखने के कारण कवि ने इस कविता के आरंभ में ही बलि- पंथी से यही प्रार्थना की है कि बलि का मार्ग शूली का है। लेकिन उसे शूली का न समझ कर फूल का मान लेना चाहिए। इतना ही नहीं दु:खों और पीड़ाओं को सन्तोष के साथ ग्रहण करना चाहिए और उन पर आहें नहीं भरनी चाहिए।

"मत व्यर्थ पुकारे शूल - शूल,
कह फूल-फूल, सह फूल-फूल।"[4]

१: माखनलाल चतुर्वेदी व्यक्ति और काव्य - पृ० १७० २: वही०पृ० १७२
३: वही० पृ० १७२ ४: बलि पंथी से - पृ० ९९

गान्धीजी को ही बलि- पंथी के रूप में चित्रित करने का कारण भी कवि ने बताया है । ` कवि के पिता की मृत्यु के बाद ही एक दिन नायब जेलर ने गान्धीजी के पत्र ` नव जीवन ` की एक प्रति कैदी कवि को दी । गांधीजी ने उसमें लिखा था कि मैं झूठा, निष्ठुर और संयम- रहित होकर अपने वातावरण के किसी काम का नहीं हो सकता । उसी दिन ये पंक्तियां लिखी गयीं । यहां बलि- पंथी से तात्पर्य गांधीजी से ही हुआ । `[1]

यहां कवि ने कर्तव्य पर बल दिया है । राष्ट्रीयता का गुण होने के कारण हर्ष एवं विलासता को छोड़कर कर्मशील बनने का आह्वान दिया गया है।-

` कागों का सुन कर्तव्य - राग ,
कोकिल - काकलि को भूल भूल । `[2]

इसमें कर्म को अपनाने और विलासता को त्यागने का उपदेश दिया गया है । जिस प्रकार कौवा, अगर कोई काम करना है तो दूसरे कौओं को भी बुलाकर एक साथ करता है । उसी प्रकार राष्ट्र की जनता भी एकत्रित होकर काम करना चाहिए ; यही कवि का कथन है ।

इस कविता में कवि ने गान्धीजी को राष्ट्रीयता का प्रतीक मानकर उनके द्वारा अपने देश- प्रेम, कर्तव्यशीलता, सहन- शक्ति आदि का परिचय दिया है । गांधीजी में भी हम उपर्युक्त सभी गुणों का दर्शन कर सकते हैं । बलि- पंथी में जो एक प्रधान गुण होना चाहिए, वह है सहनशीलता या सहन- शक्ति । इसके बिना बलि-पथ पथ पर चलना असंभव की बात है । इसलिए कवि ने दूसरों को बलि- पथ का मार्ग बताकर उस पर चलते हुए अपने लक्ष्य की प्राप्ति तक पहुंचने का उपदेश भी दिया है ।

` वीर पूजा ` में भी कवि ने गान्धीजी को ही राष्ट्रीयता के जीवित प्रतीक के रूप में चित्रित किया है । गान्धीजी के व्यक्तित्व के राष्ट्रीय पक्ष का विवेचन भी हुआ है । इस कविता का मूलाधार गांधीजी का अहिंसात्मक आंदोलन ही है ।

- -

१: माखनलाल चतुर्वेदी व्यक्ति और काव्य - पृ० १७४

२: बलि पंथी से - पृ० ६६

यहाँ वीर की पूजा जो हुई है, वह वस्तुत: गान्धीजी की पूजा होइ है। वीर शब्द से गान्धीजी की ओर संकेत किया गया है। कवि ने उनको राष्ट्रीयता का प्रतीक मानकर उसको सर्वोच्चता प्रदान की है। प्रथम पंक्तियों में कवि ने राष्ट्र एवं राष्ट्रपिता गान्धीजी दोनों की शाश्वता पर प्रकाश डाला है। भारत की स्वतन्त्रता-मुक्ति प्राप्ति का मूल कारण गान्धीजी का अहिंसात्मक- आन्दोलन ही है। अत: कवि ने इस कविता का आधार- विषय भी यही रखा है। आज़ादी पर इस आन्दोलन का गहरा प्रभाव है। इस आन्दोलन के परिणाम स्वरूप राष्ट्र की स्वाधीनता एवं अमरता की संभावना के बारे में कवि के मन में जो विचार होते थे उन्हीं का प्रतिपादन इसमें हुआ है। इसकी झाँकी हमें इस कविता के आरंभ में ही मिलती है -

पा प्यारा अमरत्व,
अमर आनन्द अभय पा,
विश्व करे अभिमान,
वीर्य- बल- पूर्ण, विजय पा।[1]

स्वाधीनता और अमरता प्राप्त कर विश्व में मान की प्रतिष्ठा ही यही कवि की कामना थी। इतना ही नहीं गान्धीजी जैसे महान-पुरुष को पाकर भी सारे विश्व गर्व कर सकते हैं। राष्ट्रकी स्वतन्त्रता, अमरता, नवचेतना, नव जागरण आदी राष्ट्र से संबन्धित परम कार्य के कर्ता गान्धीजी ही थे। इसलिए कवि ने उन्हें ' परमकार्य का कारण- रूप ' बताया है।

कवि ने गान्धीजी को ' विजयी ' कहकर पुकारा है। गान्धीजी के मन में दीन-दु:खियों के प्रति अपार श्रद्धा तथा प्रेम था। ऐसे लोगों का उद्धार करना ही उनका कर्तव्य था। अत: कवि ने शान्ति प्रदान करने की प्रार्थना उनसे की है। संक्षेप में कहें तो कवि विश्व-भर में नित्य शान्ति एवं नित्यानन्द की कामना करते थे जो गान्धीजी से ही संभव था।

१: वीर पूजा - पृ० ६०

तू भुजा उठी दे है जगी ।

-- -- --

जगतीतल हुलसाने लगे ।[१]

यहाँ गान्धीजी को विश्व कर्ता के रूप में चित्रित किया है । सारा विश्व गान्धीजी पर निर्भरथा है । अर्थात् संसार में जो कुछ हो सकता था, गान्धीजी के द्वारा ही हो सकता था । अत: कवि ने जगत के समस्त कार्यों को गान्धीजी के समक्ष समर्पित किया है । उनको निभाने का भार उनपर छोड़ दिया है -

तेरे कन्धों चढ़े,

-- --

महावारिधि तरने को ।[२]

यहाँ गान्धीजी एक शासक के रूप में हमारे समक्ष आते हैं । गान्धीजी का जयकार देश- भर में हो रहा था । प्रकृति पर इसका असर पड़ाथा । प्रकृति का तृण-तृण जयरव की ध्वनि सेचकित हो जाता था । उनका जयनाद विश्व- मण्डल को चीरता था ।

यहाँ गान्धीजी की पूजा की तैयारी के बारे में कहा गया है । उनकी पूजा- पद्धति में विचित्रता थी । उनकी पूजा के लिए एक थाली नहीं पन्द्रह कोटि थाली में पन्द्रह कोटि हार थे । केवल मानव ही नहीं, प्रकृति ने भी उनकी पूजा में अपना योग दिया -

आहा ! पन्द्रह कोटि
फूलें औ चरण सुहाये ।[३]

भारत- भूमि गान्धीजी का कर्मस्थल मानी जाती है । वे इसी भूमि पर पैदा हुए, यहीं रहकर अपना कर्तव्य निभाकर अन्त में इसी भूमि पर अपने प्राण भी छोड़ दिये । यह कर्मस्थल नये विचारों एवं भावों से महत्वपूर्ण बना है । कवि

१: वीर पूजा - पृ० ६१ २: वही- पृ० ६१
३: वीर पूजा - पृ० ६२

को आशा है कि इस कर्मक्षेत्र में नया जीवन जन्म ले और काव्य का विषय तक बने ।

> यह हरा- हरा भावों भरा,
>
> -- -- --
>
> स्तुति हो, हुंकार हो ।[१]

यह कविता गान्धीजी से संबन्धित है क्यों कि इसमें वीर को पूजा- गान्धीजी की पूजा - ही वर्णित है । मानव और प्रकृति दोनों मिलकर उनकी पूजा का साधन इकट्ठा करते थे । इसमें वर्णित वीर-पूजा का आधार गांधीजी का अहिंसात्मक आन्दोलन ही है । यद्यपि इसका वर्ण्य विषय गांधीजी है, फिर भी उनका आन्दोलन ही प्रधान- विषय रहा है । इसका कारण यह है कि इस आन्दोलन के बिना देश में इतना परिवर्तन असंभव था । इस आन्दोलन का परिणत फल है आज का भारत देश । इसी से ही भारत स्वतंत्र हुआ और गांधीजी विश्वभर में पूज्य बने ।

` सिपाही ` कविता में कवि ने सिपाही या सैनिक की विद्रोहात्मक या विचारात्मक मनोवृत्तियों का उद्घाटन किया है । माखनलाल चतुर्वेदी देश के स्वाधीनता संग्राम के सक्रिय सेनानी थे । सन् १९३७ से लेकर सन् १९४७ तक का काल भारतीय स्वाधीनता संग्राम का काल रहा है । चतुर्वेदी जी जन्म से ही विद्रोही थे और उसने उनको स्वाधीनता- संग्राम में भाग लेने का अवसर प्रदान किया । उन्होंने इस संग्राम में खूब भाग लिया था । ` चतुर्वेदी जी भारतीय स्वाधीनता संग्राम के अग्रणी सेनानियों में रहे हैं । `[२] इस संग्राम में अपने को देश की बलिवेदी पर अर्पित करने को भी तैयार होते थे ।

प्रस्तुत कविता ` सिपाही ` में सिपाही चतुर्वेदी ही रहे हैं । उनका भारतीय - स्वाधीनता - संग्राम के सैनिक- रूप का चित्रण हुआ है । कवि ने अपने विचारों और कर्तव्यों द्वारा एक सिपाही या योद्धा के विचारों और कर्तव्यों पर विचार किया है । प्रत्येक सिपाही या योद्धा का अभिमान कवि के अनुसार अपने शीश- दान

- -

१: वीर पूजा - पृ० ९२

२: माखनलाल चतुर्वेदी : व्यक्तित्व और काव्य - पृ० ८२

एवं रक्त-दान में है। अतः कवि ने बताया है -

' अरि मुंडों का दान,
-- -- --
एक पूंजी है तीर - कमान।'[1]

सिपाही कदापि विलासप्रिय नहीं होता। वह विलासिता की ओर नहीं झुक सकता। लक्ष्य-सिद्धि के लिए लड़ना ही उसका एकमात्र कर्तव्य होता है। उसको वीणा की मधुर आवाज की जगह धनुष की झंकार सुननी पड़ती है। अतः उसने बताया है -

' सिर पर प्रलय, नेत्र में मस्ती,
मुट्ठी में मन - चाही,
लक्ष्य मात्र मेरा प्रियतम है
मैं हूं एक सिपाही।'[2]

सिपाही ने अपने राष्ट्र को रामराज्य बनाना तथा इसी से अपने को राष्ट्र-विजेता बनाना चाहा है। उसे हमेशा वीर तथा साहसी रहना चाहिए। उसका अन्तिम साध्य बलि है - ' बलि है मेरा अंतिम साध्य।'

इस कविता में कवि ने अपने को एक वीर सिपाही बताया है। सच है वे मात्र कवि न रहकर, एक राष्ट्र-प्रेमी भगवद्भक्त, क्रान्तिकारी, सैनिक इत्यादि भी थे। कवि का सैनिक रूप यहां प्रस्तुत क है। इसमें विदेशी शासकों से लड़ने की मनोवृत्ति का समर्थन खूब हुआ है।

' कालिका से कलिका की ओर से ' - इस कविता के द्वारा कवि ने उनकी राष्ट्रीय - चेतना को व्यक्त करने का प्रयास किया है। इसकी कुछ प्रारंभिक पंक्तियों में कवि ने कलिका से कवि- सहज संवाद किया है और बीच बीच में राष्ट्रीयता की बातें भी की हैं। कवि हमेशा राष्ट्र की सेवा में व्यस्त रहते थे। आजीवन उनमें एक ही भावना - बलिदान की भावना - वर्तमान थी। अतः उनकी राष्ट्रीयता को भी

१: सिपाही - पृ० ४६   २: वही० पृ० ५०

बलिदानवादी राष्ट्रीयता कह सकते हैं। कवि की राष्ट्रीयता, एक शब्द में बलिदानवादी राष्ट्रीयता है।[1]

कलिका एक ऐसी वस्तु है जो प्रकृति की स्वच्छन्द एवं निर्मल हवा के झटके से मनोल्लास के साथ खिलती झूलती रहती है। मगर यहां कवि के बलिदान की वेदी पर चढ़ चुकने के कारण उनमें हंसी, उल्लास, आनन्द आदि नहीं रहा है। कवि अपने सुन्दर तन, अपार धन, अमूल्य जीवन आदि को बलिवेदी पर समर्पित कर चुके हैं। उनके लिए बलिदान कितना महत्वपूर्ण है। वसन्त ऋतु के आगमन की वेला में अपनी सुन्दरता पर गर्वित होकर इठलाने वाली कलिका ने, जो यहां कवि की आत्मा बनकर आयी है।, देश की बलिवेदी पर अपने को अर्पित करना चाहा है। कवि के अनुसार राष्ट्र की सुन्दरता उससे संबंधित किसी भी वस्तु या व्यक्ति के आत्म- समर्पण में निहित है।

अन्त में कलिका ने अपनी प्रिय भारत भूमि पर हंसते - हंसते बलि होने का गीत सुनाया है -

'मैं बलि का गान सुनाती हूं,
प्रभु के पथ की बनकर फकीर,
मां पर हंस - हंस बलि होने में,
खिंच हरी रहे मेरी लकीर।'[2]

अपने प्रिय भारतभूमि पर अपने को अर्पित करने वाले एक वीर का उद्गार है जो बलिदान को ही प्रभु- पूजा का सच्चा मार्ग मानता था, कलिका के द्वारा यहां व्यक्त किया गया है। वे वीर यहां स्वयं कवि ही हैं। 'कवि के लिए राष्ट्र-सेवा और आराध्योपासना एक ही साधना- मार्ग के दो विभिन्न नाम हैं।'[3] कवि ने बलिदान और भक्ति में कोई भेद नहीं माना है।

इस कविता में राष्ट्रीय भावना, प्राकृतिक सुषमा, और आध्यात्मिक विचार का त्रिवेणी संगम हुआ है। फिर भी राष्ट्रीयता की दृष्टि से इसका अपना महत्व अलग है। बलिदान मार्ग के द्वारा भगवान की उपासना का समर्थन किया गया है।

- -

१: माखनलाल चतुर्वेदी : व्यक्तित्व और काव्य - पृ० १२६
२: कलिका से, कलिका की ओर से - पृ० ४३   ३: माखनलाल चतुर्वेदी: व्यक्ति और काव्य - पृ० १७०

अत: कवि ने कलिका से भी भगवद् साक्षात्कार के लिए इसी मार्ग को अपनाने का उपदेश दिया है। कवि के अनुसार यौवन की सार्थकता बलिदान में ही है। अत: उन्होंने अपने सुकोमल तन को बलिवेदी पर चढ़ाया है।

इस कविता के अन्त में कलिका भी कवि की प्रेरणा से बलिदान की महिमा को जानकर अपने को बलिवेदी पर अर्पित करने को तैयार हुई है -

'आई, बहार, मैं उसके ही
चरणों पर नत हो, झुकी सखी,
फिर भी की एक - एक पंखुड़ि,
उस पर बलि मैं कर चुकी सखी।'[१]

कवि का दृष्टिकोण बलिदानवादी तथा वैष्णव होने के कारण इसमें राष्ट्रीयता के साथ आध्यात्मिकता का पुट भी मिलता है। इस कविता में प्रतिपादित विषय तो बलिदानवादी राष्ट्रीयता है।

'अमर राष्ट्र' नामक कविता की रचना सन् १९३८ में खण्डवा में हुई थी। इसमें कवि ने राजनीति की आलोचना की थी। राजनीति उनकी राष्ट्रीय भावना का का प्रधान अंग रही है। कवि गांधीवाद के अन्धानुयायी नहीं थे। उनकी राष्ट्रीयता हमेशा तेजस्वी एवं सक्रिय रही है। सन् १९२८ से लेकर सन् १९३८ तक का समय इसकी परीक्षा का समय था। प्रस्तुत कविता इस समय के अन्तर्गत लिखी गयी है। यह कविता विद्रोह - स्वर से युक्त क्रान्ति- भावना से परिपूरित है। 'क्रांति का आह्वान हमारे राष्ट्रीय कवियों की एक महत्वपूर्ण विशेषता रही है।'[२] चतुर्वेदी जी में क्रान्ति - भावना तीव्र थी, लेकिन उनमें अराजकता की प्रवृत्ति नहीं जो हिन्दी के अन्य राष्ट्रीय कवियों में - जैसे दिनकर, भगवतीचरण वर्मा - दिखाई पड़ती है।

कवि ने प्रस्तुत कविता में क्रांति का शंख फूंका है। उन्होंने त्याग और बलिदान काशंख फूंका है। उन्होंने त्याग और बलिदान का शोर मचाते हुए

- -

१: कलिका से कालिका की ओर से - पृ० ४३
'२: माखनलाल चतुर्वेदी : व्यक्ति और काव्य - पृ० २०२

क्रांति की आग को प्रज्वलित किया है। उनके मत में त्याग और बलिदान ही राष्ट्रीय स्वाधीनता का परम मार्ग थे। उनका आराध्य देव अपनी जन्मभूमि अथवा मातृभूमि ही था और उसकी रक्षा करना कवि ने अपना परम कर्तव्य माना है। उनकी क्रांति-भावना में नाश की मनो-भावना नहीं रहती, प्रत्युत नव- निर्माण की आकांक्षा रही है। इस कविता में चतुर्वेदी गान्धीजी के अनुयायी न होकर, जवाहरलाल नेहरू और सुभाषचन्द्र बोस के अनुयायी बनकर आये हैं।

जब कवि ने इस कविता की रचना की, तब कांग्रेस में दो दल थे - गान्धीदल और सुभाषबाबू दल। गांधीजी का दल अंग्रेजों से समझौता करने के पक्ष में था। लेकिन दूसरा दल इसके विरोधी था। कवि भी उस समय समझौते के विरोधी होने के कारण दूसरे दल में शामिल हुए। इसका समर्थन कवि ने यों किया है -

> अमर राष्ट्र, उद्दण्ड राष्ट्र, उन्मुक्त राष्ट्र।
> यह मेरी बोली
> यह 'सुधार' 'समझौतों' वाली
> मुझको भाती नहीं ठठोली।'[१]

उन्होंने त्याग और बलिदान से राष्ट्र की स्वाधीनता प्राप्त करने में विश्वास किया है। यही भाव उनकी इस कविता में वर्णनीय है। कवि ने जनता से क्रांति के लिए आह्वान किया है। क्रांतिकारी सदा दुःख का भोगी होते हैं और उनका जीवन- पथ कांटेदार और कष्टपूर्ण होता है। फिर भी वे अपने जीवन के इस दुर्गम पथ को पार कर अपने लक्ष्य तक पहुंचते भी हैं।

भारत के स्वाधीनता- आंदोलन में कवि ने अपनी कलम से लोहे के हथियारों को चकनाचूर करने वाली अग्नि बरसा दी और अपने जीवन को जेल- जीवन बनाकर पराधीनता से भारतमाता को मुक्ति के लिए लड़ाइयों का संगठन किया। अतः उन्होंने बताया है -

---

१: अमर राष्ट्र - पृ० १२०

' सूली का पथ ही सीखा हूं ,
सुविधा सदा बचाता आया,
मैं बलि- पथ का अंगारा हूं,
जीवन- ज्वाल जलाता आया । '१

कवि यहां क्रांति की सच्ची मूर्ति बनकर आये हैं जिसमें लड़ाई का उत्क्रोश और आवेग है । वे भी गांधीजी के समान बलि- पथ के पथिक थे । वे स्वयं कहा करते थे - ' मैं तो हूं बलि - धारा - पंथी । ' जिस प्रकार गांधीजी बलि- पथ के दर्शक एवं पोषक रहे थे वैसे ही कवि भी थे । कवि खुद राजनीति के क्षेत्र में उतरे थे और अब वे उससे बाहर आना चाहते थे । कवि ने देश की स्वतंत्रता के पश्चात् राजनीति से विमुक्त होना और सन्यास स्वीकार करना चाहा । कहा गया है कि प्रस्तुत कविता गांधीजी को तभी दे दी गयी थी जब उन्होंने सन्यास स्वीकार कर लिया था ।

संसार भर में क्रांति का वातावरण खड़ा करना वे चाहते थे । देश में कोई उत्सव मनाना भी वे नहीं चाहते थे । उस उत्सव में भी क्रांति की ज्वाला पैदा करना चाहते थे ।

' युग की झोली मांग रही है,
लाओ उसमें आग लगा दें । '२

चतुर्वेदी जी की राष्ट्रीय एवं देश-प्रेम संबंधी कविताओं में बलि-वादी प्रेम का विवेचन होने के कारण इनमें उल्लेखनीय रस बलिदान में ही प्राप्त हो सकता है । दिनकर जी के शब्दों में - ' उनका रस काव्य से अधिक मधुर, रमणी से अधिक मोहक, सुधा से अधिक सरस तथा वज्र से भी अधिक पवित्र है । '३ कवि ने यहां सरसता का स्वाद उसी को कहा है जो बलिदान सीखे, देश के लिए यातनाओं को सहने को तैयार होवे यातनाओं को स्वीकार करना देश के नव- युवक की तपस्या है ।

- -

१: अमर राष्ट्र - पृ० ११४

२: वही० पृ० ११८

३: दिनकर - मिट्टी की ओर -(१९४६)- पृ० १४०, माखनलाल चतुर्वेदी : व्यक्ति और काव्य - पृ० १५४

आज के राष्ट्रीय युग में तरुणाई अथवा यौवन के वैभव- विलास का कोई स्थान नहीं है। आज के कवि जैसे युवकों को यह बहुत कष्टदायक प्रतीत हुआ है। वे एकदम तीर-कमान संभाल कर रण- क्षेत्र में दौड़ना चाहते थे। कवि वैभव-विलास की समस्त सामग्रियों जैसे सोना, चांदी आदि का नाश करके विश्व की फुलवाड़ी में क्रांति के पुष्पों को खिलाना चाहते थे। इस युग में विलासिता की जगह क्रांति का हुंकार कवि चाहते थे। वे भारत में एक अमर राष्ट्र की स्थापना करने की इच्छा प्रकट करते थे। और इस राष्ट्र की स्थापना शांति - समाधान- शिला पर हो सके। उनका सुधारवादी दृष्टिकोण व्यष्टि में ही सीमित न होकर समष्टि में व्याप्त था। जिस राष्ट्र का निर्माण होगा, वह अमर, उद्दण्ड और उन्मुक्त होना चाहिए और उसमें शांति और समाधान शाश्वत हों। एक राष्ट्र की बनावट के लिए सिर पर किरीट पहनकर सिंहासन पर बैठकर वैभव- संपत्ति के भोग- विलास करने वाले राजाओं का अंत होना चाहिए। देश में फैले अत्याचारों और अनीतियों को तपाकर उनका नाश करने के लिए क्रांति- ज्वाला की आवश्यकता पड़ती है। अतः कवि ने इस कविता में क्रांति-भावना को प्रमुखता दी है।

`अमर राष्ट्र' में कवि की क्रांति भावना तीव्र हो उठी है। `अमर राष्ट्र' की अमरता उनका लक्ष्य जान पड़ता है। अतः कवि ने बताया है कि `सुधार' या `समझौते' से राष्ट्र का भविष्य स्थायी नहीं बन सकता। अगर कोई समझौता पहले होता तो बाद में शायद कभी विरोध फूट निकलने की संभावना है। इसलिए कवि ने पूर्ण आजादी की उद्घोषणा की है। इस कविता के आद्यंत उनका यही स्वर गूंज उठता है।

`कैदी और कोकिला' कविता चतुर्वेदी जी के प्रकृतिप्रेम- मूलक कविताओं में एक है। यहां कवि ने प्रकृति से अपनी विरोधी भावना को प्रकट किया है। `श्री माखनलाल जी चतुर्वेदी जी के काव्य में हमें विशुद्ध प्रकृति- चेतना कम मिलती है। वे मूलतः राष्ट्रीयता और रहस्य भावना के कवि हैं।'[१] लेकिन उनकी स्वतंत्रता के पूर्व की कविताओं में ही यह स्थिति रही है। स्वतंत्रता के बाद की कविताओं में प्रकृति के सुंदर चित्र उपस्थित न किये गये हैं।

- -

१: माखनलाल चतुर्वेदी : व्यक्ति और काव्य - पृ० १३६

स्वतन्त्रता से पूर्व उन्होंने प्रकृति - संबंधी जितनी कविताएं लिखी हैं उनमें से अधिकांश कविताएं जेल में लिखी हैं। अत: उनको अधिकांश प्रकृति-प्रेम मूलक कविताएं उनकी राष्ट्रीयता की भूमिका बन जाती हैं। " प्रकृति के प्रति चतुर्वेदी जी के इस विशिष्ट दृष्टिकोण का कारण राष्ट्र के प्रति कवि की समर्पण- भावना है।"[१]

कवि ने अपनी राष्ट्रीय भावना को व्यक्त करने के लिए प्रकृति का उद्दीपन रूप में चित्रण किया है। उद्दीपनात्मक प्रकृति के दो प्रकार होते हैं - १- प्रकृति का निष्क्रिय रूप और २- सजीव रूप। यहां प्रकृति का निष्क्रिय रूप उसका जड़ रूप है और वह अप्रत्यक्ष रूप से मानव को प्रभावित करती है। तब मानव भी प्रकृति की स्थिति के अनुसार अपनी दशा की कल्पना करता है और उसे कविता के द्वारा वाणी देता है। यही प्रवृत्ति हम चतुर्वेदी जी की कविता में देख सकते हैं।

जब कवि इस कविता की रचना करते थे तब वे जेल में रहते थे। कवि जेल में रहने के कारण उनमें सभी प्रकार की अस्वस्थता रहती थी। उनकी चारों ओर दु:ख की दीवारें खड़े हैं। वे अपनी ओर से और राष्ट्र की ओर से चिंतित हैं। कवि तो कैदी बन कर रहे हैं और राष्ट्र भी एक प्रकार से कैदी है। ऐसी हालत में कवि को कोकिला का कूजन असहनीय प्रतीत हुआ। लेकिन कवि इस वक्त अपनी तथा कोकिल की स्थिति की तुलना करते थे। कोकिल के कूजन से उनकी मानसिक अनुभूतियां तीव्र हुई और वे कोकिला को संबोधित कर अपनी दशा पर सोच- विचार करते थे।[२] इसके संबंध में लेखक ने यों कहा है - " राष्ट्रीय पृष्ठभूमि के इस चित्रण में वहां मार्मिकता आ जाती है जहां कवि और अपने वातावरण की तुलना कोयल और उसके वातावरण से करता है।"[३]

इस कविता का विषय कवि और कोकिला के बीच का संवाद है। कवि जब जब कोकिला का कूजन सुनते थे तब तब उनको अपनी तथा देश की विवशता की याद आती थी। कवि जब कारागृह में रहकर तड़प रहे थे, तब राष्ट्र परतंत्र शासकों के

- -

१: माखनलाल चतुर्वेदी : व्यक्ति और काव्य -पृ० १७६ ३: वही०००पृ००१८०

२: मेरे आंसू की भरी उभय जब प्याली ,
बेसुरा ! मधुर क्यों गाने आई आली ? " - कैदी और कोकिला- पृ० १५

३: माखनलाल चतुर्वेदी : व्यक्ति और काव्य - पृ० १८०

हाथों में पड़कर तड़प रहा था । कवि और राष्ट्र की एक ही हालत थी । अत: हमें कवि और कोकिला के संवाद से राष्ट्र की पराधीनता एवं दुर्दशा पर संकेत मिलता है ।

कविता के आरंभ में कोकिला के कूजन से कवि के मन में घबरा जाने का चित्रण किया गया है क्योंकि कवि को लगता था कि कोकिला का कूजन कोई अशुभया नाशकारी सन्देश लाने वाला है । इसलिए कोकिला का स्वर मधुर एवं मनो-मुग्धकारी होने पर भी यहां उनको कड़ुवा लगता है । आगे की पंक्तियों में कवि ने राष्ट्र की दुर्दशा का दयनीय एवं मार्मिक चित्रण किया है । -

ऊंची काली दीवारों के घेरे में ,

-- -- --

शासन है, या तम का प्रभाव गहरा है ? `[1]

इस कविता में कवि ने अपनी चारों ओर के वातावरण का भी चित्रण किया है । वातावरण बड़ा भयानक था और उसमें जितनी भी छोटी ध्वनि सुनायी पड़ती वह भी अत्यंत भयानक प्रतीत होती थी । पराधीन देश की भी यही स्थिति थी । चारों ओर का अंधेरा देखकर उन्हें लगा कि भारत पर पराधीनता का तम छा गया है जिससे उसका सुख- ऐश्वर्य नष्ट हो गया है -

` काली तू, रजनी भी काली,

-- -- --

मेरा लोह- शृंखला काली । `[2]

कवि को कोकिला की काकली विद्रोह - गीत बोती हुई जान पड़ी । इसका कारण यह था कि कवि बड़े दु:खी थे, ऐसे समय में कोई मनोरंजक स्वर या गीत वे सुनना नहीं चाहते थे । उनके मन में सदा विद्रोह की चिंता रही थी । अत: वे जो सुनते थे, वह विद्रोह की सूचना देता लगता था । इसलिए कवि ने यह प्रश्न किया है -

- -

१: कैदी और कोकिला - पृ० १५

२: वही० पृ० १८

'कोकिल बोलो तो !
चुपचाप, मधुर विद्रोह - बीज
इस भांति बो रही क्यों हो ?
कोकिल बोलो तो ।'[1]

कवि ने बताया है कि कोकिल जो है, साधारण सी कोई पक्षी नहीं है । वह रण की उत्तेजना देने वाली है जिसके स्वर में बलिदान का झंझावात सुनायी पड़ता है -

'तोता नहीं, नहीं तू तुती,
तू स्वतंत्र, बलि की गति कूती
तब तू रण का ही प्रसाद है,
तेरा स्वर बस झंझावात है ।'[2]

कवि कोकिला का स्वर सुनने असमर्थ हो गये । उन्होंने कोकिला से अपना गीत समाप्त करने का अनुरोध किया है -

'फिर कुहू ! ----- अरे क्या बन्द न होगा गान ?'[3]

इस कविता में कवि ने अपनी कैदी - अवस्था का मार्मिक चित्रण किया है । वैसे ही परतंत्र भारत के कैदीपन पर भी प्रकाश डाला गया है । अपने मन की दु:खपूर्ण अनुभूतियों को तीव्रता तथा गहनता प्रदान करने के लिए उन्होंने कोकिला को उद्दीपन के साधन के रूप में प्रस्तुत किया है ।

'बन्धन सुख' कविता गणेश शंकर विद्यार्थी जी की प्रथम गिरफतारी पर लिखी गयी है जिसका रचनाकाल सन् १९१७ है । श्री गणेश शंकर विद्यार्थी चतुर्वेदी जी के बड़े दोस्त, प्रेमी, स्वामी सब कुछ थे । वे राष्ट्र- पुरुष थे जिन्होंने असहयोग आंदोलन, अहिंसा-आंदोलन एवं स्वाधीनता संग्राम आदि में भाग लिया था और प्रयत्न

१: कैदी और कोकिला - पृ० १८
२: वही० पृ० १९
३: वही० पृ० २०

करते करते अन्त में अपने प्राण तक छोड़ दिये थे। चतुर्वेदी जी के मन में उनके प्रति बड़ा प्रेम, दया, ममता, आदर तथा भक्ति थे। इनके संपर्क में कवि में स्वाभिमान, देशाभिमान, स्वावलंब आदि भाव विकसित हुए। अतः विद्यार्थी जी का चतुर्वेदी जी पर बड़ा प्रभाव पड़ा था जिससे उनको समस्त कार्यों में सहायता मिली है। इसमें कवि ने सत्याग्रह की अहिंसामूलक भावना का वर्णन किया है। गांधीजी द्वारा संचालित सत्याग्रह आंदोलन में विद्यार्थी जी ने अपना योगदान दिया था। इसी वक्त उनकी गिरफ्तारी हुई थी। भारत का हिंसापूर्ण राजनीति में अहिंसापूर्ण शस्त्रों का प्रयोग एक युगपरिवर्तनकारी घटना थी। बन्दूक और तलवार के स्थान पर जेल और हथकड़ी का उपयोग स्वाधीनता का मार्ग हुआ। सत्याग्रही को जेल अथवा कारागार कृष्ण मंदिर बन गये और बन्धन की हथकड़ियों और जंजीरों के झनकार ने राष्ट्रीय कविता के छंदों में स्थान पाया।

माखनलाल चतुर्वेदी जी को राष्ट्रीय कविताओं की पंक्तियों में भी लोहे का स्वर गूंज उठता है। 'उनका रचनाओं में वीणा की झंकार की अपेक्षा बेड़ियों और हथ-कड़ियों का स्वर मिलना स्वाभाविक है।'[1]

कवि ने इसमें विद्यार्थी जी को 'आत्मदेव' कहकर संबोधित किया है। कवि को भी अहिंसावादी बेड़ियों और हथकड़ियों से बड़ा प्रेम था। क्योंकि ये सत्याग्रह के हिंसा हीन साधन थे जिनसे स्वाधीनता की प्राप्ति संभव है। एक गायक के लिए अपनी वीणा जितनी प्रिय और आदरणीय होतीहै, उसी प्रकार सत्याग्रही कवि को ये साधन प्रिय और आदरणीय थे। इसलिए कवि ने उनको प्रसन्नता के साथ अपनाना चाहा। उन्होंने बताया है -

'आत्म-देव। प्यारी हथकड़ियाँ
और बेड़ियाँ दें परितोष।'[2]

सत्याग्रही वस्तुतः बड़े राष्ट्र- सेवक और सेवा- व्रत होते हैं। यहाँ विद्यार्थी जी भी ऐसे ही सत्याग्रही थे जिन्होंने सत्याग्रह- आन्दोलन में बहुत काम किया था।

- -

१: माखनलाल चतुर्वेदी : व्यक्ति और काव्य - पृ० १४६
२: बन्धन - सुख - पृ० ६३

सत्याग्रही मारकर नहीं, मरकर विजय प्राप्त करना चाहता है। उसके मन में अपने विरोधी की हत्या करने की भावना नहीं रहती, उसमें बलिदान की भावना ही रहती है। यह भावना अहिंसा की द्योतक है।

गान्धीजी की अहिंसा हत्या से होने वाली विरक्ति नहीं है। अहिंसा हृदय की गहराई से निकलती है। अतः जिसके मन में यह भावना निहित है, उसमें घृणा, क्रोध, प्रतीकार की भावना नहीं रहनी चाहिए। अतः वह अपने विरोधियों के प्रति प्रेम प्रकट करता है, उसकी सहायता करता है और उसके मंगल की कामना भी करता है। कवि के मन की यह भावना इन पंक्तियों में व्यक्त हुई है। कवि ने उनके कल्याण की और उनमें मानवता की प्रतिष्ठा की कामना की है। -

'माता ! मेरे बधिकों का
काली - मर्दन कल्याण करें,
किसी समय उनके हृदयों में,
मानवता के भाव भरें।'[१]

इस कविता में अहिंसा - भावना को चित्रित किया गया है जो सत्याग्रही की एक विशेषता है। गांधीजी द्वारा संचालित सत्याग्रह आन्दोलन और उसके लिए प्रयुक्त अहिंसावादी सामग्रियों का सम्यक् विवेचन हुआ है। इस पर गांधीवादी अहिंसा सिद्धान्त का ही प्रभाव है। इसमें कारागार में मिलने वाले शारीरिक एवं आत्मिक दुख का भी वर्णन हुआ है। सत्याग्रही को कारागार का वास सुखद लगता है। और कारागार सत्याग्रही को कृष्ण का जन्म- स्थान सा प्रतीत होता है तो उसके आनन्द की सीमा नहीं रहती। कवि भी कई बार जेल गये हैं और उन्होंने जेल- जीवन का आनन्द- रस लूटा है। विद्यार्थी जी के जेल- जीवन पर रचित इस कविता में उनका बलिदान- भाव व्यक्त हुआ है। विद्यार्थी जी उनके लिए इतने प्रिय थे कि उनके बिना कोई भी कार्य वे नहीं नहीं कर सकते थे।

संक्षेप में कहा जाय तो वे अपने समस्त कार्यों के लिए विद्यार्थी पर ही निर्भर थे। कवि का विश्वास था कि विद्यार्थी जी के प्रवेश से ही या उनके प्रकाश से

- -

१: बन्धन-सुख - पृ० ६३

ही उनकी आत्मा जागृत हुई। अत: उन्होंने उनको ` आत्म - देव ` कहा है। कवि स्वतन्त्रता के दिवस की प्रतीक्षा में थे और तब तक जितनी और जैसी भी पीड़ाएं हों उन सब को सह लेना अपना कर्तव्य मानते थे। यह कविता सचमुच गांधीवादी कविता है जिसमें अहिंसा, बलिदान आदि तत्वों को सुंदर शैली में विवेचित किया गया है। विद्यार्थी जी और कवि दोनों गांधीजी के पुजारी थे, उनके सिद्धान्तों के पोषक और प्रचार करते और उनकी नीति का विश्वास भी करते थे। अत: दोनों पर गांधीजी और उनके सिद्धान्तों का बहुत गहरा प्रभाव पड़ा है।

रामधारी सिंह दिनकर ने गान्धीजी और गांधीवाद पर कुछ कविताएं लिखी हैं जिन्हें उन्होंने विविध काव्य-संग्रहोंमें रखा है। उन्होंने ऐसी कविताओं की रचना बहुत कम ही की है।

` नीम के पत्ते ` की कविताएं :

इसमें विविध विषयक रचनाएं उपलब्ध हैं, मगर गांधीवादी कविताएं दो या तीन ही मिलती हैं। इसकी एक कविता है ` गांधी ` जिसमें कवि ने गांधीजी को भयत्राता के रूप में चित्रित किया है। इसमें गांधीजी ने खुद अपनी जनता को निर्भय रहने का उपदेश दिया है। वे हमेशा ` मा भै: मा भै: ` रटते रहते हैं। जनता से मोह के जाल में न फंसने का अनुरोध वे करते थे। उन्हें सत्य की राह पर चलाने की कोशिश करते हुए कहा है -

` दमन करो मत कभी, सत्य को मुख से बाहर आने दो,
मय के भीषण अन्धकार में ज्योति उसे फैलाने दो। `[1]

उन्होंने बताया है कि सत्य की प्राप्ति तभी हो सकती है जब आदमी निर्भयता के साथ रहता है। -

` सत्य न होता प्राप्त कभी भी सत्य - सत्य चिल्लाने से,
मिलता है वह सदा एक निर्भयता को अपनाने से। `[2]

- -

१: गान्धी - नीम के पत्ते - पृ० ३७

२: वही० पृ० ३७

इसलिए गान्धीजी ने निर्भयता का महत्व बताया है -

' निर्भयता है ज्योति मनुज की ------ करताल प्रबल । '[1]

' निर्भयता ' गांधीजी का एक अमूल्य सिद्धान्त रहा है । वे सदा निडर रहे हैं । उनकी सफलता भी इसी निडरता के कारण से ही सिद्ध हुई । निर्भयता पर प्रकाश डालने के कारण इस छोटी सी कविता का सैद्धान्तिक महत्व है ।

' अरुणोदय ' कविता भारत की स्वतन्त्रता के दिवस - १५ अगस्त १९४७ - पर रचित है । इसमें कवि ने उस पुण्य दिवस का स्वागत अपने हृदय से किया है । समस्त भारत में पराधीनता का अंधकार दूर हो गया और चारों ओर स्वाधीनता की नयी ज्योति का उदय हुआ । इस वक्त कवि उन शहीदों को भूलना उचित नहीं मानते जिनके बलिदानों से भारत स्वतन्त्र हो चुका । -

' जय हो उनकी, कालिमा धुली जिनके अशेष बलिदानों से,
लाली का निर्झर फूट पड़ा जिनके शायक - संधानों से । '[2]

इस दिन को कवि ने मंगल - मुहूर्त बताया है और प्रकृति से भी इसका स्वागत करने का अनुरोध किया है ।

' मंगल मुहूर्त । तरुगण । -- -- -- जय जय गान करो ।'[3]

आगे कवि ने इस दिन का मंगल गीत गाया है । कवि इस दिन पर बहुत गर्व करते थे । अन्त में भारत की जनता से यह प्रार्थना की गयी है कि सामने खड़े होने वाली सारी बाधाओं तथा उलझनों का सामना करते हुए आगे बढ़ना चाहिए ।-

' सम्मुख असंख्य बाधाएं हैं, गरदन मरोड़ते बढ़े चलो,
अरुणोदय है, यह हृदय नहीं, चट्टान फोड़ते बढ़े चलो । '[4]

इस कविता में भारत की मुक्ति पर अपने मन का संतोष प्रकट किया गया है ।

१: गान्धी - नीम के पत्ते - पृ० ७ १७ २: अरुणोदय - पृ० १३
३: वही० पृ० १४ ४: वही० पृ० १६

' पहली वर्ष गांठ ' - यह भी भारत की स्वातन्त्र्य - प्राप्ति की प्रथम वर्षगांठ पर लिखी गयी है। इस एक ही साल के भीतर गान्धीजी की हत्या भी की गयी। अत: कवि ने देश की ऐसी दशा पर अपना दु:ख प्रकट किया है कि भारत अनाथ बन गया। भारत को मुक्ति मिली और इस स्थिति- विशेष का, गांधीजी की मृत्यु के साथ ही अन्त हो चुका। देश की आजादी गान्धीजी की जिन्दा रहने तक सीमित थी -

' आज़ादी खादी के कुरते की एक बटन,
आज़ादी टोपी एक नुकीली तनी हुई। '[१]

कवि को दु:ख था कि अनमोल आजादी को जनता ने बेमोल बना दिया। -

' महंगी आज़ादी के बीतन का एक साल।
बापू को डाला मार, नमक का दाम दिया। '
-- -- --
कश्मीर - हैदराबाद धधकते अब्ते हैं। '[२]

इस कविता में कवि ने देश पर स्वतन्त्रता पाने पर भी, जो अन्याय किया गया, उसी का वर्णन किया है। गान्धीजी के निधन से आज़ादी अर्थहीन हो गयी। कहने का मतलब यह है कि उनकी मृत्यु के बाद देश में अत्याचार और अनीति का ताण्डव - नृत्य पुन: शुरू हुआ जिससे देश में अस्वस्थता और अनीति एकदम फैल गयी हैं। अत: यहां कवि ने स्वतंत्रता- दिवस की प्रशंसा करने के बदले उसकी अनर्थता पर अपना शोक प्रकट किया है।

'हुंकार' की कविताएं : इसमें भी हमें गान्धीवादी कविताएं बहुत कम मिलती हैं। दो या तीन कविताएं ही प्राप्त होती हैं जो गान्धीजी और गान्धीवाद से प्रेरित होकर लिखी गयी हैं।

इसकी एक कविता ' महामानव की खोज ' में किसी महामानव की खोज करने का प्रयास किया गया है। जब देश में अत्याचार पर अत्याचार बढ़ने लगे, तब वे इनको समाप्त कराना चाहा। उन्होंने जनता से यों कहा -

---

१: पहली वर्ष-गांठ - पृ० १७ २: वही० पृ० १६

' अब गया हूं देख चतुर्दिक अपने

-- -- -- --

ताप कलुष है, शिखा बुझा दो मन की । '[1]

कवि ने इस अत्याचार को समाप्त करने के लिए ' गान्धीजी की आध्यात्मिकता को अपनानेके का निश्चय किया । अत: उन्होंने उस प्रचण्ड मानव (गान्धीजी) की खोज की जिनके इशारे मात्र से इस कुत्सित साम्राज्यवाद की नींव डोल सकती है । -

' अन्वेषी मैं उस प्रचण्ड मानव का

-- -- --

इंगित पर इतिहास बदल जाते हैं । '[2]

कवि ने उस महामानव का रूप- चित्रण इन शब्दों में किया है -

' मानवेन्द्र वह अग्रदूत धरणी का ,

-- -- --

धीर अचल - सा, प्रगतिशील निर्भर सा । '[3]

इस कविता में कवि ने गान्धीजी का अन्वेषण किया है, जिससे देश का अन्याय मिट सके । इस कविता के पूर्व की कविता में कवि ने गान्धीवादी विचारों का खण्डन किया है । इस कविता में तो उन्हें देश की तत्कालीन परिस्थितियों और प्रवृत्तियों में समाधान ढूंढने का साधन प्रतीत हुआ । अत: इसमें उन्होंने उनकी अनिवार्यता पर बल दिया है ।

' हिमालय ' कविता में कवि ने उसकी ऐतिहासिक एवं भौगोलिक महत्ता का प्रतिपादन किया है । इसकी अंतिम पंक्तियों में उन्होंने गांधीजी की अहिंसा का विरोध करते हुए कहा है -

' तू मौन त्याग, कर सिंहनाद,

-- -- --

तू जाग - जाग मेरे विशाल । '[4]

- -

...[illegible] पृ५७ १: महामानव की खोज - पृ० ६५ २: वही० पृ० ६७ ३: वही०पृ० ६८

उन्होंने यहां हिंसात्मक क्रांति का आह्वान किया है। सत्य, अहिंसा, धर्म आदि को देश से हटाना चाहा है। अत: उन्होंने कहा -

' तू सिंहनाद कर जाग तपी !

-- -- --

दे प्रलय- नृत्य फिर एक बार। '[1]

इस कविता में कवि का उद्देश्य अहिंसा नीति को मिटाना रहा है। गान्धीजी के सिद्धान्त के अव्यावहारिक या असफल होने की शंका प्रकट की गयी है।

'पराजितों की पूजा ' में गान्धीजी के सविनय - अवज्ञा - आन्दोलन को भारत की पराजय माना था। यह कविता उस समय लिखी गयी जब गान्धीजी ने सत्याग्रह - आन्दोलन रोकने की आज्ञा दी थी। पराजित लोगों की विजयादशमी की पूजा करना कवि को व्यंग्य सा लगा। उन्होंने गांधीजी की नीति को भारत के भविष्य के लिए हानिकारक समझा। उनका कथन है -

' विजया का पूजन करते -- -- -- इस चढ़ते से पानी का ? '[2]

गान्धी- नीति को उन्होंने ' जीवन का शाप ' बताया है -

जीवन का यह शाप! -- -- -- वसुधा वीर- विहीन हुई।'[3]

इस प्रकार इस कविता में गांधी - नीति का घोर विरोध किया गया है।

' रेणुका ' कविता संग्रह में कवि ने गान्धीवाद से प्रभावित एक कविता रची है जिस में अछूतोद्धार की आवश्यकता पर प्रकाश डाला गया है। भारत भर में अस्पृश्यता की निष्ठुर एवं हृदय- भेदी प्रथा चल रही थी। अछूत जनता अपनी निस्सहायता पर आहें भरती रही थी। इससे दिनकर जी का मन पिघल गया और उन्होंने गान्धीजी की सहायता मांगी है जिससे अस्पृश्यता का निवारण हो सके। सर्वप्रथम कवि ने गांधीजी की महिमा गायी -

'तप की आग -- -- पुष्प बरसाती है। '[4]

सारा देश उन्हीं को पुकार रहा है -

' त्रस्त - भार से -- -- मानवता की जंजीर तुम्हें। '[5]

१: हिमालय - पृ० ५६ २: पराजितों की पूजा- पृ० ५२ ३: वही० पृ० ५२
४: बोधिसत्व - पृ० १७ ५: वही० पृ० १७

देश की अछूत जनता को मन्दिर में प्रवेश करने और प्रभु की पूजा करने से रोक दिया गया है। इस बात की ओर कवि का संकेत है -

'आज दीनता की -- -- मानवता अस्पृश्य हुई।'[१]

अन्त में कवि ने गान्धीजी को अपनी तपस्या से जागने का अनुरोध किया है -

'अनाचार की तीव्र -- -- हाहाकारों से।'[२]

इस कविता में गांधीजी को कवि ने गौतम बुद्ध के रूप में चित्रित किया है जो बोधिवृक्ष के नीचे बैठ कर तपस्या किया करते थे। इसमें उन्होंने अस्पृश्यता दोष निवारण की गांधीजी से प्रार्थना की है।

'भूमितिलक' की एक ही कविता है 'बापू'। इस छोटी सी कविता में कवि ने गांधीजी के बलिदान के बारे में कुछ कहा है। भारत की स्वतंत्रता की प्राप्ति के लिए गांधीजी ने रक्तदान दिया है -

वसुधा को --- ---- अपना रक्त दिया।'[३]

उनके बलिदान से ही देश की स्वतंत्रता अमूल्य बन गयी है।

'कोशल और कवित्व' - इसमें भी एक ही कविता मिलती है और वह है 'गांधी'। इस कविता में कवि ने गांधीजी की प्रशंसा की है। इसके पहले इसमें उन्होंने देश में पालित एवं व्यवस्थित मार्क्सवादी नियमों की चर्चा की है। और इसके विरुद्ध उन्होंने गांधीवादी नियमों का गुणगान किया है। ऐसे समय में गांधीजी इस धरती पर अवतरित हुए थे -

'जब तुम आये सारी मानवता की पुकार पर,
भारत की तो मुक्ति आप से आप हो गयी।'[४]

१: बोधिसत्व - पृ० १८ २: वही० पृ० १९
३: बापू - पृ० २४ ४: गांधी - पृ० ५८

गांधीजी का सत्याग्रह - संग्राम एक ऐसा विचित्र संग्राम था जिसमें उन्होंने प्रेम रूपी बाण और सेवा रूपी धनुष से काम लिया था । उनका सत्याग्रह एक धर्म- युद्ध था -

' राम बाण है प्रेम, धनुष विनयानत सेवा संयम,
धर्म युद्ध सत्याग्रह, आत्मा नहीं रक्त की प्यासी ।।'[1]

गांधीजी पर अद्वैत भाव का प्रभाव पड़ा था -

' जागा अद्वय भाव, राम है जन- जन - घट - घट - वासी ।'
पीड़क पीड़ित दोनों में सच्चिदानन्द अविनाशी । '[2]

गांधीजी के सत्याग्रह में दोनों पक्षों की विजय होती है, एक पापों का प्रतिरोध है और दूसरा पापियों के प्रति दयामय व्यवहार -

' पापों का प्रतिरोध, न हो पर पापी के प्रति हिंसा,
शुभ शौर्य सत्याग्रह, जिसमें दोनों पक्षों की जय ।। '[3]

अंत में कवि ने जनता को यही बताया है कि -

' शांति शिवत्व -- -- जो गोली खायेगा । '[4]

यहां कवि ने गांधीजी के जन्म, विलायत गमन, भारत प्रत्यागमन, दक्षिण - अफ्रीका गमन आदि बातों पर इस कविता में प्रकाश डाला है । गांधीजी के सविनय अवज्ञा आन्दोलन, सत्याग्रह, सर्वोदय आन्दोलन, समिष्टि भावना आदि का विवेचन भी इसमें किया गया है ।

' अग्नि शस्य ' - कविता संग्रह में कवि नेरेन्द्र जी ने स्वतंत्रता दिवस पर एक कविता का सृजन किया है । और वह है १५ अगस्त १९४७ । यह दिन भारत की आजादी का पुण्य दिन है । गांधीजी ने हो भारत को आजादी प्रदान की है, यह बात सर्व-विदित है। अत: प्रस्तुत दिवस का गांधीजी से संबंध है और गांधीवादी कवि तथा अन्य कवियों ने भी

- -

१: गान्धी गाथा - पृ० ११२   २: वही० पृ० ११२
३: वही० पृ० ११३   ४: वही० पृ० ११३

इस मंगल दिवस का गुणगान किया है । कवि ने भी इस कविता में इसी दिन की महिमा का गीत गाया है ।

यहां कवि ने भारत की स्वतंत्रता- पूर्व और पश्चात् की दशा का वर्णन किया है । स्वतंत्रता के पहले भारत की दशा अत्यंत दयनीय थी -

' अन्न - वस्त्र - हीन दीन थी निरक्षरा ,
भस्म साथ थी हिरण्मयी वसुन्धरा ;
अप्रकेत शक्ति - सिंधु, सुप्त चेतना,
विकृति से विचाक्त थी विमल परंपरा । '[१]

लेकिन स्वतंत्रता के पश्चात् भारत की दशा यह हुई -

' किंतु तिमिरमयी निशा चली गयी ,
शापमुक्त , पापमुक्त हो रही मही ,
तिमिर तोड़ फोड़ भानु भासमान रे -
नव- विहान, नव विधान, भारती नयी । '[२]

' रक्त-चंदन ' - यह काव्य गांधीजी की हत्या के बाद उनकी पुण्य - स्मृति में रचित है । इसमें कवि ने गांधीजी को अपनी श्रद्धांजलियां अर्पित की हैं । गांधीजी की हत्या की गयी और भारत का शांतिचन्द्र[३] रुधिर की नदी में डूब गया। उनकी हत्या के बाद रक्त - धारि का जो प्रवाह हुआ उसे देखकर कवि ने यों कहा - 'वह रक्त नहीं, रक्त - चंदन था जिससे गांधीजी हमारे स्वातंत्र्य प्रभात को सींच गये हैं । '[४]

यह काव्य अनेक छोटे मुक्तकों का संकलन है । यह गांधीजी पर रचित मुक्तक काव्य है । प्रथम मुक्त ' गांधी जी ' में कवि ने उनकी विशाल मनस्विता, सर्वत्याग, सत्य-कामी, अचंचलता, सत्संगता आदि गुणों का विश्लेषण किया है ।

- -

१: १५ अगस्त १९४७ - पृ० ४८ २: वही० पृ० ४८
३: वीरेन्द्र जी ने उन्हें ' शांति-चन्द्र कहा है ।
४: रक्त चंदन - पृष्ठ ३ , निवेदन में

वे इतने उदार- मन वाले थे कि देश के नाम पर सब कुछ त्यागने को तैयार थे। कर्म या कर्तव्य के जाल में पड़कर उन्होंने अपनी प्यारी पत्नी का भी मानव- हित बलिदान किया। वे अपने सिद्धान्तों और आदर्शों पर सधीर डटे रहे और उन्हें कोई भी हिला नहीं सका-

' जिन आदर्शों - सिद्धान्तों पैक
तुम अटल अचल,
(इस अटल अचल को हिला न पाई। '
अहंकार की मति चंचल) [१]

वे सत्य के अभिलाषी थे। उनका जीवन ही एक प्रकार से सत्य का अन्वेषण और प्रयोग था। उन्होंने कर्म-पथ पर खड़े होने वाले असत्य का सामना करते हुए सत्य की खोज की। उसके मिलने पर उन्होंने जनता के समक्ष उसकी महिमा बतायी और जीवन में उसका प्रयोग करने का उपदेश दिया। गांधीजी ने जनता की भलाई के लिए हिंसा रूपी विष का पान किया और वे शंभु कहलाये गये। गांधी जी युद्ध नहीं चाहते थे। इसलिए उनके सामने जय- पराजय, सुख- दुख आदि बातें बेकाम और बेकार थे। वे सब को सुख और दुःख में सखो देखना चाहते थे। -

जय और पराजय के सुख - दुःख से
नहीं युद्ध की गीत शासित। ' [२]

दूसरे मुक्तक ' अहिंसा क्रांति ' में कवि ने अहिंसा की महिमा गायी है। गांधीजी की अहिंसात्मक - क्रांति एक विचित्र प्रकार की क्रांति थी।

क्रांति यों जग में हुई अब तक कई,
पर अहिंसा क्रांति की संज्ञा नई, शैली नई। ' [३]

अहिंसा और आध्यात्मिकता का घनिष्ठ संबंध है। केवल अहिंसा मात्र से कुछ नहीं हो सकता -

- -

१: गांधीजी - रक्त चंदन - पृ० ११ २: वही० पृ० १२
३: वही० पृ० १३

' है न यदि अद्वैत में विश्वास,

-- -- --

तो अहिंसा भी दुराग्रह आसुरी । '[1]

अंत में कवि ने यह खेद प्रकट किया है कि जनता के मन में अब भी हिंसा- वृत्ति का भाव पैदा हो रहा है और वह स्वार्थी बनना चाहती है । -

' पर अहिंसा -- -- इतिह नहीं '[2]

तीसरे मुक्तक ' जिन्ना और गांधी ' में कवि ने दो विरोधी तत्वों का विश्लेषण किया है जो व्यष्टि - समष्टि मूलक हैं । और उनमें से समष्टिमूलक तत्व को महत्वपूर्ण बताया है । जिन्ना और गांधीजी दोनों व्यष्टिवादी और समष्टिवादी क्रमशः थे । जिन्ना व्यक्तिवाद के समर्थक थे और गांधीजी मानवता वाद के ।

' एक ओर है व्यक्तिवाद उच्छिष्ट ,

-- -- --

है तप का । '[3]

जिन्ना के पक्ष में नर- हत्या की हिंसा-वृत्ति है तो गांधीजी के पक्ष में बलिदान की अहिंसा- वृत्ति मौजूद है ।

' कर खण्ड खण्ड मानवता को वह

-- -- --

तन मन धन को । '[4]

वहां अहंकार नृत्य कर रहा है तो यहां प्रेम क्रीड़ा कर रहा है -

' दर्पमूल तानाशाही है वहां

-- -- --

का संबल है । '[5]

१: अहिंसा - क्रांति - रक्त- बन्धन - पृ० १३ २: वही० पृ० १४
३: जिन्ना और गांधी - पृ० १५ ४: वही० पृ० १५ ५: वही० पृ० १६

अन्त में कवि ने कहा है कि नीति और अनीति में से नीति की ही सदा विजय होती है। इसलिए दुराग्रह को सत्याग्रह जीत सकता है -

' क्या न दुराग्रह को जीत सकेगा, सत्याग्रही समर्पण ? '[१]

चौथा मुक्तक है ' सार्थवाह बापू ' और इसमें गान्धीजी की प्रशंसा है। यहां मानव और ' महात्मा ' गांधी में जो भेद है उसी को प्रकट किया गया है। गांधीजी व्यापक दृष्टि - युक्त, त्रिपथगा -प्रवाही, महामना और जन-जीवन की ज्योति- शिखा हैं। लेकिन मानव संकुचित दृष्टि से देखा करता था और अपने हित सब कुछ किया करता था। वह अपने अंदर संकुचित रहा करता था, उसमें दूसरों की चिंता तक नहीं रहती थी। लेकिन गांधीजी की प्रेरणा पाकर वह भी समष्टि की ओर बढ़ना चाहता था। अतः वह गांधीजी से यही प्रार्थना करता था -

' हम भूल रहे हैं पग पग पर

-- -- --

कर्तव्य, त्याग, बलिदान - नेम। '[२]

'जनधन बापू ' पंचम मुक्त क है जिसमें कवि ने गांधीजी को ' जनधन ' कहकर उनसे जनता का उद्धार करने की प्रार्थना की है। गांधीजी ने पुरानी रूढ़ियों और सिद्धान्तों को मिटाकर नवयुग की स्थापना की -

' जड़ता का घोर तिमिर,

-- -- --

छाये हो नवयुग तुम, '[३]

गांधीजी जनता के सेवक के रूप में चित्रित हुए हैं -

' जन- सेवक, जन- शासक,

-- -- --

जनता का चाटुकार। '[४]

१: बिम्ब और गांधी - पृ० १६ २: सार्थवाह बापू - पृ०१८

३: जनधन बापू - पृ० १६ ४: वही० पृ० २०

गांधीजी के आगमन से जनता की करुणा-पूर्ण आँखें विकसित हो उनसे कुछ मांग रही हैं-

' जड़ता को हुआ चेत,
-- -- --
उल्काएं अस्तंगत । '[१]

कवि ने मानव के कल्याण के लिए गान्धीजी के चिरंजीवी रहने की आशा प्रकट की है-

' युग - युग तक, रहो देव ,
-- -- --
ममता- मद - मोह - विरत । '[२]

' महात्मा गांधी ' में गांधीजी को प्रकृति - वर पुत्र माना गया है और उनमें प्राकृतिक हाव - भाव के गुणों को देखने का प्रयास किया गया है -

' तुम प्रकृत - पुत्र भारत की वसुंधरा के,
-- -- --
प्रपीत शस्य तुम मुकुलित पार्थिवता के । '[३]

' नये महात्मन् ' में गांधीजी की मृत्यु पर अपनी मानसिक विषमता प्रकट की है। गांधीजी व्यष्टि - व्यष्टि में ही समा रहना नहीं चाहते थे। उनका दृष्टिकोण सार्वजनिक एवं समष्ट्यात्मक था। अतः उन्होंने गांव - गांव में पैदल जाकर जनता की दुःख कथा सुनी और उनकी दशा सुधारी -

' जटिल संकुचित गूढ़ ग्रन्थि में
-- -- --
नये त्राता करुणाकर - '[४]

गान्धीजी का धर्म सेवायुक्त कर्तव्य था -

१: जनयन बापू - पृ० २१ २: वही० पृ० २४
३: महात्मा गांधी - पृ० २५
४: नये महात्मन् - पृ० २६

' मेरी और तुम्हारी सेवा,
यही धर्म था उसका ; '१

गांधीजी एक अपूर्व व्यक्ति थे और उन जैसा व्यक्तित्व मिलना कठिन है, दुर्लभ है। फिर भी ऐसे ही व्यक्ति की हत्या मानव ने की है -

' युग- दुर्लभ ऐसे बापू को
गंवा दिया क्षण भर में। '२

गांधीजी को अजातशत्रु, पुरुषोत्तम, दरिद्र नारायण आदि कहा गया है - ।

कवि ने अपनी ' हत्यारा ' नामक कविता में गांधीजी की मृत्यु को एक असामान्य घटना बतायी है -

' वयोवृद्ध बापू की हत्या
-- -- --
जिसने उनका हत्यारा ? '३

भारत की दशा अत्यन्त शोचनीय थी। बाह्य और आंतरिक दृष्टियों से यहां लड़ाई-भिड़ाई, हलचल, कोलाहल हो रहा था। इसी समय गांधीजी ने भारत के राजनैतिक क्षेत्र में पदार्पण किया -

' ग्लानि- मग्न भारत के त्राता
-- -- --
बने संजीवन दायक। '४

'महात्मनिधन ' भी गांधीजी की हत्या पर रचित कविता है। गांधीजी की हत्या से भारत देश को बड़ा आघात पहुंचा है। कवि ने इसमें भारत के भविष्य की चिंता करते हुए कहा है - देश के भावी- निर्माता कौन होगा ?

१: सावधान - पृ० २६ २: वही० पृ० ३०
३: हत्यारा - पृ० ३१ ४: वही० पृ० ३२ - ३३

` देवालय ` में गांधीजी की मृत्यु की बात कही गयी है । कवि ने उनके शरीर को देवालय कहा है जिसके अंदर रामचन्द्रजी की मूर्ति प्रतिष्ठित है । गांधीजी को ब्रह्मज्ञान का अनमोल रत्न माना है ।

` रामनाम पुण्यात्माओं का
अन्त समय का धन है
ब्रह्मज्ञान का यह प्रतीक
ऐसा अनमोल रतन है , `[१]

गांधीजी की मानसिक और शारीरिक दिव्यता यहां स्पष्ट होती है -

दस्यु न ह कोई छीन सका है
-- -- --
रामभक्त का तन है । `[२]

`दिव्यात्मा ` में भी गांधीजी के निधन की बात कही गयी है । मरते वक्त भी उनके मुख से `` हे राम ` शब्द निकला था । वे अपने कर्तव्य - पथ पर अग्रसर होते समय तनिक भी चंचल होकर न हिले न डुले ।

` हिले न तिल भर सेवा- पथ से
सत्याग्रह - व्रत - साधे । `[३]

`रक्त चंदन ` में गांधीजी की हत्या के कारण उनके तन से बहे रक्त को चंदन कहा गया है- जिससे भारतमाता के ललाट पर आज़ादी का तिलक लगाया गया । उनके मरण को `नव भव का अभिनंदन `` कहा गया है । गांधीजी जनता के लिए जीवित रहे और उनकी भलाई के लिए अपने बलिदान भी कर गये -

` मर्त्यों के हित निर्माण किया
-- -- --
नित दिया पुण्य हरि भजकर । `[४]

१: देवालय - पृ० ३७ २: वही० पृ० ३७
३: दिव्यात्मा - पृ० ३८ ४: रक्त चन्दन - पृ० ४०

'श्रद्धा कमल' में कवि ने गान्धीजी को श्रद्धांजलि के रूप में श्रद्धा-कमल अर्पित किया है। गान्धीजी की मृत्यु पर कवि ने बड़ा पश्चात्ताप प्रकट किया और उनकी हत्या को उनके जीवन का निष्ठुर तथा निर्मम परिणाम कहा है -

' पर कितना कठोर निष्ठुर वह
रूप खिला निर्मम परिणति का। '[1]

गांधीजी के मरण के उपरांत भारत के अश्रु - जल में श्रद्धा - कमल खिलता है जो उनकी स्मृति जगाने में सहायक होता है -

' आज राष्ट्र के आंसू जल में
श्रद्धा - कमल पल रहा है। '[2]

'देन' में कवि ने वर्तमान युग के जीवन को गान्धीजी की देन माना है जिन्होंने भौतिक आसक्तियों से अप्रभावित एक सरल जीवन को जनता के सम्मुख रखा।

'हेतु' में कवि ने गांधीजी के निधन पर कुछ बताया है। गांधीजी अपने को बलिदान करके रामचन्द्रजी में समा गये -

' हो गये राम मय,
ले विराम कह राम!
हे राष्ट्र देवता
कर निज को बलिदान

' राम ' में गांधीजी को भगवान रामचन्द्र जी के रूप में चित्रित किया गया है। जिस प्रकार रामचन्द्रजी जनता के हितान्वेषी बन कर जनता के बीच में रमते थे उसी प्रकार गांधीजी भी गांव- गांव भटक कर जनता को दर्शन देते थे और उनसे कुशलान्वेषण करते थे।

' उपकार ' में गांधीजी के कर्तव्य को उपकार मानते हुए उन्हें धन्यवाद देने का प्रयास किया गया है। गांधीजी ने भारत-वासियों के लिए जो कुछ किया, वे सब सदा

१- श्रद्धा- कमल - पृ० ४७ · २: वही० पृ० ४८ ३: हेतु - पृ० ५०

अभिनन्दनीय हैं। उन्होंने ही भारत को, जो सुषुप्ति में तल्लीन था, जगाया है। गांधीजी ने देश के उद्धार के मंगल - कर्म के लिए वेद, उपनिषद्, गीता आदि से प्रेरणा प्राप्त की है -

` वेद से ले संवरण - स्वभाव,

-- -- --

जन्म ले धन्य किया संसार। `[1]

`अस्थि विसर्जन ` भी गांधीजी की मृत्यु से संबंधित कविता है। उनका जड़- शरीर जलकर राख का ढेर बन गया है। वे रामभक्त होकर इस धरती पर अवतरित हुए शांतिपूर्ण क्रांति का ताण्डव रचा और अन्त में हिंसा - विष पीकर फिर उसी शक्ति में लीन हो गये -

` शान्ति - क्रान्ति प्रलयंकर

-- -- --

महेश बन गये। `[2]

` निश्चित ` शीर्षक कविता में महात्मा के कंटकित जीवन के बारे में कहा गया है जो उनके लिए कुसुम- कोमल था। पर- सेवा ही उनके जीवन का लक्ष्य थी। और उसी में अपना क्षण - क्षण बिताया है। कवि ने कहा है गांधीजी जैसे व्यक्तियों के लिए आत्म-बलिदान बड़े कठिन कार्य है जो बड़े भक्त और समर्थ होते हैं।

`प्रत्यक्ष ` में कवि ने गांधीजी के जीवन में सत्य को प्रतिष्ठा करने की बात कही है। उन्होंने सूक्ष्मातिसूक्ष्म सत्यवत् बातों एवं तत्वों को जीवन में व्यवहृत किया उन्होंने मानव- जीवन में सत्यामृत की वर्षा कर दी। वे अत्याचार और अनीति के विरुद्ध शोर मचाते थे और अंग्रेजों के अधिपति- दर्प को न्याय और नीति के द्वारा पराजित किया।[3]

`स्वर्ण चित्र ` कविता में भारत की आजादी के बारे में कहा गया है, जिसे गांधीजी ने उसे प्रदान किया है। वे जगत के कुतल पर स्वातन्त्र्य भोर का स्वर्णिम

- -

१:उपकार`- पृ० ५६ २: अस्थि विसर्जन - पृ० ५७ ३: प्रत्यक्ष -पृ० ५६

चित्र अंकित करके चले गये। कवि को आशा थी कि जनता इसे सुरक्षित रखे ताकि उस पर धूलि न लपेट जाय।

'केवल तुम' में गान्धीजी की प्रशंसा है। उनमें इतना साहस और इतनी सहनशीलता थी कि वे ही एकमात्र व्यक्ति थे जिन्होंने देश की जटिल और अस्तव्यस्त परिस्थितियों के बीच कूदकर अपनी कर्तव्य - निपुणता से देश का उद्धार किया। उन्हें ईश्वर पर और कर्तव्य पर अनन्त विश्वास था जो कर्म-क्षेत्र में बहुत सहायक रहा है।

'मुक्ति' में गांधीजी को प्राप्त भौतिक मुक्ति के बारे में कहा गया है। गांधीजी इस देश में रहकर अविराम प्रयत्न करते रहे और अब उन्हें इससे सचराम मुक्ति मिली है। यह भी माननीय कि गान्धीजी के विदेही होने पर भी उनमें प्रयत्न करने के लिए काफी ताकत थी। एक भारी शरीर वाले व्यक्ति से बढ़कर बहुत से कार्य दुबले - पतले शरीर वाले गान्धीजी ने किया है। यह उनके आन्तरिक बल की महत्ता है।

'मानव तुम' में कवि ने महात्मा जी को मानवत्व प्रदान करने का प्रयास किया है। वे मानव के समान जीवित रहे, उनके कल्याण के लिए प्रयत्नशील रहे और मानवपन से मुक्ति पाने के लिए इस संसार से चल बसे।

'सम्प्रति सन्देश' में कवि ने कहा है कि गांधीजी की मृत्यु का कारण गोड्से है - यह कहना उचित नहीं, क्योंकि जो होना है वही होना है, जन्म है तो मृत्यु आवश्यंभावी है। अतः उनकी मृत्यु को किसी के द्वारा की गयी हत्या नहीं समझना चाहिए।

'अलिखित गीत' में कवि ने गांधीजी को अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की है। श्रद्धांजलि के रूप में कवि ने प्रस्तुत गीत को उनके सामने अर्पित किया है। अनाघ्रात पुष्पों के रूप में कवि ने गीत को प्रस्तुत किया है।

'सूर्य अस्तमित' में गांधीजी का अस्त होना दिखाया गया है। गांधीजी भारत देश का सूरज थे। उनकी हत्या होने के कारण यह सूरज ढल गया।

'आज़ाद हुए' में भारत की आज़ादी का वर्णन है और साथ ही गांधीजी का स्मरण भी किया गया है । आज़ादी जैसा महान कार्य गांधीजी के द्वारा ही सिद्ध हुआ है । इससे और बड़ा काम दूसरा कोई नहीं ।

'आज़ाद हुए, आज़ाद हुए
उससे भी जिसने किये भले बड़े ।'[1]

'शांति - चन्द्र' में कवि ने क गांधीजी को शांति- चन्द्र कहा है । इस चन्द्र का उदय आगे कदापि न होने वाला है । यह चन्द्र रक्त- सागर में डूब गया है। भारत में शांति के संस्थापक थे गांधीजी । उनके जाने पर भी उनके आदर्शों और सिद्धान्तों का अनुसरण और पालन जनता करती रहेगी, यही कवि का विश्वास है । -

'स्वार्थों के संग्रह में
विग्रह होंगे नितांत !
सब समान शत्रु मित्र
जूझेगी बुद्धि भ्रान्त ।'[2]

वन्दना के बोल : ~~(इस संकलन की)~~ यह गांधीजी और उनके आदर्शों पर प्रणीत कविताओं का संग्रह है । इसमें कवि ने गांधीजी के प्रति अपनी श्रद्धांजलि प्रकट की है । इसकी कविताएं छोटी और सार- गर्भित हैं । यह उनके प्रति कवि की वन्दना के बोल हैं जिसमें उनका गांधीजी के प्रति प्रेम, ममता और आदर प्रकट हुआ है ।

'वन्दना के बोल' - इस संकलन की यह प्रथम कविता है जिसमें कवि ने अपनी वन्दना प्रकट की है । कवि को प्रस्तुत काव्य- संकलन लिखने के लिए जो प्रेरणा अपने प्राणों से मिली उसी का विवेचन किया गया है । कवि ने जब कल्पना- जगत से उतरकर मानव- जीवन- जगत में प्रवेश किया, तब उनका मन भी मानवता के प्रति उड़ना चाहता है।

'जिंदगी में स्पर्श चरणों
-- -- --
स्पर्श पाने जा रहा है ।'[3]

१: आज़ाद हुए - पृ० ७३ २: शांति-चन्द्र पृ० ७५
३: वन्दना के बोल - पृ० १.

ऐसी अवस्था में ही मानवीय कविताओं का सृजन हो सकता है। कवि का सुर भी गांधी - संबंधी श्रद्धा- भरा गीत गाकर अमरता प्राप्त करना चाहता था -

> ' बज रहे हैं बोल व्याकुल
>
> -- -- --
>
> गा नहीं गाथा गा रहे हैं। '[1]

'शुभागमन' - इसमें गांधीजी के अवतार के बारे में कहा गया है। उनके अवतार को शुभागमन बताया गया है। गांधीजी देश की विभिन्न भीषण परिस्थितियों में नाविक जन- रक्षक, मधुर - गायक, प्रेमी आदि रूप धारण कर अवतरित हुए। उदाहरण के लिए

> ' व्याप्त जन - जन की रगों में,
>
> -- -- --
>
> प्रीत का प्याला पिलाने ? '[2]

स्वर्ग का वरदान : पृथ्वी पर गांधीजी के अवतार को कवि ने स्वर्ग का वरदान कहा है। विनाश के गर्त में पड़ने वाले देश के उद्धार के लिए उनका जन्म वरदान ही था। तिमिराच्छन्न देश में प्रकाश लाने, नाशवान जगत को मंगलमय बनाने, असत्य की जगह सत्य प्रतिष्ठित करके हिंसा के बदले प्रेम सिखाने, पराजय को दूर हटाने के लिए उनका अवतार सहायक बना-

> ' सत्य के दो बोल सुनना
>
> -- -- --
>
> मुस्कान पृथ्वी पर उतरकर। '[3]

विश्व प्राण : यहां गांधीजी के बारे में कहा गया है। संसार में असंख्य मानव जीते हैं, तरह तरह के जीवन होते हैं, वे जहर के नशे में नाचते - बिचरते हैं सबकुछ हैं। लेकिन ये लोग प्राण-हीन थे और उनके जीवन में सरसता कहीं नहीं दिखाई पड़ती थी। किसी ने उसे सरस और सजीव नहीं बनाया। मगर गांधीजी ही एक व्यक्ति थे जिन्होंने विश्व-भर के लोगों को प्राणयुक्त और उनके जीवन को सरस बनाया है। अतः वे विश्व के प्राण थे।

१: वन्दना के बोल - पृ० १ २: वही० पृ० २ ३: शुभागमन - पृ० ४

' एक था इन्सान जग में ,

-- -- --

संभाला ही नहीं है । '[1]

पारस : इसमें कवि ने गांधीजी के हृदय को पारस कहा है जो अत्यंत उपकारी वस्तु था । उनके मने से स्नेह और व्यक्तित्व का झरना एकदम बहता था । उनका अस्तित्व अमिट और अनंत था ।

नवयुग की मुस्कान : कवि ने कहा है कि गांधीजी के हंसी में नवयुग हंस पड़ा । गांधीजी हमेशा हंसमुख रहे थे । और उस हंसी में समस्त संसार भासमान होता था । संसार में जिन जिन वस्तुओं का अभाव था, उसे उन्होंने अपने कर्तव्य द्वारा पूरा किया । गांधीजी के आत्मबल की चतुरता कवि ने यों बतायी है -

' शस्त्र ने संसार में जीते

-- -- --

शस्त्र - बल को भी हराया । '[2]

इस प्रकार गांधीजी की मुस्कान में नवयुग हंस रहा है । और नवयुग के हर्षोल्लास में गांधीजी हंस रहे हैं ।

युग-चेतना : नवयुगीन चेतना जो अब देश भर में फूट निकली है, वह गांधीजी में लीन थी । उन्होंने ही देश में नव- युग की चेतना को प्रदान किया । दुःखित जनता को देखते ही उनको वेदना होती थी । कारण यह है कि जनता का दुख अपना दुख और उनका सुख अपना सुख मानने वाले थे गांधीजी । -

' देख दुनिया को व्यथित

-- -- --

वेदना में थी निहित । '[3]

गांधीजी ने देश की विषमता के दूर होने और नवयुग का निर्माण के होने की कामना की ।

१: विश्व - प्राण - पृ० ८८ २: नवयुग की मुस्कान - पृ० १२

३: युग - चेतना - पृ० १३

' चाहते तुम थे कि दुनिया

-- -- --

कामना में थी निहित । '[1]

<u>जन- जीवन</u> : यहां गांधीजी से निर्मित जगत के जीवन का चित्रण किया गया है । गांधीजी ने ही इस जीवन को रूप प्रदान किया है । उनके द्वारा मानव- जीवन सचेती बना है -

' किन्तु तेरी देह में
इन्सानियत को तन मिला । '[2]

घर था और बन्धन भी उनके लिए प्रिय था । उन्होंने देश को
बार कारा-वास किया है ।

' दासता को दूर करने

-- -- --

था तुझे बन्धन मिला । '[3]

<u>मधु-मास</u> : गांधीजी विश्व के उद्यान में मधुमास लाये थे । भारत के स्वतंत्र हो जाने से मधुमास का आरंभ हुआ ।

<u>मनमीत</u> : यहां कवि ने गांधीजी को मन का मित्र कहा है । गांधीजी ने शस्त्रों और अस्त्रों की सहायता के बिना अहिंसा के द्वारा भारत को आजादी प्रदान की । सत्य और अहिंसा मानसिक उद्भावनाएं हैं । कवि ने भारत की भयानक दशा का चित्रण करते हुए गांधीजी के आगमन को शुभ माना है -

' सत्य को चमका दिया मृदु

-- -- --

शक्ति आशातीत बापू । '[4]

१: युग - चेतना पृ० १५ २: जन-जीवन - पृ० १५
३: वही० पृ० १६
४: मन-मीत - पृ० २०

जगद् गुरु :

गान्धीजी इसमें जगद्गुरु के रूप में चित्रित हुए हैं। उन्होंने जनता को निडर रहने, वार सहने सत्य पर अग्रसर होने की बात सुनायी। उन्होंने बताया कि वार करना उचित नहीं, मगर वार सहना ही वीरता की निशानी है। अनीति के द्वारा जय पाने में कोई आनन्द अथवा सन्तोष नहीं मिल सकता -

> ' वीर करना क्रूरता है
> वार सहना शूरता है।
> -- -- --
> हार है इन्सानियत की। '१

अडिग :

यहाँ कवि ने गांधीजी की अटलता पर प्रकाश डाला है। स्थिरता उनके व्यक्तित्व का प्रधान गुण है। यही गुण उन्हें महामानवता के पद पर पहुँचा सका है। कितनी ही भीषण परिस्थिति व खड़े होने पर भी वे स्थिर रहे हैं। यही बात इसमें कही गयी है।

अजेय : गान्धीजी अजेय व्यक्ति के रूप में चित्रित हुए हैं। वे किसी भी विकट दशा में पराजित नहीं हुए हैं। ऐसी दशा में भी वे बड़ी धीरता के साथ अपना कर्तव्य निभाते रहे। इसी कर्म - वृक्ष का मधु फल है भारत की आज़ादी।

विश्वास का विश्वास :

गांधीजी यहाँ विश्वास का विश्वास बताये गये हैं। गांधीजी अपने पर और जनता पर विश्वास रखते थे। इसी विश्वास में वे और गहरा विश्वास रखते थे। जन- जन में उनका बड़ा विश्वास था और इसी विश्वास पर वे सब कुछ करते थे। उन्होंने पीड़ित, सांस- हीन जनता में उच्छ्वास भरने, जनता की वेदना में उल्लास पैदा करने दुःख दूर करने, जीवनोद्यान में मधुमास लाने का प्रयास किया।

जागरण :

गांधीजी की प्रेरणा से देश में जो नव- जागरण हुआ उसी का कवि ने वर्णन किया है। देश के सैनिक गांधीवाद से प्रभावित हैं, उन्होंने यह प्रतिज्ञा ली है

१: सत्याग्रही - पृ० ३२

मुक्त होंगे या मरेंगे

-- -- --

गीत भारत ने गुंजाया । '[1]

उनकी प्रेरणा पाकर नारियों ने संग्राम में भाग लिया । गांधीजी द्वारा संकेतित मार्ग पर देश के सैनिक अग्रसर होते रहे -

' मिल गया संकेत तेरा

-- -- --

जिस क्षण कदम तू ने बढ़ाया । '[2]

सत्याग्रही :

इसमें सत्याग्रह की महिमा गायी गयी है । गान्धीजी ने राजनीति के क्षेत्र में सत्याग्रह ~~के रूप में~~ को एक शस्त्र के रूप में साधारणतः प्रयुक्त किया था । अंग्रेजों की शक्ति सत्याग्रह के सामने तुच्छ बन जाती है -

जिस अजय बल से समर में

-- -- --

मात पैदल खा गया । '[3]

गान्धीजी ने सत्याग्रहात्म से परतन्त्रता की कड़ियों को - डालियोंको तोड़ने के समान तोड़डाला और उनकी बलिदान- भावना ने विदेशी शासकों के मान को लज्जित करा दिया -

' तोड़ डालीं टहनियों सी

-- -- --

' अभिमान तब शरम गया ।'[4]

विनम्र दृढ़ता :

गान्धीजी में जिन विरोधी तत्वों का (अर्थात् कोमल और तत्व) एक ही समय समन्वय रहा है । उन्हीं का इस कविता में उद्घाटन किया गया है । प्रथम पंक्ति में ही यही बात स्पष्ट है -

- -

१: जागरण - पृ० २६ २: वही० पृ० ३० ३: सत्याग्रही - पृ० ३२
४: वही० पृ० ३२

' स्वर नरम नवनीत - सा पर
वज्र सी दृढ़ बात थी । '[1]

और भी देखिये -

' दृष्टि थी प्यारी तुम्हारी
-- -- --
वार उल्कापात थी ।
-- -- --
को प्रलय की रात थी । '[2]

युग - प्रवर्तक : यहां गांधीजी को युग- प्रवर्तक के रूप में चित्रित किया गया है, जिन्होंने देश में नवीन युग का प्रारंभ किया । गांधीजी के कोमल तत्वों के सामने विदेशियों के कठोर तत्वों का पराजय हम देख सकते हैं । इस कविता के आखंत हम यही देख सकते हैं ।

' विश्व पर शासन युगों से
-- -- --
प्यार से संहार को । '[3]

आशातीत : गांधीजी ने जनता को आशा-वाही बातें सुनायीं उन्हीं का वर्णन इसमें किया गया है । विकट परिस्थिति में पड़ी जनता को आशा की वाणी से कवि ने सान्त्वना दी है । उन्होंने कहा कि सूखे उपवन में मधुमास का समीर बहनेवाला है -

' देखकर बर्बाद उपवन
-- -- --
फिर हवा मधुमास की । '[4]

सर्वोदय : गान्धीजी के सर्वोदय सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया है । सर्वोदय द्वारा गान्धीजी संसार में सुख, शांति, कल्याण और अपने लिए मुक्ति चाहते थे-

---

१: विनम्र दृढ़ता - पृ० ३३ २: वही० पृ० ३३-३४
३: युग - प्रवर्तक पृ० ३५-३६ ४: आशागीत - पृ० ३७

' साधना तेरी रही

-- -- --

मुक्ति के वरदान का ।'[1]

गान्धीजी धन जमाकर रखने और जनता को उच्च नीच मानने के विरोधी थे । अतः वे कहा करते थे -

' सर्प सा मानव न धन पर

-- -- --

लुटाना धर्म है इन्सान का ।

--- --- ---

कौन ऊंचा है यहां पर

-- -- --

भूमि के सम्मान का । '[2]

गान्धीजी जनता को यही सन्देश देकर चले गये -

' स्वार्थ, हिंसा - लोभ से

-- -- --

विश्व के कल्याण का । '[3]

तुम्हारी चाह : इस रचना में कवि ने गान्धीजी को संपूर्ण रूप से शिवजी के रूप में चित्रित किया है । उन्होंने जनता के मन को उज्ज्वल बनाना चाहा । उनका मन यह था कि वे चाहे जितने कष्ट झेल लें, मगर जनता को कष्ट पहुंचाना वे नहीं चाहते थे । इसीलिए उन्होंने स्वयं विष पी लिया और जनता को अमृत दे दिया -

भांति शंकर के स्वयं

-- -- --

विश्व को पीयूष- प्याला । '[4]

गांधीजी के सिर ज्ञान की गंगा के बहने से देश की परतंत्रता रूपी आग बुझ गयी -

---

१: सर्वोदय - पृ० ३९ २: वही० पृ० ४०

' ज्ञान की गंगा तुम्हारे

-- -- --

संसार की अभिशप्त - ज्वाला । '[1]

चर्खा चक्र : गान्धीजी के चरखे की महत्ता इसमें प्रतिपादित की गयी है । गांधी दो प्रधान उद्देश्यों में एक तो चरखा अपनाया था, जनता को कर्मशील बनाने और दूसरा देश को आर्थिक उन्नति करने के लिए । इस प्रकार गरीबी और अकर्म का सुधारक है चरखा । देश की आर्थिक अवनति के कारण गान्धीजी मशीनों और यन्त्रों के प्रति अपना विरोध प्रकट करते थे और जनता से चरखे को अपनाने का अनुरोध भी करते थे । उनका चरखा जनता का जीवन- संगी बन गया -

' था मशीनों में उलझता

-- -- --

बन गया मन का दुलारा । '[2]

गान्धीजी ने दरिद्रता वारिधि को पार करने का एकमात्र मार्ग आत्म-निर्भरता बताया है

' आत्म - निर्भर देश हो यदि

-- -- --

दारिद्र्य - सागर का किनारा । '[3]

चरखा राष्ट्र की संपत्ति के रूप में माना जाता है जिससे आर्थिक उन्नति संभव है । अतः इससे सदा विजय और उत्थान का गीत ही सुनायी पड़ता है ।

खादी की शक्ति : इस कविता में खादी के बल पर प्रकाश डाला गया है । खादी ने आत्म- निर्भरता का महान कार्य किया है । गान्धीजी ने स्वदेशी का व्रत ठान लिया और इसके सिलसिले में खादी और चरखे का प्रचार किया । इसके फल- स्वरूप देश की आर्थिक दशा में परिवर्तन हुआ और स्वावलंबन की प्रतिष्ठा हुई -

- -

१: तुम्हारी चाह - पृ० ४२ २: चर्खा चक्र - पृ० ४४ ३: वही०पृ० ४४

४: खादी की शक्ति - पृ० ४५

' व्रत स्वदेश का लिया

-- -- --

है दमन से मर न सकती ।'[१]

खादी का देश में बड़ा अभिमान होता था । कवि ने जनता से यही सन्देश दिया है -

' युग - युगों की सहचरी को

-- -- --

संगीत जा बाहर न सकती ।'[२]

हरिजन बन्धु : गांधीजी निम्नवर्ग के लोगों को ' हरिजन ' कहकर पुकारते थे जो पूर्ण रूप से अछूत ' माने जाते थे । गान्धीजी उनके बन्धु थे, उद्धारक भी । यहां उनके हरिजनोद्धार के बारे में कहा गया है । उन्होंने बताया कि जगत की सारी जनता भ भगवान की सन्तान है और उनमें बड़े छोटे की भिन्नता नहीं हो सकती-

' ईश के सब पुत्र पावन,

है बड़ा न छोटा कोई ,'[३]

गांधीजी ने अस्पृश्यता का निवारण करके हरिजनों का उद्धार किया -

' मंदिरों में ले गया ,

-- -- --

हरिजनों का मान तू ने ।'[४]

वे अपने जीवन के अधिकांश समय हरिजनों के साथ रहते थे ।

किसान बन्धु : गांधीजी किसानों का उद्धार करने में भी बड़ी श्रद्धा रखते थे । वे किसानों के हित- कांक्षी, मार्ग-दर्शक और पालक थे । -

' तू किसानों का हितैषी

मार्ग- दर्शक, प्राण रक्षक ।'[५]

- -

१: खादी की शक्ति - पृ० ४५ २: वही० पृ० ४६ ३: हरिजन- बन्धु - पृ० ४८

४: वही० पृ० ४८ ५: किसान बन्धु - पृ० ४६

देश की भलाई किसानों के हित एवं हाथ में सुरक्षित है और उसको सुधारे बिना देश को सुधारना असंभव है -

> ' हे कृषक जब तक दुखी
>
> -- -- --
>
> किस तरह बलवान तब तक ? '१

मज़दूर मित्र : गांधीजी ने मज़दूरों को सुधार किया था । मज़दूर लोग पूंजीवाद के फन्दे में पड़कर बड़ा क्लेश अनुभव करते थे । ऐसे समय गांधीजी ने अधिकार दे दिया । गांधीजी मज़दूरों और किसानों का उद्धार करते थे और उन्होंने यह भी बताया कि श्रमिक दल ही राष्ट्र का बल है । -

> ' प्राप्त हो मज़दूर को सुख
>
> -- -- --
>
> यह प्रबल नारा गुंजाया । '२

नारी उद्धारक : नारियों के प्रति गान्धीजी के मन में बड़ी सहानुभूति थी । पुरुष के समान नारियों को भी समान अधिकार देने के लिए वे प्रयत्नशील रहे हैं । गान्धी-युगीन नारियां संग्राम में भाग लेती थीं और अपनी वीरता प्रकट करती थीं । नारी सुधार द्वारा उन्होंने सामाजिक - क्षेत्र में बड़ी भारी क्रांति मचा दी । अनेक नारियों ने भारत के स्वतंत्रता- संग्राम में भाग लेकर अपने को बलिदान किया है -

> ' युद्ध में स्वाधीनता के
>
> -- -- --
>
> बन गयी वह वीर बाला । '३

गांधीजी की प्रेरणा पाकर नारियां कारागृह में बन्दी रहने और गोलियों की मार खाने के लिए भी तैयार थीं -

---

१: किसान बन्धु - पृ० ५० २: मज़दूर मित्र - पृ० ५१

३: नारी उद्धारक - पृ० ५३

' लाठियां खाईं खुशी से,

-- -- --

स्वीकार कारागार काला । '[1]

आत्मबल :

गांधीजी ने शरीर बल की अपेक्षा आत्म-बल पर अधिक जोर दिया है । इसमें गांधीजी ने आत्म-बल के बारे में जो बातें कहे हैं उनका वर्णन किया गया है। उन्होंने कहा -

' देह - बल से आत्म - बल

बलवान हैं - तु ने कहा । '[2]

गांधीजी ने बलिदान को आटम - बम से प्रबल माना है । उन्होंने प्राणवान हृदय की व्याख्या यों की है -

' त्याग, तप, संयम, अहिंसा,

-- -- --

निष्प्राण है तु ने कहा । '[3]

गांधीजी निर्बल के प्रभु थे और उन्होंने अकेले ही अनीति और अत्याचार का सामना किया । उन्होंने कहा कि दूसरों के दु:ख से स्वयं दु:खी और सुख से सुखी होना चाहिए । जो ऐसा न होता वह स्वार्थी कहा जाता था -

' दूसरों के दुख से दुखता

-- -- --

हैवान है तुने कहा । '[4]

विश्व - वासी :

गांधीजी संसार भर में निवास करते थे अर्थात् समस्त संसार उनका देश था। उन्होंने शत्रुओं और मित्रों को समान रूप से प्यार किया था । उनका जीवन तो आदर्श

- -

१: नारी - उद्धारक - पृ०   २: आत्मबल - पृ० ५५

३: वही० पृ० ५५   ४: वही० पृ० ५६

शांतिपूर्ण रहा । गान्धीजी ने जगत को एक नया संदेश देकर कहा है कि प्रेम तो अणु-बम से भी प्रबल है ।

' विश्व को संदेश तेरा
प्रति अणु- बम से प्रबल है । '[१]

गान्धीजी विश्व का कल्याण चाहते थे - मात्र भारतदेश का नहीं । यही भाव इस कविता में है ।

प्रीत का निर्झर : यहां गांधीजी को प्रीति का निर्झर कहा गया है । वे प्रेम के उपासक थे और वही उनके लिए सब कुछ था । मित्रों से ही नहीं, शत्रुओं से भी उन्होंने प्रेमपूर्ण व्यवहार किया । वे ऐसे निष्कलंक व्यक्ति थे कि शत्रुओं का नाश तक उन्होंने सोचा नहीं । वे सदा पुण्य के पुजारी और पाप से भयभीत रहे -

' वैरियों का भी तू ने
-- -- --
पाप से डरता रहा तू । '[२]

उनकी धीरता का परिचय यहां मिलता है -

मार्ग में तेरे बिछाए
-- -- --
कदम धरता रहा तू । '[३]

गान्धीजी वास्तव में सर्व-जन - स्नेही थे और गरीबों और निम्न- वर्ग के लोगों से उनका प्रेम अनंत था । इसलिए उन्होंने भारतीय जनता के जीवन में प्रेम की गंगा बहा दी जिसमें नहाकर वे भी स्वयं प्रेमी बन गये ।

एकता का दूत : गांधीजी ने भारत के लोगों को एकता का सन्देश दिया है जिस पर समस्त प्राणियों का अस्तित्व निर्भर रहता है । उन्होंने जातिगत और वर्णगत भेदभावों को

- -

१: विश्व- वासी -पृ० ५८ २: प्रीत का निर्झर - पृ० ५९
३: वही० पृ० ६०

दूर करके सब को एकता की डोरी में पिरोने का प्रयास किया था । गांधीजी ने किसी धर्म की हंसी नहीं उड़ायी है, किसी से घृणा नहीं की है । सारा धर्म उनके लिए स्वीकार्य था, सांप्रदायिक भी । अत: उन्होंने अपने धर्म का पालन करने के लिए जनता को स्वतन्त्रता दिलाई -

' धर्म अपना पालने को
आदमी आज़ाद पूरा , '[१]

इसी प्रकार उन्होंने नरहत्या और पशुहत्या दोनों को मिटाना चाहा और कहा कि धर्म के नाम पर मरना पाप है, अनुचित है ।

' धर्म के शुचि नाम पर
तुम खून की होली न खेलो । '[२]

इन पंक्तियों में उनका हिन्दू - मुसलिम एकता वाली सिद्धान्त स्पष्ट है -

' एक जननी के सपूतों
-- -- --
प्रीति का क रवि मुसकुराए । '[३]

गांधीजी ने पुन: बताया कि विशाल भारत में एकता के साथ रहना ही अनिवार्य है और इसी में देश का अभिमान निहित है -

' देश भारत है सुविस्तृत ,
-- -- --
मेल करना सीख पाये । '[४]

सत्य का साथी :

गान्धीजी सत्य पर अटल रहे थे । झूठ कहने उन्हें कठिन था । जब हिंसा का भयंकर ताण्डव हो रहा था तब उन्होंने प्रेम की मुरली बजायी । उन्हें विश्वास था कि सत्य ही सदा विजयी हो सकता है । इसलिए वे भीषण से भीषण

- -

१: एकता का दूत - पृ० ६१ २: वही० पृ० ६२
३: वही० पृ० ६२ ४: वही० पृ० ६२

घटनाओं का भी सामना कर सके ।

मानव : गांधीजी के मत में वही मानव कहा जा सकता है जिसमें पर- पीड़ा की भावना होती है -

' वह न मानव
जो न परिचित पीर से । '[१]

उन्होंने बताया कि परतन्त्रता से भी कठिन और असहनीय है स्वार्थ - भावना । इस भावना को भुलकर दूसरों की भी सहायता करनी चाहिए -

' दासता की बेड़ियों को
-- -- --
स्वार्थ की जंजीर को । '[२]

अव्यक्त तूफान : गांधीजी में इतनी शक्ति थी कि वे चाहते थे तो देश में तूफान ला सकते थे । लेकिन उन्होंने यह नहीं चाहा । फिर भी उन्होंने देश में जो कार्य किये हैं उनके पीछे एक अव्यक्त तूफान ही छिपा रहा था । गांधीजी ने किसी भी दु:खद घटना पर अश्रु कण टपकाये नहीं । उनका मन तूफान सा कठिन था । दु:खद घटनाओं को विधि की विडंबना मानकर वे चुप रहते थे । यदि वे किसी बात पर दु:खी होते थे तो मन ही मन उसे छिपा पीलेते थे । प्रत्युत उसे बाहर प्रकट करना नहीं चाहते थे । अपनी प्यारी पत्नी की मृत्यु पर उन्होंने एक बूंद अश्रु भी बहाया नहीं । फिर भी अन्दर से वे दु:खित थे । उनमें कोमलता और कठोरता का समन्वय हुआ था । लेकिन उन्होंने सदा कोमलता को बाहर प्रकट करने का प्रयास किया और कठोरता को अव्यक्त तूफान के समान अपने में छिपाया है ।

स्वाधीनता का मोल : गांधीजी ने जनता को स्वाधीनता का मूल्य समझने का अनुरोध किया है । उन्होंने आत्म- निर्भरता पर जोर दिया है -

---

१: मानव - पृ० ६५

२: वही० पृ० ६६

' आत्म- निर्भर हो न पाये

-- -- --

सत्य उसके बोल मानो । '[1]

पुरानी रूढ़ियों और विश्वासों को हटाने का आदेश दिया गया है -

' अब पुरानी रूढ़ियों के

-- -- --

जा रहा युग - ढोल जानो । '[2]

नव- निर्माण : यहां गांधीजी ने नव- निर्माण के बारे में जनता से कुछ कहा है । निर्माण का कार्य उतना आसान नहीं जितना नाश का ।

' है सरल ध्वंस करना,

पर कठिन निर्माण करना । '[3]

उन्होंने बताया कि आज़ादी तो प्राप्त हुई और अब राष्ट्र के उत्थान के लिए प्रयत्न करना है -

' यह न समझो युद्ध जीता

-- -- --

राष्ट्र का उत्थान करना । '[4]

नवयुग के निर्माण के लिए उन्होंने यह आवश्यक बताया है -

' धैर्य से, तप - त्याग से ही

-- -- -- --

इन्सान का सम्मान करना । '[5]

चेतावनी : यहां गान्धीजी ने राष्ट्र- निर्माण के लिए कष्ट सहना, संयम से चलना आदि

- -

१: स्वतन्त्रता का मोल - पृ० ६८ २ : वही० पृ० ७०
३: नव- निर्माण - पृ० ७१ ४: वही० पृ० ७१
५: वही० पृ० ७२

गान्धीजी ने मानवता की प्रतिष्ठा करने,मानव जीवन के भविष्य को मंगलमय बनाने, धर्म और विज्ञान की अभेदता स्थापित करने आदि के लिए अवतार लिया।

' तुम आये इसलिए कि टूटी कड़ियां जोड़ो ,

-- -- --

और न इसमें एक सत्य है, अपर मृषा है। '[१]

अन्त में उनकी मृत्यु के बारे में अपनी मार्मिक व्यथा का चित्रण किया है -

' तन का सौरभ व्यर्थ अगर मन के आंगन में

-- -- -- --

मानव का गृह तो मानव से दूर नहीं है। '[२]

इसमें मार्क्सवाद के अंत के लिए कवि ने गांधीजी के अवतार को अनिवार्य माना है। उन्होंने मार्क्सवाद के स्थान पर गांधीवाद की प्रतिष्ठा का आग्रह प्रकट किया।

' सामधेनी ' कविता- संग्रह में कवि ने हिन्दू - मुसलिम झगड़ा के दुःख से प्रेरित होकर 'हे मेरे स्वदेश ' नामक कविता की रचना की है। यह कविता ' नोआखाली और बिहार के दंगे की पृष्ठभूमि पर लिखी गयी है। वहां के अन्याय और अत्याचार का चित्रण इसमें किया गया है। हिन्दू और मुसलमान दोनों पारस्परिक विद्वेष की आग में जलते थे जो भारत की दो आंखें माने जाते थे। अतः कवि ने इस पर अपना दुःख प्रकट किया है -

' जलते हैं हिन्दू - मुसलमान,

-- -- --

लो ! दोनों आंखें जलती हैं। '[३]

कवि का मत यह है कि हिन्दू और मुसलमानों के बीच में जातीय एकता स्थापित करनी चाहिए जिससे देश को सान्त्वना प्राप्त हो सके -

- -

१: गान्धी - पृ० ५८ २: वही० पृ० ५६

३: हे मेरे स्वदेश - पृ० २६

आदर्श मांगता मुक्त पंथ ,

-- -- --

जीवित स्वदेश को लायेगा । '[१]

गान्धीजी ही ऐसे एकमात्र साहसी व्यक्ति थे जिन्होंने नोआखाली में अकेले जाकर वहां के दंगे को शांत कर दिया था । अत: कवि ने यहां कवि ने गांधी जी को ' अकेली किरण ' कहकर संकेत किया है । -

' दुनिया देखे अंधकार की

-- -- --

शूल में आकर कैसे लड़ती है । '[२]

इस कविता में कवि ने हिंदू और मुसलमानों से अपने पारस्परिक संघर्ष को मिटाने और आने वाली आजादी को बनाये रखने का क उपदेश दिया है । गांधीजी की अमूल्य सेवा की प्रशंसा भी इसमें मिलती है ।

नरेन्द्र शर्मा जी की भी कतिपय कविताएं ऐसी मिलती हैं जो गांधीवाद से प्रभावित हैं ।

' हंसमाला ' की कविताएं : ' गान्धीजी ' शीर्षक कविता में कवि ने उनकी महिमा का गुणगान किया है । जनता के कल्याण के लिए उन्होंने सब कुछ किया और सह लिया। गांधीजी सदा कर्मपथ पर व्यस्त होकर चलने के कारण अपनी पत्नी की चिंता तक करना भूल जाते थे । उनकी असावधानी ही पत्नी की मृत्यु का कारण बनी । गांधीजी अपने आदर्शों और सिद्धान्तों पर अचंचल थे । कोई भी शक्ति उन्हें विचलित न कर सकी । -

' जिन आदर्शों, सिद्धान्तों के तुम अटल अचल,
इस अटल को हिला न पायी अहंकार की मति चंचल । '[३]

१: हे मेरे स्वदेश - पृ० ३२ २: वही० पृ० ३३

३: गांधीजी - पृ० ६६

गान्धीजी सत्य के अभिलाषी, निडर संत और शिवाजी के रूप में चि

' तुम अमृत सत्य के अभिलाषी, निर्भीक संत ;

-- -- --

जन-हित के लिए असत्यों से की संधि, शंभु, विषपान कि

गान्धीजी सेनानी थे, मगर वे अहिंसा युद्ध के नि:शस्त्र सेनानी थे। अत: उन्हें पराजय अथवा सुख- दु:ख की कोई चिंता न थी। यहां कवि ने गांधीजी को सेनानी, सत्य- कांक्षी, सेवक- संत, बलिदानी आदि के रूप में चित्रित करने किया है। ' स्वर मेरे ' कविता गांधीवाद से इसलिए प्रभावित है और इसमें की खोज करने का अनुरोध किया है। कवि ने कहा है -

' तू नए सत्य के लिए नित्य पर मन - मंथन,
तो, स्वर मेरे! तू आगत की अनुगूंज न बन। '[2]

कवि ने यहां व्यष्टि से समष्टि की ओर मुड़ने का आग्रह किया है -

'अपना न कभी -- --- -- कर जन- दर्शन। '[3]

कवि ने कहा है कि धरती पर सत्य और प्रेम की प्रतिष्ठा कर स्वतंत्रता के गा

' निस्तल पाताल-पुरी में -- -- कर मुखित-चरण '

'त्रिपथगा ' में कवि ने यहां स्वतंत्र भारत का चित्र उपस्थित करने का प्र है जिसका श्रेय चित्रकार गांधी जी का है। भारत के स्वतंत्र होने के बाद यहां गंगा बहने लगी जो त्रिपथगामिनी भी है। त्रिपथ से यहां मतलब है कर्म, ज्ञान उपासना नामक जीवन में आत्मलाभ के तीनों मार्ग।[4] यह गंगा बहुजन हिता सुखाय बहती है। इस गंगा से देश और धरती में बड़ा परिवर्तन दिखाई पड़ने

१: गांधी जी - पृ० ६१ २: स्वर मेरे - पृ० १३
३: वही० पृ० १३ ४: वही० पृ० १३
५: [illegible] संक्षिप्त हिंदी शब्द सा

' हर, हर करती, पर्वत तरती,

-- -- --

बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय । '[१]

कवि के इस कथन से यह हो जाता है कि वे गांधीवादी विचारों से पूर्णतः प्रभावित हैं।

' हिंसा, अन्याय, स्वार्थ-परता -

-- -- --

बनता रहता है वही प्रगति । '[२]

इस त्रिगुणमयी गंगा के विशांतर के कारण ही देश में नव- जागरण और शांति की स्थापना हो सकी। त्रिपथगामिनी गंगा गांधीजी की ही देन है जिसका लक्ष्य ही आत्म-लाभ है।

'हिन्दू मुसलमान ' में हिंदू और मुसलमानों के भेद- भाव को व्यक्त करने का प्रयास है और उनमें एकता स्थापित करने की कोशिश भी की गयी है। दोनों के जीवन के दर्शन, भाव, संस्कृति आदि भिन्न हैं, इनमें अभिन्नता लाये बिना दोनों का कल्याण संभव नहीं हो सकता।

' हैं अलग - अलग हम दोनों के व्यवहार- मात्र, जीवन- दर्शन,

-- -- -- --

पर दो होकर भी मिल न सके तो दोनों का कल्याण नहीं। '[३]

हिन्दू और मुसलमान में जो भेद मौजूद था उसे गांधीजी ने मिटा दिया। हिन्दू और मुसलमान में विरुद्ध विचार दिखाई पड़ते थे -

' तुम को प्यारी है ---- ---- धरती के कण। '[४]

कवि ने हिंदू और मुसलमान से भेद- भाव को दूर कर एकता के सूत्र में बांधने का अनुरोध किया है। -

---

१: त्रिपथगा - पृ० १५ २: वही० पृ० १५ ३: हिन्दू- मुसलमान- पृ० १७
४: वही० पृ० १८

'जन - क्रान्ति जगाने वाले हे -- -- महादेश के महाप्राण ।'[1]

'बहुत रात गई :- काव्य- संग्रह में नरेन्द्र जी ने गान्धीजी पर एक कविता लिखी है और वह है ' गान्धी गाथा ' । इसमें कवि ने गान्धीजी की महिमा गायी है । यह गाथा आत्मजयी मृत्युंजयी की(महिमा गायी है) महात्मा जी की गाथा है जिसमें अनन्त परिश्रम, भारत - विकास, नव-भावना- प्रतिष्ठा सेवा और शूरता आदि तत्व-गुण निहित हैं -

गाथा यह सामान्य व्यक्ति के मुक्तिहेतु भक्ति श्रम की
-- -- --
गाथा है यह शुभ्र शौर्य की, सेवा के विक्रम की । '[2]

उनके जन्म के बारे में यों कहा गया है -

' था न दिव्य अवतरण, मनुज का था वह दिव्यारोहण,
ऊर्ध्वस्थित आचरित सत्य से आत्म- द्रव्य का दोहन । '[3]

गान्धीजी एकपत्नीव्रत थे और इससे उनमें आत्म-शक्ति का विकास हुआ जिससे वे स्वावलंबी होकर सब कुछ कर सकते थे -

' व्रत - पालन से आत्मा- शक्ति की ऊर्जा मन में आई ,
-- -- --
चढ़ी सान पर बुद्धि, स्वानुशासन से हुई पढ़ाई । '[4]

गान्धीजी ने दक्षिण- अफ्रीका से लौटने पर भारत की जनता को पर दुःख कातरता और समष्टि- भावना का पाठ पढ़ाया -

' सब का सुख ही स्वान्तः सुख है, हुआ सत्य का दर्शन ।
-- -- -- --
जागा अद्वय- भाव हृदय में, सेवा- धर्म सनातन । '[5]

- -

१: हिंदू - मुसलमान - पृ० १८ २: गांधी- गाथा पृ० ११०
३: वही० पृ० ११० ४: वही० पृ० १११
५: वही० पृ० ११२

जो बातें बतायी हैं उन्हीं के बारे में कहा गया है । क्रोध निर्बलता और स्वार्थ- संताप का घोतक है । अत: उन्हें मन से दूर करना चाहिए । -

` है क्रोध निर्बलता हृदय की
-- -- --
शील है अनमोल गहना । `१

अन्त में कवि ने यही आशा प्रकट की है । -

`मानकर आदेश तेरा
-- -- --
मानवों का रक्त बहना । `२

राष्ट्रपिता : इसमें गांधीजी राष्ट्रपिता के रूप में चित्रित हुए हैं । उन्होंने धन की इच्छा को दूर करने और त्याग रूपी धन को इकट्ठा करने का उपदेश दिया ।

`धन नहीं है श्रेष्ठतम धन,
मन तृष्णा कर त्याग का धन । `३

गान्धीजी दु:खित जनता के लिए सान्त्वना की छाया थे और उनकी आशादायी वाणी से जनता सन्तुष्ट होती थी । -

` तरु तले जैसे पथिक को
-- -- --
सान्त्वनामय छांह तेरी । `४

गान्धीजी राष्ट्र-पिता थे और जन- बालकों को ठीक रास्ते पर चलाते थे ।-

` राष्ट्र का बन कर पिता तू ,
था चलाता बालकों को । `५

- -

१: चेतावनी - पृ०७३ २: वही० पृ०७४
३: वही० पृ० ७५ ४: राष्ट्रपिता- पृ० ७६
५: वही० पृ० ७६

अवतार : गान्धीजी को यहां अवतार पुरुष माना गया है। वे करुणा के अवतार माने जाते हैं।

' बनाकर रूप मानव का

-- -- --

सताते हैं दुराचारी। '[1]

नि:शस्त्र सेनानी के रूप में गान्धीजी का चित्रण किया गया है -

' सतत निश्शस्त्र रहकर भी

-- -- --

नहीं था तू धनुर्धारी। '[2]

कवि ने गान्धीजी की हत्या पर दु:ख प्रकट किया है -

अनागिन मूर्ख हिंसा ने

-- -- --

दुखी दुनिया हुई सारी।'[3]

विभ्रम : गान्धीजी की मृत्यु के बाद देश की विकट गति का चित्रण इस कविता में किया गया है। उनके तत्वों का पालन करने को जब जनता तैयार होती है तब सब निष्फल हो जाते हैं। अत: कवि ने कहा -

भावना से त्याग की हम

-- -- --

होश बिसराने लगे। [4]

कवि के कथन का तात्पर्य है कि गान्धीजी के बाद देश में पुन: अत्याचार और अनीति शुरू करने लगी है। उनके सिद्धान्तों के विरुद्ध आवाज उठ रही है। अब जनता गांधीवादी विचारों का पालन नहीं कर सकती।

स्वर गंगा : यहां गांधीजी की वाणी पर कहा गया है। गांधीजी शांत स्वभाव के थे और वह उनकी वाणी में सब को लुभा लेने की शक्ति थी। अत: वे प्रेम के द्वारा

१: अवतार - पृ० ७७ २: वही० पृ० ७८ ३: वही० पृ० ७८ ४: विभ्रम पृ० ७९

अनीति को जीत सके -

' शांत मुद्रा में तुम्हारी

-- -- --

जीत लेती प्यार से । '[1]

गान्धीजी ने पीड़ितों के प्रति सहानुभूति दिखाने का अनुरोध करते हुए कहा है -

' पीड़ितों से भी कहा, ' मत

-- -- --

मार दो उपकार से । '[2]

कवि ने कहा है कि गांधीजी के जाने पर भी उनकी वाणी जगत में गूंजती रहती है -

चल दिए तुम तो जगत से

-- -- --

बोल इस संसार से । '[3]

तमहरण :

यहां कवि ने जनता के मन के अज्ञानांधकार गान्धीजी ने दूर किया था और उसके बारे में कहा है। मानव- मन वासना के जाल में फंसा रहा था। जनता जीवन का मूल्य नहीं समझती थी। उसी समय गान्धीजी ने जनता का मनोविकास किया।

पुण्य का कमल :

गान्धीजी को इसमें पुण्य का कमल माना गया है। वे वासना के तालाब में पुण्य के कमल के समान खिले थे।

' वासना के नीर से तालाब

-- -- --

पुण्य का पावन कमल था । '[4]

अत्यन्त विकट वातावरण में भी गांधीजी अपने शपथ पर अटल रहे। यही उनकी विशेषता है। -

---

१: स्वर गंगा पृ० ८१ २: वही० पृ० ८२

३: वही० पृ० ८२ ४: पुण्य का कमल - पृ० ८५

` वज्र अंबर से गिरे, या
-- -- --
किन्तु प्राण पर तु अटल था । `[1]

__प्रेमी :__ यहां गांधीजी की उस अद्भुत प्रक्रिया के रूप में कहा गया है जो कि उन्होंने कठोरता को कोमलता में परिणत किया था । उन्होंने जनता के पथरीले मन को अत्यन्त मृदुल बनाया था । यह उनकी एक अपूर्व शक्ति ही थी । उन्होंने सैनिकों को यही उपदेश दिया था -

` चोट खाकर मुस्कराओ,
और रण में रत रहो तुम । `[2]

गान्धीजी आत्म- विश्वासी थे और उनका आत्मबल अत्यन्त सराहनीय बन पड़ा है -

` था तुम्हें विश्वास आत्मा
-- -- --
था तुम्हें भयभीत करना । `[3]

__मुक्तिदाता :__ गान्धीजी ने अहिंसा के द्वारा भारत को स्वतन्त्र बनाया और वे मुक्तिदाता कहलाने लगे ।

` दासता को दूर करने
-- -- --
का सफल साधन हमें । `[4]

गान्धीजी की एक विशेषता यह थी कि कष्ट सहने में भी उन्हें बड़ा मज़ा आता था । उन्होंने कहा है - ` कष्ट सहने में बड़ा आनन्द है । `

__डगमग मैया :__ गांधीजी की मृत्यु के बाद देश की स्थिति का वर्णन कवि ने इसमें किया है । गान्धीजी जब तक रहते थे तब तक उन्होंने देश को सुधारा और जनता के संकटको

- -

१: पुण्य का कमल - पृ० ८६ २: प्रेमी - पृ० ८७
३: प्रेमी - पृ० ८८ ४: मुक्तिदाता - पृ० ८९

दूर किया । लेकिन अब तो देश को सुधारने वाला कोई नहीं । गांधीजी की मृत्यु पर कवि ने अपना दु:ख प्रकट किया है ।

अभय :

यहां गांधीजी को कवि ने निडर कहा है । गांधीजी मृत्यु से डरते नहीं थे । भौतिक आसक्तियों से मुक्ति पाने के लिए उन्होंने बलिदान का मार्ग बताया -

' भय न था मन में मरण का
चाह थी बलिदान की । '[१]

गांधीजी के सदा निडर तथा निर्भय रहने का कारण यह था -

' मानता तेरा हृदय था
बात बस भगवान की । '[२]

दीप- निर्वाण :

यहां गांधीजी की मृत्यु से किसी प्रकाशमान दीपक का निर्वाण हुआ है । गांधीजी जगत के लिए दीपक के समान थे । उनके जाने पर भी उनकी छाया हर कहीं दिखाई देती है, यही कवि का कथन है ।

' विश्व गंगा में अमृत- से
-- -- --
रह सकेगा दिल न काला । '[३]

अमर जीवन :

कवि ने कहा है कि गांधीजी ने अमर जीवन की सृष्टि करके अंतर्धान हो गये हैं । मृत्यु- गर्त में पड़ने वाले जन- जीवन को उन्होंने अमरता प्रदान की है । इसलिए विश्व- भर में वे प्रिय रहे हैं । -

'विश्व सारा देह तेरी
-- -- --
इंसान बन ईश्वर गया है । '[४]

१: अभय - पृ० ६३ २: वही० पृ० ६४ ३: दीप- निर्वाण पृ० ६५
४: अमर जीवन - पृ० ६८

मान हिन्दुस्तान का :

गान्धीजी भारत के अभिमान के भाजन थे। वे भारत के लिए एक अमूल्य वरदान थे। इसलिए समस्त संसार उनकी मृत्यु से व्यथित हुआ -

'वेदना से विश्व सारा
-- -- --
वरदान हिन्दुस्तान।'[१]

गान्धीजी और उनका बलिदान भारत के लिए प्रेरणादायक रहेंगे। यही कवि का विश्वास है -

'नाम गांधी का चमकता
-- -- --
बलिदान हिन्दुस्तान का।'[२]

गान्धीजी ने जनता को प्रेम का पाठ पढ़ाया और प्रेम का ही गीत सुनाया है -

'प्रेम से बढ़कर न कोई
-- -- --
जय - गान हिन्दुस्तान का।'[३]

प्रेम का पुजारी :

गान्धीजी प्रेम के अनन्य उपासक थे और कवि ने उन्हें प्रेम का पागल पुजारी कहा है।

' प्रेम पर बलि हो गया तू
प्रेम का पागल पुजारी।'[४]

प्रेम के द्वारा ही उन्होंने दासता मिटाकर देश को स्वतंत्र बनाया। उनकी प्रेमपूर्ण वाणी के आगे विदेशियों की वीरता नहीं अटकती थी -

' प्रीत के हथियार से था
-- -- --
आज़ाद की धरती हमारी।'[५]

१: मान हिन्दुस्तान का - पृ० ६६ २: वही० पृ० १०० ३: वही० पृ० १००
४: प्रेम का पुजारी - पृ० १०१ ५: वही० पृ० १०१

इस प्रकार हर परिस्थिति में उन्होंने प्रेम का आंचल पकड़ा है और प्रेमपूर्ण व्यवहार से अपनाकाम निभाया है ।

स्वप्न दर्शी : गांधीजी के मन में भारत में रामराज्य बनाने का सपना बना रहा था । इसी स्वप्न साक्षात्कार के लिए वे अपना जीवन भी तजकर, कर्म- क्षेत्र में सदा व्यस्त रहे थे । उन्होंने आज़ादी को तो प्राप्त किया, लेकिन उसके बाद का कोई वे कर नहीं सके । उसके पहले ही वे चले गये -

' राम के शासन - सदृश
-- -- --
चल दिया पहले चितेरा । '[1]

कवि को यही दु:ख था कि गान्धीजी ने हमें नव- जीवन प्रदान किया और उसके बदले हमने उसे विष दे दिया । अत: वे कहते थे -

राष्ट्र को दी जिन्दगी तू ने
ज़हर हम दे रहे हैं । '[2]

अंतिम दृश्य : गांधीजी की मृत्यु और उनके शव- दाह के बारे में कहा गया है । यह उनके जीवन का अंतिम दृश्य था । वह दृश्य अत्यंत व्यथा- जन्य था । -

' आंसुओं की बह चली
शव अमर नर वीर भट का । '[3]

कवि का मत यह है कि वे भारत में दिव्य ज्योतिफैलाकर गये हैं जिससे जनता सत्य के पथ को पहचान सकती है । -

ज्योति जगमग भर जगत में
-- -- --
पा सकेगा विश्व भट का । '[4]

१: स्वप्न दर्शी - पृ० १०३ '२: वही० पृ० १०४ ३: अंतिम दृश्य पृ० १०६
४: वही० पृ० १०६

माली :

यहाँ कवि ने गांधीजी को माली कहा जिन्होंने भारत के बगीचे को हरियाला बनाया था। गांधीजी की हत्या के कारण कवि ने भारत के वासियों को विषैला नाग कहा है क्योंकि भारत के ही एक व्यक्ति ने उनको हत्या की थी। गांधीजी के चले जाने के बाद पुन: भारत में अनीति और निष्ठुरता का व्यवहार होने लगा है। यही कवि का कथन है।

तम की ओर :

गान्धीजी की मृत्यु के कारण भारत में पुन: अस्वस्थता आ गयी है। गान्धीजी ने त्रास - तम को हटाकर आह्लाद - भोर को प्रकाशित किया था। लेकिन वे जब इस संसार से चले गये तब से देश में स्वार्थ और कुचक्र ने सिर उठाया है। अत: कवि ने कहा है कि भारत देश अब संकटावस्था की ओर मुड़ने लगा है।

अमावस :

यहाँ कवि ने कहा है कि गांधीजी की मृत्यु से देश- भर में अमावासकी कालिमा छाई हुई है। आसमान के तारों के रहने पर भी गान्धीजो रूपी सुधाकर के बिना देश की कालिमा मिट नहीं सकती -

' भीड़ भारी है गगन में
-- -- --
हो न पाता पंथ काला।'[1]

जब गांधीजी जिंदा रहते थे तब उनकी हंसी से पूर्णिमा का चन्द्रमा उदित होता था -

' तुम गये आई अमावस,
-- -- --
रंग ज्योत्स्ना सा निराला।'[2]

चरण - चिह्न :

कवि ने इसमें गांधीजी के चरणों की महिमा गायी है -

' पातकों के पंक में भ्रम -
-- -- --
पांव अविचल चल रहे हैं।'[3]

१: अमावस - पृ० १११   २: वही० पृ० १११   ३: चरण - चिह्न : पृ० ११३

गान्धीजी के मरण के बाद भारतवासियों के मन - परिवर्तन के बारे में कहा गया है। इसमें एक विशेष बात यह बतायी गयी है कि गांधीजी से कवियों की कल्पना को ज्योति प्राप्त होती है और उनकी कल्पना कविता बन जाती है। -

'कवि - हृदय की कल्पना को

-- -- --

खिल विमल झलमल रहे हैं। '[१]

संवेदनामय :

यहां कवि ने गांधीजी की जो आराधना की है उसी के बारे में कहा है। उनकी साधना, भावना और चेतना सब शाश्वत हैं, वे कदापि मिट नहीं सकती। उनकी प्रवृत्तियों के ज्वार और अभाव ये दोनों पक्ष नहीं होते। उनका एक ज्वार पक्ष ही हो सकता है। प्रकृति में वर्षा कभी होती है, कभी नहीं होती। मगर गांधीजी की दया की वर्षा सर्वदा होती रहती है -

' मेघ आते हैं गगन में,

-- -- --

भावना बापू तुम्हारी। '[२]

कवि ने गांधीजी की इच्छा को गीतों के द्वारा जनता के समक्ष समझाना चाहा है -

' चाहता है कवि गुंजा दे

-- -- --

कामना बापू तुम्हारी। '[३]

प्रात चिनगारी :

कवि ने गीत के निर्माण के लिए गांधीजी से प्रेरणा की प्रार्थना की है

' दे मलक कवि का हृदय भी

-- -- --

एक चिनगारी तुम्हारी। '[४]

१: चरण.- चिह्न - पृ० ११४ २: संवेदना मय - पृ० ११६

३: वही० पृ० ११६ ४: प्रात चिनगारी - पृ० ११७

यशगान : यहां कवि ने गान्धीजी का यशगान गाकर धन्य होना चाहा है। गान्धीजी की प्रेरणा - हवा के झोंकों से कवि का गान्धी- गीत खिलकर मुसकाता रहेगा-

> 'स्पर्श पा पवन तुम्हारा
>
> -- -- --
>
> मुसकराएगी कहानी । '[1]

गान्धीजी की अमरता का गीत गाया गया है -

> 'नित्य - नूतन सूर्य - शशि हैं,
>
> -- -- --
>
> हो न पाएगी पुरानी । '[2]

'मुकुल' की कविताएं: गान्धीजी से प्रभावित होने वालों में कवि ही नहीं कवयित्री भी रही हैं। ऐसी कवयित्रियों में श्रीमती सुभद्रा कुमारी चौहान का नाम स्मरणीय है। उन्होंने भी गांधीजी और गांधीवाद से प्रभावित होकर कुछ कविताएं लिखी हैं जो 'मुकुल' काव्य - संग्रह में संग्रहीत की गयी हैं।

'स्वागत गीत' में कवयित्री ने राष्ट्र के भविष्य के शुभ- निर्माण के लिए गांधीजी से प्रार्थना की है। साथ ही उनकी प्रशंसा भी की गयी है -

> ' कर्म के योगी, शक्ति - प्रयोगी,
>
> -- -- --
>
> जीवन - प्राण पधारियेगा । '[3]

गान्धीजी के अनेक शत्रु थे और उनकी हत्या करने की कोशिश करते थे। फिर भी वे अपने सिद्धान्तों और विचारों पर डटे रहे। लेकिन अंत में उनकी हत्या ही हुई। गांधीजी कर्म - पथ के पंथी थे। कर्म का मर्म वे जानते थे। राष्ट्र को स्वतंत्रता दिलाने के लिए जब जनता युद्ध करने का आह्वान दे रही थी तब गांधीजी ने असहयोग की आवाज उठायी

१: यशगान - पृ० ११६ २: वही० पृ० १२० ३: स्वागत गीत -मुकुल- पृ० ११

' हटा दो दुश्मनों को, डट के असहयोग करो,
स्वतन्त्र माता को करके, स्वराज्य भोग करो । '[1]

इसमें गांधीजी को देश के भविष्य के निर्माता के रूप में चित्रित करके उनका स्वागत किया गया है । यहां वे कर्मयोगी, परोपकारी, संकट- त्राता, हिंसा-हारी सब कुछ रहे हैं । इन गुणों के सहारे गांधीजी के देश के भविष्य जीवन को सुसंपन्न एवं सुदृढ़ कर सके थे । सदा कर्म पथ पर चलते रहने के कारण वे चतुर राष्ट्र निर्माता थे ।

'मातृ मन्दिर ' में यहां कवयित्री ने मातृमंदिर में भारतमाता की वंदना की है जिसमें उनकी राष्ट्रीय बलिदान भावना व्यक्त हुई है । भारत माता के मंदिर में राष्ट्र - भाषा के रूप में हिंदी को अपनाने का उत्सव हो रहा है - यही कवयित्री का कथन है । इसके समर्थन में कवयित्री ने यों कहा है -

'उस हिंदू जन की गरविनी
-- -- --
उसका ही उत्सव प्यारा । '[2]

यहां यह बात स्मरणीय है कि गांधीजी के राष्ट्रीय कार्यक्रम में हिंदी को बड़ा महत्व दिया जाता था । हिंदी को भारत की राष्ट्र भाषा बनाने के लिए उन्होंने खूब प्रयत्न किया था ।

भारत में जीवन का प्रमुख उद्देश्य बलिदान का होना और स्वाधीनता प्राप्त होने पर सारा वैभव भारत माता का कहलायेगा । -

' असहयोग पर मर मिट जाना
-- -- --
वैभव बस तेरा होना । '[3]

स्वातन्त्र्य- मिलन में पूर्ण अधिकार भारत माता को ही है । -

१: स्वागत गीत - मुकुल- पृ० ११८ २: मातृमंदिर में - पृ० ६७
३: वही० पृ० १००

' तू होगी अवतार, देश के

-- -- --

हो स्वातन्त्र्य दिलाने में । '[1]

इस कविता में उन्होंने प्रार्थना को प्रधानता दी है । सत्य (सौम्य) हो गांधी वादी असहयोग आन्दोलन तथा बलिदान की महत्ता का उल्लेख किया है । महान वीरों की प्रशंसा भी की गयी है । वे कहती थीं कि उन्हीं के द्वारा भारत माता के पद- पंकज की पूजा- वंदना होगी ।

' जालियांवाला बाग में वसंत ' में कवयित्री ने वहां के हत्या काण्ड का स्मरण करते हुए अपने मन का दु:ख प्रकट किया है । कवयित्री ने इसका आरंभ अशांत वातावरण में किया है । यह हत्याकाण्ड सन् १९१९ ई० में हुआ था । एक सार्वजनिक सभा में भाग लेने के लिए लगभग २०,००० आदमी इस बाग पर जमा हुए थे । तभी इस जन- समूह की ओर गोलियां चलायी गयीं और फायर किये गये । इसके फल- स्वरूप असंख्य लोग मर गये और कुछ घायल भी । इस घटना को लेकर बाद में हिंदी साहित्य के विभिन्न क्षेत्रों में रचनाएं हुईं ।

प्रस्तुत कविता में कवयित्री ने अपना शोक व्यक्त किया है । उनका मन इस घटना को देखने पर अत्यंत व्याकुल हो गया और वे सदा इस दु:ख की आहें भरते रहना चाहती थीं । अत: उन्होंने कहा है -

' वायु चले पर मन्द चाल से उसे चलाना ।

-- -- --

भ्रमर करे गुंजार, कष्ट की कथा सुनावे । '[2]

कवयित्री ने उन शहीदों के स्मरणार्थ पुष्पांजलि चढ़ानेका अनुरोध किया है । यह तो स्पष्ट है कि शोकाकुल परिस्थिति में कोई सुख का अनुभव करना नहीं चाहता । वह प्राय: परिस्थिति के अनुकूल अपनी मनोभावना को बदल देता है । अत: कवयित्री भी यहां वस्तुत: विषण्ण वातावरण के कारण शोर मचाना नहीं चाहती हैं- इसलिए उन्होंने कहा है -

- -

१: मातृ- मंदिर में - पृ० १००   २: जालियां वाला बाग में वसंत - पृ० ८८०

' यह सब करना, किंतु

-- -- --

यहाँ मत शोर मचाना । '[1]

पवन से उनका यह अनुरोध है कि इन मृतकों के ऊपर अल्प- सुगंधित पुष्प एवं ओस भरी फूल लाकर बिखेर देना ।

' लाना संग में पुष्प, न हों वे अधिक सजीले

-- -- -- --

स्मृति में पूजा- हेतु यहाँ बिखराना । '[2]

कवयित्री तो गांधीजी के समय में जीवित थीं और उन्होंने गांधीजी के क्रिया- कलापों में सक्रिय रूप से भाग लिया था । वे दो- तीन बार भी जेल गयी थीं ।

कवयित्री ने इसका शीर्षक ' जलियां वाला बाग का वसन्त ' रखा है । मगर इसमें वर्णित विषय तो अत्यंत दुःखदायी है । शायद उस घटना के पूर्व वहाँ वसंत की मस्ती रही होगी और अब तो वह दुःख में परिवर्तित हुआ है । वहाँ के चिर वसंत काल अर्थात् संतुष्ट वातावरण को स्पष्टतः व्यक्त करने के लिए ही प्रस्तुत शीर्षकको चुना हुआ होगा । इस घटना के फल- स्वरूप मरे आदमियों को कवयित्री ने बलिदानियों के रूप में चित्रित किया है और अपने बलिदान- चाही मन के भावों को व्यक्त किया है ।

' व्यथित हृदय ' में कवयित्री ने अपने पारिवारिक तथा भौतिक जीवन से विरक्त होने के कारण बलि हो जाने की आशा से भगवान से प्रार्थना की है । कवयित्री मृत्यु का आह्वान करती हुयी कहती थी । -

' सुनूंगी माता की आवाज़

-- -- --

न होने दूंगी अत्याचार ।। '[3]

वे बलिदान की वेदीपर किसी प्रकार के अत्याचार या अनीति का होना नहीं चाहतीं ।

१: जलियावाला बाग का वसन्त - पृ० ८१ २: वही० पृ० ८१ ३००बही०पृ०
३: व्यथित हृदय - पृ० १०३

अत: उन्हों यों कहा -

` न होने दूंगी अत्याचार ,

-- -- --

चढ़ा दो मुफ को भगवान । `[१]

कवयित्री ने सांसारिक जीवन से मुक्ति पाने के लिए बलिदान के मार्ग को स्वीकार किया है । इसमें उनकी राष्ट्रीयता की भावना व्यक्त हुई है ।

`स्वागत` कविता सन् १६२० में नागपुर में होने वाली कांग्रेस के स्वागतार्थ लिखी गयी है । भारत की स्वतंत्रता - प्राप्ति में कांग्रेस का बड़ा महत्वपूर्ण स्थान है । कांग्रेस की सभा अनेक शहरों में हुई । कवयित्री ने यहां नागपुर - कांग्रेस के बारे में कहा है । कांग्रेस की जितनी सभाएं हुईं, उन्हीं के प्रयत्न के फल- स्वरूप ही भारत स्वतंत्र हुआ है । अत: कांग्रेस का उल्लेख हिन्दी साहित्य में हरकहीं मिलता है ।

यहां उन्होंने कांग्रेस को माता के रूप में चित्रित किया है ।-.

` आ गया कांग्रेस । हमारी आकांक्षा की प्यारी मूर्ति ।
राज्यहीन राजाओं के गत वैभव की स्वाभाविक पूर्ति । `[२]

कवयित्री ने भारतीय युवकों से यह प्रतिज्ञा लेने का अनुरोध किया है -

`हम हिंसा का भाव त्याग कर
विजयी, वीर , अशोक बनें । `[३]

कांग्रेस को आजादी की चिरंतन प्रयत्नशील सभा कहा गया है । -

`भारतीय स्वातन्त्र्य प्राप्ति की
तू चिरजीवी सात्विक यत्न । `[४]

अंत में उन्होंने कांग्रेस का स्वागत करते हुए कहा है -

`इस कुटिया को महल समझना

-- -- --

आओ महारानी । `[५]

- -

१: व्यथित हृदय - पृ० १०३ २: स्वागत - पृ० ११३ ३: वही० पृ० ११४ ४: वही० पृ० ११५
५: वही० पृ० ११६

काँग्रेस का स्वागत करने के साथ ही उन्होंने उसमें गांधीवाद के अहिंसा-तत्व का विवेचन किया है ।

'मेरी कविता' भी जालियांवाला बाग की घटना से संबंधित कविता है। उनसे किसी एक सहृदय ने कहा कि उसे कोई कविता सुनायें । उस समय प्रस्तुत घटना से कवयित्री का मन दु:खित था और उन्होंने उस पर कविता लिखी और सुनायी । उनका कहना था कि उस जगह जो हत्याकाण्ड हुआ उससे देश के माथे पर जो कलंक लगा उसे मिटाना असंभव है ।[१] वहां के कारुणिक तथा दु:खदायी दृश्य का चित्रण करने के लिए एक ऐसी नारी का चित्रण प्रस्तुत किया है जो पगली सी दिखाई भी देती थी । उससे यह ज्ञात पड़ता है कि उसके पति उस घटना के शिकार बन गये हैं । उनका कथन है कि उस नारी के समान कितनी नारियां होंगी जिनके पति मर गये होंगे और वे अनाथ बनी होंगी । यह नारी प्रतिदिन उसी जगह पर आकर रोती चिल्लाती थी । जहां उसके पति मर चुके थे और लौटते समय उसे देखनेवाले पागल कहा करते थे । इस कविता में उस सहृदयों से यह अनुरोध किया गया है कि अन्य लोगों की तरह वह भी उसे पागल न समझें । उसके दु:ख में वे भी दु:खी बनकर उसकी दीन-दशा पर दो-चार अश्रु कण गिरा दें-

'उसकी ऐसी दशा देखना ,
आंसू धार बहा देना ,
उसके दु:ख में दुखिया बनकर ,
तुम भी दु:ख मना लेना ।'[२]

इन अंतिम पंक्तियों में जो भावना निहित है वह गांधीवादी विचार-धारा के 'वैष्णव जन तो तेने कहिये , जो पीर पराई जाने रे' वाले तत्व का समर्थन करती है । गांधीजी जनता के सुख में अपने को सुखी और उनके दु:ख में अपने को दु:खी मानते थे । दु:खित जनता केप्रति उनके मन में विशेष सहानुभूति थी ।

कवयित्री के चरित्र में शोक का पक्ष ही अधिक रहा है । प्रेम-कथा सुनाने केअनुरोध पर उन्होंने दु:खद कथा सुनाना ही उचित समझा । जलियांवाला बाग की

१: रोने से अब क्या होता है ,
   धुल न सकेगा उसका दाग । ' - मेरी कविता - पृ० ८२

२: वही० पृ० ८६

इस घटना का कवयित्री पर अमिट प्रभाव पड़ा है ।

'बिदा' में कारागृह-वास के लिए जाते समय उन्होंने जो बिदा माँगी, उसी का वर्णन है । आलोचनात्मक ग्रंथ से यह स्पष्ट हुआ है कि सुभद्राजी ने तीन-चार बार जेल - वास भोगा है । जब सुभद्राजी ने सन् १९२१ के असहयोग आन्दोलन में भाग लिया तब उन्हें इस कारण से गिरफ्तार किया गया । जब उन्हें जेल ले जाने का वारंट आया तब वह कुछ घबराने लगीं और आंखोंसे अश्रु-जल टपकने लगा । मगर तुरंत ही उन्हें जेल- जीवन का गौरव समझ में आ गया । गांधीजी जैसे जितने महान लोग जेल गये हैं । अत: उन्हीं के अनुसार जेल- जीवन बिताना चाहिए यही उनका कथन था-

' तिलक, राजपत, गांधीजी भी
-- -- -- --
संकट में अवतार हुए । '[1]

पहले तो कवयित्री जेल देखते ही या युद्ध छिड़ते ही भयभीत होकर रोने लगती थीं । मगर जब उनके मन में गांधीजी जैसे वीर व्यक्तियों की चिंता आयी तब उनके मन में वीरता का भाव जाग उठा । उन्होंने स्वयं बताया है -

' सखियों सोयी हुई वीरता
जागी, मैं भी वीर बनी । '[2]

हम देख सकते हैं कि सुभद्राजी पहले पहल एक भोली भाली नारी थी । मगर जब उन पर गांधीजी जैसे महान व्यक्तियों का प्रभाव पड़ा तब वे वीर नारी बन गयीं । कवयित्री ने अपनी वीरता का परिचय दिया है ।

' विराम चिह्न ' की कविताएं : गांधीवादी विचारधारा की कविताओं के लब्ध प्रतिष्ठ एवं प्रमुख कवियों को छोड़कर अन्य कई कवि भी ऐसे रहे हैं जिन्होंने भी गांधीवाद से प्रभावित होकर कुछ कविताएं लिखी हैं और उनमें रामेश्वर शुक्ल ' अंचल ', भगवतीचरण वर्मा, गोपाल सिंह नेपाली, पद्मसिंह शर्मा ' कमलेश ' , केलासनाथ वाजपेयी, ' कुसुमेश ', हरिऔध,

- -

१: बिदा - पृ० १११ २: वही० पृ० ११२

पुष्पकुमार त्यागी, आनन्द मिश्र, बच्चन, पंत जी आदि कवियों का नाम उल्लेखनीय है।

'महाज्योति' कविता विराम चिह्न की एक कविता है जिसमें गांधीजी को 'महाज्योति' बताया है और उनकी कर्म-कुशलता का परिचय दिया है। कवि को गांधीयुग की याद आयी और उन्होंने कहा -

' युग युग की -- -- यादें फिर आयीं। '[1]

गांधीजी की अहिंसा के गुण-कीर्तन से अपनी कविता को भर दिया है -

' युगों - युगों से -- -- गान भरे हैं।'[2]

गान्धीजी की महत्ता पर कवि ने अपना आश्चर्य प्रकट किया है। -

' किस युग ने देखी है ऐसी महा-साधना,

--- -- ---

जिसकी ओस - भरी आंखों ने सदा अमृत का स्रोत बहाया। '[3]

उनके विरागी और योगी के युगल रूपों का चित्रण कवि ने किया है।[4] उनके अनन्त श्रम से देश में मानवता और अहिंसा की स्थापना हो गयी। -

' नई स्फूर्ति की विभा बिखरती,

-- -- --

पशुता मिटती रहती। '[5]

इस कविता में कवि ने गांधीजी की याद से अपने मन में जो भाव उठे, उनका वर्णन किया है जिसमें कल्पना का चमत्कार विद्यमान है। अतः उन्होंने गांधीजी की महाज्योति के रूप में कल्पना की है।

१: महाज्योति - पृ० ४६   २: वही० पृ० ४७

३: वही० पृ० ४७

४: ' किस युग ने -- -- सौन्दर्य सजाने। ' - महाज्योति - पृ० ४७

५: महाज्योति - पृ० ४८

'गान्धीजी ' में कवि ने गान्धीजी के प्रति अपनी भूल को प्रकट किया है। उस समय जनता ने गान्धीजी के आदर्शों और सिद्धान्तों का पालन करने की प्रतिज्ञा ली थी जब भारत स्वतन्त्र हुआ था। उसके बाद जब गान्धीजी की मृत्यु हुई, तब से देश की दशा भी बिगड़ गयी। देश में पुन: अराजकता और अत्याचार ने सिर उठाया। इसी कारण कवि ने प्रस्तुत कविता में गान्धीजी का स्मरण न करने का दु:ख प्रकट किया है।[१] सारे देश में नर - हत्या जैसे पाशविक कृत्य हो रहे हैं।[२] अन्त में कवि ने बताया है कि सत्य और अहिंसा दोनों गांधीजी के साथ ही चले गये। अब तो देश में हिंसात्मक कर्म और असत्यपूर्ण बातों की कोई कमी नहीं है। -

' मन के -- -- भूल गये। '[३]

इसमें कवि ने जनता की गान्धीजी के प्रति जो विस्मृति हुई है, उसी पर विशेषत: अपना शोक प्रकट किया है।

'बापू ' में कवि ने गान्धीजी को आजादी के माननीय दाता के रूप में चित्रित करके उनकी महिमा का गुण- गान किया है -

' हर सदियों का --- --- मझधार भरा। '[४]

उन्हें सत्य - सिन्धु, पवित्र, मानवता का शुभ मुहूर्त आदि बताते हुए उनकी प्रशंसा की है।[५] गान्धीजी ने युवकों को बलिदान का मन्त्र सिखाया जिस पर पत्नी, माता, बहनें बड़ा गर्व करती थीं।[६]

यह तो गांधीजी का प्रशंसा- गीत है ; प्रस्तुत कोई विशेष महत्त्वपूर्ण बात नहीं कही गयी है।

'बापू ' अंचल जी की और एक कविता है जिसमें गांधीजी की मृत्यु पर अपना दु:ख प्रकट किया गया है। गान्धीजी की छाती से शोणित की जो धारा बही उससे समस्त संसार सिंचित हुआ। अत: वह निर्विकार और निश्चेष्ट बनकर खड़ा हुआ है।

- -

१: 'तुमने जीवन को -- -- तुमको ही भूल गये ' - पृ० ४६

२: मरणशील -- -- लाज नहीं आयी ' - गान्धीजी ,पृ० ४६

३: गान्धीजी - पृ० ४६ ४: बापू - पृ० ५४ ५: वही० पृ० ५४

६: वही० पृ० ५४

स्वाधीनता प्राप्त होते ही वे बलिवेदी पर चढ़ गये और तब तक वे भारत देश का साथ दे रहे थे।[१] गांधीजी का अटूट विश्वास था, अचंचल मन था, अमिट जीवन था और निर्मल चरित्र था -

'है अचल विश्वास -- -- कितनी है अमर'[१]

यहां कवि ने गांधीजी की निश्चल महिमा और अमरता पर अपना विचार प्रकट किया है।

'बापू' नामक और एक कविता की रचना की गयी है जिसमें कवि ने गांधीजी की दारुण हत्या पर अपना शोक प्रकट किया है।[२] गांधीजी ऐसे मुक्तिदाता थे जिन्होंने मृत्युभय से जनता की रक्षा की, हिंसा और घृणा का भाव मिटाया और सदा सत्य की रट लगायी थी।[३] गांधीजी ऐसे जन- नायक और जन- रक्षक थे जिन पर जनता निर्भर रहती थी और उनकी सान्त्वना भरी वाणी सुनने के लिए उनका मुंह ताक रही थी।[४] उनको सत्य का मूर्तरूप बताया गया है -

साकार हुआ आदर्श
-- -- --
सन्देश धरा पर आया था।'[५]

कवि ने बहुत शोकातुर होकर कहा है कि अब तक गान्धीजी के जन्म- दिन का आनन्दोत्सव मनाया जा रहा था। लेकिन अब तो उनका मरण- त्योहार मनाया जा रहा है।[६] गान्धीजी के देवत्व और अमरत्व पर कवि ने प्रकाश डाला है - उनकी जीवन- धारा का प्रवाह अबाध गति से संसार भर में हो रहा है जिससे जनता का सूखा जीवन हरा- भरा, पुष्पित और पल्लवित हुआ।[७] अन्त में कवि ने अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की है। -

- -

१: बापू - पृ० ६५
२: बापू - पृ० ४२ 'जो पाप-धरा के -- -- वध कर जीती।'
३: 'जो वीर -- -- जागृत करती' - बापू पृ० ४२
४: 'जो प्यासी -- -- दौड़ आता है।' - वही० पृ० ४२
५: बापू - पृ० ४३ ६: 'प्रति वर्ष -- -- आधार मना।' - बापू - पृ० ४४
७: बापू - पृ० ४५

' मानव की प्रीति भरी लघुता

-- -- --

मन की स्वाती का सार भरें । '[1]

कवि ने यहां भारतवासियों की असावधानी और अबोधता पर दु:ख प्रकट किया है । गान्धीजी स्वयम महान थे जिन्होंने स्वतंत्रता की प्राप्ति के लिए अथक परिश्रम किया था । ऐसे एक महापुरूष की हत्या एक हिंदू के हाथों हुई । उनकी मृत्यु के बाद लिखी कविता होने के कारण इसमें उनके प्रति अपने मन की अपार श्रद्धा प्रकट की गई है । कवि ने यहां उन्हें समस्त चराचर का आधार या अवलंब बताकर चित्रित किया है ।

' गांधीजी के निधन के बाद प्रथम स्वाधीनता दिवस ' में कवि ने गांधीजी की मृत्यु पर अपना दु:ख प्रकट किया है । स्वाधीनता दिवस का उत्सव मनाने वाले इस दिन में उत्सव के बदले श्रद्धांजलि अर्पित की गयी है क्योंकि गांधीजी की हत्या के बाद प्रथम स्वतंत्रता दिन आया है । अत: गांधीजी के वियोग में यह दिवस अत्यंत दुखद प्रतीत हुआ है । कवि ने स्वयं कहा है कि राष्ट्र के महापर्व का सिंहासन गांधीजी के अभाव में खाली है । उनका कथन था -

' यह कैसा त्यौहार कि लगता अपना सूना सूना

-- -- -- --

शिथिल करों से डोर ध्वजा की खींच रहे सेनानी ।'[2]

इस मंगल दिवस को कवि ने गांधीजी का श्राद्ध - दिवस माना है और उनका तर्पण करना चाहा है -

' आज तुम्हारा सच्चा तर्पण होगा राष्ट्र - विधाता
आज तुम्हारा श्राद्ध - दिवस है ओ नवयुग निर्माता ।। '[3]

अन्त में यह आशा प्रकट की है कि सत्य का पालन हमेशा किया जाएगा और वह सत्य दीपक बनकर चिरकाल तक जलेगा । -

- -

१: बापू - पृ० ४५ २: गांधीजी --- दिवस ,पृ० ७४

३: वही० पृ० ७४

' देव तुम्हारी शुचि के घट पर युग युग सत्य पलेंगे
महादेश के प्राणदीप बनकर चिरकाल जलेंगे । '[1]

यहां पर भी कवि ने गान्धीजी की मृत्यु से हृदय - जन्य व्यथा प्रकट की है ।

'रंगों में मोह' की कविताएं :

श्री भगवतीचरण वर्मा ने अपने इस काव्य - संग्रह में गांधीजी तथा गांधीवाद पर दो - तीन कविताएं रची हैं और उनके प्रति अपनी श्रद्धा और प्रेम प्रकट किया है । ' अन्तिम दर्शन ' इसकी एक कविता है जिसमें कवि ने गान्धीजी की अन्त्य - यात्रा का चित्रण किया है । इसी समय उन्होंने उनका जो अन्तिम दर्शन किया था, उसका वर्णन है । भारत में नव-युग का निर्माण करने वाले तथा निष्प्राण जनों को प्राण देने वाले गान्धीजी तो अब इस संसार से चले गये और उस क्षण भी उनके मुंह से दो शब्द निकले - ' हे राम '।[2] बापू की अरथी आते देख कवि ने जनता से उसका अभिवादन करने की प्रार्थना की है -

' चुप ! देखो बापू की अरथी -
-- -- --
वह कब भूला ? कब हुआ भ्रान्त । '[3]

उन्होंने गांधीजी का गुण- कीर्तन किया है ।[4] अन्त में कवि उनका अन्तिम दर्शन करके अन्तिम प्रणाम करने के लिए निकल पड़े -

' हैं निकल पड़े बापू को करने अन्तिम नमित प्रणाम ।
हैं हम पागल - से बोल रहे ' हे राम ' । '[5]

' अन्तिम प्रणाम ' में कवि ने गान्धीजी को अपना अन्तिम प्रणाम

१: गान्धी की ---- ---- दिवस , पृ० ७४
२: अन्तिम दर्शन - पृ० ७६ ३: वही० पृ० ७७ ४: वही० पृ० ८०
५: वही० पृ० ८०

किया है । उन्होंने उन्हें ' शिव ' बताया है जिन्होंने हिंसा - विष पीकर जनता की रक्षा की है -

' हिंसा का वह गरल कि जिससे

-- -- --

तुम हे निस्पृह, हे निष्काम । '[1]

गान्धीजी के चारित्रिक गुणों का कीर्तन किया है -

' धीर - वीर - व गंभीर - व्रती तुम,

-- -- --

हे विश्वात्मा, हे अभिराम । '[2]

अन्त में कवि ने ' पतित राष्ट्र के अकलुष बापू ' बताते हुए उनका प्रणाम किया है ।[3] इसमें केवल गान्धीजी की प्रशंसा ही की गयी है ।

' प्रथम स्वतंत्रता दिवस पर ' कविता में जो आज़ादी के दिन पर रचित है, गांधीजी की महिमा गायी गयी है और इस युगल की रक्षा करने का अनुरोध किया गया है । कवि ने गांधीजी की मृत्यु पर अपना शोक प्रकट किया है । -

' जो एक घूंट में पान कर गया

-- -- --

है मोड़ गया हंस कर केवल । '[4]

गांधीजी क ने देश को भीषण एवं कराल गरल से अपने सत्य - अहिंसा अस्त्रों से लड़कर विजय प्राप्त की और भारत को आज़ादी भी मिली । सचमुच उन्होंने देश के लिए एक नये इतिहास की रचना ही की है जिसमें अहिंसा, करुणा और प्रेम का त्रिवेणी -संगम हुआ है -

- -

१: अंतिम प्रणाम - पृ० ७४ २: वही० पृ० ७४

३: वही० पृ० ७५

४: प्रथम स्वतंत्रता दिवस पर - पृ० ७१

उस परम तपस्वी गांधी ने

-- -- --

लिखा एक इतिहास नया । `[1]

इस आज़ादी को सुरक्षित रखने का कर्तव्य हमें है ।[2] उन्हें चेतना का दीपक माना गया है। वे मर गये, लेकिन उनकी आत्मा अमर है, ज्ञान अमर है और साधना भी अमर है जिससे यह संसार प्रेरणा प्राप्त कर रहा है -

` पर बापू की आत्मा अमर,

-- -- --

यह झुक न जाय ऊंचा मस्तक । `[3]

यहां कवि ने गांधीजी की महिमा गायी है । यह तो स्मरण करने योग्य है कि गांधीजी के द्वारा ही भारत देश स्वतन्त्र हुआ है । अत: स्वतंत्रता दिवस पर गांधीजी का भी स्मरण किया जाता है ।

` हिमालय ने पुकारा ` की कविताएं :

कवि गोपालसिंह नेपाली ने अपने काव्य - संग्रह में गांधीजी पर दो कविताएं लिखी हैं । ` अमर सेनानी गांधी ` में कवि ने गांधीजी को अमर सेनानी के रूप में चित्रित किया है जिन्होंने अपनी अहिंसा के द्वारा स्वाधीनता- संग्राम में हिंसा और पाप से निरंतर लड़ा था ।[4] उन्होंने अहिंसा की नीति को अपनाया और हिंसा का तिरस्कार किया ।[5] भारत को स्वतंत्रता- प्राप्ति को एक नई दिशा देने वाले गांधीजी ही थे और उन्होंने यह अपने सत्याग्रह के द्वारा किया ।[6] सब कहीं एकता का स्वर गुंजा दिया । -

` धर्म भुलाकर आज एक हो

-- -- --

जनता की आवाज एक हो ।`[7]

- -

१: प्रथम स्वतंत्रता दिवस पर - पृ० ७१ २: वही० पृ० ७२ ३: वही० पृ० ७३
४: अमर सेनानी गांधी - पृ० ६० ५: वही० पृ० ६०
६: वही० पृ० ६१ ७: वही० पृ० ६१

बिना किसी रक्तपात के उन्होंने देश को स्वतन्त्र बनाया। उनकी अहिंसा के सामने साम्राज्यवाद के लोहों और तोपों से कोई फायदा न हुआ। इस प्रकार जिस महान पुरुष के द्वारा हमें यह महान कार्य करगत हुआ, उनकी महान मृत्यु हो गयी और वे हमें छोड़कर चले गये। फिर भी उन्होंने अपनी करनी और कथनी को यहां छोड़ दिया जिन्होंने अमरता और अमूल्यता प्राप्त की है।[१]

यहां कवि ने गान्धीजी को भारतीय - स्वाधीनता - संग्राम के मुख्य नायक के रूप में चित्रित किया और उन्हें ` अमर सेनानी ` बताया है। उन्होंने इस कविता में गांधीजी के उन राजनीतिक कार्यों का प्रतिपादन किया है जो स्वतन्त्रता-प्राप्ति के सिलसिले में उन्हीं द्वारा किये गये हैं। इसमें कवि भाव की अपेक्षा शब्दाडंबर एवं तुक को अधिक महत्त्व देते मालूम पड़ते हैं।

` बापू तुम्हारी प्रार्थना ` में कवि ने गान्धीजी की स्वतन्त्रता-गत प्रार्थना, राम-राज्य की कल्पना और देशोद्धार की कामना पर प्रकाश डाला है। गांधीजी की अनन्त प्रार्थना का सुफल ही भारत की आज़ादी है।[२] गान्धीजी के बलिदान के पीछे अनेक युवकों ने अपना सिरदान दिया जो उनकी वन्दना की बात बन गयी।[३] गान्धीजी ने आज़ादी दिलाने के लिए जितने कष्ट सहे, जितनी कठिनाइयों का सामना किया, जितनी यातनाओं को झेला, उनका विचार करना असंभव है।[४]

इस कविता की विशेषता यह है कि इस छोटी - सी कविता में कवि ने गान्धीजी की राजनीतिक तपस्या और स्वतन्त्रता - प्राप्ति की बात बतायी है। इस काव्य के अंत में ` कविता - परिचय ` शीर्षक भाग में बताया गया है - ` इस छोटी सी कविता की एक बूंद में कवि ने गांधीजी की साधना और सिद्धियों का सागर भर दिया है। `[५] यह आकार से छोटी सी तो है पर भाव की दृष्टि से अत्यंत गंभीर बन गयी है। साधना और सिद्धि के पारस्परिक संबंध को यहां सुस्पष्ट किया गया है।

` धरती पर उतरो की कविताएं ` :

यह श्री पद्मसिंह शर्मा ` कमलेश ` का कविता - संग्रह है।

१: अमर सेनानी गान्धी - पृ० ६१   २: वही० पृ० ६१   ३: वही० पृ० ६३
४: बापू तुम्हारी प्रार्थना - पृ० ८१   ५: वही० पृ० ८१   ६: वही० पृ० ८२
[illegible] के प्रकाश - कविता परिचय - पृ० १५२

इसमें गांधीवादी कविताओं का भी समावेश किया गया है ।

' पथभ्रष्ट ' नामक कविता में कवि ने भारत के आधुनिक युग की संघर्षमय परिस्थितियों का चित्रण किया है और यह भी बताया है कि गांधीजी और उनके आदर्शों को जनता भूल रही है ।[१] निम्न पंक्तियों में कवि ने गांधीजी की ओर संकेत किया है ।

' नहीं किसी को ध्यान रहा है

-- -- --

इस स्वतन्त्रता के कागज पर । '[२]

आज़ादी की मांग का शासन बनाना उचित नहीं, वह तो समता और मानवता का पोषक और वर्द्धक है । उसकी रक्षा करनी चाहिए ।[३] कवि ने जनता को अपने अपने कर्तव्य की ओर उनका ध्यान आकृष्ट किया है ।[४] यहां कवि ने भारत के लोगों को पथ- भ्रष्ट कहा है क्योंकि वे अपनी आजादी और पूज्य राष्ट्र- पिता गांधीजी को बिलकुल भूल गये हैं । अतः वे आज़ादी के राज य सिंहासन से पथ- भ्रष्ट किये गये हैं ।

' कैसे श्रद्धांजलि दूं तुम को ' में कवि ने अपने को गांधीजी के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करने के लिए असमर्थ और अयोग्य ठहराया है क्योंकि गांधीजी की हत्या एक हिंदू के हाथों से हुई है । इतना ही नहीं कवि भी हिंदू बहि हैं । हिंदू होने के कारण कवि ने अपने को भी गांधीजी का हत्यारा माना है ।[५] गांधीजी की मृत्यु से भारत माता को अत्यंत दुःख हुआ है ।[६] कवि ने अंत में कहा है कि यदि गांधीजी जनता की सेवा करने के लिए अवतार लेना चाहते तो भारत में नहीं, दूसरे किसी देश में उन्हें जन्म लेना चाहिए क्योंकि भारत के लोग हत्यारे हैं ।[७]

'पंद्रह अगस्त ' में कवि ने भारत के स्वतंत्रता- दिवस की महिमा गायी है । भारत पूर्ण रूप से स्वतंत्र हुआ है और भारत माता की मंगल - आरती उतारने का अनुरोध किया गया है ।[८] कवि ने उन शहीदों का स्मरण किया है जिन्होंने

- -

१: पथ - भ्रष्ट - पृ० १६ २: वही० पृ० १६ ३: वही० पृ० २०

४: वही० पृ० २० ५: कैसे -- -- तुमको , पृ० ११

६: वही० पृ० १२ ७: वही० पृ० १२

८: पन्द्रह अगस्त , पृ० ७

भारत देश की मुक्ति के हेतु अपना प्राण- दान किया था और इसमें गांधीजी का नाम भी विशेषत: स्मरणीय है ।[१] भारत की जनता ने इसी दिन यह प्रतिज्ञा ले ली ।[२] इस कविता में अपना संतोष जिससे कि भारत स्वतंत्र हुआ है और अपना दु:ख जिससे कि गांधीजी की हत्या हुई है दोनों का चित्रण किया है ।

` मुक्ता मणि ` की कविताएं :

कमलानाथ वाजपेयी ` कुमुदेश ` ने भी गांधीजी तथा गांधीवाद से प्रेरित होकर कविताएं लिखी हैं । ` गान्धीजी ` नामक कविता केवल आठ पंक्तियों की छोटी कविता है जिसमें कवि ने गांधीजी का गुण- कीर्तन किया है । इसमें उन्हें कवि ने स्वतंत्रता- दाता के रूप में चित्रित किया है ।

> ` बन्धन तोड़ समस्त स्वदेश के
>
> -- -- --
>
> बापू स्वराज्य की नींव जमा गये । `[३]

`स्वतंत्रता ` भी बहुत छोटी कविता है जिसमें स्वतंत्रता की महिमा गायी गयी है । गांधीजी ने सत्य और अहिंसा के द्वारा भारत की आज़ादी पर अपना अभिमान प्रकट किया है ।

> ` चेतना जागी, अचेतना भगी ,
>
> -- -- --
>
> सत्य अहिंसा स्वराज्य ले आगी ।`[४]

प्रकृति ने भी संतुष्ट होकर स्वतंत्रता का स्वागत किया है ।[५] आज़ादी के मंगल उत्सव के बारे में कवि ने बताया है ।[६]

`पारिजात ` काव्य - संग्रह में ` हरिऔध ` जी ने ` दिव्य दशमूर्ति ` नामक छोटी सी कविता में गांधीजी के दशावतार का चित्रण किया है । भगवान श्रीकृष्ण के

- -

१: पन्द्रह अगस्त - पृ० ६ २: वही० पृ० १०
३: गांधीजी - पृ० ५७ ४: स्वतंत्रता - पृ० ४२ ५: वही० पृ० ४३
६: वही० पृ० ४४

दशावतारी रूप का चित्रण पौराणिक ग्रंथों में जो किया गया है उसी का परंपरागत पालन किया गया है। गांधीजी से संबंधित ग्रंथों का अध्ययन करने से यह तो स्पष्ट हुआ है कि गांधीजी का व्यक्तित्व विभिन्न विख्यात महान नेताओं के व्यक्तित्वों का मिश्रण है। अतः कवि ने राजा राममोहन राय, रामकृष्ण परमहंस, ईश्वरचंद्र विद्यासागर, दयानन्द सरस्वती, रानडे, रामतीर्थ, बाल गंगाधर तिलक, गोपालकृष्ण गोखले, मदन मोहन मालवीय, मोहन दास करम चंद (मोहन चंद) आदि नेताओं की परिगणना की है जिससे गांधीजी के व्यक्तित्व का रूप संवारा गया है। यह भी विचारणीय है कि ये अवतार किसी एक कार्य- सिद्धि के लिए न होकर, विविध कार्यों की सिद्धि के लिए हुए हैं जिनमें धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक सुधार का उद्देश्य निहित था।[१]

उपर्युक्त इन नेताओं के चारित्रिक प्रभाव से गांधीजी में वैशिष्ट्यपूर्ण सद्गुण जो दिखाई पड़े, उन्हीं का चित्रण कवि ने किया है और वे गुण सब के लिए हितकारी बनने की भी कामना की है।[२] कवि ने इस कविता में गांधीजी की दशमूर्ति का वर्णन किया है जो दिव्य,अलौकिक एवं सोद्देश्य है। छोटी होने पर भी यह कविता अवतारवाद की विवेचनात्मक दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है। यह भी माननीय है कि उनके अवतारवादी दश रूपों का चित्रण करते हुए लिखित पहली कविता है यह।

`आवाजों के घेरे` काव्य-संग्रह में दुष्यन्त कुमार त्यागी ने `गांधीजी के जन्म दिन पर` नामक कविता लिखी है जिसमें उनके जन्म दिन से संबंधित अपने मन के भावों को प्रकट किया गया है। कवि की इच्छा तो यह है कि वे इस देश की विकट दशा के समय अवतरित होते रहें और जनता को शोक- मुक्त कर उन्हें सान्त्वना देते रहें। यही बात कवि ने इस कविता में सुनाने का प्रयास किया है। अतः कवि ने बताया है-

> ` मैं फिर जन्म लूंगा
>
> -- -- --
>
> बाहों में उठा लूंगा। `[३]

१: दिव्य दशमूर्ति - पृ० ३ - ४

२: वही० पृ० ४

३: गांधीजी के जन्म दिन पर - पृ० ३६

गान्धीजी ने अपने कर्तव्य के बारे में यों बताया है -

' मेरी तो आदत है
-- -- --
उन्हें प्यार के सितार पर बजाऊंगा । '[१]

अन्त में गान्धीजी ने इसी धरती पर पुनः अवतरित होने की इच्छा प्रकट की है ।

'मैं मर जाऊंगा
लेकिन मैं कल फिर जनम लूंगा ।
कल फिर आऊंगा । '[२]

'सूत की माला ' गान्धीजी की हत्या और उनके आत्म- बलिदान पर लिखी गयी कविताओं का संग्रह है । 'सूत की माला 'गांधीजी के जीवन- सूत्र में गुंथी हुई घटनाओं की माला है । उनके जीवन के रंग- बिरंगे अनुभवों की बानगी से यह माला उनके चरणों पर अर्पित की गयी है । इस कविता- संग्रह में गान्धीजी के जीवन की विविध घटनाओं का चित्रण किया गया है जिनकी उपस्थिति में उन्हें बड़ा कष्ट झेलना पड़ा था ।

इस संग्रह में कवि ने गान्धीजी की जीवन - घटनाओं के चित्रण के साथ साथ उस समय के देश की विभिन्न परिस्थितियों काभी चित्रण किया है जो उनकी मृत्यु के बाद घटित हुई थी । उनकी मृत्यु के बाद देश की आजादी नाम मात्र की रह गयी । देश में घृणा, हिंसा, अनीति, लूट- मार आदि कुकर्मों का पुनः जन्म हुआ । गांधीजी के अवतार के पहले की जो वही स्थिति थी । उनके जन्म से देश में एक अपूर्व आभा फैली जिसकी रोशनी में जनता ने नव- युग के ~~आगमन के~~ आगमन को अपनी आंखों से निरखा है । वे जीवन के गगन में एक विचित्र तारा थे ।

' जो लिए था विभा एक ऐसी , '
-- -- --
डूबता आज है वह सितारा । '[३]

१, २ : गांधीजी के जन्म दिन पर -पृ० ४०
३: सूत की माला - पृ० १६

गान्धीजी की मृत्यु पर कवि ने अपना दुःख प्रकट किया है। उनकी मृत्यु की बात कदापि विश्वसनीय नहीं प्रतीत होती। उनकी जिन्दा रहते ही उनकी मृत्यु के बारे में अफवाह उड़ाने पर कवि ने अपना विरोध प्रकट किया है। उनके मरण से भारत के भविष्य पर जनता चिंतित रही है। उन्होंने एक बात यहां स्पष्ट की है कि गांधीजी की हत्या जबरदस्ती से हो की गयी है। जब कवि के गाडूसे से पूछने पर कि 'करके बापू की हत्या क्या तेरे मन की गति है, ' उसने कहा - ' है नहीं मुझे अपनी करनी पुर पछतावा '। उनकी मृत्यु पर कवि ने पहले दुःखी होने पर भी बाद में उसे भारत को सुखी बनाने के लिए उपयोगी सिद्ध किया है।[1] इसके द्वारा भारत के कल्याण की कामना भी उन्होंने की है।[2]

इसमें कवि ने केवल गांधीजी की मृत्यु की बात ही नहीं, उनके चरित्र पर भी बीच बीच में थोड़ा सा प्रकाश डाला है। उनका चरित्र - चित्रण उनके जीवन के कर्म - क्षेत्र के विभिन्न पहलुओं से प्रस्तुत किया गया है। गांधीजी ने सामाजिक क्षेत्र में जाति के उद्धार-हेतु अपना सर्वस्व त्याग दिया। इस प्रकार उनकी त्याग - भावना अत्यंत महान थी।

> ' वार उसने किया देश पर था ,
>
> -- -- --
>
> एक चिंता उसे थी प्रतिक्षण। '[3]

गान्धीजी की जीवन - तपस्या अत्यन्त कठिन थी और अपने तपः फल को भगवान के श्रीचरणों में समर्पित करके उन्होंने अपने तन को त्याग दिया -

> ' तप महा कठिन बापू की आत्मा ने साधा ,
> तू ने शरीर,दी कभी नहीं उसको बाधा। '[4]

गान्धीजी पर देश के ही एक हिंदु ने हिंसा का प्रहार किया, मगर गांधीजी दूसरों पर ऐसा करना नहीं चाहते थे। वे सदा अहिंसा की वाणी गुंजाते रहे थे। उन्होंने

- -

१: सूती माला - सूत की माला - पृ० १४१

२: वही० पृ० ८६ ३: वही० पृ० २० ४: वही० पृ० ३८

आकाशवाणी द्वारा अपने अहिंसा - तत्व को धरती तक पहुंचाया है -

' सुन, दिगंत से ध्वनि आती है -
न हन्यते हन्यमाने शरीरे -- '[1]

कवि ने जनता को जो उपदेश दिया है उसमें गान्धीजी के प्रति श्रद्धा और भक्ति की भावना स्पष्ट हुई है।[2] मानव की निष्काम सेवा ही उनके जीवन की मूल - साधना थी और चरित्र की मूल भावना थी -

' मूल साधना थी बस उनकी ,
मानव की सेवा निष्काम। '[3]

गांधीजी हमेशा न्याय के पक्ष में डट रहते थे और न्याय पर चलते थे। उनमें व्यक्ति की अपेक्षा प्रवृत्ति अधिक थी -

' गान्धी में गान्धी से बढ़कर था गान्धीपन
जग उन्हें पूजता था केवल उसके कारण। '[4]

कवि ने हिन्दू और मुसलमानों की एकता के बारे में यों कहा है जो गांधीजी द्वारा संपन्न हुआ।[5] गांधीजी कोमल स्वभाव के था और इसका परिचय इसमें मिलता है। वे बड़े हमदर्द और दयालु थे, करुणा की मूर्ति थे। गान्धीजी की हरिजन- सेवा का उल्लेख यहां किया गया है।

' जिनको छूने से हुए अपावन भी पावन ,
युग के अछूत हैं आज कहे जाते हरिजन। '[6]

गान्धीजी दूसरों के सुख में अपने सुख को सुखी मानने वाले थे। कवि ने गांधीजी से प्रभावित होकर एकता की कामना की है।[7] कवि के एक कथन में गांधीजी की सादगी पर प्रकाश

- -

१: सूत की माला - पृ० ४०   २: वही० पृ० ४६
३: वही० पृ० ४८   ४: वही० पृ० ६७
५: वही० पृ० ७५   ६: वही० पृ० ९२
७: वही० पृ० १०८

डाला गया है । उनकी मनो-मृदुता अपार थी और इसी पर उनका सारा विश्वास निर्भर था । वे बड़े ईश्वर - विश्वासी थे और उनके लिए प्रभु हो सब कुछ थे ।[१]

उनकी उपर्युक्त चारित्रिक विशेषताओं के कारण उनसे समता रखने वाला दूसरा कोई नहीं ।[२] बच्चन जी पर गांधीजी और गांधीवाद दोनों का प्रभाव पड़ा है । वे गांधीजी के अनुकर्ता एवं गांधीवाद के समर्थक एवं प्रचारक भी हैं । कवि ने इन पंक्तियों में गांधीवादी सैद्धान्तिक विचारों को देश- व्यापक बनाकर उनका प्रचार करने का आग्रह प्रकट किया है ।[३] कवि ने कहा है कि जनता अगर गांधी की याद अपने मन में रखते हुए, गांधीवाद को अपनाते हुए जीवन बिता सकती है तो नव- जीवन का निर्माण हो सकता है ।[४]

इस संग्रह के अंत में अपने पुत्रों का गांधीजी का अनुकरण करने और गांधीवादी बनने का उपदेश देते हुए गांधीवाद की परंपरा का पालन करने की इच्छा प्रकट की है । कवि ने गांधीजी को बहुमानी, रामनाम का प्रतीक माना है । उनके भारत के भविष्य काल का सूत्रधार एवं सूत्रकार मानते हुए कवि ने अपनी सूक्तों की माला उनके चरणों में अर्पित की है ।[५] आत्मा की अमरता और अहिंसा की बातों के कहने पर गीता का प्रभाव पड़ गया है । गीता गांधीजी के जीवन की संगिनी रही है । अत: उनकी प्रवृत्तियों पर गीता का प्रभाव पड़े बिना रह नहीं सकता ।

प्रस्तुत कविता - संग्रह की कविताओं में कवि ने गांधीजी बलिदान पर अधिक जोर दिया है । उन्होंने इसका नाम ` सूत की माला ` रखा है । सूत का अर्थ है थोड़े शब्दों में ऐसा पद या वचन जिसमें बहुत अर्थ हो ।[६] कवि ने इन छोटी सी कविताओं में छोटे छोटे पदों का प्रयोग किया है जिनके द्वारा महत्त्वपूर्ण बातों का प्रकट किया गया है । बीच बीच में उन्होंने उनकी राजनीतिक और सामाजिक प्रवृत्तियों का उल्लेख भी किया है । साथ ही गांधीजी की मृत्यु से लेकर उनके शव - दाह तक की घटनाओं का छोटे छोटे शब्दों में चित्रण किया गया है । अत: सारी कविताओं का

१: सूत की माला - पृ० ४१ | २: वही० पृ० २५
३: वही० पृ० ६१ | ४: वही० पृ० १३६
५: वही० पृ० १६४ | ६: संक्षिप्त हिंदी शब्द सागर पृ० १००३

मूल भाव एक ही जान पड़ता है । गांधीजी के कोमल एवं महत् चरित्र पर यत्रतत्र प्रकाश डाला गया है । सारी कविताओं के मूल में कवि का यह दु:ख भाव निहित है कि गांधीजी की मृत्यु से भारत देश पर बहुत बड़ा अमिट आघात पड़ा है । फिर भी उन्होंने उनके बलिदान को देश के भविष्य के लिए मंगलकारी प्रतिपादित किया है ।

इस संग्रह के आरंभ में ही कवि ने गांधीजी की मृत्यु की बात कही है। यह बात यहां उल्लेखनीय है कि कवि ने इन कविताओं में गांधीजी की हत्या अथवा मृत्यु को उनका अपना बलिदान सिद्ध किया है । अत: इसी बलिदान द्वारा देश का कल्याण संभव माना गया है । इसलिए आदि से अंत तक इस महान बलिदान की महिमा गायी गयी है । ` फूल की माला ` की विशेषता यह है कि प्रस्तुत माला में गांधीजी की जीवन- घटनाओं और बच्चन जी की श्रद्धांजलियों को एक एक करके पिरोया गया है।

`युगांत` की कविताएं :

श्री सुमित्रानन्दन पंत जी ने एक छायावादी कवि होने पर भी युग- परिवर्तन से प्रभावित होकर प्रगतिवादी युग में आकर गांधीजी और गांधीवाद को लेकर कुछ कविताएं लिखीं । इनका विभिन्न काव्य -संग्रहों में समावेश किया गया ।

`बापू के प्रति ` इस काव्य - संग्रह की एक कविता है जिसमें गांधीजी की प्रशंसा की गयी है । गांधीजी व्यक्ति के रूप में दुबले - पतले थे । देखने में वे बहुत क्षीण- काय थे । उनमें केवल अस्थि- मात्र शेष था । उनमें जो शक्ति थी वह आत्मा की शक्ति थी । आप तो जीवन की पूर्णता हैं । आप ही सच्चा आधार हैं जिस पर भविष्य संस्कृति की नींव पड़ी है । आप से ही संसार जीवित रहने को सीख सका है । आप ने हो संसार में लोगों को जीवित रहने का मार्ग बता दिया है ।[१]

गांधीजी ने मानव को दरिद्रता के कारागार से निकालकर उस को जीवन प्रदान करने का प्रयास किया है । जब गांधीजी ने उसके लिए परिश्रम किया, तभी से गांधी युग का प्रारंभ हुआ । इसकी विजय के लिए उन्होंने नमक- सत्याग्रह, असहयोग- आंदोलन, आदि में भाग लिया था । उनमें त्याग की भावना तीव्र थी । भारत को

- -

१: तुम मांसहीन -- -- समासीन - बापू के प्रति - पृ० ५४

स्वतन्त्रता प्राप्त कर देने में उन्होंने अपने प्राण तक त्याग कर दिये। इस प्रकार के त्याग की भावना संसार को गांधीजी से ही मिली है। वे सत्य और अहिंसा पर अटल रहते थे। सत्य और अहिंसा उनके जीवन के दो प्रमुख अंग थे। उनके सिद्धान्त भी सत्य और अहिंसा के ताने - बाने से बीने गये हैं। यहाँ नवयुग का प्रारंभ और गांधीजी के मानवपन का विकास दोनों पर प्रकाश डाला गया है।[१]

गान्धीजी के जीवन का एक अंग था चरखा। उन्होंने चरखे पर खादी का वस्त्र बनाकर लोगों को दिया था। इस युग में खादी का बड़ा प्रचार था और लोग इससे अपनी नग्नता मिटाते थे। गान्धीजी के युग में अछूत की परंपरा भी चलती थी। मगर गांधीजी इससे संतुष्ट न थे। उनके सामने संसार के सारे लोग चाहे वे नीच हों, या उच्च एक समान थे। वे किसी को भी उच्च - नीच की दृष्टि से नहीं देखते थे। अत: उनके मन में यह आशा उत्पन्न हुई कि अछूत- परंपरा का समूल नाश करना चाहिए। कठिन परिश्रम के फल- स्वरूप वे अपने अछूतोद्धार की प्रवृत्तियों में सफल हुए।[२]

गान्धीजी का जीवन एक प्रकार से सत्य का परीक्षण था। सत्य पर उन्होंने अधिक बल दिया है। जीवन में सत्य ही सब कुछ है और सत्य का पालन करना ही जीवित रहने का लक्ष्य है - यही था उनका सिद्धान्त। अत: उन्होंने जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में सत्य की खोज करने का भी प्रयत्न किया है। उनकी आत्मकथा वास्तव में सत्य का प्रयोग है। उन्होंने सबसे पहले सत्य की खोज की और बाद में अपने जीवन में उसका वास्तविक प्रयोग भी किया। गान्धी - युग के पूर्व जनता के बीच में व्याप्त पाशविक कृत्यों को हटाकर अहिंसा, क्षमा, नम्रता आदि मानवीय गुणों का सृजन किया। और मानवता की प्रतिष्ठा भी की।

यहाँ पशुबल पर आत्मबल की विजय है। गान्धीजी की शक्ति आत्मा की शक्ति थी। इस शक्ति के मूल में संयम की भावना निहित है। वे अपने जीवन में संयम का यथासंभव प्रयोग करते थे। अपने जीवन की सफलता का कारण आत्मबल था दूसरा कोई बल नहीं था। प्रेम उनके व्यक्तित्व की एक प्रमुख विशेषता थी। सारे लोगों को समान- दृष्टि से देखने के कारण गान्धीजी को उनके प्रति अनन्य प्रेम था।

- -

१: सुम मांस -- -- मानवपन । बापू के प्रति - पृ० ५४

२: संधियों ---. विकृत भूत। - वही० पृ० ५५

अगर दूसरों से किसी भी बात पर लड़ना पड़े तो वे प्रेम को लड़ने का हथियार बनाते थे। गांधीजी भौतिक वस्तुओं से दूर रहते थे। वे सांसारिक सुख का अनुभव करना नहीं चाहते थे। वे हमेशा संयम की साधना में लीन रहकर अपने सुख- भोग का त्याग कर देते थे।"१

गान्धीजी ने जनता के बीच में एकतापूर्ण सद्व्यवहार की रीति बसानी चाही। उन्होंने समस्त लोगों को एकता के सूत्र में बान्ध दिया। उन्होंने बिना शस्त्र के प्रयोग के, इस संसार में विजय प्राप्त की। उन्होंने बहुत से आन्दोलनों में भाग लिया था। लेकिन वे निःशस्त्र - सेनानी बनकर लड़ते थे। शस्त्र के स्थान पर सत्याग्रह द्वारा आन्दोलन चलाते थे।

गान्धीजी का प्रमुख काम चरखे में सूत कातना था। उन्होंने चरखे की सहायता से बहुत कपड़े बुने हैं। उनके मन में जनता के प्रति किये जाने वाले विद्रोहों, निष्ठुर व्यवहारों और अत्याचारों के बारे में चिन्तन करके बड़ा दुःख था। उन्होंने उनसे मुक्ति पाने के लिए जनता को आत्म- संयम की शिक्षा दी। वे खद्दर या खादी के रंग - बिरंगे सूतों के रंग - बिरंगे वस्त्र बुनते थे जिनमें नव- जीवन की आशा, स्पृहा, आह्लाद आदि को मानव- मन में जगाने की शक्ति रहती है।

गान्धीजी को महात्मा के रूप में चित्रित करके उनकी महिमा गायी गयी है। गांधीजी लोक- पुरुष थे। वे जन- कल्याण के लिए यहां अवतरित हुए थे। मानव की रक्षा करना उनका लक्ष्य था। उनका व्यक्तित्व महत्वपूर्ण था। उनका व्यक्तित्व इतना सूक्ष्म था कि उसे सरल रूप में खोजने से मिल नहीं सकता।

गांधीजी उदार पुरुष थे। अपनी सार्वजनिक मनोभावना से उन्होंने संसार में सब कुछ किया। उन्होंने सामाजिक क्षेत्र में सार्वजनिक मनोभावना के साथ काम किया था और यह भावना विजयी बनी। उन्होंने संसार के लिए जो कुछ किया उनके फल- स्वरूप वे अलौकिक पुरुष बन गये।

गांधीजी संसार - व्याप्त थे। उनकी प्रशस्ति संसार में दूर दूर तक फैली है। गांधीजी के युग में संसार का शासन आत्म- संयम के साथ हो रहा था।

१: पद्मबल --- बना मुक्ति। बापू के प्रति, पृ० ५६

जीवन की सारी इच्छाओं और आकांक्षाओं को छोड़कर संयम के साथ गान्धीजी लोक का शासन करते थे ।

गान्धीजी संसार में ईश्वर का अवतार लेकर आये । वे लोगों के रक्षक थे । उन्होंने लोगों का पालन करने का भार अपने ऊपर ले लिया । उन्होंने जनता को बहुत पढ़ाया और उसकी चारित्रिक वृद्धि की । उन्होंने जनता को इस भावना की शिक्षा दी थी कि 'एकोऽहं बहु स्याम्' और जनता के बीच के भेदभाव और भय को मिटा दिया ।

गान्धीजी ने जनता को एकतापूर्ण जीवन बिताने का निर्देश दिया। सारी जनता का एकता के साथ रहना यह उनकी अभिलाषा थी । जब गांधीजी यह कार्य कर रहे थे, तब संसार भी समता सोच रहा था । वे इस संसार को राम- राज्य बनाना चाहते थे । मगर यहां तो आत्मा की हत्या, असमता, भ्रम आदि होते रहते थे । वे हमेशा जनता को कर्मठ देखना चाहते थे । उन्हें रागद्वेषादि से दूर रहने का उपदेश देते थे ।

मानवतावाद के बारे में यहां बताया गया है । सच्चे मानव ही मानवता का सृजन कर सकते हैं । संसार में सूक्ष्म और स्थूल वस्तुएं रहती हैं, मगर वे सब वास्तविक नहीं हैं । इनमें जो जो सच्ची और अच्छी प्रतीत होती हैं उन्हें मात्र ग्रहण करना चाहिए । विश्व के लिए आवश्यक साधन है राज्य, जनता, साम्य तन्त्र आदि । इन सब के होने से ही शासन का कार्य हो सकता है ।

गांधीजी को ईश्वर पर बड़ा भरोसा था । उन्होंने अपना समस्त कार्य ईश्वर पर विश्वास रखकर ही किये थे । उनके लिए ईश्वर ही सब कुछ थे । अत: यहां गांधीजी के ईश्वर - विश्वास की एक झलक मिलती है । उनके मतानुसार ईश्वर ही सत्य है शाश्वत है शेष सब मिथ्या है ।

'युगवाणी' की कविताएं :

इसकी 'बापू' के शीर्षक कविता में पन्तजी ने गान्धीयुग के आरंभ होने की आकांक्षा प्रकट की है । जब युगवाणी की रचना हुई तब द्वितीय विश्वयुद्ध का प्रारंभ हो चुका था । इस भयानक संघर्ष की अवस्था में भी कवि अपनी आशा नहीं खोते थे।

इसलिए उस नवीन युग के आगमन का स्वागत किया है। सत्य, अहिंसा, प्रेम, आत्म-बल आदि गान्धीवादी तत्वों से एक नव संसार का निर्माण करके देखना चाहा है।[1]

गान्धीजी के प्रति पंत के मन में अगाध प्रेम तथा आदर था। कवि ने यहां सत्य को स्वर्ग तक पहुंचने कीसीढ़ी मानी है। उनका अनुमान था कि लोगों को सत्य और अहिंसा बहुत अच्छे लगेंगे और उनका पालन वे अवश्य करेंगे।[2] कवि ने यहां गान्धीजी को नयी संस्कृति के सन्देशवाहक एवं संस्थापक कहा है। मानव को आत्मबल की शिक्षा देने गान्धीजी आये हैं।

`समाजवाद - गान्धीवाद` में दोनों की तुलना की गयी है। दोनों की अपनी - अपनी विशेषताएं हैं जिनपर इसमें प्रकाश डाला गया है। साम्यवाद राष्ट्र के लिए हितकारी था। आज के जनतन्त्र, मानवता आदि साम्यवाद की ही देन हैं। गान्धीवाद की विशेषताओं पर विचार किया गया है।[3] गान्धीवाद ने मानवता का निर्माण किया है। सत्य, अहिंसा के दोनों स्तंभों की सहायता से नवीन संस्कृति को खड़ा किया। व्यक्ति - व्यक्ति में उसने जीवन के प्रति विश्वास पैदा किया। गांधीवाद में ही मानव की शक्ति बढ़ सकती थी और वह इतनी महान शक्ति थी कि उसे कोई भी अन्य शक्ति जीत न सकती थी।

गान्धीवाद ने मानव में पूर्णता उपस्थित की है। गान्धीवादके उद्देश्य पर विचार करते हुए पन्तजी ने बताया है कि गान्धीवाद का उद्देश्य मनुष्यत्व का तत्व सिखाना है।[4] यह जनता को एकता के सूत्र में बांधने वाली कड़ी है।

` ग्राम्या ` की कविताएं :

इसमें पन्तजी ने गान्धीजी पर दो कविताएं लिखी हैं और उनमें एक है ` बापू `।

कविता के प्रारंभ में कवि ने संसार की व्यापक अशान्ति पर विचार किया है। यह संसार तो वैज्ञानिक, भौतिक और आर्थिक दृष्टियों से सुसंपन्न है।

- -

१: किन तत्वों से -- -- पावनता ? - बापू - पृ० १९

२: बापू ! तुम से --- अनिवार्य। - वही० पृ० १९

३: गान्धीवाद --- आभास , समाजवाद-गांधीवाद, पृ०

फिर भी यहां पीड़ा ही पीड़ा, अशांति ही अशांति है। उन्होंने इस कविता द्वारा देश की अशांति पर प्रश्न किया है।[१] यहां गांधीजी के आत्मबल की सराहना हुई है। जैसे गांधीजी भौतिक सुखानुभवों से दूर रहते थे वैसे ही उन्होंने जनता को भी व उसकी शिक्षा दी। मानवता के प्रचार पर बल दिया गया है। लोग तो गांधीयुग की प्रतीक्षा में रहते थे। अत: कवि ने लोगों को भौतिक बन्धनों से मुक्त करने की प्रार्थना की है। गान्धीवाद के सिद्धान्तों का पालन करने के कारण मानव क ने देश - काल पर विजय प्राप्त की है।

इसकी दूसरी कविता है " महात्मा जी के प्रति "। यहां गान्धीजी की प्रशंसा कवि ने की है। गान्धीजी ने मानव को इस सांसारिक दु:खों तथा कष्टों से मुक्ति पाने के लिए सत्य सत्य की साधना का मार्ग बताया है। उन्होंने मोक्ष-प्राप्ति के आदर्शों को जनता के सामने रख दिया। अत: उन्हें इन आदर्शों की दीपशिखा कहा गया है।[१] पुराने आदर्शों एवं रूढ़ियों का तिरस्कार करके गान्धीवादी आदर्शों को अपनाने के कारण ही आज संसार के लोगों की विजय का रहस्य है। यहां आत्मबल की महिमा व्यक्त है।

गान्धीजी को मानव को आत्मा के प्रतीक माना गया है।[२] उन्होंने आत्मा को ही अधिक महत्व दिया है। उनकी आत्मा अन्य लोगों की आत्माओं के लिए प्रतीक के समान है। उन्होंने आत्मा की शक्ति को ही महाशक्ति माना है। इस आत्मा की शक्ति से वे संसार में बहुत कार्य कर सके और कीर्ति पा सके। उनको आदर्शों के देवता माना गया है।

प्रगतिवादी या राष्ट्रवादी सिद्धान्तों के मूल में एक तत्व है - सांस्कृतिक एकता। यहां सांस्कृतिक एकता स्पष्ट होती है। विभिन्न संस्कृतियों को मिलाकर उन्होंने नई संस्कृति की रचना की है। स्वतन्त्रता की भावना और नवीन युग क का आगमन। जनता भी देश के साथ स्वतन्त्र हो चुकी और नवीन रीतियां, परंपराओं और आदर्शों को अपनाकर अपना जीवन बिताने लगी। राष्ट्र के नेता के रूप में गांधीजी उनके ध्रुव, धीर, धुरन्धर आदि नामों से घोषित किया है। उनके नाम अनेक हैं पर नामी एक ही हैं।

१: निर्वाणोन्मुख --- महात्मा जी के प्रति, पृ० ५२ २: मानव आत्मा - वही पृ० ५२

जाति- भेद के निराकरण के बारे में भी बताया गया है । गांधीजी ने अपने आत्मबल से जाति के बीच के भेद - भाव को हटा दिया । उन्होंने समस्त जातियों को एकता के सूत्र में बांध दिया । रामराज्य की स्थापना गांधीजी का चिरस्वप्न था । उन्होंने भारत को रामराज्य बनाने का आग्रह प्रकट किया था । भारत स्वतन्त्र होने से उनका यह आग्रह कुछ कुछ साक्षात्कार हुआ । गान्धीजी को यहां भारत के हृदय कहकर संबोधित किया गया है । यहां अतीत के अन्त और नवीनता के आरंभ का आभास मिलता है । संसार में व्याप्त व्यक्तिवाद का अन्त हो गया और गान्धीवाद का प्रचार होने लगा ।[1]

प्राचीन काल में वर्ग और व्यक्ति के अनुसार संस्कृतियों और आदर्शों का पालन होता था । समस्त लोग एक ही संस्कृति और आदर्श का पालन नहीं करना चाहते थे । उनके बीच में विभिन्न आदर्श और संस्कृतियां व्याप्त थीं । लेकिन अब उन आदर्शों और संस्कृतियों का नाश हो गया और जनता इनके बंधन से स्वतंत्रता बन गयी । आज की संस्कृति में मानवता का विशेष महत्त्व है ।[2]

गान्धीजी ने जनता पर अपनी किस नीति तथा सत्य का प्रयोग किया.। उन्होंने जनता को नीति और सत्य के मार्ग पर चलने का आदेश दिया । संसार की सुप्ति पर कवि का प्रश्न है । गान्धीजी ने तो जनता से सत्य की पुकार की है । लेकिन वह तो अब पिछले युगों की संस्कृतियों और परिपाटियों से जाग उठा नहीं । अत: कवि का प्रश्न है कि सत्य की पुकार को स्वीकार करने तथा उसका पालन करने के लिए जनता कब जाग उठेगी ।[3]

गान्धीजी को मानव का सत्यान्वेषक कहा गया है । सत्य की खोज करना ही उनका जीवन- लक्ष्य था । अन्त में उन्होंने सत्य का अन्वेषण किया और उस पर जीवन बिताने का आह्वान जनता को दिया । गांधीजी के सिद्धान्तों की महिमा गायी गयी है । वे यद्यपि मर गये, फिर भी आज अमर माने जाते हैं । उसी प्रकार उनका धार्मिक, नैतिक, शास्त्रीय, राजनैतिकऔर दार्शनिक सिद्धान्त भी अमर हैं, अविनाश हैं । इनका प्रयोग युग - युग में होता था ।

- -

१: विकसित व्यक्तिवाद --- -- जर्जर - महात्मा जी के प्रति - पृ० ५२

२: वर्ग व्यक्ति ---.-- निर्मित - वही० पृ० ५३ ३: मध्य युगों --- जाग्रत ? - वही० पृ० ५३

गांधीजी की महिमा की प्रशंसा की गयी है। वे अपने में पूर्ण थे। समस्त सद्गुणों से पूर्ण पुरुष थे वे। उनका हृदय बहुत विशाल था। अत: वे एक परिपक्व महापुरुष थे। वे अहिंसा के उपदेशक थे। संसार के लोग आज भी उनकी वंदना करते आते हैं। गांधीजी के पवित्र चरणों के स्पर्श से यह पृथ्वी पवित्र बन गयी है। गांधीजी के चरण - रज की महिमा यहां व्यक्त है।

'चरखा गीत' में कवि पंत जी ने चरखे की महत्ता और उपयोगिता पर प्रकाश डाला गया है। चरखा गांधीजी के जीवन का एक अंग था। गांधीजी के घर घर चरखा हमेशा घूमता रहता था। चरखे को जनता का सखा या मित्र कहा गया है। यहां चरखे का स्वकथन है। मानव - जीवन की उन्नति के एकमात्र साधन के रूप में चरखा चित्रित हुआ है। दरिद्रता, निर्धनता, भूख आदि समस्याओं का समाधान चरखे के द्वारा हो सकता है।[1]

चरखा जनता से अपने लिए आवश्यक वस्त्र बुन लेने तथा इस प्रकार निर्धनता मिटाने का आह्वान करता है।[2] वह बेकार लोगों को भी कर्मठ बना देता है। खादी की महिमा स्पष्ट है। खादी को समृद्धि की पूर्णिमा कहा गया है। देश में दारिद्र्य का तम फैला हुआ है। चरखा उसका नाश करना चाहता है। चरखा आधुनिक यंत्रों की हंसी उड़ाता है।[3] वह सारी अभिलाषाओं की पूर्ति करने वाला साधन है।

यहां राष्ट्रीय और सामाजिक विचारों का प्रतिपादन हुआ है। एक ग्रामीण सेवक और पालक के रूप में चरखा चित्रित है। खादी के प्रचार से बहुत धन प्राप्त होते हैं और उस महत् संपत्ति की रक्षा भी चरखा करता है।

'अहिंसा' में अहिंसा के प्रचार की असमर्थता पर प्रकाश पड़ता है। भारत को स्वतंत्रता- प्राप्ति के पहले देश में हिंस्र - प्रवृत्तियां हो रही थीं। उस समय अहिंसा का प्रचार कैसे हो सकता था ? अहिंसा का पालन कौन कर सकता था ? अत: यह उन दिनों बन्दिनी थी। अहिंसा शब्द बिलकुल निरर्थक बन गया था। प्रेम को अहिंसा का भावात्मक रूप कहा गया है। आजकल के युग में केवल प्रेम ही रहते हैं। यहां हिंसा के विनाश एवं अहिंसा के सृजन पर कवि की इच्छा प्रकट हुई है। अहिंसा की

1: भ्रम,भ्रम, भ्रम -- -- चरखा गीत - पृ० ५०
2: बुन लई -- -- चरखा गीत- पृ० ५०
3: कहता चरखा-- वही० पृ० ५१

पुष्टि करने के लिए हिंसा का नाश करना अवश्य चाहिए। अहिंसा के अभाव में सांस्कृतिक प्रगति असंभव होती है। यहां अहिंसा की अनिवार्यता पर प्रकाश डाला गया है। अहिंसा मानव व जीवन का दर्शन होने के कारण उसे अहिंसा और मानव जीवन के द्वन्द्व के नाश के लिए उपयुक्त साधन कहा गया है।

' स्वर्ण किरण ' इस काव्य संग्रह में कवि ने गान्धीजी पर एक कविता लिखी है और वह है ' नोआखाली के महात्माजी के प्रति '। यहां गांधीजी को व्यक्ति के रूप में न होकर, एक जन- सेवक के रूप में चित्रित किया गया है जो नोआखाली की जनता की सेवा करने गये थे। इस सिलसिले में उन्होंने वहां जो सुधार एवं उद्धार किया था,उसी पर इस कविता में प्रकाश डाला गया है। उन्होंने वहां के जाति- भेद का समूल नाश किया। वहां की जनता के लिए वे स्वर्ग से प्रेषित दूत थे। गांधीजी शारीरिक दृष्टि से दुर्बल होने पर भी उनमें आंतरिक दृष्टि से अमेय शक्ति थी।[१]

गांधीजी प्रकाश की तरह संसार के कोने कोने में व्याप्त हैं। वे सर्व- व्यापी हैं जैसे भगवान। वे हमेशा ठीक एवं सत् मार्ग पर चलने वाले थे। अहिंसा रूपी अस्त्रों से हिंसा रूपी अंधकार को उन्होंने मिटा दिया।[२] हिंसात्मक कुटिल वृत्तियों को दूर करने का एकमात्र साधन उनका अहिंसास्त्र था। उसे संस्कृति का शस्त्र घोषित किया है। अहिंसास्त्र तो भावी मानव के गौरवपूर्ण मन में नवीन जीवन को जागृत करने में समर्थ था।[३] पिछले युग में वर्तमान धार्मिक, आर्थिक, नैतिक, संघर्षों को गांधीजी ने मिटा दिया और मानव के मन में संघर्षहीन या स्पर्धा हीन भाव भर दिया।

गांधी - युग को सुवर्ण युग कहा गया है।[४] जिस प्रकार ऐतिहासिक दृष्टि से गुप्तकाल को स्वर्ण युग कहा गया उसी प्रकार सामाजिक दृष्टि से यह युग भी सुवर्ण - युग कहलाने योग्य है। ऐसे महान पुरुष के सामने समस्त संसार नत-मस्तक हो खड़ा हो ही जाता है। उनके लिए वे ईश्वर हैं।

- -

१: कौन खड़े -- -- क्षितिज पर - नो:महात्माजी के प्रति पृ० ३५
२: आज राम कोदण्ड ---- -- तमस पराजित , वही० पृ० ३५
३: वह संस्कृति का शस्त्र -- -- जागृत , वही० पृ० ३५
४: इस वसुधा पर -- -- ससंभ्रम , वही० पृ० ३५

'श्रद्धा के फूल' में पन्त जी ने गान्धीजी को अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की है। गांधीजी की मृत्यु सन् ३० जनवरी १९४८ को हुई। तब विश्व - भर के लोगों ने उनके प्रति श्रद्धांजलियां अर्पित कीं। पन्तजी ने भी अपनी ओर से श्रद्धांजलि समर्पित की है। उन्होंने विविध रंग- बिरंगी भावनाओं से कविता - कुसुमों को लेकर उनके प्रति ~~श्रद्धांजलियां~~ श्रद्धा - भावना की पूजा कर उन्हें गांधीजी के चरणों में अर्पित किया है। इस कविता के आरंभ में ही कवि ने गांधीजी के तिरोधान की बात कही है -

' अन्तर्धान हुआ फिर देव विचर धरती पर '

गांधीजी ने शोषित जनों के दुःख को दूर कर दिया। वे दिव्य चैतन्य के रूप में हैं। वे ज्योतिर्मयी हंसी थे। वे समस्त लोगों से हंसते हंसते बातें करते थे।[१] मानवता और चिर - नवीनता के संस्थापक थे गांधीजी। मानव ने अपने रौद्र रूप को छोड़कर मानवीय रूप को ग्रहण किया अर्थात् वे अपने आप में मानवता को विकसित करने लगे।

गान्धीजी के प्रति कवि ने अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की है। साथ ही अन्य लोगों से भी अपनी अपनी अंजलि अर्पित करने का आह्वान किया है।[२] गांधीजी की मृत्यु वैशिष्ट्य थी। उनकी मृत्यु हृदय- भेदक तो है, परंतु मंगल दायक भी है। उनकी मृत्यु समस्त संसार के लिए दुःखद है, दुनिया ने उनसे बहुत लाभ उठाया भी है। उनकी मृत्यु के बाद के भारत को अथवा नये भारत को उनके चिर स्मारक के रूप में देखना कवि ने चाहा है। कवि ने संसार के समस्त जीव- जन्तुओं और व्यवहारों में गांधीजी के अंग - प्रत्यंग का अनुकरण करने की इच्छा प्रकट की है।

गान्धीजी के आत्मबल की जनता पर विजय जो हुई उसी का वर्णन है।[३] गांधीजी मर गये, किंतु उनकी बात भी याद सब लोग करते हैं। उनकी ऐसी भव्य स्मृति को नींव बनाकर उस पर नवीन संस्कृति का भवन या प्रासाद बनाने का आदेश दिया गया है।[४] सत्य के मार्ग पर चलते हुए अहिंसा का द्वार विश्व में अपने खोलने का आदेश है। उनकी मृत्यु पर प्रकृति अपना दुःख प्रकट करती थी। तृण और पेड़ अपने

- -

१: अंतर्मुख -- -- हंसी ज्योतिर्मय , श्रद्धा के फूल पृ० ४७
२: आओ हम -- -- जीवित स्मारक , वही० पृ० ४७
३: आत्मा का -- -- जन मन में , वही० पृ० ४८
४: आओ , उसकी ---- भवन उठायें , वही० पृ० ४८

मरमर के द्वारा अपना शोक स्पष्ट करते थे। समुद्र निश्चल होकर कूलों को सिमट रहा था। आकाश तो नम्र होकर चिंतित रहता था। पवन भी अपना श्वास रोककर निश्चल बन गया।[१]

उनकी मृत्यु से संसार भर में एक प्रकार का सूनापन व्याप्त हो गया। लेकिन उनके परिश्रम से देश में नवीन चेतना उत्पन्न हुई। और इसे बापू का आशीर्वाद माना जाता है। खादी के महत्व के बारे में भी बताया गया है कि खादी के सहारे जो जीवन बिताया गया, वह सुंदर और सुखद था।[२] खादी पर ही भारत का भविष्य निर्भर रहना चाहिए - यही कवि का आग्रह है।

गांधीजी को गीता के अनाश योवन की प्रतिमा कहा गया है। उनकी महिमा अवर्णनीय है।[३] गांधीयुग का आरंभ हुआ और उस युग ने जन - रूपी महासागर में प्रकाश रूपी पुल बांध दिया जिससे जनता पराधीनता के तिमिर में पड़ने से बच सकी। जनता के जीवन- लक्ष्य की पूर्ति के लिए गांधी - मार्ग खोल दिया।[४] गांधी - युग के आरंभ के बारे में कवि ने बताया है।[५] इसने मृत- राष्ट्र एवं जनता के लिए संजीवनी का कार्य किया। इस युग में नव- जागरण के सिलसिले में सत्य और अहिंसा को प्रमुख स्थान दिया गया है।[६]

हिंदी कवि - परंपरा से वर्तमान अवतार वाद पर विश्वास रखने वाले माने जाते हैं। अतः पंत जी ने यहां गांधीजी के पुनर्जन्म की आशा प्रकट की है।[७] उन्होंने हिंदू और मुसलमानों में एकता क लाने के लिए अत्यंत परिश्रम किया था। कवि ने इन दोनों वर्गों में इतनी समता देखी है कि हिंदू और मुसलमान दोनों गांधीजी के दोनों चरण हैं।

- -

१: आज प्रार्थना से -- -- समीरण, मधु के फूल, पृ० ६६
२: खादी के -- -- मखमल - वही० पृ० ६६
३: समास की -- -- शिखर, वही० पृ० ७० ४:
५: देख रहा हूं -- -- जादू भर वही० पृ० ७२
६: सत्य, अहिंसा --- --- जय घोषणा, वही० पृ० ७३
७: देव अवतरण करो --- --- चरण बन, वही० पृ० ७५

गान्धीजी की अल्पायु पर कवि ने प्रकाश डाला है। वे बहुत थोड़े दिन ही जिन्दा रहे। अपने निश्चल मुस्कराहट से सारे जगत को प्रकाशमान बनाते थे वे वे समता की मूर्ति थे। मानव जीवन के पथ- दर्शक एवं निर्देशक थे। उनको प्रथम अहिं माना गया है।[1] उन्होंने जनता के बीच में प्रेम का प्रचार किया। गांधीजी में कठोर को अपेक्षा कोमलता अधिक थी। हिंसा का अंत भी गांधीजी के अवतार के बाद में हुआ। गांधीजी को लोगों ने अहिंसा का प्रतीक कहा है।

गांधीजी की अंतिम यात्रा का करुणामय चित्र का मार्मिक ढंग से वर्णन किया गया है। यहां गांधीजी की मृत्यु के उपरांत की विलाप- यात्रा के बारे कहा गया है।[2] सारे संसार में एक प्रकार की निस्तब्धता छा गयी। गांधीजी की आ की अमरता गायी गयी है। उनके वियोग से दुःख का अनुभव प्रत्येक व्यक्ति करता है। वे अब भी जिन्दा हैं। - यही लोगों का विश्वास है। महापुरुषों की एक विशेष यह है कि वे असंख्य अवतार लेकर जन्म लेते हैं। गांधीजी भी महापुरुष थे। जनता मन का रथ थे। गांधीजी अर्थात् जनता के मनोरथ पर बैठ कर युगों को भविष्य का द दिया करते थे।

गांधीजी की चिता की अग्नि- ज्वाला के ऊपर उठने का वर्णन गया है। काल रूपी घोड़े पर सवार होकर व स्वर्ग पहुंचने वाले गांधीजी के बारे में व गया है। आगे कवि ने गांधीवादी सिद्धान्तों को लेकर गांधीयुग के आगमन के संबंध बताया है।[3] नव- संस्कृति, धर्म, सत्य, अहिंसा, मानवता आदि को जनता के बीच स्थान मिला। उनको धन्य कहा गया है क्योंकि हिंसा भावना का मूर्त रूप धारण वाले पशु से मानव को मानव बनाने में वे सफल हुए।

अंत में कवि ने गांधीजी के प्रति अपनी श्रद्धा की अंजलि अर्पित की उन्हें भारत की आत्मा बताया है। उन्होंने नवीन युग के जीवन के लिए प्रकाश प्रदा किया है। वे दिव्य जागरण तथा नव-युग के जीवन- दाता थे। आगे गांधीजी व

- -

१: प्रथम अहिंसक -- -- -- हिंसा हर। श्रद्धा के फूल पृ०

२: राजकीय -- -- अभिनव। वही० पृ० ७८

३: नव संस्कृति -- -- विस्तृत। वही० पृ० ८०

४: बार बार अन्तिम प्रणाम -- -- जीवन। वही० पृ० ८१

जयकार हुआ है। राष्ट्रपिता के रूप में उनका चित्रण यहां हुआ है। उनकी चारित्रिक एवं वैयक्तिक विशेषताओं का परिचय मिलता है।[१] सत्य मार्ग के पथिक होने के कारण वे निर्भीक थे। पाशविकता का अन्त करके मानवता की सृष्टि उन्होंने की। इस पृथ्वी को अपने प्रयत्न से स्वर्ग बनाया। हिन्दू और मुसलमान के बीच में एकता स्थापित करके भारत के तिरंगे झण्डे को फहरा दिया। अतः कवि ने उनका जयकार किया है।

'श्रद्धांजलि' ' युगपथ ' काव्य - संग्रह की एक कविता है। प्रस्तुत कविता को कवि पन्त ने ' युगान्तर ' में स्थान दिया है जो युगपथ का दूसरा भाग है। इसका कारण भी बताया जा सकता है। पन्त जी काव्य - रचना की प्रारंभिक दशा में छायावाद के कवि थे और उनकी इस समय की रचनाओं में कोमल भावनाओं का सुन्दर चित्रण ही मिलता है। लेकिन बाद में वे गंभीर और चिन्तनशील बने और तभी इस कविता की रचना की है। कवि ने इस कविता में गान्धीजी की महिमा की सराहना करते हुए उनको अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की है।[२]

गांधीजी के अवतार को देखकर जनता एकदम सहम उठी, भौतिक जन में रूपान्तर बोल पड़ा, सकल चराचर मुग्ध हो उठे मानो वे गान्धीजी में उस परम ज्योति को देख रहे हों।[३]

गांधीजी को युग - सारथी के रूप में चित्रित किया गया है। वे जन- मानस के कुरुक्षेत्र में युग - सारथी रहे हैं। संसार की जनता के मानस- संघर्ष के कारण उन्होंने युग को उससे बचाने के लिए प्रयत्न किया है। गान्धीजी लोक- पुरुष तथा जन- नायक रहने के कारण उन्हें अनेक नामों से संबोधित किया गया है। कवि उन्हें मनुष्यता के उन्नायक, अति मानवता के नव पावक, युग - अतिनायक आदि कहकर पुकारा है।

सच है इस कविता में कवि ने गान्धीजी का दिव्य - रूप प्रस्तुत किया है। इसमें गान्धीजी की महिमा गायी गयी है।

<u>खादी के फूल :</u>

यह दो प्रमुख कवियों (पंत जी एवं बच्चन जी) का संयुक्त काव्य- संग्रह है जो गांधीजी के प्रति श्रद्धांजलि के रूप में प्रस्तुत किया गया है। इसके द्वारा कवि ने

~~(आधुनिक संस्कृत एवसंग्य जन- मानस को सुव्यवस्थित करने का प्रयास किया है।[४] गान्धीजी~~

१: जय हे -- -- । श्रद्धा के फूल पृ० ८२ २: श्रद्धांजलि-युगपथ - पृ० १३० ३वही० पृ० १३०

आधुनिक संस्कृत एवं सभ्य जन- मानस को सुस्पन्दित करने का प्रयास किया है ।[1] गांधीजी की पुण्य-स्मृति को जगाने वाला हर फूल जो है, उनके अत्यंत प्रिय खादी के धागों से बुना हुआ है ।

इसमें दोनों कवियों ने अपनी - अपनी ओर से कुछ कविताएं लिखी हैं । गान्धीजी की मृत्यु के बाद लिखने के कारण इसमें इन युगल कवियों के करुण उद्गारों का विवेचन किया गया है । इसके दो खण्ड होते हैं । प्रथम खण्ड में पंत जी की कविताएं प्रस्तुत हैं और दूसरे में बच्चन बच्चन जी की कविताएं ।

काव्य के आरंभ में ही पन्तजी ने गान्धीजी के तिरोधान पर अपना दु:ख प्रकट किया है -

' अन्तर्धान हुआ फिर देव विचर धरती पर ,

-- -- --

जीर्ण जाति मन के खंडहर का अंधकार हर । '[2]

अत: कवि नैराश्यता से गांधीजी के चरण - कमलों पर श्रद्धांजलि अर्पित करने का अनुरोध किया है -

' आओ, हम उसको श्रद्धांजलि दें देवोचित,

जीवन सुन्दरता का घट मृत को कर अर्पित । '[3]

देश के सकल चराचर में गांधीजी की चेतना का स्फुरण जगाने की इच्छा कवि ने प्रकट की है । गांधीजी की अक्षय स्मृति को नींव बनाकर भव्य तथा नव्य संस्कृति का निर्माण करना कवि ने करना चाहा है ।

गांधीजी के निधन से सारी प्रकृति शोक- मूकता में चिन्तित दिखाई पड़ती है ।[4] कवि को लगा है कि खादी के रंगीन फूल - फूलों में भावी भारत का सपना मुसकुरा रहा है । उनके अमेय तन को यों देखने पर कवि ने ऐसा प्रश्न किया है

- -

१: अत: बापू के उज्ज्वल जीवन की पुण्य-स्मृति से सुरभित इन खादी के फूलों को हम पाठकों को इस विनीत आशा से समर्पित कर रहे हैं कि हम खादी के स्वच्छ परिधान के भीतर गान्धीवाद के संस्कृत हृदय भी स्पंदित कर सकेंगे । - प्राक्कथन- खादी के
२: खादी के फूल -पृ० १३ ३: वही०पृ० १३ ४ फूल - पृ० ६

कि उनके ऐसे सुदृढ़ तन को किस निर्दय ने इस प्रकार भेद डाला है । गान्धीजी की महिमा की प्रशंसा करते हुए उन्होंने यों पूछा है कि उनकी महिमा इस धरती के भीतर कैसे समा सकती है ।[१]

कवि ने गान्धीजी के द्वारा कुल अकुलापन के नाश पर प्रकाश डालते हुए कहा है -

' द्रवित हो रहा जाति मनस का अंधकार घन
नव मनुष्यता के प्रभात में स्वर्णिम चेतन । '[२]

गान्धी- युग के अवतार का चित्रण उन्होंने कितने सुंदर ढंग से किया है -

' देख रहा हूं, शुभ्र चांदनी का सा निर्झर
गान्धीयुग अवतरित हो रहा इस धरती पर । '[३]

सत्य और अहिंसा की संजीवनी से जनता ने भारत के शरीर पर लगी चोट को सुखाने का प्रयास किया है और गान्धीजी का जयकार भी किया है ।[४] कवि ने गान्धीजी से पुन: अवतरित होने और हिन्दू - मुसलमान दोनों उनके युगल चरण- सा एकता के साथ रहने की प्रार्थना की है । उन्होंने गांधीजी को प्रथम अहिंसक माना है ।[५]

अन्त में कवि ने गान्धीजी की अन्तिम यात्रा का मार्मिक चित्रण किया है । उनकी मृत- काया को लेकर राजकीय ढंग से सज्जित रथ धीरे धीरे चल रहे हैं । अगणित नेत्रों से अश्रु- धाराएं बह रही हैं । उनके अन्तिम दर्शन को लालसा से जनता यत्र-तत्र दौड़ रही है ।[६] आखिर कवि ने उनका अन्तिम प्रणाम करते हुए कहा है -

बारबार अंतिम प्रणाम करता तुमको मन,
हे भारत की आत्मा, तुम कब थे भंगुर तन ? '[७]

बच्चन जी ने भी गान्धीजी की मृत्यु पर अपना दु:ख प्रकट करते हुए उसे भारत देश के दीपक का निर्वाण बताया है - '

- -

१: समा सकी कब धरा स्वर्ग में तेरी महिमा ।- खादी के फूल, पृ०१६
२: वही० पृ० १८ ३: वही० पृ० १६
४: वही० पृ० १६ ५: पृ० २३
६: वही० पृ० २५ ७: वही० पृ० २७

'हो गया क्या देश के
सब से सुनहले दीप का निर्वाण ?'[1]

भारत देश के परिवर्तन को देखकर कवि ने यों प्रश्न किया है कि गांधीजी का अवतार तो हुआ है।[2] गांधीजी का अवतार भारत की मुक्ति का हेतु हुआ है और वे भारत के मुक्ति- यज्ञ के अग्नि- कुंड में जैसा जले थे, उसी तरह कवि ने प्रकाश डाला है -

' वह जला क्या जग उठी इस जाति की
-- -- --
देवी ध्वजा अम्लान।'[3]

जाति- भेद विहीन व नव- भारत की कामना कवि ने प्रकट की है।

' है हमें बनाना नया एक हिन्दुस्तान,
हिन्दू, मुसलिम, सिख, ईसाई जिसमें समान।'[4]

गांधीजी के आगमन से जनता अत्यंत संतुष्ट हुई और वे उन्हें अपना सर्वस्व मानते थे।

'हमने उसके तन में भारत का तन देखा,
-- -- --
हमने उसका व्रत भारत का व्रत समझा था।'[5]

आगे कवि ने गांधीजी के व्यक्तिगत गुणों एवं गांधीवादी विचारों पर प्रकाश डाला है।

गांधीजी अपने वैयक्तिकजीवन में सुखी रहना नहीं चाहते थे। दूसरे शब्दों में कहें तो उन्हें सुख का अनुभव करने का समय और अवसर तो न मिलता था। वे हमेशा तपस्वी एवं विरागी होकर चलते थे।[6] .वे राजनीति के क्षेत्र में न्याय- परायण तथा सामाजिक क्षेत्र में दरिद्र- नारायण थे। राजनीति में नीति तथा न्यायका

- -

१: खादी के फूल - पृ० २९   २: वही० पृ० ३०
३: वही० पृ० ३१   ४: वही० पृ० ४५
५: वही० पृ० ७४   ६: वही० पृ० ७७,७८

पालन और समाज में हरिजनों की सेवा ही उनका मुख्य उद्देश्य था ।[१]

उनकी प्रेम- गंगा के दो किनारे या कूल थे - सत्य और अहिंसा । उनके सत्य से ही भारत का उत्थान हुआ । और उनकी अहिंसा को विश्व पर के लिए वरदान मी ।[२] हिन्दू और मुसलिम की एकता के लिए उन्होंने अनुसरण जो किया था उसका उल्लेख यहां हुआ है ।-

` हिन्दू - मुसलिम थे - एक दूसरे के दुश्मन ।

-- -- --

अब दोनों अश्रु बहाते हैं तुम पर मिलकर । `[३]

देश में धर्मों की निंदा और तिरस्कार होता था । परंतु गांधीजी ने मात्र धर्म पर न जोर दिया था और यह बताया था कि धर्म - युद्ध में जीतने के लिए धर्म का पालन करना चाहिए । अत: उन्होंने देश के सारे धर्मों को समानत: अपनाया था । और हिन्दू धर्मकी विशेष अभिरुचि उनमें अवश्य थी । यों उनका हिन्दुत्व अपार एवं श्रेष्ठ था । -

` हिन्दुत्व दिव्यतम बापू जी में व्यक्त हुआ ,
संसार उसी के कारण उनका भक्त हुआ । `[४]

हिन्दू - मुसलिम एकता उनका परम ध्येय था और वे ऐसे एक मंदिर के पुजारी थे जहां हिन्दू, मुसलमान, सिख, ईसाई सब समान थे ।[५] गांधीजी वस्तुत: जनता- जनार्दन थे और अछूतों को ` हरिजन ` कह कर पुकारते थे जिनकी सेवा उन्हें ईश्वर - सेवा सा लगती थी -

` उन्होंने अछूतों को जब दी इतने
हरिजन की शुभ संज्ञा ।
किये अपावन उसने पावन
शुभ जल से नहलाके । `[६]

गांधीजी के एक- पत्नी - व्रत के बारे में कवि ने बताया है कि वे अपने व्रत का पालन खूब करते थे । उनका दर्शन एवं पूजन के लिए असंख्य तरुणी, युवती आती थीं । मगर वे उन्हें अपनी बहनों के समान मानते थे । और उनका सत्कार करते थे । वे पर- स्त्री का

- -

१: सादो के फूल- पृ० ७८, २:वही- पृ०७६ ६:वही- पृ०१२० ५:वही- पृ० १२३
३: वही० पृ० ८३ ४: वही० पृ० १०६

दर्शन तक नहीं करते थे ।

> ' निश्छल रक्खा तन - मन, निश्छल रक्खी वाणी,
> पर भी, पर स्त्री पैठी न तुम्हारे लोचन में । '[1]

गांधीजी की सुदृढ़ता की प्रशंसा कवि ने यों कह कर की है कि उन्हें मारने के लिए जितने निर्दयों ने गोली चलायी थी, वे सब व्यर्थ ही हुए । आत्म बल और ईश्वर भक्ति का विश्वास ही इसका कारण हुआ ।

> ' कितनों ने निर्दय गोल की बौछारों में
> निर्भय होकर अपनी चौड़ी छाती खोली । '[2]

गांधीजी इसलिए इतना अधिक पूज्य बने कि उन्होंने सांसारिक भौतिकता को आध्यात्मिकता में बदल दिया और ईश्वर - भक्ति एवं आत्म- शुद्धि के द्वारा जीवन- यापन करके ईश्वर - साक्षात्कार करने का उपदेश दिया ।[3] गांधीजी मानवता की प्रतिष्ठा जो करके गये, उसकी उन्नति करना सारी जनता का कर्तव्य है ।[4]

कवि ने गांधीजी की मृत्यु के बारे में शंका प्रकट की है क्योंकि उन्हें विश्वास नहीं आता था कि वे मर चुके । -

> ' यह गांधी मर कर पड़ा नहीं है धरती पर ,
> यह उसकी काया - काया होती है नश्वर । '[5]

उपर्युक्त बात का समर्थन कवि ने यों कह कर किया है और गांधीजी का मृत्यु संबंधी वचन यहां यों उद्धृत किया गया है -

> ' साथी जिसको जितने दिन रखता है, रखता,
> उसने जब चाहा मुझको जग से उठा लिया ।
> यह तो केवल हरि की इच्छा का अनुचर है । '[6]

- -

१: खादी के फूल - पृ० स १२३ २: वही०पृ० ८७
३: वही० पृ० १२८ ४: वही० पृ० १५३
५: वही० पृ० ६४ ६: वही० पृ० ६६

फिर भी उनकी मृत्यु ने सब के मन को भेद डाला और उनके प्रति श्रद्धांजलि के रूप में अनेक प्रबंध एवं कविताओं का सृजन होने लगा।[१] अंत में अपने ` खादी के फूल ` अर्पित करते हुए कवि ने बताया है -

` यह खादी की खादी ही कट - छंटकर आयी
इन पर्चों के निर्गन्ध प्रसूनों एवं कलियों में। `
बापू, जो अर्पित होती तुमको दिशि- दिशि से,
लो मिला तुम्हें भी इस इस श्रद्धांजलियों में। `[२]

` खादी के फूल ` में कवियों ने गांधीजी और उनके सिद्धान्तों पर प्रकाश डालते हुए उनके प्रति अपनी हार्दिक श्रद्धांजलियां उपस्थित की हैं। पंत जी की अपेक्षा बच्चन जी ने बहुत कविताएं लिखी हैं। दोनों कवियों ने उनकी महिमा की प्रशंसा यथास्थान की है।

`सुमन की कविताएं ` - कवि सुमन जी ने गांधीजी पर दो- चार कविताएं लिखी हैं जिन्हें उन्होंने ` पर आंखें नहीं भरीं ` में संगृहीत किया है।

इसकी एक कविता है` युग - सारथी गांधी के प्रति `। यह उनकी नोआखाली की यात्रा के समय लिखी गयी और इसकी एक विशेषता यह है कि गांधीजी की ६७ वां वर्षगांठ मनायी जाती थी। इसके प्रारंभ में कवि ने गांधीजी की यात्रा का वर्णन किया है। -

सांप्रिक पशुता के खंडहर में
तुम जीवन- ज्योति मशाल लिये
बढ़ रहे युगों की सीमा पर धर चरण अटल। `[३]

कवि ने इस पंक्ति में गांधीजी के निरस्त्र रहने की बात कही है -
`रह गये स्वयं हित रिक्त हस्त `[४]

गांधीजी की अर्द्ध- नग्नता का पोषण करते हुए बताया गया है कि दूसरों की नग्नता

- -

१: खादी के फूल - पृ० १६५ २: वही० पृ० १७१
३: कवि० युग सारथी गांधी के प्रति - पृ० ८७ ४: वही० पृ० ८८

छिपाने के लिए वस्त्र- दान करते हुए अपने को अर्द्ध- नग्न रखना वे पसंद करते थे -

'नग्नता निरीहों की ढक दी
ले ढाई गज की धवल चीर । '[१]

गांधीजी ने प्राणी - हत्या का विरोध किया था , विशेषत: गो- हत्या । प्राणियों के तन पर चोट पहुँचाना वे पसंद नहीं करते थे । अत: पशुओं की क्रूर- हत्या को मिटाने के लिए उन्होंने अहिंसा के सिद्धान्त को प्रचलित किया जिस पर कवि ने यहां दृष्टि डाली -

'हिंसक पशुओं के घावों को
नवनीत अहिंसा की उंगली से
सहलाया हौले - हौले । '[२]

इसमें कवि ने गांधीजी को युग- सारथी के रूप में चित्रित किया है और उनकी महिमा गायी है ।

इसकी और एक कविता है ' बापू के अंतिम उपवास पर ' जिसमें कोई खास बात नहीं बतायी गयी है ।

' महात्मा जी के महा निर्वाण ' में कवि ने उनकी मृत्युके प्रति अपना दु:ख प्रकट किया है । गांधीजी का निधन तो हो चुका है । मगर कवि को यह विश्वास आता नहीं कि वे चले गये । उन्हें लगा कि गांधीजी इसी पृथ्वी पर यत्र- तत्र विचरण करते रहेंगे । -

' तुम कहां नहीं हो आज
-- -- --
कण कण अंग अंग के स्पंदन में । '[३]

गांधीजी ने मानव- जीवन को गति और मति प्रदान की थी । आत्म- बलिदान का मंत्र सिखाया । मानव- स्वतंत्रता का शंख बजाया और दीन- दलितों के नयनाश्रु पोंछ दिये । इतना ही नहीं और क्या क्या न किये यह कहना कठिन है और वर्णनातीत भी । गांधीजी सब को सब कुछ देने वाले थे । मगर दूसरों से कुछ भी न लेते थे-

---

१: युग सारथी गांधी के प्रति - पृ० ६० २: वही० पृ० ६१ ३: महात्मा जी महान निर्वाण पर - पृ० ६१

दाता वैसे ही रहे सदा ,
बदले में कभी न कुछ चाहा । `[1]

कवि ने गांधीजी की हत्या पर यह प्रश्न उठाया है -

क्या कहूं कि हम सब के रहते
कैसे यह घोर अनर्थ हुआ ? `[2]

गान्धीजी की हत्या के साथ सत्य, अहिंसा, दया, तप, मानवता आदि का भी सर्वनाश हुआ है । - यही कवि का कथन है ।[3]

` महाप्रयाण` में भी कवि ने गांधीजी के स्वर्ग - गमन के बारे में बताया है । उनकी मृत्यु से पृथ्वी विधवा सी बन गयी है । कवि को लगता है कि यह संसार उनके बिना रहने लायक नहीं है ।[4] इसमें कवि ने गांधीजी के अंग - अंग - जैसे बोली, हाथ, चरण, श्रवण, मुसकान - के महत्व का वर्णन किया है जिनकी शीतल छाया में मानव जीवित रहते थे ।[5] अन्त में कवि ने गांधीजी के सिद्धान्तों का पालन करते रहने की प्रतिज्ञा की बात बतायी है । -

` तो बापू हम निर्द्वन्द्व
-- -- --
नव- जीवन ज्योति जलावें । `[6]

` तुम कहां शान्ति के सार्थवाह ` में कवि ने गांधीजी को शांति के सार्थवाह कहा है । और उनके अन्तर्धान से देश की विकट दशा का चित्रण किया है -

` रुक गया कारवां ग्रस्त - त्रस्त
-- -- --
तुम कहां शांति के सार्थवाह ? `[7]

- -

१: महात्मा जी के महा निर्वाण पर -पृ० ९९
२: वही० पृ० १०१ ३: वही० पृ० १०१ - १०२
४: महाप्रयाण - पृ० १०३ ५: वही० पृ० १०४
६: वही० पृ० १०६ ७: तुम -- -- सार्थवाह। पृ० १११

'वह चला गया' में भी उनके निधन पर प्रकाश डाला गया है। गांधीजी ने सोये पड़े मानव की सुप्त आत्मा को जागृत करके उसमें नव- जीवन की ज्योति भर दी थी। लेकिन अब सत्य और अहिंसा के पुजारी गांधीजी इस संसार से चले गये -

'जिसने हमें जीवन दिया सोते से जगाया,

-- -- --

वह चला गया।'[१]

जो भी हो उन्होंने संसार के विषैले पानी को पी लिया और बदले में अमृत को प्रदान किया। यही उनके महत्व का प्रधान कारण भी रहा है।

निष्कर्षत: इस अध्याय के अध्ययन से यह समझ लिया जा सकता है कि हिंदी में गांधीवादी मुक्तकों की रचना कम नहीं हुई है। सुप्रसिद्ध एवं कम-प्रसिद्ध कवियों ने गांधीवादी मुक्तकों की सृष्टि की है। कुछ कविताओं में भाव- गांभीर्य है तो कुछ में केवल आत्म- प्रशंसा है। जो भी हो, गांधीजी का जीवन और व्यक्तित्व मुक्तक- काव्य - रचना के लिए अत्यंत अनुयोज्य है जिसके विविध पहलुओं को लेकर कविताएं रच सकते हैं।

----000000-----------

१: वह चला गया - पृ० ११३

अध्याय : ८

गीतिकाव्य और विविध

अध्याय : ८

गीतिकाव्य और विविध

महापुरुष गांधीजी के व्यक्तित्व, साधना, देश-प्रेम, सत्याग्रह-संग्राम और अन्य तत्संबंधी बातों का वर्णन न केवल महाकाव्यों, खण्डकाव्यों तथा मुक्तकों में किया गया है, काव्य की अन्य कई विधाओं में भी यह भावाभिव्यक्त प्रवृत्ति प्राप्त होती है। गांधीजी के प्रति यह श्रद्धा उस युग विशेष के सभी सहृदय कवियों की नस - नस में प्रवाहित थी। भारत के भिन्न मत वाले लोग यह प्रायः एकमत होकर स्वीकार कर चुके थे कि भारत की स्वाधीनता का एकमात्र कारण गांधीजी का अहिंसात्मक तरीका है। इसलिए कविगण भी उनकी गाथा गाते गाते नहीं अघाते थे।

महाकाव्यों तथा खण्डकाव्यों की चर्चा के बाद हम कुछ विविध विधाओं के प्रमुख गांधी-संबंधी काव्यों की चर्चा करेंगे। वैसे, हिन्दी जैसी अखिल भारतीय भाषा में सैकड़ों ऐसे प्रशस्त - अप्रशस्त काव्य अवश्य रचे गये होंगे। किंतु जितने ग्रंथ प्रयत्न करने पर प्राप्त हैं और प्रमुख माने गये हैं उनके आधार पर एक काव्य-विधा के प्रतिनिधि ग्रंथों का विश्लेषण किया जा रहा है। जहां तक गांधीवाद का संबंध है, काव्यरूप और शिल्प-विधि का महत्त्व गौण है। फिर भी इन विविध विधाओं में गांधीवाद के रचे जाने से यह प्रमाणित होता है कि कविगण इस 'थीम' (विषय वस्तु) से अत्यन्त अभिभूत थे। इन ग्रंथों ने नयी काव्य- विधाओं को उत्तम और उपादेय विषय प्रदान किया। विषय की अभिन्नता और तद्रूप- प्रवणता के कारण पाठकों को इन सब में कुछ हद तक एकांगिता अनुभव हो सकती है। यही कमजोरी आगे आधुनिकतम युग में गांधीवादी की लोक-प्रियता के घट जाने का कारण भी बनी। तथापि जिस युग में ये काव्य रचे गये, उस युग में इस विषय की नवीनता और काव्योचित भावों की पूर्णता अवश्य स्वीकृत थी।

गीतिकाव्य :

गीतिकाव्य कवि के अन्तर्जगत की वह स्वप्रेरित, तीव्रतम, भावात्मक अभिव्यक्ति है जिसमें विशिष्ट पदावली का सौन्दर्य, अनुभूति के ऐक्य एवं संगीतात्मकता के योग से द्विगुणित होता है।[1] गीतिकाव्य अंग्रेजी शब्द (लिरिक) का पर्याय माना जाता है। मानव - मन से स्वत: उद्भूत होने वाले भावों तथा विचारों की अभिव्यक्ति उसमें होने के कारण यहां अनुभूति का प्रमुखता दी जाती है, वर्णित वस्तु को नहीं।

गीतिकाव्य की कुछ विशेषताएं अथवा कुछ लक्षण ये हैं - आत्माभिव्यंजना, संगीतात्मकता, अनुभूति की पूर्णता और भावों का ऐक्य।[2] जब कवि की आत्मा अखिल जगत् की आत्मा के साथ मिल - जुल कर अपनी अभिव्यक्ति करती है तब वह आत्माभिव्यंजना कही जाती है। यहां कवि अपनी मनोभावनाओं की अभिव्यक्ति अपनी ही ओर से प्रत्यक्ष रूप में करते हैं। इसके लिए अन्य किसी को भी माध्यम नहीं बनाते। किसी का दर्शन व अध्ययन करने पर अपने मन में उदित स्वानुभूति का अभिव्यंजना कवि करते हैं। इस आत्माभिव्यंजना में दु:खात्मक और सुखात्मक मनोवेगों की अभिव्यक्ति भी होती है। कवि के मन में विविध परिस्थिति-जन्य हर्ष, शोक, आशा, निराशा, सुख, दुख, उल्लास, वेदना आदि भावनाओं की अभिव्यंजना यहां होती है।

गीतिकाव्य में संगीत- तत्व का होना आवश्यक है। संगीत-हीन कविता को गीति- काव्य कह नहीं सकते। इसमें मानव- मन से निकले भाव का आधार संगीत भी होता है। वस्तुत: गीतिकाव्य की रचना गाने के लिए ही होती है और उसे संगीत - शास्त्र में प्रतिपादित विभिन्न राग- रागिनियों में गाया जाता है। कवि के मन के भावों की तीव्रता के साथ साथ गीतिकाव्य की संगीतात्मकता भी अत्यंत गंभीर हो उठती है।

मानव- जीवन में सुखद तथा दुखद अनुभूतियां होती हैं। जब कवि पर

१: काव्य-रूपों के मूल- स्रोत और उनका विकास - पृ० २८६

२: वही० पृ०.२८६

किसी विशेष क्षण की अनुभूति का प्रभाव पड़ता है, तब यह अत्यंत तीव्र होती है।
ऐसी तीव्रता पाठकों के भाव- तरंगों को तरंगायित करने में सहायक होती है।

गीतिकाव्य में भावों की पूर्णता की परम आवश्यकता पर बल
दिया जाताहै। मानव के मनोवेगों को पाठकों के हृदय -तल पर स्थायी बनाये रखने
के लिए भावों की एकता अनिवार्य है। जब उनमें एकता रहती है तभी उसका प्रभाव
पाठकों पर पड़ सकता है।

पश्चिम के विद्वानों ने गीतिकाव्य के आकारगत सात प्रकारों का
वर्गीकरण किया है और वे हैं धार्मिक गीत, देशभक्ति के गीत, प्रेम- गीत, प्रकृति के
गीत, दुःख गीत, विचारात्मक और उत्सव गीत।[१] इन्होंने धार्मिक गीतों के अन्तर्गत
स्तुतिपरक तथा संबोधन गीतों को स्थान दिया है। दुःख गीतों के अन्दर शोक-गीति
का विवेचन होता है। भारतीयों ने गीतिकाव्यों के विषयगत छः प्रकार का विभाजन
किया है। वे हैं - प्रेम - गीत, भक्ति-प्रधान गीत, विचारात्मक गीत, बुद्धि-प्रधान
गीत, प्रकृति के गीत और सामाजिक गीत।[२]

<u>गीतिकाव्य का विकास :</u>

प्राचीन काल से ही गीतिकाव्य की रचना होती आयी है और
इसका उल्लेख हमें वेदों में मिलता है। सामवेद बिलकुल संगीतात्मक है। इसके बाद
रामायण, महाभारत आदि के पद भी गाने के योग्य रचे गये। बौद्धों और जैनों के
काल में गीतिकाव्य का अभाव था। किंतु प्राकृत काल में नाटकों में पुनः गीत की
रचना हुई। ग्यारहवीं शताब्दी में क्षेमेन्द्र ने दशावतार चरित्र की सृजना की और
इसी में हमें गीतिकाव्य का नवीन रूप देखने मिलता है। गीतिकाव्य की परंपरा का
आरंभ क्षेमेन्द्र ने किया था जिसका बाद में अनुकरण जयदेव ने किया। बारहवीं में
जयदेव ने गीतगोविन्द की रचना की। यह आपन्न गेय है।[३]

१: काव्यरूपों के मूलस्रोत और उनका विकास - पृ० ३१२

२: वही० पृ० ३१४

३: वही० पृ० ३१८ .

हिन्दी में आदि काल से ही गीतिकाव्य की रचना होती आयी है। इस युग में कवि राजाओं के आश्रयी रहे और इनका लक्ष्य उन्हीं के गुणों की प्रशंसा करते हुए गीतों की रचना करना और गाना था। इस युग के अन्त में अमीर खुसरो की पहेलियों में भी गीति- तत्व देखने को मिलता है। हिंदी में खुसरो ने ही गीतिकाव्य का भी गणेश किया।[1] भक्तिकाल में संत कबीर के बीजक में गीति-तत्व पाया जाता है। वैष्णव भक्तों ने भी गीतिकाव्य की रचना की। विद्यापति की पदावली सूरदास का सूरसागर, तुलसीदास की गीतावली, कृष्णगीतावली और विनयपत्रिका, मीरा के पद आदि इसके उदाहरण हैं। रीतिकाल में गीतों का सृजन शायद दरबारी कवियों के लिए असंभव था।

भारतेन्दु - युग के कवियों ने अपने नाटकों में गीति को अपनाया और रीतिकाल में क्षीण पड़ी इस धारा को पुनः सजीव बनाया। उदाहरण के लिए विद्या सुन्दर, भारत दुर्दशा, चन्द्रावली, वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति, मुद्रा राक्षस आदि नाटक लिये जा सकते हैं। इसके बाद अंबिका प्रसाद व्यास, प्रतापनारायण मिश्र, बालमुकुन्द गुप्त आदि ने भी भक्ति- रस - प्रधान गीतों की रचना की। द्विवेदी- युग के द्वितीय उत्थान काल यानी सन् १९१० से प्रारंभ होने वाले युग में गीतिकाव्य की रचना होने लगी। मैथिलीशरण गुप्त और अन्य कवियों ने गीतिकाव्य को नया मोड़ प्रदान किया। छायावादी युग काव्य क्षेत्र में पुनरुत्थान का युग रहा। उक्त युग में हमारे कवि अंग्रेजी कवियों से विशेष प्रभावित हुए और उनके विविध काव्य- रूपों का अनुकरण भी करने लगे। इस प्रकार गीतिकाव्य नवीन भावों, विचारों और प्रणालियों को अपनाते हुए नव-जीवन पा सका। इस युग के कवियों में पाश्चात्य स्वच्छन्दतावाद की विभिन्न विशेषताएं मौजूद थीं और ये विशेषताएं प्रसाद, पन्त, निराला, महादेवी आदि कवियों में स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ती थीं।

छायावादी युग का अन्त होते ही हिन्दी साहित्य में एक नये युग का श्री गणेश हुआ और वह था प्रगतिवादी युग। इस युग के कवियों की मनोवृत्ति ने समाजवादी मनोवृत्ति का रूप धारण किया। मार्क्सवादी समाजवाद से उद्भूत विविध

- -

१: काव्य रूपों के मूल स्रोत और उनका विकास - पृ० ३१८

समस्याओं और अस्वस्थताओं को सुलझाने के लिए क्रान्ति के पथ को अपनाया गया । अत: इस युग के गीतिकाव्यों में समाजवादी भावना का स्फुरण होने लगा । पन्तजी 'युगवाणी' लेकर काव्यक्षेत्र में उतरे और उनका अनुसरण करते हुए दिनकर, नरेन्द्र, अंचल, गोपाल सिंह नेपाली आदि कवियों ने भी इसी भावना से प्रेरित होकर कविताएं लिखीं ।

<u>द्वापर</u> :

महाकाव्य, खण्डकाव्य, मुक्तक काव्य आदि के समान हिन्दी में ऐसे गीतिकाव्य भी रचे गये जिनमें गांधीवाद की झलक पायी जाती है । श्री मैथिलीशरण गुप्त कृत 'द्वापर' ऐसा गीतिकाव्य है । भगवान श्रीकृष्ण को नायक बनाकर इसकी रचना हुई है और इसमें श्रीकृष्ण का मानवीय रूप चित्रित हुआ है । इसके पात्रों तथा घटनाओं पर गान्धीवादी विचारधारा का प्रभाव पड़ा है । गान्धीवाद की दृष्टि से कवि ने इसके पात्रों को मानवीय- रूप प्रदान किया है और इसी गांधीवादी दृष्टि से ही उसके अनेक तत्वों का परिचय दिया है ।

बलराम समष्टि की ओर झुकते हुए समस्त विश्व को जानने के लिए विशाल - मना बनना चाहता है -

'जानें अवश्य हम अपने
-- --
विस्तृत होते ज जावें । '[१]

कर्म से हटकर भागना उचित नहीं समझा गया है -

'किन्तु कर्म - कौशल से यदि हम
अपना मुंह मोड़ेंगे ,
वरुण देव तो हमें बहाये
बिना नहीं छोड़ेंगे । '[२]

मानव की भावात्मक एकता पर भी विचार किया गया है । -

- -

१: द्वापर : गुप्त जी - पृ० ४४ २: वही० पृ० ५४

' न हो एक उन्माद, एक धुन ,
एक लगन यदि जन में,
तो उस प्रमथ को लेकर ,
है क्या लाभ भुवन में ? '[1]

त्याग के बारे में बलराम का कथन द्रष्टव्य है -

' अपने व्रत की रज में ही तुम
-- -- --
धन - जीवन सब वारो । '[2]

धर्म की सात्विकता के बारे में बलराम ने बताया है -

' धर्म सदा सात्विक है, चाहे
कर्म कभी तामस हो । '[3]

बलराम ने गोपों से आत्म-बलिदान के लिए तैयार रहने का अनुरोध किया है -

' आजे गोपा हम ' यही गर्व से
तुमको कहना होगा ;
और आत्मबलि देने को भी
उद्यत रहना होगा । '[4]

न्याय और धर्म के लिए लड़ने में कोई भी दोष नहीं है -

' न्याय धर्म के लिए लड़ो तुम ,
-- -- --
निर्भय होकर जूझो । '[5]

१: द्वापर - गुप्तजी - पृ० ५५ २: वही० पृ० ६०
३: वही० पृ० ६१ ४: वही० पृ० ६४
५: वही० पृ० ६४

नारद वेश की सुधारवादी चिन्ता रखने वाले हैं -

> ' बिगड़े का सुधार करने से
> बढ़कर कोई कार्य नहीं । '[1]

उग्रसेन के इस कथन में साम्राज्यवाद के प्रति विरोध प्रकट हुआ है -

> ' वह साम्राज्य - स्वप्न जाने दे ,
> जाग, सत्य सह जाने । '[2]

कंस द्वारा की गयी बच्चों की हत्या के विरुद्ध हुंकार मचाते हुए अक्रूर ने कहा -

> ' किसी दृष्टि से भी न उचित था
> -- -- --
> भला बन्धु से मरना । '[3]

यहाँ अहिंसा का प्रतिपादन हुआ है ।

कंस के अत्याचार और अनीति के अधीन रहने वाली जनता को मुक्त करना श्रीकृष्ण का कर्तव्य है -

> ' काट रहा है वह युवकों के
> भव - बन्धन निज बल से । '[4]

कृष्ण के बारे में उद्धव के इस कथन में गांधीजी की कर्तव्य - निष्ठा संबंधी विचार स्पष्ट हैं-

> ' निकला है जिस व्रत को लेकर
> -- -- --
> स्वकर्तव्य वह पाले । '[5]

उपवास और व्रत की आवश्यकता के बारे में सुदामा ने कहा है -

> ' खाकर मरने से तो भूखों
> मरना ही अच्छा है ।

१: द्वापर - गुप्तजी - पृ० ७६ २: वही० पृ० १०६ ३: वही०पृ० १२६
४: वही० पृ० १६१ ५: वही० पृ० १६५

'कभी कभी उपवास किसी मिष
करना ही अच्छा है । '[1]

सुदामा के इस कथन में गान्धीजी के अपरिग्रह के सिद्धान्त का समर्थन हुआ है -

'अन्न - वस्त्र क्या, धरा - धाम क्या ,
यदि हम समाधिक लेंगे ,
तो औरों के लिए उन्हें हम
निश्चय कम कर देंगे । '[2]

'द्वापर' में श्रीकृष्ण, बलराम, सुदामा, आदि पात्रों पर गान्धीवाद का प्रभाव लक्षित होता है । कंस के अत्याचारों और पाशविक कृत्यों से भयभीत जनता को श्रीकृष्ण ने मुक्त किया जैसा गान्धीजी ने अंग्रेजों के अत्याचारों से भारत की जनता को स्वतन्त्र बनाया । श्रीकृष्ण का सखा होने के कारण बलराम के सद्विचारों में गांधीवादी विचारों का मेल हुआ है । सुदामा के द्वारा किये जाने वाले उपवास पर गान्धीजी के उपवास का प्रभाव है । सुदामा ने भी अर्द्ध- नग्न रहकर गान्धीजी का अनुकरण किया है । इस काव्य के नायक श्रीकृष्ण युग - पुरुष और अन्य पात्र मानवीय रूप लिये हुए हैं । कवि ने श्रीकृष्ण को गान्धीजी के रूप में ही चित्रित किया है।

शोकगीति :

किसी प्रकार के अनिष्ट से शोकाकुल कवि के हृदय की करुण उद्गीति ही ही शोकगीति है ।[3] ऐसी गीतियों का संबंध वस्तुत: मानव- मन में उद्भूत वेदना और करुणा से है । अत: इ इनका हिन्दी साहित्य से एक अलग अस्तित्व है । इनकी एक विशेषता यह है कि ये स्वभावत: शोक व्यंजक, चिन्तन प्रधान और संक्षिप्त होती हैं ।

हिन्दी साहित्य में आधुनिक काल में ही शोक- गीति को विशेष प्रश्रय दिया गया है । इसी युग में शोक-गीति की रचना और विकास हुआ है और

१: द्वापर - गुप्त जी - पृ० २१७ ७ २ : वही० पृ० २१८
३: आधुनिक हिन्दी काव्य में रूप- विधाएं : पृ० ४१५

अधिकांश गीतियां किसी प्रिय अथवा श्रद्धेय व्यक्ति के स्वर्गवास पर लिखी जाती हैं। ऐसे रचनाएं साधारणत: श्रद्धांजलि के रूप में ही लिखी जाती हैं। इसके दो कारण होते हैं - एक तो यह कि शोक-गीतियों की रचना करने वाले कवि देश और समाज के अंग रहे हैं। दूसरा कारण यह है कि जिन स्वर्गस्थ व्यक्तियों के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित की जाती है, वे भी किसी न किसी प्रकार समाज और जनता से सीधा संबंध रखते हैं।

आधुनिक युग में गान्धीजी पर रचित दो शोक-गीतियां मिलती हैं जिनमें गांधीजी के प्रति श्रद्धांजलियां अर्पित की गयी हैं।

' अंजलि ' और ' अर्घ्य ' मैथिलीशरण गुप्त द्वारा गान्धीजी पर अर्पित की श्रद्धांजलियां हैं। यह गांधीजी के निधन पर लिखी गयी है। यह गुप्त जी के मन में गान्धीजी के निधन पर शोक से उत्पन्न वेदना - भाव की गीति है। यह काव्य कवि की गांधीजी के प्रति श्रद्धांजलि है जिसमें उनकी मनोभावनाओं का अर्घ्य अर्पित किया गया है। गुप्तजी के मन में उनके प्रति अपार श्रद्धा थी और इसी कारण अपनी श्रद्धांजलि के रूप में यह काव्य रचित है। [१]

कवि उनकी मृत्यु की बात सुनकर बहुत दु:खित थे और यह बात सोचकर कुछ लज्जित भी थे कि गान्धीजी की हत्या एक हिन्दू घातक के हाथों से हुई। अत: इस काव्य के आरंभ से ही कवि ने यों कहा है -

' हरे राम! कैसे हम झेलें
अपनी लज्जा उसका शोक?'
गया हमारे ही पापों से
अपना राष्ट्रपिता परलोक।' [२]

हिंसा का ताण्डव इतना तीव्र बन गया है कि मनुष्य का नाश मनुष्य के द्वारा ही हुआ करता था -

- -

१: राष्ट्र- पिता के प्रति यह उत्कृष्ट तथा भावपूर्ण श्रद्धांजलि है, जिसमें जीवन- वृत्त का आख्यान नहीं, आलंबन का शोक- विदग्ध गौरव का गान किया गया है -
- आधुनिक हिन्दी काव्य में रूप विधाएं - पृ० ५०२

' स्वयं मनुज ने मनुज जाति का
किया उजागर कैसा नाम,
लिया अपूर्व काम जिस जन से
दिया उसे ऐसा विश्राम । '[1]

गान्धीजी स्वतन्त्रता - प्राप्ति के बाद यही चाहते थे कि भारत देश सबका रहे और सारी जनता एकता के साथ जिये । लेकिन अब तो हमने अपने हिन्दुत्व और हिन्दु - राज्य को खो दिया -

' खोया है अपने ही हाथों
हमने अपना हिन्दु राज्य,
सबका राज्य चाहता था वह ,
रहे एक - सा जो अविभाज्य । '[2]

कवि ने कहा है कि गान्धीजी के द्वारा स्वावलंबन की जो स्थिति अब प्राप्त हुई है उसकी रक्षा करने का प्रयत्न किया जायगा -

' अपने छूटे गेह पर हमने
पाया पुन: स्वत्व ही मात्र,
रहने योग्य करेगा इसको
श्रम करके अपना ही गात्र । '[3]

गान्धीजी के व्यक्तित्व एवं चरित्र का निर्माण अपने माता - पिता के चरित्रों से हुआ है -

' दिया बाप ने आभिजात्य निज
माँ ने तुमको निष्ठा दी ,
दृष्टि और सृष्टा दोनों को
तू ने नई प्रतिष्ठा दी । '[4]

- -

१: अंजलि और अर्घ्य - पृ० ८ २: वही० पृ० ६
३: वही० पृ० १३ ४: वही० पृ० १८

उनके व्यक्तित्व में अन्य महापुरुषों के आदर्श गुणों का भी सम्मिलन हुआ है।[1] गान्धीजी में सर्वस्व - त्याग की जो भावना थी, वह महान तथा अनुलनीय है -

' स्वयं सिद्ध तुमको स्वराज्य क था,
सभी सुलभ था, धन, पद, मान,
हुआ हमारे अर्थ निःस्व तू ,
तुले कहाँ यह त्याग महान ? '[2]

उनकी दानशीलता के बारे में कवि ने यों कहा है -

' तू ने निज सर्वस्व आप ही
दीन जानकर हमें दिया, '[3]

बचपन से ही वे सत्य की साधना करते आये थे -

' देख न शिक्षक का इंगित, सह
बाह्य परीक्षा की बाधा,
बालकाल में ही दृढ़ता से
सत्य - धर्म तू ने साधा । '[4]

गांधीजी के निष्कलंक मन का परिचय हमें वहाँ मिलता है जब उन्होंने बचपन में अपने सारे दोषों को पिताजी से बताने का प्रयास किया -

' रोक सका क्या तुझे दण्ड - भय
कह देने से संगति - दोष ? '[5]

वे मुनीय अथवा पाशविक कृत्यों के विरोध में अनेक बार लड़े हैं। कारावास उनके लिए बड़े आनन्द की बात थी -

---

१: अंजलि और अर्घ्य - पृ० ४०   २: वही० पृ० १७
३: वही० पृ० १७   ४: वही० पृ० १८
५: वही० पृ० १८

' और मुक्ति के अर्थ बद्ध हो
हंस हंस कारागार गये । '[१]

अहंभाव ने उन्हें बिल्कुल छुआ नहीं ह था -

' विनयशील संपन्न कहां तू ,
अहम् भाव भर सकता था ?
उच्चस्थिति में भी स्तरों से
समझौता कर सकता था । '[२]

न्याय मार्ग पर चलने वाले थे गान्धीजी । वे हमेशा न्याय के पीछे दौड़ते थे और उसका पल्लाव पकड़े रहते थे -

' जिसे न्याय माना अब तू ने
माना निर्भय नि:संकोच,
बने स्वजन भी परजन जैसे
दु:ख हुआ पर तुझे न सोच । '[३]

गान्धीजी को दूसरों के लिए जितना दु:ख सहना पड़ा है, उस समय भी उन्होंने सुख का अनुभव करने का प्रयास किया । शारीरिक तथा आत्मिक बल से वे नये नये प्रयोग करते रहते थे -

' सम्मुख आये हुए दु:ख भी
तू ने सुख से भोग किये ,
तन के साथ मुक्त मन के ही
निर्भय नये प्रयोग किये । '[४]

वे अपनी करनी और कथनी में ' करो या मरो ' का नारा बुलन्द करते थे । -

' करो नहीं तो मरो, डरो मत ,
रक्षित है फल हरि के हाथ ,

- -

१: अंजलि और अर्घ्य - पृ० २१ २: वही० पृ० २३
३: वही० पृ० २४ ४: वही० पृ० २६

होती कहां निराशा तुझको ,
अपनी करनी अपने साथ । '[१]

उनके तन, मन, वाक् और कर्म में एक ही भाव निहित था अर्थात् उनमें उत्पन्न होने वाले विचारों में कोई भेद नहीं रहता । -

' जो तेरे निर्मल मन में था ,
वही बुद्धि में वाणी में ,
बुद्धि और वाणी में था जो
वही क्रिया कल्याणी में । '[२]

गांधीजी के सुधारवादी प्रयत्नों पर भी कवि ने प्रकाश डाला है । उनको जगत के भाग्याकाश में उदित नक्षत्र माना गया है । -

' उदित हमारे भाग्य - गगन में
तू नवीन नक्षत्र हुआ
मङ्गलमय तेरा प्रभाव - फल
अत्र, तत्र सर्वत्र हुआ । '[३]

एक जगह उनको जनतन्त्री के रूप में चित्रित किया गया है -

' जनतन्त्री होकर बहुमत को
समुचित मान दिया तू ने ,
भिन्न मान्यता में भी उसको
योग प्रदान किया तू ने । '[४]

गांधीजी के जीवन का लक्ष्य ही तो यही था कि अपने सिद्धान्तों को जीवन के व्यवहारों से मिलावें । इससे जनता का उद्धार वे चाहते थे - '

' स्वार्थ - संधियों को भी तू ने
त्याग,-पंथ की दीक्षा दी

१: अंजलि और अर्घ्य - पृ० ३६ २: वही० पृ० ३९ ३: वही० पृ० २० ४: वही० पृ० २५

आचारों से सिद्धान्तों को
अद्भुत अग्नि- परीक्षा दी । '१

उनके तपोमय जीवन की ओर संकेत है -

था स्वराज्य साधन ही तेरा
मुख्य साध्य सत् - चित् - आनंद
उनको मुक्ति कहां, जिनका है
ऐहिक जीवन ही मृत - मन्द । '२

उन्होंने एकता के तत्व का जन- जन में प्रचार किया -

घोर विषमता ने जाती में
जब जन जन को बिद्ध किया
साम्य, समत्व योग तब तू ने
शुद्धात्मा से सिद्ध किया । '३

विदेशी जनों के अधीन पड़कर दु:खित भारतीय जनता का उद्धार किया । -

संत, शोषकों से भी ही तू ने
परिपोषक व्यवहार किया,
गोरों का उन्हीं उनकी उस काली
करनी से उद्धार किया । '४

गान्धीजी के द्वारा जीवन से सत्य का मेल हुआ । -

' सत्य उठा जाता था, तू ही
आग्रह कर लौटा लाया,
उसे विचारों - आचारों में
मन से तू ने अपनाया । '५

१: अंजलि और अर्घ्य - पृ० २४ २: वहीं० पृ० २३ ३: वहीं० पृ० २६
४: वहीं० पृ० २५ ५: वहीं० पृ० २८

उनमें भारत को रामराज्य बनाने की प्रबल इच्छा थी -

' जिसकी राज- सभा में राजे
देश देश के निज विशिष्ट
मर्यादामय एक राम का
विश्व राज्य था तुझ को इष्ट । '[१]

उनकी कर्म- तत्परता और सुकोमल चारित्रिक विशेषता के कारण गांधीजी सबके लिए प्यारे थे -

' भावुक समझे थे जो तुझको,
वे भी भक्त हुए तेरे ,
निज विपक्षी भी विश्वासी
हो अनुरक्त हुए तेरे । '[२]

उनके द्वारा संचालित सत्याग्रह की विशेषता यह है कि वह अनीति और अन्याय का सत्यानाश कर सका -

' सत्याग्रह रख कर भी तू ने
कब मिथ्या हट दिखलाया ?
कुटिल नीति को भी सीधा कर
सरल रीति- गुण सिखलाया । '[३]

गान्धीजी और उनके सिद्धान्तों से भारत की जनता अत्यंत प्रभावित हुई और उनके शत्रुओं ने भी उनका विश्वास किया -

' कौन संशयात्मा ऐसा जो
आज नहीं भरता निःश्वास ?
विपक्षियों को भी था तेरी
सत्य - अहिंसा का विश्वास । '[४]

१: अंजलि और अर्घ्य - पृ० ३२ २: वही० पृ० २७
३: वही० पृ० २४ ४: वही० पृ० २२

गान्धीजी ने देश के लिए यही संदेश दिया है -

' सत्य और अहिंसा को अपनाओ ,
निर्भय हो जाओ सब देश । '[1]

अन्त में कवि ने भगवान रामचन्द्र जी से गांधीजी को इस धरती पर पुन: अवतरित होने की प्रार्थना की है -

' लौटा दो हे राम, लौटा दे हे राम, उसे फिर
एक बार हम सब के बीच ,
उसे खोकर क्या तुम से भी
क्षमा पा सकेंगे हम नीच । '[2]

गान्धीजी को आधार मानकर यह रचित शोकगीत होने के कारण व्यक्ति अर्थात् गांधीजी को प्रधानता दी गयी है । कवि के मन में उनके प्रति जो श्रद्धा और भक्ति रही है, वही यहां अंजलि और अर्घ्य के रूप में प्रस्तुत की गयी है । उनकी मृत्यु पर अपने मनो- विषाद की मूल भावना का चित्रण हुआ है । साथ ही कवि ने उनका चरित्र- विशेष, कर्मठ स्वभाव, लोक- तत्व, गांधीवाद का सिद्धान्त और तत्व, दूसरों पर गांधीवाद का प्रभाव आदि के प्रतिपादन का अधिक ध्यान रखा है । आजादी प्राप्त होने के बाद जनता में जो अश्रद्धा और अनास्था दिखाई पड़ी उसका वर्णन भी किया गया है ।

यह गांधीजी पर लिखित गुप्तजी की पहली शोकगीति है जो हिंदी के काव्य - क्षेत्र में एक नया प्रयोग मानी जा सकती है । गुप्तजी प्रथम कवि हैं, जिन्होंने इस नवीन प्रयोग को जनता के समक्ष रखा है । इस काव्य में गांधीजी आलंबन हैं जिससे कवि का मानसिक भाव उद्दीप्त होकर अंजलि और अर्घ्य बन गया है। उसका नामकरण भी अनूठा है, नवीन है और हृदय-स्पर्शी भी ।

१: अंजलि और अर्घ्य - पृ० ४२
२: वही० पृ० ४३

' बापू ' रामधारीसिंह ' दिनकर ' कृत और एक शोकगीत है। उन्होंने इस गीत की रचना, ' नोआखाली यात्रा ' और गांधीजी की मृत्यु - इन दो घटनाओं को पृष्ठभूमि बनाकर की है। गांधीजी जिस समय नोआखाली की यात्रा कर रहे थे, उसी समय प्रथम कविता की रचना की गयी। इसके पूर्व उन्होंने गांधीजी पर या उनसे संबंधित कोई कविता नहीं रची थी। दिनकर जी पहले गांधीजी के व्यक्तित्व और विरुद्ध सिद्धान्तों के विरुद्ध आवाज उठाते थे और कुछ कविताओं में इसका विरोधात्मक प्रतिपादन भी किया करते थे। शायद यही उपर्युक्त बात का कारण भी होगा।[1] यही कारण होगा कि जब संसार के लोग गांधीजी की पूजा फूल-मालादि से करते थे तब उन्होंने ' अंगारों से की थी '। ये तो गांधीजी के विरुद्ध के ज्वलंत अंगारे होंगे। उन्होंने ' बापू ' कविता के आरंभ में ही बताया है -

' संसार पूजता जिन्हें तिलक ,
रोली, फूलों के हारों से
मैं उन्हें पूजता आया हूं
बापू ! अब तक अंगारों से। '[2]

लेकिन ये अंगारे गांधीजी के सामने ज्वालाहीन हो मंद पड़ जाते हैं, उनकी महिमा कवि ने बतायी है -

' पर, तू इन सब से परे, देख
तुम को अंगार लजाते हैं ,
मेरे उद्वेलित - ज्वलित गीत
सामने नहीं हो पाते हैं।[3]

- -

१: ' नोआखाली की यात्रा के पूर्व उन्होंने गान्धीजी के व्यक्तित्व और सिद्धान्तों पर न कोई कविता लिखी थी और न गान्धीवाद को समय का समाधान माना था। ' -

- युग चारण दिनकर - डा० सावित्री सिन्हा - पृ० ४७

२: बापू - दिनकर - पृ० १ ३: वही० पृ० ३

गान्धीजी के आत्मबल की शक्ति का परिचय दिया गया है -

> ' जीते लपटों के बीच मचा
> धरणी पर घोषण कोलाहल
> जाते जाते दे जाते हैं
> भावी युग को निज तेज - अनल । '[1]

गान्धीजी की महानता का स्तवन किया गया है -

> ' पर, तू इन सबसे भिन्न ज्योति
> जेता जेता से महीयान,
> कूटस्थ पुरुष ! तेरा आसन
> सबसे ऊंचा सबसे महान । '[2]

उन्हें विजय ही विजय प्राप्त हुई है, वे कदापि पराजित नहीं किये गये हैं। अतः
उनमें हार - जीत की खोज करना व्यर्थ है -

> क्या हार जीत खोजे कोई
> उस अद्भुत पुरुष अहन्ता की ,
> हो जिसकी संगर - भूमि छिपी
> गांधी में आत्मियन्ता की ।'[3]

गान्धीजी की मधुर वाणी से प्रेमामृत टपकता था और उनके हृदय से सहानुभूतिवश
करुणा - नदी बह निकलती थी । उनके कोमल स्वभाव की गहनता यहां स्पष्ट होतीहै-

> सबने देखे विद्वेष - गरल
> तू ने देखा अमृत - प्रवाह,
> सबने बड़वानल लिया, लिया
> तू ने करुणा सागर प्रवाह । '[4]

१: बापू - दिनकर - पृ० ६ २: वही० पृ० ७
३: वही० पृ० ७ ४: वही० पृ० ८

गान्धीजी कलियुग की अनिष्टदायी घटनाओं से भारतमाता की मुक्ति प्रदान करने वाले थे -

' बापू तू कलि का कृष्ण,
-- -- --
केशव से दोऊ वीर लिये । '[1]

उनका प्रभाव कवि पर खूब पड़ा और उनके अनुयायी बनने का निश्चय कवि ने किया -

' यह छोटी-सी मधुर उमंग
-- --
जो उमड़कर मुझको आता है ।
-- --
बापू ! मैं तेरा समयुगीन
होकर हूँगा उपकृत विशेष । '[2]

कवि ने उनसे देश की भलाई के लिए पुन: अवतार लेने की प्रार्थना की है -

लौटो अनाथ के नाथ ,
देश की ईति- भीति हरने वाले ।
लौटो, हे दयानिकेत देव
सत पाप क्षमा करने वाले । '[3]

कवि ने गान्धीजी की हत्या को 'अघटन घटना ' कहा है । उनकी मृत्यु से देश के भविष्य पर पड़ने वाले कष्टों के बारे में भी कहा गया है । जिस हिन्दू के हाथों के द्वारा उनका वध किया गया, उसके प्रति कवि ने अपना क्रोध प्रकट किया है । इस कविता के अन्त में कवि ने भारत की जनता से उनके पैरों को पकड़कर उनसे क्षमा मांगने का अनुरोध किया है - .

- -

१: बापू - दिनकर - पृ० २१ २: वही० पृ० ३० - ३१
३: वही० - पृ० ४२ (४: वही० पृ० ६०)

उनको मानवता का ` मरमी सुजान ` बताया गया है -

` मानवता का मरमी सुजान !
आया तू प्रीति मनाने को ,
अपदस्थ देवता को नर में
फिर से अभिषिक्त करने को । `[1]

गान्धीजी का अनुकरण इतिहास करता है -

` पर, तू न रुका सीधे अपने
निर्दिष्ट पंथ पर आ निकला,
पद- चिह्नों को देखते हुए
पीछे - पीछे इतिहास चला । `[2]

गान्धीजी ने संसार के लिए नया रास्ता बनाकर जनता के सामने रखा है -

` बापू ने राह बना डाली ,
चलना चाहे, संसार चले ,
डगमग होते हों पांव अगर
तो पकड़ प्रेम का तार चले । `[3]

उनके व्यक्तित्व का वैरागी - रूप यहां प्रस्तुत किया गया है -

` पर, तू तोपों से परे, कामना - जयी ,
एक रस,निर्विकार,
पृथ्वी को शीतल करता है ,
छाया- द्रुम सी बाहें पसार । `[4]

१: बापू - दिनकर - पृ० ६ २: वही० पृ० १०
३: वही० पृ० १४ ४: वही० पृ० १८

' रो - रोकर मांगी क्षमा,
प्रभु में करो पितु - शव का - पिषेक ,
अगुणी कृतघ्न अनके अब भी
हैं बापू ही आधार एक । '[१]

यह कविता ' बापू ', ' वज्रपात ', ' अघटन घटना ', ' क्या समाधान ' आदि शीर्षकों में लिखी गयी है । ' बापू ' में कवि ने गांधीजी के व्यक्तिगत गुणों का स्तवन किया है । ' वज्रपात ' में उनकी मृत्यु पर अपना शोक प्रकट किया है । अंतिम अंश में उनकी हत्या को ' अघटन घटना ' कहकर उसका समर्थन किया है । यह कविता गांधीजी के प्रति कवि के मन का शोक व्यक्त करती है । अत: यह एक शोक - गीति है । गान्धीजी को सबसे लोकोत्तर पुरुष एवं शान्ति का दूत घोषित किया गया है ।

' तू सहज शान्ति का दूत, मनुज -
के सहज प्रेम का अधिकारी ,
दृग में उँडेल कर सहज शील
देखती तुझे दुनिया सारी । '[२]

यह कविता दिनकरजी की अन्य काव्य- कृतियों से अधिक गंभीर एवं महत्वपूर्ण है । इसके आरंभ में उन्होंने गांधीजी की पूजा ' अंगारों ' से की है । लेकिन कविता के अंत तक आते ही उनके अंगारे ठण्डे पड़ जाते हैं और वे अपनी करुणा-पूर्ण श्रद्धांजलि प्रकट करते हैं । बीच बीच में उन्होंने भारत के भविष्य पर अपनी शंका प्रकट की है । इस गीति की एक विशेषता यह है कि इसका प्रथम संस्करण प्रकाशित होते समय गान्धीजी नोआखाली की यात्रा कर रहे थे । जब दूसरा संस्करण प्रकाशित होने वाला था, तब गांधीजी की मृत्यु हो चुकी थी । अत: कवि ने दूसरे संस्करण में शेष दोनों अंशों को जोड़ दिया ।

श्रद्धाकण :

यह कवि वियोगी हरि कृत एक गद्यकाव्य है ।[३]

१: बापू - दिनकर - पृ० ६० २: वही० पृ० ४

३: विशिष्ट अर्थ में गद्यकाव्य वह रचना है, जिसमें कविता जैसी संवेदनशीलता और रसात्मकता होती है । फल-स्वरूप उसका बाह्य रूप भी साधारण गद्य की अपेक्षा अधिक लययुक्त, अलंकृत और सजा हुआ होता है। - हिन्दी साहित्य कोश,पृ० २८२

कवि ने इस छोटी सी पुस्तिका में गान्धीजी के प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की है। यह पुस्तिका कवि की छोटी - छोटी सूक्तियों से भरी है जिनसे उनके श्रद्धाकण टपकते हैं। यह एक गद्यकाव्य है जिसमें काव्य की शैली में गद्य का निर्वाह हुआ है। कवि ने इसमें गान्धीजी की राजनीतिक, सामाजिक, और धार्मिक प्रवृत्तियों का प्रतिपादन और उनकी महिमा का गुणगान किया है।

इसके प्रथम दो पदों में कवि ने गान्धीजी को प्रकाश- दाता के रूप में चित्रित किया है -

' चारों ओर दूर - दूर तक अंधेरा - ही - अंधेरा छाया था ,

-- -- -- --

महात्मा ने उन्हें प्रकाश दिखाया, और उदय दिखाया। '[१]

गान्धीजी की पूजा करने के लिए न अर्घ्य की आवश्यकता थी, न पुष्प की, न चन्दन की। वे स्वयं अपनी पूजा आर्यशील के आचरण में बताते थे -

' आर्यशील को आचरित करो, यही मेरी अर्चना होगी।
जीवमात्र की पूजा करो, यही मेरे प्रति तुम्हारी श्रद्धांजलि होगी।'[२]

कवि ने जनता से गांधीजी की स्मृति और पूजा इसी दृष्टि से करने का अनुरोध किया है-

' उसने जो असीम प्रकाश फैलाया ,
उसमें वे अपने - आप को पहचानें -

यही उस महात्मा का श्रद्धापूर्ण स्मरण और पूजन होगा।[३]

गांधीजी को अपनी जीवन- गाथा में असंख्य अनुयायी मिले थे।

' सो, उसके सहस्रों अनुयायी बन गये।

-- -- --

और कोई उसके पीछे पीछे दौड़ते थे। '[४]

१: श्रद्धाकण - वियोगी हरि - पृ० ५ २: वही० पृ० ८
३: वही० पृ० १० ४: वही० पृ० १४

उन्होंने सत्य और अहिंसा को सर्वदा उज्ज्वल और दीप्त बनाये रखा -

' कैसा जागरूक था वह !

-- -- --

और हर सांस को राम - नाम की लौ से जोड़ता रहा । '[१]

वे वर्तमान कलाकारों से बढ़कर भी कला के दर्शक इस दृष्टि से थे -

' वह स्वयं उस कला का दर्शक था ,

-- -- --

जो मृत्यु से बचाकर अमृतत्व का आलिंगन करा देती है । '[२]

सत्याग्रह को कवि ने गांधीजी का ब्रह्मास्त्र कहा है -

' सत्याग्रह उसका वह ब्रह्मास्त्र बन गया ,
जिसके बल पर सर्वोदय अपना जयस्तंभ खड़ा कर सका । '[३]

सत्याग्रह के नित्य विजय पर कवि ने गर्व किया है -
प्रतिपक्षियों ने जितने भी अस्त्र - शस्त्रों का उस पर प्रयोग किया,

-- -- --

उसके हथौड़े से, जो फूलों का था, वज्र चूर - चूर हो गया । '[४]

उनके अस्पृश्यता का निवारण करके उन अछूत जनता पर पड़ा काला पर्दा हटा दिया-
' छूना वर्जित था जिनका,

-- -- --

और फिर छाती से चिपटा लिया । '[५]

अछूतों को मन्दिरों में प्रवेश करने तथा देवता को पूजा करने का अधिकार गान्धीजी ने ही दिलाया था -

- -

१: महाकवा - पृ० १५ २: वही० पृ० १६ ३: वही० पृ० २३
४: वही० पृ० २४ ५: वही० पृ० २६

" महात्मा के तपोबल से एक दिन आप ही वज्र - कपाट खुल गये, -

-- -- --

देवस्थान की देहली पर पैर रखा । "[१]

गान्धीजी यंत्रों का विरोध करते थे । अतः उन्होंने जब जनता द्वारा यंत्रों की पूजा होते देखा, तब उसे मिटाने और मानवता की पूजा करने का उपदेश दिया -

" यह गलत है, अनुचित है,

-- -- --

क्योंकि वही विराट है, वही चिरंतन है । "[२]

गान्धीजी के अनुसार भारत के भाग्य का निर्णय चरखा ही कर सकता है -

" हाँ, चरखे का यही कच्चा तार

राष्ट्र के भाग्य का ताना - बाना बनेगा । "[३]

दुर्बला नारियों का उद्धार गान्धीजी ने किया और वे आगे आत्म- बलिदान का शंख फुंकने लगीं -

" अपने समुद्धार के पुण्यपर्व पर नारी ने

जन जन को शील दान दिया, अभि - दान दिया । "[४]

गो-हत्या का विरोध गान्धीजी ने सदा किया था और उन्होंने यह चेतावनी दी है-

" सावधान पृथ्वी शोषण करते हुए भूल से

कहीं मातृ- वध न कर बैठना ।

ऐसा था वह वृद्ध गोपाल । "[५]

जनता से गान्धीजी ने सत्य मार्ग अपनाने का अनुरोध किया है -

१: श्रद्धा करण - पृ० २७ २: वही० पृ० ३०

३: वही० पृ० ३१ ४: वही० पृ० ३३

५: वही० पृ० ३४

" तुम तो श्रद्धा के सहारे इस लोक के मानव में ही
सत्य को खोजो, और से आत्मसात् कर लो । "[१]

अन्त में कवि ने यह प्रार्थना की है कि गान्धीजी तो अब इस संसार से चले गये और उनके पद- चिह्नों का अनुकरण करना ही हमारा कर्तव्य मानना चाहिए ।

वह गया, वह गया सत्य का प्रकाश - पथ दिखाकर,
-- -- -- --
यही उसका, महात्मा के चरण - चिह्नों का अनुकरण होगा ।
-- -- -- --
और यही होगा उसके पादपद्मों का अभिनन्दन । "[२]

इस प्रकार कवि ने श्रद्धाकण से गान्धीजी को अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की है । यह तो एक विशेष बात है कि दुखियों के द्वारा गान्धीजी के प्रति सहानुभूति प्रकट करने का प्रथम प्रयास ही इस कवि ने किया है । अत: इस कारण से भी कि यह एक गद्यकाव्य है, इसका महत्वपूर्ण स्थान है ।

निबन्ध काव्य :

यह ऐसा काव्य होता है जिसमें न घटना प्रधानता होती है और न वस्तु- वर्णन की । किसी घटना और वस्तु से भिन्न अन्य किसी विषय को लेकर कवियों ने ऐसे काव्यों का प्रणयन किया है । ऐसे काव्यों के सर्जन के पीछे कवि का आत्मीय दृष्टिकोण काम करता है । दूसरे शब्दों में तद्विषय संबंधी भाव और विचार का संबंध कवि की आत्मा से होता है ।

ऐसे काव्यों की रचना भारतेन्दु - युग से ही होती थी । मगर वे उतने लोक- प्रिय न बन सके । बाद में द्विवेदी युग में इसका पुनर्निर्माण हुआ ।

१: श्रद्धाकण - पृ० ४०
२: वही० पृ० ५५, ६३

मैथिलीशरण गुप्त जी ने भी आरंभ में ऐसे काव्यों की रचना की थी । इन्होंने उसके लिए सामाजिक, सांस्कृतिक, देश- भक्ति - परक विषयों को स्वीकार किया ।

' राजा - प्रजा ' मैथिलीशरण गुप्त कृत निबन्ध काव्य है । इसमें उन्होंने राज्यतन्त्र और प्रजातन्त्र की बुराई और भलाई का विवेचन करते हुए प्रजातन्त्र में अपनी निष्ठा का परिचय दिया है । कवि ने राज्य - तन्त्र की हंसी उड़ाई है । प्रस्तुत काव्य के आरंभ में ही उन्होंने एक उक्ति लिखी है जिसमें राजकीय शासन की समाप्ति और प्रजा- तन्त्रीय शासन की प्रगति की बात स्पष्ट हुई है -

' राजा जाता है और प्रजा आती है,
यह दोनों की सम्मिलित एक थाती है । '[१]

उपर्युक्त उक्ति का समर्थन ही इस काव्य में हुआ है । राजा और प्रजा - इन दो प्रतीकों के माध्यम से उन्होंने उक्ति - समर्थन का कार्य सिद्ध किया है ।

यह काव्य दो वृहत् खण्डों में विभाजित है । प्रथम खण्ड राजा में राजा ने स्वयं अपने शासन के दोषों और बुराइयों का विचार प्रस्तुत किया है । भारत के स्वतन्त्र होने के बाद राजकीय शासन का अन्त हुआ और प्रजातन्त्रीय शासन का आरंभ हुआ । अत: इसके दूसरे खण्ड ' प्रजा ' में कवि ने प्रजा-जनों के द्वारा राज-शासन की हंसी उड़ाते हुए मानवतावादी राष्ट्रीय शासन नीति की प्रतिष्ठा का आदेश दिया है । यहां राजा एक साधारण सात्त्विक व्यक्ति बन गया और वह प्रजा में विलीन हो गया । इस काव्य के द्वारा कवि ने एक महान भयानक हिंसात्मक राजसी शासन के अन्त के बाद एक नवीन शान्तिमय मानव - युग के उदय का चित्रण किया है जो आधुनिक युग के प्रति नवीन प्रेरणा- स्रोत बन सकता है ।

इसके प्रथम खण्ड में कवि ने राजा के द्वारा साम्राज्यवाद का विवेचन किया है जिसके सुधारवादी दृष्टिकोण के रूप में दूसरे खण्ड में गान्धीवाद का समर्थन भी है। राजा के शासन- काल में अनेकों अत्याचारों, अनीतियों, लूट- मारों, पाशविक कृत्यों का

- -

१: राजा प्रजा - गुप्त जी - पृ० ३

होना संभव था। राजा ने स्वयं अपने क्रूर कृत्यों का परिचय दिया है -

> ` मैं ने विनोद के लिए लोग जुड़वाये,
> फिर उन पर भूखे हिंस्र जन्तु छुड़वाये। '[1]

यहां रोम के हिंस्र - विनोदों का आभास मिलता है।

इस काव्य में ` प्रजा ' खण्ड पर स्पष्टत: गांधीवाद का प्रभाव पड़ा है। यहां के प्रजागण कोरे आदर्शवादी गान्धीवादी हैं। कवि ने भी गान्धीवाद के समर्थक होने के कारण गान्धीवादी विचारों के व्यवहार के द्वारा देश तथा प्रजाजनों की उन्नति की कामना की है। उन्होंने शान्तिपूर्ण अहिंसात्मक नव्य- भारत का निर्माण करना चाहा। अत: प्रजा के द्वारा अपने गान्धीवादी सिद्धान्तों का प्रतिपादन करते हुए गान्धीवाद की प्रतिष्ठा प्रस्तुत काव्य में की गयी है।

अहिंसा :

गान्धीजी के सिद्धान्तों और विचारों से प्रजा अत्यन्त प्रभावित दिखाई पड़ी है। उनकी अहिंसा के बारे में उनका कथन है -

> ` गान्धीजी ने हमें अहिंसक युद्ध सिखाया,
> -- -- --
> सबके रहने योग्य बनाने चले धरा को। '[2]

गान्धीजी और विनोबा दोनों सीमा-रेखाओं को मिलाने का प्रयत्न इसमें हुआ है। यहां गान्धीजी के सत्याग्रह - आन्दोलन और उसके परंपरागत पालन के बारे में परोक्ष रूप से कहा गया है। प्रजा - जन हिंसा के विरोधी थे और उन्होंने कहा है कि हिंसा और घृणा मनुष्य को हिंस्र एवं पशुतुल्य बनाती है। हिंसा और घृणा से प्रेरणा पाकर ही लोग पाशविक कार्य करते थे। लेकिन अब भारत स्वतंत्र हुआ और अहिंसा को विजय हुई।

> ` हिंसा केवल हिंस्र, घृणा है घृण्य बनाती,
> -- -- --
> पर - शासन की कलुष - कालिमा बीत चुकी है। '[3]

१: राजा - प्रजा : पृ० ७ २: वही० पृ० ३२ ३: वही० पृ० ३३

भारत के स्वतंत्र होने के बाद यहां के विविध क्षेत्रों के विकास का चित्रण किया गया है । अब तो जीवन का स्वर भी बदल चुका है ।

` खेतों का हो अन्न और घर की हो खादी ,
-- -- --
उदय एक पर एक चिह्न होंगे ही होंगे । `[१]

प्रजा अपने देश में एक शांतिपूर्ण सुखद जीवन का निर्माण करना चाहती थी और इसके लिए प्रेम, एकता, अहिंसा , शान्ति आदि को अनिवार्य मानती थी । उनके इस कथन में प्रेम और एकता की भावना व्यक्त है -

` प्रेम करें तो करें स्वार्थ कर सके न अंधा ,
-- -- --
तो सपने भी स्वर्ग सत्य होकर उतरावें । `[२]

यहां प्रजा ने गांधीवादी समन्वयात्मकता का परिचय देते हुए उसकी प्रतिष्ठा की कामना की है -

` सब का जीवन स्वस्थ हो सके सो करना है,
अभय समन्वय भाव भुवन भर में भरना है । `[३]

आत्म- गौरव की रक्षा हमेशा करनी चाहिए, जिसके बल पर मंगलमय कार्य हो सकता है-

` विपक्षियों के निकट तुम्हारे झुके न मत्थे ,
-- -- --
जन को सबसे अभय किन्तु अपने से भय है । `[४]

हिंसा में शांति कदापि नहीं हो सकती है -

` शस्त्र - लालसा लाल रक्त ही पी सकती है ,
मार - काट के मध्य शान्ति क्या जी सकती है ? `[५]

- -

१: राजा प्रजा पृ० ३६ २: वही० पृ० ४० ३: वही० पृ० ४१
४: वही० पृ० ४२ ५: वही० पृ० ४३

मानवता ही जगत में सबसे श्रेष्ठ एवं सराहनीय है -

' हम स्वदेश पर प्यार करें तो गर्व धरा पर ,

-- -- --

मनुष्यत्व से श्रेष्ठ और क्या किसने पाया ? '[१]

भारत की नारियों में आत्मबल पर विश्वास है और अहिंसात्मक रण में उत्साह बना रहा है जो गान्धीजी के अथक परिश्रम का मधुर फल है -

' अबलाएं हैं शक्ति रूपिणी आत्मक बल में ,
यह सिद्धकर दिया उन्होंने समर स्थल में । '[२]

गान्धीजी के प्रति इन प्रजाओं के मन में अपार एवं श्रद्धा एवं ममता वर्तमान थी । ये लोग उनसे अत्यन्त प्रभावित दिखाई पड़ते थे । उन्होंने प्रजा से यह अनुरोध किया कि गान्धीजी ने स्वराज्य का बीज जो बोया, उसे अंकुर के रूप में उगाने का प्रयत्न करना चाहिए -

बापू का बोया स्वराज्य अंकुर उगने दो,

-- -- --

और नहीं तो कुफल मात्र चखना पड़ता है । '[३]

गान्धीजी की ओर संकेतित इस कथन में एक महान आदर्श निहित है जिसे जनता के समक्ष प्रस्तुत किया गया है -

' विश्व - विजय का विभव दान कर दिया जिन्होंने,

-- -- --

पाकर नव चैतन्य पुन: जग में जगमग हो । '[४]

प्रजा ने गांधीजी से प्रभावित होने के कारण जनता को गान्धी - मार्ग अपनाने का उपदेश दिया है -

- -

१: राजा - प्रजा - पृ० ४८ २: वही० पृ० ३४
३: वही० पृ० ४० ४: वही० पृ० १३

' जन, समष्टि में रमो, व्यष्टि को विकसित करके,

-- -- --

यह विराट हो गया राष्ट्र राजा के द्वारा । '[१]

उनकी रीति और नीति गांधीजी की नीति बन गयी है और गान्धीजी का अनुकरण वे करते आये हैं -

' बार बार हो रही सुघोषित नीति हमारी,

-- -- --

सोहे सबके मित्र - बन्धु - श्रुति - गीति हमारी । '[२]

इस काव्य के अन्त में कवि ने जनता को यह सदुपदेश दिया है -

' बढ़ो, बन्धुओ, हीन - भाव से ऊपर उठकर,
रहो न तुम संकीर्ण वायुमण्डल में घुटकर । '[३]

कवि ने इसमें जनता को गान्धीजी के सत्याग्रही और अहिंसक अनासक्ति - युक्त मानवता-वाद का: महामन्त्र सुनाया है जिसने इस काव्य - पोथी के मुख- पृष्ठ पर प्रथम स्थान पाया है -

' हम सबका अभ्युदय एक श्रम से ही होगा,

-- -- --

पर अब अपनी भूमि पसीने की ही प्यासी । '[४]

इस काव्य में साम्राज्यवाद और गान्धीवाद के अन्तर्द्वन्द्व का प्रतिपादन किया है गया है । कवि ने इसमें इन दोनों वादों की बुराई - भलाई का नीर - क्षीर विवेचन करके उस पर तर्क - वितर्क प्रस्तुत किया है । कवि के गान्धीजी और गान्धीवाद से प्रेरित होने के कारण साम्राज्यवाद के ध्वंसक के रूप में गान्धीवाद की चर्चा की है । उनका उद्देश्य देश को परतन्त्रता से छुड़ाकर शान्ति और समाधान का जीवन प्रारंभ करना था, जिसकी

- -

१: राजा - प्रजा - पृ० ४६ २: वही० पृ० ४७
३: वही० पृ० ४८ ४: वही० पृ० ४२

पूर्ति के लिए गान्धीवाद को अपनाया गया। उन्होंने राजा और प्रजा को क्रमशः साम्राज्यवाद और गान्धीवाद के प्रतीकों के रूप में बताकर दोनों का विचार-विश्लेषण किया है।

इस काव्य की प्रजा गान्धीवाद का प्रमुख प्रतीक बनी है। उनकी बात बात में गांधीवादी सिद्धान्तों और विचारों की भावना द्रष्टव्य है। साम्राज्यवाद और गांधीवाद के द्वन्द्व युद्ध में सत्य और अहिंसा की जीत हुई अर्थात् गांधीवाद को इस काव्य की जनता ने स्वीकार किया। राजा और प्रजा के संबंध के बारे में सबसे पहले गान्धीजी ने ही कहा है। देश में राजा मालिक और प्रजा उनका दास रहता था और साम्राज्यवाद चलता रहता था। गान्धीजी ने राजा और प्रजा में मित्रता की कामना की और उसके लिए प्रयत्न भी किया है।

गीति नाट्य :

जब कवि दृश्यकाव्य का सहारा लेकर गीतात्मक रूप में अपनी अनुभूति को संजोता है तब उस बाह्य अभिव्यंजना को गीतिनाट्य की संज्ञा दी जाती है।[१] इस की गणना मिश्र काव्य के अन्दर की जाती है। गीतिक नाट्य को पद्यबद्ध नाटक भी कहते हैं।[२] गीतिनाट्य की अपनी कतिपय विशेषताएं होती हैं और उनका उल्लेख यहां किया जाएगा।

१- इसकी कथावस्तु अत्यन्त छोटी होती है, पर है अत्यन्त भावात्मक। यह कथावस्तु पौराणिक, ऐतिहासिक, सामाजिक, काल्पनिक चाहे कुछ भी हो सकती है। फिर भी उसे अत्यंत मर्मस्पर्शी होनी चाहिए।

२- गीति नाट्य में पात्रों की संख्या कम ही होती है। इसमें पात्र नाटक के कोई कर्ता या भोक्ता बन कर नहीं उतरते, वे केवल वक्ता ही होते हैं जिनके कथोपकथनों के द्वारा कवि अपनी आत्मानुभूति की अभिव्यक्ति करना चाहता है।

- -

१: काव्य रूपों के मूल स्रोत और उनका विकास - पृ० ५३४

२: गीतिनाट्य पद्यबद्ध नाटक का गीति- विशिष्ट रूप है। - आधुनिक हिन्दी काव्य में रूप विधाएं - पृ० ० ३५६ - ३६०

पात्रों के बीच में कवि आने को छिपा रखने का प्रयास अत: यदि दो ही पात्र हों तो भी, गीति - नाट्य की रचना आसानी से हो सकती है।

३- कथोपकथन की अनिवार्यता पर बल दिया जाता है क्योंकि इसी शैली में संपूर्ण गीतिनाट्य का सृजन होता है। यह अत्यन्त भावात्मक भी होता है। पात्रों के चारित्रिक गुणों का उद्घाटन इसके द्वारा संभव होता है। कथोपकथन प्राय: लम्बे होते हैं क्योंकि इस काव्य में बहिरंग कार्य - व्यापार का अभाव है। ऐसे काव्य की श्रेष्ठता के लिए कथोपकथन में सौन्दर्य का होना आवश्यक माना जाता है।

४- गीतिकाव्य का आकार बहुत छोटा रहता है और चार या पांच से अधिक दृश्यों की योजना नहीं होती।

५- इसका कथोपकथन प्राय: गीति में लिखा जाता है। इसकी आत्मा गीतात्मक और शैली नाट्यात्मक होने के कारण इसमें गीतिकाव्य तथा नाटक के गुण अवश्य विद्यमान हैं।

६- परिस्थिति की सघनता और नाटकोचित उत्थान पतन अवश्य रहता है।

७- किसी भी प्रबन्ध काव्य का नाट्य रूप होने के कारण इसके पात्र - संगठन में अन्विति अनिवार्य होती है।

८- इसमें अभिनेयता की क्रिया होती है जिसके कारण कभी रंग संकेत भी दिया जाता है।

<u>उन्मुक्त</u> :

यह सियारामशरण गुप्तजी कृत गीति- नाट्य है। यह तो द्वितीय महायुद्ध की पृष्ठभूमि में लिखा गया है। "प्रथम विश्वयुद्ध के कारण जन- जीवन का रस - स्रोत सूख गया था। अत: भावमयता और रसात्मकता से परिपूर्ण गीति- नाट्य रचना की ओर लेखकों का ध्यान आकृष्ट हुआ।"[१]

सियारामशरण गुप्त जी भी ऐसे कवियों में से हैं जिन्होंने इसी भावमयता और रसात्मकता से प्रेरित होकर प्रस्तुत गीति- नाट्य की रचना की है।

१: सियारामशरण गुप्त - व्यक्तित्व और कृतित्व - पृ० १६६

काव्य का प्रारंभ :

इस गीतिनाट्य का आरंभ पुष्पदन्त और गुणाधर नामक दो व्यक्तियों के संवाद के रूप में हुआ है। इसमें द्वितीय महायुद्ध की पृष्ठभूमि में कवि ने किसी युद्ध का वर्णन किया है जो किन्हीं विभिन्न द्वीपों पर हुआ था। यहां कुसुम द्वीप पर लौह - द्वीप का जो आक्रमण हुआ था वही चित्रित है। कुसुम द्वीप के निवासी थे - कुसुमावती, जयकेतु, पुष्पदन्त और गुणाधर। कुसुम द्वीप की प्राकृतिक सुषमा से आकृष्ट होने के कारण लौह द्वीप के लोग उस पर आक्रमण करना चाहते थे।

इसके आरंभ में ही युद्ध के लिए सैनिकों के आगमन का कथन है। शत्रुओं ने रौप्य द्वीप और स्वर्ण द्वीप का नाश कर डाला। अब वे कुसुम द्वीप की ओर दौड़ रहे थे। पुष्पदन्त युद्ध करने के अनुकूल था और गुणाधर प्रतिकूल। अतः युद्ध के लिए तैयार होने में गुणाधर को शंकित होते देखकर उससे पुष्पदन्त ने कहा -

' निश्चित है वीरों का

-- --

एक ही विजय भूमि निश्चित है उनकी। '[1]

पुष्पदन्त के इस कथन से कि रौप्य द्वीप और ताम्र द्वीपों का नाश हो चुका है, स्वर्ण द्वीप पर आक्रमण हो रहा है, अगला आक्रमण कुसुम द्वीप पर होने वाला है, गुणाधर उदास हो उठा। फिर भी वह युद्ध का विरोधी दिखाई पड़ा। वह बोल उठा-

' ऐसे कुछ होगा नहीं, व्यर्थ यह सब है।
और कुछ ऊंचे उठो, युद्ध यह नर का
नर से नहीं है, वह सामने दनुज है। '[2]

गुणाधर के इस कथन में गांधीवाद की सुंदर अभिव्यक्ति हुई है। कवि ने इस रचना की कथावस्तु के सूत्र में गांधीवादी विचारधारा के निर्मल पुष्पों को गूंथ दिया है। गुणाधर का विचार है कि शत्रु भी शस्त्र बल से बलवान है। जब गुणाधर युद्ध करना ही नहीं चाहता था तब उसको शस्त्र की क्या आवश्यकता पड़ती थी।

१: उन्मुक्त - पृ० १९ २: वही० पृ० २१

अगर कोई फगड़ा होता तो उसे आत्मबल से जीतना चाहता । यहां गुणाधर के नि:शस्त्र रहकर आत्मबल पर जोर देने में गान्धीवाद स्पष्ट है । कुसुम - द्वीप में हिंसा-वृत्तियों का शंखनाद सुनायी पड़ता है । शत्रुगण समीप पहुंच रहे थे । तब उसकी पत्नी मृदुला ने उससे शत्रुओं के आगमन के बारे में कहा । उसी समय मृदुला यहां एक बूढ़ा नारी ने आकर बताया कि युद्ध में उसके पोत्र की मृत्यु हो गयी ।

कुसुम द्वीप पर शत्रुओं का आक्रमण होने पर भी वह निश्चिंत रहता था । तब पुष्पदंत ने यों कहा -

' धन्य तू धरणी हमारी ,

-- --

विस्मित है सब विश्व अटल तेरे निश्चय में ।'[१]

यहां कुसुमपुरीकी अटलता और आत्म- विश्वास प्रशंसनीय हैं । यद्यपि बाह्य (श दृष्टि से कुसुमपुरी दुर्बल दिखाई पड़ी, फिर भी वह आत्मिक बल से सबल थी । भी गांधीवाद स्पष्ट है । गांधीजी के अनुसार शारीरिक बल की अपेक्षा आत्मि ही श्रेष्ठ है । उन्होंने सदा आत्मिक बल की आवश्यकता पर जोर दिया था ।

इतने में मृदुलालय का, जो कुसुमद्वीप की एक राजधानी है,जहां मृदुला, पुष्पदन्त और गुणाधर रहते थे, आग्नेय दृष्टि से पतन हो गया । पुष्पद शत्रुओं का नाश करने के लिए भस्मकास्त्र लाने का आदेश गुणाधर को दिया । गुण ने अपने को उसके असमर्थ बताया । सच्चा अहिंसक होने के कारण गुणाधर ने यों क

' मेरा मत जानते हैं आप, फिर सुनिये , -

वह छलना है, भीरुता है कुसुम-रूपिणी ।'[२]

मृदुला सो रही थी । तब स्वप्नावस्था में छाया-रूपिणी जागरिता ने प्रवेश किया । उसने मृदुला से उठने को कहा, क्योंकि शत्रुजन उसके f पहुंच रहे थे । मृदुला अपनी सुध- बुध खोकर पगली - सी बन गयी । उसे ज्ञानय

- -

१: उन्मुक्त - पृ० ६२

२: वही० पृ० २२५

प्रेत दिखाई पड़ा और उससे उसने बातचीत की। गुणाधर अंत में यों मृत्यु की प्रतीक्षा कर रहा था कि तुरंत अग्निगुण्ड चमकता दिखाई पड़ा और तत्क्षण गुणाधर मुर्छित होकर गिर पड़ा। यहाँ शत्रुपक्ष की विजय हुई और कुसुम द्वीप उनके अधीन हो गया। उन्होंने यह घोषणा की कि यदि कुसुमद्वीप के लोग पराजय नहीं मानेंगे तो उनको दण्ड दिया जाएगा। पुष्पदन्त के आज्ञानुसार मृदुला ने जो भस्मकास्त्र भेजा था, वह शत्रुओं के हाथ में पड़ गया। इसके फल- स्वरूप शत्रु पक्ष की जीत हुई।

इस पराजय के कारण पुष्पदन्त का मन बदल गया, जो पहले बड़ा युद्ध प्रेमी था। बाद में वह अहिंसावादी बना दिखाई पड़ा। उसने इस तत्त्व को ग्रहण करके पुन: निरस्त्र बनकर युद्ध करना चाहा -

' हिंसानल से शान्त नहीं होता हिंसानल,
जो सबका है, वही हमारा भी है मंगल।
मिला हमें चिरसत्य आज यह नूतन होकर -
हिंसा का है एक अहिंसा ही प्रत्युत्तर।'[१]

अहिंसक होने के कारण पुष्पदन्त अपने को बलि देने को भी तैयार हुआ। अत: उसने कहा -

' - रक्तपात हम नहीं करेंगे,
फेलेंगे सब स्वयं, अहिंसक मरण मरेंगे।'[२]

गुणाधर और मृदुला से पुष्पदन्त ने विदा माँगी। पुष्पदन्त ने इसकी रानी कुसुमपुर की मुक्ति की संजीवनी सत्य और अहिंसा में खोजने से पायी। -

' मरण के दण्ड - दमन से
-- -- --
है हम सब की मुक्ति।'[३]

सफल गीति- नाट्य के रूप में :

' उन्मुक्त ' श्री सियारामशरण द्वारा रचित गीति-नाट्य है

१: उन्मुक्त - पृ० १५७ २: वही० पृ० १५८ ३: वही० पृ० १५६

इसमें कवि ने कई द्वीपों की सुन्दर कल्पना की है - जैसे कुसुम द्वीप, लौह द्वीप, रौप्य द्वीप, ताम्र द्वीप, आदि । डा० नगेन्द्र ने इसकी रचना के मूल कारण के बारे में इस प्रकार कहा है - " विश्वयुद्ध में जब वायुयान - वर्षा से चहुं ओर निरीह निःशस्त्र जनता पर पाशविकता का नग्न नृत्य हो रहा था, तब रुग्ण कवि की दृष्टि सहसा हिंसा - ग्रस्त मानव के विश्लेषण की ओर गयी और गांधीवाद के अहिंसात्मक युद्ध के रूप को स्पष्ट करने के लिए इस काव्य की रचना हुई । "[1]

गीति- नाट्य के लक्षणों के आधार पर " उन्मुक्त " की परीक्षा करने पर यह ज्ञात पड़ता है कि यह एक सफल गीति- नाट्य है । "उन्मुक्त " में भी पात्रों का वार्तालाप गीतियों के द्वारा हुआ है । इसमें कथा- तत्व गौण होता है । भाव- तत्व का प्राधान्य रहता है । इसी को कथा भी सीधी - सादी एवं सीमित है । इसमें कुसुम द्वीप के लोगों और लौह द्वीप के लोगों के बीच के अंतर्द्वन्द्व का चित्रण हुआ है । यहां कथा की प्रधानता नहीं रही । कथा को अप्रधान रूप में प्रस्तुत करके पात्रों के मानसिक भाव- विशेष का विश्लेषण किया गया है । इसके सीमित कलेवर में प्राय: हृदय के कोमल एवं सुंदर भावों और वृत्तियों का प्रकाशन होता है । अत: कवि ने "उन्मुक्त " में हिंसा के मार्ग को न अपनाकर अहिंसा के मार्ग का निर्देशन किया है । इसमें आत्माभिव्यंजन के ढंग से कार्य चलता है ।

इसका एक पात्र गुणधर मानसिक चिंतन में डूबे रहता है । वह हमेशा चिंतित दिखाई देता है ।

" जीवन की किसी एक परिस्थितिको लेकर पात्रों के मनो-जगत में उठने वाले अन्तर्द्वन्द्व का चित्रण करना ही गीत- नाट्यकार का मुख्य उद्देश्य होता है । "[2] सियारामशरण गुप्त जी की प्रस्तुत रचना का उद्देश्य भी यही है अवश्य । "उन्मुक्त" में द्वितीय विश्वयुद्ध की भूमिका में कुसुम द्वीप और लौह द्वीप के पारस्परिक संघर्ष के कारण कुसुमद्वीप की जनता के मन में उठने वाले अन्तर्द्वन्द्व का चित्रण हुआ है ।

इस काव्य के प्रमुख स्त्री पात्र हैं मृदुला और पुरुष पात्र हैं गुणधर और पुष्पदन्त । मृदुला इस काव्य का एकमात्र नारी पात्र है । वह गुणधर की पत्नी है।

- -

१: सियारामशरण गुप्त - डा० नगेन्द्र - पृ० ६८ २: आधुनिक हिंदी काव्य में परंपरा तथा प्रयोग - पृ० ३८६

और एक कोमल-हृदया नारी है। वह अपने कुसुमपुर पर गर्व करती है और दूसरों के प्रति उसके मन में सहानुभूति है। नारी पर किये जाने वाले अत्याचारों को देखकर उसके मन में दुःख भर जाता है। शत्रु पक्ष के सैनिकों के द्वारा जब हेमद्वीप की मालिनी नामक नारी पकड़ी जाती है तब वह उन्हें नर- पशु कहती है और यों कहती है -
'लोभी नरपशु उसे छिपाये रहा रात भर सैन्य शिविर में।' नारी ध्वंस की कट्टर विरोधिनी है। कुसुमद्वीप के प्रति उसके मन में अपार प्रेम है, ममता है और आदर भी। अतः कुसुमद्वीप के पराजय की चिंता तक वह नहीं कर सकती। मृदुला की बात बात में हम अहिंसा की भावना का दर्शन कर सकते हैं। जब उसका पुत्र ज्ञानधर वैरी के साथ युद्ध करने की बात कहता है तब उसे मृदुला यों कहकर रोकती है -

' निन्दनीय यह है आपस की मार - पीट ।'[१]

मृदुला ने अहिंसा वादी होने के कारण हिंसा का प्रत्युत्तर अहिंसा से देने का समर्थन किया-

गुणधर इस काव्य का प्रधान पुरुष पात्र है। वह गांधीवादी विचारधारा और दर्शन का प्रतीक है। वह मानवतावादी आदर्शों से अनुप्राणित है। डा० नगेन्द्र ने गुणधर के बारे में कहा है - ' वह एकांत अहिंसा का उपासक है।'[२] गुणधर पहले-पहले बड़े भीरु और दुर्बल व्यक्ति के समान सामने आता है। वह ' पाप से घृणा करो, पापी से नहीं ' का पक्षपाती है। अधिकारी के अन्याय के समक्ष भी न झुकना गांधीजी का मुख्य संदेश था। गुणधर के चरित्र में भी यही तत्त्व निहित है -

' सैनिक है क्रीतदास, अच्छी - बुरी बातों में

-- -- --

मेरा एकमात्र यही उत्तर है।'[३]

गुणधर अहिंसा का पुजारी है। अहिंसा की नीति में उसका बड़ा विश्वास है। वह हिंसा का कट्टर विरोधी था। अतः उसने कहा है -

- -

१: उन्मुक्त - पृ० ५१ २:सियारामशरण गुप्त - डा० नगेन्द्र - पृ०
३: उन्मुक्त - पृ० १२६

'अरे ओ हिंस्र लयंकर,

-- --

किधर चला आ रहा, - निदारुण यह लय - नर्तन।'[1]

इस प्रकार की अनेक अहिंसावादी बातें उसके कथन में मिलती हैं। गुणाधर की वाणी-वाणी में, शब्द - शब्द में, वाक्य - वाक्य में अहिंसा का स्वर सुनायी पड़ता है। वह आद्यंत अहिंसक रहते हुए गान्धीजी का अनुकर्ता स्थापित करता रहा है। जब गुणाधर भस्मकास्त्र लाने में अपनी असमर्थता प्रकट करता है तब उसे कैद करने की आज्ञा होती है। तब उसने कहा -

'बन्धो नहीं, आजमें विमुक्त मृत्युंजय हूं।'[2]

इस काव्य का और एक पुरुष पात्र है पुष्पदन्त। वह पहले जो हिंसावादी था, बाद में अहिंसावादी बना। वह पहले युद्ध रचना, उसमें भाग लेना, शत्रु पर मारकायुध की वर्षा करना और वहाँ रक्त की नदी बहाना चाहता था। जब कुसुमपुर पराजित होकर शत्रुओं के वश में चला जाता है तब उसका मन बदलता है और वह इस अपमान का सामना करना चाहता है। अंत में वह अहिंसा के पवित्र मार्ग को स्वीकार करता है और अहिंसात्मक युद्ध के लिए विदा लेता है।

इस काव्य में गान्धीवादी विचारधारा का मूर्त रूप दिखाई पड़ता है। देश की स्वतन्त्रता के लिए युद्ध की आग में कूदना मूर्खता थी। कवि ने गुणाधर के द्वारा प्रस्तुत गांधीवादी नीति का आद्यन्त समर्थन किया है। वह अन्त तक युद्ध में भाग लेने से दूर रहा। उसके प्रथम बार युद्ध में भाग लेने पर भी, दूसरी बार अहिंसावादी बनकर युद्ध से दूर रहने में गान्धीवाद के आदर्श की प्रतिष्ठा हुई है। गान्धीजी ने भी प्रथम विश्वयुद्ध में हिंसा को परोक्षत: प्रोत्साहित व उत्तेजित किया था, मगर वे द्वितीय विश्वयुद्ध में अहिंसावादी बनने के कारण दूर रहे। अहिंसा - दर्शन के व्यावहारिक व प्रायोगिक पक्ष पर प्रकाश डालते हुए डा० मिश्रजी ने बताया -' वे युद्ध पतियों, लोलुप राजाओं, बदला लेने वाले शासकों, क्रुद्ध भाई, प्रतिशोध की भावना से पति और हठी बालकों, पागलों और अपराधियों के समान प्रतिष्ठित करने के पक्ष में थे। उन्होंने इन पर एक नये विज्ञान का, एक नये दर्शन का जो कि एक अहिंसा का दर्शन है, प्रयोग किया है।'[3] इसी दर्शन की अभिव्यक्ति कवि ने 'उन्मुक्त' में की है।

१: उन्मुक्त पृ० ११५ २: वही० पृ० १२६ ३: सियारामशरण गुप्त : व्यक्तित्व और कृतित्व - पृ०

इसमें अहिंसा का नीति के रूप में प्रतिपादन किया गया है । गांधीजी की अहिंसा की कई स्थितियां हैं, जिनमें प्रमुख दो हैं - कमजोरी की अहिंसा अर्थात् नीति के रूप में अपनायी गई अहिंसा और बलवान की अहिंसा अर्थात् सिद्धान्त के रूप में अपनायी गई अहिंसा ।'[1] इसमें गान्धी दर्शन का तपपक्ष ही प्रमुख है । कवि गुणाधर के चरित्र द्वारा अपनी तपोमयी आत्मा की तड़प को प्रभविष्णु बनाने में सफल हुए हैं । 'गान्धी दर्शन के दो पक्ष हैं - एक ओज - पक्ष, दूसरा तप पक्ष । ओज पक्ष के कवि आज बहुत हैं, तप पक्ष का कवि एक अकेला कवि है सियारामशरण गुप्त ।'[2] डा० मिश्रजी के अनुसार 'गांधीजी की अहिंसा से उद्भूत जीवनादर्श यद्यपि मूलतया व्यष्टि के आत्म- कल्याण एवं आत्म-शुद्धि का मार्ग है, परन्तु लोक- मंगल की भावना भी उसमें अविच्छिन्न रूप से वर्तमान है ।'[3] 'उन्मुक्त' में गुणाधर इसी विचार- धारा से प्रभावित है । वह आत्म- शुद्धि से उन्मुक्त होने का अनुभव करता है । इस मुक्ति में समस्त मानव का कल्याण वह चाहता है । मृदुला भी उसी स्वर में कहती है -' सब के हित में लाभ करो निज विजय श्री का ।'

यह एक सफल गीति- नाट्य है । अहिंसात्मक नीति के द्वारा युद्ध की समस्या का समाधान ढूंढ़कर मानव के मंगल की कामना की पूर्ति करने में कवि सफल हुए हैं । इसकी रचना के क्षेत्र में कवि की राष्ट्रीय भावना ने भी काम किया है । यह एक प्रकार से समस्या- प्रधान काव्य भी है । इसमें युद्ध की समस्या प्रमुख है । प्रेम, अहिंसा, दया और मानवीय संवेदनाओं से विचार-प्रधान भी है । कुसुम द्वीप की प्राकृतिक सुषमा का सुन्दर तथा हृदयहारी चित्रण इस काव्य में यत्र- तत्र मिलता है ।

अनघ :

श्री मैथिलीशरण गुप्त जी कृत 'अनघ' एक गीति - नाट्य है । इसमें कवि ने काल्पनिक पात्रों की सृष्टि की है और उनके द्वारा गान्धीवाद और गान्धी नीति का प्रतिपादन किया है । इसकी कथा बहुत लंबी एवं कल्पित है । इस नाट्य के पात्रों के द्वारा गान्धीवाद का विवेचन किया गया है जिसका परिचय इन पात्रों के चरित्र चित्रण के द्वारा हमें मिल सकता है ।

- -

१: सियारामशरण गुप्त : व्यक्तित्व और कृतित्व - पृ०

२: वही० पृ० . ३: वही० पृ०

मघ :

मघ इस नाट्य का नायक है और बुद्ध का साक्षात् अवतार माना जाता है जो हमेशा साधना में मग्न रहता है । वह एक आदर्श नायक और युगधर्म का प्रतीक बताया गया है । उसके चरित्र में गान्धी नीति का व्यावहारिक पक्ष साकार हो उठा है ।[1] मचल - ग्राम में साम्राज्यवाद का भीषण ताण्डव - नृत्य हो रहा था । वहां के शासक भोज की कुटिल नीति के अट्टहास से समस्त जनता भयभीत तथा व्याकुल हो उठती थी । अत: मघ ने अपनी गान्धी नीति से साम्राज्यवाद का सर्वनाश करने का निश्चय करके उसके लिए परिश्रम करने का प्रयास किया है । इस ग्राम में सुर और असुर गुणों के बीच में अक्सर द्वन्द्व हो उठता था । मघ ने तो ऐसी नीति को अपनाया था जिसमें नि:स्वार्थ भाव से परोपकार का समर्थन होता है । अत: उसने जनता को परोपकार की महिमा का उपदेश दिया है ।

मघ अपने कर्तव्य में जो दृढ़ता रखता था, उसीका परिचय इन पंक्तियों में स्पष्ट है -

> ' तो क्या अब भी और डरूं मैं ?
>
> -- -- --
>
> बस, अपना कर्तव्य करूं मैं । '[2]

उसने शारीरिक परिश्रम पर बल देते हुए बताया है कि श्रम करने से सभी कार्य आसानी से सिद्ध हो जाते हैं -

> ' श्रम करो, भद्र, यथार्थ ,
> हैं सुलभ सर्व पदार्थ । '[3]

जब एक बार किन्हीं चार चोरों ने मघ के हाथ से कुछ चुराने का साहस किया, तब उसने उन्हें रोक कर उनका हृदय - परिवर्तन करने के उद्देश्य से यों कहा -

> ' आओ, सभी उठ हाल,
> छूना न कोई माल । '[4]

१: ' मघ का चरित्र गान्धी - नीति के व्यावहारिक पक्ष का मूर्तिमन्त रूप है ' - आधुनिक हिन्दी काव्य में रूप विधाएं - पृ० ३३५

२: अनघ - पृ० ८ ३: वही० पृ० १० ४: वही० पृ० १४

यहां गांधीवाद के अस्तेय सिद्धान्त का समर्थन किया गया है।

और भी

' देगा तुम्हें फल - शोध।
होगा अवश्य सुधार,
समझो इसे उपकार। '[1]

युगधर्म का प्रतीक होने के कारण मध ने समाज - सेवा को ही महान सेवा माना है -

' जहां कहीं भी समाज का हित हो,
वहां यह मेरा तनु अर्पित हो। '[2]

एक दिन जब मध के घर पहुंचने में विलंब हुआ तब उसकी माता के न खाने पर मध ने उपवास किया -

' भूखा ही रह जाऊंगा,
सचमुच आज न खाऊंगा। '[3]

मध ने अपने सुख- संतोष भूख - प्यास की परवाह न करके दूसरों की उन्नति तथा सुधार का ही ध्यान रखा था। एक शराबी को देखकर मध भोजन किये बिना उसे सुधारने चलाके गया था -

' तू रखा, मैं फिर खा लूंगा,
प्रथम धर्म्म निज पालूंगा। '[4]

इस कर्तव्य के पीछे शराब - बन्दी भावना निहित है।

निष्काम कर्म पर मध ने यों बताया है जो गान्धीजी का मूलमन्त्र था।

साधारण लोक धर्म मेरा ध्रुव धर्म है।
फल हो किसी के हाथ, मेरे हाथ कर्म्म है।'[5]

- -

१: अनघ - पृ० १४ २: वही० पृ० १४ ३: वही० पृ० २६ ४: वही० पृ० ३१
५: वही० पृ० ५६

मध ने भी ` पाप से घृणा करो, पापी से नहीं ` को दुहराया है -

` पापों से घृणा करो, प्रयत्न करो, पापी का ,
अंग्य छोड़ संग दो सदैव अनुतापी का । `१

और भी -

` पापी का उपकार करो, हां,
पापों का प्रतिकार करो, `२

गांधीजी के सत्याग्रह को मध ने युगानुकूल अपनाया है -

आग्रह करके सदा सत्य का
जहां कहीं हो शोध करो , `३

मध ने सदा जन- सेवा पर ही बल दिया है और इसके लिए इसे सह- धर्मिणी की सहायता भी चाहिए । कहने का तात्पर्य यह है कि ऐसी एक नारी उसकी पत्नी सकती है जो जन- सेवा में अतीव तत्परता तथा उत्सुकता प्रकट कर सकती हो । स्त्री - पुरुष दांपत्य - बंधन को उसने तन-सेवा या मन - सेवा या सुखी जीवन लिए नहीं माना है । -

` न तन- सेवा, न मन- सेवा
न जीवन और धन - सेवा,
मुझे है इष्ट जन - सेवा ,
सदा सच्ची भुवन - सेवा । `
न होगी पूर्ण वह तब तक ।
न हो सहधर्मिणी जब तक ।। `४

मध को देश - सेवक होने के नाते कई बार कारागार में बन्दी होकर रहना पड़ता अत: भोजक की पत्नी ने उससे इस देश छोड़कर अन्यत्र कहीं जाकर अपने धर्म का प

- -

१: अनघ - पृ० ६० २: वही० पृ० ६३
३: वही० पृ० ६३ ४: वही० पृ० ६५

करने का उपदेश दिया। मगर मध तो अपनी प्यारी जन्म भूमि तथा ग्रामीण- जनता को छोड़कर भयभीत हो भागने वाला नहीं था -

अपेक्षा मेरी जग ओर,
कहो, फिर जाऊं मैं किस ओर ?
फेर लूं जन्म- भूमि से नेत्र ?
जहां है मेरा कर्म - क्षेत्र। '[१]

एक सुर के द्वारा मध के प्रहार करने की प्रतिहिंसा की बात बताने के बारे में मध ने सुरभि से शांत होनेको कहा -

प्रतिहिंसा वश सुरभि हाय ! सौजन्य न हारो। '[२]

वैसा ही सुर, चारों चोर आदि द्रोहियों को मृत्यु दण्ड देने के लिए सुरभि के अनुरोध पर मध ने यों बताया -

सुरभि, शांत हो, कहां गई वह क्षमा तुम्हारी ?
क्या जीवन, क्या मरण, तुम्हें है भय क्यों भारी ? '[३]

इस नाट्य के अन्य पात्रों के चरित्रों पर भी गांधीवाद का प्रभाव अवश्य पड़ा है। एक आदमी ने मध में निहित जाति- अभिन्नता पर प्रकाश डाला है -

' किंतु हैं मनुज मात्र सम जिसको,
द्विजों से शूद्र नहीं कम जिसको,
तुला जो आप तुच्छता पर है,
उसे क्या जाति- पांति का डर है ? '[४]

मध की संयमशीलता पर सुरभि ने यों कहा -

संयम ही उनके उच्च हृदय का बल है,
पर - हित ही उनके प्रेम विजय का फल है।
त्याग व्रत ही विश्वस्त धर्म है उनका,
निष्काम कर्म ही परम धर्म है उनका। '[५]

- -

१: अनघ- प० १२२ २: वही० पृ० १३२ ३: वही०पृ० १३३ ४:वही०पृ० १६ ५:--पृ० ३६

सुरभि का ही कथन -

> ' वे उच्च - नीच का भेद नहीं कुछ रखते,
> हैं मनुज मात्र को एक समान निरखते । '[1]

विशेष नामक एक सेवक ने बताया है कि मघ ने यही दुहराया है कि दुष्टों से हमेशा प्रेम - भरी वाणी के द्वारा बातचीत करनी चाहिए । एक खल ने जो शराबी भी था मघ की मां पर प्रहार किया, फिर भी उससे मघ ने प्रेमपूर्ण व्यवहार ही किया -

> ' पर है यह विस्मय की बात -
> जिसने किया विषम आघात
> बल रखते भी उसे न मार
> किया उसी पर मघ ने प्यार । '[2]

मौजक के साम्राज्यवादी होने पर भी उसकी पत्नी गांधी-नीति का समर्थन करने वाली थी । उसने मघ के संबंध में बहुत कुछ कहा है -

> ' वे सब स्वयं दुख झेलकर ,
> -- --
> जन हैं नहीं धन के लिए । '[3]

मघ के पिता अमोघ भी गांधीवादी थे । ग्राम - सुधार के सिलसिले में तृष्णा सुश्रूषा, रोग - प्रतिरोध, शराब - बन्दी आदि सुधारात्मक प्रवृत्तियों पर प्रकाश डालते हुए सुमुख नामक मघ के साथी ने बताया है -

> ' यही कि सब जन हों सुखी,
> -- -- --
> सेवा और सुधार हैं । '[4]

गान्धीवाद की दृष्टि से ' अनघ ' एक सफल गीति- नाट्य है ।

- -

१: अनघ - पृ० ३७ २: वही० पृ० ४६
३: वही० पृ० ६७ - ६८ ४: वही० पृ० ८३ - ८४

इसमें कवि ने नायक मघ की चारित्रिक विशेषताओं का उद्घाटन करते हुए गान्धी-नीति का समर्थन किया है। मघ को हम " दूसरे गांधीजी " के रूप में अपना सकते हैं। गान्धीजी के राजनीतिक और सामाजिक सुधार पक्ष संबंधी कतिपय विचारों का प्रतिपादन मघ के व्यक्तित्व के व्यावहारिक रूप के सहारे किया गया है। उसने सत्य, अहिंसा का प्रचार किया, उपवास और धरना दिये, हृदय - परिवर्तन सिद्धान्त का सफल प्रयोग किया आदि आदि। भोजक की पत्नी में गान्धीवादी विचारधारा की भावना इतनी तीव्र थी कि वह अपने साम्राज्य - लोलुप, विद्रोही, कुचक्री, यम- तुल्य रक्त - पिपासु पति को त्याग ने तक भी तैयार थी। वह हमेशा मघ की चारित्रिक विशेषताओं की प्रशंसा करती थी, उसके सत्कर्मों को महिमा गाती थी। मघ के साथी होने के कारण वासव, सुव्रत, विशेष, विशाल, सुमुख आदि पात्रों पर भी गान्धीवाद की छाप पड़ी है।

इस नाट्य के पात्र काल्पनिक तथा संभवत: गान्धी- नीति का समर्थन करने के लिए रचे गये हैं। मघ भी कल्पित पात्र है - फिर भी वह एक दूसरा बुद्ध है क्योंकि उसने भगवान बुद्ध की भांति ग्राम- सुधार - हेतु अपना घर - बार छोड़ दिया और साधनार्थ वन चला गया। जो भी हो उसके सभी कर्म गांधीनीति के प्रतिपादन में सजीव हो उठे हैं।

बापू :

यह सियारामशरण गुप्त जी कृत गान्धीवादी व्यक्तिकाव्य है। व्यक्ति काव्य एक ऐसा काव्य है जिसमें उसके रचयिता की आत्माभिव्यक्ति सहज एवं सीधे ढंग से की जाती है और वे अत्यन्त आत्मीयता के साथ नि:संकोच होकर अपनी स्वानुभूति को स्वच्छन्दतापूर्वक व्यक्त करते हैं।[१] हिन्दी में इसे स्वात्मनिष्ठ काव्य, स्वानुभूतिमूलक, स्वात्मपरक, आत्मनिष्ठ, व्यक्ति- प्रधान, भाव प्रधान, आदि भी कहा जाता है। ऐसे काव्य में कवि बाह्य रूप से कवि प्रेरणा ही ग्रहण करते हैं। मगर उसकी आत्माभिव्यक्ति उनके अन्तर्मुखी दृष्टिकोण से की जाती है। अत: यहां

१: हिन्दी साहित्य कोश - भाग - १के आधार पर - पृ० ५२

वस्तु या विषय का विस्तृत वर्णन न होकर, तज्जन्य आन्तरिक प्रतिक्रियापूर्ण भावना का प्रतिपाद्य ही मुख्यत: होता है। ऐसे काव्य - रचयिता पहले वस्तु या विषय से तादात्म्य प्राप्त करते हैं और उसे अपने व्यक्तित्व के साँचे में ढालकर ऐसे काव्य- रूप प्रस्तुत करते हैं। तीव्रतम संवेदनात्मकता इस काव्य की एक विशेषता है।

` बापू ` में कवि ने गान्धीजी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व की प्रेरणा से जन्य अपनी मानसिक प्रतिक्रिया का चित्रण किया है। उनके जीवन या व्यक्तिगत गुणों की महिमा का चित्रण नहीं।

गान्धीजी और सियारामशरण गुप्तजी का प्रथम मिलन सन् १९२९ को चिरगांव में हुआ। खादी का प्रचार करने के लिए गान्धीजी जब वर्धा आये थे, तब सियाराम शरण गुप्त ने उनसे चिरगांव आने की प्रार्थना करते हुए एक पत्र भेजा। गुप्तजी की इच्छानुसार गांधीजी ~~गान्धीजी~~ चिरगांव आये। अनेक लोगों ने अपनी अपनी इच्छा के अनुसार गान्धीजी को तरह तरह की वस्तुएं भेंट कीं। तब गुप्तजी ने यों निश्चय किया कि उनकी भेंट अपने मन की ओर से हो। इस प्रकार ` बापू ` काव्य की सृजन- प्रक्रिया प्रारंभ हुई। कवि को वर्धा में गान्धीजी के साथ दो चार दिन बिताने का सुअवसर मिला और वहाँ से इस काव्य की प्रथम पंक्तियों की [1] सृजन-प्रेरणा प्राप्त की और ये पंक्तियां कितनी सुन्दर एवं प्रेरणा- प्रधान प्रतीत होती हैं। इस प्रकार इस काव्य की रचना सन् १९३८ को समाप्त हुई और उसे गान्धीजी के कर कमलों में अर्पित किया गया।

<u>प्रेरणा स्रोत :</u>

इस काव्य की रचना के मूल में गान्धीजी के प्रति अडिग आस्था और गहरी श्रद्धा की भावना थी। गुप्तजी और गान्धीजी दोनों के वैष्णव होने के

- -

१: ` वाणी के मन्दिर में आकर
कर्म स्वयं मंजुल है आज ;
गिरा अर्थ से अर्थ गिरा से
सादर समलंकृत है आज। `

- बापू - पृ० ६

कारण गान्धीजी के केन्द्र सिद्धान्तों तथा विचारों का प्रभाव कवि पर खूब पड़ा था। कवि ने ' बापू ' में उन्हें भी स्थान दिया है। ' बापू ' की रचना के समय भारत में स्वतंत्रता- प्राप्ति के लिए गान्धीजी के नेतृत्व में कांग्रेस का आन्दोलन हो रहा था। इतना ही नहीं, गान्धीजी देश की जनता के बीच में अत्यन्त लोक-प्रिय भी बन चुके थे। प्रस्तुत आन्दोलन तथा गान्धीजी की लोक- प्रियता से भी कवि अत्यन्त प्रभावित हुए।

इस काव्य के आरंभ में कवि ने गान्धीजी के अवतरित होने का कारण भारत की विकट परिस्थिति बतायी है जिसका उल्लेख यहां किया गया है। उन्होंने बताया है कि देश की बड़ी विपन्न दशा है। सब कहीं हत्या और हिंसा का खेल हो रहा है। सारी जनता विध्वंस की रक्त-धारा में डूब कर मर रही है। अबला- वृद्ध इन हत्यारों के शिकार बन गये हैं, यह कैसी दु:खद स्थिति है ?[१] इसके बाद पूज्य महात्मा गान्धीजी के भारतीय राजनीति के रंगमंच पर अवतरित होने का उल्लेख जिज्ञासा - जनित प्रश्न के द्वारा किया गया है -

' कौन, वह कौन कृती

-- --

पुलकित लिये थे प्रेम - फुल्ल - पुष्प मालाएं।'[२]

उनके आगमन या अवतरण से जनता हर्ष- पुलक हो उठी थी। इसका कारण यह था कि जनता में नवीन जागृति और चेतना पैदा की थी।

' आये,वह आये ', ' उठा हर्ष-रव ;

-- -- --

अन्तर - कपाट खुले दृष्टि के, श्रवण के।'[३]

भारत की जनता उनके दर्शन की अत्यन्त प्यासी जान पड़ती थी और उनकी हंसोली मूर्ति का रसपान कर वह सन्तुष्ट होती थी।[४] गान्धीजी के दर्शन मात्र से भारत की जनता संतृप्त न हुई, वह उनकी अमृत- सी वाणी सुनने को भी तत्पर हो उठी।[५]

- -

१: बापू - पृ० ३८ २: वही० पृ० ११ - १२ ३: वही० पृ० १३
४: वही० पृ० १४ ५: वही० पृ० २१

गान्धीजी को मन्त्रद्रष्टा ऋषि के रूप में चित्रित किया गया है।[१] वे ज्ञान के प्रतीक थे और किसी भी भीषण स्थिति में वे अटल रह सकते थे।[२] कवि के शब्दों में गान्धीजी भारतीय ऋषियों - मुनियों की परंपरा की मजबूत कड़ी थे।

भारत में पशु - हत्या जैसी पाशविक तथा हिंसापूर्ण प्रवृत्तियों का भीषण व्यवहार हो रहा था, तभी गांधीजी प्रेम- मंत्र के सूत्र को लेकर आविर्भूत हुए। यहां उनकी प्रेम - महिमा व्यक्त हुई है। कवि ने बताया है कि प्रेम देश में क्षेम या सुख प्रदान करने वाला है। प्रेम में ही सदा विजय संभव है। उससे ही हिंसा और घृणा का अंधकार दूर हो सकता है और एकता का प्रकाश फैल सकता है।[३] गान्धीजी दूसरों को अपनाने में प्रेम का व्यवहार करते थे और उसी सिद्धान्त पर विश्वास रखते थे।

गान्धीजी के महत्वकी कई बातें बताते हुए कवि ने दिखाया है कि कैसे वे अपने घर, धन, पत्नी, पुत्र सब छोड़कर भारत की राजनीति के क्षेत्र में कूद पड़े। वे त्याग के धनी भी थे। देश- प्रेम और जन- सेवा में ही वे तत्पर थे और यही उनकी सफलता थी -

> ' छोड़ तुम नेह - गेह धन को,
> -- -- --
> मंगल मनाने चले मन से। '[४]

महात्मा जी के व्यक्तित्व को विशाल दृष्टि से परखने पर यह मालूम पड़ता है कि वह अन्य अनेक महान व्यक्तियों के चरित्रों के से निर्मित है क्योंकि उन्होंने ऐसे बड़े - बड़े व्यक्तियों से सद्गुणों को ग्रहण किया था - जैसे हरिश्चन्द्र से सत्य, प्रह्लाद से भक्ति, भीष्म से ब्रह्मचर्य, ईसा से नरानुराग, मुहम्मद से दृढ़ता आदि।[५]

कवि ने इसमें गांधीवादी सिद्धान्तों पर भी विचार किया है। गांधीवादी सिद्धान्तों का स्वभाव मूलतः आध्यात्मिक है। गान्धीजी का सैद्धान्तिक दृष्टिकोण भौतिकता से आध्यात्मिकता की ओर उन्मुख था। गान्धीजी में पुरातन और नूतन का समन्वय कवि ने देखा है। भारत के राष्ट्रीय रंगमंच पर उनका पदार्पण

- -

१: बापू - पृ० १८ २: वही०पृ० २२ ३: वही०पृ० ४३ ४: वही०पृ० ३४
५: वही० पृ० ६५-६७ ६६

ऐसी गोधूलि वेला में हुआ था जब कि पुरातन का अन्त और नूतन का श्री गणेश हो रहा था। अतः गांधीजी ने प्राचीन भारतीय परंपरा का निर्वाह करते हुए भी नवीनता का ग्रहण किया है। अन्य कवियों की तरह गुप्तजी ने भी इस पर प्रकाश डालते हुए कहा है -

तुम में पुरातन है नूतन में,
नूतन चिरन्तन में। `[1]

गान्धीजी के सत्य और प्रेम को अमृत कहा गया है। गान्धीजी का सत्य अमृत था। कवि ने उनके राजनैतिक सत्याग्रही रूप का चित्रण किया है। सत्याग्रह के लिए जाने वाले गान्धीजी के आवेशमय गमन का सुन्दर वर्णन बापू में मिलता है। गान्धीजी अपना सिर ऊंचा किये हुए, हाथ में प्रेम का फण्डा लिये, अपने अनन्त जन-सागर के साथ निःशस्त्र होकर सत्याग्रह करने चले थे।[2]

उस सत्याग्रही का विश्वास था कि जनता कभी दुर्बल नहीं बनती जब तक उसमें आत्मबल रहे। दुर्बल व्यक्ति को दीन और हीन कहने में कोई अर्थ नहीं है। अगर उसमें आत्मबल है तो वह निरस्त्र होकर भी महान शक्ति का सामना कर सकता है।[3] गान्धीजी की अहिंसा कोई नवीन वस्तु नहीं थी, फिर भी उसे उन्होंने एक नये परिवेश में जनता के सामने प्रस्तुत किया और उसे देश की स्वतन्त्रता - प्राप्ति के लिए उचित साधन समझा। लेकिन इस अहिंसा को लेकर महान शक्ति के साथ जो समाधान एवं शांतिपूर्ण युद्ध हुआ, वह अत्यन्त नवीन घटना थी। गान्धीजी हिंसा के विपक्ष में थे और उन्होंने अहिंसा- नीति का विवेचन सर्वदा किया था जिसके मूल में अंग्रेजों का हृदय- परिवर्तन करना मुख्य उद्देश्य था। कवि ने भी ` बापू ` में गान्धीजी की अहिंसा की प्रशंसा की है -

` आत्मजयि, पावन तुम्हारे आत्मशासन में,

-- -- --

अस्त्र- शस्त्र हीन भी अचिन्तित, अजित है। `[4]

गान्धीजी के मन में स्त्रियों के प्रति विशेष श्रद्धा एवं प्रेम था।

- -

१: बापू - पृ० २८ २: वही० पृ० ५५ ३: वही० पृ० ६१
४: वही० पृ० ७६

अत: कवि ने भी नारी के प्रति अपनी सम्मान- भावना व्यक्त की है। स्त्रियों को पुरुषों से भी बढ़कर अत्यन्त बुद्धिशाली, साहसी, आत्मत्यागी एवं सहनशील बताना ऐसे कवियों का प्रधान कार्य रहा है। यहां कवि ने भारतमाता को एक दिव्य सीपी की मूर्ति के रूप में चित्रित किया है जिन्होंने गान्धीजी जैसे मोती को जन्म दिया। यह भारत के लिए बड़े अभिमान की बात है -

> ' भूतल की शक्ति यह हलकी
>
> -- -- --
>
> प्राप्त कर तुम में हुई है धन्य - धन्य - धन्य।'[१]

हमारे राष्ट्रीय कवियों ने कारागार को विषय बनाकर उसकी अनेक विशेषताएं रची हैं। कवि सियारामशरण जी ने भी ' बापू ' में कारागार का अत्यन्त मार्मिक चित्रण किया है। कवि कारागार का भीमाकार देखकर भयभीत हो उठे। चारों ओर कठिन शिलाओं से निर्मित भित्तियां होती हैं जिसके अन्दर अंधेरा ही अंधेरा अनुभव होता है। जो एक बार उसके भीतर घुसता है, उसे फिर बाहर आना बड़ा मुश्किल हो जाता है।[२] लेकिन गान्धीजी के मतानुसार कारागार पुण्य- लोक है और वहां रहने का अवसर किसी को प्राप्त होता है,तो परम सौभाग्य माना जाता है। गान्धीजी भी कई बार जेल गये हैं और उनका हृदय दु:खित होने के बदले हर्षित ही हो उठा था। अत: कवि ने इच्छा न होने पर भी कारागृह का चित्रण इसलिए किया कि गान्धीवाद में उसका प्रमुख स्थान है।

गान्धीजी के जीवन की गाथा के अन्त में कवि ने करुणापूर्ण शब्दों में गान्धीजी की देह में चिताग्नि के जलने का हृदयस्पर्शी चित्रण भी किया। उनकी मृत्यु से विश्व माता बहुत खिन्न हो गई। वह एकदम रो पड़ी। उन्होंने उसकी स्वतन्त्रता के लिए एक महान यज्ञ ही किया था। उसके प्रयत्न के तीर्थ- जल से ही भारत की जनता की स्वतन्त्रता की प्यास बुझ गयी थी।[३]

निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है कि ' बापू ' आधुनिक दृष्टि से

१: बापू - पृ० ३० २: वही० पृ० ३१

३: वही० पृ० ७९

एक सफल काव्य है। व्यक्ति काव्य होने के नाते उसका अपना महत्व है, यह निस्संदेह कहा जा सकता है। भारत की पराधीनता की अवस्था के विविध पहलुओं का चित्रण करते हुए गान्धीजी की सुधारवादी विभिन्न प्रवृत्तियों का मूल्यांकन किया गया है। व्यक्ति काव्य होने के कारण इनका विस्तृत वर्णन हुआ है। ` बापू ` एक दीर्घ संबोधन गीत भी है जिसमें कवि ने गान्धीजी को अनेक विशेषणों से बार बार संबोधित किया है, जैसे श्रेष्ठ रथी, कालपथ - यात्री, धरा के लाल, उदार - मुनी, सिद्धार्थ, राजनन्दी, अमर छात्र, निखिल बन्धु, लोक गुरु, दया के दूत, कालजयी, त्याग धाम, प्रभाकर, आत्मजयी, विरत विरागी, अचल प्रतिष्ठ, पुण्य स्पर्श रत्न आदि।

सियारामशरण जी गांधीजी से इतना प्रभावित थे कि उन्होंने अपने जीवन में भी गांधीजी के पद- चिह्नों का अनुसरण किया था। इस काव्य के माध्यम से कवि ने गांधी दर्शन का विचार - विमर्श किया और उसे जनता के सम्मुख प्रस्तुत किया।

अन्त में इतना ही कहा जा सकता है कि हिन्दी के कवियों ने गांधीजी और उनके सिद्धान्तों को लेकर काव्य के अधिकांश रूपों की रचना करने का प्रयास किया है जैसे महाकाव्य, खण्डकाव्य, मुक्तक काव्य, गीतिकाव्य, गीति नाट्य, व्यक्ति काव्य, गद्य काव्य आदि आदि। हिन्दी काव्य क्षेत्र में यह बड़ा स्तुत्य कार्य ही हुआ है।

अध्याय :: ९

कलापक्ष

अध्याय : ६

कलापक्ष

---०---

इस प्रबन्ध के विचाराधीन काव्य वे हैं जिनमें गांधीजी और उनके विचारों का किसी न किसी रूप में वर्णन है। आधुनिक युग में मैथिलीशरण गुप्त से लेकर दिनकर तक अनेक कवियों ने इस तरह का काव्य रचा है। जिन्होंने इस कोटि की रचनाएं लिखी हैं वे किसी विशेष काव्य - रूप के विषय में रुढ़ी नहीं रहे हैं अर्थात् प्रस्तुत विषय की चर्चा करने वाले महाकाव्य, खण्डकाव्य, प्रबन्धकाव्य, गीति और अन्य मुक्तक बड़ी संख्या में मिलते हैं। इस वैविध्य से प्रमाणित होता है कि आधुनिक युग के कवियों पर गांधीवाद का कितना गहरा प्रभाव जमा था।

'हिन्दी काव्य में गान्धीजी का प्रभाव' शीर्षक विषय स्पष्टत: काव्यों में वर्णित विचारों से संबंध रखता है। यहां काव्य- कला की खूबियों के वर्णन का मौका कम रहता है। एक तो विचारों की प्रबलता, कलापक्ष को गौण बनाती है। तिस पर गांधीवाद जैसा विषय उतना विचार- प्रधान और गंभीर है कि उसमें काव्य-कलागत चमत्कार का प्रयोजन नहीं रहता। दूसरे गांधीजी के विचारों के विवेचन में

अहिंसा , सत्य और अन्य सिद्धान्तों की व्याख्या ही प्राय: की जाती है । जहां दार्शनिक सिद्धान्तों की गहरी व्याख्या है, वहां चमत्कार अवांछित होता है । तीसरे, गांधीजी हमारे बीच में थे, उनका व्यक्तित्व किसी सौंदर्य - प्रधान या रोमांटिक तत्व पर अधिष्ठित नहीं था । वे तपस्या, देश- प्रेम, बलिदान आदि के सिद्धान्तों की मूर्ति के रूप में प्रतिष्ठित थे । अतएव उनके व्यक्तित्व का कोई अलंकारपूर्ण वर्णन हास्यास्पद हो ही जाता । इसके अलावा गांधी - वाङ्मय का अध्ययन इस कटु निष्कर्ष पर हमें ले चला है कि गांधीजी की जीवनी काव्य में उचित रूप से लिखने का प्रयत्न कम किया गया है । जिन्होंने महात्मा जी की जीवनी को छंद रूप दिया है उनमें से अधिकांश लोगों ने उनके किसी इतिहासकार की भांति उनके जीवन की प्रमुख घटनाओं का लेखा-जोखा ही पेश किया है । वे प्रत्येक घटना के पीछे गांधीजी के हृदय में संभव भाव- ज्वार की कल्पना करने का प्रयत्न तक नहीं कर सके हैं । यद्यपि गांधीजी का जीवित रहना ऐसी कल्पना को अनावश्यक और निरर्थक सिद्ध करता , तो भी बाद में ऐसी कल्पना का महत्व अवश्य प्रमाणित होता। जहां कोरी घटनावली सूखे गद्यात्मक शब्दों में वर्णित है, वहां काव्य के कलापक्ष का विकास कैसे संभव है ?

गांधीजी और कला :

गांधीजी ने कला की विभिन्न व्याख्याएं दी हैं । उन्होंने कला को केवल मनोरंजन तथा रसास्वादन के लिए मानने का विरोध किया है । उसके मानव-जीवन से संबंधित रहने की आवश्यकता पर बल दिया है । कला और जीवन का घनिष्ट सम्बध रहना ही चाहिए । तभी कला श्रेष्ठ एवं सर्वग्राह्य बन सकती है । वे कला को कला के लिए न मानकर, जीवन के लिए मानने के पक्षपाती थे ।[१] कला में जीवन की सुस्पष्ट एवं दीर्घ अभिव्यक्ति को गांधीजी ने अत्यंत संगत माना है । उसमें जीवन के सुखद एवं दुखद पक्षों को वे अभिव्यक्त करना चाहते थे । ~~साहित्य की रचना~~

साहित्य की रचना करना भी एक प्रकार की कला है - चाहे वह कविता हो, काव्य हो, नाटक हो, कहानी हो, उपन्यास हो या अन्य कोई कलांश ।

---

१) कला, कला के लिए कहना व्यर्थ है - कला तो जीवन के लिए (उपयोगी) होनी चाहिए - गांधीजी की सूक्तियां - पृ० ३१

साहित्य में धरती के मानव- जीवन के सुख- दु:ख पक्षों को अभिव्यक्त करके, सुख पक्ष का उत्तरोत्तर समर्थन और विकास तथा दु:खपक्ष का दूरीकरण और समाधान की पुष्टि ही गान्धीवादी का लक्ष्य है। अत: उन्होंने ऐसी साहित्यिक रचनाओं के सृजन का अनुरोध किया है। इसके लिए कवि और अन्य साहित्यकारों को मानव- जीवन से घुल मिलकर रहना चाहिए। मानव- जीवन की सत्यता के वास्तविक चित्रण में ही काव्य - सौंदर्य को देखा है - यही गान्धीजी का कहना था।[१]

गान्धीजी ने कला के दो भेद - आन्तरिक और बाह्य - किये हैं। और बाह्य की अपेक्षा आन्तरिक विकास का खूब समर्थन किया है।[२] यहां उन्होंने कला को आध्यात्मिक बनाना चाहा है। मानव- आत्मा की जागृति और उसका पूर्ण विकास ही उनका जीवन - लक्ष्य था। स्वभावत: वे धार्मिक थे और आध्यात्मिकता ● उनका प्रधान सन्देश रही है। मानव - आत्मा को ईश्वर - साक्षात्कार कराने में योग्य कला को सच्ची कला मानते थे गान्धीजी।[३] इस दृष्टि से उन्होंने भारत के सारे राजनीतिक वर्गों का आध्यात्मीकरण करने का निश्चय किया था। सर्व भोग्याकला में इसका बड़ा स्थान है। आत्म- साक्षात्कार के लिए सहायक होने वाली कला का मूल्य बहुत अधिक होता है।[४]

कला को एक जगह उन्होंने मानव- जीवन ही बताया है। 'जीवन ही कला है।' कला हमेशा मानव- कल्याण कारी हो होनी चाहिए। ऐसी कला ही गांधीजी के लिए स्वीकार्य थी। ऐसी कला को मानव- जीवन में उच्चस्थान प्राप्त होता है।

- -

१: जब कभी मनुष्य को जीवन में सौंदर्य दिखाने लगेगा तभी सच्ची कला जन्म लेगी - गान्धी विचार रत्न - पृ० १८५

२: मैं कला के दो भेद करता हूं - आन्तर और बाह्य, -- -- -- जब तक अन्तर का विकास न हो। - वही० पृ० १८७

३: जो कला आत्मा को आत्म- दर्शन करने की शिक्षा नहीं वह कला ही नहीं है - गांधीजी की सूक्तियां - पृ० २६

४: मानव की कलाकृतियों का मूल्य उतना ही है, जितनी वे आत्म- साक्षात्कार में सहायक होते हैं - गांधी विचार रत्न - पृ० १८५

जो कल्याणकारी और जन- साधारण के लिए भी ग्रहण- ग्राह्य हो । यों गांधीजी ने काव्य की दो व्याख्याएं की हैं जिनमें उन्होंने राष्ट्र - निर्माण, मानव- जीवन को उन्नत बनाने पर अपना मत प्रकट किया है ।[१] यही गान्धीवादी काव्यों का भी उद्देश्य रहा है ।

गान्धीवादी काव्यों का कलापक्षीय विवेचन :

'जननायक' का आकार बहुत बड़ा है । यह काव्य ६०८ पृष्ठों में रचा गया है । यह ३१ सर्गों का महाकाव्य है । इनमें कुछ तो आकार में बहुत छोटे हैं और कुछ बड़े । प्रत्येक सर्ग के लिए कवि ने अलग शीर्षक का विधान किया है । जैसे इसमें मंगल ज्योति, क्रीड़ा, विलायत यात्रा, पथ का प्रसाद, आदि आदि शीर्षक रखे गये हैं जिसका उल्लेख कवि ने इस काव्य के आरंभ के पूर्व क्रम में स्पष्ट रूप से किया है । उपर्युक्त शीर्षकों का जो विधान किया गया है, वह सार्थक एवं विषयानुकूल है । शीर्षक से हमें प्रस्तुत सर्ग में प्रतिपादित विषय अथवा घटना का बोध होता है । कुछ शीर्षकों का विधान ऐसा हुआ है जिससे विषय का प्रत्यक्ष रूप से बोध होता है और कुछ ऐसे हैं जिनसे परोक्ष रूप से ही होता है ।

काव्यारंभ के पूर्व कवि ने मंगलाचरण की परंपरागत प्रथा का निर्वाह किया है । इसमें कवि ने गांधीजी का ही स्तवन किया है । अंत में शिवजी, गणेश जी, सरस्वती आदि देवी - देवताओं की वंदना भी की गयी है । मंगलाचरण को उन्होंने प्रथम सर्ग के अंतर्गत रखा है । आगे कवि ने गांधीजी के जन्म के उत्सव का चित्रण किया है । यहीं से उन्होंने काव्यारंभ किया है । इस काव्य की रचना दो खंडों में की गयी है । प्रथम खंड मंगल ज्योति से २- बहिष्कार तक और दूसरा खंड बहिष्कार से प्राण- दान तक रखा गया है । बहिष्कार नामक सर्ग का आरंभ कथा का मध्य भाग है । प्रार्थना - सभा में गांधीजी पर गोली लगने, उनकी मृत्यु होने और अंतिम विदा यात्रा की तैयारी करने के मार्मिक चित्रण के साथ ही काव्य की समाप्ति होती है ।

- -

१: काव्य का ध्येय -- -- कहा जा सकता ।
- गांधीजी की सूक्तियां - पृ० ३१

'जननायक' महाकाव्य अनेक रसों से रुचिर है। इसमें विषय अथवा घटनानुकूल रसों की परिचर्या की गयी है। प्रथम सर्ग में भारत की शोच्य एवं भयानक दृश्यों का वर्णन जहाँ किया गया है वहाँ करुण एवं भयानक रस का निर्वाह हुआ है।[१] बालक गांधीजी को माता - पिताद्वारा खिलाने और सुलाने और बालक गांधीजी की बालोचित केलियों के वर्णन में वात्सल्य रस की खूब अभिव्यक्ति हुई है।[२] प्रथम सर्ग के अन्त में कस्तूरीबाई की विदा की वेला का चित्रण किया गया है, वहाँ करुण रस उमड़ पड़ा है -

'बारह वर्ष -- -- -- आँसू बहाते।'[३]

द्वितीय सर्ग में गांधीजी और कस्तूरबाई के दांपत्य- जीवन के चित्रणमें शृंगार रस का परिपाक हुआ है। इसी सर्ग में गान्धीजी के पिता की मृत्यु का वर्णन है और यहाँ करुण रस की योजना की गयी है। गांधीजी ने भारत देश की मुक्ति के लिए निराहार व्रत, तपस्या, सत्याग्रह, अहिंसात्मक आंदोलन, आमरण अनशन, हड़ताल, असहयोग आंदोलन, उपवास आदि कार्य-क्रमों को कारगर बनाया और ऐसी परिस्थितियों में शांत रस का प्रतिपादन किया गया है। विलायत में भारतीय जनता के प्रति किये जाने वाले अत्याचार, बोअर युद्ध, कुली प्रथा, चंपारन का खेती नाश, जालियाँवाला बाग की घटना, लार्ड विलिंग्डन का भारत में शासन, द्वितीय महायुद्ध, कलकत्ता एवं बंगाल का अकाल आदि के वर्णन में करुण रस फूट पड़ा है।

इस काव्य के एक भिन्न सर्ग आद्यंत करुणा के क्रन्दन से भरे पड़े हैं। इसमें गांधीजी की मृत्यु से लेकर शव- दाह क्रिया तक की घटनाओं का वर्णन किया गया है जो आद्यंत शोकरस पूरित हुआ है। अतः करुण रस के लिए इस सर्ग में से कोई भी पंक्ति उदाहरणार्थ ले सकते हैं। गांधीजी की मृत्यु का दृश्य ही अत्यंत करुणा-जनक रहा -

'सहसा यम जल्लाद -- -- -- उस पल में।'[४]

- -

१: जन- नायक - पृ० ३० - ३१

२: वही० पृ० ३४ ३- वही० पृ० ४०

४: वही० पृ० ५७३

प्रकृति में भी उनकी मृत्यु ने एक प्रकार के शोक की म्लानता फैलायी। प्रकृति की सारी वस्तुएं तुरंत ही अपना काम छोड़कर आंसू बहाती रहीं -

धुन्धा छोड़ दिया -- -- रोना पाया। `[1]

अलंकार :`जन नायक` में अलंकारों का उतनी मात्रा में प्रयोग नहीं हो सका, जितनी साधारणतया. एक मामूली हिंदी महाकाव्य में हो सकता है और होता है। इसका कारण यह है कि कवि मिश्र जी ने अपने काव्य का विषय महात्मा गांधीजी के संपूर्ण जीवन को बनाया है जिससे वह अत्यंत गंभीर एवं भाव- प्रधान हो उठा है।

उत्प्रेक्षा कवि का प्रिय अलंकार रही है। उन्होंने इस काव्य के अंतर्गत कई बार उत्प्रेक्षाएं की हैं। अतः इसके बहुत उदाहरण हम पा सकते हैं। एक उदाहरण दृष्टव्य है -

` मानो देशभक्ति ने -- -- पहुंचा दीक्षा। `[2]

और एक उदाहरण भी देखिये -

राम नाम हो -- -- पार्श्व भरता है। `[3]

उत्प्रेक्षा की योजना में कवि की और एक विशेषता यह है कि होंने जहां उत्प्रेक्षाएं की हैं, वहां उन्हीं के भीतर और एक अलंकार - मानवीकरण भी प्रयोग भी किया है। ऊपरी पंक्तियों में प्रथम पंक्ति में मानवीकरण अलंकार स्पष्ट है जैसा कि यहां देशभक्ति का मानवीकरण किया गया है। संपूर्ण काव्य के अध्ययन से हम इस विशेषता का भेद खु खोल सकते हैं। उपमा अलंकार का प्रयोग भी उतना कम नहीं है जितना उत्प्रेक्षा का। काव्य के पृष्ठ - पृष्ठ पर उपमा का उदाहरण हम देख सकते हैं। गांधीजी के ने विवाह के पूर्व अपनी भावी वधू कस्तूरी बाई का काल्पनिक वर्णन करते समय जैसी कल्पनाएं की हैं। उनके चित्रण में कवि ने उपमा का प्रयोग खूब किया है। -

- -

१: जन नायक - पृ० ५७७

२: जन नायक - प्रथम सर्ग - पृ० ३५

३: जन-नायक - द्वितीय सर्ग - पृ० ५३

वह कलिका सी कन्या होगी, मैं मकरंद समीर बनूंगा
वह सुन्दर सी सरिता होगी, मैं तट की तस्वीर बनूंगा ।।`[१]

गांधीजी के कुसंगति में पड़ने का प्रतिपादन करते समय कवि ने गान्धीजी की उपमा फूल से की है । -

मोहन खिला फूल सा बालक, कैसे कांटों से बच जाता ।`[२]

यहां कांटा शब्द कुसंग का द्योतक बनकर प्रयुक्त हुआ है ।

गान्धीजी और बा के दांपत्य जीवन की प्रारंभिक दशा का वर्णन करते वक्त कवि ने प्रकृति के उपादानों के सहारे सुंदर से सुंदर रूपकों की योजनाकी है -

हृदय सुमन से पैर पुजकर, भावों से आरती उतारूं ।`[३]

यहां हृदय सुमन में रूपक अलंकार है । इस प्रकार के अनेक रूपकों का प्रयोग इस काव्य में खूब हुआ है जैसे पा- पंक, आशा - वृक्ष, प्रकृति - पटी, रक्त - अपूर्व, मन- आंगन, जय - दीप, नभ - दीप, शिशु - वाहन, युग - पंथ, चन्द्रमुखी, लंबन- नभ, प्राण- कमल, सुधा- सागर, कला- कानन, सागर - हार, रश्मि - बालिकाएं आदि । कवि ने मानवीकरण भी किया है । उदा -

` आंसू अमका -- -- कोना कोना ।`[४]

और एक उदाहरण भी द्रष्टव्य है -

` देश शांति से -- -- आंख फुकाई ।`[५]

इसमें तोपें, हिंसा, बन्दूक आदि का मानवीकरण किया गया है ।

` जालियांवाला बाग बाग ` गा उठा , -- में बाग का मानवीकरण स्पष्ट है । इस प्रकार मानवीकरण की प्रवृत्ति इसमें बहुत अधिक मिलती है । अनशन,

- -

१: जननायक - प्रथम सर्ग - पृ० ३६ २: वही० द्वितीय सर्ग - पृ० ब ४५
३: वही० - वही० - पृ० ५० ४: वही० दशम सर्ग - पृ० १७३
५: वही० - एकादश सर्ग - पृ० १६२

कांग्रेस, शैली, बिजली, स्वतंत्रता आदि का भी मानवीकरण कवि ने यत्र तत्र किया है।

छन्द विधान :

काव्य या कविता की रचना प्राय: छन्दों के बन्धन के भीतर ही होती है। अधिकांश कवि अपनी रचनाओं में को छन्दोबद्ध बनाने के विषय में विशेष श्रद्धा दिखाते हैं। आधुनिक युग के पूर्व और पश्चात् भी छन्दोबद्ध साहित्यिक रचनाओं का सृजन हो रहा था और हो रहा भी है। लेकिन अत्याधुनिक युग के कुछ कवि ऐसे रहे हैं अवश्य जिन्होंने अपनी रचना को छन्दों के बन्धन से मुक्त करके छन्द- हीन रचनाएं की हैं जिन्हें मुक्त-छंद की रचना कहा गया है। ऐसी रचनाओं में छन्द और उसके नियमों की कोई व्यवस्था नहीं रहती। लेकिन इस छंद - विहीनता को कोई दोष नहीं माना जाता। फिर भी काव्य अथवा कविता का छन्दोबद्ध होना एक हद तक श्लाघनीय माना जाता है। छन्दोबद्ध कविताएं स्वभावत: गेय होती हैं और इस विशेषता का कारण ही उनमें निहित छन्दोबद्धता ही है। अत: पाठक ऐसी रचनाओं को खूब पसंद करते हैं। इसलिए काव्य के कला - पक्षीय अध्ययन में छन्दों का प्रमुख स्थान है।

'जननायक' महाकाव्य के रचयिता मिश्रजी ने छन्दों के नियमों का पालन प्रस्तुत काव्य में अंशत: किया है। कवि ने अपनी रचना को छन्दोबद्ध करना सफल समझा है। इस काव्य में कवि ने प्रधानत: 'सवैया' छन्द का प्रयोग किया है और यही छन्द अन्य छन्दों की अपेक्षा बहुत अधिक प्रयुक्त हुआ है। 'सवैया' का एक उदाहरण द्रष्टव्य है -

' जब मनोज की केलि कला में, युग दोनों ने दूर हटाई।

-- -- -- --

ईश्वर ने सारी दुनिया को, युग युग का वरदान दे दिया। '[१]

कवि की छन्द- योजना में एक विशेषता यह दृष्टिगोचर होती है कि महाकवि यानी महाकाव्य के रचयिता होने पर भी उन्होंने कुछ सर्गों के अन्त में छन्द- परिवर्तन नहीं किया है। कुछ सर्गों के अंत में छन्द- परिवर्तन अवश्य किया भी गया है। यह भी नहीं उन्होंने सर्ग के बीच बीच में भी छन्द बदलने का प्रयास भी किया है।

१: जननायक - प्रथम सर्ग - पृ० १२

जैसे इस काव्य के अं द्वितीय सर्ग के अंत में कवि ने मिलिन्द पाद छंद का प्रयोग किया है।[१] चतुर्थ सर्ग में उन्होंने शिखरिणी छंद से उसका प्रारंभ किया है।[२] षष्ठ सर्ग के अंत में जो छन्द प्रयुक्त हुआ है वह सुन्दरी है।[३] दशम सर्ग में अन्तिम पंक्तियां `पंचचामरात्मक` मिलिन्दपाद छन्द में रची हुई हैं। -

` लिया लिये विराम दीप आरती उतारती।
गिरी पड़ी संवार पास घोंसला सुधारती। `[४]

त्रयोदश सर्ग केअंत में कवि ने आल्हा छंद को अपनाया है।[५] चतुर्विंश सर्ग के आरंभ में मत्तगयंद छन्द का एक उदाहरण मिलता है।[६] पंचविंश सर्ग में कवि ने मालिनी छंद का प्रयोग किया है -

` किसलय पर प्यारी वायु मां को सुलाती ।
जय जय ध्वनि सी ` मा ` मात सोते रुलाती ।। `[७]

इसी सर्ग में एक जगह ` उपेन्द्रवज्रा ` की योजना की है।

` सितार - सी ` मां ` कृषि देखती थी।
वसुन्धरा को कविता सुनाती। `[८]

षड्विंश सर्ग में कवि द्वारा प्रयुक्त ` शार्दूलविक्रीड़ित ` छन्द देखने को मिलता है।[९] अष्टविंश सर्ग के अन्त में ` मन्दाक्रान्ता ` छन्द प्रयुक्त हुआ है।[१०] ऊनविंश सर्ग के आरंभ में वसन्त तिलका ` छन्द को प्रयुक्त किया गया है।[११]

- -

१: जननायक - द्वितीय सर्ग - पृ० ५४ २: वही- चतुर्थ सर्ग - पृ० ६८
३: षष्ठ सर्ग - षष्ठ सर्ग - पृ० १०७ ४:
५: त्रयोदश सर्ग - पृ० २२६ ६: वही० त्रयोदश सर्ग - पृ० ३६०
७: वही- पंचविंश सर्ग - पृ० ४१६ ८: वही० - वही० पृ० ४१६
९: वही- षड्विंश सर्ग - पृ० ४७० १०- वही- अष्टविंश सर्ग-पृ० ५०३
११- ऊनविंश सर्ग - पृ० ५०४

जगदालोक :

'जगदालोक काव्य की रचना २० सर्गों में और लगभग ३४० पृष्ठों में हुई है । इसके सर्गों का कोई पृथक् पृथक् नामकरण नहीं हुआ है । सर्गों का विभाजन केवल संख्याओं के द्वारा ही व्यक्त किया गया है । और इस पर कवि का संस्कृत - प्रभाव स्पष्ट है । प्रत्येक सर्ग में वर्णित विषय को परिचित कराने वाला कोई शीर्षक भी उन्होंने नहीं दिया है । अत: सर्गगत विषयों को उसके अध्ययन के बाद ही जान सकते हैं। कवि ने संपूर्ण महाकाव्य के लिए एक ही शीर्षक ' जगदालोक ' रखा है जो गान्धीजी की ओर संकेत करता है, जिन्होंने भारत - देश को स्वतन्त्रता - दीपक से आलोकित किया था।

इसका प्रत्येक सर्ग कुछ न कुछ बड़ा है । कोई सर्ग उतना छोटा सा नहीं दिखाई पड़ता । इस काव्य के आरंभ में कवि ने हिमालय - पहाड़ के अवर्णनीय सौन्दर्य और ऐश्वर्य का चित्रण किया है और यही इसका मंगलाचरण भी है । इसमें कवि ने अपने कल्पना- कौशल के अनुसार शिवजी और पार्वती के संवाद को जोड़ा है ।

प्रथम सर्ग में कवि ने जहां पराधीन भारत की परिस्थितियों का वर्णन किया है वहां करुण रस का निर्वाह हुआ है । शहीदों का उल्लेख , चंपारन की घटना, देश - विभाजन, पंजाब हत्याकाण्ड, अष्टादश सर्ग में गांधीजी की हत्या, एकोनविंश सर्ग में प्रकृति द्वारा उनके प्रति श्रद्धांजलि, शवदाह आदि के वर्णन में करुण रस का अच्छा प्रतिपादन हुआ है । प्रकृति गांधीजी की मृत्यु पर आंसू यों बहाती है -

सब लता बेलो पादप हो
प्रात: समीर से कंपित
थे तुहिन अश्रु पत्रों से
बापू को करते अर्पित । '[१]

कवि ने गांधीजी के जीवन की संपूर्ण घटनाओं का उल्लेख इस काव्य में किया है और उन्हें बहुत संक्षिप्त रूप से प्रस्तुत किया है । अत: इसमें अन्य रसों का परिपाक अच्छी तरह न हो सका है ।

अलंकार : इस काव्य में कवि ने अलंकारों का प्रयोग कम मात्रा में ही किया है । उपमा, रूपक, मानवीकरण, उत्प्रेक्षा आदि अलंकारों की योजना की गयी है । कवि ने

१: जगदालोक - एकोनविंश सर्ग - पृ० ३१६

कैलास के वर्णन के प्रसंग में उपमा अलंकार का प्रयोग किया है -

' अंबर में मयंक मण्डल सा
-- -- --
है कैलास मनोहर । '[१]

और भी कवि ने सेवाग्राम की महिमा के वर्णन में भी उपमा का निर्वाह किया है -

' भारत नभ के केन्द्र स्थल में
-- -- -- --
करने लगा प्रकाशित । '[२]

रूपक अलंकार का प्रयोग कवि ने यत्रतत्र किया है । एक उदाहरण देखिए -

' भावुक गांधीजी के मन में
-- -- --
भावों की उठ गयी हिलोर । '[३]

यहां उर - सागर में कवि ने रूपक बांधा है । और भी

' बाकी वचन-सुधा से सिंचित
रहता था वह शीतल,
जीवन-ताप हरण करती थी
स्नेह- कौमुदी कोमल । '[४]

यहां वचन - सुधा , जीवन- ताप और स्नेह - कौमुदी आदि में रूपक अलंकार है । इस प्रकार कवि ने अनेक रूपों की योजना की है । जैसे हृदय - सरोरुह, स्वातन्त्र्य वेली, जन- कानन, जन- पादप, मुख- चन्द्र, आनन- पद्म, पदपाद- सरोज, राष्ट्र- कानन, गांधी - दिनकर, देश - नभ आदि ।

- -

१: जगदालोक - प्रथम सर्ग - पृ० ३ २: वही० - द्वादश सर्ग- पृ०
३: जगदालोक - द्वितीय सर्ग - पृ० ३१ ४: वही०

कवि ने मानवीकरण का विधान भी किया है। एक उदाहरण देखिए -

' रत्न - कोश कर प्राप्त अकिंचन

-- -- --

भारत - हृदय हुआ स्पन्दित। '[1]

और भी -

' सत्य - सूर्योदय से अविलंब

हृदय - सरसिज का ि हुआ विकास '[2]

आगे भी उन्होंने हृदय को तालाब, सद्भाव को सरसिज, हृदय को वीणा, देश को आकाश, आशा को लतिका, प्रकृति की वधू को रूप में चित्रित करते हुए उनका मानवीकरण किया है।

उत्प्रेक्षा अलंकार का विधान भी इस काव्य में दृष्टव्य है। कवि ने रामराज्य की प्रशंसा करते वक्त एक सुंदर उत्प्रेक्षा की है। जनता को अथक परिश्रम करते देखकर हमें ऐसा भासित होता है कि जनता का आपसी प्रेम ही कर्तव्य का पालन करता है-

करते थे सब अनायास ही

कर्तव्यों का पालन

मानो प्रेम स्वयं करता था

जीवन कासंचालन। '[3]

साबरमती नदी के कल- कल नाद को सुनकर उससे कवि ने यह अनुमान किया है कि वह बापू की कथा सुनाती बहती है। यहाँ उत्प्रेक्षा का विधान किया गया है।

नीचे सरिता कल कल ध्वनि से

अविश्रान्त थी बहती

मानो बापू के क्षण क्षण की

विमल कथा थी कहती। '[4]

- -

१: जगदालोक - सप्तम सर्ग - पृ० १२७ २: वही० अष्टम सर्ग- पृ० १३१

३: वही०'- प्रथम सर्ग - पृ० १०३ ४: वही०-चतुर्थ सर्ग-पृ० ७४

गान्धीजी के भाषण से जब सारी जनता प्रभावित हुई तब कवि को ऐसा लगा कि जनता की अंतरात्मा ने भी उन्हें उपदेश दिया है -

> मानो स्वयं अंतरात्मा ने
> दिया हृदय को यह उपदेश । `[1]

ऐसी और भी उत्प्रेक्षाएं कवि ने यत्रतत्र की हैं ।[2]

छन्द :

`जगदालोक ` ठाकुर गोपालशरण सिंह का महाकाव्य है जिसमें गांधीजी का जीवन संपूर्णत: चित्रित हुआ है । कवि ने इसमें छन्द का प्रयोग अवश्य किया है मगर कुछ जगहों पर वे छन्द नहीं दीख पड़ते । फिर भी कवि ने विभिन्न छन्दों का प्रयोग करने का प्रयास किया है । महाकाव्य होने पर भी इसमें सर्गांत - छन्द -परिवर्तन नहीं किया गया है । अंत तक एक ही छन्द प्रयुक्त हुआ है । मगर इस काव्य के पंचदश सर्ग के अंत में कवि ने छन्द परिवर्तन का प्रयास किया; फिर भी वे किसी भी छन्द के लक्षणों से युक्त नहीं हैं । इनमें से किसी पद को वर्णिक छन्द की दृष्टि से देखने पर उसमें अक्षरों की ठीक संख्या होती है, लेकिन गण ठीक नहीं बैठता । वैसे ही किसी पद को मात्रिक छंद की दृष्टि से देखने पर प्रत्येक पद में मात्राओं की संख्या में उतार - चढ़ाव अवश्य रहता है । किसी में ठीक मात्राएं मिलने पर भी इसमें यति,गुरु-लघु, लघु- गुरु (अंत में) आदि की अव्यवस्था है । अत: इसमें बहुत कम छन्द ही ऐसे मिल सकते हैं जो वर्णिक या मात्रिक दृष्टि से ठीक ठीक जंचते हैं । कवि ने इसमें हरिगीतिका , सरसि, आल्हा,कवित्त, सार, गीतिका, रोला,विधाता आदि छन्दों का प्रयोग किया भी है । हरिगीतिका का एक उदाहरण द्रष्टव्य है । -

> ईश्वर के अतिरिक्त किसी से
> नहीं किसी को भय था
> स्वाभिमान के साथ कि सभी में
> आदर - भाव विनय था । `[3]

१: जगदालोक - पंचम सर्ग - पृ० ८१ २: वही० - देखिये- पृ० २११,२१
३: जगदालोक - चतुर्थ सर्ग - पृ० ६६

और भी -

` मिला पलासी रण में उनको
-- -- --
किया ब्रिटिश समुदय था का । `[1]

कवित्त का एक उदाहरण यहाँ प्रस्तुत है -

आशा पर ही जो जीते हैं
उन्हें न कभी निराश करो ।
मुरझाये कोमल कुसुमों का
फिर से शीघ्र विकास करो । `[2]

गीतिका के लिए भी इसमें उदाहरण मिलता है -

` विविध धर्मों का मिलन्दण केन्द्र भारतवर्ष था,
-- -- -- --
विश्व का बन्धुत्व उसका प्रेममय आदर्श था । `[3]

इसके अलावा इस काव्य में सरसी [4], आल्हा [5], सार [6], रोला [7], विधाता [8], ताटंक [9], रूपमाला [10] आदि छन्दों का प्रयोग भी किया गया है ।

पथिक :

`पथिक` खण्डकाव्य की रचना पांच सर्गों में हुई है । सर्गों का पृथक् पृथक् नामकरण नहीं हुआ है । प्रत्येक सर्ग में वर्णित विषय का परिचय कराने के लिए कोई विशेष नाम नहीं दिया है । खण्डकाव्य होने के कारण इसमें कम सर्ग ही हैं । इस काव्य का शीर्षक ` पथिक ` रखा गया है और उसी के सहारे कवि ने गांधीजी की ओर संकेत किया है । काव्य के अध्ययन के बाद हम इसी निष्कर्ष पर पहुंच सकते हैं कि कवि ने जिस`पथिक `का उल्लेख यहां किया है, वह गान्धीजी ही हैं ।

१: आर्यालोक - प्रथम सर्ग - पृ० २१ २: वही - सप्तदश सर्ग -पृ०२१६
३: वही० - चौदश सर्ग - पृ० २७ ४: वही० - प्रथम सर्ग- पृ० २०
५: वही० - द्वितीय सर्ग - पृ० २६ ६: वही० -चतुर्थ सर्ग - पृ० ६६
७: वही० -अष्टादश सर्ग- पृ० ३०६ ८: वही० -तृतीय सर्ग - पृ० ४५
९: वही - सप्तदश सर्ग - पृ० २६८ १०- वही०-पृ० ३०५

इसके सर्ग बहुत छोटे नहीं हैं, न बड़े ही। पथिक का परिचय देते हुए कवि ने काव्य का आरंभ किया है। उन्होंने मंगलाचरण की विधा का पालन नहीं किया है। पथिक और एक रमणी नारी के बीच में वार्तालाप में शृंगार रस का प्रतिपादन किया ह गया है। इसके चौथे सर्ग में राजा के द्वारा पथिक का वध करने की आज्ञा देने और पथिक - प्रिया के विष पीकर अपने प्राण छोड़ देने आदि के वर्णन में कवि ने करुण रस का निर्वाह किया है।

अलंकार :

पथिक ` में अलंकारों का प्रयोग यत्रतत्र हुआ है। कवि ने उपमा, रूपक, मानवीकरण आदि अलंकारों की योजना की है। उपमा अलंकार का एक उदाहरण यहाँ प्रस्तुत है -

> उसी समय कमनीय एक स्वर्गीय किरण - सी नामा ।
> -- -- -- --
> आकर चकित हुई तट पर प्रियतम दर्शन की प्यासी । `[1]

आगे कवि ने संध्या सी छाया, तरणी सी तट, धन सी जलधारा, नागिनी - सी अंधकार, हीरा सा जीवन आदि अनेक उपमाएं प्रयुक्त की हैं।

उपमा की भांति उन्होंने इस काव्य में रूपक अलंकार का भी प्रयोग किया है। जैसे उच्छ्वास - तरंग, आत्म - पुलक, हृदय - मंदिर, नेत्र - कमल, मुक्ति-दिनकर आदि में रूपक स्पष्ट है। उपमा और रूपक के अतिरिक्त कवि ने उत्प्रेक्षाएं कीं जिन्हें देखकर हम अत्यधिक भाव- विभोर हो जाते हैं। जैसे -

> `निकल रहा है जलनिधि तल पर दिनकर-बिंब अधूरा
> कमला के कंचन मंदिर का मानो कांत कंगूरा । `[2]

इस काव्य में उत्प्रेक्षाओं का खूब प्रयोग किया गया है और इसके अनेक उदाहरण भी प्राप्त होते हैं।[3]

१: पथिक - पहला सर्ग - पृ० २ २: पथिक - पहला सर्ग - पृ० २०
३: पथिक - देखिए - पृ० ४३,४८, ५७, ६७, ६९

पथिक में कवि ने आर्यन्त सार ` छंद का प्रयोग किया है। काव्य के सर्वांत में छंद - परिवर्तन नहीं किया गया है। खण्ड काव्य न होने के कारण इसमें छंद - परिवर्तन की आवश्यकता भी नहीं रहती। सार छंद का एक उदाहरण देखिए -

फिर प्रियतम का हाथ पकड़ कर बोली सुंदर बाला।

-- -- -- --

शोभा का लघु मंगल कहकर सुख पाया करते थे। `[1]

बीच बीच में उन्होंने ` विधाता ` भी प्रयुक्त किया है। -

बालक बार बार सुनकर भी तृप्ति नहीं पाते थे।

-- -- -- --

युद्ध कथा कहते आंखों आंसू भर लाते थे। `[2]

`गांधी गौरव ` खण्ड काव्य में भी कलापक्ष का प्रतिपादन कम है। यह काव्य बारह सर्गों में प्रणीत है। इसमें भी सर्गों का पृथक - पृथक नामकरण नहीं हुआ है। प्रत्येक सर्ग की वर्णित कथावस्तु का परिचय काव्य के अध्ययन से ही हो जाता है। इस काव्य का शीर्षक है ` गांधी गौरव `। यहां गौरव शब्द का अर्थ है महिमा या माहात्म्य। कवि ने गांधीजी के जीवन के राजनीतिक पक्ष को प्रमुखता देते हुए भी इस काव्य की रचना की है। अतएव उन्होंने इसका शीर्षक यों रखा है। भारत की स्वतंत्रता- प्राप्ति में गांधीजी की महिमा अवश्य निहित है। सच में यह काव्य उनकी महिमा को दिखाने वाला मुकुर है।

इस काव्य के सर्ग कुछ कुछ छोटे हैं। कुछ सर्ग ऐसे हैं जो दो या तीन पृष्ठों तक ही सीमित हैं। इसके पहले, तीसरे , और पांचवे सर्ग इसके उदाहरण हैं। काव्यारंभ कवि ने भगवान श्रीकृष्ण की प्रार्थना से किया है। उसके बाद उन्होंने पाठकों को सदुपदेश दिया है और अंत में गांधीजी की ओर संकेत भी किया है।

रस :

तीसरे सर्ग के अंत में गांधीजी माता की मृत्यु की खबर पाकर दु:खी होते हैं और यहां करुणा रस का किंचित प्रकाश पड़ा है। चौथे स र्ग में जब गांधीजी

- -

पथिक - पहला सर्ग - पृ० २१   २: वही- पांचवा सर्ग - पृ० ७२

विदेश में रहते थे वहां के जाति- भेद, कष्ट, मुसीबतें आदि देख- सुनकर उनका मन व्याकुल हुआ ; उसी का वर्णन जो कवि ने किया है उसमें करुण रस है । पांचवें सर्ग में भी बोअर युद्ध तथा तज्जन्य नाश के वर्णन में करुणा का प्रवाह है । आगे के सर्गों में भी करुण रस का प्रतिपादन ही हुआ है जिसके अंतर्गत चौरी-चौरा की घटना, रौलट बिल, अमृतसर की गोली वर्षा, जालियांवाला बाग का हत्याकाण्ड आदि दु:खजन्य घटनाएं ही वर्णित हैं ।

अलंकार

इस काव्य में उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा आदि विविध अलंकारों का विधान हुआ है । बुद्बुदों सा लय, स्वर्ण - स्थली सी शुभ्र - भू, कंज - सी कन्याएं, त्रिवेणी - सी मिली यों आदि सुन्दर उपमाएं की गयी हैं ।

रूपक अलंकार का विधान भी यत्रतत्र हुआ है -

कर कल्पना वह मुग्ध सुर - मयूर करते नृत्य हैं । `[1]

यहां सुर- मयूर में रूपक है । वैसे ही ` नव भक्ति की उठती घटाएं उर - गगन में घुमड़ रहीं ।[2] ' यहां उर - गगन में रूपक है । इस काव्य में रूपक का उदाहरण बहुत कम ही मिलता है ।

उत्प्रेक्षाओं का प्रयोग भी इस काव्य में अवश्य हुआ है । उदाहरण के लिए निम्न-लिखित पंक्तियां द्रष्टव्य हैं -

१- था भवन सारा मांस की ही गन्ध से मानो भरा,
२- था जनवरी छब्बीस को सन् तीस में जो प्रण लिया,
स्वातन्त्र्य दिन उत्सव मना मानो नया ही रण लिया ।
३- जनतंत्र - रक्षार्थ ही थी यह लड़ाई हो रही,
इस हेतु ही सर्वत्र थी मानो लड़ाई हो रही । [3]

`गांधी गौरव ` में भी कवि ने एक ही छंद का प्रयोग किया है । और वह है `हरिगीतिका' । संपूर्ण काव्य में यही छंद प्रयुक्त हुआ है । - देखिये -

---

१: गान्धी गौरव - आठवां सर्ग - पृ० ५५ २: वही- नवां सर्ग- पृ० ६२
३: गान्धीगौरव - देखिए पृ० १८,८५,६६

स्वाधीनता की घोषणाएं गूंजती थीं कान में ,
फूले समाते थे न हम उन कागजों की शान में । "[१]

खण्डकाव्य होने के कारण छन्द का परिवर्तन करना अनिवार्य नहीं ।

दिनकर जी का ' बापू ' काव्य एक शोकगीति है । इस काव्य को मुख्यत: तीन खण्डों में रखा है और प्रत्येक खण्ड का प्रतिपादन प्रत्येक शीर्षक से किया है और वे हैं - बापू, वज्रपात, अघटन घटना, क्या समाधान ?

काव्य का शीर्षक कवि ने ' बापू ' रखा है । प्रथम खण्ड में कवि ने गांधीजी की महिमा गायी है, द्वितीय खण्ड में गांधीजी की दारुण हत्या का शोकपूर्ण वर्णन किया गया है । तृतीय खंड में इस अघटन घटना के समाधान का प्रश्न किया है । इस प्रकार कवि ने गांधीजी के जीवन, मृत्यु और उसके अनंतर फल आदि पर प्रकाश डाला है ।

इस कार्य का द्वितीय खण्ड करुणा रस से परिपूर्ण है । क्योंकि इस खण्ड में गांधीजी की हत्या का चित्रण किया गया है । अन्य किसी भी रस का प्रतिपादन इस काव्य में हुआ नहीं है ।

अलंकार :

इस छोटे काव्य में विरोधाभास, मानवीकरण, उपमा, उत्प्रेक्षा आदि अलंकारों का प्रयोग कवि ने किया है । जब समस्त संसार गांधीजी को फूल, फल, तिलक आदि से पूजता है । कवि दिनकर ने उनकी पूजा अंगारों से की है । यहां विरोधाभास की झलक मिलती है । -

संसार पूजता जिन्हें तिलक
रोली, फूलों के हारों से
मैं उन्हें पूजता आया हूं
बापू अब तक अंगारों से । "[२]

१: गांधी-गौरव - नवा सर्ग - पृ० ७०
२: बापू - दिनकर - पृ० १

विद्वेष- गरल, अमृत- प्रवाह, करुणा- सागर आदि में विद्वेष, अमृत, करुणा आदि का मानवीकरण किया गया है ।[1] उपमा अलंकार का सुंदर प्रयोग यहां किया गया है -

> मानवता का इतिहास, मनुज
> को मेधा से घबराता सा
> -- -- --
> पर विस्मय- चिह्न बनाता सा । '[2]

छाया- द्रुम - सी, केशव- सा, सहमी - सहमी सी, आदि में भी उपमा की गयी है ।

कवि ने इस काव्य में कुछ उत्प्रेक्षाएं भी की हैं । गांधीजी की हत्या की घटना के वर्णन के सिलसिले में कवि ने सुंदर उत्प्रेक्षा की है -

> 'रुक गयी सृष्टि के उर के स्क धड़कन
> मानो तीनों गोलियां गयी हों
> समा उसी की छाती में । '[3]

और भी: -

१- मानो भू पर खुला हो कुम्भीपाक नरक ।
२- यों बढ़ा कि मानो, कृपा की रचना विशाल
३- उस शोक सिंधु में भी हो जाएगी विलीन । [4]

छन्द :

इस शोक- गीति में कवि ने ' सवैया ' छन्द को ही मुख्य रूप से प्रयुक्त किया है । स्क उदाहरण देखिये -

> तू सहज शांति का दूत, मनुज -
> के सहज प्रेम का अधिकारी ,'[5]

१: बापू - दिनकर - पृ० ८ २: वही० पृ० १२
३: बापू - पृ० ४७ ४: बापू - पृ० ४७,४८
५: वही० पृ० ४

इसके अतिरिक्त कवि ने त्रिभंगी,[1] दोहा[2], आदि छन्दों का भी प्रयोग किया है।

'अंजलि और अर्घ्य' मैथिलीशरण गुप्त जी की शोकगीति है जो गांधीजी पर श्रद्धापूर्वक चढ़ाया गया है। कवि ने इस काव्य का शीर्षक 'अंजलि और अर्घ्य शीर्षक जो रखा है वह सुंदर तथा उचित ही है। कवि ने पुष्प भरी अंजलि तथा अश्रुओं का अर्घ्य लेकर गांधीजी की पूजा करने का प्रयास किया है। उन्होंने इसमें कथावस्तु का सर्गात्मक विभाजन नहीं किया है।

इसमें कवि के गांधीजी की हत्या पर अपना शोक प्रकट करने का उद्देश्य प्रधान होने के कारण आद्यंत करुणा रस का प्रवाह है। अत: यह करुणा रस प्रधान काव्य ही है। इसकी प्रत्येक पंक्ति करुणा की आहों से भरी है। कवि ने इस काव्य का आरंभ तक शोक भाव से किया है।

अलंकार :

इस में अलंकार की दृष्टि से देखने पर उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा आदि अलंकारों का प्रतिपादन है। उपमा का एक उदाहरण यहां प्रस्तुत है -

'भीर भगीरथ सा लाया तू
स्वतंत्रता की शुभ धारा।'[3]

वैसा ही एक सा अपनासा, प्रतिबिम्ब- सा, मोहन सा, मंत्र- सा, उषिमाला-सा आदि में उपमा का प्रयोग हुआ है।

रूपक का एक उदाहरण यहां देखिये - गांधीजी के जन्म के बारे में कहते वक्त कवि ने सुंदर रूपक बांधा है -

उदित हमारे भाग्य गगन में
तू नवीन नक्षत्र हुआ,'[4]

- -

१: बापू - पृ० २१ - 'बापू आगे आ रहे -- -- आती है।'
२: बापू - पृ० ४६ - 'कूटस्थ पुरुष ने --- -- आनंद लीन।'
३: अंजलि और अर्घ्य - पृ० १४ ४: वही० पृ० २०

उत्प्रेक्षा के उदाहरण भी इस काव्य मे अवश्य मिलते हैं -

१- तेरी आहट पर ही मानो
मगे उठकर उलटकर अपना टाट ।
२- सुन तेरा मृदु कठिन मंत्र उठ
जानता मानो पार गयी । [१]

छंद :

कवि ने इस काव्य में एक ही ` आल्हा ` छंद का प्रयोग किया है और वह इस प्रकार प्रयुक्त हुआ है कि एक ही पृष्ठ पर उसकी योजना बदल बदल कर किया गया है । अर्थात् पहले आल्हा छंद है तो दूसरा अन्य कोई छंद है और तीसरा पुन: आल्हा प्रयुक्त है । यही क्रम आगे भी चलता रहा है । आल्हा छंद निम्नलिखित पद में प्रयुक्त किया गया है -

अरे राम ! कैसे हम झेलें
अपनी लज्जा उसका शोक ?
गया हमारे ही पापों से
अपना राष्ट्र पिता परलोक । `[२]

इसके अतिरिक्त ताटंक छन्द का प्रयोग भी बीच बीच में हुआ है -

तेरी अटल अहिंसा ने पर -
शासन का आखेट किया । `[३]

`अश्रुकण ` वियोगी हरि कृत एक छोटा सा गद्यकाव्य है । इसमें क कवि ने गांधीजी की मृत्युपर अपने अश्रुकण टपकाये हैं । उन्होंने इसमें उनके जीवन और राष्ट्रीय सुधारवादी वैशिष्ट्यपूर्ण प्रवृत्तियों का चित्रण करते हुए उनकी अप्रत्याशित हत्या का चित्रण करके उनके प्रति श्रद्धा भरे अश्रुकण बिखराये हैं । अत: कवि ने उसका शीर्षक `अश्रुकण ` रखा है जो प्रसंगानुकूल निकला है ।

१: अंजलि और अर्घ्य - पृ० २१ २- वही० पृ० ७
३: वही० पृ० १५

एक गद्यकाव्य होने के कारण इसमें काव्योचित कलापक्षीय प्रतिपादन का अवसर नहीं रहा। यह गद्यात्मक शैली में काव्य- रूप में लिखी हुई रचना है। देवदास गांधी ने सद्भा- वना को हरि जी की गांधीय तथा गान्धीवादी सूक्तियों का संग्रह माना है।[1] गद्यात्मक रूप में रचित कृति होने के कारण इसमें सर्गों का विवेचन नहीं किया गया है। प्रत्येक सूक्ति को प्रत्येक परिच्छेद के अंतर्गत रखा है और इस प्रकार इस काव्य में ६७ परिच्छेद होते हैं। अर्थात् यह ६७ सूक्तियों की संग्रह - माला है। फिर भी काव्य रूप में लिखे जाने के कारण इसमें उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा आदि अलंकारों का थोड़ा सा प्रयोग हुआ है। ये सूक्तियां आद्यंत करुणा- रस प्रधान हैं।

अलंकार :

धुंधला सा, असंभव सी, फूल - सी, आदि में उपमा का उल्लेख किया गया है। रूपक का एक सुंदर उदाहरण देखिये -

यही उस महात्मा के नाम का जय और जयकार होगा,
और यही होगा उसके पद्म- पवन पद्मों का अभिनंदन। [2]

मंगल-ध्वज, मानस- पट, जीवन- घट, हृदय - पात्र, आदि में भी रूपक बांधा गया है।

उत्प्रेक्षा के लिए एक उदाहरण प्रस्तुत है - गांधीजी के सत्य - शोध के बारे में कहते वक्त यह उत्प्रेक्षा की है -

प्रयोगों की मानो माला ही गूंथ डाली। [3]

गद्यकाव्य होने के कारण इसमें छंद का विधान भी देखने को नहीं मिलता। इसी की सूक्तियों को गद्यक्रम में प्रस्तुत करने का प्रयास ही कवि ने किया है।

सियारामशरण गुप्त जी का ' बापू ' एक व्यक्ति काव्य है जो उनकी अन्य काव्य- कृतियों से भी बढ़कर अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। हिंदी के कई विद्वानों ने इस

- -

१: देखिए - दो शब्द - सद्भावना - पृ० ४

२: सद्भावना - पृ० ६३ ३: वही० पृ० ६०

काव्य की प्रशंसा की है । कवि ने इस काव्य का शीर्षक बापू रखा है जिसमें गांधीजी के व्यक्तित्व और कृतित्व का आकलन ही मुख्यत: किया गया है । उनका एकमात्र उद्देश्य यही आकलन कार्य होने के कारण उन्होंने इसके कलापक्ष की ओर अधिक ध्यान नहीं दिया है। यह निस्संदेह कहा जा सकता है कि यह काव्य आद्यंत अत्यंत भाव- प्रधान है । अत: उसका कलापक्ष बहुत कम है ।

इस काव्य की विचार - वस्तु को सर्गों के अंतर्गत वर्णित नहीं किया गया है । इस का प्रतिपादन परिच्छेदों के अंतर्गत हुआ है और इसमें २१ परिच्छेद हैं । भावाभिव्यक्ति की तीव्र अभिलाषा में सर्ग - विभाजन शायद उतना आवश्यक नहीं जान पड़ा होगा । इस काव्य मे शांत रस और करुणा दोनोंकी एक साथ निष्पत्ति हुई है ।

अलंकार :

कलापक्ष की ओर अधिक ध्यान न देने के कारण इस काव्य में अलंकारों का प्रयोग बहुत कम ही हुआ है । फिर भी उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, आदि अलंकार यत्रतत्र प्रयुक्त हुए हैं । आत्म- मणिका - सा , अवलंब - सा, उद्बोधित-सा, घोर - से, सन्नारे - से, मृत्तिका- समान, तपोवन- सा, स्वजन- सा, प्रकाश - सा आदि में उपमा स्पष्ट है । वैसा ही पुण्य- सूर्य, काल- निशा, मुख- पद्म , दुग्ध - सर, रक्त- नद, जीवनद- माला, आदि में रूपक दृष्टव्य है ।

जनता के पाशविक तथा हिंसात्मक कृत्यों के बारे में कहते वक्त कवि ने उत्प्रेक्षा की है -

` जन्तुओं में मानो एक जन्तु अन्य,
निर्मम अदम्य वन्य ; ` [१]

और भी

` मानो यही दूर तक फैले किसी वन में ।
आग उठा था दारुण दावानल था ।। `[२]

छंद की दृष्टि से देखें तो ` बापू ` मुक्त छंद की कृति है । छायावादी

१: बापू - पृ० ५८ २: वही० पृ० ५८

इस काव्य का शीर्षक बहुत सुंदर निकला है। कवियों ने इसका शीर्षक " खादी के फूल " रखा है। उन्होंने गांधीवादी सिद्धान्तों को व खादी की शुभ्रता के रंगों में रंगाकर फूलों के रूप में गान्धीजी के श्रीचरणों में अर्पित किया है। इन्होंने खादी को सावनों में देश की जातीय एवं सांस्कृतिक एकता की आशा बांधी है और इसी उद्देश्य से इस छोटी पुस्तिका का प्रकाशन करके जनता के बीच में बांट दिया है। गांधीवाद के विभिन्न सिद्धान्तों का व्यवहृत रूप इसमें स्पष्टत: उदित हुआ है। ये फूल अन्य सुगंधित फूलों की तरह सुरभित नहीं होते, फिर भी उनमें ताजा गंध अवश्य रहता है। खादी क ही स्वभावत: अपने गुण, मूल्य, एवं सच्चाई में अत्यंत महत्वपूर्ण है, तब खादी के फूलों के बारे में कहने की क्या बात है।

गांधीवादी मुक्तकों का कलापक्ष:

मुक्तकों की रचना में कवियों ने प्राय? भावपक्ष की अपेक्षा कलापक्ष को अधिक प्रधानता दी है। अत: वे वर्णनप्रधान अधिक और भाव- प्रधान कम ही होते हैं। इनमें कवियों को प्रकृति तथा व तत्संबंधी विविध उपादानों के चित्रण एवं वर्णन का काफी अवसर मिलता भी है। इसलिए भावों को अत्यंत संकुचित सूक्ष्म रूप में ही प्रस्तुत किया जाता है। लेकिन गांधीवादी मुक्तकों की बात ऐसी नहीं। इनमें वर्ण्य-विषय तथा तज्जन्य हृदय- भावनाओं को प्रमुखता दी जाती है। यों ही इनमें कलापक्ष का बहुत कम प्रतिपादन ही होता है। क्योंकि ऐसे कवियों का उद्देश्य गांधीवादी विचारों एवं तत्वों की स्पष्ट अभिव्यक्ति ही होती है; वस्तुओं का बढ़ा चढ़ा वर्णन नहीं।

कलापक्ष की विशेषताएं:

मुक्तकों की कलापक्षीय विशेषताओं को जानने के लिए उसके विभिन्न अंगों तथा पहलुओं का विवेचन आवश्यक है। इसके कलापक्ष की कई विशेषताएं पायी जाती हैं जो गान्धीवादी विचारधारा से प्रभावित मुक्तकों के पूर्व रचित मुक्तकों के कलापक्ष से बिलकुल भिन्न एवं नवीन दिखाई पड़ती हैं। अत: गांधीवादी काव्यों के अध्ययन के सिलसिले में इसका महत्वपूर्ण स्थान है।

- -

युग के समाप्त होने के बाद प्राय: अधिकांश कवियों ने मुक्त- छंद की रचनाओं के सृजन में ही अतीव तत्परता प्रकट की है। यहां सियारामशरण गुप्त जी भी ऐसे कवि थे।

'खादी के फूल' पंत जी और बच्चन जी की कविताओं का संग्रह है जिसे गांधीजी के प्रति श्रद्धांजलि के रूप में प्रस्तुत किया गया है। यह तो एक मुक्त काव्य है जिसमें कविताओं को कवियों ने १०८ परिच्छेदों में संग्रहीत किया है। इस काव्य में आद्यंत करुण रस का प्रतिपादन ही हुआ है। दोनों कवियों ने अपनी - अपनी ओर से अपना अपना शोक प्रस्तुत किया है।

इसमें अलंकारों का विधान भी है जैसे उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा आदि अलंकारों की योजना की गयी है। अलादल- सी, रजत- शावक-सा, चांदनी - सा, ध्यानमग्न - सा, आशीर्वाद - सा, बादल - सी, ज्वाला- सी, रत्न- छाया- सा, सपने- सा, छलनी - सी, पर्वत- सी, तृण- से, गान्धी- सी, गंगा- सा, अपराधी-सी, कमल- सा, लाल- सी आदि में उपमाएं की गयी हैं। धरा- मन, मानव- जलद, हिंदुत्व सिंधु, अन्तर- सागर, मानवामृत, जीवन- सुधा, मुख - मण्डल, मानवता- मंदिर आदि में सुन्दर रूपक बांधा है। इस काव्य में एक ही जगह पर उत्प्रेक्षा का विधान हुआ है। -

जल उठा एक लौ में बंद होकर
आ गयी ज्यों भोर।'[1]

छन्द की दृष्टि से यह काव्य छन्दोबद्ध नहीं कहा जा सकता। इसी की अधिकांश कविताएं मुक्त - छंद की ही हैं। फिर भी बीच बीच में छन्दों का विधान हुआ भी है। रोला, सवैया, आदि छन्दों का प्रयोग किया गया है।

'रोला': देख रहा हूं शुभ्र चांदनी का सा निर्झर
गान्धी युग अवतरित हो रहा इस धरती पर।[2]

सवैया :
लो करता रक्त प्रकाश आंच नीले बादल के अंचल से,
रंग रंग के उड़ते बाष्प मानस के रश्मि ज्वलित जल से।'[3]

- -

१: खादी के फूल - पृ० ३३ २: वही० पृ० १६
३: वही० पृ० २६

१- शीर्षक :

गान्धीवादी कवियों ने अपनी गान्धीवादी रचनाओं के शीर्षकों का निर्णय यों किया है कि जिससे प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से प्रतिपादित विषयों का ज्ञान प्राप्त होता है। कुछ शीर्षक ऐसे दिये गये हैं जो गांधीजी से संबंध रखने वाले सिद्धान्त, कर्मक्षेत्र, वस्तु, घटना आदि का चीतन करते हैं। इस प्रकार हम देख सकते हैं कि स्थल - काल - घटना - वस्तु - विचार - प्रवृत्यात्मक शीर्षकों का विधान ही कवियों ने किया है।

पण्डित माखनलाल चतुर्वेदीजी बड़ गान्धीवादी कवि थे और उन्होंने अपनी गान्धीवादी कविताओं के शीर्षकों का विधान स्थल- कालादि की गणना से किया है। नि:शस्त्र सेनानी, युग और तुम, युगधनी, हृदय, युग पुरुष, बलिपंथी से, वीरपूजा, जीवित जोश, नव भारत आदि शीर्षकों के द्वारा कवि ने गान्धीजी को ही चित्रित किया है। ` जालियांवाला बाग की वेदी ` ता उस स्थल की घटना को सूचित है। वैसा ही ` कुलवधू का चरखा ` तो चरखे के महत्व की घोषणा करती है जो गांधीयुग में प्रत्येक कुलवधू का जीवन- साथी था।

सोहनलाल द्विवेदी जी ने `गांधी`, ` युग अवतार गांधी`, ` बापू ` आदि शीर्षकों में कुछ कविताएं लिखी हैं जो प्रत्यक्ष गांधीजी को सूचित करती हैं। इसके अतिरिक्त रेखाचित्र, सेगांव का संत, अर्द्धनग्न, नीराजना, अभिनन्दन, राष्ट्र देवता, वज्रपात, महानिर्वाण आदि में गांधीजी को परोक्ष रूप से प्रस्तुत किया ह गया है। सेवाग्राम, बेतवा का सत्याग्रह, डांडी यात्रा, त्रिपुरी कांग्रेस, ऐतिहासिक उपवास, अहिंसा - अवतरण, गांधी मंदिर, भंगी बस्ती, आदि में कांग्रेस गांधीजी से संबंधित कर्मक्षेत्र, घटना, प्रवृत्ति, स्थल, दर्शन आदि का उल्लेख किया गया है। सियारामशरण गुप्त जी ने `पुनरागमन ` कविता में गांधीजी का उल्लेख परोक्षत: किया है। गुप्तजी ने अपनी कविताओं के शीर्षक जो रखे हैं, वे न गांधीजी से संबंध रखते हैं और न गांधीवादी तत्वों से। उन्होंने कुछ मामूली शीर्षक ही रखे हैं। फलत: इस प्रत्येक कविता के अध्ययन से ही उसमें वर्णित विषय का परिचय मिल सकता है। शीर्षक ऐसे होने चाहिए, पर भी उनकी कविताएं पूर्णत: गांधीवाद से प्रभावित हैं।

गांधी, बापू, गांधीजी, बापू के प्रति, इत्यादि शीर्षकों में अन्य कवियों ने भी कविताएं लिखी हैं। जैसे दिनकर, नरेन्द्र शर्मा, ` अंचल `, भगवतीचरण

शर्मा, पंत जी आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। महामानव की खोज, महाज्योति, अंतिम दर्शन, अंतिम प्रणाम, दिव्यमूर्ति आदि शीर्षकों में गांधीजी की ओर परोक्ष रूप से संकेत किया गया है।

हरिकृष्ण 'प्रेमी' ने 'वन्दना के बोल' में छोटे छोटे शीर्षकों के अंतर्गत छोटी छोटी कविताओं का सृजन किया है। यह शीर्षक बहुत ही सुंदर है जिसका अर्थ यह होता है कि कवि ने अपनी वाणी या बोल से गांधीजी की वन्दना की है। नरेन्द्र शर्मा ने 'रक्त चंदन' में छोटे छोटे शीर्षकों में कविताएं लिखी हैं।

जो भी हो गांधीवादी कविताओं की भांति गांधीवादी शीर्षक भी अत्यंत महत्व रखते हैं। कभी कभी ऐसी रचनाएं देखने को मिलती हैं जिनके शीर्षक तथा वर्ण्य विषय में कोई संबंध नहीं रहता। शीर्षक कोई एक रखा जाता है और दूसरा कोई विषय लिखा जाता है। लेकिन गांधीवादी कविताओं के शीर्षकों की विशेषता यह है कि वे अपने अपने में वर्णित विषय को चाहे वह प्रत्यक्ष हो या अप्रत्यक्ष, सुस्पष्ट अभिव्यक्त करने में सफल हैं। अत: पाठकों के लिए यह अत्यंत सुविधाजनक लगता है कि गांधीवादी कविताओं को ढूंढ लेने में उन्हें किसी कठिन श्रम की आवश्यकता नहीं रहती।

विषय :

विषय की विविधता के कारण हिंदी में गांधीवादी मुक्तकों की संख्या भी अधिक है। आधुनिक युग के छायावादी युग के उत्तरार्द्ध तक कवियों ने प्रकृति के विभिन्न उपादानों को लेकर कविताएं की हैं। इसके अलावा मानव- प्रेम को लेकर भी कई मुक्तक रचे गये जो शृंगार रस से परिपूर्ण थे। लेकिन छायावाद के अंत तक आते आते कवियों का ध्यान जन- जीवन की ओर गया और उन्होंने जनता और जीवन को अपनी रचनाओं में स्थान दिया। छायावादी कवि पंत जी ने अपने काव्य- संग्रहों के अंत में गांधीजी से प्रभावित होकर जो कविताएं लिखी हैं वे इसके उदाहरण हैं। इस प्रकार छायावाद के अंत और प्रगतिवाद के आरंभ की शुभ-वेला में मानव और उसके जीवन ने कविता में स्थान पाया।

इसी प्रगतिवाद के अंतर्गत गांधीवाद की गणना भी की जाने लगी थी

समर्थ निकले हैं ।

कवि ने 'कैदी और कोकिला' में कोकिला को राष्ट्रीय प्रतीक के रूप में अपनाया है। यहां कैदी स्वयं कवि ही थे। कवि का मन देश की पराधीनता तथा दुःखद परिस्थितियों से व्याकुल था। उस समय वे कोकिला का कल-कूजन सुनने तैयार नहीं थे। उन्होंने उससे बलिदान की वेदी पर चढ़ने का अनुरोध किया। यहां कोकिला को बलिदान का प्रतीक बताने का प्रयास किया गया है।

उनकी और एक कविता 'कलिका से कलिका की ओर से' में उन्होंने कलिका को भी बलिदानवादी राष्ट्रीय प्रतीक के रूप में अपनाया है। स्वच्छन्द एवं निर्मल हवा के झोंकों में खिलती - झूलती कलिका के हर्षोल्लास का कारण पूछते हुए उसका हृदय परिवर्तन कर उसे बलिदान की महिमा के बारे में समझाया गया है। अन्त में कलिका भी बलिदान के लिए तैयार हो जाती है।[१] वैसी ही 'विद्रोही' कविता में कवि ने एक वृक्ष को प्रतीक बनाकर अपनी विद्रोहात्मक भावना को व्यक्त करने का प्रयास किया है। वृक्ष पृथ्वी से जल सोखकर आकाश की ओर उगता जाता है और इसे कवि ने पृथ्वी के प्रति किया जाने वाला विद्रोह बताया है। जब व्यक्ति विद्रोही बनता है, उसे देश की रक्षा के लिए अपने को बलिवेदी पर समर्पित करना चाहिए। यहां कवि ने वृक्ष से अपने को मिट्टी में मिला देना ही परम सौभाग्य माना है।[२]

माखनलाल चतुर्वेदी प्राचीन परंपरा के विरोधी तथा नवीनता के आग्रही कवि थे। उनकी अनेक कविताओं में यह भाव स्पष्टतः लक्षित होता भी है। ऐसी भावना को व्यक्त करने के लिए आयोजित एक प्रतीक है - 'उन्मूलित वृक्ष'।

- -

१: मैं बलि का गान सुनाती हूँ,

-- -- --

खिंच, हरी रहे मेरी लकीर !

कलिका से कलिका की ओर से - हिमकिरीटिनी - पृ० ४१

२: मैं ने मिट जाने में सीखा

-- -- --

मिट्टी में मिल जाना। विद्रोही - हिमकिरीटिनी - पृ० ५६

यहां उन्मूलित वृक्ष कवि के प्राचीन परंपरागत विरोध का प्रतीक है। इससे वे प्राचीन रूढ़ियों की समाप्ति का आग्रह करते थे। यहां वृक्ष का उन्मूलन जो हुआ है वह प्राचीन परंपरा का निर्मूलन ही है। कवि द्वारा प्रयुक्त यह प्रतीक अत्यंत उचित एवं भावानुकूल जान पड़ता है।

पुष्प की अभिलाषा ' में कवि ने पुष्प को अपनी आत्मा का प्रतीक माना है। उन्होंने पुष्प से जीवन के आनंद और उल्लास से हटकर बलिदान के लिए जाने वाले वीर - युवकों पर वृष्टि करने का अनुरोध किया है। पुष्प ने भी परमात्मा से उसे वीरों के रास्ते पर फेंक देने का आग्रह प्रकट किया है।[१] कवि की बलिदानवादी भावना यहां व्यक्त हुई है। ' वनमाली ' शब्द तो यहां परमात्मा का प्रतीक बनकर आया।

वृक्ष की अभिलाषा ' में वृक्ष कवि की आत्मा का प्रतीक है। इसी वृक्ष के द्वारा उन्होंने अपनी बलिदान- भावना को व्यक्त करने का प्रयास ही किया है। कवि का कहना है कि वृक्ष को अपनी ऊंचाई का गर्व करते हुए खड़े रहने का समय नहीं है, उसे बलि होने का अवसर निकट है। वृक्ष ने उसे जल से सींचने के बदले बलिवेदी पर चढ़ाने का अनुरोध किया है।[२]

गांधीजी को प्रतीक मानकर रचित कविताएं - ' हृदय ', ' नवभारत वीर युवा ' आदि। चतुर्वेदी जी ने ' हृदय ' कविता में गांधीजी को समस्त संसार के हृदय का प्रतीक माना है और उन्हें संसार का सच्चा ~~(प्रतीक माना है)~~ हृदय बताया है। गांधीजी के हृदय की विशालता को समझाने के लिए ही प्रस्तुत प्रतीक की योजना की गयी है।

' नव भारत ' में गांधीजी को स्वतंत्रता का जीवित प्रतीक माना गया है, जिनके परिश्रम से भारत स्वतंत्र हुआ। यहां वे नव- भारत यानी स्वतंत्र भारत का प्रतीक हैं।

१: मुझे तोड़ लेना वनमाली !

-- -- --

जिस पथ जावें वीर अनेक। - पुष्प की अभिलाषा- पृ० ११

२: गौरव गिरावो नहीं,

समय की मिट्टी में मिलवाओ। - वृक्ष की अभिलाषा- पृ० १६

अतः इसमें गांधीजी के व्यक्तित्व का राष्ट्रीय पक्ष वर्णित है। अखिल जगत में वे नवीन भारत के निर्माता के रूप में पूज्य बन कर रहे हैं। यदि नव- भारत को गांधीजी का प्रतीक मान लें तो भी कोई दोष नहीं। ` वीरपूजा ` में भी कवि ने गान्धीजी को बलिदानवादी वीरों का प्रत्यक्ष प्रतीक माना है। यहां वीर स्वयं गांधीजी ही हैं जिनकी पूजा ही इसमें की गयी है।

गान्धीवादी कविताओं में कभी कभी कवि भी विषय बनकर रहे हैं। ऐसी कविताओं में कवि ने अपने गांधीवादी राष्ट्रीय भावों को प्रकट करने के लिए स्वगत- कथन का रूप अपनाया है। जैसे कि चतुर्वेदी ने अपनी कविता ` सिपाही ` में सैनिक के रूप में अपने को प्रस्तुत किया है। इस कविता के माध्यम से उन्होंने अपने आत्म- बलिदान- वादी भाव को अभिव्यक्त किया है। उसी प्रकार उनकी एक और कविता ` अमर राष्ट्र ` में भी कवि स्वयं क्रान्तिकारी वीर का रूप धारण कर आये हैं। उन्होंने यहां त्याग और बलिदान से स्वतन्त्र राष्ट्र की अमरता का उपदेश दिया है और स्वयं इसके लिए परिश्रम भी किया है।

महाभारत, रामायण आदि का प्रभाव :

गान्धीवादी मुक्तक रचनाओं पर महाभारतीय कथा का प्रभाव यत्र-तत्र अवश्य पड़ा है। कुछ रचनाओं पर रामायण तथा अन्य पुराणों का प्रभाव भी लक्षित होता है। इसके कई कारण होते हैं। पहला कारण यह है कि गान्धीजी मूलतः हिन्दू धर्म के विचारक रहे हैं। उनकी नीति और विचारगत सिद्धान्तों की उत्पत्ति हिन्दू धर्म से हुई है। ये सारे सिद्धान्त एवं तत्व किसी न किसी प्रकार से भारतीय हिन्दू धर्म से संबंधित हैं। अन्य धर्मों के प्रति भी उनकेमन में आदर तथा ममता रही है। वे मुख्यतः हिन्दू धर्म को सर्वश्रेष्ठ बताते थे। इतना ही नहीं वे भगवान श्रीरामचन्द्र जी के परम भक्त थे। गांधीजी का लोक- प्रसिद्ध अहिंसात्मक भारतीय - स्वाधीनता - संग्राम स्वभावतः एक धर्म- युद्ध ही था जैसा महाभारत का कुरुक्षेत्र युद्ध। यह तो माननीय बात है कि गान्धीजी का सत्य और अहिंसा वास्तव में पुरानी वस्तुएं ही हैं, मगर जब उनका जन- जीवन के सामाजिक एवं अन्य क्षेत्रों में व्यवहार संभव हुआ तब वे एकदम नवीन हो गये।

इन कारणों से गांधीवाद के कवि राष्ट्रीय बिंबों की योजना भी हिंदू धर्म के से करने के लिए बाध्य हुए । अत: इन कवियों ने महाभारत, रामायण, अन्य पुराण इत्यादि से व्यक्तियों तथा वस्तुओं को लेकर अनेक बिंब प्रस्तुत किये हैं । देखिये-

१- गान्धीजी - श्रीकृष्ण, मोहन, रामचन्द्रजी, जनक, शिवजी , विष्णु
२- भारतमाता - यशोदा, कौशल्या, द्रौपदी, अहल्या
३- भारतभूमि - ब्रज भूमि, वृन्दावन, गोकुल, साकेत , अयोध्या, कुरुक्षेत्र
४- जेल - वैकुंठ, कृष्ण का जन्म- स्थल,
५- भारत की जनता - साकेत की प्रजा,

गांधीजी को ` कृष्ण ` और ` राम ` के रूप में अनेक कवियों ने चित्रित किया है । वैसे ही भारत देश को ` ब्रज और साकेत ` के रूप में चित्रित किया गया है ।

<u>अवतारवाद</u> :

हिन्दू धार्मिक ग्रंथों में अवतार का उल्लेख मिलता है । जब देश की परिस्थितियां अत्यंत बुरी होती हैं, तब उनके सुधारने तथा रक्षा के लिए भगवान और महान पुरुषों का पुन: जन्म होता है । यही अवतारवाद नाम से जाना जाता है । गांधीवाद के कवियों ने भी इस अवतारवाद पर गहरा विश्वास रखा है । अत: उनकी क कविताओं में इसका उल्लेख अवश्य हुआ है ।

चतुर्वेदी जी ने ` हृदय ` कविता में गांधीजी से पुन: अवतरित होने का अनुरोध किया है क्योंकि जब पहले गांधीजी का जन्म हुआतब देश की दशा अत्यंत शोचनीय थी । परंतु गांधीजी ने भारत के राष्ट्रीय मंच पर आकर खूब प्रयत्न किया और भारत को स्वतंत्र बना दिया । अब तो गांधीजी की मृत्यु के बाद देश की दशा बिगड़ती जाती है और इससे देश का उद्धार करने के लिए कवि ने उनसे पुन: पैदा होने की प्रार्थना की थी ।

सोहनलाल द्विवेदी जी ने युगावतार गांधी में गांधी जी को युग- युग में अवतार लेकर पैदा होने वाले भगवान के रूप में चित्रित किया है । कवि का विश्वास है कि वे हर युग में विभिन्न रूपों में अवतार लेंगे और देश की व देख- भाल करेंगे ।

'रामनवमी ' में चतुर्वेदी जी ने भगवान रामचन्द्रजी से पुनरावतार के लिए प्रार्थना की है। कवि ने उनसे देश का सुधार चाहा है। अतः स्वर्ग से उतर कर इस भू पर आने तथा देश की दशा की उन्नति करने का अनुरोध यहां स्पष्ट है। इस प्रकार हम देख सकते हैं कि गांधीवादी कवियों ने पुराख्यान तत्त्व (मिथ) के अंतर्गत अवतारवाद की परंपरा का पालन अच्छी तरह किया है।

जहां तक गांधीवादी काव्यों में कला- पक्ष की श्रेष्ठता एवं सफलता पर विचार किया जाएगा वहां तक ~~कहां तक~~ वह उतनी सफलता से किया नहीं जा सका है। सभी गान्धीवादी काव्य वस्तुतः भाव- प्रधान होते हैं, वर्णनप्रधान नहीं। यही इसका मुख्य कारण है। गान्धीवादी कवियों ने प्रायः अपनी विषय- वस्तु अथवा कथा- वस्तु के बाह्य चित्रण की अपेक्षा आन्तरिक चित्रण पर खूब ध्यान दिया है। इस प्रकार यहां आडंबर एवं अलंकारपूर्ण वर्णन की अपेक्षा मनो- भावनाओं की अभिव्यक्ति को ही प्रधानता दी गयी है। अतः यहां कलापक्ष से बढ़कर भावपक्ष अत्यधिक सीमित दिखाई पड़ा है। कारण यह है कि इन काव्यों में मानव- जीवन की वैविध्यपूर्ण परिस्थिति जनित उतार- चढ़ाव के अंगांग का विवेचन ही हुआ है। फिर भी इन कवियों ने कला- पक्ष पर किंचित प्रकाश डालने का प्रयास किया है।

गांधीवादी काव्य खूब वस्तुतः अलंकृत नहीं होते। यही कारण कि कवियों ने विरल अलंकारों का प्रयोग न करके उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक आदि साधारण अलंकारों का सहज प्रयोग ही किया है। इनका उल्लेख प्रसंगानुसार यत्र-तत्र हुआ है। महाकाव्य, खण्डकाव्य और अन्य काव्यों में भी इन्हीं अलंकारों का प्रयोग ही अधिक मात्रा में हुआ है। यही बात छन्दादि की भी है। अनेक कविताओं में छन्दों की योजना हुई है। मगर उन्हें एक विशेष छंद के अंतर्गत रख नहीं सकते। अधिकांश छन्दों में मात्रा गणादि लक्षण ठीक नहीं बनते। इससे यह स्पष्ट होता है कि कवियों ने छन्दों की योजना में पर्याप्त या काफी ध्यान नहीं दिया है, केवल छन्दों का रूपाभास मात्र दर्शाया है।

श्लिष्ट शब्दों का प्रयोग तथा देवत - धार्मिक बिंबों के सहारे प्रतीकों की योजना दोनों इन कविताओं में बहुत मिलते हैं।

कवियों की गांधीवादी विचारधाराओं को स्पष्टतः अभिव्यक्त करने में

प्रतीक - योजना अत्यधिक लाभ- दायक सिद्ध हुए हैं । रस की दृष्टि से तो इन कविताओं में रस- राज का पूर्ण परित्याग द्रष्टव्य है । शांत, वीर, करुणा, शोक इन चारों रसों का विवेचन ही संपूर्ण कविताओं में उपलब्ध होता है । रसराज के पूर्ण रूपेण इसलिए त्याग दिया गया है कि इन कविताओं का रचनाकाल अत्यंत बिगड़ा हुआ था । अत: हर्ष एवं उल्लास के लिए कोई मौका ही न था । पहले देश की पराधीनता और बाद में गांधीजी की मृत्यु दोनों ने कवि- मानस को अत्यंत व्याकुल बना दिया था और उनके मन की अवसाद- भरी आहें कविताओं के द्वारा निःसृत हुई हैं । अत: गांधीवादी मुक्तकों के कलापक्ष के बारे में अधिक बताना असंभव है । फिर भी कलापक्ष के संबंध में हमें जो भी प्रवृत्तियां मिलती हैं, वे सब सराहनीय हैं ।

-----ooo------

अध्याय : १०

उपसंहार

अध्याय : १०

उपसंहार

हमारे राष्ट्रपिता महात्मा गांधी जी संपूर्ण जगत में समादर पाने योग्य व्यक्ति रहे हैं। एक व्यक्ति के महान होने के लिए कई बातें जरूरी होती हैं। यह प्रवृत्ति प्राय: देखने को मिलती है कि ऐसे महान एवं श्रेष्ठ व्यक्तियों के व्यक्तित्व,कृतित्व उनकी प्रवृत्तियां और सेवाएं आदि का प्रशंसापूर्ण और महत्वपूर्ण मूल्यांकन बड़े बड़े विद्वानों द्वारा संपन्न होता है। यदि यह प्रवृत्ति, प्रस्तुत व्यक्ति की मृत्यु के बाद होती तो वह विशेष करुणापूर्ण तथा हृदयहारी होती है।

गांधीजी के संबंध में यही बात लागू होती है। महात्मा गांधीजी हमारे राष्ट्रपिता हैं और उसके नाते वे महान व्यक्ति माने जाते हैं। गांधीजी जब जिंदा थे, तब भारत की आजादी और उसके सिलसिले में उनके द्वारा कृत विभिन्न कार्यों की प्रशंसात्मक अभिव्यक्ति और समर्थन किया जाता था। मगर उनके निधन के उपरांत जिन

अंत: प्रेरणा समाज- सुधार एवं विश्व कल्याण रही है। अत: कवियों ने गांधीवादी रचनाओं के लिए मानव- जीवन, समाज और गांधीवादी सिद्धान्तों को विषय के रूप में चुन लिया। गांधीजी के जीवन के अंग अंग तथा क्षण क्षण का विवेचन कविताओं में हुआ है। उनके जीवन से संबंधित तथा उनके जीवन में प्रतिपल घटित होने वाली घटनाओं गांधीय तथा मामूली विषयों को इन कवियों ने अपनाया है। सच्ची बात यह है कि उनके जीवन का एक मिनट भी कवियों के लिए अछूत न रहा है। साथ ही उनके व्यक्तित्व को अभिव्यक्त करने वाली चारित्रिक विशेषताओं तथा उनके महत्व को घोषित करने वाली प्रवृत्तियों को भी कवियों ने स्वीकार किया है। ऐसे वैशिष्ट्यपूर्ण विषयों को लेकर हिंदी के अनेक कवियों ने कई मुक्तकों की रचना की है।

गांधीजी को व्यक्ति के रूप में अपनाते हुए विभिन्न कवियों ने उन पर कविताएं की हैं। सोहनलाल द्विवेदी, दिनकर, नरेन्द्र शर्मा, अंचल, भगवतीचरण वर्मा, बच्चन, हरिकृष्ण प्रेमी आदि कवियों ने उनको व्यक्ति के रूप में चित्रित करने का प्रयास किया है। ऐसे चित्रण में उनके व्यक्तिगत गुणों की प्रशंसा की गयी है जहां उनके प्रति मृत्युपरांत श्रद्धांजलियां अर्पित की गयी हैं वहां भी उनको व्यक्ति के रूप में चित्रित किया गया है। एक ही कवि दुष्यन्त कुमार त्यागी ने उनके जन्म दिवस पर एक कविता लिखी है, और वह है `गांधी जी के जन्म दिन पर`। सोहनलाल द्विवेदी जी ने `रेखाचित्र` नामक कविता में गांधीजी का सुंदर चित्र खींचा है।

गांधीजी से संबंधित कुछ वस्तुओं पर भी स्वतंत्र रचनाएं होने लगीं जिन्हें देश के सुधार के लिए भारत के राष्ट्रीय मंच पर प्रस्तुत किया गया था। इनमें चरखा, अहिंसा, सत्याग्रह, हथकड़ियां, हिंदू - मुसलिम एकता आदि मुख्य हैं। चरखा गांधीजी के जीवन का एक प्रधान अंग था और उनके द्वारा उसने भारत की स्वतन्त्रता- प्राप्ति के क्षेत्र में महत्वपूर्ण स्थान पाया। उन्होंने देश की आर्थिक दशा को सुधारने के उद्देश्य से चरखे को राजनीतिक क्षेत्र में उतारा जिससे देश की आर्थिक दशा सुधर सके। साथ ही वर्तमान बेकारी की समस्या भी दूर हो गया। गान्धीजी का चरखा तो हर कुल- वधू का चरखा बन गया और इसके द्वारा वे अपना जीवन- यापन करने का यत्न करतीं थीं। विदेशी वस्त्रों को हटाने तथा स्वदेशी वस्त्रों को अपनाने की सुविधा भी

इससे प्राप्त हुई । यों चरखे का महत्व बढ़ गया और कवियों ने इस पर कविता रचना की ठीक समझा ।

अहिंसा का महत्व वर्णनातीत है क्योंकि भारत की आजादी को अहिंसा के द्वारा ही संभव हुई । देश में प्रतिदिन होने वाले अत्याचार, हिंसा प्रवृत्तियां, पाशविक हत्या आदि का अंत जो हुआ, वह अहिंसा के द्वारा ही था । हिंसात्मक कृत्यों का बदला हिंसा के द्वारा ~~(देश में गांधीजी अहिंसा तत्व को)~~ करने वाले देश में गांधीजी अहिंसा तत्व को लेकर आये और हिंसा का बदल अहिंसा से अर्थात् हिंसा का उत्तर अहिंसा से देने का उपदेश दिया । उनकी अहिंसा को सब ने स्वीकार किया और उसकी महिमा बढ़ गयी । भारतीय स्वतन्त्रता प्राप्ति का मूल कारण होने के कारण इसे कवियों ने भी अपनाया । ~~(सत्याग्रह)~~

सत्याग्रह तो गांधीजी के द्वारा किया गया एक राजनीतिक प्रयत्न है। सत्याग्रह के द्वारा उन्होंने सत्य के आग्रह की घोषणा की थी । वे नीति और न्याय के लिए लड़ने वाले थे । नीति और न्याय की गणना उन्होंने सत्य के अंतर्गत की है और समस्त क्षेत्र में एक ही सत्य का समर्थन किया है । विदेशी शासन के विरुद्ध उन्होंने इसी सत्याग्रह का प्रयोग किया था । इस सत्याग्रह के सामने विदेशी शक्ति की पराजय, हो गयी थी । अत: जीवन के सभी क्षेत्रों में इसकी विजय अवश्य हुई थी ।

गांधीजी ने देश की स्वतंत्रता के लिए विभिन्न जगहों पर सत्याग्रह किये थे जिनमें दक्षिण अफ्रीका, चंपारन, खेड़ा, बेतवा आदि जगह अत्यंत महत्वपूर्ण हैं । नीति और न्याय की अंतिम विजय तक उन्होंने सत्याग्रह किया था । अत: सत्याग्रह का उल्लेख कवियों ने अपनी अपनी कविताओं में यथास्थान किया है । सोहनलाल द्विवेदी ने बेतवा के सत्याग्रह पर ' बेतवा का सत्याग्रह ' नामक एक कविता लिखी है ।

गांधीवाद में हथ-कड़ियों को बड़ा स्थान है । हथ-कड़ियां या जंजीरें पहनना गांधीवादी कवियों के लिए संतोष-दायक है और इसे वे अत्यधिक पुण्य मानते हैं । साधारण जनता तो इन हथ-कड़ियों को देखते ही डरती है और उनका त्याग करना ही उचित मानती है , लेकिन गांधीवादी वीरों की बात ऐसी नहीं । उनके लिए ये आभूषण सी प्रतीत होती हैं और ससन्तोष अपने हाथों पर पहनते हैं । वे हमेशा इनका स्वागत ही

करते हैं। उनके शब्दों में ये हथ-कड़ियां विजय- कंकण हैं, मधुर घड़ियां हैं और स्वतन्त्रता की फुल- झड़ियां भी हैं। इन वीरों ने बताया है कि ये हथ-कड़ियां उनके मन में राष्ट्रीय भावना और आत्म- शक्ति उत्पन्न करने वाली हैं। अपने हाथों में हथ-कड़ियां पहनकर कारागृह के भीतर रहने का जो अवसर इन्हें प्राप्त होता है, तब वे अतीव प्रसन्नता का अनुभव करते हैं।

देश की जनता के बीच में एकता लाने के लिए वह एक सुदृढ़ कड़ी रही है गांधीजी द्वारा प्रतिष्ठित हिन्दू - मुसलिम एकता। हिंदु और मुसलमानों के बीच में सदा झगड़ा होता था जिससे देश में असंतोष तथा अशांति का वातावरण मौजूद था। लेकिन ब्रिटिश शासन से आतंकित इन लोगों ने मिलकर उन्हें वहां भगा दिया। गांधीजी जी ने इस एकता का कार्य सफलता से किया। कवियों ने हिंदु और मुसलमानों को आंखों की दो पुतलियों के रूप में चित्रित किया है। जाति- भेद के कारण ही जनता के बीच में अशांति फैल जाती है और गांधीजी ने इसी अशांति का अन्त करने के लिए ही इस जातीय ऐक्य की स्थापना की थी। यों हिन्दू - मुसलमान - एकता ने भी साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान पाया है।

गांधीजी से संबंधित अन्य जिन वस्तुओं और घटनाओं पर कविताएं लिखी गयीं उनमें ये हैं - राष्ट्रीय झण्डा, बलिदान, जालियांवाला बाग का हत्याकाण्ड, पन्द्रह अगस्त, उपवास, सेवाग्राम, गांधी - तीर्थ, अर्द्ध- नग्नता, मृत्यु, दाण्डी यात्रा, स्वतंत्रता आन्दोलन, त्रिपुरी कांग्रेस, कारागार, असहयोग आंदोलन, गांधीजी का जन्मदिन आदि। राष्ट्रीय झण्डा कवियों के लिए इतना प्रिय इसलिए था कि वह गांधीजी द्वारा प्राप्त आज़ादी को सुखद फैलाते हुए उसका नव- संदेश विश्व को दे रहा है। देश की स्वतंत्रता के बाद ही राष्ट्रीय झण्डे का विधान हुआ था। प्रत्येक राष्ट्र के लिए प्रत्येक ध्वजा निश्चित की गयी है। उनमें भारत की तिरंगी, अशोक चक्रांकित सुंदर ध्वजा के बारे में कई मतभेद हुआ था। तब एक प्रसिद्ध सत्याग्रही हरदेव नारायण सिंह ने ऐसे भारत की ध्वजा स्वीकृत कराने के लिए अपने प्राण तक छोड़ दिये। माखनलाल चतुर्वेदी जी ने अपनी कविता 'राष्ट्रीय झण्डे की भेंट' में यह बात स्पष्ट की है। सोहनलाल द्विवेदी ने अपनी एक कविता 'राष्ट्र ध्वजा' में झण्डे की अर्चना, वंदना, नीराजना करने का अनुरोध करते हुए जनता को इसकी महिमा के बारे में कुछ समझा- बुझाया है।

इस प्रकार भारत की त्रिवर्ण - पताका पर स्वतन्त्र रूप से ये दो कविताएं उपलब्ध हैं। उनकी महिमा अपार है और अवर्णनीय है भी।

राष्ट्र- ध्वजा का भारत के इतिहास में जैसा महत्वपूर्ण स्थान रहता है, वैसा ही स्थान ' पन्द्रह अगस्त ' का भी है। पन्द्रह अगस्त का यह दिन इसलिए इतना इतिहास- प्रसिद्ध हुआ कि इसी दिन हमारा देश स्वतन्त्र हुआ जिसे हम कदापि भूल नहीं सकते। १५ अगस्त १९४७ को भारत स्वतन्त्र हो गया और यह दिन समस्त जनता के लिए एक शुभ दिन है और पुण्य दिवस भी जो हर साल आया करता है। जनता को इस दिन ने जितना अधिक प्रभावित किया, उतना ही हमारे कवियों को भी उतना ही प्रभावित किया - इसमें कोई संदेह नहीं। हर साल यह शुभ दिन बड़ी आडंबरता के साथ विश्व भर में मनाया जाता है। उस दिन जनता के मन में स्वातन्त्र्योचित आह्लाद भरी आनन्द - लहरें उमड़ती हैं और भक्ति मंगल गीत गाती हैं।

पन्द्रह अगस्त अथवा स्वतन्त्रता - दिवस पर अनेक कवियों ने छोटी- सी कविताएं लिखी हैं। ये आकार में छोटी होनेके पर भी भाव में गंभीर अवश्य हैं। चतुर्वेदी जी की ' मुक्त गगन है, मुक्त पवन है ' और ' विजय की स्मरण वेला ', सोहनलाल द्विवेदी जी की ' पंद्रह अगस्त ', ' स्वतंत्रता के पुण्य पर्व पर ', या ' स्वातंत्र्य की अरुण पर्व ', ' मुक्ति पर्व ', दिनकरजी की ' अरुणोदय ', पहली वर्षगांठ '; नरेन्द्र शर्मा की ' १५ अगस्त १९४८ ', पन्तजी की ' स्वतन्त्रता दिवस ' और ' स्वाधीनता दिवस ' आदि कविताएं पंद्रह अगस्त पर रचित हैं। शीर्षकों में विविधता होने पर भी भावों में एकता ही है अर्थात् सभी कविताओं में भारत की स्वतंत्रता के पुण्य दिन की महिमा गायी गयी है।

गान्धीजी के जन्म- दिन पर बड़े बड़े प्रसिद्ध कवियों ने अब कोई कविताएं नहीं लिखी हैं। गांधीजी पर रचित महाकाव्य, खण्डकाव्य आदि स्वतन्त्र रचनाओं में प्रसंग वश इस दिन का उल्लेख किया गया है ; बस यही हुआ है। विश्व के महान नेता और भारत के स्वातन्त्र्य दाता होने के नाते गांधीजी का जन्म तो एक वरदान ही माना जाता है। ऐसी अवस्था में उनके जन्म- दिन पर किसी ने भी किंचित प्रकाश न डाला है - यह बड़े दुःख की बात है। हिंदी के एक ही कवि (दुष्यन्तकुमार त्यागी) ने उनके जन्मदिन पर एक कविता लिखी है और वह है ' गांधीजी के जन्म दिन पर '। अतः इसका अलग महत्व रहता है।

गांधीजी की मृत्यु तो सभी कवियों का विषय बनी है । यद्यपि उनके जन्मदिन को भूल गये तथापि उनके मृत्यु - दिवस को कोई भूला नहीं । इसका कारण तो यही होता है कि गान्धीजी की मृत्यु जो हुई, वह अप्रत्याशित और अकाल मृत्यु थी और तज्जन्य जनता का शोक वैसा ही असीम एवं अनियन्त्रित भी रहा । अत: उनकी मृत्यु पर कविता न लिखना महान पाप और मूर्खता मानी जाती थी । जब सकल चराचर ने अपना अश्रुजल बहाकर उनकी मृत्यु पर शोक प्रकट किया, तब कवियों ने कविता को इसका माध्यम चुन लिया जिससे कतिपय श्रद्धांजलियों का जन्म हुआ । विश्व के एक व्यक्ति ने भी न जाना कि उनकी मृत्यु इतनी शीघ्र होने वाली है । यों उन्होंने भारत को केन्द्र बनाकर रामराज्य का स्वप्न- मण्डल जो बनाया रखा था, वह अधूरा ही रह गया ।

हिन्दी के कतिपय कवियों ने उनकी मृत्यु पर कविताएं की हैं । सोहनलाल द्विवेदी जी की ' वज्रपात ', ' महानिर्वाण ', ' आज राष्ट्र के कण कण को गान्धी की मूर्ति करेंगे ', ' श्रद्धांजलि ', बच्चन की ' सूत की माला ', ' खादी के फूल ' हरिकृष्ण प्रेमी की ' वन्दना के बोल ', नरेन्द्र शर्मा की ' रक्त चन्दन ', पन्त जी की ' खादी के फूल ' , ' श्रद्धांजलि '; अंचल की ' बापू ', भगवती चरण शर्मा की ' अन्तिम दर्शन ', ' अन्तिम प्रणाम ' आदि कविताएं इस कोटि की हैं । इनमें कवियों ने गान्धीजी की मृत्यु से अपने मन में उद्भूत शोक - भावना प्रकट की है ।

गान्धीजी की अर्द्ध- नग्नता ने भी कवियों को प्रभावित किया है । देश में या इस सारे विश्व में जितने व्यक्ति अर्द्ध- नग्न रहते हैं; मगर उन पर किसी की दृष्टि तक नहीं लगती । परन्तु गान्धीजी की बात ऐसी नहीं थी । उनकी अर्द्ध- नग्नता सोद्देश्य थी और सलक्ष्य भी । जब उन्होंने देश में अनेक लोगों को निर्वसन एवं नग्न रहते देखा, तब उन्हें बड़ा दु: ख हुआ और यह निश्चय किया कि वे अर्द्ध- नग्न रहकर, शेष वस्त्र उन्हें दान देंगे । इस प्रकार नग्नता का दूरीकरण ही अपने अर्द्ध- नग्न रहने से वे चाहते थे । अत: उनकी अर्ध- नग्नता पर प्रसिद्ध कवियों ने अधिक रचनाएं नहीं की हैं । इस पर कविता लिखने वाले एक ही कवि सोहनलाल द्विवेदी - रहे जिन्होंने इसमें गांधीजी के अर्ध- नग्न रूप - चित्र को प्रस्तुत किया है और इसके द्वारा उन्हें ' दरिद्रनारायण ' बताया है । यहां यह बात भी स्मरणीय है कि गान्धीजी आजीवन एक लंगोटी पहनकर

दूसरों को वस्त्र सुलभता से दिलाने के प्रबन्ध के रूप में चरखे को अपनाने का उपदेश देते थे ।

उपवास, व्रत आदि गांधीजी के जीवन की प्रमुख चर्या थे । उपवास या व्रतानुष्ठान आदि उनके लिए कोई कठिनाई की बात न थे । जितने दिन चाहें वे उपवास या व्रत कर सकते थे । उन्होंने दो दिन से लेकर इक्कीस दिन तक का उपवास किया है और व ये कई बार संपन्न हुए हैं । बताया जाता है कि उन्होंने अपने जीवन में कुल मिलाकर ३, ५०५ घंटों का उपवास रखा था । ये उपवास सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और ऐतिहासिक कार्यों की सिद्धि के लिए हुए थे । उनके ऐसे उपवासों पर भी स्वतन्त्र रचनाएं नहीं मिलतीं । सोहनलाल द्विवेदी जी की एक कविता " ऐतिहासिक उपवास " ही मिलती है जिसमें न्याय की अपील के लिए पन्द्रह दिन किये हुए उपवास का विवेचन किया गया है । गांधी जी ने न्याय और नीति के द्वारा किसी कार्य - सिद्धि के लिए जो उपवास किये हैं, वे सब अवश्य श्लाघनीय हैं । गान्धीजी ने अपने जीवन में उपवासों को जितना महत्व दिया था और उनका जैसा अनुष्ठान किया था, उन पर सोचते ही बड़ा आश्चर्य होता है । हम जैसे साधारण व्यक्ति तो ऐसे उपवासों के अनुष्ठान पर सोच तक नहीं सकते ।

अनादि काल से होकर गांधीजी का कर्मक्षेत्र होने के कारण सेवाग्राम का असर भी कवियों पर पड़ा है । यह सेवा का ग्राम है, सेवा ही इसका धर्म, कर्म और मर्म है । गान्धीजी अक्सर यहां रहते थे और यहां की जनता के जीवन में आवश्यक सुधार लाया करते थे । कई महीनों तक वे यहीं रहते थे । अतः सोहनलाल द्विवेदी ने सेवाग्राम को " नव युग के नये विधाता की छोटी बस्ती " घोषित किया है । सोहनलाल द्विवेदी जी ही एक ऐसे कवि हैं जिन्होंने सेवाग्राम पर कुछ लिखा है और वे हैं उनकी " सेवाग्राम " और " सेवाग्राम की आत्मकथा " आदि कविताएं ।

द्विवेदी जी की ही एक कविता मिलती है गान्धीजी की दण्डी यात्रा पर । उनकी यह यात्रा तो सुप्रसिद्ध और इतिहास- प्रसिद्ध भी है । अंग्रेजों द्वारा प्रचारित नमक - कानून तोड़ने के लिए गान्धीजी ने दण्डी की यात्रा की । दण्डी नामक जगह पर नमक इकट्ठा करने से यह कानून टूट गया । उनकी दण्डी यात्रा की और एक विशेषता यह थी इसमें आबाल - वृद्ध जन शामिल थे । उनकी इस महान यात्रा पर दूसरे कवियों ने कोई कविता नहीं की । यह बड़े दुःख की बात ही है । द्विवेदी जी कुल

छोटी सी कविता में दण्डीयात्रा का एक सुन्दर चित्र ही प्रस्तुत किया गया है ।

` त्रिपुरी कांग्रेस ` पर भी सोहनलाल द्विवेदी जी ने ही एक कविता लिखी है, अन्य किसी कवि ने नहीं । गांधीजी के नेतृत्व में त्रिपुरा में कांग्रेस की जो सभा हुई, उसे ही ` त्रिपुरी कांग्रेस ` नाम से अभिहित किया गया है । देश की स्वतंत्रता प्राप्ति के सिलसिले में विभिन्न देशों में इस प्रकार कांग्रेस की सभाएं बुलायी गयी थीं ।

उपर्युक्त विषयों के अतिरिक्त कवियों ने कारागार पर भी कई कविताएं की हैं जिसका भी गांधीजी से संबंध रहता था । भारत की स्वातंत्र्य - लब्धि के संघर्ष काल में गांधीजी कई बार जेल गये थे और कारावास का अनुभव किया था । साधारणत: कारागार के भोग को अत्यन्त निकृष्ट तथा निन्द्य माना जाता है । अगर कोई कुकृत्य के फल- स्वरूप कारागृह में रह कर बाहर आता है तो उसे देखना भी अपमान माना जाता है । देश में उसका आदर- सम्मान नहीं रहता । मगर भारतीय वीर युवकों की बात इससे बिलकुल भिन्न रही । इन्हें जब कभी कारागार में रहना पड़ता था उसे वे अपना बड़ा भाग्य मानते थे । इतना ही नहीं अपनी प्रिय मातृभूमि की स्वाधीनता के लिए कारागार में जाना इनके लिए सन्तोष की बात रही । उन्हें कारागार तो वृन्दावन और हाथ की जंजीरें फूल - मालाएं सी लगती थीं । कवियों ने भी कारागार को पुण्य जगह के रूप में चित्रित किया है ।

कारागार पर माखनलाल चतुर्वेदी जी की ` कैदी और कोकिला ` नामक कविता प्रसिद्ध है । इसमें कैदी स्वयं कवि हो रहे हैं । यहां कवि को कोकिला का कूजन दु:खद लगता है और उन्होंने उससे आत्म- बलिदान की प्रार्थना की है । देश में तथा कवि के मन में संघर्ष ही संघर्ष रहता है । तब ऐसा सुखप्रधान गीत सुनना वे नहीं चाहते थे । इस समय कवि के मन में बलिदान की भावना फूट पड़ी है । अत: वे बलिदानवादी गीत सुनना चाहते थे ।

दिल्ली का भंग - बंगला गान्धीजी का रेस्ट - हाउस था । जब वे दिल्ली आते थे, तब यहीं ठहरते थे । गांधीजी के रहने के कारण यह जगह किसी पुण्य तीर्थ के सलिल के समान पवित्र बन गयी और सोहनलाल द्विवेदी जी ने ` गान्धी - तीर्थ ` नाम से इसे विशेषित किया है । इसी ` गांधी तीर्थ ` पर कवि ने एक कविता लिख डाली । प्रस्तुत रेस्ट-हाउस पर यही एक कविता रची हुई है ।

अन्य विशेषताएं :

गांधीवादी मुक्तक काव्यों के शीर्षक और विषय में ही नहीं, उनकी कलापक्षीय विविध प्रवृत्तियों के प्रस्तुतीकरण में भी कुछ मौलिकता और नवीनता पायी जाती है। वस्तुत: कलापक्ष को कम महत्व दिये हुए गांधीवादी काव्यों में उसका प्रतिपादन अवश्य हुआ है और वह अत्यंत सीमित है। फिर भी मुक्तकों का कलापक्ष अत्यंत विस्तार के साथ प्रतिपादित किया गया है। गांधीवादी मुक्तकों में अलंकारों का प्रयोग कवियों ने किया है और वे हैं - उपमा, रूपक, मानवीकरण, अत्युक्ति, श्लेष आदि अलंकारों का प्रयोग सभी गांधीवादी कवियों ने किया है।

उपमा :

माखनलाल चतुर्वेदी जी ने युग और तुम में सुंदर उपमा की योजना की है।

उस - सा उज्ज्वल, उस - सा
गुणमय, छाव बनाने वाला
है कपास - सा, परम मुक्ति का
तेरा ताना - बाना। '[१]

उन्हीं की ' हृदय कविता ' में वीर- सा, गंभीर - सा वह है खड़ा; ' कुलवधू का बरता ' में भौंरा - सा, सितार- सा, कलिका - से, कलिका की ओर से, में फूल- फूला- सा, मन- बाड़ी - सी, बिजली - से, ओले - से, ताल - सी, मानव- सा, भोला- सा, ' अमर - राष्ट्र ' में मस्ताना- सा, ताना - बाना सा आदि में भी छोटी छोटी सी उपमाएं भरी हैं।

सोहनलाल द्विवेदी जी की कविताओं में उपमा अलंकार प्रयुक्त हुआ है। उदाहरण के लिए -

खादी का ताज चांद - सा जब
मस्तक पर चमक दिखाता है। '[२]

यहां चांद - सा में उपमा अलंकार स्पष्ट है। राष्ट्री - यात्रा में लघु- सी कुटी, ' हथकड़ियां में विषय- कंगण सी, ' गांधी ' में त्यागी से, विरागी से, दिनारात

१: युग और तुम - समर्पण - पृ० २१ २: खादी गीत - मेरवी - पृ० ८

अनुरागों से , आदि में उपमाओं की योजना की गयी है । कवि दिनकर जी की कविताओं में घनीभूत - ज्वाला- सा, अपनी ही बात, आदि प्रयोगों में उपमा द्रष्टव्य है । नरेन्द्र शर्मा कृत रक्त चन्दन में ज्योत्स्ना सी खादी में उपमा मिलती है ।

रूपक :

रूपक गांधीवादी कवियों का अत्यंत प्रिय अलंकार रहा है । अधिकांश कवियों ने अपनी गांधीवादी कविताओं में सुंदर - सुंदर रूपक बांधा है । ये रूपक अधिकतर गांधीजी को लेकर ही किये हुए हैं और यही इन कवियों की एक विशेषता है ।

चतुर्वेदी जी की ' युग चरणी ' कविता में युग- चरणी जिन्हें संकेतित किया है वे गांधीजी ही हैं । युग- चरणी के रूप में वे ही चित्रित हुए हैं। अतः यहां गांधीजी ही युग- चरणी हैं । युग- पुरुष में गांधीजी के युगल हाथों को युग के कर- पल्लव कहा है और यहां कर- पल्लव में रूपक अलंकार का प्रयोग हुआ है । 'जलियांवाला की वेदी ' में गांधीजी के मुख को मुखचन्द्र कहकर सुंदर रूपक प्रस्तुत किया गया है । ऐसा ही चतुर्वेदी जी द्वारा प्रयुक्त पद- पद्म, युग- करनी, माता- भूमि, राष्ट्र- मंदिर, भारत- लक्ष्मी, प्रति- पुतली आदि में रूपकों की योजना की गयी है। सोहन ,

सोहनलाल द्विवेदी ने सांग रूपक का प्रयोग किया है - देखिये-

धर्माडंबर के खंडहर पर,
कर पद प्रहार, कर धरा ध्वस्त
मानवता का पावन मंदिर,
निर्माण कर रहे सृजन व्यस्त । '[१]

'खादी गीत ' में खादी की गंगा, खादी का ताज आदि में रूपक है । यहां खादी ही गंगा है और ताज भी ।

मानवीकरण :

रूपक - योजना की भांति मानवीकरण की प्रवृत्ति भी गान्धीवादी कवियों का प्रधान कार्य रहा है । अधिकांश कवियों ने इस प्रवृत्ति को अपनाया है । जैसे प्रलय - दीप में प्रलय को दीपक बताकर इसका मानवीकरण कवि चतुर्वेदी जी ने किया है ।[२] वैसे गौरव की लाली, राष्ट्र - हृदय आदि में गौरव, राष्ट्र आदि का मानवीकरण

१: ~~मानवतागान्धी~~- भैरवी- ९ २: युग और तुम- समर्पण-पृ० २२

हुआ है। स्वातन्त्र्य- पुकार - धारा में स्वतंत्रता का मानवीकरण किया गया है। वीर- पूजा ' में चतुर्वेदी जी ने वीरों की पूजा के लिए हिमालय के अर्घ्यदान- के प्रसंग में हिमालय का मानवीकरण किया है।

अत्युक्ति :

अत्युक्ति अलंकार का प्रयोग सोहनलाल द्विवेदी जी ने अपने ' खादी गीत ' में किया है। उदाहरण के लिए देखिये -

> खादी की रजत- चंद्रिका जब,
> आकर तन पर मुसकाती है
> तब नव- जीवन की नई ज्योति
> अन्तःस्तल में जग जाती है। '[1]

श्लेष :

श्लेष अलंकार का प्रयोग सभी गांधीवादी कवियों ने किया है और वे बहुत सुंदर लगते हैं। इन्होंने इस प्रकार से अनेक शब्दों का प्रयोग बड़ी ही चतुराई से किया है। माखनलाल चतुर्वेदी ने एक जगह ' द्रौपदी ' शब्द का प्रयोग किया है जिसके भारतमाता और द्रौपदी दो अर्थ होते हैं और महराज शब्द से भी दो अर्थ निकलते हैं - श्रीकृष्ण और गांधीजी।[2] जिस प्रकार पंच- पांडवों की पत्नी द्रौपदी का कुरु सभा में वस्त्रापहरण होने का उल्लेख महाभारत पुराण में मिलता है और भगवान श्रीकृष्ण ने वस्त्र- दान से उसकी लाज की रक्षा की उसी प्रकार यहां भारतमाता का खुले विश्व में पराधीनता में जो अपमान हुआ उसकी रक्षा गांधी जी ने स्वतंत्रता- दान से की है। कवि ने ही और एक शब्द दुःशासन का प्रयोग किया है जिसके दो अर्थ होते हैं- अंग्रेजों का शासन और महाभारत का दुःशासन।[3] यहां विदेशी शासन को दुःशासन का दुष्कर शासन बताया गया है। ' हरि ' शब्द के भी दो अर्थ मिलते हैं - भगवान और गांधीजी।[4] मोहन शब्द का प्रयोग भी श्लिष्टार्थ में हुआ है और वे अर्थ हैं - श्रीकृष्ण और गांधीजी। जिस प्रकार ब्रज की गोपियों ने कृष्ण के सुंदर रूप को देखकर अपने को प्रेम- वेदी पर अर्पित किया उसी प्रकार यहां गांधीजी की प्रेरणा पाकर जनता ने

- -

१: खादी गीत - भैरवी - पृ० ६ २: द्रौपदी भारतमा का चीर बढ़ाने दौड़े -- महराज निःशस्त्र सेनानी- पृ० ६६
३: वही० पृ० ६७
४: बलि पंथी से - पृ० ६६

समर्पण वेदी पर अपने को त्याग दिया ।[1] इस प्रकार `मोहन` शब्द के द्वयर्थक होने के कारण `वृन्दावन` शब्द के भी दो अर्थों का निकलना स्वाभाविक है । तब इस शब्द के अर्थ होंगे - व्रज भूमि और भारत ।

कवि सोहनलाल द्विवेदी ने भी `मोहन` शब्द के दो अर्थ बताये हैं- श्रीकृष्ण और गांधीजी । जिस प्रकार भगवान श्रीकृष्ण कुरुक्षेत्र में महाभारत युद्ध के लिए शंख बजाया था उसी प्रकार भारत- क्षेत्र में गांधीजी ने अहिंसात्मक युद्ध के लिए शंख बजाया`।[2] यहां गांधीजी को मोहन कहने के कारण भारतभूमि को कुरुक्षेत्र कहा गया है । वैसा ही और एक जगह पर `मन मोहन` शब्द श्लिष्टार्थ में प्रयुक्त हुआ है। यहां गांधीजी श्रीकृष्ण हैं, भारत देश वृन्दावन है और रण- यात्रा तो अहिंसा संग्राम की यात्रा है ।[3]

छन्द :

छन्दोबद्ध कविताएं अत्यंत लोक-प्रिय होती हैं क्योंकि वे राग ताल लय श्रुति के साथ गायी जा सकती हैं । अधिकांश भावुक कवि ऐसी रचनाएं करने में तत्पर एवं उत्सुक दिखाई पड़ते हैं । गांधीवादी कवियों के बारे में कहें तो उन्होंने भी अपनी कविताओं में छन्दों के अंतर्गत रखा है । अब गांधीवादी कवियों ने जिन जिन छन्दों की योजना की है उन पर विचार किया जाएगा । गांधीवादी पुस्तकों के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि कवियों ने कतिपय छन्दों का प्रयोग किया है जिनमें आल्हा, पादाकुलक, सार [4], विधाता [5], पीयूष वर्ष, रोला, रूपमाला, सरसी, ताटंक [6], दिग्पाल, सोरठा [7] दोहा, राधिका, चौपाई आदि मुख्य हैं और इनके उदाहरण विभिन्न कवियोंकी

- -

१: मोहन के स्वर, मोहन के व्रत, मोहन का वृन्दावन जागे ।
सिद्धि दासियां पीछे पीछे चलें, समर्पण आगे आगे ।।
- चले समर्पण आगे - आगे - पृ० ७३

२: मन मोहन है शंख बजाता
कुरुक्षेत्र में हलचल है , - सत्याग्रही - पृ० ५६

३: रणयात्रा में चला आज,
वृन्दावन का वंशीवाला - दाण्डी यात्रा - पृ०

४: राम नवमी - माला - पृ० ३७ ५: युगधर्मी - समर्पण - पृ० ५३

६: अमर सेनानी गांधी - हिमालय ने पुकारा - पृ० ५६ ७: गांधी-कोकिलावीरकविर पृ० ५८

विविध कविताओं से उपलब्ध हैं।

आल्हा :- सत्याग्रह के सैनिक थे ये
सब सहकर रहकर उपवास
वास बन्दियों में स्वीकृत था,
हृदय - देश पर था विश्वास ।'[1]

पादाकुलक :-

सुजन, ये कौन खड़े हैं ? बन्धु !
नाम ही है इनका बेनाम ,   '[2]

पीयूषवर्ष :

लुट रहा है धन आदर - प्यार से,
बढ़ रहा जो आप अपनों के लिए , '[3]

रोला :

था प्यारा अमरत्व
अमर आनन्द अभय था ,
विश्व करे अभिमान ,
वीर्य - बल - पूर्ण, विजय था । '[4]

रूपमाला :

गौरव का तू मुकुट पाकर
युग के कर - पल्लव
तेरा पौरुष बने, राष्ट्र -
हो अनन्त अभिनव । '[5]

१: जालियाँवाला की वेदी - समर्पण - पृ० ६१ २: निःशस्त्र सेनानी-हिमकिरीटिनी - पृ० ६४
३: हृदय - समर्पण - पृ० ५० ४: वीरपूजा- हिमकिरीटिनी-पृ०९०
५: युग पुरुष - समर्पण - पृ० ४६

सरसी :

मिटे कलह कोलाहल क्रन्दन
दुख अवसाद विषाद । [1]

दिग्पाल :

असिधारा - आरोही,
जीवन - तप - त्याग हेतु ।
-- -- --
देता फिर नव भारत । [2]

दोहा : तुम मानव बनकर मरे ,
जिये, अमर बापू । [3]

राधिका :

कितनी तेज़ी से बापू तेरे पर छूटा ,
कितनी जल्दी सौभाग्य देश का फूटा । [4]

चौपाई :

नगर नगर भड़की चिनगारी
उजड़े महल - कुटी - फुलवारी
जीत गये पर अत्याचारी
रही अधूरी क्रांति हमारी । [5]

'पादाकुलक' छन्द का प्रयोग कुलवधू का बरता, चलो समर्पण आगे आगे, कलिका से - कलिका की ओर से , जीवित जोश, रक्त चन्दन, महात्माजी के

१: उपवास - चेतना - पृ० १२
२: रक्त चन्दन - पृ० २३
३: वही० पृ० ६५
४: सूत की माला - पृ० ३७
५: अमर सेनानी गान्धी - हिमालय ने पुकारा - पृ० ५६

महानिर्वाण पर आदि विभिन्न कवियों की कविताओं में हुआ है। कवि सोहनलाल द्विवेदी ने 'युगावतार गान्धी', 'दाण्डी यात्रा', 'सेगांव का सन्त', 'बापू के प्रति', 'बापू', 'गान्धी', 'सेवाग्राम की आत्मकथा', 'सेवाग्राम', 'भ्रमण', 'सत्याग्रही गान्धी' आदि कविताओं में भी भी पादाकुलक छन्द का प्रयोग अधिक मात्रा में किया है। 'युगवर्ती', 'तुम और तुम', 'विद्रोही', 'रामनवमी', व्रत समाप्ति', 'रक्त चन्दन' आदि कविताओं में सार छन्द का खूब प्रयोग किया गया है।

कवि नरेन्द्रशर्मा कृत 'हंस माला' संग्रह की 'गांधीजी' कविता मुक्त छन्द में रची गयी है। वैसे ही 'सुमन' के काव्य संग्रह 'पर आँखें नहीं भरीं', में एक कविता को छोड़कर शेष सारी कविताएं मुक्त छन्द में प्रणीत हैं। 'वन्दना के बोल' में कवि ने २८ मात्राओं का छन्द प्रयुक्त किया है। मगर उसके लक्षण तो किसी भी प्रकार से ठीक नहीं ठहरते। अतः उन्हें किसी भी छन्द का नामकरण देना असंभव लगता है। वैसा ही 'कूल की माला' में भी २४ व २२ मात्राओं का छन्द यत्र-तत्र मिलता है। पर मात्राओं के ठीक न बचने के कारण उन्हें किसी भी मात्रिक छन्द की कोटि में नहीं रख सकते। 'अंचल', भगवतीचरण वर्मा आदि अन्य कवियों ने भी मुक्त छंद की कविताओं के प्रणयन का प्रयास किया है।

प्रतीक विधान :

प्रतीकों की योजना से साहित्य में सौंदर्य की सृष्टि होती है। कवि अपनी ऊंची - सी कल्पनाओं से प्रेरणा पाकर अपनी व्यक्ति- कुशलता से सुंदर से सुंदर प्रतीकों की योजना करते हैं। कल्पना लोक से उतरने वाले कोमल भाव- बिंबों से प्रतीकों में अर्थ की पुष्टि आती है। ऐसे प्रतीकों के विधान के लिए कवि प्रायः प्राकृतिक उपकरणों को सहज भाव से अपनाते हैं। गांधीवादी मुक्तकों में भी प्रतीकों की योजना अवश्य हुई है, यहां हमें दो प्रकार के प्रतीक प्राप्त होते हैं। एक में प्राकृतिक उपादानों को प्रतीकों के रूप में अपनाया है और दूसरे में गांधीजी को। गांधीवादी कवियों में पं० माखनलाल चतुर्वेदी इस प्रवृत्ति के प्रमुख प्रवर्तक रहे थे। उन्होंने अपनी कविताओं में प्राकृतिक उपादानों को लेकर ऐसे प्रतीकों को खड़ा किया है जो अत्यंत प्रभावशाली प्रतीत होते हैं। प्रतीकों की योजना उन्होंने ऐसे अवसर पर की है जब उनका मन किसी प्रकार के दुःख या अवसाद से द्रवित होता है। अतः ये प्रतीक कवि के मन की विषादपूर्ण भावना को प्रकट करने में

साहित्यिक रचनाओं की सृष्टि होती थी, उनमें उनकी मृत्यु के प्रति विशेष दुःख प्रकट किया जाने लगा।

गांधीवादी कवि गांधीजी और उनके सिद्धान्तों से इतने प्रभावित थे कि उनके व्यक्तित्व और जीवन के हर पहलू तथा उनके हर सिद्धान्त को अपनाकर कविताएं लिखी गयी हैं। आधुनिक हिन्दी काव्य में प्रतिपादित गांधीवादी प्रवृत्तियों के मूल्यांकन से उपर्युक्त बात का स्पष्टीकरण होगा।

मूल्यांकन :

गांधीयुग के आरंभ के पूर्व भारत अंग्रेजों के शासन का अधीन रहा। उस समय संपूर्ण भारत पराधीनता की काली घूंट पी रहा था। अत्याचार और अनीति का संघर्ष प्रतिदिन हो रहा था। फलतः देश की हालत अत्यधिक बिगड़ी हुई थी। देश की जनता ही नहीं, अनेक साहित्यकार भी इससे प्रभावित हुए। इन्होंने अपनी रचनाओं में भारत की ऐसी दीन दशाओं और परिस्थितियों का स्पष्ट चित्रण और वर्णन शुरू किया। भारत की स्वतन्त्रता - प्राप्ति तक यह प्रवृत्ति चलती रही। बाद में जब गांधीजी ने भारत की राजनीति के रंगमंच पर अपना पदार्पण किया, इस महान घटना से लेकर स्वतन्त्र - भारत के निर्माण तक की विविध प्रवृत्तियां इन साहित्यिकारों की रचनाओं में वर्णित दिखाई पड़ीं, जिन्हें सुसंपन्न करने का श्रेय गांधीजी को रहा है।

इस प्रकार भारत के प्रथम अहिंसात्मक - स्वाधीनता - संग्राम का चित्रण हिन्दी साहित्य के विविध अंगों (काव्य, उपन्यास, नाटक, कहानी आदि) में गांधीवादी तत्वों के प्रतिपादन का प्रथम प्रयास रहा। जब गांधीजी ने प्रथम स्वाधीनता संग्राम का शंखनाद सुनाया, तब हिन्दी के कवियों ने एक स्वर से उसका स्वागत किया। तुरंत अपनी रचनाओं में उसका समर्थन भी। १९२० - १९२२ तक की पत्र- पत्रिकाओं में भी इस संघर्ष पर अनेक कविताएं प्रकाशित हुई थीं। स्वतन्त्रता - संग्राम की समाप्ति तक कवि-गण उसकी गतिविधि का गीत गाते रहे। राष्ट्रीय संघर्ष जब बढ़ता रहता था, तब कविगण भी उसे उत्तेजनापूर्ण वाणी दिया करते थे। इसके बाद जब गांधीजी आध्यात्मिक साधना में लीन होकर अपने सिद्धान्तों और तत्वों का अवतरण, देश की

स्वतन्त्रता और सुधार- संबंधी कार्यों में लगने का प्रयास कर रहे थे । तब कवियों की मनोवृत्ति भी इस ओर झुक गयी और आध्यात्मिकता का स्वर अपनी कृतियों में सुनाई पड़ने लगा ।

स्वाधीनता संग्राम प्रारंभ होते ही गांधीजी ने देशभक्ति, देशप्रेम और बलिदान का संदेश सुनाया । अपने देश की स्वतन्त्रता की प्राप्ति का विचार उत्पन्न होने के कारण भारत की जनता के मन में अपने देश के प्रति भक्ति, प्रेम और श्रद्धा की भावना फूटी । तब कवियों ने भी देश भक्ति परक कविताओं की रचना की और गांधीजी की बलिदान- भावना को भी वाणी दी ।" देशभक्ति में उत्साह और प्रेम दोनों निहित है । वह समष्टि परक भाव है ।" इस उत्साह में आक्रमण की भावना नहीं है, अहिंसा की भावना है । यहां देशभक्ति अथवा देश के प्रति रागात्मकता से मतलब है देशवासियों से प्रेम " जैसे ही देश की पराधीनता की है, वह देशवासियों की भी पराधीनता होती है और देश की मुक्ति की कामना है ।" अत: दीन- दु:खित एवं दलित- शोषित जनता के प्रति करुणा जगानेवाली अनेक कविताएं रची गयी ।

१५ अगस्त १९४७ का दिन गांधीवादी कविताओं के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण रहा है जिस पुण्य दिवस का उदय गांधीजी के हाथों हुआ था । यहां आते ही कवियों का स्वर एकदम बदल गया । अबतक जिनके कंठों से बलिदान और स्वतन्त्रता मांग के गीत नि:सृत होते थे, स्वतन्त्रता- प्राप्ति के बाद उन कंठों से विजय की घोषणा करनेवाले गीतों का प्रवाह हुआ । इस दिन के उत्सव के बारे में अनेक मंगल- गीत रचे गयें । साथ ही कवियों ने भारत की राष्ट्रीय पताका को भी अपना विषय बनाया । इसपर भी अनेक मंगल गीत निकले हैं । इसकी गरिमा और महिमा का वर्णन कविताओं में अवश्य किया गया । देश के सामाजिक क्षेत्र में जो सुधार हुए, उनका वर्णन भी यथासमय काव्यों तथा कविताओं में हुआ है ।

भारतीय स्वतन्त्रता- प्राप्ति के मंगल- कार्य में कांग्रेस का भी महत्वपूर्ण स्थान रहा है । अत: कवियों ने उसपर भी कविताएं लिखी हैं । सुधारवादी दृष्टिकोण रखनेवाले अनेकों महान नेताओं ने कांग्रेस के अध्यक्ष - पद को अलंकृत किया है । जैसे तिलक, गोखले, गांधीजी आदि । इतना ही नहीं, गांधीजी ने स्वतन्त्रता - संग्राम के सिलसिले में जितनी जगहों पर कांग्रेस के अधिवेशन की आयोजना की थी , उन्हें प्रमुखता

देते हुए भी कुछ कविताएं लिखी गयी । देश की राजनीति में व्याप्त अनीति और अत्याचार को मिटाने के लिए गांधीजी ने सत्याग्रह का उपाय चुना था । अतः कवियों ने भी सत्याग्रह पर कई कविताएं लिख डालीं । देश की आर्थिक दशा के सुधार और बेकारी की समस्या के समाधान के रूप में गांधीजी ने चरखा और खादी की घोषणा जो की थी, उसने काव्य में महत्वपूर्ण स्थान पाया है । चरखा और खादी पर अनेक छोटी-सी कविताएं मिलती हैं । विदेशी- वस्त्र- बहिष्कार के सिलसिले में सविनय अवज्ञा आंदोलन जो हुआ, उसका स्वागत सारे कवियों ने किया है । उनकी दाण्डी यात्रा, नोवाखली यात्रा, उनके उपवास खादी पर भी कविताएं उपलब्ध हैं । ऐसे विषयों पर कविताएं लिखनेवालों में सोहनलाल द्विवेदी जी का नाम विशेष स्मरणीय है ।

इन छोटे- छोटे मुक्तकों के अलावा गांधीवादी तत्वों को लेकर कई महाकाव्य, खण्डकाव्य, गीतिकाव्य, शोक गीति, कथिताकाव्य, गद्यकाव्य आदि भी लिखे गये हैं । इन में कवियों का एकमात्र उद्देश्य गांधीवाद की अभिव्यक्ति है । फिर भी, अभिव्यक्ति के रूप और शैली में विविधता अवश्य रही है । एक काव्य में किसी एक तत्व का प्रतिपादन हुआ है, तो दूसरे में सभी तत्वों का समावेश है । गांधीवादी कवियों ने अपने काव्यों के कलापक्ष की ओर भी काफी ध्यान दिया है । अतः गांधीवाद की अभिव्यक्ति के साथ साथ काव्य का कलापक्ष भी उभर आया है । तो भी उन्होंने भावपक्ष को अधिक महत्व देने का प्रयास किया है ।

यह निस्संदेह कहा जा सकता है कि काव्य के क्षेत्र में गांधीवाद को लेकर रचनाओं का स्तुत्य कार्य जो संपन्न हुआ है , वह अत्यन्त महत्वपूर्ण है ।

<u>गांधीवाद का भविष्य :</u> गांधीवाद केवल एक वाद या दर्शन मात्र न रहकर , एक व्यापक जीवन का लक्ष्य रहा है । गांधीवाद समष्टिवादी दृष्टिकोण को लेकर चलता था और समूची जनता को नैतिकता की राह पर चलाने का महाप्रयत्न वह कर सका । इस विशेषता के कारण ही सारे संसार तथा व्यक्तियों ने उसे अपनाया था और उसी राह पर चलने का संदेश भी सुनाया था । गांधीजी मर गये , परन्तु गांधीवाद का प्रतिपादन कुछ कुछ होता आया है । उनके बाद जवाहरलाल नेहरू, विनोबा भावे, और राजाजी इन तीन प्रमुख व्यक्तियों ने गांधीवाद को अपनाया और प्रचार तथा प्रसार किया ।

आजकल तो युग बदल गया है। इस युग में गांधीवाद है या यह संदेह सचमुच उत्पन्न हो सकता है। अब सिर्फ कहने भर के लिए उसका अस्ति रहता है। जीवन के धरातल पर उसकी स्वीकृति और प्रस्तुतीकरण की भावना नहीं दिखायी पड़ती। आज के युग में 'गांधीवाद' शब्द रटते हुए नर-हत्या क्रूर-कृत्य किया जाता है। नक्सलवादियों का आविर्भाव इसका सच्चा उदाहरण इन निर्दयों ने कितने ही भूस्वामियों और बड़े-बड़े धनी व्यक्तियों की दारुण की थी। ऐसी परिस्थिति में गांधीजी के सिद्धान्तों का पालन कहां हो सकता ?

गांधीवाद की महत्ता नष्ट हुई है - ऐसा कहना ठीक नहीं देश की ऐसी विकट एवं संकटपूर्ण दशा में भी गांधीजी और उनके तत्वों का समर्थ करनेवाले लोग रहते हैं। गांधीजी की जन्म - शताब्दी का उत्सव तो बड़ी धूम-से मनाया गया। इस समय गांधीजी और उनके तत्वों को पर कई कविताएं निक हैं और लेख भी लिखे हैं। वैसा ही उनके जन्म -दिन- दिवस का उत्सव भी हर स मनाया जाता है। उनके मृत्यु- दिन पर मौन प्रार्थना भी होती है। फिर भी आधुनिक युग के लोगों में स्पर्धा ही स्पर्धा दिखायी पड़ती है। विभिन्न पार्टि दलों की स्थापना ने जनता के बीच में आपसी विद्वेष पैदा किया है। फलतः आपस में झगड़ते- झगड़ते अपने को ही नष्ट कर देते हैं। बड़े बड़े विद्वानों द्वार और अहिंसा का उपदेश दिया जाता है। बस, वे लोग यों ही बकते रहते हैं। उनके उपदेश का असर जनता पर किंचित भी न पड़ता।

अतः इस दृष्टि से देखने पर यह कहना कठिन है कि गांधी का भविष्य कैसा और क्या होगा ? मगर इस संसार की सारी जनता यदि गांधी के तत्वों को अपनाने तथा उनका व्यवहार ठीक- ठीक अपने- अपने जीवन में करने प्रयास या कष्ट करें, तो इस संसार का भविष्य मंगलमय होगा।

परिशिष्ट

(महात्मा गांधीजी के वैविध्यपूर्ण व्यक्तित्व द्वारा उनके महामानवत्व का मूल्यांकन - हिन्दीतर भारतीय भाषाओं के आधुनिक कवियों की दृष्टि से)

परिशिष्ट

महात्मा गांधीजी के वैशिष्ट्यपूर्ण व्यक्तित्व द्वारा उनके महामानवपन का मूल्यांकन-

(हिन्दीतर भारतीय भाषाओं के आधुनिक कवियों की दृष्टि से)

---0000-----

भूमिका :

गांधीजी के विलक्षण व्यक्तित्व का प्रभाव हिन्दी के कवियों पर ही नहीं अन्य भारतीय भाषाओं के कवियों पर भी पड़ा है। `मृत्युंजयी` नामक गांधी- काव्य - संकलन, जिसका संपादन- कार्य श्री भवानीप्रसाद मिश्र और डा० प्रभाकर माचवे के हाथों से हुआ है। इस बात का उदाहरण है। भारत की स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद इस साल (१९६९-७०) में गांधीजी की अर्द्ध - शताब्दी मनायी गयी। प्रस्तुत संकलन गांधीजी की प्रेम और श्रद्धा भरी पुण्य - स्मृति में उनके प्रति श्रद्धांजलि के रूप में इस शताब्दी वर्ष में ही निकला है। इसमें विभिन्न भाषाओं के विभिन्न कवियों ने बड़े ही प्रेम और श्रद्धा के साथ महात्मा जी का स्तवन एवं यशोगान किया है।

१- महामानवता संबंधी कविताएं :

महामानव :

यह असमिया भाषा की कविता है जिसे असमिया की कवयित्री नलिनी बाला देवी ने लिखा है। उन्होंने ही पहले पहल नव- जागरण का अमृत जनता को पिलाया। जनता में सत्य का बोध उत्पन्न किया, स्वतंत्रता का दीपक जलाया, अछूत एवं अस्पृश्य जनता को मुक्ति - प्रदान कर नव- संस्कृति का निर्माण किया। उनको अपने व्यक्तित्व द्वारा मानवता का मूल्य समझाया। अहिंसा की शिक्षा दी, मानवता को जागृत किया, `हम करेंगे या मरेंगे` वाले प्रण को महत्व दिया। गांधीजी मुक्ति के पुजारी तथा भारत के देवता थे। मानवतावाद के वक्ता एवं प्रवर्तक थे। जनता का

जीवन ही उनका भी जीवन था। जनता का सुख- दुख ही उनका ही सुख- दुख था। वे जनता के हितान्वेषी और हित - फलदायी थे। उन्होंने अहिंसा और सत्य से, जो स्वतंत्रता - प्राप्ति के लिए उनके नव- मंत्र हैं जनता अथवा विश्व को नव- ज्ञान और नव- नीति प्रदान की।[१] गांधीजी ने भारत को जो अनश्वर स्वतंत्रता प्रदान की उसी का विवेचन इस कविता में हुआ है। देखने वालों की दृष्टि में वे एक साधारण आदमी लगते थे। फिर भी मानव- प्रेम, मानवता के प्रति करुणात्मक दृष्टिकोण, सर्व-मंगल भावना आदि एक 'महामानव' के से गुण विद्यमान थे। गांधीजी अपने उन गुणों से मानवों में महान थे। उनकी व्यावहारिक गति- विधियों की सहायता से उनके मानवीय गुणों का मूल्यांकन कर सकते हैं। प्रस्तुत कविता का उद्देश्य भी यही ज्ञात पड़ता है।

विश्व के बापु :

यह उड़िया के कवि श्री वैकुंठनाथ दास की कविता है जिसमें गांधीजी को विश्व के बापु बताया गया है। कवि ने प्रस्तुत कविता की रचना गांधीजी के जन्म- दिवस पर लिखी है। कवि को ऐसा लगता है कि वे इस दिन इस धरती पर पुन: अवतरित हुए हैं क्योंकि विश्व की प्रकृति एवं अन्य सजीव वस्तुओं में उनका प्रतिबिंब दिखाई पड़ता है।[२] गांधीजी का विष्णु के रूप में चित्रण हुआ है जो प्रत्येक युग में अनुकूल रूप धारण कर अवतरित होते हैं। जिस प्रकार ~~की~~ ~~कि~~ कि भगवान विष्णु अवतार लेते हैं। गांधीजी ने हिंसा की ज्वाला को असहयोग के पानी से बुझा दिया और विश्व में शांति और समाधान स्थापित ~~कि~~ किया जिससे वे विश्व- पिता कहलाये।

- -

१: मुक्ति के नव - मंत्र से तुम ने दिया नव - ज्ञान।
दी युग - नीति नव। (महामानव - नलिनीबाला देवी) -पृ० ४५

२: क्लान्त गगन पर कान्त रश्मियां फिर से छूट रही हैं
जीवन शतदल की कलिकाएं अब नव फूट रही हैं
दुर्वादल से हीन प्राण मरु के फिर हुए हरित हैं,
आज तुम्हारे शब्द - सुधा के निर्झर पुन: क्षरित हैं।
पुन: तुम्हारी मोहक बंशी की हर क्षण पर माया।
(विश्व के बापु - वैकुण्ठनाथ दास - पृ० ७१

महात्मा :

असममिया के कवि श्री रत्नाकर बरकाकति ने गान्धीजी को महात्मा कहा है। उनको जीवन्त कविता कहा है। वे जीवन्त सत्य का अनुसन्धान करते रहे। उनकी वाणी जो है देशोद्धार और देश- कल्याण का मर्म है। वे दीन पतित लोगों को शक्ति प्रदान करते थे। उन्होंने क्रांति की तप्त एवं उज्ज्वल ज्वाला पर अहिंसा को शीतल सुधा को प्रवाहित किया। यहां वे सत्यान्वेषी, शक्तिदाता, शांति-दाता आदि होने के कारण ` महात्मा ` चित्रित हुए हैं।

गुजराती के कवि श्री पूजालाल ने उनको ` महात्मा ` कहा है। गांधी जी आत्मिक के तौर पर वज्र से कठोर होने पर भी स्वभाव से कुसुम से कोमल थे। ऐसे कोमल स्वभाव वाले गांधीजी ने ही भारत को आजादी दिलाने का महान कार्य किया। गांधीजी ने रामत्व और मोहनत्व का समन्वय दिखायी पड़ता है। उनकी आत्मा राम और कृष्ण दोनों के भक्ति- रस में रमती थी। स्वयं मोहन होकर भी वे राम- नाम की महिमा पर जोर देते थे। वे राम के अनन्य उपासक थे। राम और कृष्ण में उनके लिए कोई भेद नहीं था। मरते वक्त भी उन्होंने रामनाम का ही उच्चारण किया। गांधीजी भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के अगुआ बने थे। भारत को स्वतंत्रता प्रदान करने के लिए कई दिशाओं में अनेक कार्य हो रहे थे। मगर गान्धीजी के फल- स्वरूप ही भारत स्वतन्त्र हुआ।[१] यहां कवि ने उनको कोमल स्वभाव वाले, धार्मिक एकता को प्रस्तुत करने वाले, स्वातन्त्र्य प्रेमी की दृष्टि से देखा है।

महान गांधी :

तमिल की कवयित्री श्र प० अन्नपूर्णि ने उनको ` प्रेम- भगवान ` की दृष्टि से देखा है। जो प्रेम उनमें वर्तमान था वह राष्ट्रीय प्रेम था। प्रेम, सच्चाई, दया आदि मानवीय गुणों का विश्लेषण भी किया गया है। गांधी शब्द का अर्थ ही सच्चाई बताया गया है।[२] गांधीजी दीन - पतित जनता के लिए ` करुणा का दीप ` थे।

- -

१: कोटि कोटि तप हुए राष्ट्र स्वातन्त्र्य दिशा में
किंतु तुम्हारे तपादित्य ने उषा उतारी घनी निशा में ।।
(महात्मा - पूजा लाल - पृ० १३३)

२: गान्धी नामक एक पद , जिसका अर्थ सचाई
बहुत प्रेम है सच है , गांधी नाम दुहाई। (महान गांधीजी - पृ० १५१)

राजनीति के क्षेत्र में गांधीजी के द्वारा संचालित असहयोग आन्दोलन बड़ा ही महत्वपूर्ण घटना बन गयी है। इसी आंदोलन के द्वारा उन्होंने देश की अंतर्राष्ट्रीय समस्याओं को सुलझाया। उनकी व्यावहारिक और राष्ट्रीय प्रवृत्तियों के कारण वे विश्व के बापू बन गये। उनकी इन सारी प्रवृत्तियों के मूल में विश्व - मंगल की भावना निहित है।

राष्ट्रपिता :

मलयालम के सुप्रसिद्ध कवि ~~म~~ जी० शंकर कुरुप ने उनको 'राष्ट्रपिता' माना है। इसमें कवि ने गांधीजी को समाज - सुधारक के रूप में चित्रित किया है।[१] वे सदा सत्य का अन्वेषण करते रहे और साथ ही अहिंसा के ~~सिद्धान्तों के~~ सिद्धान्तों का प्रवचन भी करते रहे। उन्होंने जाति-भेद के भाव को मिटाकर समस्त जातियों के लोगोंमें एकता स्थापित की और यह भी बताया कि सभी मानव ईश्वर के विभिन्न अंग हैं। अत: इनमें भेद- भावना का तिरस्कार अवश्यंभावी है।

हिन्दू, मुसलमान, सिख सब को सिखाया
कि हैं सब
एक ही सत्य कणिका के विविध अंश।[२]

बीच में उन्होंने गांधीजी के निधन के दारुण वातावरण का चित्रण भी किया है। उनके अहिंसात्मक कार्य, अस्पृश्यता - निवारण, जातीय ऐक्य आदि प्रवृत्तियों का उल्लेख इस कविता में हुआ है। उन्होंने ~~क~~ राष्ट्र के सुधार के लिए उतने कार्य किये हैं जितने उनसे हो सकते थे। इस कविता में उनके राष्ट्र- प्रेम और राष्ट्र के नव- निर्माता के स्वरूप की ओर ध्यान दिया गया है।

- -

१: अपनी जन्मभूमि की
गरीब झोंपड़ियों में
नया आलोक नया धीरज
और नया सौंदर्य पूरित करने के लिए
स्वातन्त्र्य भावना को विकसित करने के लिए
जीवन के मलिन तटों पर
आंसुओं के गहरे तलों में — राष्ट्रपिता - जी० शंकर कुरुप- पृ० २७६
अकिंचन दीन मानवों के साथ ही। २: वह सदा घूमते रहे। -वही० पृ० २७८

२- प्रत्यक्ष रूप से गांधीजी का विवेचन :

महात्मा गांधी :

कन्नड़ के कवि श्री मल्ली जगतीर्थ ने उनकी संयमशीलता के कारण गांधीजी को महात्मा बताया है। उन्होंने भारत को दासता से मुक्त करके उसके विशाल भाल पर स्वतंत्रता का मणि- मुकुट लगाया है। वे अहिंसा के प्रतीक हैं जिन्होंने अहिंसा सुमन की सुगंध विश्व - भर में फैलायी। उनमें मुनियों का - सा चारित्र्य, गंगामाता की-सी पवित्रता, हिमालय की-सी दृढ़ता, और धरती की वत्सलता मिलती हैं। जो उन्हें महात्मा बना सके।[१]

तमिल के कवि श्री भारतीदासन ने महात्मा गांधी पर एक कविता लिखी है जिसमें पराधीनता के दिनों में जनता से विदेशी वस्त्र- बहिष्कार के सिलसिले में खादी पहनने तथा दासता से छुटकारा पाने के लिए अपने को बलिदान करने का उपदेश गांधीजी ने जो दिया था उसका वर्णन है। उसमें मुख्यतया खादी को प्रधानता दी गयी है। खादी पहनने वाले गांधीजी को कवि ने ' नारद ' कहा है। गांधीजी की भांति खादी का वस्त्र पहनकर भारतमाता की आजादी के लिए मर मिटना है - यही कवि का अनुरोध है। उन्होंने खादी को 'वेदों का मधुसार', 'जीवन की मधुधार' और 'गोदे की धार' कहा है।

पंजाबी के कवि श्री धनीराम चात्रिक ने महात्मा गांधी पर एक कविता रची है जिसमें उनको नव युग की नव- चेतना के नव- निर्माता के रूप में चित्रित किया गया है। गांधीजी का जन्म अत्यंत विकट परिस्थितियों में हुआ जो भारतीय जनता के लिए वरदान स्वरूप था।[२] कवि ने उनको स्वतंत्रता - संग्राम का मुख्य प्रवर्तक माना है।

१: ऋषियों का चारित्र्य तुम्हारे जीवन में
गंगा का पावित्र्य तुम्हारे है मन में
कर्मों में है उच्च हिमालय की दृढ़ता
जन- जन में पृथ्वी की पावन वत्सलता। - महात्मा गांधी-पृ०६५

२: काम कठिन था लाना मुख पर आजादी का
जन्म हुआ तब प्रभु की इच्छा से गांधी का। - महात्मा गांधी-पृ० २०१

उर्दू के कवि श्री गोपीनाथ 'अम्न' ने भी महात्मा गांधी पर एक कविता की रचना की है जिसमें गांधीजी को स्वतंत्रता- दाता के रूप में चित्रित किया गया है। गान्धीजी स्वतंत्रता का संदेश लेकर भारत आये और उन्होंने अत्याचार और अनीति से भरी दुनिया में सत्य तथा सच्चाई की आवाज उठायी। वे अपने कर में विजय - पताका लेकर आन्दोलनों के सिलसिले में गांधी - दल के नायक रहे।[१]

बापूजी

असमिया के कवि ने प्रस्तुत कविता में उनकी व्यक्तिगत अमूल्य गुण-राशि का विश्लेषण करके उनकी गरिमा की महिमा गायी है। गांधीजी ने देश को आजादी प्रदान करने लिए महान एवं सुप्रसिद्ध 'मुक्तियज्ञ' किया। वे न्याय और निष्ठा में युधिष्ठिर थे, दया और ममता में गौतम कहलाये, क्षमा और करुणा में ईसा रहे।[२] गान्धीजी भारत के बुद्ध और श्रीरामचन्द्र जैसे अवतार - पुरुष माने जाते थे। इसमें उनके व्यक्तित्व का महत्व स्पष्ट लक्षित हुआ है।

कन्नड़ के कवि के श्री शशिकांत अनिसिंहो ने अपनी 'बापूजी' शीर्षक कविता में उनको संहारमूर्ति शिवजी का रूप प्रदान करते हुए, उनके विश्व - व्यक्तित्व का समर्थन किया है। शांति को गांधीजी का वाम - लोचन, अहिंसा को दाहिना नेत्र एवं ~~(सत्याग्रह को तीसरी आंख कहकर उन पर शिवत्व का आरोप किया है।)~~

- -

१: जिसने सालार बनाये थे न जाने कितने
हिन्द के मुल्क में वह काफ़िला - ए - सालार था वो।
(महात्मा गांधी - गोपीनाथ 'अम्न' - पृ० ७८

२: न्याय निष्ठा में युधिष्ठिर तुम
दया में थे दूसरे गौतम
क्षमा ईसा सी अलौकिक थी
हानि चाही नहीं हिंसक की।
- बापूजी - मेघराम पाठक - पृ० ५३

सत्याग्रह को तीसरी आंख कहकर उन पर शिवजी का आरोप किया है ।[१] उन्होंने जाति-भेद का जो विष पीकर जनता को सांप्रदायिकता से बचाया ।

गान्धी :

कश्मीरी के कवि श्री दीनानाथ नादिम ने अपनी प्रस्तुत कविता में उनके शौक, साधु, पौरुष आदि व्यक्तिगत गुणों से ` गान्धी ` सिद्ध किया है । उनके पौरुष का चित्रण यों किया गया है - जिन्होंने एक प्यार की फूंक से पल भर में संघर्ष की तलवारों को तोड़ दिया ।[२] गान्धीजी प्रेम के मूर्तिमान प्रतीक थे और अत: उनको प्रेम की मूर्तिमान अभिव्यक्ति कहा है ।

तेलुगु के कवि कल्लूरम् रुक्मिणीनाथ शास्त्री ने अपनी ` गांधीजी नामक कविता में उनकी महिमा गायी है । देश की दरिद्रता और राजनीति की कटुता मिटाने के लिए वे सत्य और शान्ति के सन्देश का दूत बनकर भारत - भर की यात्रा करते थे । कवि की आशा है कि जनता भी उन्हीं के बताये अहिंसा पथ पर चलकर सत्य को प्राप्त कर सकेगी ।

तेलुगु के ही और एक कवि बो० वी० जी ने ` गान्धीजी ` नामक कविता में उनमें साधारणत्व और असाधारणत्व का समन्वय बताने का प्रयास किया है ।

- -

९. न्याय निष्ठा में युधिष्ठिर तुम १:
दया में थे दूसरे गौतम
क्षमा ईसा सी अलौकिक थी
हानि चाही नहीं किसक की ।
- बापूजी - मेघराज पाठक - पृ० ५३

१०. शान्ति वाम- लोचन है
अहिंसा नेत्र दाहिना
सत्याग्रह तीसरा
शिव का क्रियाशील प्रदीप्त नयन है ।
- बापूजी - शशिकांत अनिलिंठी -पृ० १००

१: जा प्यार की फूंक से पल भर में , तोड़ी तलवारें थीं जिसने
वह पौरुष कहलाया गान्धी, प्रिय नाम उसी का है बापू ।। -गान्धी - पृ० ११३

गान्धीजी के एक मामूली आदमी होने पर भी उनमें असाधारण व्यक्तित्व मौजूद था। तृण के समान दुर्बल दिखाई पड़ने पर भी वे मेरू - से वीर थे। कवि ने उनको अन्याय और अत्याचार के समक्ष आग्नेय अगुवा (नेता) एवं समस्त चराचर के लिए मार्ग-निर्देशक कहा है।[१]

३- परोक्ष रूप से गांधीजी का विवेचन :

सत्याग्रही :

उड़िया के कवि श्री गोपालचन्द्र मिश्र ने गांधीजी को सत्याग्रही बताया है जिन्होंने भारत की स्वतंत्रता के लिए कई बार सत्याग्रह -आन्दोलन घटित किया था। उन्होंने जीवन और सत्य को मिलाने का सब प्रयत्न किया है।[२] वे जीवान्त तक सत्य के आग्रही रहे हैं।

स्नेह- मूर्ति (विश्वमय भगवान)

उड़िया के दूसरे कवि श्री वीर किशोर दास ने उनकी जन- सेवा की महिमा गायी है जो अखंड मानव- प्रेम तथा राष्ट्र- प्रेम से प्रभावित थे। वे एक ऐसे महान व्यक्ति थे जिन्होंने अपने शरीर को देशोद्धार का साधन बनाया और प्राण को मानव- कल्याण का। उनमें कीर्ति, प्रतिष्ठा, पद आदि की इच्छा बिल्कुल नहीं थी, सत्कार को वे विष के समान मानते थे। वे सदा जनता के प्रति स्नेहशील रहकर उनसे स्नेह अर्जित करना चाहते थे। उनका प्रेम विश्वमय था।

- -

१: अन्यायके समक्ष -
आग्नेय अगुवा
चराचर संसार के लिए
क्षमता का पथ - प्रदर्शक
- गांधीजी - बी० मी० - पृ० ११६

२: वह प्रशांत मन रहा शत्रु के आगे स्नेह न उसने छोड़ा
उसने इस नश्वर जीवन को, शाश्वत नित्य सत्य से जोड़ा ।।
- सत्याग्रही - गोपालचन्द्र मिश्र - पृ० ६४

गान्धीजी के एक मामूली आदमी होने पर भी उनमें असाधारण व्यक्तित्व मौजूद था। तृण के समान दुर्बल दिखाई पड़ने पर भी वे मेरु - से धीर थे। कवि ने उनको अन्याय और अत्याचार के समक्ष " आग्नेय अगुवा (नेता) एवं समस्त चराचर के लिए मार्ग-निर्देशक कहा है।[१]

२- परोक्ष रूप से गांधीजी का विवेचन :

सत्याग्रही :

उड़िया के कवि श्री गोपालचन्द्र मिश्र ने गांधीजी को सत्याग्रही बताया है जिन्होंने भारत की स्वतंत्रता के लिए कई बार सत्याग्रह -आन्दोलन घटित किया था। उन्होंने जीवन और सत्य को मिलाने का खूब प्रयत्न किया है।[२] वे जीवान्त तक सत्य के आग्रही रहे हैं।

स्नेह- मूर्ति (विश्वमय भगवान)

उड़िया के दूसरे कवि श्री वीर किशोर दास ने उनकी जन- सेवा की महिमा गायी है जो अखंड मानव- प्रेम तथा राष्ट्र- प्रेम से प्रभावित थे। वे एक ऐसे महान व्यक्ति थे जिन्होंने अपने शरीर को देशोद्धार का साधन बनाया और प्राण को मानव- कल्याण का। उनमें कीर्ति, प्रतिष्ठा, पद आदि की इच्छा बिलकुल नहीं थी, अहंकार को वे विष के समान मानते थे। वे सदा जनता के प्रति स्नेहशील रहकर उनसे स्नेह अर्जित करना चाहते थे। उनका प्रेम विश्वमय था।

- -

१: अन्यायके समक्ष -
आग्नेय अगुवा
चराचर संसार के लिए
समता का पथ - प्रदर्शक
- गांधीजी - बी० मी० - पृ० ११६

२: वह प्रशांत मन रहा शत्रु के आगे स्नेह न उसने छोड़ा
उसने इस नश्वर जीवन को, शाश्वत नित्य सत्य से जोड़ा।।
- सत्याग्रही - गोपालचन्द्र मिश्र - पृ० ६४

स्नेह बीज :

गुजराती के कवि श्री सुन्दरम् ने गांधीजी को स्नेह का बीज माना है जिन्होंने भारत की धरती पर स्नेह का बीज बोया था। भारतकी राजनीति के क्षेत्र में पाशविक कृत्यों का घोर ताण्डव हो रहा था। इसी वक्त जनता के दयनीय स्वन के फल- स्वरूप गांधीजी को जन्म देकर ईश्वर ने अनुगृहीत किया। गांधीजी के भारत में पदार्पण करने से गांधीयुग की धारा बहने लगी। गांधीजी पापियों को भी प्यार करते थे और उनकी हत्या के विरोधी थे।[1] इसी बीज से राष्ट्रीय एकता फूली और फली।

मोहन कमल :

अंग्रेजी की कवयित्री श्रीमती सरोजिनी नायुडु ने गांधीजी को कमल-पुष्प कहा है। उनमें कोमल कमल फूल की जैसी निर्मलता, अलौकिकता, शुभ्रता, स्वच्छता सुन्दरता आदि गुणों कादर्शन कवयित्री ने किया है। उनके प्रेम रस से मोहित होकर असंख्य लोग रस पान के लिए आते थे और कुछ लोग ऐसे भी थे जो उनसे घृणा करते थे। उनका अटल ईश्वर के - विश्वास ही उनके कर्तव्य का मूल-आधार था। यहां उनके व्यक्तित्व की विशेषताओं का प्रतिपादन किया गया है।

एक सपना :

तेलुगु के कवि श्री० के ० वे ० नृ० अप्पाराव ने जो स्वप्न देखा कि भारत भूमि में शांति और समाधान को स्थापित करने के लिए गांधीजी नामक एक महापुरुष को भगवान देने वाले हैं, उसी का वर्णन है। भारत में हिंदू और मुसलमान दोनों किसी न किसी बात पर आपस में लड़ते थे। कभी जाति के नाम पर, कभी धर्म के नाम पर और कभी पूजा- पाठ आदि के नाम पर। भगवान काकथन यह है कि प्रत्येक व्यक्ति को अपने अपने धर्म का पालन करना चाहिए और उसमें जो कहा गया है उसी के अनुसार प्रयत्न करना चाहिए।[2] गांधीजी भी ऐसे ही व्यक्ति थे जिन्होंने किसी भी

- -

१: पापी को न हनो,
उससे तो पाप जगत द्विगुणित होंगे। (स्नेह बीज- पृ० १३७)

२: तेरा धर्म तुझे जो कहता वह तुम सुख निभा लेना।
औरों को जो अपने रास्ते जाते हैं, मत अटकाना। (एक सपना- अप्पाराव-पृ० १९

धर्म में कोई अंतर नहीं देखा और सारे धर्मों के सिद्धान्तों को समान दृष्टि से देखा है। यहां गांधीजी के जन्म की ओर ही संकेत है।

एक ही ज्योति :

श्री जगन्नाथ टंकसाली ने, जो मराठी के कवि हैं, गांधीजी को 'विश्व दीपक' कहा है। भारत में वर्तमान संघर्षों के कारण चारों ओर अंधकार ही अंधकार था। ऐसे समय गांधीजी रूपी विश्व दीपक की एक ही ज्योति ने संघर्षजन्य तमस को दूर किया और आज़ादी की प्रकाश किरणों को फैलाया। यह एक ही शाश्वत ज्योति थी जो दिन-रात जलती रहती थी। गांधीजी एक ही व्यक्ति थे जो भारत को आज़ादी दिलाने के लिए अथक कार्य करते रहे। यह एक विचित्र दीपक था जो बिना तेल के, बिना मंद पड़े, उज्ज्वल होकर अपनी आभा प्रदान करता रहा।

फक्कड़ फकीर :

श्री प्रभाकर चिखाण मराठी के एक कवि हैं जिन्होंने एक फक्कड़ फकीर के रूप में गांधीजी का चित्रण किया है। यहां उनके व्यक्तिगत गुणों का परिचय मिलता है। वे निःशस्त्र वीरों के वीर नेता थे। वे चिंता-विहीन, विद्याहीन, धन-हीन, मांसहीन किंतु गंभीर व्यक्ति थे। गांधीजी एक प्रकार से विरोगी पुरुष थे। फिर भी वे स्वतंत्रता के वीर सिपाही रहे, गरीबों के हमराही और सत्य के मूर्तिमान पुजारी रहे। गांधीजी तन से निर्बल होने पर भी मन से सबल सधीर और समर्थ थे।

रोशनी की याद :

श्री सलाम मछली शहरी जी ने जो कि उर्दू के कवि हैं, भारत में गांधीजी का आगमन उसकी गुलामी की दशा में बताया है। उनको राष्ट्र का दीपक माना है और उसमें से जो प्रकाश आता था उसी राष्ट्र में नव-ज्योति लायी, ऐसा बताया है। यह प्रकाश वास्तव में गांधीजी ही हैं। गांधीजी स्वतंत्रता के कारखाने के नेता रहे और भारत का पुनर्निर्माण करने का आदेश जनता को देते रहे। वे वर्तमान युग के पैगंबर माने जाते हैं। कवि कहते हैं कि उनके बताये मार्ग पर चलकर नव-चेतना की उमंग भरे तन से नवीन कार्य करना चाहिए और भारत की एक नयी और अकलंक तस्वीर खींचनी चाहिए। अब तक तो आज़ादी ही मिली है, भारत का नव-निर्माण शेष रहा है। गांधीजी भारत देश की

रूपी दीपक की रोशनी हैं जिन्होंने देश - भर को अपने आत्मबल से रोशन बना दिया ।

अभ्युदय :

असमिया की कवयित्री श्रीमती अंबिका गिरिराय चौधुरी ने यहां गान्धीजी के आगमन के बारे में कहा है। उनके आने से भारत में अभिनव चेतना का उदय हुआ है। गांधीजी की वाणी सुनायी पड़ी और जनता के मन में नवीन आशा-अभिलाषाओं की किरणें फूट निकलीं। उनके पदार्पण से भारत में बड़ा परिवर्तन हुआ।[१] कवयित्री ने उनको ' सर्वंजयी चेतना का रवि ' कहा है। यहां उन्होंने देश की परिवर्तित परिस्थिति के वर्णन के साथ साथ गांधीजी का भी उल्लेख किया है।

मेरे गुरुदेव :

मलयालम के सुप्रसिद्ध कवि श्री वल्लतोल नारायण मेनन ने गांधीजी की कुछ ऐसी वैयक्तिक - गुण- विशेषताओं का उल्लेख किया है जिनके द्वारा उनके चरित्र पर प्रकाश पड़ता है। कवि ने उनको अपना गुरुदेव माना है। गांधीजी वसुधैव कुटुंबकम् की भावना के पोषक थे ; अत: उन्होंने समस्त देश को अपनाघर माना था। वे अलंकार, आभूषण आदि के त्यागी थे। वे जन्तु - हीन तीर्थ, सर्प-छाया विहीन माणिक्य महानिधि और निष्कलंक चन्द्रमा थे। उन्होंने अस्त्र त्याग कर अहिंसाके द्वारा अत्यन्त शांतिपूर्ण मुक्ति- यज्ञ किया। गांधीजी का नारा यह था कि अहिंसा महान

- -

१: युग युगान्त की जड़ता को कर चूर्ण
ध्वनित है स्वर
योगी के मुक्ति - शंख का जयघोष में
अस्त प्रचण्ड अजेय अहिंसक आत्मा के बल का है केवल
उखड़ रहे हैं पांव आसुरी - वृत्ति - व्यूह के
सब तिरोहित होती जातीं अन्ध रूढ़ियां ।
बिखर रहे हैं घटा- टोप आलस्य आदि -
दुर्गुण समूह के। (अभ्युदय - पृ० ४१)

व्रत है और उनके आगे तलवार के शस्त्र आदि तुच्छ हैं।[१] उन्होंने प्रेम से संसार पर विजय प्राप्त की। उनके पद - स्पर्श से कायर वीर, क्रूर कृपालु, कंजूस दानी, पलकवादी प्रियवादी, अशुद्ध शुद्ध बन जाता है। यह उनकी चरण - महिमा है। गांधीजी विभिन्न देवों और महापुरुषों से प्रभावित दिखाई पड़ते हैं।[२] गान्धीजी स्थल - वातावरण आदि की परवाह कदापि नहीं करते थे। कर्तव्य उनका परम लक्ष्य था। उनके लिए कानन- प्रदेश भी है कांचन- सभा मंडप सा। कवि ने उनको कल्प - वृक्ष कहा है जो मंगल - फल प्रदान करता है। कवि ने उनके चारित्रिक गुणों की गरिमा गाते हुए उनके कर्तव्यप्रिय व्यक्तित्व का विवेचन किया है।

४- स्तवन के रूप में :

गांधीजी सूक्ति मुक्तावली :

इसमें संस्कृत के कवि श्री चिंतामण द्वारकानाथ देशमुख ने गांधीजी के कुछ नैतिक विचारों का प्रतिपादन करते हुए उनके व्यक्तित्व का परिचय देने का प्रयास किया है। गान्धीजी पहले से ही स्वतंत्रता- प्रेमी थे और इसलिए उन्होंने भारत को स्वतंत्र बनाना चाहा और उनकी यह अभिलाषा भारत की आजादी के साथ पूरी हुई

१: शाश्वत अहिंसा है महात्मा - व्रत
शांति है इष्ट देवी गुरु से
'किस तलवार को न मोड़ देता
अहिंसा का कवच।' - सुना उस गुरु से। (मेरे गुरुदेव - पृ० २८३)

२: भगवान ईसा का वह महान बलिदान
श्रीकृष्ण जी की धर्म- रक्षा
व बुद्ध - निर्वेद, शंकर की प्रतिभा
रन्तिदेव - करुणा, हरिश्चन्द्र का सत्य प्रण
मुहम्मद की दृढ़ता के एक साथ दर्शन
जिनमें हो वे मेरे गुरुदेव। जय।
- मेरे गुरुदेव - पृ० २८३

वे समस्त धर्मों के सिद्धान्तों एवं विचारों का समान रूप देखकर उनमें समन्वयात्मक भावना लाये । उनके लिए स्वप्न बुलबुले के समान के समान नहीं है और इसलिए कि उन्होंने अपने मन में रामराज्य का सपना जो सपना देखा था अब वह यथार्थ सत्य बन गया । वे महात्मा की अपेक्षा सत्यप्रेमी रहना चाहते थे । गान्धीजी एक साधु,- सेवक, ईश्वर - दास, अनुकरण- प्रिय, महान त्यागी, ईश्वर - विश्वासी, विरागी थे । गान्धीजी पद,प्रतिष्ठा आदि के विरोधी थे ; वे ईश्वर का दास एवं जनता का सेवक मात्र रहना चाहते थे । वे भौतिकता से सर्वथा विराग रखने के कारण शांति और सन्तोष का जीवन बिताते थे । वे कहते हैं कि मानव का शरीर एक विषमय कारावास है और लोक संसार की भौतिक वस्तुओं की ओर आकर्षित होकर उन्हें पाने की इच्छा उनमें बना लेते हैं । इसलिए उनका जीवन अशांति और पतन की ओर उन्मुख है ।[१]

<u>आरती :</u>

उर्दू के कवि श्री गोपाल मित्तल ने यह कविता एक युवती को गांधीजी की आरती उतारते देखकर लिखी है । गान्धीजी ने भारत को स्वतंत्र बनाकर उसमें नव- जीवन की नव- ज्योति जलायी थी । कवि कहते हैं कि , चाहे दीपक की ज्योति मिट जाय,पर 'मनकी ज्योति ' न मिटने पाए क्योंकि यह अनोखी है । यह ज्योति गांधीजी के मन की ज्योति थी । वे भारत के लिए नव- ज्योति का पुंज थे । इस ज्योति के बिना भारत की दासता का अंधकार मिटना संभव नहीं था । अत: कवि कहते हैं कि मन की ज्योति सदा उज्जवल है और इसे मिटाना मूर्खता होगी । उसे हमेशा जलाते रहना ।[२]

<u>गान्धीगाथा :</u>

तमिल के कवि श्री जगन्नाथन् ' जाती ' ने उनके वैयक्तिक और व्यावहारिक गुणों का वर्णन किया है । उनका जीवन साधु- सन्तों के जीवन की भांति था

- -

१: अयं काराल्पा अमितविषसमा पार्थिवतनु:
परन्त्वस्यां शान्तिहृर्यपि च मम तुष्टिर्गतमभूत्।।(गा:सू:मु: पृ० ३६)

२: मन की ज्योति हरदम उज्ज्वल तन चाहे मिट जाए
ना मुमकिन है इस ज्योति की लौ मद्धम पड़ जाए ,
जोत न बुझने पाये । जोत न बुझने पाये ।। (बढ आरती-पृ० ७७)

फिर भी वे बाजाय वस्त्र पहने नहीं थे। उनमें जीवन के प्रति प्यार था, ममता थी, आदर भी। भौतिकता के प्रति उन जैसा विरागी एवं त्यागी व्यक्ति का मिलना कठिन है।[1] उनका अहिंसात्मक रूप - चित्रण बहुत ही सुन्दर हुआ है।[2] गान्धीजी राष्ट्र प्रिय नेता थे, अहिंसा के व्रती, वीर योद्धा, ज्ञानी, एवं महात्मा थे। सत्य और अहिंसा उनके श्वास और उच्छ्वास थे। सत्याग्रह के बल और संयमित नियम के पालन से उन्होंने अपना प्रशस्त पथ चमत्कृत किया। कर्तव्य - निरत जीवन होने के कारण उनमें जीवन के प्रति एक ओर विरक्ति और दूसरी ओर आसक्ति दिखाई पड़ती हैं। सांसारिक सुख भोगने के लिए नहीं कर्तव्य बोध निभाने के लिए वे जीवित रहे।

गांधी पंचकम् :

तमिल के और एक प्रसिद्ध कवि सुब्रह्मण्य भारती ने गान्धी पंचकम् की रचना की है जिसमें उनकी महिमा का कीर्तन किया गया है। उन्होंने परतंत्रता से देश को स्वतन्त्र किया, राजनीति में आध्यात्मिकता का पावन समन्वय किया, समाज में सुधारवादी प्रयत्न किया और अहिंसा - असहयोग द्वारा संसार का कल्याण किया। असहयोग आन्दोलन के द्वारा उन्होंने भारत के उज्वल भविष्य और संसार के पावन कल्याण को निहारा। अन्त में उनको महात्मा कहकर उनको अमरता प्रदान की गयी है।

वन्दन :

श्री शरद उपाध्ये ने, जो मराठी के कवि हैं, गान्धीजी को युगपुरुष बताया है। इसमें उनकी वन्दना की गयी है। वे बिना शस्त्रास्त्र के शूर- वीर सिपाही थे। उनके द्वारा लड़ी लड़ाई भी विचित्र थी। वे दलितों तथा पतितों के साथी थे।

- -

१: फिर भी नहीं पाया है किसी ने ऐसा वीतराग मन, त्यागमय तन
कहते हैं परिचित जो गान्धी के जीवन से, जानते हैं गांधी पंथ। -
- गान्धी गाथा - पृ० १४३

२: भाला नहीं कोई त्रिशूल नहीं बन्दूक, गोली नहीं अस्त्र शस्त्र
शालीन सौजन्य दिखलाकर साम्राज्यवाद - भय मिटाया ॥
- गान्धी गाथा - पृ० १४३

जातिभेद तो उनके लिए विषैला था। उनका मन हिमालय सा विशाल तथा उन्नत था। उनके अधरों पर सदा रामनाम की धुन थी और वदन पर सुंदर हंसी थी। उन्होंने ही भारत को अहिंसा का मन्त्र दिया। अत: अंत में कवि ने भारत में शांति निकेतन की स्थापना की कामना की है।[1]

५- गांधीवादी कविताएं :

अहिंसा की जीत :

उर्दू के कवि श्री रिफअत सरोश ने इसमें पहले भारत के अत्याचार पूर्ण वातावरण का चित्रण करते हुए उसमें अहिंसा द्वारा जो विचित्र परिवर्तन हुआ, उसी का वर्णन किया है। यहां मुख्यत: हिंसा पर अहिंसा की विजय का प्रतिपादन है। गान्धीजी ही अहिंसा के प्रयोग के नेता थे। राष्ट्र को एकता का संदेश दिया, जनता को भाई - भाईपन का पाठ सिखाया। फिर भी विदेशी विद्रोह बढ़ता रहा। तब अहिंसा का दीप जलता ही रहा। हिंसा का लोहा पिघलने लगा। बन्धन की कड़ियां टूटने लगीं। फिर से नई जिंदगी का भी गणेश हुआ।[2] गान्धीजी के आगमन से भारत की

- -

१: तेजोमय दीप जगत् हित
तेरे अमर कार्य से लाभित
मानवता का मार्ग प्रकाशित
जग में जागे शांतिनिकेतन। (वन्दन - पृ० २४५)

२: मगर दीप अहिंसा का जलता रहा
तशद्दुद का लोहा पिघलता रहा,
शदायद का तूफां उतरने लगा
कि जुल्म अपनी ही मौत मरने लगा।
कटी फिर असीरी की तरीक रात
नई सुब्ह फिर लायी ताजा हयात।
दुल्हन जिंदगी की संवरने लगी
संवरने लगी रक्स करने लगी। (अहिंसा की जीत - पृ० ८७)

जनता ने विदेशी शत्रुता पर विजय पाली । गांधीजी के अहिंसास्त्र ने विदेशों के लोहास्त्रों को चकनाचूर कर दिया । इस प्रकार अहिंसा की जीत से भारत की जीत हुई । कवि ने यहां अहिंसा की महिमा और पवित्रता पर विचार किया है ।

<u>बिना खड्ग के बिना खून के :</u>

तमिल के कवि श्री० नामक्कल रामलिंगम् पिल्ले ने गांधीजी द्वारा संचालित अहिंसात्मक स्वातंत्र्य संग्राम के महत्व को प्रतिपादित किया है । यह संग्राम अत्यन्त विलक्षण और अभिनव था कि जनता ने इसके पहले ऐसा संग्राम कभी नहीं देखा है। इसमें घोड़ा - हाथी का काम नहीं आता था । हिंसात्मक वृत्ति की कल्पना तक न थी । इसका उद्देश्य केवल स्वदेशी भावना मात्र थी ।[१] गान्धीजी ने उत्तम अहिंसा धर्म के द्वारा जनता को सत्कर्म के मार्ग पर अग्रसर किया । इस कविता में भी अहिंसा धर्म का विवेचन किया गया है ।

६- <u>श्रद्धांजलि के रूप में :</u>

<u>३० जनवरी १९४८ :</u>

मराठी के कवि श्री भाट सीताराम मर्ढेकर ने इसमें गांधीजीकी मृत्यु के बारे में कहा है । उनकी मृत्यु इसी दिन हुई आज भी इसी दिन गान्धीजी को किसी न किसी रूप में श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं । दो ही मिनट की बात थी । उनके शत्रु के मन में गांधीजी की हत्या करने की पागल आशा बनी रही थी । इस आशा से वह इतना पागल बन गया था कि एक दिन यानी इसी दिन (३० जनवरी को) उनकी हत्या कर ही डाली ।

<u>गान्धीजी को दिल्ली :</u>

यहां बंगला के कवि श्री देवेश दास जी ने अपने मन की कुछ बातें प्रस्तुत करने का प्रयास किया है । यमुना के तट पर राजघाट तो गान्धीजी की स्मृति लेकर

१:. नहीं अश्व या हाथी इसमें ना हिंसा आवेश
नहीं किसी को मोह न विजयी नहीं विरोधी शेष
नहीं कोप , या ताप- शाप या नहीं किसी से द्वेष
नहीं लालसा कुकर्म की, है केवल ध्येय स्वदेश ।(बिना खड्ग के -- पृ० १४७)

चुपचाप पड़ा है। दिल्ली भी वहां अपना गौरव दिखाती हुई खड़ी है। जब दिल्ली पर आक्रमण हुआ था उस समय गान्धीजी अहिंसास्त्र लेकर आये थे। गांधीजी की प्रेरणा पाकर जनता उन्हीं के प्रेम मार्ग पर चलने को थी, तभी उन्हें निष्ठुर काल ने निगल लिया। कवि अब उन्हीं की शेषस्मृति लेकर घूमते फिरते हैं।

सलाई युं में फिर सलाई :

यहां कश्मीरी के कवि शंभुनाथ भट्ट 'हलीम' ने गान्धीजी की हत्या पर कहा है। ईसा को क्रूस पर चढ़ा दिया, सुकरात ने विषपान किया और गांधीजी की दारुण हत्या की गयी। भारत की स्वतन्त्रता - प्राप्ति के पूर्व अनेकों विदेशी लोगों ने अनेक युद्ध किये थे, तब गांधीजी ने अपने अहिंसा, प्रेम और कोमल स्वभाव से हिंसा पर विजय प्राप्त की। ऐसे महान व्यक्ति की ~~असमय~~ की मृत्यु हुई है।

वंचना : (मोहनदास करमचंद गांधी) - इसमें असमिया के कवि श्री नवकान्त बरुआ ने गांधीजी की अप्रत्याशित मृत्यु को किसी के द्वारा की गयी वंचना बतायी है। अब तो उनकी स्मृति के लिए केवल राजघाट ही है।

छाया :

कन्नड़ के कवि नरसिंहाचार ने गान्धीजी की छाया का चित्रण किया है। गांधीजी वास्तव में मर चुके। लेकिन उनको लगता है कि गांधीजी फिर भी इस पृथ्वी पर घूमते रहते हैं। अत: कवि कहते हैं कि यह तो गांधीजी ही है या उनकी छाया मात्र। ईश्वर की इच्छा जहां वहां गतिशील होती फिरती है उसी प्रकार गांधीजी उस ईश्वर का अनुचर लगते हैं।

बापु आप अमर हैं :

कन्नड़ की कवयित्री श्रीमती सरोजिनी महिषी ने गांधीजी को अमरता प्रदान की है। गांधीजी ने अपने अहिंसा के धर्म से अस्त्रों का अंत दूर किया। उन्होंने मनोबल, आत्मबल, नैतिक बल एवं जनबल आदि चतुर्बल से दुष्कर्मों के और अनीतियों

सामना करके, भारत को स्वतंत्रता दी । उनके दर्शनार्थ जहां तहां शिला- प्रतिमाएं रखी ग गयी हैं । स्मरणार्थ अनेकों विद्यालयों, ग्रंथालयों, दुकानों को उनका नाम दिया गया है। संसार में भलाई - बुराई, दुर्जन- सज्जन, दुर्गुण- सद्गुण दोनों रहते हैं । बुराई के बिना भलाई का मूल्य नहीं जान सकते हैं - यह लोक नीति है । वैसे ही व असत्य को जानने वाले ही सत्य को जान सकता है ।[१] गांधीजी ने भी बचपन में चोरी की थी, झूठ कहा था और वे कुसंग में भी पड़े थे । मगर बाद में वे सत्य का मूल्य समझ सके और अपने दुश्चरित्र को हटा दिया । गांधीजी कानाम शाश्वत होकर विश्व भर में गूंजता रहता है ।

है यही नियम :

कश्मीरी के कवि वासुदेव 'रेह' ने विश्व नियम का समर्थन करते हुए मानव पर भी इसके व्यवहार का प्रकाश डाला है । गांधीजी ने इस धरती पर जन्म लिया, आजीवन उसके लिए प्रयत्न किया और इस संसार से वे चले गये । मानव-जीवन का यही नियम होता है । भारत के वे नेता रहेऔर अपने प्रयत्नों द्वारा उन्होंने देश को स्वतन्त्रता प्रदान की । उन्होंने अपना सर्वस्व जनता के उद्धार की वेला में अर्पित कर पृथ्वी को अपना कुटुंब समझ लिया । उनकी प्रेमभरी वाणी में जनता को आकृष्ट करने की एक अद्भुत शक्ति थी । उन्होंने बताया कि प्रेम सदा से परम शक्ति है । कवि ने यह अभिलाषा प्रकट की है कि गांधीजी अब जिंदा नहीं हैं फिर भी उस गांधी - पथ पर चलते हुए हमें जीवन बिताना चाहिए ।

अग्नि की तीन अंगुलियां :

यह गुजराती के कवि उमाशंकर जोशी की कविताहै - गांधीजी की हत्या केवल तीन गोलियों से हुई । ये तीन गोलियां उनके शत्रु की तीन करांगुलियां थीं । इन गोलियों ने गांधीजी के प्राण रूपी पुष्प को तोड़ दिया । कवि का कहना है कि

१: असत्य जो जानता नहीं
सत्य का मूल्य समझता
और जाता क्या जाने ? (बापू बाप अमर हैं - पृ० १०८)

ऐसा नर देश की विभूति को नष्ट करने के लिए जो कुछ चाहे कर सकता है ।

स्वर्गीय बापू को :

यहां गुजराती के कवि ने (श्री जसभाई का पटेल) गांधीजी को 'मानव-जीवन का कलाकार' कहा है क्योंकि उन्होंने ही मानव - जीवन को नया रूप दिया था । उन्होंने सत्याग्रह की फालूंडी पर चलकर आत्मा पर विजय पा ली । उनके वियोग में भारतमाता रोती है । उनको कलाकार, कवि, जन- सेवक कहा गया है । गांधीजी की महिमा गायी गयी है ।

संस्मृति :

यह गुजराती के कवि श्री निरंजन भगत की कविता है । कवि के अनुसार गांधीजी की मृत्यु एक रक्त - रंजित कथा है, जो अवर्णनीय है । उनकी स्मृति के कारण कवि की वाणी मौन बन जाती है । उनकी मृत्यु का वर्णन करने की ताकत कवि में नहीं है । उनकी स्मृति ही कवि के मन में मौन रह जाती है ।

गांधी तेरा नाम जगत में :

यहां तमिल के कवि श्री नामक्कल रामलिंगम पिल्लै ने गांधीजी की व्यष्टि से समष्टि की ओर की झुकाव और प्रयाण का वर्णन किया है । अहिंसा, सत्य, प्रेम आदि को जो क्रमश: वेद, गीता, बाइबिल तक सीमित थे, गांधीजी ने विश्व के कोने कोने में प्रचारित करके उन्हें व्यापक बनाया । उनका कथन था कि प्रेम ही ईश्वर - दर्शन का मार्ग है । इसलिए उन्होंने जनता से प्रेम- पथ पर चलने का अनुरोध किया । अत: उनका नाम दुनिया में अमर हो गया ।

स्वर्ग में स्वागत : यह तमिल के कवि श्री कृष्णमूर्ति 'कल्कि' की यह कविता है । गांधीजी की स्वर्ग में स्वागत होने की कल्पना कवि ने की है । गांधीजी ने जनता के उद्धार के लिए अवतार लिया । दीन लोगों पर पितृ- तुल्य वात्सल्य रस बहा दिया और शत्रुओं को भी प्रेम की दृष्टि से देखा । जब वे स्वर्ग सिधारे तब वहां भी देवी - देवता पथ में सुरभित पुष्प बरसा कर उनका स्वागत करेंगे । उनकी प्रिय पत्नी भी वहां उनका

उनका स्वागत करने को तैयार होकर खड़ी होगी ।

दीन मन क्यों रोता है :

श्री `कल्कि` की ही कविता है यह । गांधीजी की मृत्यु गयी और वे अब और न लौटने वाले हैं । फिर भी कवि का मन अभी रोता रहता है तब कवि ने अपने मन को आश्वासन दिलाने का प्रयत्न किया है । गांधीजी प्रेम और करुणा की साक्षात् मूर्ति थे, बच्चों की हंसी - सी हंसी थी उनकी और मुनियों की भांति वे सादगी का जीवन बिताते थे । अत: हम प्रेम में, करुणा में, दु:ख दर्द में नन्हें बच्चों की मुस्कुराहट में, मुनियों में, कृषकों में उनका बिंब - प्रतिबिंब देख सकते हैं वे महात्माओं में महात्मा थे, परमात्मा थे ।

पोपले मुंह वाले गांधी नेता :

तेलुगु के कवि श्री बल्ला राधाकृष्ण शर्मा ने गान्धीजी को पोपले मुंहवाले नेता कहा है । बिना शस्त्र और रण - हुंकार के, उन्होंने भारत को आजादी दिलाकर जातीय एकता को स्थापित किया । गांधीजी की यह सूक्ति थी कि हिंसा का त्याग करो, तब शांति होगी और सत्य की विजय होगी ।[१] उनको शांतिदूत और करुणासागर कहा है ।

विष का घूंट :

तेलुगु के कवि श्री अंप्पाळ पापय्या शास्त्री ने गान्धीजी की हत्या का वर्णन किया है । उनकी हत्या का समाचार विश्व भर में फैल गया । लोग अपना अपना काम बंद करके प्रतिमा के समान खड़े हो गये । वे करुणा के पिता थे, करुणा सागर थे । उनकी हत्या रूपी विष की बूंद पिये बिना हम रह नहीं सकते ।

किनके पद- चिह्न थे :

तेलुगु के कवि श्री दाशरथि ने गांधीजी की महिमा गायी है । उन

- -

१: हिंसा तजो शान्ति हो, होगी विजय सत्य की ,
यही सूक्ति गान्धी की , यही शरण जगत की ।
-पोपले मुंह वाले गांधी नेता - पृ० १७८

दानवों को अहिंसा से द्रवित कर दिया। वेषा - भूषणों से सज- धज कर आने वाले शूर - वीर उनके चरखे के सामने नत- मस्तक हो गये। अपने सार्वजनिक प्रेम के कारण वे जन- जन के हृदय में समा सके। अपनी करुणामय एवं प्रेम मय वाणी से विदेशियों की तलवारों को कमजोर कर दिया। उनके मन की दृढ़ता हिमालय की सी अचंचल थी। उनको देखने से ऐसा लगता है मानो 'धीरज' और 'शांति' मूर्तरूप धारण कर आयी हों।

ज्योति - निर्वाण :

पंजाबी के कवि श्री प्रीतमसिंह 'सफीर' ने गान्धीजी की मृत्यु को एक अमूल्य ज्योति का निर्वाण कहा है। भारत प्राकृतिक सुषमा से अनुगृहीत है और उसमें असंख्य लोग जन्म लेते हैं और मरते रहते हैं। जीवन और मृत्यु प्रकृति का नियम है। यहां सिद्धार्थ ने जन्म लिया था। उनकी मृत्यु के बाद सात सौ वर्ष तक भारत गुलाम रहा। इसी वक्त महात्मा गांधीजी का जन्म हुआ। भारत को कष्ट पहुंचाने वाली सारी बुराइयां समाप्त हो गयीं।[१] उनके अद्भुत कृत्यों को देखकर इतिहास ने भी अपना रूप बदल दिया। लेकिन एक दिन किसी ने उस महापुरुष की हत्या कर डाली। आज भारत उनका स्मरण मात्र कर रहा है।

भारत के गगन का इन्दु :

पंजाबी के कवि भाई वीरसिंह ने गांधीजी को भारत के गगन का चन्द्रमा कहा है। धरती की हरी हरी घास से आती सुगन्धी को ही गान्धी कहा है - जहां वे शैशव में लेटे थे।[२] उनको महापुरुष कहा गया है। हवा और धरती के बीच में

१- एक समय जागृति की बेला आई किन्तु न टिकने पाई
स्वर्ण - कोख में पुतलीबाई के तब प्रभु की कृपा समाई
भारत - भाग्य विधात्री अन्धी क्रान्ति, रूप में गान्धी के तब
शान्त हो गये भारत को आतंकित करने वाले रव सब।
- ज्योति निर्वाण - पृ० २०६

२- धरती बोली : यह सुगन्ध है
साकार सुगन्ध है वह
सुगन्ध फैलाना गुण है इसका पृ० २१०
और इसीलिए इसे 'गान्धी' कहते हैं। (भारत के गगन का इन्दु-

गान्धीजी के बारे में जो वार्तालाप होता है उसका वर्णन है। गान्धीजी की मृत्यु हुई और उनकी मधुर आवाज भी बन्द हो गयी। चारों ओर ' गान्धी की जय ' गूंजती रहती है। उन्होंने देश की जनता का दुःख निहारकर उसे दूर करने के लिए अपने को ही बलिदान किया।

सर्वव्यापी और शाश्वत :

असमिया के कवि श्री नीलमणि फूकन ने गांधीजी को सर्वव्यापी और शाश्वत कहा है। गांधीजी सदा स्वप्न और सत्य के बीच प्रतिष्ठित रहे थे। कहने का तात्पर्य है कि गांधीजी को सोने के समय ही किसी समस्या की सुलझन का मार्ग उनकी समझ में आता था। जो सच भी था। उन्होंने रामराज्य का सपना देखा था और वह बाद में सत्य बन गया। इस प्रकार उनके जीवन में सत्य और स्वप्न का बड़ा संबंध था। राजघाट जनता के लिए तीर्थस्थान है जो गांधीजी का स्मारक मंदिर है। सारी जगत में उनका जय-रव गूंज उठता है। गांधीजी के मरने पर भी उनका रूप सब की आंखों के सामने ब नाचता है और वे अमर हैं।

उसका स्मरण करो भाई :

उड़िया के कवि श्री मायाधर मानसिंह ने आज़ादी के दिन का स्मरण करने का अनुरोध किया है जो भारत के इतिहास में नया अध्याय जोड़ने में सहायक हुआ। गान्धीजी को भारत के आगामी जीवन का सहारा माना है और उन्हीं को जीवन का आधार मानकर उनका अनुकरण करने का उपदेश दिया है। आज़ादी का दिन भारत के इतिहास में महत्वपूर्ण दिन है।

बापू, तेरा जन्म-दिन :

गान्धीजी के जन्मदिन की महिमा का प्रतिपादन प्रस्तुत कविता में किया गया है। गान्धीजी को पैदाइश और राष्ट्रीय मंच पर उनके पदार्पण के साथ ही देश में भारी परिवर्तन हो गया। उनका जन्म एक भगवान का - एक राम का, एक रहीम का - जन्म था। देश में प्रचलित प्राचीन रूढ़ियों और सिद्धान्तों का नाश हुआ।

तलवार - बन्दूक आदि पर उनकी हंसी ने जीत पायी । चरखे के द्वारा भारत माता की लज्जा दूर हुई । उनके सत्याग्रह - संग्राम में आबाल वृद्ध लोगों ने भाग लिया और वे विजयी बने । हरिजनोद्धार और अछूतोद्धार उन्हीं के हाथों हुए हैं । गांधीजी का जन्म ही भारत के लिए सुहाग का निशान था ।

श्वासों की गन्ध :

इसमें पंजाबी के कवि श्री हरनाम ने गांधीजी की मृत्यु से अपने दुःखित मन का वर्णन किया । कवि कहते हैं कि वे भी गान्धीजी के समान जीवन बिताते थे, चरखा भी कातते थे और उनका अनुकरण भी करते थे । मगर वे गान्धी न बन सके । उन्होंने कदापि किसी पर अपना भार लदा नहीं । वे खुद उसे सहन कर लेते थे । भावकों के प्रति सहानुभूति दिखाने के कारण वे देश का मालिक बन गये । कवि की आत्मा उनके निधन से उस अनंतता में ढूंढती फिरती है जहां गांधीजी भी चल बसे । उनको लगता है कि रास्ते में उन्हें गांधीजी का दर्शन होता है और उनके श्वासों की सुगंधी महकती है ।

स्वीकारोक्ति :

यहां बंगला के कवि श्री गोपाल भौमिक ने भारत की आजकल की दीन - पतित दशा का चित्रण किया है । गांधीजी ने भारत को आजादी दिलायी । कवि के मन में उनके प्रति अपार श्रद्धा है । भक्ति है आदर भी । उनके मन में अक्सर यह चिंता होती है कि गांधीजी जीवित हैं या मरे हैं । उन्होंने जहां जहां सत्याग्रह का आन्दोलन किया था वहां वहां का दृश्य अलौकिक है और सराहनीय भी । मगर अब तो भारत में अत्याचार और अनीति बढ़ती रहीहै, उनका नाम तक लेनेमें कवि शरमाते हैं ।

स्वर्ण भस्म :

बंगला के कवि श्री दिनेश दास ने गांधीजी की स्वर्ण भस्म को महत्ता की कल्पना की है । उनकी चिता- भस्म गंगा, सिंधु आदि नदियों में बहा दी गयी है । यह जिस रास्ते से होकर बहती जाती है वहां की भूमि उर्वर बनती जाती है । जल में और आकाश में एक उर्वरता ला ही नहीं सकती । फिर भी कवि ने कहा है कि यह भस्म बीज के रूप में गिरकर अंबर, जल, थल को उर्वर वे बना देती है । उनकी चिता- भस्म को स्वर्ण भस्म कहा है ।

तीन गोलियां :

बंगला के कवि श्री प्रेमेन्द्र मित्र ने इसमें गांधीजी की हत्या की तीन गोलियों के बारे में कहा है। गांधीजी ने भारत को दासता से मुक्त कर महत्वपूर्ण कार्य किया। लेकिन बदले में उनके अपने प्राण को छीनने वाली तीन गोलियां ही मिलीं। इनकी आवाज़ विश्वभर में गूंज उठीं और उनके राम- मंत्र में लीन हो गया। इस प्रकार उनका अति दारुण अंत हो गया।

हंसते हुए वज्र - तिलक लगाओ :

मराठी कवि श्री बालकृष्ण भगवंत बोरकर ने इनकी मृत्यु के बारे में कहा है। गांधीजी आत्मबलिदान की भावना का समर्थक थे। इनका लक्ष्य भारत की आजादी था और इसके लिए इन्होंने अपने को बलिदान भी किया। उनकी मृत्यु से समस्त लोक अश्रु बहाते हैं। उनकी मृत्यु मंगलमय मृत्यु थी, दिव्य थी। अतः कवि ने उनसे हंसते हुए वज्र - तिलक लगाने की इच्छा प्रकट की है।

प्राण ज्योति :

श्री मनमोहन ने जो मराठी के कवि हैं गांधीजी की प्राण- ज्योति की महिमा गायी है जो उनके बलिदान से प्रकाशमान थी। गांधीजी का शरीर जलते वक्त जो ज्योति दिखाई पड़ी उसका वर्णन है। सत्य को वे ईश्वर मानते थे और झूठ से लड़ते थे। वे निःशस्त्र सेनानी एवं अहिंसा का पुजारी थी। उन्होंने भारत की मुक्ति के लिए अपने प्राणों को भी शस्त्र बनाया और दासता से लड़ने के कारण उनकी मृत्यु हुई। इससे चंदन की लकड़ी भी लज्जित हुई क्यों? उनका त्याग अलौकिक अवर्णनीय तथा महान था।[1]

क्रूस पर मत चढ़ाओ :

मलयालम के कवि श्री कुन्हुकृष्णन कुट्टि ने गांधीजी के लिए मंदिर बनाने, आरती उतारने और अभिषेक करने की अनावश्यकता पर प्रकाश डाला है। उन महान, कर्मठ व्यक्ति की मूर्ति बनाकर उनकी महिमा को सीमित करना असंभव है। उन्होंने अन्य कवियों से यह अनुरोध किया है कि उनको गांधीजी पर स्तुति गीतों की

१: चन्दन का टुकड़ा भी शर्माये, ऐसा त्याग,, आज कोटि लोचनों की अश्रुमाला कहती है।
प्राणज्योति- प० २

रचना करनी चाहिए, उनके सत्कार्यों को मूर्तिमान बनाना चाहिए और उनके व्यक्तित्व एवं काम-कार्यों का उल्लेख करना चाहिए। राजघाट पर जाकर उनको श्रद्धांजलि अर्पित अर्पित करना चाहिए। कवि इसमें गांधीजी का मंदिर बनाने में अपना विरोध प्रकट किया है।

विदेश में वीर गांधी :

गांधी जी का आदर - सम्मान देश में ही नहीं विदेश में भी हुआ। वे जहां जहां जाते थे सभी जगह उनका हार्दिक स्वागत होता था। छोटे छोटे बच्चे भी उनका स्वागत करते थे। गांधीजी ने सारी जनता में विवेक की आवश्यकता पर जोर दिया है।[1] यह कविता सिन्धी के कवि किशनचन्द बेवस की है जिन्होंने इसमें गांधीजी की विदेशाटन का प्रतिपादन किया है।

कहां है शांति :

मराठी के कवि र० अ० काळेले ने स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद भारत की तात्कालीन स्थिति-गतियों का विवेचन किया है और गांधीजी की मृत्यु होने के कारण जनता के मन में और कवि के मन में भी एक प्रकार की अशांति रहती है। कवि कहते हैं कि शांति वहीं बसती है जहां समता और एकता होती है।[2] कवि गांधी-पथ के अनुयायी हैं और उन्होंने अहिंसा और वीरता पर जोर दिया है।[3] गांधीजी को निःशस्त्र लड़नेवाले

- -

१: नहीं त्रास के, सबल से साधारण के बचाव
जन जन में वे बाहते, दिव्य विवेक प्रकाश। (विदेश में गान्धी-पृ०२१६

२: जहां भी जरा सा क्षुब्ध स्वार्थ शेष है, शान्ति वहां वहां नहीं बसती
द्वेष और द्वैत जहां, वहां नहीं बसती है रमणी शान्ति
शांति मंगल मित्रता --- शान्ति समता -- बन्धुता शांति विनिये
शान्ति सत्य सहिष्णुता सरलता, शान्ति है अहिंसा जन में।
(कहां है शान्ति - पृ० २५१ अ)

३: हमें नहीं चाहिए शस्त्र। -- -- हमारे हाथों में है अजेय अहिंसा
हमें नहीं चाहिए लौह - अस्त्र हमें दुर्दम्य धैर्य ही है कवच सा।
(कहां है शांति - पृ० २५१)

इन्हें अलौकिक वीर कहा गया है।[१] गांधीजी जीवित रहते समय भारत में सम- भावना, मानवता, सजातीय भावना, भाई - भाई पन, अस्पृश्यता आदि वर्तमान थे। लेकिन गांधीजी की मृत्यु से इन भावनाओं की भी धीरे धीरे समाप्ति होने लगी। उनके स्थान पर दासता, वर्णीयता, जाति- भेद आदि प्रचलित हुए। अत: कवि को इस पृथ्वी पर शांति नहीं मिलती। वे भारत की ऐसी दशा पर दु:खी हैं और कहते हैं कि गांधीजी के साथ ही भारत की शांति भी चली गयी।

उपसंहार :

यहां उड़िया के कवि ज्योति किशोर महान्त ने गांधीजी की हत्या का दु:खभार अपने ऊपर लादना चाहा है। वस्तुत: उनकी मृत्यु इसी धरती के एक व्यक्ति के द्वारा ही हुई। लेकिन उसका अमिट प्रभाव समस्त जन- सागर पर पड़ा। अत: कवि ने अपने को भी इस पाप - वृत्ति का उत्तरदायी माना है। अब तो कवि की आंखों के समक्ष गांधीजी और गांधीपथ दिखाई पड़ते हैं। अंत में कवि अपने महापाप को स्वीकार करते हैं और उसको उचित दंड देने का अनुरोध भी करते हैं।[२] यहां कवि ने अपने मन के पश्चात्ताप को प्रतिपादित करना चाहा है।

मृत्युंजय :

बंगला के कवि श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने गान्धीजी को मृत्युंजय बताया है। उन्होंने भारत की आज़ादी के लिए अपने प्राण को भी त्याग दिया। वे भारत के लिए स्वतन्त्रता की प्रकाश- किरणों की खोज में व्यस्त थे। गान्धीजी की कठिन तपस्या से भारत ने स्वतन्त्रता फल प्राप्त किया। इसका सन्देश सर्व-प्रथम प्रकृति के

१: शस्त्रों से जो लड़ा नि:शस्त्र होकर अहिंसा के बल से
जो विजयी हुआ, ऐसा अलौकिक वीर कहां मिले ?
(कहां है शांति - पृ० २५१)

२: प्रतिपत्तिपूर्वक पाप को स्वीकार करता हूं
हे प्रभो, मुझे मेरा प्राप्य।
- उपसंहार पृ० ६१

पक्षियों ने जनता को दिया ।[१] गांधीजी ने भी बाद में इसको समाचार जनता को सुनाया। स्वतन्त्रता की इच्छा से भारत की सारी जनता ने जिनमें युवा- युवती, बेटा- बेटी, बाल- बच्ची, बूढ़ा - बूढ़ी एकसाथ शामिल थे । गांधीजी के साथ आन्दोलनों में भाग लिया था । वे एक दिन शाम की प्रार्थना में लगे रहे थे । तभी किसी निष्ठुर तथा निर्दय व्यक्ति ने उनकी हत्या की । गांधीजी की मृत्यु भारत के लिए बड़ा भारी नुकसान है । समस्त लोगों ने कंठ से कंठ से मिलाकर अर्थात् एक कंठ व होकर उनको मृत्युंजय कहा ।[२]

उपसंहार :

'मृत्युंजयी 'काव्य - संकलन की रचना गांधीजी की मृत्यु के पश्चात् उ उनकी श्रद्धांजलि के रूप में की गयी है । इस संकलन के सृजन का उद्देश्य उनके प्रति श्रद्धा- भावना प्रकट करना और हिंदीतर कवियों पर गांधीजी का जो असाधारण और असामान्य प्रभाव पड़ा है उसे बताना भी जान पड़ता है । साथ ही हिन्दी कविता पर गांधीजी के प्रभाव का भी समंव मूल्यांकन करने का प्रयास किया गया है ।

इस संकलन की कविताओं की रचना में हिंदीतर अन्य अनेक भाषा- भाषी कवियों ने अपना- अपना योगदान दिया है । इन कवियों ने उनकी विविध प्रवृत्तियों को राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक सुधारवादी दृष्टिकोणों से देख - परखकर उनका मूल्यांकन किया है । और वे विभिन्न नामों , नाम- विशेषणों से अभिव्यंजित हुए हैं । इन्होंने उनके जीवन के एक ही पहलू अर्थात् भारतीय स्वतंत्रता - प्राप्ति को

१: हट गये मेघ , पृथ्वी दिगंत में छिप तारा फिर मिला उठा,
ली सुख की सांस धरित्री ने, वन - पथ में पल्लव-मर्म- स्वन
हौले हौले खिलखिला उठा
पंछी चहके, महके प्रसून, वह बोला,'शुभ क्षण आया लो ।'
- मृत्युंजय - पृ० २३६

२: हम सब के जीवन में होगा संजीवित , वह है मृत्युंजय ।
सब खड़े हो गये, कंठ मिलाकर गाया जय, जय मृत्युंजय ।।
- मृत्युंजय - पृ० २३६

अपनी कविताओं का विषय न बनाकर उस पर अधिक जोर दिया है। कारण तो यह है कि गांधीजी ही एकमात्र व्यक्ति थे जो आजन्म स्वतन्त्रता के लिए लड़े थे और अपनेतक प्राण को भी त्यजने के लिए तैयार थे। अतः स्वतंत्रता का श्रेय पूर्ण रूप से उन्हीं को ही है। इन कवियों ने उनका, प्रत्यक्ष रूप से, परोक्ष रूप से, श्रद्धांजलि के रूप से, स्तवन के रूप से और महामानवत्व के रूप से चित्रण किया है। दो-तीन कविताएं ऐसी भी हैं जिनमें गांधीवादी विचार-धारा का प्रतिपादन किया गया है। इन सारी कविताओं में उनको मुक्तिदाता का रूप स्पष्ट लक्षित होता है। इनमें कवियों ने गांधीजी के व्यक्तिगत गुण-विशेषों को हमारे समक्ष प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

इस संकलन की सारी कविताएं श्रेष्ठ एवं महत्वपूर्ण हैं। लेकिन इसकी अधिकांश कविताओं में कवियों ने गांधीजी का कुछ बढ़ा चढ़ाकर वर्णन ही किया है। ऐसी कविताओं में उनके जीवन या व्यक्तित्व अथवा कर्तव्यशीलता पर प्रकाश तक नहीं डाला गया है। सारे कवियों ने उनपर कविता की रचना की है। मगर उनकी जीवन-त्रुटियों की गहराई तक उतरने का प्रयास किसी ने नहीं किया है। उनके जीवन के बाह्यरूपों का मात्र स्पर्श किया गया है। उदाहरण के लिए मढ़ाई सूं में फिर लड़ाई, अग्नि की तीन गोलियां, हंसते हुए वज्र तिलक लगाओ आदि उल्लेखनीय हैं जो मांस हीन काया के समान हैं। अधिकांश कविताएं कवियों ने कल्पना जगत के विषय के लेकर रचे हैं। इनमें कवि की कल्पना ने काम किया है - उदा० एक सपना, छाया, रोशनी की याद, स्वर्ग में स्वागत आदि। कहां है शांति, राष्ट्रपिता, मेरे गुरुदेव, मृत्युंजय, बिना लहू के बिना रक्त के आदि कविताएं कुछ महत्वपूर्ण एवं सराहनीय हैं। उनके निधन के दिवस पर जितनी कविताओं का सृजन हुआ वे अत्यंत मार्मिक बन पड़ी हैं। सारी कविताओं में उनके निःशस्त्र, अहिंसास्त्र से भूषित सेनानी का रूप द्रष्टव्य है। कविताओं में चाहे कितनी ही त्रुटियां रही हैं, गांधीजी पर रचित होने के कारण वे प्रशंसनीय हैं।

संसार में मानव-जीवन बहुत ही सीमित है। एकनिश्चित और कल्पित अवधि तक वह जिन्दा रहता है। फिर इस संसार से चला जाता है। यह विश्व का नियम है। गांधीजी भी यहीं पैदा हुए और यहीं मर गये। जीवन - मृत्यु का

घटना चक्र घूमता रहता है। ऐसे नश्वर संसार में गांधीजी की महिमा अनश्वर, असीम बनकर सदा दीप्त रहेगी।[१] गांधीजी सत्य के पुजारी और ईश्वर के परम भक्त थे। अत: वे नित्य शाश्वत हैं। मृत्युंजय हैं। इसीलिए वे मृत्युंजयी कहलाते हैं।

ooooo-------oooooo
-----
oooo
oooo
oo

१: जिस अवधि में जहां मानव मिटा देता मर्त्य सीमा

दिव्य महिमा तुम्हारी वहं दीपित है वहीं पर है असीमा।

- महात्मा - रत्नकांत बरकाकति - पृ० ५६

आलोचना - ग्रंथ (हिन्दी)

१- अकाल पुरुष गांधी, जैनेन्द्र कुमार, पूर्वोदय प्रकाशन, दिल्ली, द्वितीय संस्करण, अक्तूबर, १९६८

२- आत्मकथा, महात्मा गांधी, अनु० काशीनाथ त्रिवेदी, नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद, प्रथम संस्करण, सितंबर, १९६१

३- आधुनिक कविता और युग - दृष्टि, डा० शिवकुमार मिश्र, विद्यामंदिर, वाराणसी, प्रथम सं०, १९६६

४- आधुनिक काव्यधारा, डा० केसरी नारायण शुक्ल, नंद किशोर एण्ड सन्स, वाराणसी, चतुर्थ सं०, १९६१

५- आधुनिक निबंध, ओमप्रकाश शर्मा, रामचन्द्र एण्ड कंपनी- दिल्ली, प्रथम, १९६८

६- आधुनिक भारतीय चिंतन, विश्वनाथ नरवाणे, अनु० नेमिचन्द्र जैन, राजकमल प्रकाशन , दिल्ली, प्रथम सं० १९६६

७- आधुनिक साहित्य, नन्ददुलारे वाजपेयी, भारती भण्डार, इलाहाबाद, तृतीय,२०१८

८-आधुनिक हिन्दी कविता - सिद्धान्त और समीक्षा, डा० विश्वंभरनाथ उपाध्याय, प्रगति प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम सं० , १९६२

९- आधुनिक हिन्दी कविता की भूमिका, डा० शम्भुनाथ पाण्डेय, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, प्रथम, जनवरी १९६४

१०- आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियां, डा० नगेन्द्र, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, द्वितीय - जनवरी १९६२

११- आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियां, डा० जगदीश नारायण त्रिपाठी, प्रत्यूष प्रकाशन, कानपुर, प्रथम संस्करण

१२- आधुनिक हिन्दी काव्य , डा० राजेन्द्र मिश्र, ग्रंथम, रामबाग, कानपुर, फरवरी १९६६, प्रथम ।

१३ आधुनिक हिन्दी काव्य में परंपरा तथा प्रयोग, गोपाल दत्त सारस्वत, सरस्वती प्रकाशन मंदिर, इलाहाबाद, प्रथम, १९६१

१४- आधुनिक हिन्दी काव्य में रूप विधाएं, डा० निर्मला जैन, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली , प्रथम, १९६३

१५- आधुनिक हिन्दी महाकाव्यों का शिल्प विधान, डा० श्यामानन्दन किशोर, सरस्वती पुस्तक सदन, आगरा, प्रथम, १९६३

१६- आधुनिक हिन्दी साहित्य, नन्ददुलारे वाजपेयी, भारती भण्डार, इलाहाबाद, तृतीय, २०१८

१७- आधुनिक हिन्दी साहित्य (सन् १८५०- १९००), डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, हिन्दी परिषद्, इलाहाबाद विश्व विद्यालय, तृतीय, १९५४

१८- आधुनिक हिन्दी साहित्य, (सं १९०० से १९९० तक,), पं० कृष्ण शंकर शुक्ल, हिन्दी साहित्य कुटीर, बनारस, नवम, २०४ २०१४

१९- आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास(१९००- १९२५), डा० श्रीकृष्णलाल, परिषद प्रकाशन, प्रयाग विश्वविद्यालय, चतुर्थ, १९६५

२०- इतिहास के देवता, डा० रघुवीर शरण मित्र, भारत भारती प्रकाशन, भारतवर्ष १९६८

२१- कबीर दोहावली, महेन्द्रकुमार जैन, दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास दूसरा, १९५९

२२- काव्यरूपों के मूलस्रोत और उनका विकास, डा० शकुन्तला दुबे, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी, प्रथम, १९६४

२३- कुरुक्षेत्र मीमांसा, कान्ति मोहन शर्मा, साहित्य प्रकाशन मण्डल, दिल्ली, प्रथम, २०१५

२४- खड़ीबोली का आंदोलन, डा० शितिकण्ठ मिश्र, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, प्रथम, २०१३

२५- गांधी विचार दोहन, कि० घ० मशरूवाला, काशिनाथ त्रिवेदी, नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद, प्रथम, १९६४

२६- गांधी विचार रत्न (गांधी- साहित्य- भाग १०), भाई दयाल जैन , सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली, प्रथम, १९६३

२७- गांधी- व्यक्तित्व, विचार और प्रभाव, सस्ता साहित्य मण्डल, इलाहाबाद, पहला, १९६६

२८- गांधी साहित्य (भाग ५), सस्ता साहित्य मण्डल,प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय, १९६२

२९- गांधीजी : एक झलक, गोपाल जोशी, नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद, प्रथम मुन, १९६२

३०- गांधीजी और उनका वाद, ई०एम०एस० नंबूतिरीपाद, अनु० गिरिजा कुमार सिन्हा, पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, प्रथम, १९६०

३१- गांधीजी का जीवन दर्शन, काकासाहब कालेलकर, नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद, प्रथम, १९७०

३२- गांधीजी की सूक्तियां, राजबहादुर सिंह, हिन्द पाकेट बुक्स प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली, प्रथम,

३३- गांधीजी के संस्मरण, शान्तिकुमार, काशिनाथ त्रिवेदी, सर्वसेवासंघ प्रकाशन, वाराणसी, प्रथम

३४- गांधीजी से क्या सीखें, विश्वनाथ एम० ए० , राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, प्रथम,

३५- गांधीवाद की शवपरीक्षा, यशपाल, विप्लव कार्यालय, लखनऊ, छठा, १९६१,

३६- जाति व्यवस्था, डा० नर्मदेश्वर प्रसाद, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली- ६, . प्रथम, १९६५

३७- दक्षिण के हिन्दी प्रचार आंदोलन का समीक्षात्मक इतिहास, पी० के० केशवननायर हिन्दी साहित्य भण्डार, लखनऊ, प्रथम, १९६३

३८- नवीन निबंध, प्रो० जगदीश मिश्र, किताब महल, इलाहाबाद, प्रथम, १९६२

३९- प्रबंध सागर, शरदत्त शर्मा, आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली, चतुर्थ, १९५७

४०- प्राचीन भारतीय साहित्य की सांस्कृतिक भूमिका, डा० रामजी उपाध्याय, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम, १९६६

४१- बापू, घनश्यामदास बिड़ला, सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली, छठां, १९५६,

४२- बालकृष्ण शर्मा नवीन- व्यक्ति एवं काव्य, डा० लक्ष्मीनारायण दुबे, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद, प्रथम, १९६४

४३- भारतीय क्रान्तिकारी आंदोलन का इतिहास, बनारसीदास चतुर्वेदी, मन्मथनाथ गुप्त, आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली, दूसरा, १९६६

४४- भारतीय दर्शन, उमेशमिश्र एम० ए० डी० लिट्, हिन्दी समिति, लखनऊ, द्वितीय, १९६४

४५- भारतीय नव- जागरण : प्रणेता तथा आन्दोलन, गौरीशंकर भट्ट,
साहित्य सदन, देहरादून, प्रथम , १९६८

४६- भारतीय संस्कृति - गौतम से गांधी तक , आचार्य भास्करानन्द लोहनी,
आत्माराम एण्ड प्रकाशन, लखनऊ - १, प्रथम - १९६५ ई०

४७- भारतीय संस्कृति और अहिंसा, स्व: धर्मानन्द कोसंबी, हेमचन्द्र - मोदी - पुस्तकालय
ट्रस्ट, दिल्ली, द्वितीय, १९५७

४८- भारतीय राष्ट्रवाद के विकास की हिंदी साहित्य में अभिव्यक्ति, डा० सुषमा
नारायण, हिन्दी साहित्य संसार, दिल्ली ७, प्रथम , १९६६

४९- भारतीय स्वातन्त्र्य आन्दोलन और हिन्दी साहित्य, डा० कीर्तिलता, हिंदुस्तानी
एकादमी, इलाहाबाद, प्रथम १९६७

५०- महर्षि दयानन्द, रघुवंश सहाय, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम, १९७१

५१- महाकवि हरिऔध , गिरिजादत्त शुक्ल 'गिरीश', रामनारायण लाल, इलाहाबाद,
तृतीय , १९५९

५२- महात्मा गांधी, डा० प्रफुल्लचन्द्र घोष, मित्र प्रकाशन , इलाहाबाद, प्रथम, १९६५

५३- मार्क्सवाद और रामराज्य , श्री करपात्री जी महाराज, गीता प्रेस, गोरखपुर,
द्वितीय , सं० २०१९

५४- माखन लाल चतुर्वेदी : व्यक्ति और काव्य , डा० राम खेलावन तिवारी, अनुसन्धान
प्रकाशन, कानपुर ३, प्रथम, १९६६

५५- मुक्तक काव्य की परंपरा और बिहारी, डा० रामसागर त्रिपाठी, अशोक प्रकाशन,
दिल्ली, प्रथम, १९६०

५६- मेरे निबन्ध, गुलाब राय, गयाप्रसाद एण्ड सन्स, आगरा, द्वितीय, १९५९

५७- मैथिलीशरण गुप्त, व्यक्ति और काव्य, डा० कमलाकान्त पाठक, रणजीत प्रिंटर्स
एण्ड पब्लिशर्स , दिल्ली, प्रथम, १९६०

५८- लाल बहादुर शास्त्री , महावीर अधिकारी, राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली,
प्रथम, १९६६

५९- वर्ण, जाति, और धर्म , फूलचन्द्र सिद्धान्त शास्त्री, भारतीय ज्ञानपीठ काशी,
प्रथम, १९६३

६०- वाङ्मय विमर्श, पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, हिन्दी साहित्य कुटीर, वाराणसी,
चतुर्थ, २०१८ .

६१- विनोबा भावे, प्राणनाथ वानप्रस्थी, राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, द्वितीय,१९६०

६२- विवेकानन्द, रामारोला, अज्ञेय, लोक भारती, इलाहाबाद, प्रथम, १९६८

६३- वैदिक संस्कृति के मूल तत्व, प्रो० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार, विजयकृष्ण लखनपाल, एण्ड कंपनी, विद्याविहार, देहरादून , प्रथम

६४- संक्षिप्त कांग्रेस का इतिहास, डा० पट्टाभि सीतारामय्या, सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली, प्रथम, १९५८

- संस्कृति के चार अध्याय, रामधारी सिंह दिनकर, उदयाचल, पटना- ४, तृतीय- दिसंबर १९६२

६६- सन् १८५७ का भारतीय स्वातन्त्र्य समर, विनायक दामोदर सावरकर, बनारसी सिंह, राजधानी ग्रंथागार, नई दिल्ली, प्रथम , १९६६

६७- समीक्षात्मक निबंध, डा० सत्येन्द्र, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, प्रथम १९६२

६८- साकेत - एक अध्ययन, डा० सत्येन्द्र, साहित्य रत्न भण्डार, आगरा, एकादश, १९६४

६९- सामयिक जीवन और जीवन, डा० रामरतन भटनागर, साथी प्रकाशन, सागर, प्रथम, १९६३ ई०

७०- सियाराम शरण गुप्त, डा० नगेन्द्र, नाशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, द्वितीय, ७८ १९६५

७१- सियारामशरण गुप्त - व्यक्तित्व और कृतित्व , डा० शिवप्रसाद मिश्र, कमल प्रकाशन, इंदौर, प्रथम - सन् १९६६

७२- स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी काव्य,(सन् १९४७ - १९६२), डा० रामगोपाल सिंह, चौहान, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, प्रथम, १९६५

७३- हमारे राष्ट्र निर्माता, सत्यकाम विद्यालंकार, राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, प्रथम

७४- हमारे राष्ट्र निर्माता, रामनाथ सुमन, साधना सदन, इलाहाबाद, पंद्रहवां,१९५८

७५- हरिऔध जीवन और कृतित्व , डा० मुकुन्द देव शर्मा, नन्द किशोर एण्ड ब्रदर्स, वाराणासी, प्रथम, १९६१

७६- हरिऔध और उनका साहित्य, मुकुन्द देव शर्मा, हिन्दी साहित्य कुटीर, हिन्दी साहित्य कुटीर, वाराणासी, प्रथम, २०१३

७७- हिन्दी कविता में युगांतर, डा० सुधीन्द्र, आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली -६, दूसरा , १९५७

७८- हिन्दी की राष्ट्रीय काव्यधारा, डा० लक्ष्मीनारायण दुबे, विद्याचल प्रकाशन, छतरपुर, प्रथम, १९६७

७९- हिन्दी के मध्यकालीन खण्डकाव्य, डा० सियाराम तिवारी, हिन्दी साहित्य [illegible]संसद, दिल्ली, [illegible], १९६४

८०- हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योग, डा० नामवर सिंह, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, चतुर्थ, १९६५

८१- हिन्दी महाकाव्य - सिद्धान्त और मूल्यांकन, देवी प्रसाद गुप्त, अपोलो पब्लिकेशन, जयपुर, प्रथम, १९६८

८२- हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास, डा० शम्भुनाथ सिंह, हिन्दी प्रचारक पु पुस्तकालय, द्वितीय, १९६२

८३- हिन्दी साहित्य और विभिन्न वाद, रामजी लाल मदोतिया, विनोदपुस्तक मंदिर, आगरा, प्रथम, नवंबर, १९५८

८४- हिन्दी साहित्य का आधुनिक काल, ब्रजकिशन प्रसाद, विनोद पु स्तक मंदिर, आगरा, द्वितीय, १९६१

८५- हिन्दी साहित्य का इतिहास, रामचन्द्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, तेरहवां , सं० २०१८ वि० ।

८६-

गांधीवादी काव्य

१ - अंजलि और अर्घ्य (शोक गीति) , मैथिलीशरण गुप्त, साहित्य सदन, चिरगांव, झांसी, चतुर्थ, २०१७ वि०

२ - अग्नि शस्य (मुक्तक), नरेन्द्र शर्मा, लीडर प्रेस, प्रयाग, प्रथम, २००८

३ - अजित (खण्डकाव्य) , मैथिलीशरण गुप्त, साहित्य प्रेस, चिरगांव, तृतीय, २०१४

४ - अनघ (गीति नाट्य) मैथिलीशरण गुप्त, साहित्य प्रेस, चिरगांव, अष्टम,२०१४

५ - अनाथ (खण्डकाव्य) , सियारामशरण गुप्त, साहित्य प्रेस, चिरगांव, प्रथम, २०१८